00044262

Digitized with financial assistance from the
Government of Maharashtra
on 18 July, 2018

Mo 184 0879

GĪTÁVALÍ,

OR

A HINDI MANUAL OF INDIAN VOCAL MUSIC.

41 05

BY

SOURINDRO MOHUN TAGORE, Mus. Doc.,

President, Bengal Music School, Calcutta, Fellow of the Calcutta University, &c., &c., &c.

44262

al

CALCUTTA:

Printed by I. C. Bose & Co., Stanhope Press, 249, Bow-Bazar Street, and Published by the Author.

1878.

[*All rights reserved.*]

[*Price 8 As. only.*]

33.e44

GĪTÁVALÍ,

OR

A HINDI MANUAL OF INDIAN VOCAL MUSIC.

BY

SOURINDRO MOHUN TAGORE, Mus. Doc.,

President, Bengal Music School, Calcutta, Fellow of the Calcutta University, &c., &c., &c.

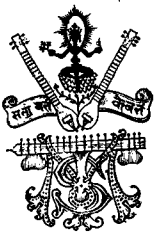

CALCUTTA:

Printed by I. C. Bose & Co., Stanhope Press, 249, Bow-Bazar Street, and Published by the Author.

1878.

All rights reserved.

44262

00044262

PREFACE.

THIS Manual has been written under the encouragement of Mr. Colin Browning, M.A., Director of Public Instruction, Central Provinces, with a view to assist the boys of the primary schools in those Provinces (E. C.) in learning Hindu Music. It contains various specimens of Hindusthâni songs suited to the capacities of beginners. In the Introduction will be found a *resumé* of the Indian theory of music and the elementary rules of Hindu notation necessary for their comprehension. Should the writer be so fortunate as to meet with success in this his first attempt at Hindi composition, he will be encouraged to undertake a more elaborate treatise on the subject, in the same language.

TO

COLIN BROWNING, ESQ., M.A.,

Director of Public Instruction, E.C.,
Central Provinces.

This Manual

IS

MOST RESPECTFULLY DEDICATED

BY

THE AUTHOR.

गीतावली

या

हिन्दी भाषा का कण्ठ-सङ्गीत।

श्रीशौरीन्द्रमोहन ठाकुरने मिउजिक डाक्टार,

कलकत्ता वङ्गसङ्गीत स्कुलका प्रेसिडेण्ट, कलकत्ता इउनिवर्सिटिका फेलो,

इत्यादि, इत्यादि,

तैयार ऊया।

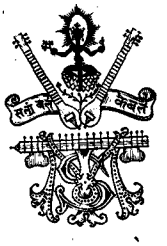

कलकत्ता।

आइ, सि, वसु कोम्पानिने २४९ नं वऊवाजार ष्ट्रीटमे

ष्टान्होप् यन्त्रसे छापा ऊया।

१८७८।

All rights reserved.

भूमिका ।

भारतवर्षके मध्यभागके खास वगैरहके प्रधान अध्यक्ष (डाइरेक्टर) साहेबका उत्साहे यही "गीतावली" (सङ्गीत-उपक्रमणिका) माइमार खासका लेड़का लोकके शिखनेकेवास्ते हिन्दीभाषामे तैयार ज़या। इसको पहिले (अवतरणिका भागमे) सङ्गीत-शास्त्रके थोड़े थोड़े मर्म्म, खरलिखनेका नियम, और यही ग्रन्थमे जो कय किसिमका गाना लिखा ज़या, वह सबको वयान संक्षेपसे लिखा है। हिन्दीभाषामे कोइ ग्रन्थ तैयार करना यही मेरा पहिले उद्यम। यही ग्रन्थ भाला या बुरा ज़या, यह मेरा समझमे आता नहिं, अगर हिन्दुस्थानी गानेवाला आदमी यही ग्रन्थमे उत्साह देखलावे, तो बाद इसको हिन्दीभाषामे दोसरा ग्रन्थ लिखनेकेवास्ते विशेष यत्न करेंगे।

ग्रन्थकर्त्ता।

१२८५ साल
२८शे अग्रहायण
कलकत्ता

सूचीपत्र।

विषय।	पृष्ठा।
नाद	।०
श्रुति	।०
षड्जादि सप्तस्वर	।०
सप्तक	।।०
ग्राम	।।०
मात्रा	।०
अनुलोम	।।०
विलोम	।।०
गमक	।।।०
मूर्च्छना	।।।०
विक्षेप	।।।०
प्रक्षेप	।।।०
ताल	॥०
राग	॥।०
वादी विवादी लक्षण	॥।०
गीत	॥।।०
आलाप	॥।।०
सारगम	॥।।०
तेलेना	॥।।०
खेयाल	॥।।०
ध्रुपद	॥।।०
विष्णुपद	॥।।०
टप्पा	॥।।०
साधनप्रणाली	१

सूचीपत्र।

विषय।				पृष्ठा।
लुमका सारगम	...	...	...	११
भूपालीका सारगम	..	...	...	१२
खाम्बाजका सारगम	..	..	...	१३
भीमपलश्रीका सारगम	...	...	...	१५
लुमका तेलेना	...	..	...	१५
वेहागका खेयाल	...	..	...	१८
इमनकल्याणका ध्रुपद	...	...	...	२०
खाम्बाजका ध्रुपद	...	..	...	२३
वेहागका ध्रुपद	..	..	...	२८
वेहागका तेलेना	...	...	..	३१
प्रदीपिकाका खेयाल	...	..	...	३४
इमन वेलावलीका ध्रुपद	...	...	...	३६
विभाषका ध्रुपद	...	...	...	३८
खाम्बाजका विष्णु पद	..	..	...	४१
सिन्धुका ध्रुपद	..	..	...	४३
परजका विष्णु पद	...	...	..	४५
योगियाका विष्णु पद	..	..	...	४७
वेहागका विष्णु पद	..	..	...	५०
मेघका ध्रुपद	..	..	...	५३
देओभिभिटका विष्णु पद	..	...	...	५७
हिण्डोलका ध्रुपद	...	...	...	६१
भूपालीका ध्रुपद	...	...	...	६३
देओभिभिटका विष्णु पद	...	...	...	६६
ललितका ध्रुपद	...	...	...	६८
देशका तेलेना	...	...	...	७१
सुरटका ध्रुपद	...	...	...	७३
सोहिनीका खेयाल	...	...	...	७५

सूचीपत्र।

विषय।				पृष्ठा।
शङ्कराका तेलेना	...	...	...	७६
सिन्धुका खेयाल	...	..	..	७८
गुज्जरी तोड़ीका ध्रुपद	..	...	...	८१
देओसागका ध्रुपद	...	...	...	८४
वृन्दावनी सारङ्गका ध्रुपद	..	..	...	८८
वड़ हंस सारङ्गका ध्रुपद	...	...	..	९१
भैरवीका ध्रुपद	..	..	..	९३
भैरवका ध्रुपद	..	..	..	९९
हामिरका ध्रुपद	..	..	..	१०४

सङ्गीत-शास्त्र।

गीत, वाद्य और नृत्य, यही तिनोको एककाट्टा करनेसे सङ्गीत कहा जाता है *। और जिस्शास्त्रमे इस्का खोलासा वयान् लिखा है, पण्डित लोग उस्को सङ्गीतशास्त्र कहते हैं।

नाद।

सङ्गीतशास्त्रके दो भाग है, एक क्रियाभाग, और एक शास्त्रभाग।

गीतका मूल नाद (आवाज) और काल। नाद दो तरहेका, एक वर्णात्मक, दुस्रा ध्वन्यात्मक। वात् कहना, मन्त्र पड्ना और स्तुत करना वगैरहको वर्णात्मक नाद कहते हैं। और सेरेफ् आवाजको ध्वन्यात्मक नाद कहते है।

श्रुति (शेारत्)

नादसे शेारत् पयदा होता है, श्रुति सुरका सूक्ष्मांश पदार्थ। शेारत् बाइशठो, उस्के नाम यही है।—तीव्रा, कुमुदती, मन्दा, छन्दोवती, दयावती, रञ्जनी, रतिका, रौद्री, क्रोधी, वज्रिका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्ज्जनी, क्षिति, रक्ता, सन्दीपनी, आलापनी, मन्दन्ती, रोहिणी, रम्या, उग्रा और क्षोभिणी।

षड्जादि सप्त स्वर।

शेारत्से सुर पयदा होता है, सुर सातठें। जिस् तरह षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद,

---

* गीतं वाद्यञ्च नृत्यञ्च त्रिभिः सङ्गीतमुच्यते।

लेकिन् यही सात सुरका सुक्तासार सात हरफ्मे बयान किया जाता है; इयाने सा, रे, ग, म, प, ध और नि।

सङ्गीत-शास्त्रमे एक एक सुरको एक एक धातु कहते है, यही सात सुर विकृत होनेसे उसको संख्या बारा होति है, ज्यासा सा रे॑ रे ग॑ ग म मं॑ प ध॑ ध नि॑ नि। सुर दो तरहसे विकृत होता है, एक तीव्र, और दोसरा कोमल। सुर अपने स्थानसे कुछ उचा होनेसे उसको तीव्र, नीचेमे आनेसे कोमल कहा जाता है। तीव्रका निशान यही (৲) पताका है और कोमलका निशान यही त्रिकोण, यही सब निशान सुरके उपर उपर रक्खा है, ज्यासा (△) मं रे॑।

सप्तक।

षड्जसे निषाद् तक् सात सुरका पर पर गति होनेसे सप्तक कहा जाता है। यही सप्तक लिखनेके लिये एक सिधि लकीर खिंचि जाति है। उसी लकीरके नीचे उसी तरहसे सुर लिखा जाता है; ज्यासा सा रे ग म प ध नि। सप्तक तिनप्रकार, इयानें उदारा, मुदारा और तारा। आदमीके गलेसे तिन सप्तकसे ज्यादा सुर सेहि बड़ा सक्ता, नीचा उदारा, जिसका निम्न सप्तक कहते है, उसको लिखनेका निशान सुरके नीचे नीचे एक एक विन्दु

रहेगा, ज्यासा सा ऋ॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नि॒ । बीच्का सुदारा, जो मध्य सप्तक होता है, वही सप्तक सेरेफ् लकीरके नीचे लिखा जाता है, ज्यासा सा ऋ॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नि॒ । उपरका तारा जिस्को उच्च सप्तक कहते है, उसी सप्तकके उपर बिन्दु रक्खा गया है, ज्यासा सां ऋं॒ गं॒ मं॒ पं॒ धं॒ निं॒ । सब आदमी-ओंके कण्ठसे पुरे तिन सप्तक निकलाना मुस्किल है, इसी सबब्से आठ्ठाइ सप्तक तक् व्यवहार किया जाता है। आठ्ठाइ सप्तक इसी तर्हसे लिखे जाता है, ज्यासा सा ऋ॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नि॒ सा ऋ॒ ग॒ म॒ प॒ ध॒ नि॒ सां ऋं॒ गं॒ मं॒ लेकिन सप्तक वज्रत् है, आंरेजी पियाना और देशी कात्यायन वीणासे वज्रत् सप्तक निकल्ते है।

ग्राम।

जिस् सुरको अवलम्बन कर्के सप्तक सुरू होता है, उसीको ग्राम कहते है*। ज्यासा—

* ग्रामः स्वरसमूहः स्यान्मूर्च्छनादेः समाश्रयः।
तौ द्वौ धरातले तत्र स्यात् षड्जग्राम आदिमः॥
द्वितीयो मध्यमग्रामस्तयोर्लक्षणमुच्यते।
षड्जग्रामः पञ्चमे च चतुर्थश्रुतिसंस्थिते।
खोपान्त्यश्रुतिसंस्थेऽस्मिन् मध्यमग्राम इष्यते॥

षड्जग्राम सा ऋ ग म प ध नि सां।

मध्यमग्राम म प ध नि̇ सां ऋं गं मं।

गान्धारग्राम * ग म प ध नि सां ऋं गं।

लेकिन चलन् व्यवहारमे तिन सप्तकके जो तिन षड्ज है, उनीको तिन ग्राम कहते है। पण्डित लोगोंने किसी किसी ग्रन्थमे पञ्चमकेभी ग्राम कहे है।

माचा।

वर्ण उच्चारणकी कालके माचा कहते है। माचा पांच-प्रकार। ज्यासा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, अर्द्ध और अणु। एक वर्णमे एकमाचा, दोमे दो, तिनमे तिन, व्यञ्जन वर्णमे अर्द्ध, इयासे आधीमाचा और एक वर्णके चौथे हिस्सेमे अणुमाचा होता है। इसी पांचप्रकार माचोंके निशान पांच तरहके है, ज्यासा एकमाचाका (।) एक दण्ड, दोमाचाका (॥) दोदण्ड, तिनमाचाका (।।।) तिन दण्ड, अर्द्धमाचाका (◡) अर्द्धचन्द्र, अणुमाचाका (×) डमरू चिह्न। इससे औरभी सूक्ष्म माचा होता है। इनही सब माचोंके निशान सुरोंके उपर रकखा गये है। ज्यासा—

सा ऋ ॥ ग ।।। मँ × प

* रिषभयोः श्रुतिमेकैकां गान्धारश्चेत् समाश्रयेत्।
यदा धैवतश्रुतिः षाड्जो मध्यमश्चापि त्रिश्रुतिः॥
पञ्च धैवतश्रुतिं निर्दिश्रुती सैकश्रुतिं श्रितः।
गान्धारग्राममाचष्टे तदा तं नारदो मुनिः॥

जव् कभी एक मांचासे दो या तिन या अधिक सुर आयके जेन्का समान काल हो, तो सव सुरोंको पर जुदा जुदा मांचाका चिह्न ना लगा, के पहलि सुरपर मांचाका चिह्न देकर दोसरा सव सुरको (⌐¯¯¯¯¬) इस् वन्धनी चिह्नसे घेर देतें है। ज्यासा—

आद। कोइ कोइ जगहमे इस् माफिक होता है, के मांचा चिह्न कोइ सुरपर नहि रहता है। फांका जगहमे रहते है। ज्यासा—

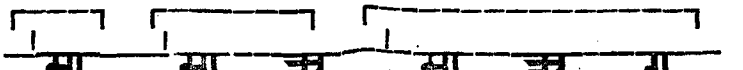

यही सव सुरोंका मांचाका हिस्सा इस्माफिक होगा। ज्यासा—

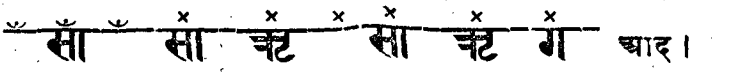

आद।

अनुलोम।

सात सुरोंकी जव् उच्च गति होति है, तव् उस्को अनुलोम अथवा आरोही कहते है। ज्यासा—

सा चट ग म प ध नि सां।

विलोम।

यही सात सुर जव् नीचे उतरते है, तव् उन्को विलोम अथवा अवरोही कहते है। ज्यासा—

सां नि ध प म ग चट सा।

इस्की तस्री साधन, वहिके पहिला पचमे लिखि गेइ है।

और अनुलोम और विलोम इन् दोनोकी तस्रीभी साधन वहिका दोसरा जगहमे लिखि गेइ है।

गमक।

स्वरकम्पनका नाम गमक। गमकका निशान यही (~) गजकुम्भ, यही निशान सुरोंका उपर रक्खा जाता है।

जैसा— सा। एक गमक होनेसे एक, जैसा— सा, दो गमक होनेसे दो, जैसा— सा। वज्रत् होनेसे सुरके उपर ऐसेही वज्रत् लागानेता है। जैसा— सा।

मूर्च्छना अथवा मिड़।

एक सुर बराबरसे दुसरे सुरतक् जाके अपना भावान्तर होनेका नाम मूर्च्छना। मूर्च्छनाका निशान (~~~~~~~~~~) यही तरङ्गित रेखा सुरोंका नीचे दि जायेगी। जैसा— चट ग, चट ग म, चट ग म प, अर्थात् जिस् सुरमे मूर्च्छना सुरु होगा, उसी सुरके नीचेसे सुरु होकर जिस् सुरमे मूर्च्छना खतम् होगी तरङ्गित रेखाभी उस् सुरतक रहेगी। जैसा— चट ग म अर्थात् चट से मूर्च्छना सुर होके मध्यमतक् यही तरङ्गित रेखा जायेगी। जैसा— ग म प ध, गान्धारसे सुरु होकर धैवततक् जायेगी। जिस् सुरसे मूर्च्छना सुरु होगी, उसी सुरके

नीचे गानेका कोई अक्षर, और दुसरे सुरके नीचे एक एक शून्यकार रहेगा। जयासा— चट ग म ।

सेरेफ सुर साधनके समय जिस् सुरसे मूर्च्छना सुरु होगी, उसी सुरको आलग् करके और सब सुर उसी सुरके टानसे बाहार करना चाहिए। संस्कृत शास्त्रमे तिन सप्तकका एकिश् (२१) सुरोंको एकिश् मूर्च्छना कहते हैं। एकिश् मूर्च्छनाके नाम यही है। १ ललिता, २ मध्यमा, ३ चित्रा, ४ रोहिणी, ५ मतङ्गजा, ६ सौविरी, ७ षड्जमध्या, ८ पञ्चमा, ९ मत्सरी, १० षड्जमध्या, ११ शुद्धा, १२ अन्ता, १३ पलावती, १४ तीव्रा, १५ रौद्री, १६ ब्राह्मी, १७ वैष्णवी, १८ खोदरी, १९ सुरा, २० नादावती, २१ विसाना।

विक्षेप।

एक सुरसे दुसरे सुरतक आरोही गतिमे जलद मूर्च्छना होनेसे उसको विक्षेप कहते हैं। परन्तु यन्त्रोंका हिसाव जुदा है। विक्षेपका निशान यही (>), यही निशान सुरके उपर रहेगा। जयासा— सा ग म ध चट नि वगैरह। परन्तु सुरके नीचे मूर्च्छनाका निशान नहि रहेगा।

प्रक्षेप।

एक सुरसे दुसरे सुरतक अवरोही गतिमे जलद मूर्च्छना होनेसे उसको प्रक्षेप कहते हैं। इसका निशान इए है (<), यही निशान सुरोंके उपर रक्खा है। जयासा—

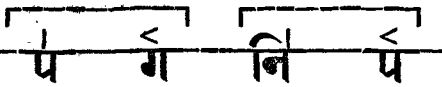

। इसी प्रक्षेप और विक्षेपका साधन, सहज है। उसीसे मूर्च्छना साधनका पिछाड़ि यही केतावमे यही सब साधन दि जायेगो।

ताल।

सब माचा बराबर लयसे छन्दके हिसाबमे जब आवेङ्गी, तब उस्को ताल कहेङ्गी। तालमे दो प्रधान स्थान है, आघात और विराम। आघातका निशान (१), और विरामका निशान (०) हुए है। ताल जांहासे सुरु होता है, उसीका नाम सम। समका निशान हुए है (+), परन्तु चलन्मे सब स्थानसे ताल सुरु हो सक्ता।

ठुंरि, ४ माचाका ताल।

```
+       ०
|   |   |   |
धेधा किटि, धेधा किटि।
```

काओयाली, या जलद तेताला अथवा द्रुतचिताली,

४ माचाका ताल।

```
+       १       ०       १
|       |       |       |
धाधिन्धा, धाधिन्धा, तितिन्ना, नाधिन्धा।
```

मध्यमान, ८ माचाका ताल।

```
+           १       ०       १       |
|   |   |   |   |   |   |   |   |
धिद्धा धिधि, धिद्धा धिधि, धित्ता तिति, तिद्धा धिधि।
```

एकताला, ६ माचाका ताल।

```
+           १       १       |
|   |   |   |   |   |
धिनि धाग थुना, तेटे धाग् थुना।
```

पटताल, ४ माचाका ताल।

+ ०
धा, धि त्रा।

सुरफाक्ता, ५ माचाका ताल।

+ ० ১ ১ ०
धाधिन् नाग्दित् धिनिनाक् गद्दी घिनिनाक्।

चौताल, ६ माचाका ताल।

+ ० ১ ० ১ ১
धागे दिन्ता कत्तागि दिन्ता तेटिकता गदिघिनि।

तेओरा, ३॥० (साढ़े तिन) माचाका ताल।

+ ১ ১
धाग् तेटे तेँटे धाग्तेटे गदिघिनि।

झांपताल, ७ माचाका ताल।

+ ১ ० ১
धा दिँत् धा धित्रा, खिटि ताक् धा धित्रा।

झांपताल, मतान्तरे १० माचाका ताल।

+ ১ ০ ১
धागे धागे दिन् ताके धागे दिन्।

स्थचिताली या ढिमा तेताला, ८ दीर्घ या षोले ह्रस्व माचाका ताल।

+ ১ ০ ১
धा धि त्रा चेके धा धि त्रा थुन् थुन् ना तेटि खेता गेदा
धिनि।

आड़ा, ९ माचाका ताल, उस्को ठेकाका बीचमे चार दीर्घ और चार अणुमाचा है।

+ । × । × ० । × । ×
धाधि ता धि धि ता ति ति ता धि धि धा।

तेओट, ७ माचाका ताल, इस्को ठेकामे दो साड़ै और दो दीर्घ माचा देता है।

+ । । । । । । ।
धि ड्डा धा धिधि धाधा ति त्ताता धि धि धाधा।

राग।

जो ध्वनिविशेष स्वरवर्णविभूषित होकर बराबर लयमे गमक, मूर्च्छनादि जोगसे वादी, विवादी, सम्वादी और अनुवादीके हिसावसे कण्ठ अथवा यन्त्रमे पयदा होता, उस्को राग कहते है। राग और रागिणी इन् दोनोको आक्सर राग कहते है। रागका जात तिन है, उसीका वर्णन किया जाता है। जथासा औडव, खाड़व और सम्पूर्ण।

जो राग पांच सुरसे पयदा होता है, उस्का नाम औडव। जथासा—

सारङ्ग सा ऋ ट म प नि।

हिण्डोल सा ग म ध नि।

किसि मतमे हिण्डोलको छय रागका विछमे गन्ति है।

जो राग छय सुरसे पयदा होता है, उस्का नाम खाड़व।

उदाहरण जथासा—

विभास सा ऋ ट ग प ध नि।

भूपाली सा ऋ ग प ध नि ।

विभास और भूपाली इन् दोनोमे मध्यम वर्ज्जित है, परन्तु यही दोनो रागका उत्थापन, वादी, सम्वादी और अनुवादी भेदसे इन् दोनो रागका भूरत् भेद हो जाता है। और इसी तरहसे बहुत् रागोंका स्वरूप भेद हो सका।

मेघ सा ऋ ग म प नि ।

मेघ रागमे धैवत वर्ज्जित है।

जो राग सात सुरमे पयदा होता है, उसका नाम सम्पूर्ण। जयासा—

खाम्बाज सा ऋ ग म प ध नि̇ ।

भैरवी सा ऋ̇ ग म̇ प ध̇ नि̇ ।

नट्नारायण सा ऋ ग म प ध नि ।

संस्कृत शास्त्रमे श्री, भैरव, पञ्चम, वसन्त, मेघ और नट्नारायण, इन्की छय रागोंको प्रधान कहते है। इन्को छय रागोकी प्रतिरागकी छय छय भार्य्या है, जिन्को ३६ रागिणी कल्पना की गये है। जयासा श्रीरागकी भार्य्या—मालश्री, विवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पाहाड़ी। भैरवरागकी भार्य्या—भैरवी, वाङ्गाली, सैन्धवी, रामकिरी, गुज्जरी और गुणकिरी। पञ्चमकी भार्य्या—विभासा, भूपाली, कर्णाटी, पटहंसिका, मालवी और पठमञ्जरी। वसन्तरागकी भार्य्या—देशी, दैवगिरी, वैराटी, टोड़िका

ललिता और हिण्डोली। मेघरागकी भार्य्या—मल्लारी, सौरटी, सायेरी, कौशिकी, गान्धारी और हरशृङ्गार। नट्-नारायणकी भार्य्या—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारङ्गी और हाम्बिरी। इसी सब रागिणीओंके प्रचलित नाम नीचे लिखि जाते हैं। मालसी, त्रिवन्, केदारा, मधुमात, गौरी, पाहाड़ी; वाङ्गाली, सिन्धु, रामकेली, गुण-केली, गुर्জ্জरी, भैरवी; विभास, भूपाली, कर्णाटी, वडंहस, मालव या मारोया, पठमञ्जरी; देओगिरि, देशी, वाराड़ी, टोड़ी, ललित, हिण्डोल; मल्लार, सुरट, सायेरी, कौशिक, गान्धार, हरशृङ्गार; कामोद, कल्याण, आभीरी, नाटिका, सारङ्ग और हाम्बिर। इन्हीं छय राग और छत्रिश रागिणीके सेवाय पण्डित लोगने बहुत् तरहेके राग रागिणीको सृष्टि किया हैं।

पण्डितोंने राग रागिणीओंके गानेकेवास्ते ऐसा हिसाव रक्खा हैं। जयासा भैरव राग प्रातःकालमे, सारङ्ग राग मध्याह्नकालमे, सुल्तान राग अपराह्नकालमे, श्रीराग सायंकालमे, केदारी रागिणी पहरभर रातमे ऐसेही गानेका समयनिर्णय किया हैं। परन्तु इस् ग्रन्थमे लुम, भूपाली, खाम्बाज, भीमपलश्री, हुमन्-वेलावली, विभास, सिन्धु, परज, योगिआ, मेघ, देओ-झिंझिट, वेहाग, हुमन्-कल्याण, प्रदी-पिका, हिण्डोल, ललित, देश, सुरट, सोहिनी, शङ्करा, गुर्জ্জरी-टोड़ी, देओसाग, वृन्दावनी-सारङ्ग, वड़हंस-सारङ्ग, भैरवी, भैरव, और हामिर, यहो कएक रागोका गाना लिखा गये हैं। इन्हीनेसे हुमन्-वेलाओल, विभास, ललित, सोहिनी,

परज, योगिआ, सिन्धु, भीमपलश्री, वगैरह दिनमे गाते हैं। भूपाली, दूमन्-कल्याण, वेहाग, शङ्करा, प्रदीपिका और हिण्डोल, वगैरह राग रातमे गाते हैं। और मेघ, देश, सुरट, वगैरह वर्षाकालमे गानेका दस्तुर है। लुम, खाम्बाज, देओ-झिझिट, वगैरह गानेका समय नहि। यही सब टप्पेका राग है।

वादीविवादीलक्षण।

जिस् रागमे जो सुर सब सुरसे ज्यादा लागता है, उसी सुरको उसी रागका वादी सुर कहते हैं। कोइ कोइ ग्रन्थकार उसी वादी सुरको राजा या अंश कहते हैं। उसी वादी सुरमे रागोंकी मूरत् (चेहारा) मालुम होति है। जो सुर वादीसुरसे कम और और सुरसे ज्यादा रागमे लागते है, उसी सुरको मन्त्री (उजीर) दूयाने सम्वादी कहते हैं। जो सुर वादी और सम्वादी सुरसे जिस् रागमे कम लागता है, उसी सुरका नाम अनुवादी, दूयाने भृत्य (नफर)। जिस् रागमे जो सुर वेलकुल लागता नहि, जिस सुर लागनेसे रागका चेहारा (मूरत्) भ्रष्ट होता है, उस्को विवादी, या शत्रु (दुसमन) कहते है। जिस् सुरसे कोइ गान दूया, कोइ राग सुरु होता, उसका नाम ग्रहस्वर कहते है। जिस् सुरमे कोइ रागका खतम् होता, उसी सुरका नाम, न्यासस्वर।

गीत।

वर्ण और धातु माचाके जोगसे जब कण्ठसे उच्चारण होता है, तब उस्को गीत कहा जाता है। जग्रासा श्लोकमे चार चरण रहते है, ऐसाही गीतमेभी चार चरण दूयाने तुक् होते है। प्रथम चरणका नाम आस्थायी। आस्थायीमे जिस् रागका गाना गाने होगा, उसी रागका चेहारा खाड़ा हो जाता। दुस्रे चरणका नाम अन्तरा, तिस्रे चरणका नाम सञ्चारी, चौथे चरणका नाम आभोग कहा जाता है। बज़त् गानामे सेरेफ आस्थायी और अन्तरा रहे। उस्मे सञ्चारी और आभोग वेलकुल रहते नहि। गीत बज़त् तरहकें, जग्रासा आलाप, ध्रुपद, प्रवन्ध वगैरह।

आलाप।

कण्ठसे खालि राग गानेका नाम आलाप।

इसी केतावमे सारगम, तेलेना, खेयाल, ध्रुपद, विष्णुपद, टप्पा, वगैरह कएक किसिमका गाना लिखा गेया।

सारगम।

सात सुरोंके नाम, वाजानेके वोल और तेने, नेने, नेते, तेरे, वगैरह आलापके वोलसे जो गान तैयार होता है, उस्का नाम सारगम।*

* चलित गानामे इसमे प्राय दोनो पाद रहता है।

तेलेना।

नेते, तेरे, आलापके बोल और किसी तरहका वर्णन और बाजानेके बोल यही कएक चीजोमे तेलेना तैयार होता है। कोइ कोइ गानेवाला सारगमका बोल लागा देते है।

खेयाल।

हरएक रस, भाव और कोमल वर्णनसे खेयाल तैयार होता है। खेयालका संस्कृत नाम लहचारिका।

ध्रुपद।

कोइ देवताका स्तुतवर्णन, राजालोगोंका यशवर्णन और युद्धादिवर्णनसे भारी ताल, भारी रागोंमे गम्भीर रचनामे ध्रुपद तैयार होता है। ध्रुपद बड़े प्राचीन समयका है।

विष्णुपद।

जिस् गानेमे सेरेफ रामजीका और श्रीकृष्णजीका स्तुत-वर्णन होता है, उसका नाम विष्णुपद। इसमे रचना, करुणारसमिला होना चाहिए। विष्णुपदका चरण या तुक्का कुछ ठिकाना नहि, इस्मे इच्छाधीन बजत् तुक् रहते है। सुरदास बाबाजी नाम करके एक साधुने ऐसा नया तरहका गानाको सृष्टि कियाथा।

टप्पा।

हाल्के राग और तालमे टप्पा तैयार होता है। और इस्का भाव और रचनाभी हाल्का होना चाहिए।

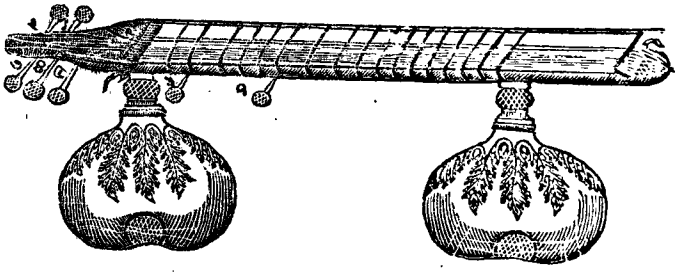

गीतावली।

अनुलोम।

सां चट ग म प ध नि सां

विलोम।

सां नि ध प म ग चट सा

अनुलोम।

सां चट ग म प ध नि सां

विलोम।

सां नि ध प म ग चट सा

अनुलोम।

सां चट ग म प ध नि सां

विलोम।

सां नि ध प म ग चट सा

अनुलोम।

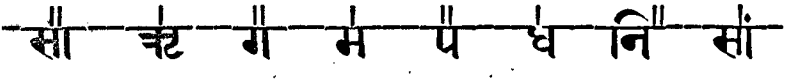

विलोम।

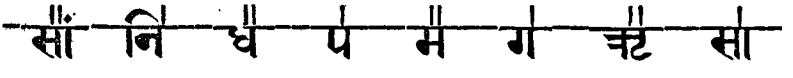

अनुलोम।

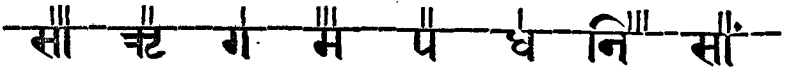

विलोम।

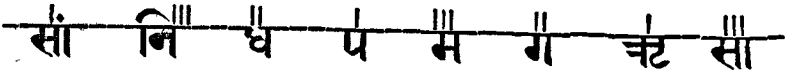

अनुलोम।

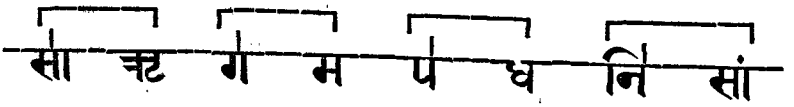

विलोम।

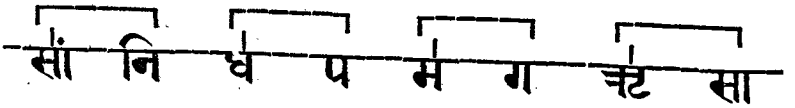

मिश्रसाधन।

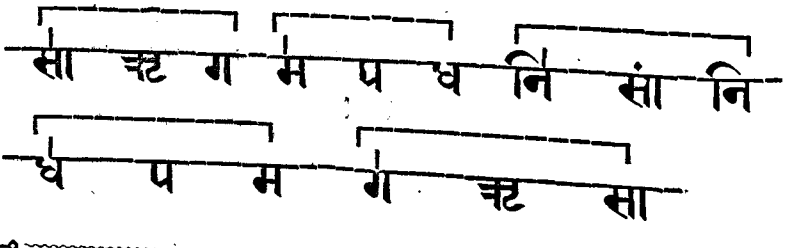

अनुलोम।

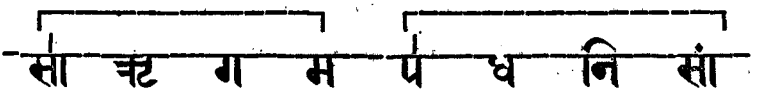

विलोम।

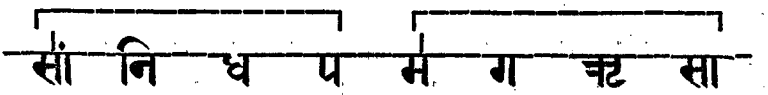

मिश्रसाधन।

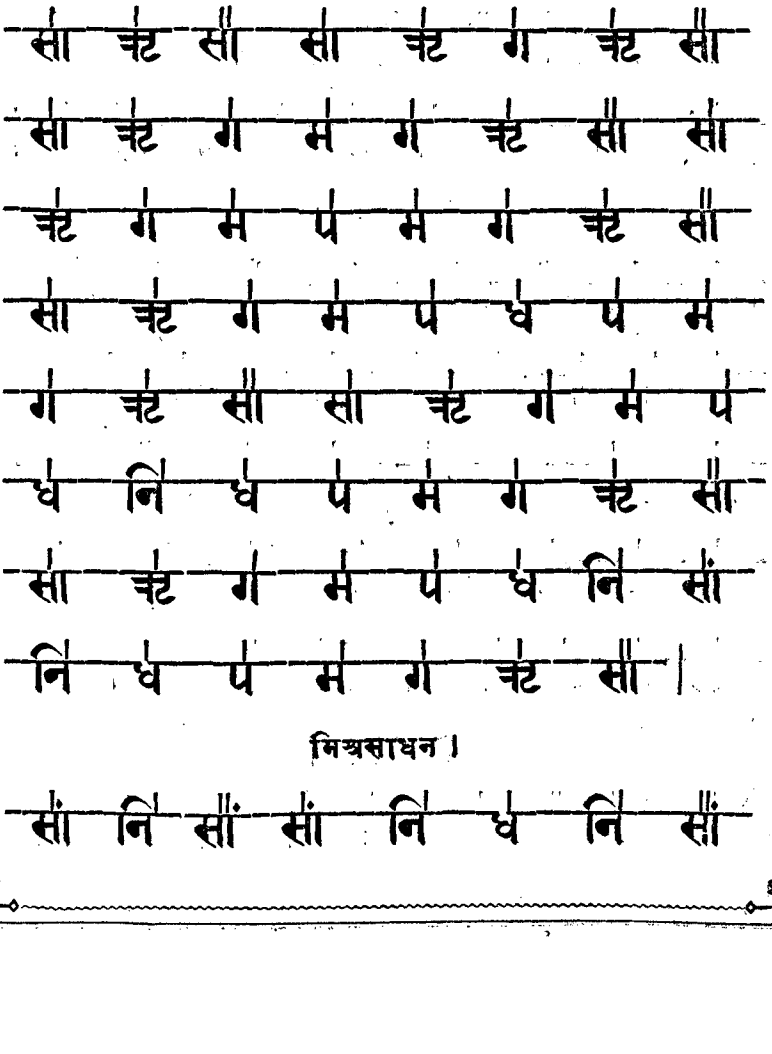

मिश्रसाधन।

सां नि ध प ध नि सां सां
नि ध प म प ध नि सां
सां नि ध प म ग म प ध नि सां
सां नि ध प म ग चट ग म
प ध नि सां सां नि ध प म ग
चट सा चट ग म प ध नि सां।

मिश्रसाधन।

सा चट सा सा चट ग सा सा
चट ग म सा सा चट ग म प सा
सा चट ग म प ध सा सा
चट ग म प ध नि सा सा
चट ग म प ध नि सां सा।

मिश्रसाधन।

सां नि सां सां नि ध सां सां नि

ध प सां सां नि ध प म सां
सां नि ध प म ग सां सां
नि ध प म ग चट सां सा नि
ध प म ग चट सा सां।

अनुलोम।

सां चट गं मं पं धं निं सां

विलोम।

सां निं धं पं मं गं चट सां

अनुलोम।

सां चट गं मं पं धं निं सां

विलोम।

सां निं धं पं मं गं चट सां

अनुलोम।

सा चट ग म प ध नि सां

विलोम।

सां नि ध प म ग चट सा

अनुलोम और विलोम।

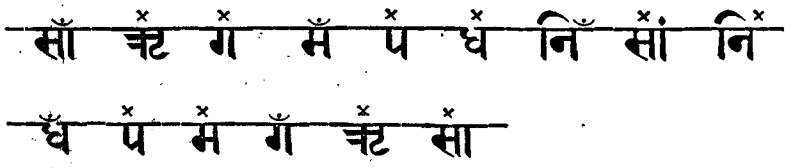

अनुलोम और विलोम।

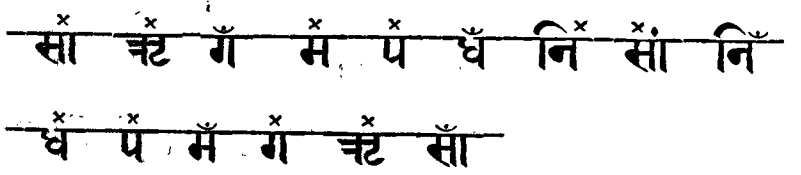

अनुलोम और विलोम।

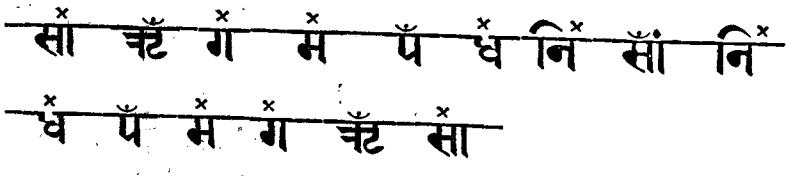

अनुलोम।

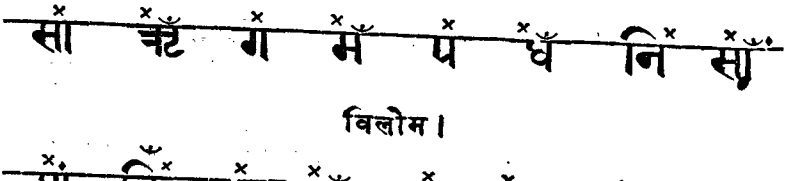

विलोम।

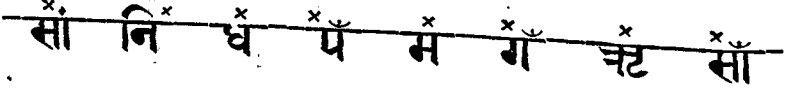

अनुलोम।

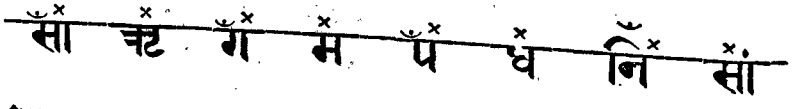

विलोम।

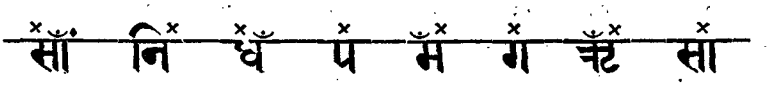

अनुलोम।

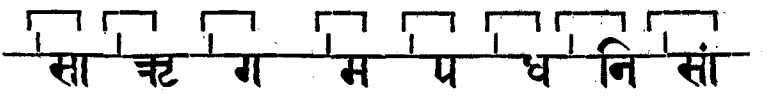

विलोम।

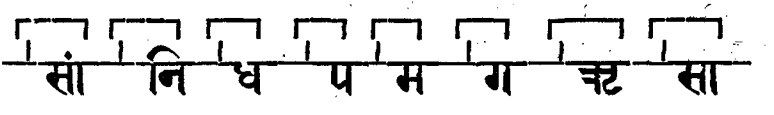

मिश्रसाधन।

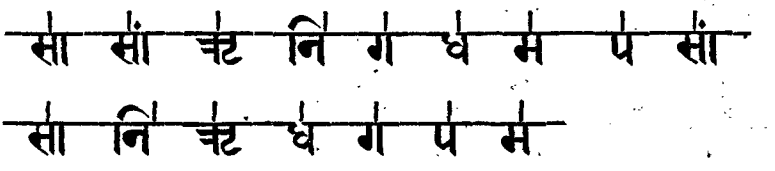

अनुलोम।

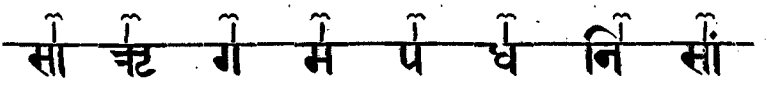

विलोम।

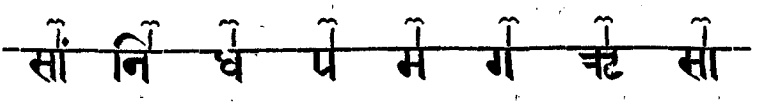

अनुलोम।

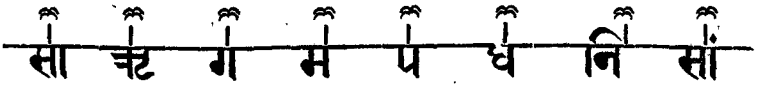

विलोम।

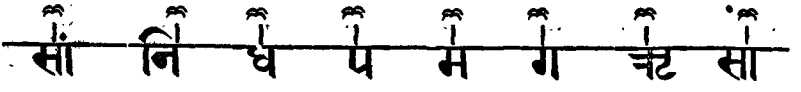

अनुलोम।

विलोम।

अनुलोम।

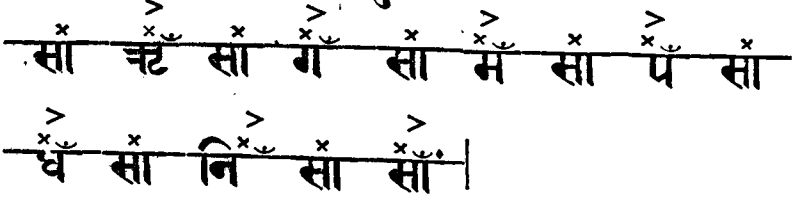

विलोम।

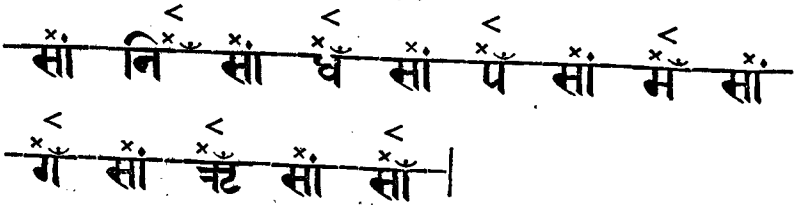

अनुलोम।

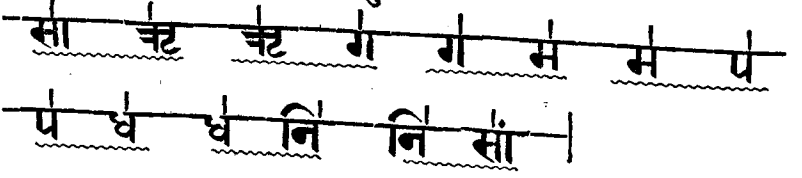

विलोम।

सां नि नि ध ध प प म

म ग ग रे रे सा

अनुलोम।

सा रे ग रे ग म ग म प

म प ध प ध नि ध नि सां

विलोम।

सां नि ध नि ध प ध प म

प म ग म ग रे ग रे सा

अनुलोम।

सा रे ग म रे ग म प

ग म प ध प ध नि सां

विलोम।

सां नि ध प नि ध प म

ध प म ग प म ग रे

म ग रे सा

अनुलोम।

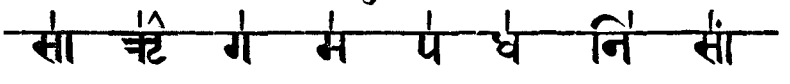

विलोम।

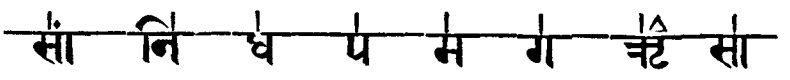

अनुलोम।

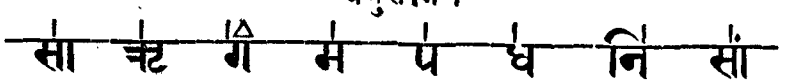

विलोम।

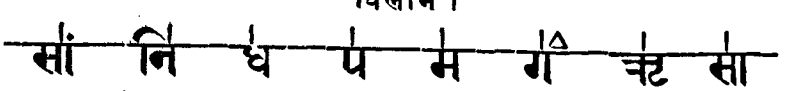

अनुलोम।

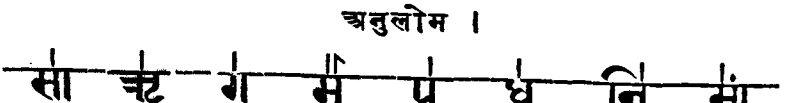

विलोम।

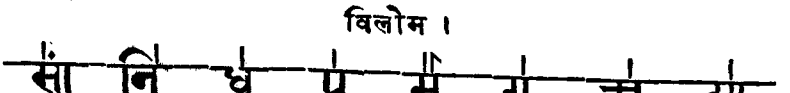

अनुलोम।

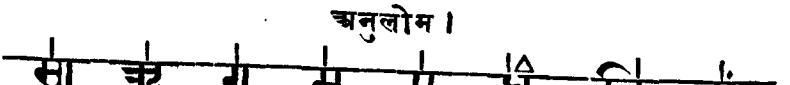

विलोम।

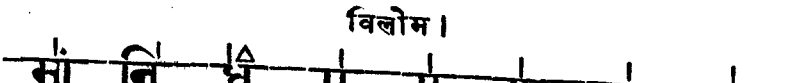

अनुलोम।

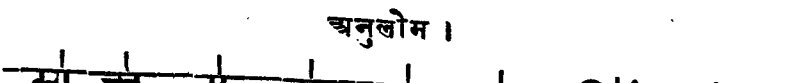

विलोम।

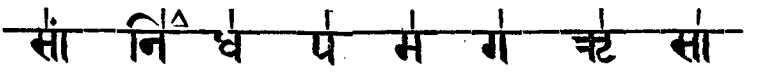

अनुलोम और विलोम।

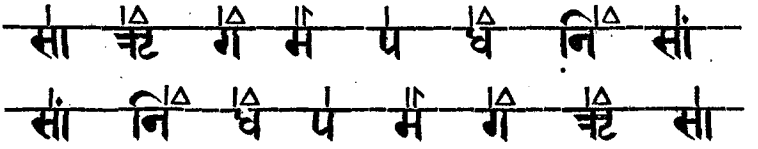

सारगम।

लुप्त सम्पूर्ण।

ताल मध्यमान।—आस्थायी।

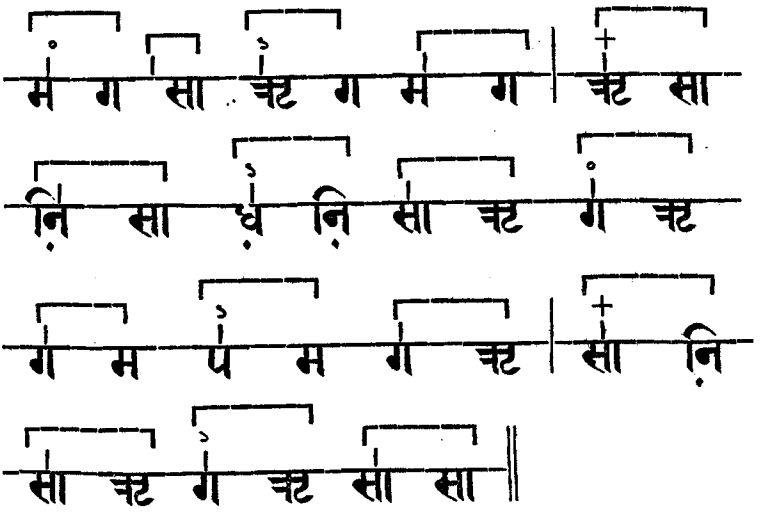

अन्तरा।

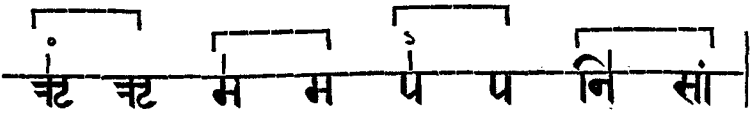

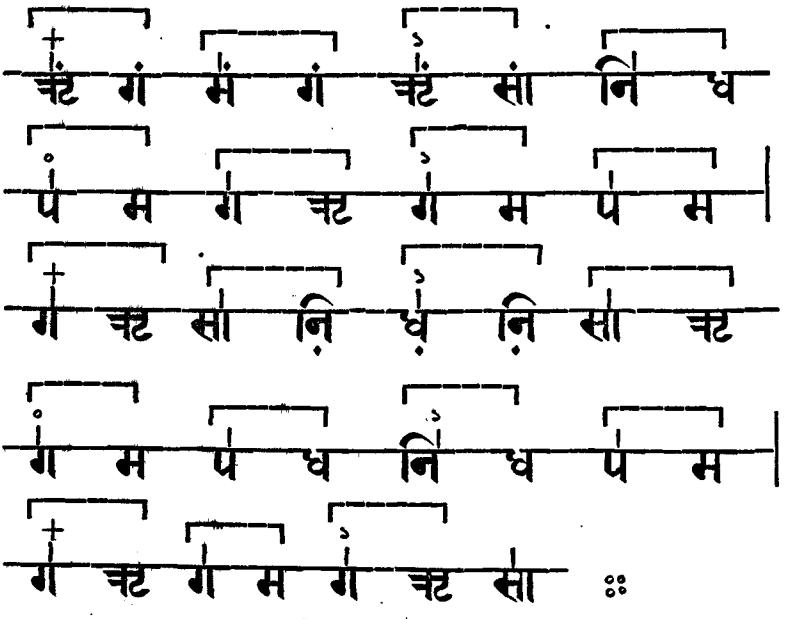

सारगम।

भूपाली—खाड़व।

ताल मध्यमान।—आस्थायी।

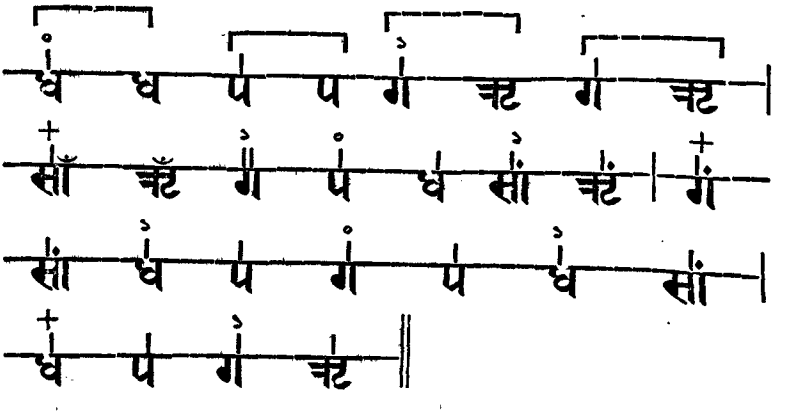

अन्तरा।

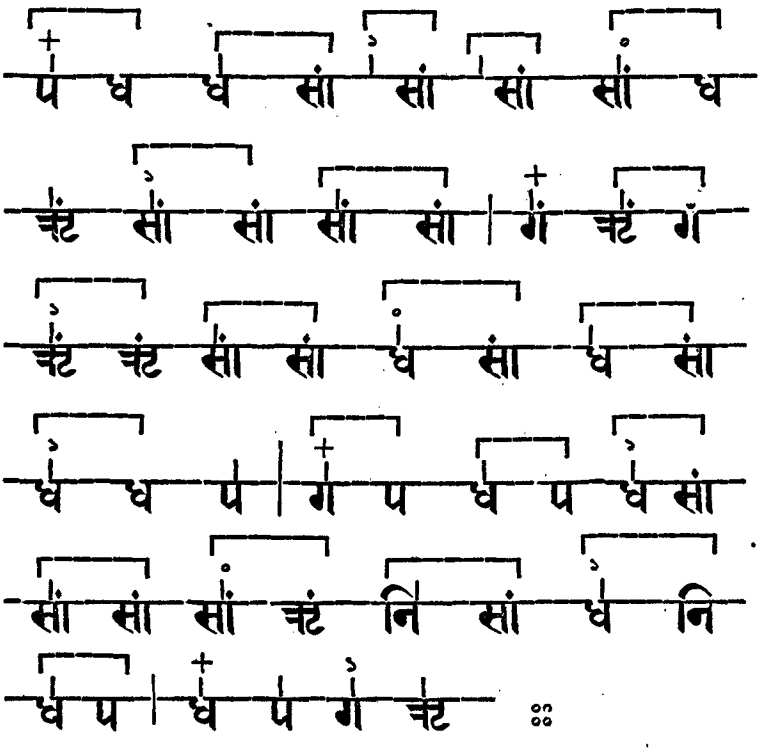

सारगम।

खाम्बाज—सम्पूर्ण।

ताल मध्यमान।—आस्थायी।

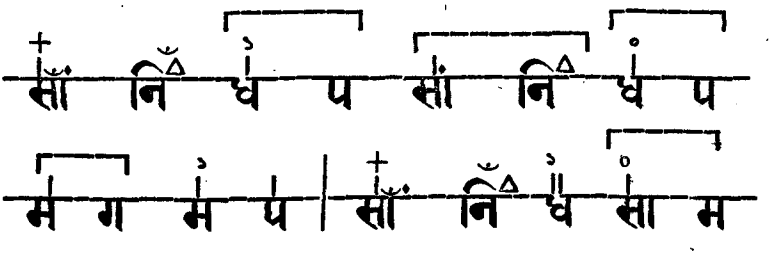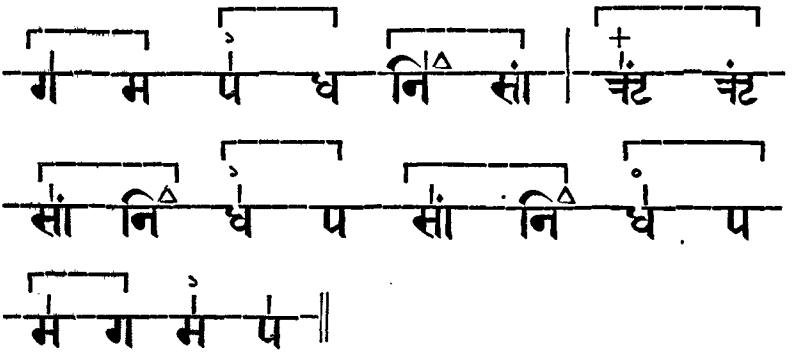

ग म प ध नि सां | चंट चंट
सां नि ध प सां नि ध प
म ग म प ‖

अन्तरा।

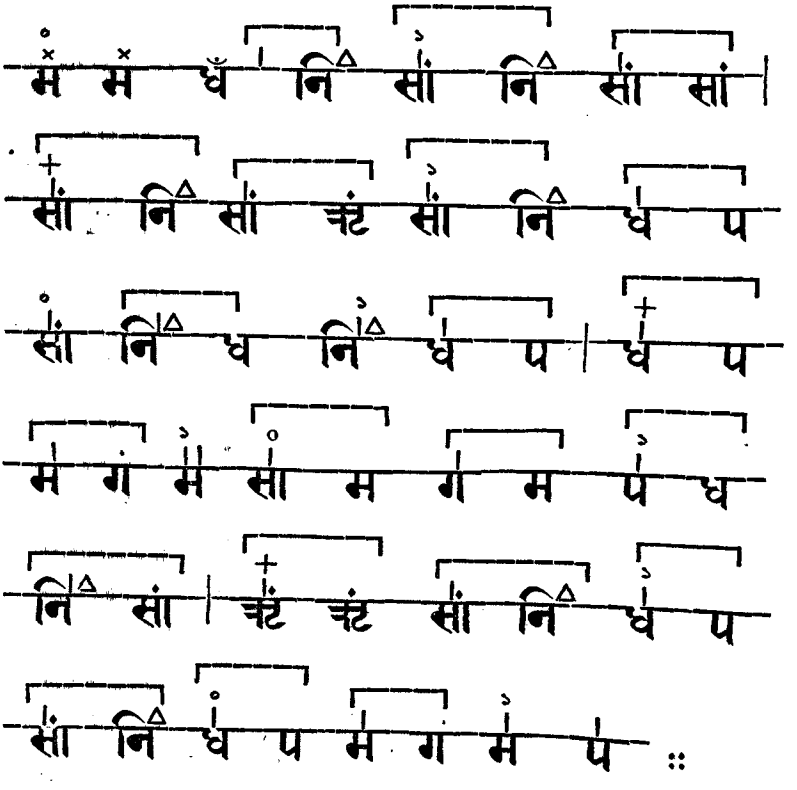
म म धँ नि सां नि सां सां |
सां नि सां चंट सां नि ध प
सां नि ध नि ध प | ध प
म ग म सा म ग म प ध
नि सां | चंट चंट सां नि ध प
सां नि ध प म ग म प ::

सारगम।

भीमपलश्री—सम्पूर्ण।

ताल मध्यमान।

(गं निं)

आस्थायी।

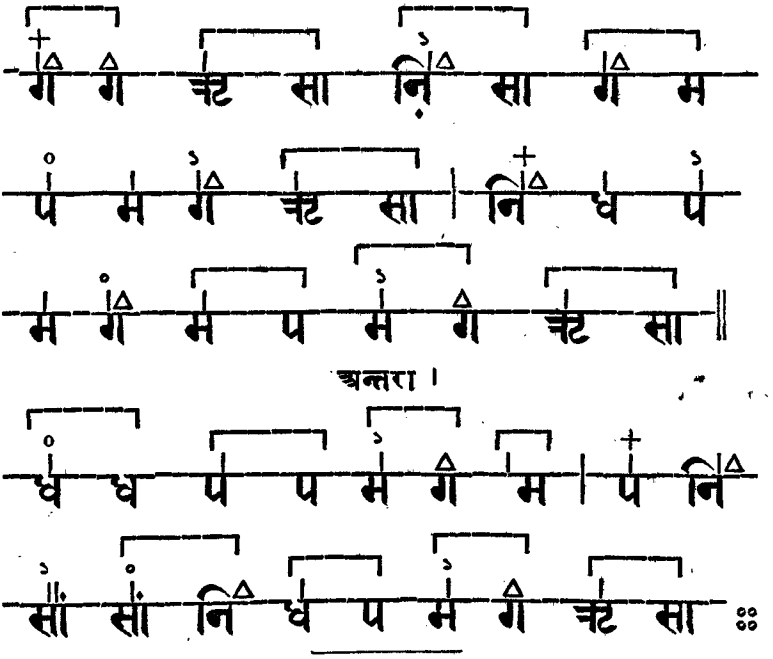

अन्तरा।

तेलेना।

लुम—सम्पूर्ण।

ताल मध्यमान।

देर् ना ता देरे दानि दिम तान्ना ता ना ना देर् देर् तोम् देर् देर् तोम् देर् ता देरे ता ना ना ना ना देर् ना देर् ना ताना ना देर् देर् तोम् देर् देर् ताना।

ना देर् देर् दानि तोम् देर् देर् ता ना ना ना ना ना ता ना देरे ने ता दिम् दिम् ता नुम् ता ना ना ता ना ना तोम् देर् देर् देर् दानि धा किटि धा धा किटि ताक् तेरे किटि धा धा किटि ताक् तेरे किटि धा धा।

आस्थायी।

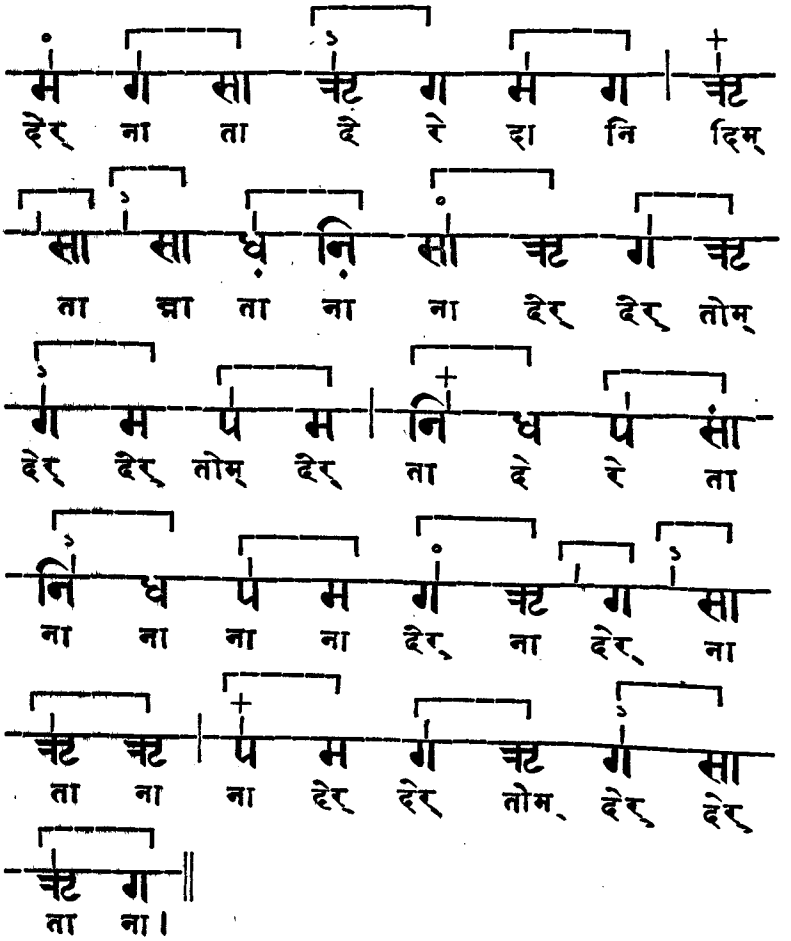
म ग सा चट ग म ग चट
देर् ना ता दे रे दा नि दिम्
सा सा ध़ नि़ सा चट ग चट
ता ना ता ना ना देर् देर् तोम्
ग म प म नि ध प सा
देर् देर् तोम् देर् ता दे रे ता
नि ध प म ग चट ग सा
ना ना ना ना देर् ना देर् ना
चट चट प म ग चट ग सा
ता ना ना देर् देर् तोम् देर् देर्
चट ग
ता ना।

अन्तरा।

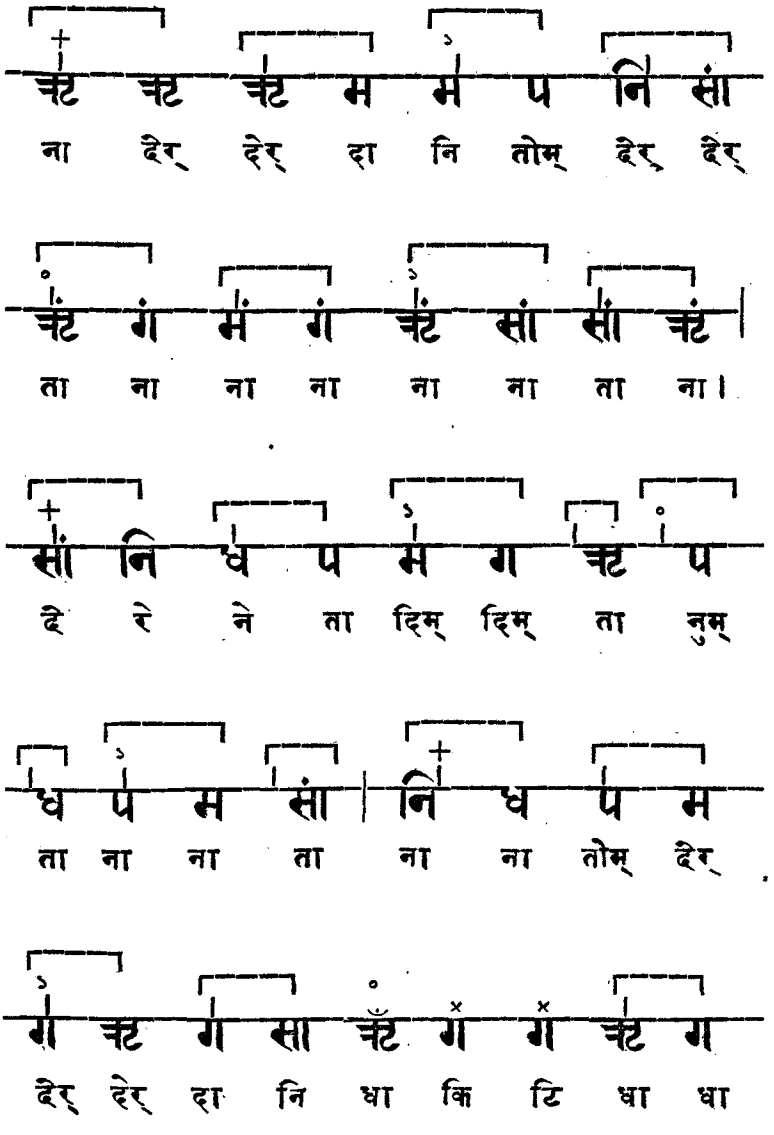
+ ०
चट चट चट म म प नि सां
ना देर् देर् दा नि तोम् देर् देर्
० ०
चं गं मं गं चं सां सां चं
ता ना ना ना ना ना ता ना।
+ ०
सां नि ध प म ग चट प
दे रे ने ता दिम् दिम् ता नुम्
० +
ध प म सां नि ध प म
ता ना ना ता ना ना तोम् देर्
० ०
ग चट ग सा चँट गं गं चट ग
देर् देर् दा नि धा कि टि धा धा

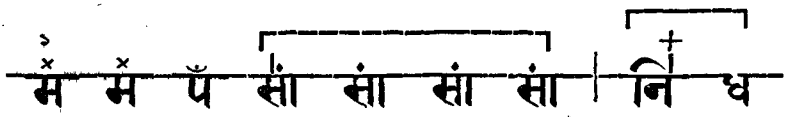

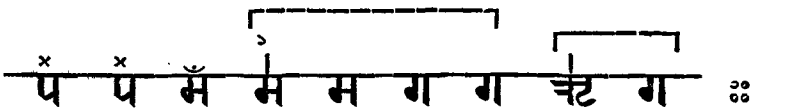

वेहाग—सम्पूर्ण।

ताल मध्यमान।

जगमे झुठें देखें प्रीत जगमे झुठें देखें प्रीत आप् नाहिं
सुख सों सब लागे क्यादारा क्यामित जगमे।
मेरो मेरो सबहिं कहतुहें हित सों बांधे चित अन्तकाल
भुनके नाहिं कउ दूया अचरज हेय्रीत।

आस्थायी।

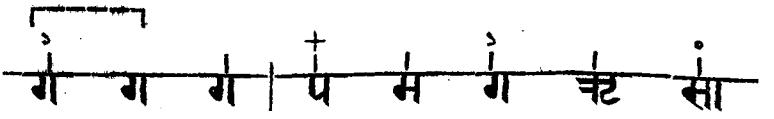

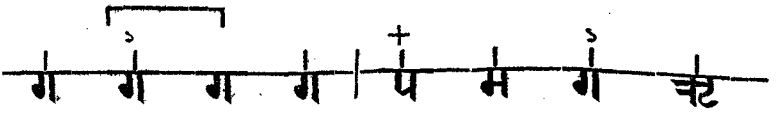

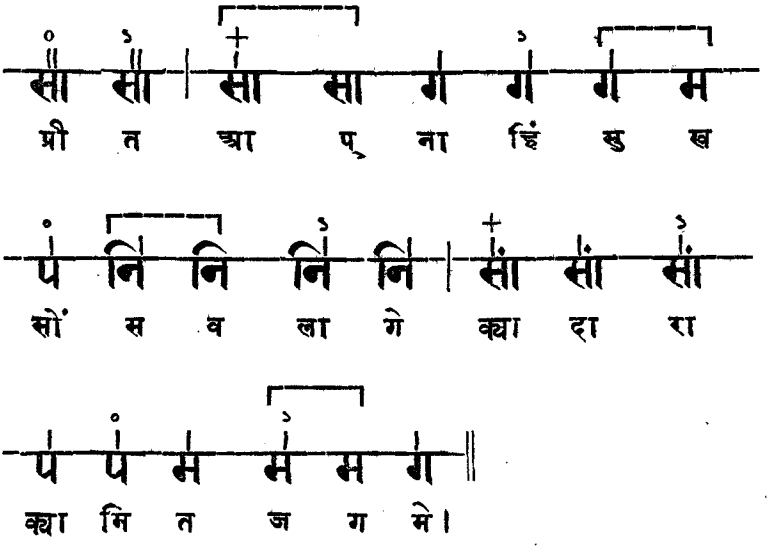
सा सा | सा सा ग ग ग म
प्री त आ प् ना हिं सु ख
प नि नि नि नि | सां सां सां
सों स व ला गे क्या दा रा
प प म म म ग ‖
क्या मि त ज ग मे।

अन्तरा।

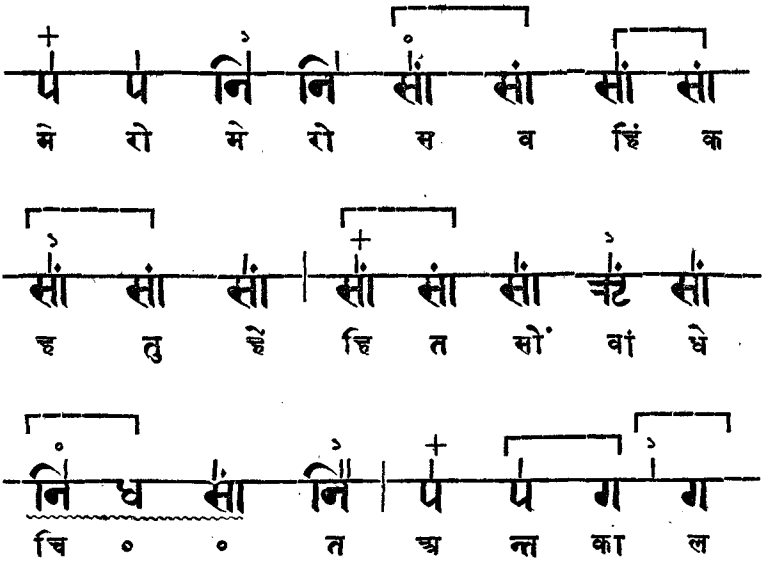
प प नि नि सां सां सां सां
मे रो मे रो स व हिं क
सां सां सां | सां सां सां सां सां
ह तु हें हि त सों वां धे
नि ध सा नि | प प ग ग
चि ० ० त अ न्त का ल
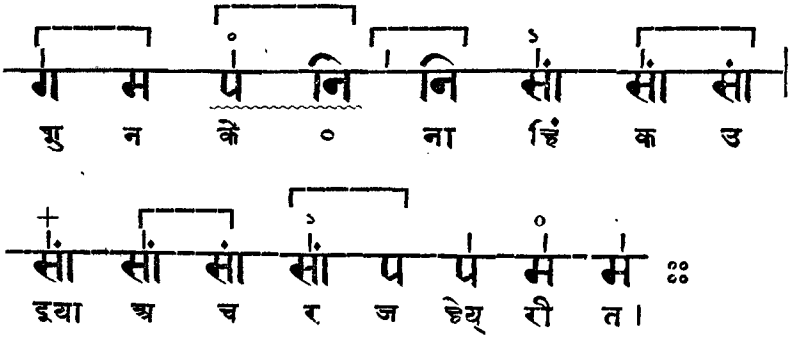
ध्रुपद।

इमन्कल्याण—सम्पूर्ण।

ताल चौताल।

(म)

सुधे मुद्रा सुधे वाणी सुधे सङ्गत सुधे तान सुधे अक्षर सुधे ग्राम सुधे सांचिले आकार।

आरोही अवरोही उलट पालट विलास कर ओड़व खाड़व सम्पूरण तिनके बेओरे सुधनि।

आस्थायी।
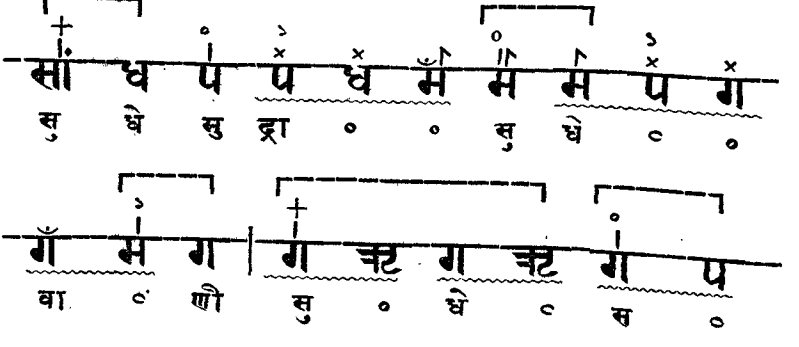
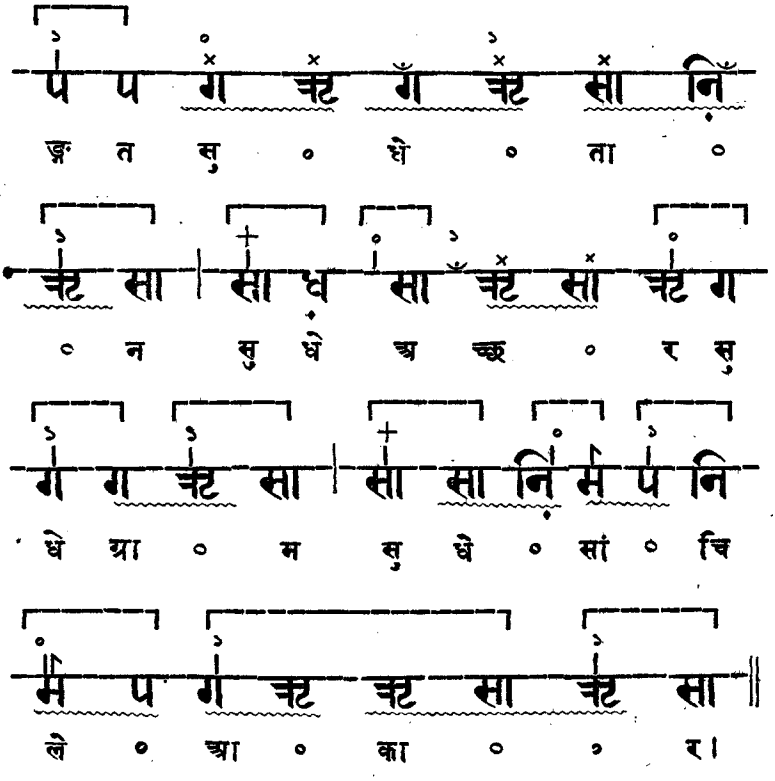
प प ग ऋट गँ ऋट सा निँ
कृ त सु ० धे ० ता ०
ऋट सा सा ध सा ऋट सां ऋट ग
० न सु धे अ च्छ ० र सु
ग ग ऋट सा सा सा नि मं प नि
धे ग्रा ० म सु धे ० सां ० चि
मं प ग ऋट ऋट सा ऋट सा
ले ० आ ० का ० ० र।

अन्तरा।

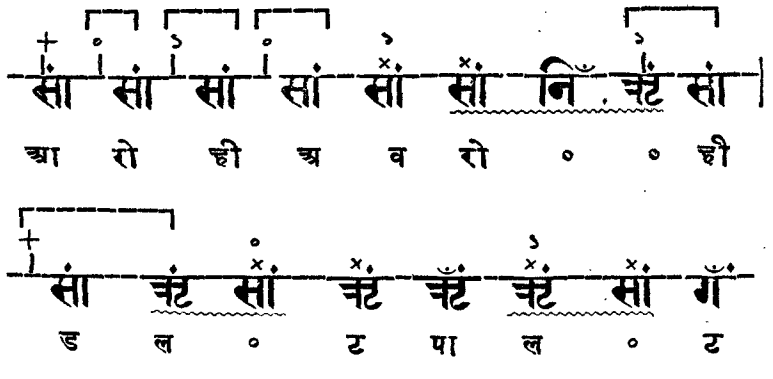
सां सां सां सां सां सां नि ऋटं सां
आ रो ही अ व रो ० ० ही
सां ऋटं सां ऋटं ऋटं ऋटं सां गँ
ड ल ० ट पा ल ० ट

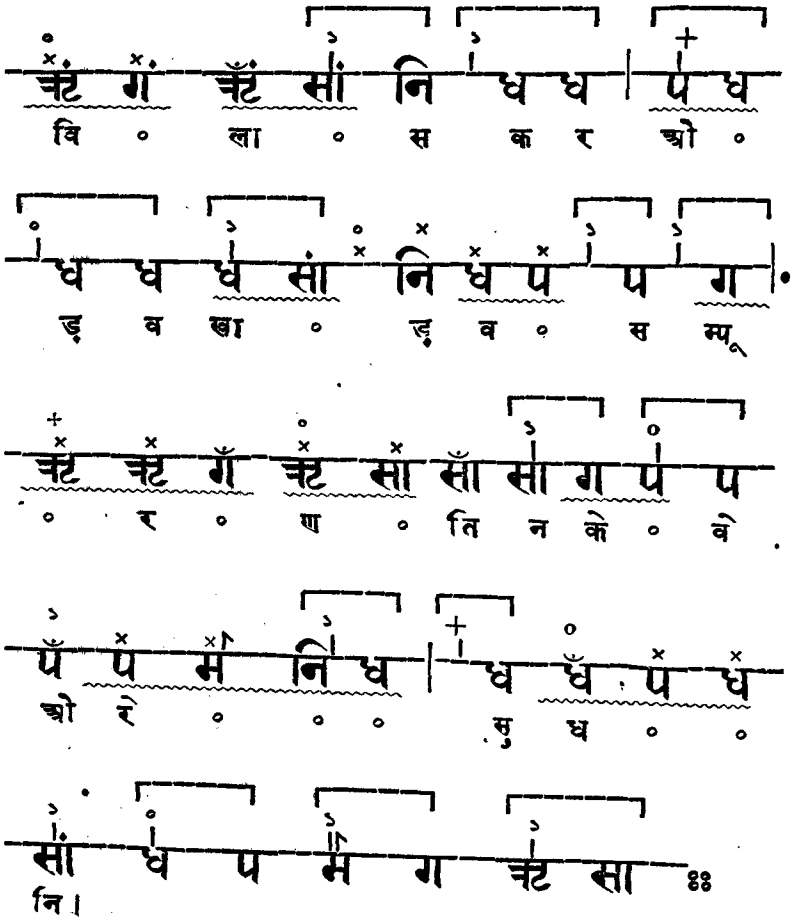
चटं गं चँटं सां नि ध ध पं ध
वि ० ला ० स क र ओ ०
ध ध ध सां नि ध प प ग
ड़ व खा ० ड़ व ० स म्
चट चट गँ चट सा सँा सा ग पं प
० र ० ण ० ति न के ० वे
पँ प म नि ध धँ पं ध
ओ रे ० ० ० मु ध ० ०
सां ध प म ग चट सा
नि।

ध्रुपद।

खाम्बाज—सम्पूर्ण।

ताल चौताल।

वंशी धुन सोमाझार बाजत श्रीवृन्दावन रङ्ग घुमड रहो
सघन गरजत बादरविमान।
रहस रहस बरखत गोपीगण दामिनी दमकत नयना
रतनारे पर भोहे सोहे धनुसमान।
चमर चार बीक नेश काञ्चनवरण विराजित तन, प्यारि
ओरे प्यारे देउ शोभित छवनकी छटा।
कुन्दन बहार देउ विहरत सुखमो देखोले जेसें बरखा
ऋतुमे निकषत ओरे छपत भाग॥

आस्थायी।

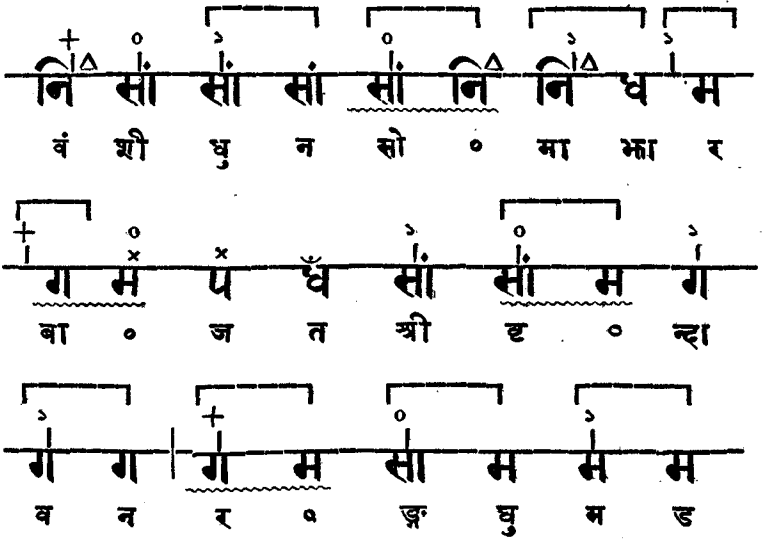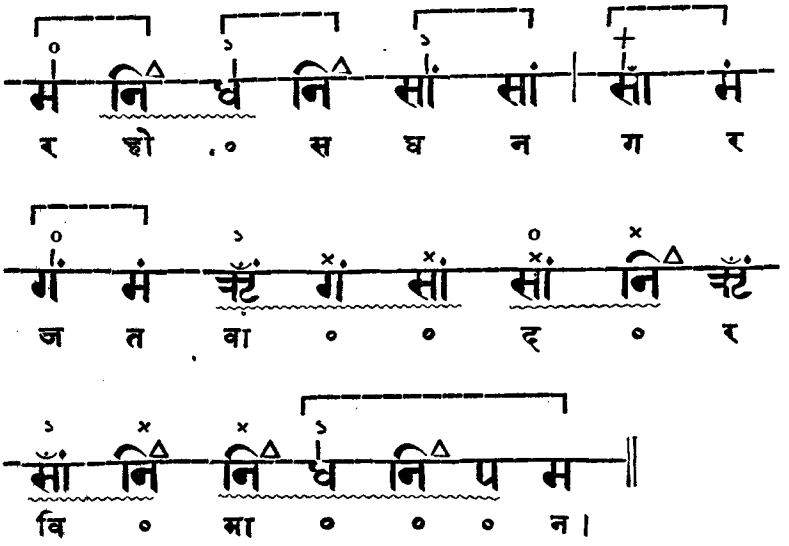

म नि ध नि सां सां सां मं
र ह्यो ० स घ न ग र
गं मं चँटं गं सां सां नि चँटं
ज त वा ० ० द ० र
सां नि नि ध नि प म
वि ० मा ० ० ० न।

अन्तरा।

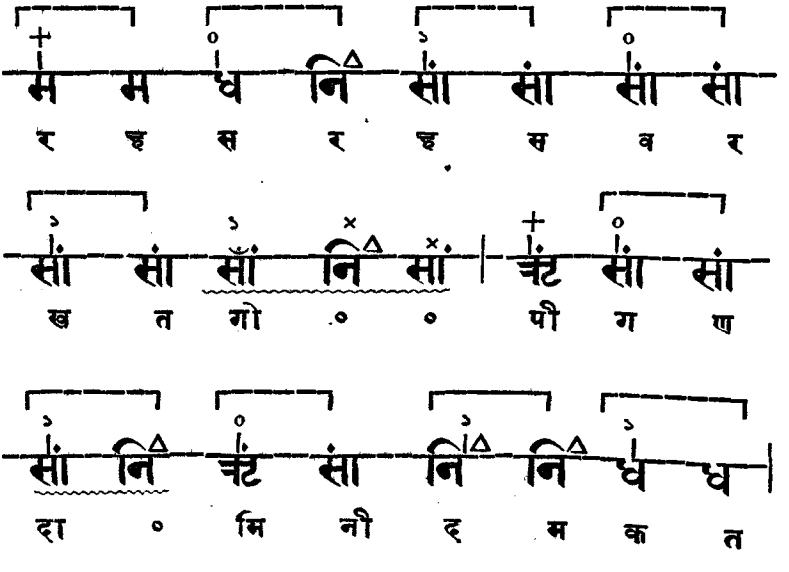
म म ध नि सां सां सां सां
र ह स र ह स व र
सां सां सँां नि सां चंट सां सां
ख त गो ० ० पी ग ण
सां नि चंट सां नि नि ध ध
दा ० मि नी द म क त

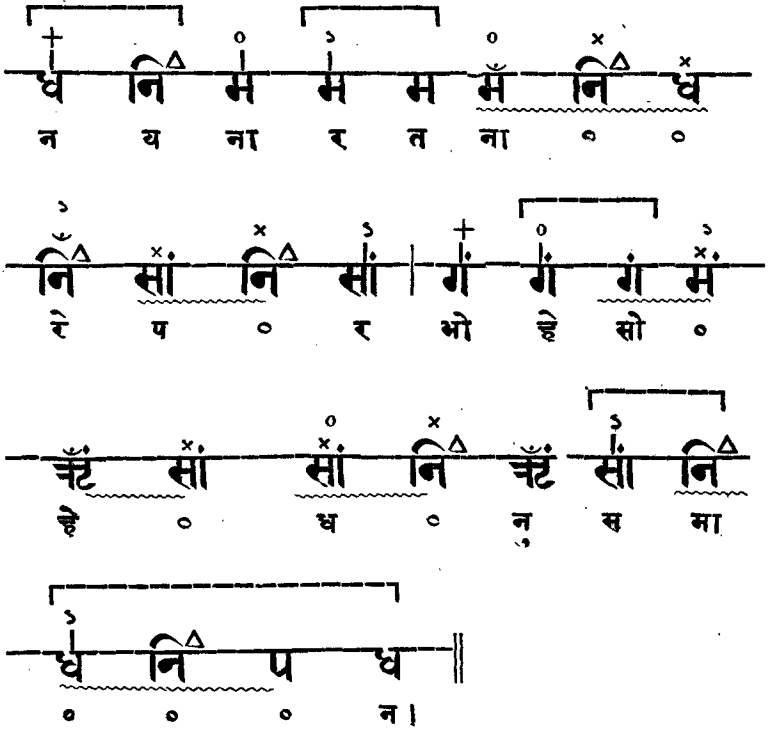
ध नि म म म मँ नि ध
न य ना र त ना ० ०
नि सां नि सां | गं गं गं मं
रे प ० र भो हे सो ०
चँटं सां सां नि चँटं सां नि
हे ० ध ० न स मा
ध नि प ध ‖
० ० ० न।

सञ्चारी।

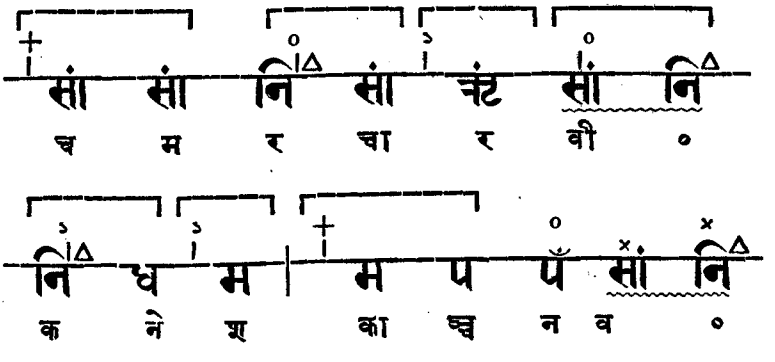
सां सां नि सां चंट सां नि
च म र चा र वी ०
नि ध म | म प पँ सां नि
क ने ग का च्च न व ०

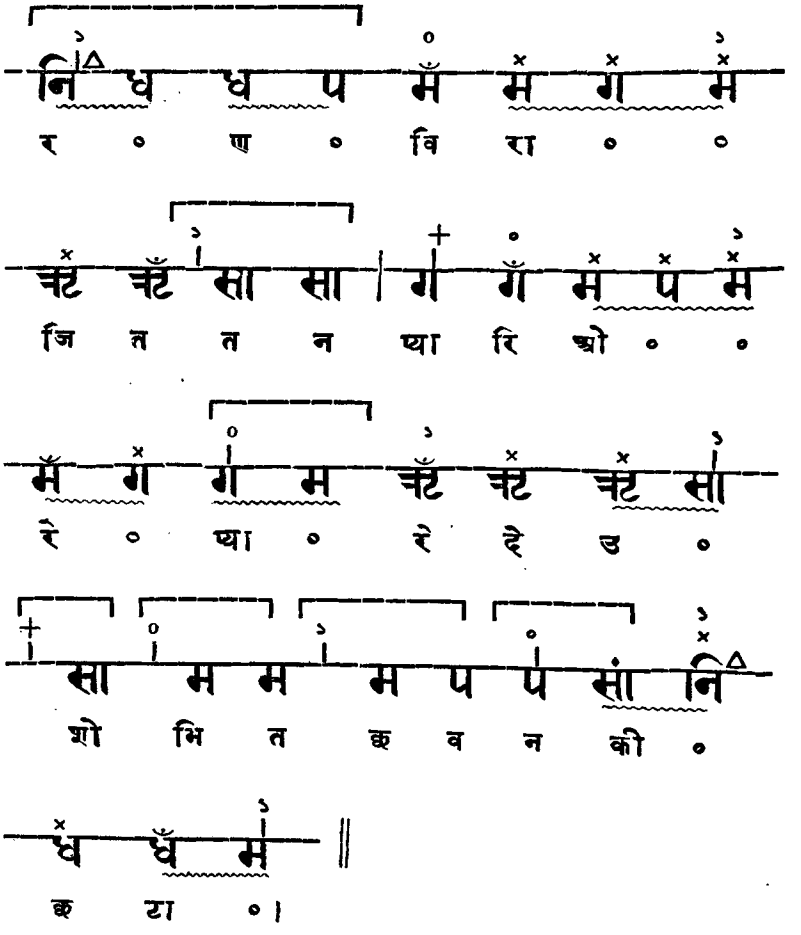
नि ध ध प मँ म ग म
र ० ण ० वि रा ० ०
चट चटँ सा सा गं गँ म प म
जि त त न या रि ओ ० ०
मँ ग गं म चटँ चट चट सां
रे ० या ० रे दे उ ०
सा म म म प पं सां नि
शो भि त क व न की ०
ध धँ म
क टा ०।

आभोग।

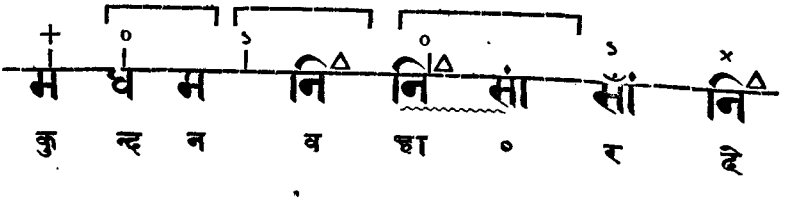
म ध म नि नि सां सां नि
कु न्द न व हा ० र दे

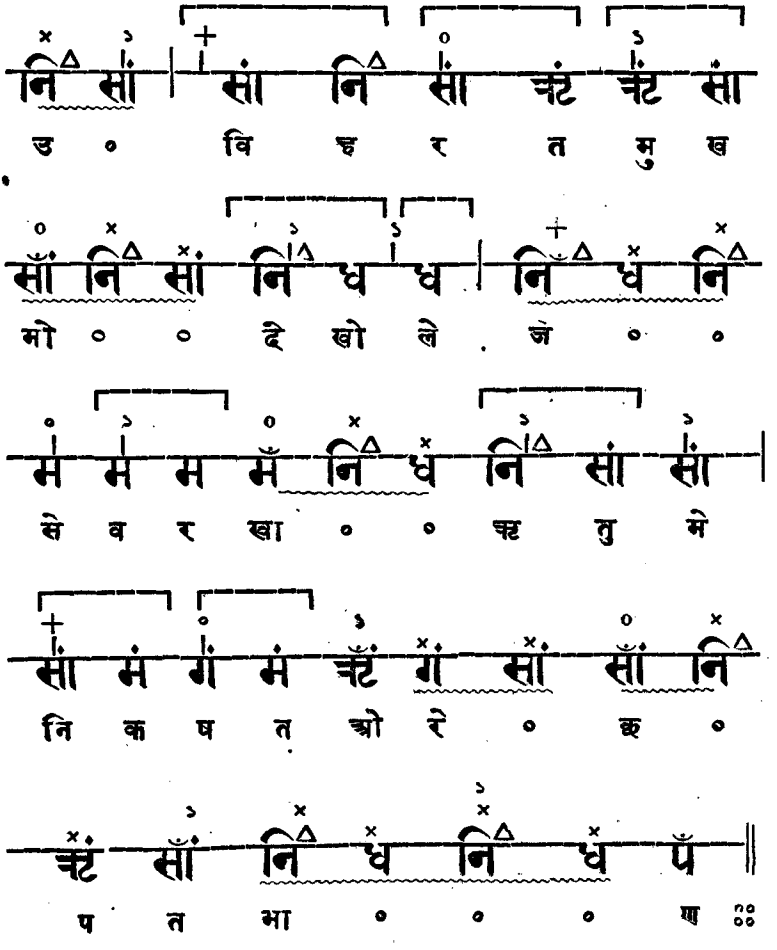
नि सां | सां नि सां रें रें सां
उ ० वि ह र त मु ख
सॉं नि सां नि ध ध | नि ध नि
मो ० ० दे खो ले जे ० ०
म म म मँ नि ध नि सां सां |
से व र खा ० ० ऋ तु मे
सां मं गं मं रें गं सां सॉं नि
नि क ष त ओ रे ० छ ०
रें सॉं नि ध नि ध पँ ||
प त भा ० ० ० ण ००

ध्रुपद।

वेहाग—खाड़व।

ताल चौताल।

राजा रामचन्द्र चढ़िहैं चिकुटपर लङ्कागढ़ डगमगात
जवहिं वम्म वाजेरि।
प्रथम श्रवण टङ्कपरे रावण घननाद मारो कुम्भकरण
रण विदार देव गगन गाजेरि।
दशो दिश सोरभे ए सुतल बितल तलातल रसातल
पातातल जेते किओं काज।
चढ़ि विमान सैन्य साजे कोट कोट मान लभे वाहनि
विलास आश अवध भूप राजेरि॥

आस्थायी।

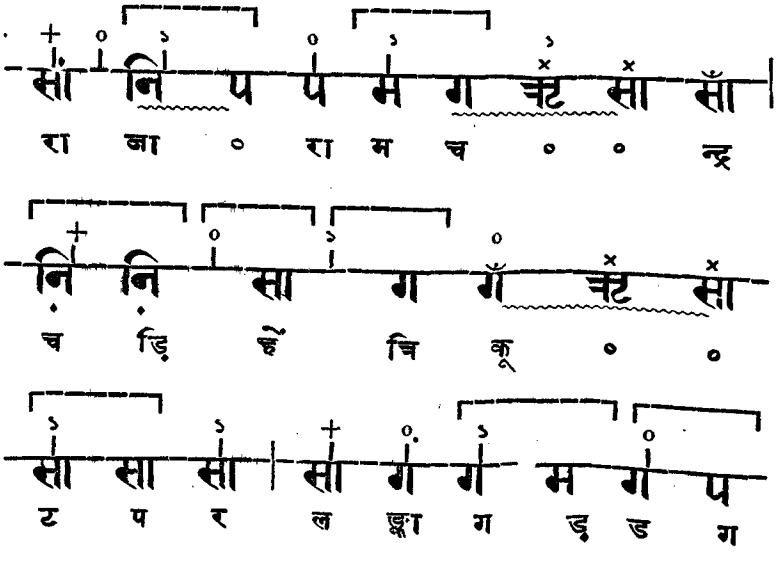

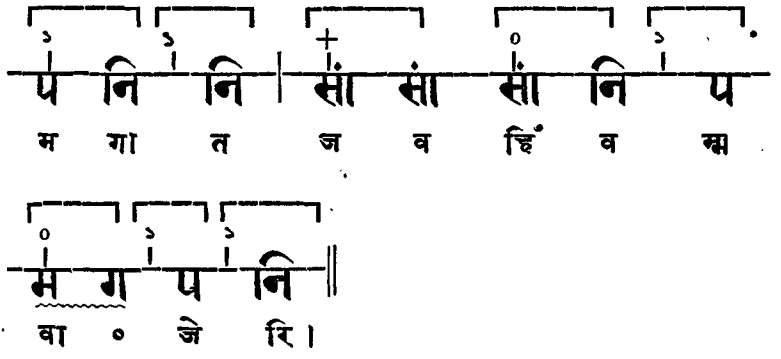
प नि नि सां सां सां नि प
म गा त ज व हिं व म्ह
म ग प नि
वा ० जे रि।

अन्तरा।

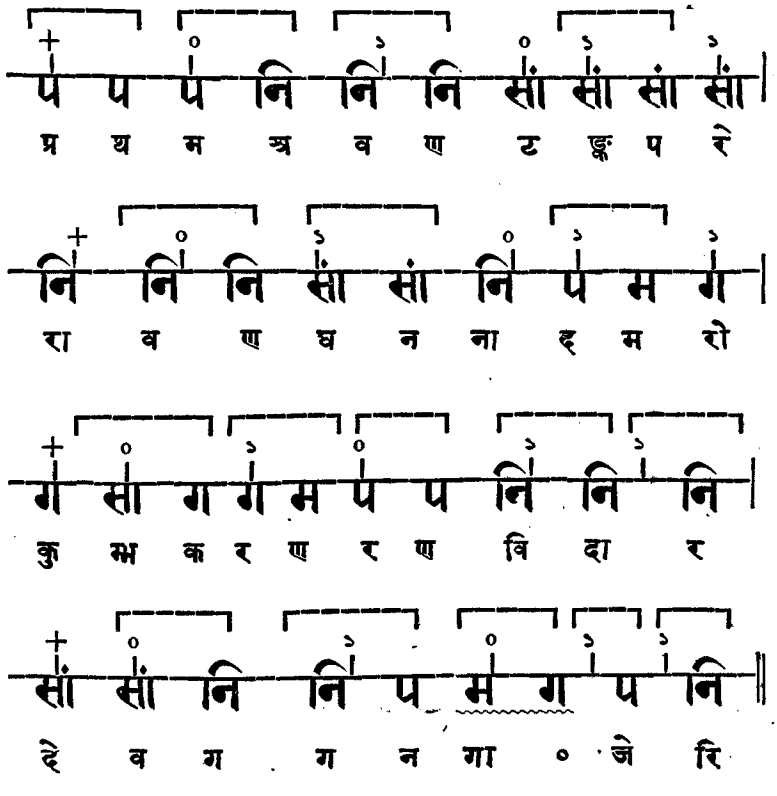
प प प नि नि नि सां सां सां सां
प्र थ म अ व ण ट ङ्क प रे
नि नि नि सां सां नि प म ग
रा व ण घ न ना द म रो
ग सां ग ग म प प नि नि नि
कु भ क र ण र ण वि दा र
सां सां नि नि प म ग प नि
दे व ग ग न गा ० जे रि

सञ्चारी।

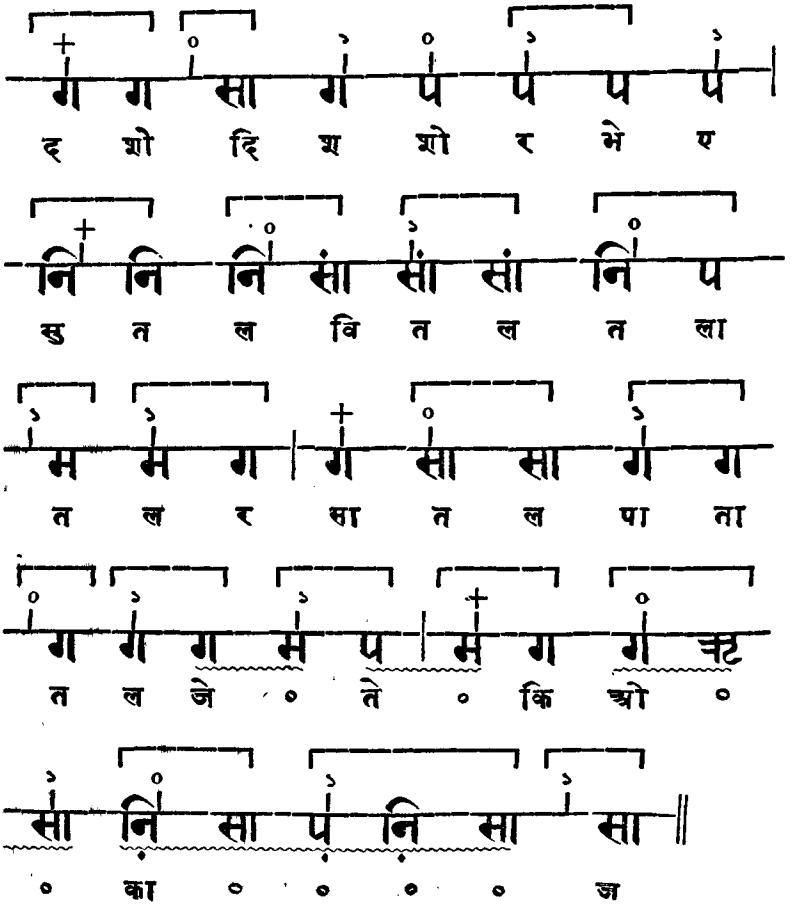
ग ग सा गं पं पं प पं
द शो दि श शो र भे ए
नि नि नि सां सां सां नि प
सु त ल वि त ल त ला
म म ग ग सा सा गं गं
त ल र सा त ल पा ता
ग गं गं मं प मं ग गं ऋट
त ल जे ० ते ० कि ओ ०
सां नि़ सा पं नि़ सा सा
० का ० ० ० ० ज

आभोग।

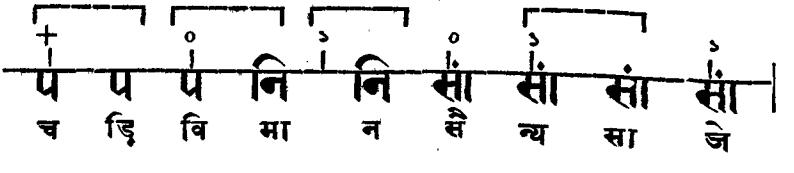
प प पं नि नि सां सां सां सां
च ड़ि वि मा न सै न्य सा जे

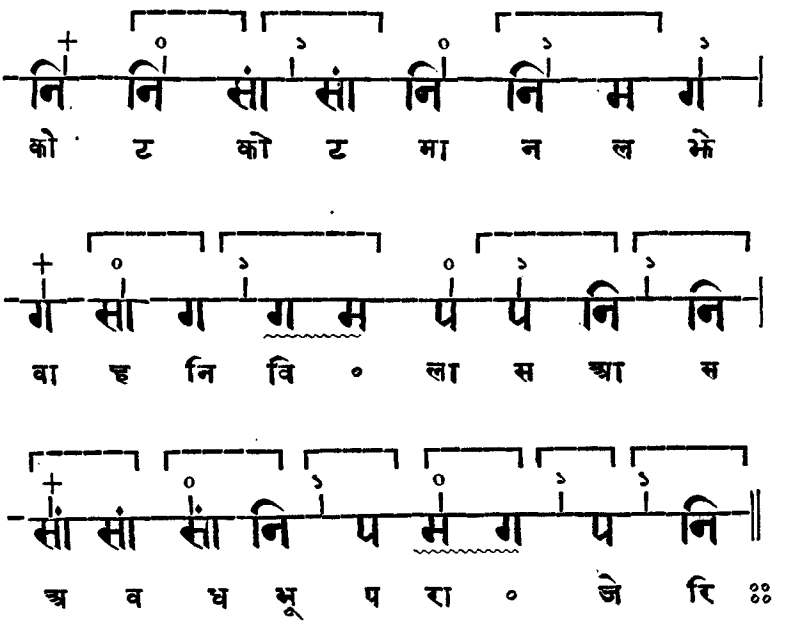

तेलेना।

बेहाग—सम्पूर्ण।

ताल काओयाली।

तोम् तोम् ताना देरे ना दिम् दिम् तानम् ताना
ना ना ना ना ना देर् देर् दानि
तोम् देर् देर् धे तोम् तोम् देर् देर् देर् देर् देर्
देर् देर् देर् दानि।

ना देरे देरे ना ताना ताना ना ना ना ना ना ना
धा किटि किटि धा किटि किटि
धुम् किटि किटि धुम् किटि किटि केड़ान धा।

आस्थायी।

सां नि सां नि ध प प म
तोम् तोम् ता ना दे रे ना दिम्
ग म | ग ऋ सा सा सा
दिम् ता नम् ० ० ता ना
सा सा सा सा सा सा सा ग
ना ना ना ना ना देर् देर् दा
म प नि नि | पँ नि नि
नि तोम् देर् देर् धे तोम् तोम्
नि नि सां सां ग ग म ग
देर् देर् देर् देर् देर् देर् देर् देर्
सा सा ‖
द नि।

अन्तरा।
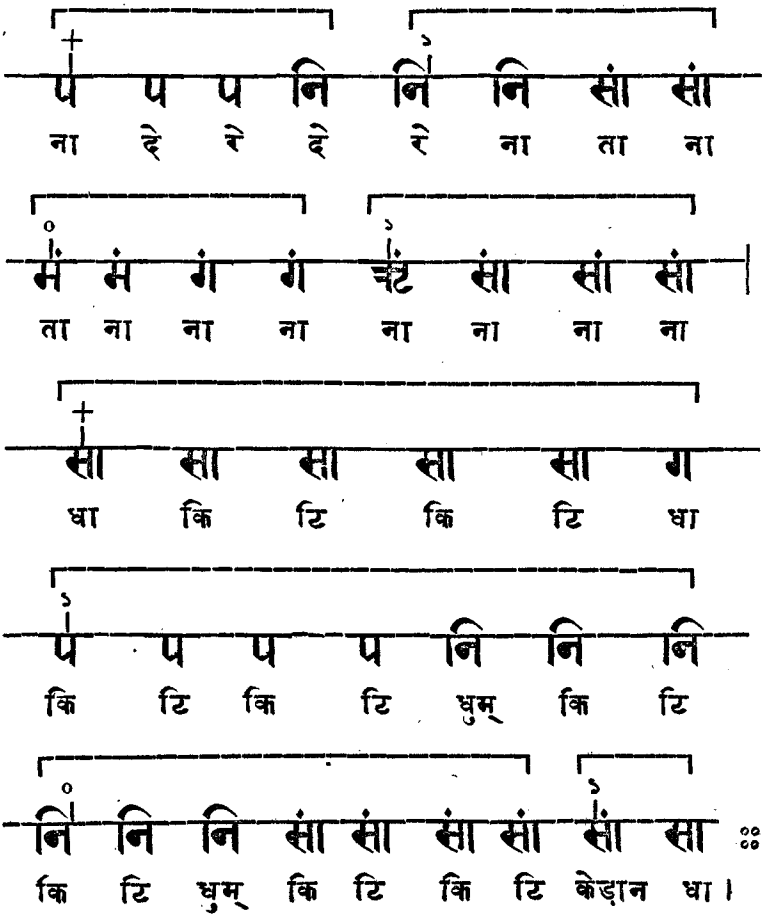
+ ०
प प प नि नि नि सां सां
ना दे रे दे रे ना ता ना
मं मं गं गं चं सां सां सां
ता ना ना ना ना ना ना ना
+
सा सा सा सा सा ग
धा कि टि कि टि धा
०
प प प प नि नि नि
कि टि कि टि धुम् कि टि
०
नि नि नि सां सां सां सां सां सा
कि टि धुम् कि टि कि टि केड़ान धा।

खेयाल।

प्रदीपिका—सम्पूर्ण।

झांपताल।

शिखरगढ़ चन्द कैलास निहता चन्दाप्रभा किरण
ज्योति प्रजाल।
चन्द मकरन्द फुलफले परिमलसुगन्ध दिविया वदन
तन, मदनुपजाल।
लालु मोतियन्से छोटे चन्दाकिरण शोभाल्।
छन्दअभिछन्द गाये नायक गोपाल।

आस्थायी।

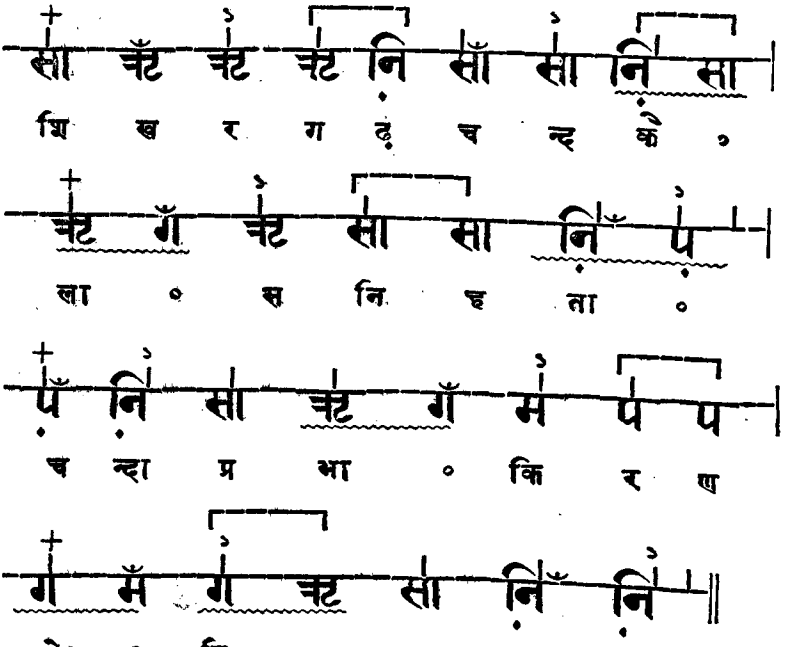

अन्तरा।

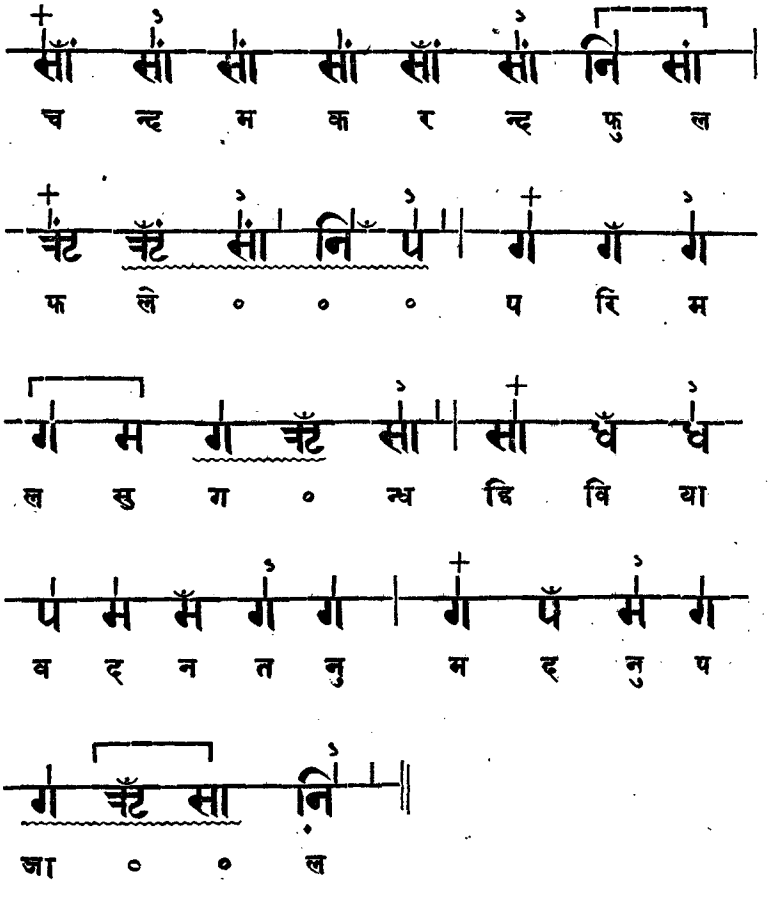
सां सां सां सां सां सां नि सां
च न्द म क र न्द फु ल
चट चट सां नि प गं गँ गं
फ ले ० ० ० प रि म
गं म गं चट सा सा धँ धं
ल सु ग ० न्ध दि वि या
पं मं मँ गं गं गं पँ मं गं
व द न त नु म द नु प
गं चट सा नि
जा ० ० ल

सञ्चारी।

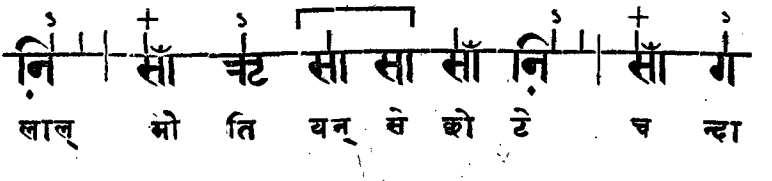
नि सां चट सा सा सां नि सां गं
लाल् मो ति यन् से छो टे च न्दा

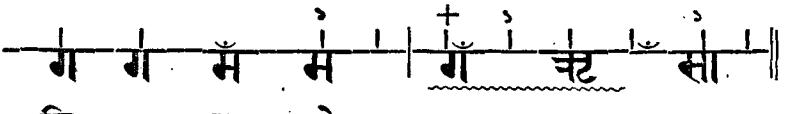

आभोग।

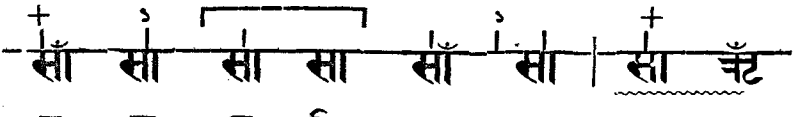

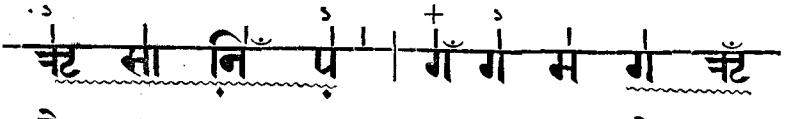

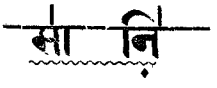

ध्रुपद।

दूमन-वेलावली—सम्पूर्ण।

ताल चौताल।

(मं)

परमेश्वर पुरुषोत्तम पद्मनाभ पद्मापति पङ्कजदल-
लोचन प्रभु पुण्डरीक मालएरि।

प्राण प्यारे वसुधाके अर्थ धर्म्म काम मोक्ष पङ्कजदल
हरि पतङ्ग काम चट जादूरि ॥

आस्थायी ॥

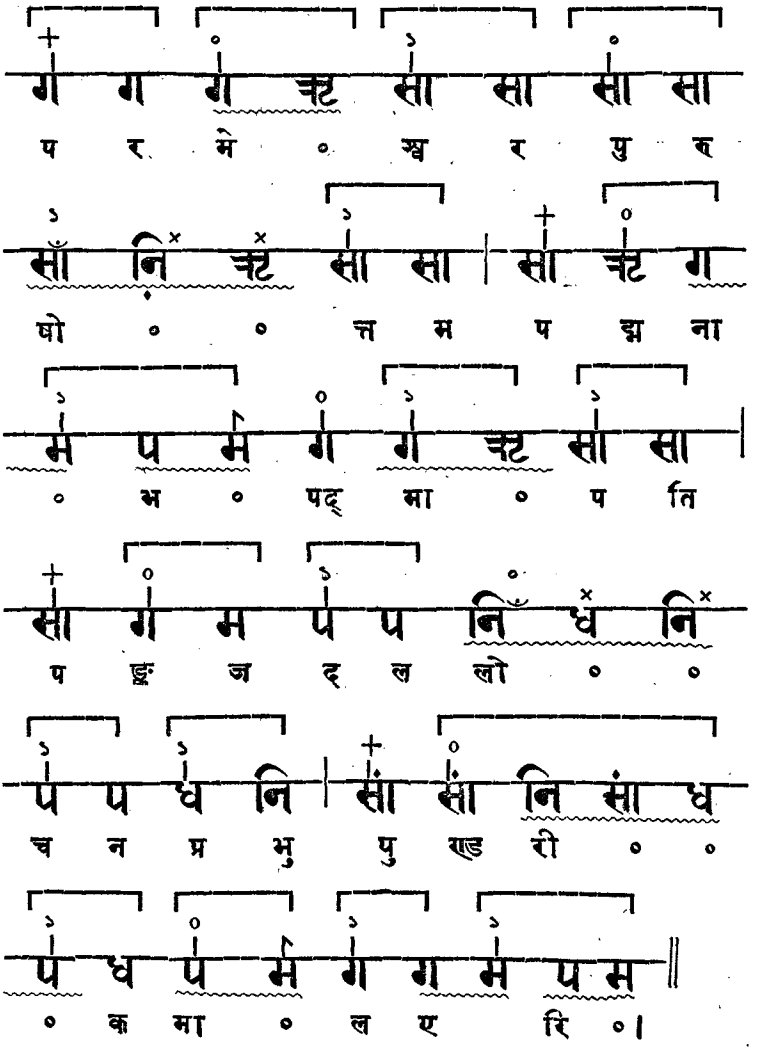
गं ग गं चट सां सा सां सा
प र मे ० श्व र पु रु
साँ नि चट सां सा | सां चट ग
षो ० ० त्त म प द्म ना
मं पं मं गं गं चट सां सा |
० भ ० पद् मा ० प ति
सां गं मं पं पं नि धं नि
प ङ्क ज द ल लो ० ०
पं पं धं नि | सां सां नि सां धं
च न प्र भु पु ण्ड री ० ०
पं धं पं मं गं गं मं पं मं ‖
० क मा ० ल ए रि ०।

अन्तरा।

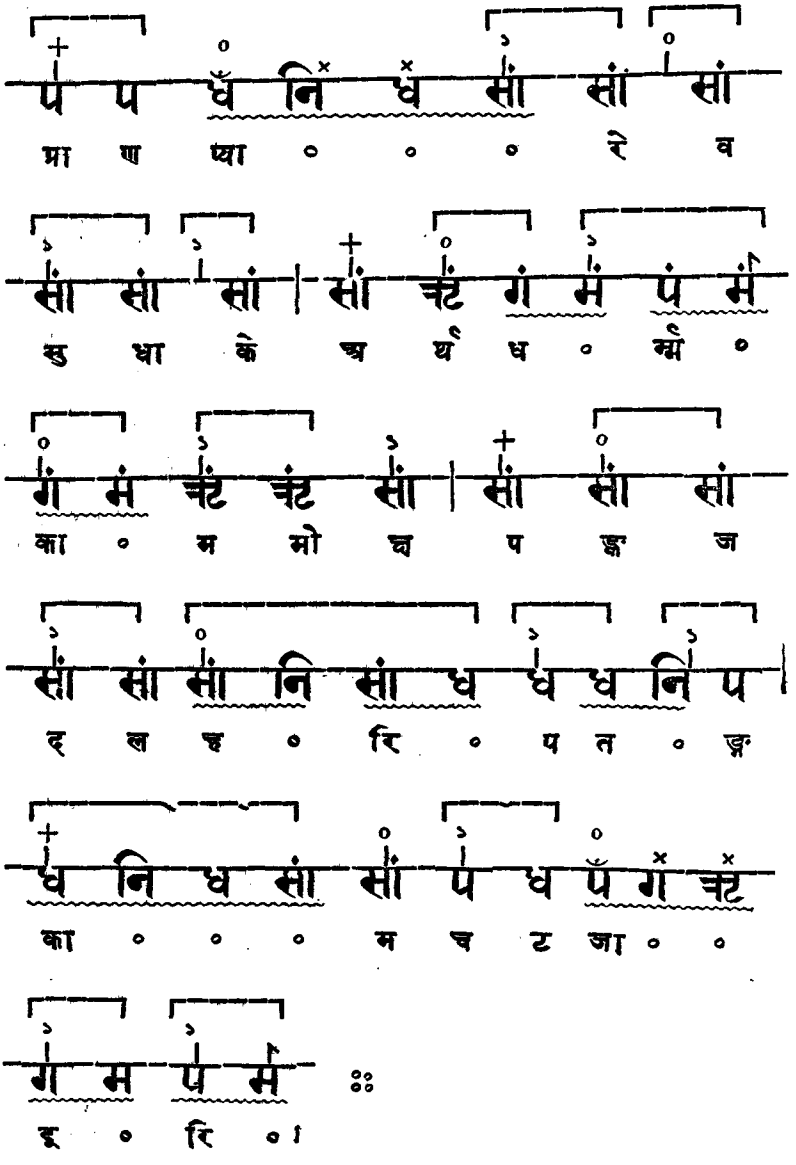
प प ध नि ध सां सां सां
प्रा ण प्या ० ० ० रे व
सां सां सां | सां चटं गं मं पं मं
सु धा के अ र्थ ध ० र्म ०
गं मं चटं चटं सां | सां सां सां
का ० म मो क्ष प द्म ज
सां सां सां नि सां ध ध ध नि प |
द ल क्ष ० रि ० प त ० द्म
ध नि ध सां सां प ध पँ गं चटं
का ० ० ० म च ट जा ० ०
गं म पं मं ::
द्म ० रि ०।

ध्रुपद।

विभास।—सुरफाक्ता।

जय वाञ्छित-सुरमण्डल-नुत उज्वल पण्डित हे।
खण्डपरशो कृत-ताण्डव-परितत अमरधुनी-रुचि-मण्डित हे।
आखण्डल-मणिखण्ड-समप्रभ भुजगनिचय-तनु-भूषण हे।
अम्बुद-चुम्बि-कलेवर गिरिनिभ विगलित-भूषण हे॥

आस्थायी।

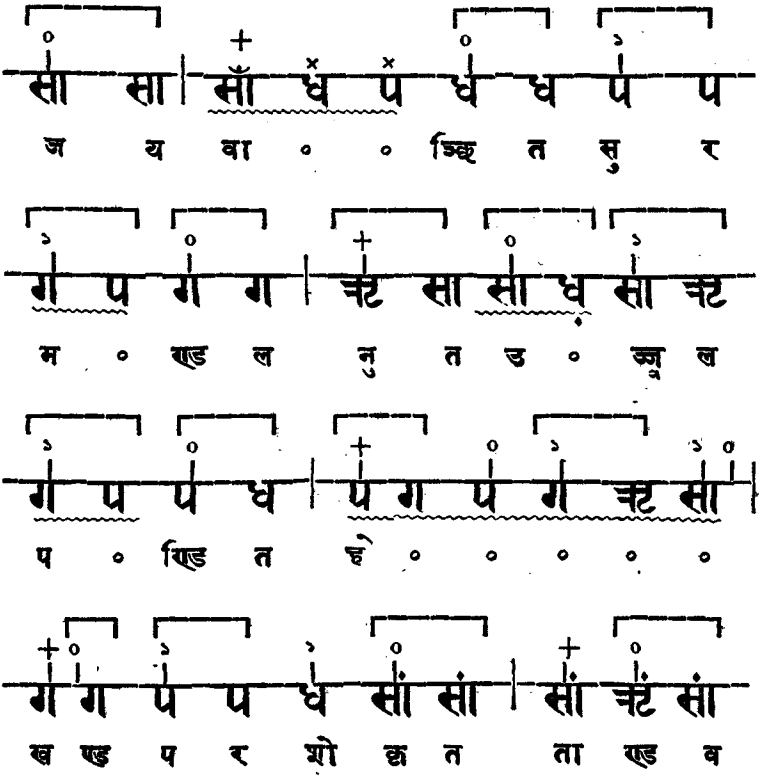

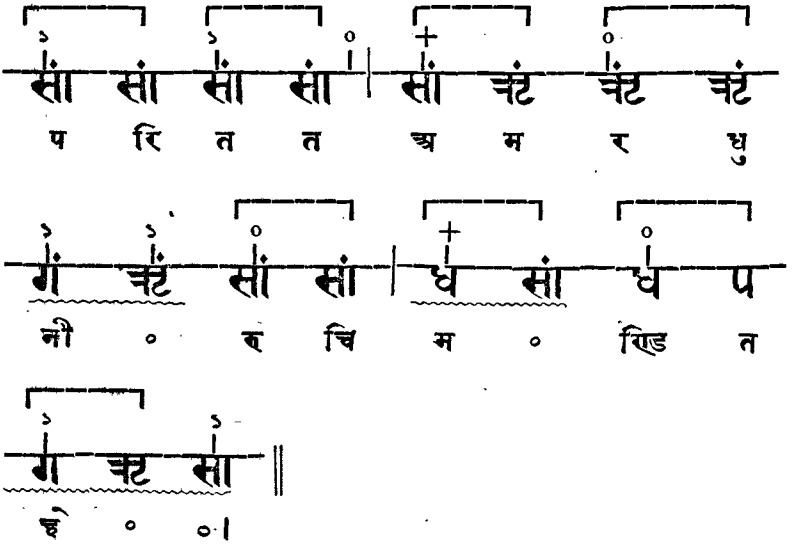
सां सां सां सां | सां चटं चटं चटं
प रि त त अ म र धु
गं चटं सां सां | ध सां ध प
नी ० र चि म ० ण्ड त
ग चट सा ‖
हे ० ०।

अन्तरा।

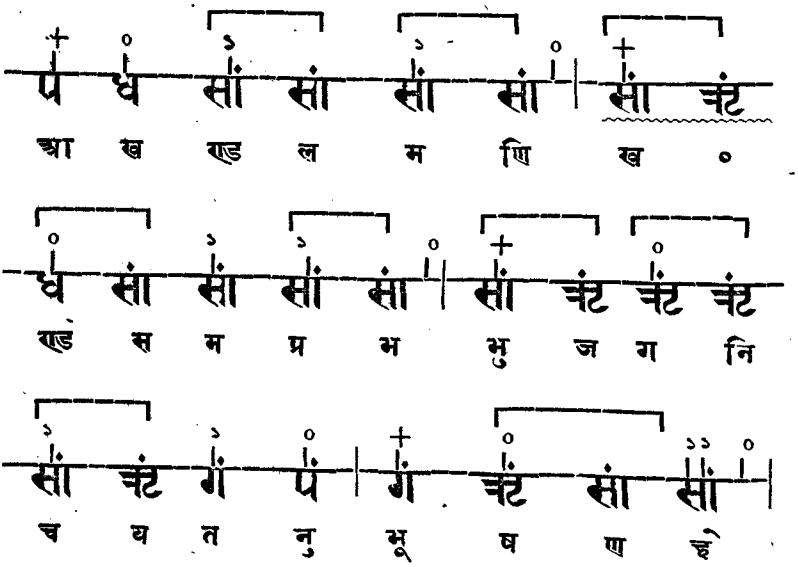
प ध सां सां सां सां | सां चटं
आ ख ण्ड ल म णि ख ०
ध सां सां सां सां | सां चटं चटं चटं
ण्ड स म प्र भ भु ज ग नि
सां चटं गं पं | गं चटं सां सां |
च य त नु भू ष ण हे

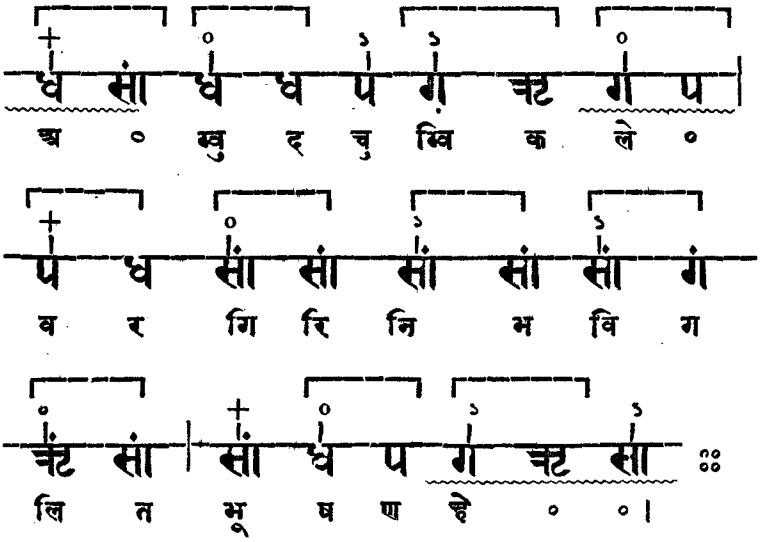

बिष्णुपद।

खाम्बाज।—जलद तेताला।

हलधर तव नयनं कमनीयं।

आसवपानमधुरमरुणद्युतिचञ्चलमेचकतारं,

लज्जितसान्द्रविलीनमधुव्रतश्रेणितकमलमुदारं।

आस्थायी।

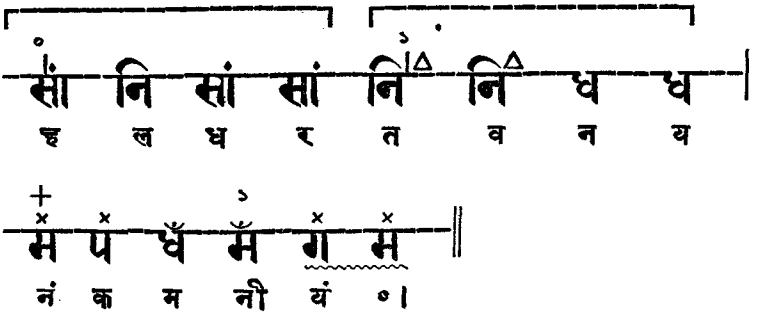

अन्तरा।

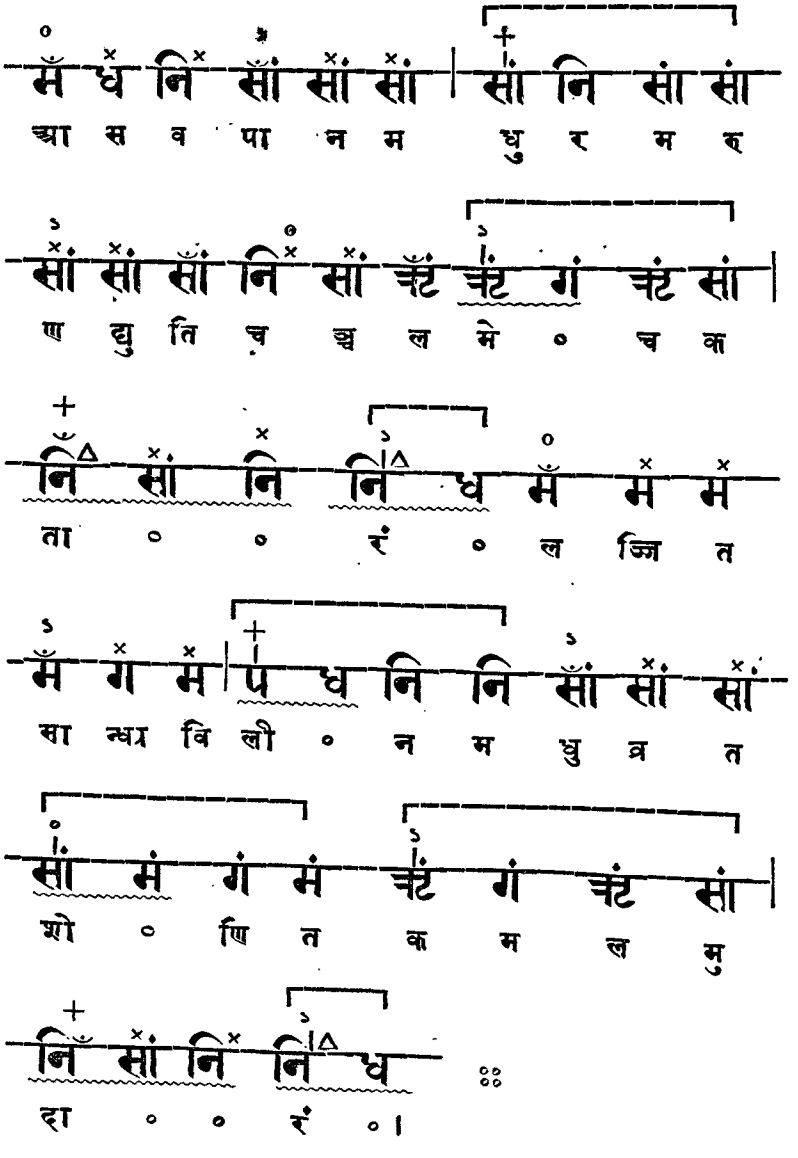
मँ ध नि सां सां सां | सां नि सां सां
आ स व पा न म धु र म रु
सां सां सां नि सां चंटं चंटं गं चंटं सां |
ण द्यु ति च ञ्च ल मे ० च क्ष
निँ सां नि नि ध मँ म म
ता ० ० रं ० ल ज्जि त
मँ ग म | प ध नि नि सां सां सां
सा न्द्र वि ली ० न म धु व्र त
सां मं गं मं चंटं गं चंटं सां |
शो ० णि त क म ल मु
निँ सां नि नि ध ::
दा ० ० रं ०।

ध्रुपद।

सिन्धु।—तेओरा।

शिखरमण्डलमणिशोभितकुण्डलैकविराजितं।
चण्डकरसुतदण्डखण्डनपण्डितं चिदशार्चितं,
यादवान्वयदुग्धवारिधिकुमुदसुन्दरमीश्वरं।
भावयामि भवन्तमनिशं ब्रह्मरूपमनश्वरं॥

आस्थायी।

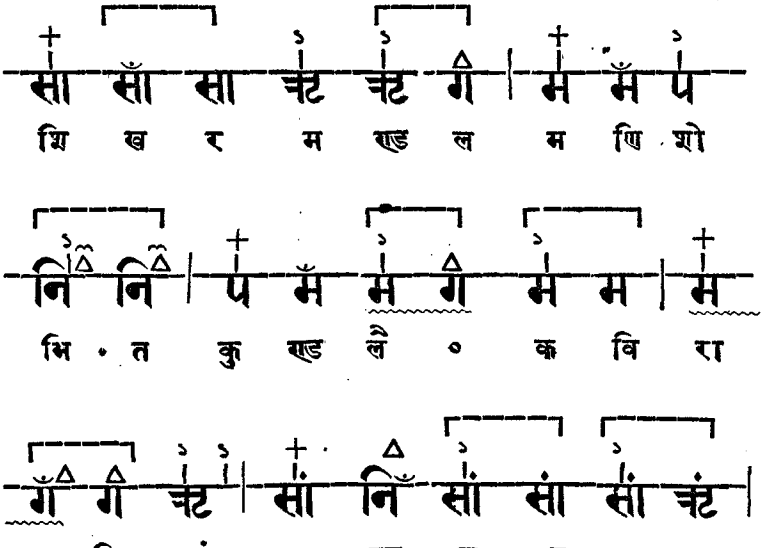

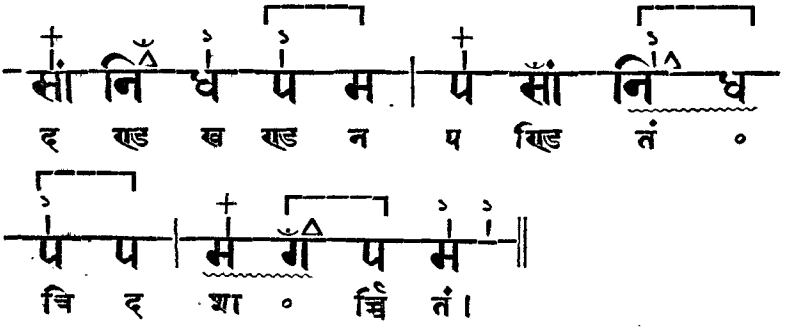
सां नि ध प म | प सां नि ध
द ण्ड ख ण्ड न प ण्डि तं ०
प प | म ग प म ‖
चि द श ० च्चि तं।

अन्तरा।

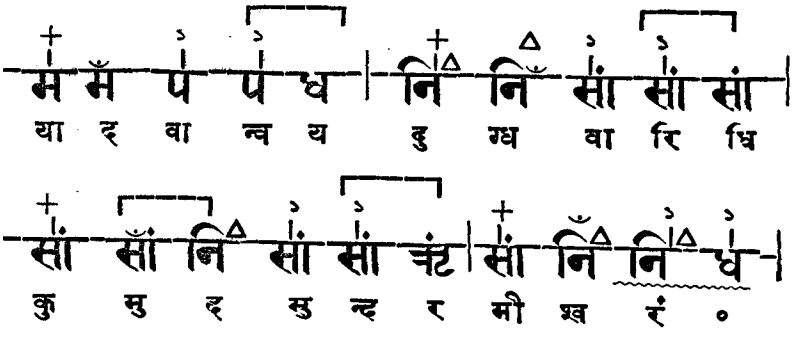
म मं प प ध | नि नि सां सां सां |
या द वा न्व य दु ग्ध वा रि धि
सां सां नि सां सां चं | सां नि नि ध |
कु मु द सु न्द र मी ख रं ०
प पं प प प | प धं प
भा व या मि भ व ० न्त
प प म | प सां नि ध प
म नि शं व ० ह्म रू ०
म म | म ग प म ‖
प म न ० शु रं।

विष्णुपद।

परज।—एकताला।

अरुणायितयुगलदृग्विशालीकृतवत्सं करुणाकर
विपुलवाञ्छमुञ्छरङ्कृतरत्सं
चरणावनतो भवन्नमाश्रयामि मोचने शरणागत-
मपि विधेहि कलितविविधलोकने।

आस्थायी।

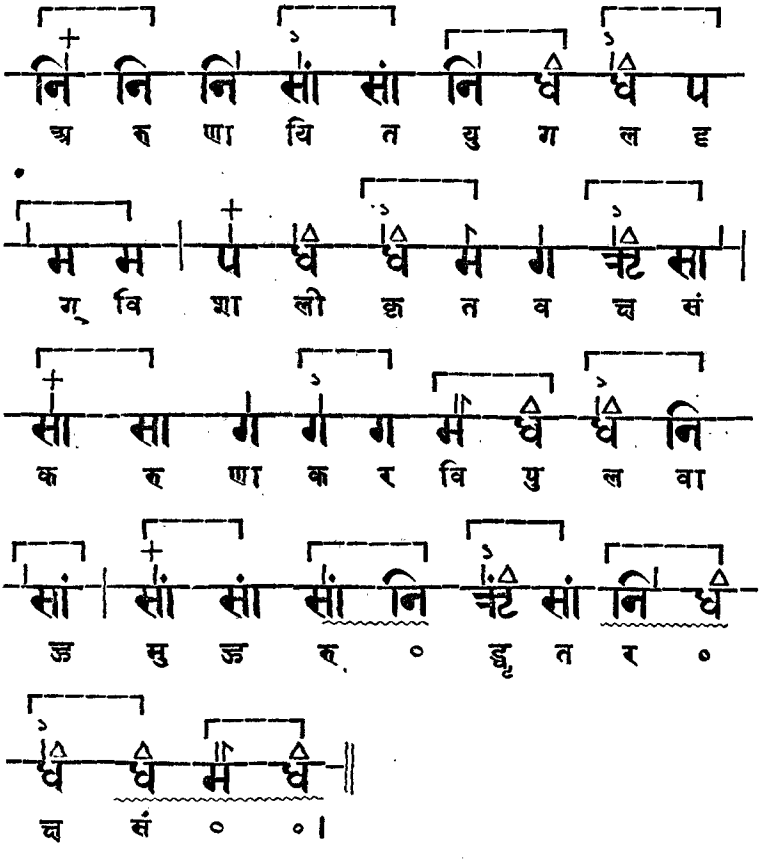

अन्तरा।

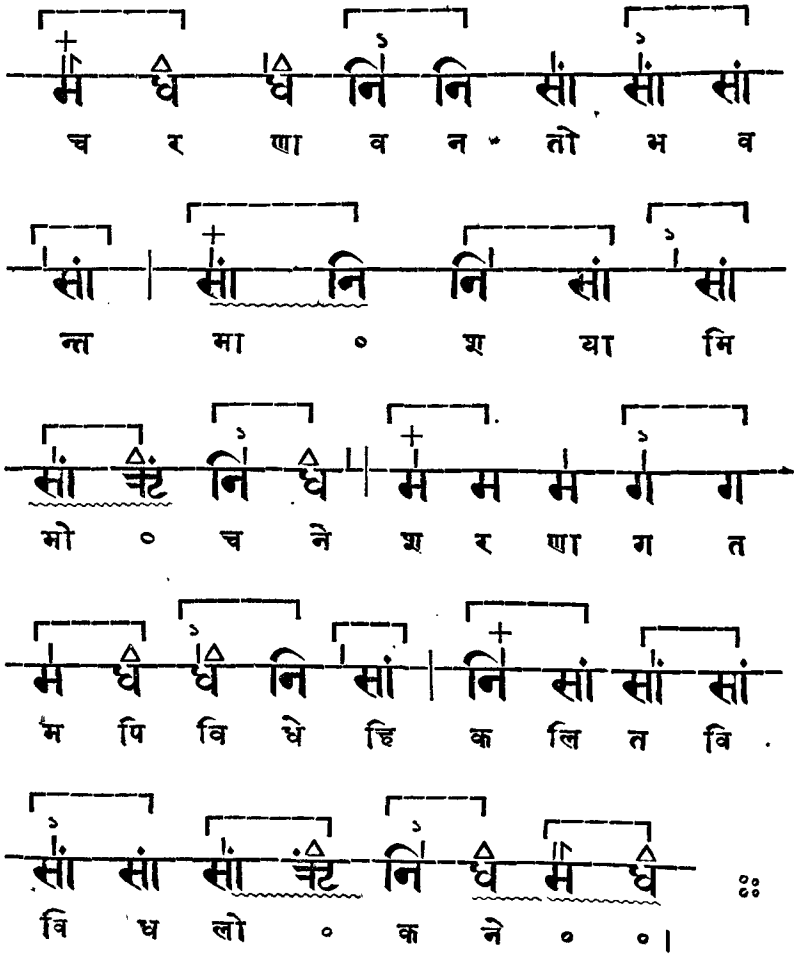
म ध ध नि नि सां सां सां
च र णा व न ॰ तो भ व
सां सां नि नि सां सां
न्त मा ० श या मि
सां नं॒ नि ध म म म ग ग
भो ० च ने श र णा ग त
म ध ध नि सां नि सां सां सां
भ पि वि धे हि क लि त वि .
सां सां सां नं॒ नि ध म ध ::
वि ध लो ० क ने ० ०।

विष्णुपद।

योगिया।—मध्यमान।

जय जय जनकसुताधव राघव लिखिलभूवनजनरञ्जन हे।
तरुणसुधाकरमुकुटशरासनशरकरकुण्डलमण्डन हे
रिपुवलभुजवलभूषणदूषणमुखखरसैनिकखण्डन हे।
शरणागतजनतारण सततं करुणावितरणतर्ज्जित हे।
निर्जरतापहरण नारायण नारायणनृपसुन्दर हे॥

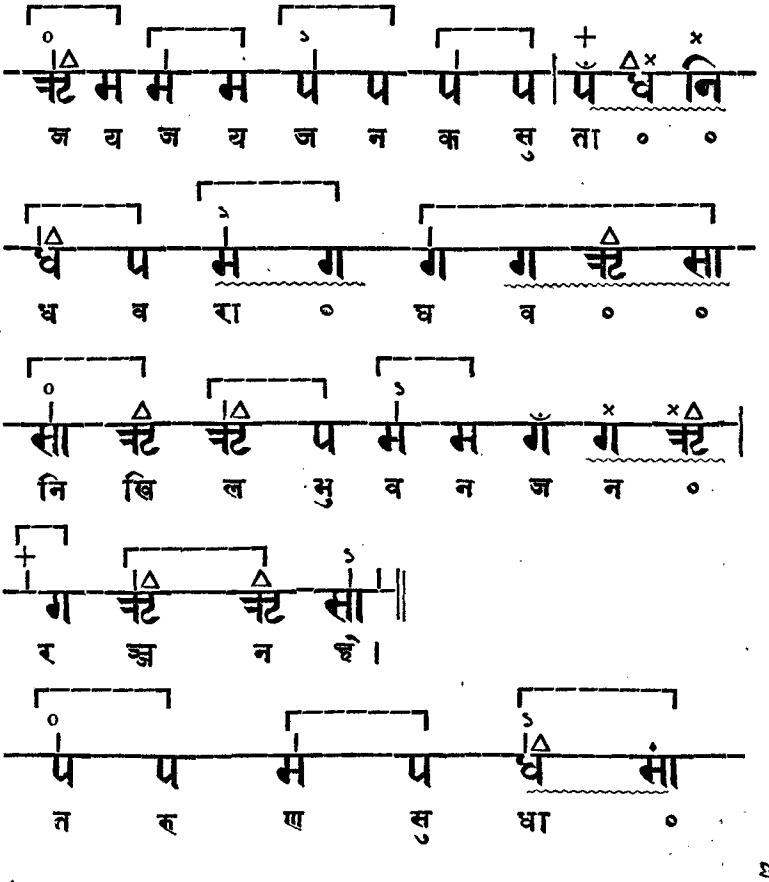

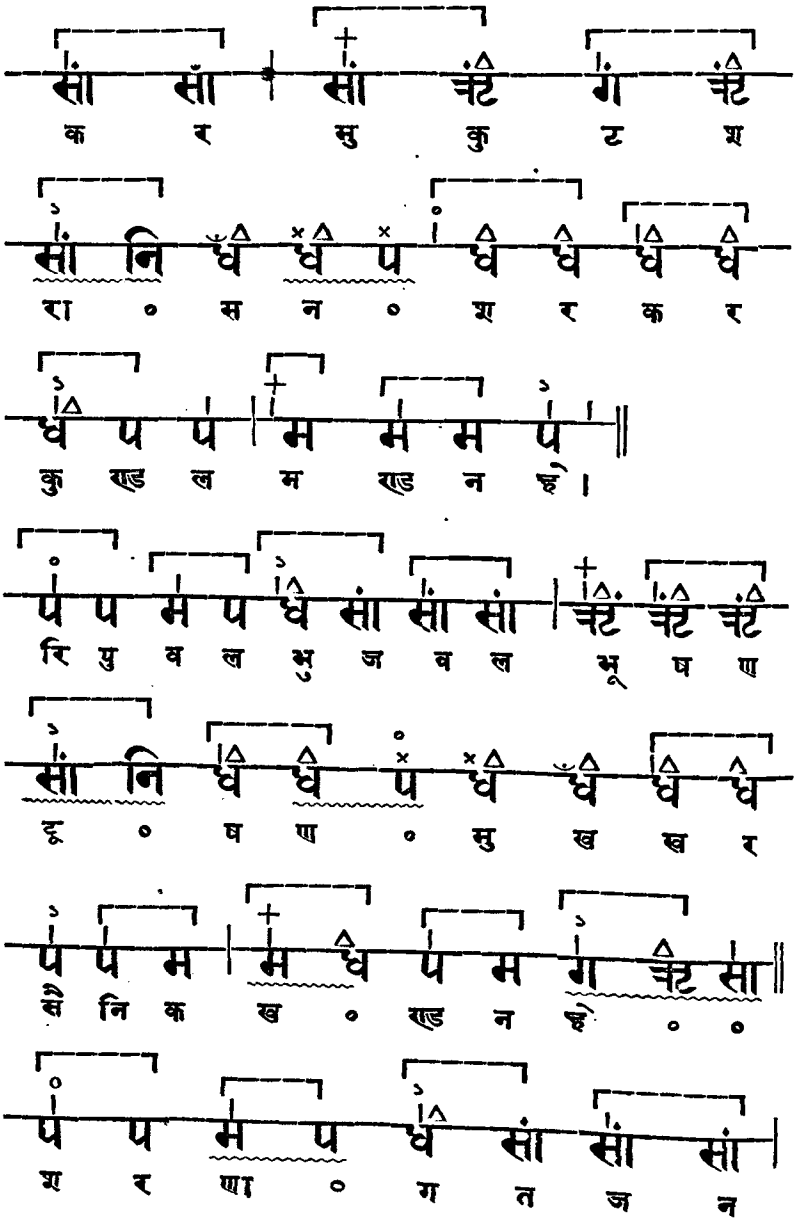
सां सां | सां चंट गं चंट
क र मु कु ट श
सां नि ध ध प ध ध ध ध
रा ० स न ० श र क र
ध प प | म म म प ‖
कु ण्ड ल म ण्ड न है।
प प म प ध सां सां सां | चंट चंट चंट
रि पु व ल भु ज व ल भू ष ण
सां नि ध ध प ध ध ध ध
दू ० ष ण ० मु ख ख र
प प म | म ध प म ग चंट सा ‖
सै नि क ख ० ण्ड न है ० ०
प प म प ध सां सां सां |
श र ण ० ग त ज न

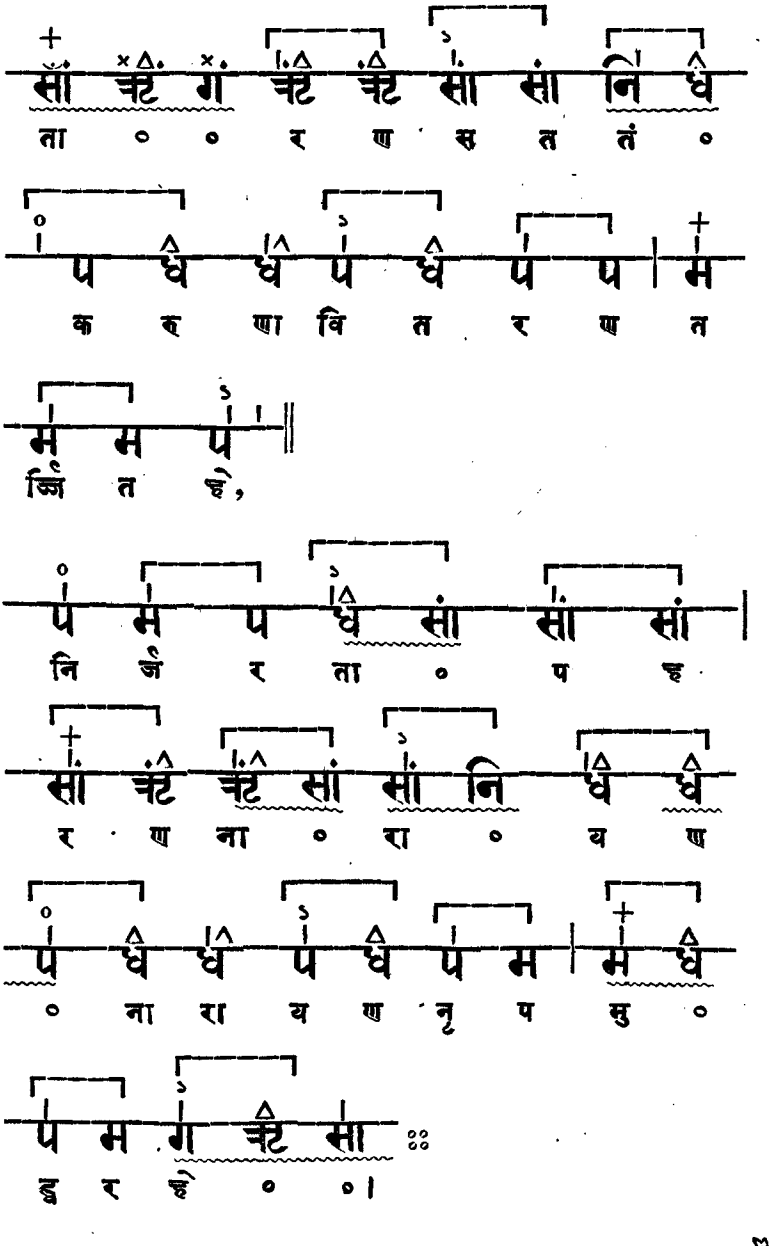
सां नि ध
ता ० ० र ण स त तं ०
प ध ध प ध प प म
क रु णा वि त र ण त
म म प
ज्जि त हे,
प म प ध सां सां सां
नि र्ज र ता ० प हृ
सां नि ध ध
र ण ना ० रा ० य ण
प ध ध प ध प म म ध
० ना रा य ण नृ प सु ०
प म ग रे सा
ड र हे ० ०।

विष्णुपद।

वेहाग।—ठुंरी।

अविकलशारदशशधरवदनं, कुन्दकुसुमपरिहासकरदनं
मदनगुहाधिकसुरचितकायं, स्मितलवधूतसुदुस्तरमायं,
रघुकुलतिलकसुमरकतभासं, वन्दे राममशिवचयनाशं।
नारायणनरपतिकृतगीतं, सुखयतु अमरवृन्दसुखपीतं।

आस्थायी।

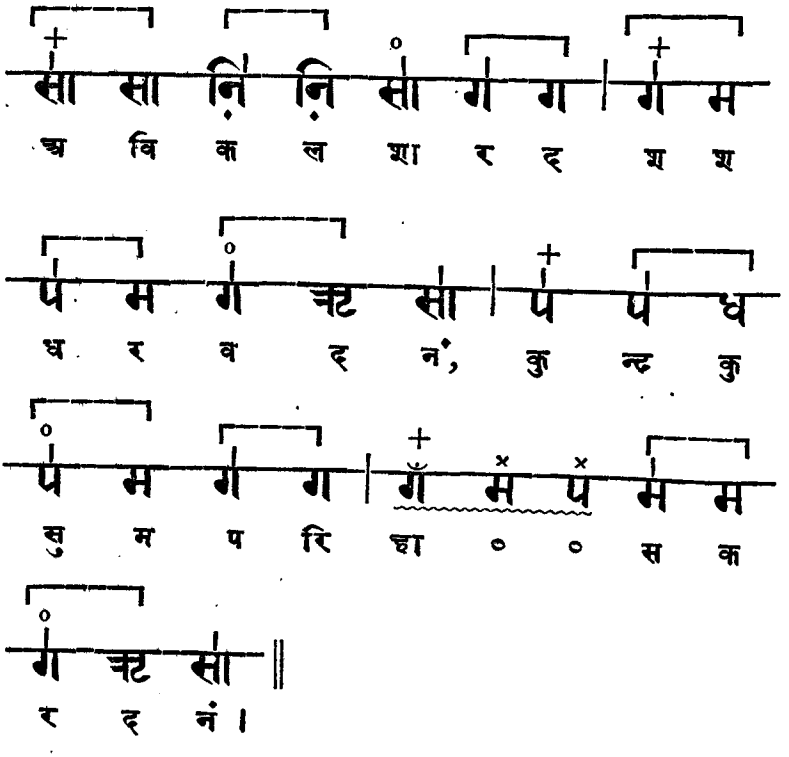

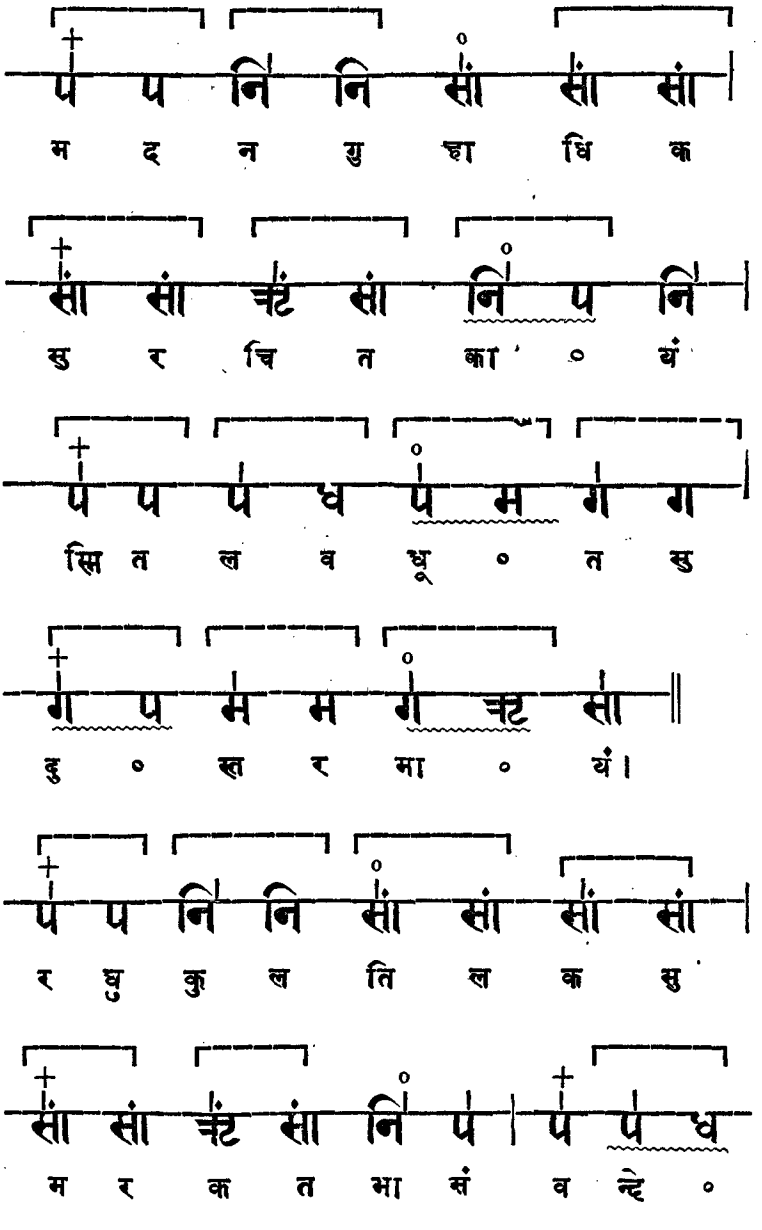
प प नि नि सां सां सां
म द न गु हा धि क
सां सां चटं सां नि प नि
सु र चि त का ० यं
प प प ध प म ग ग
स्रि त ल व धू ० त सु
ग प म म ग चट सा
दु ० ख र मा ० यं।
प प नि नि सां सां सां सां
र घु कु ल ति ल क सु
सां सां चटं सां नि प प प ध
म र क त भा सं व न्दे ०

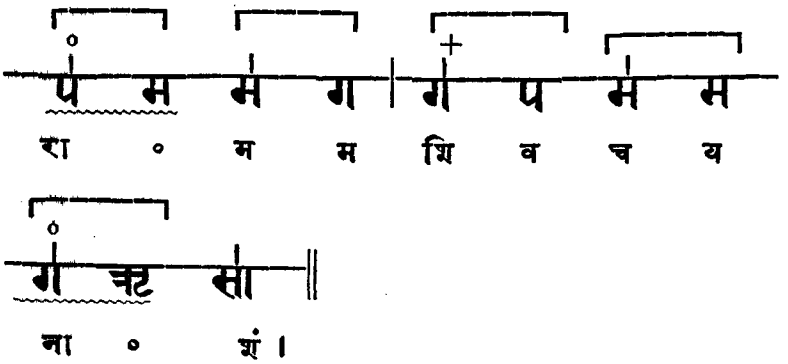
प म म ग | ग प म म
रा ० म म शि व च य
ग ऋ सा ‖
ना ० शं।
प नि सां सां सां सां | सां ऋं
ना रा य ण. न र प ति
सां सां नि प नि | प प प ध
क्ष त गी ० तं सु ख य तु
प म ग ग | प म म म
अ म र ट ० न्द सु ख
ग ऋ सा ::
पी ० नं।

ध्रुपद।

मेघ-खाड़व।—ताल चौताल।

आजी पाओसरितु साखि लागात सोहाओरि वरण
वरण वादरशीतल वुंदेपओन पोरवाइया।
करि घटाखेर पन्थ वगपन्थ एछिदन्त जरिवेल नइ
चढ़त गरज गरज आइरि॥
ग्रलिता उमड़े आइ जङ्ग जोरण दियानारे पथिक
चलन हार वरखा कि अधिकाओ।
जिनछवि वकेखाओ तुमनिके जानत मानोमेन साज
चढ़त इन्द्रकोदोहाइरि॥

आस्थायी।

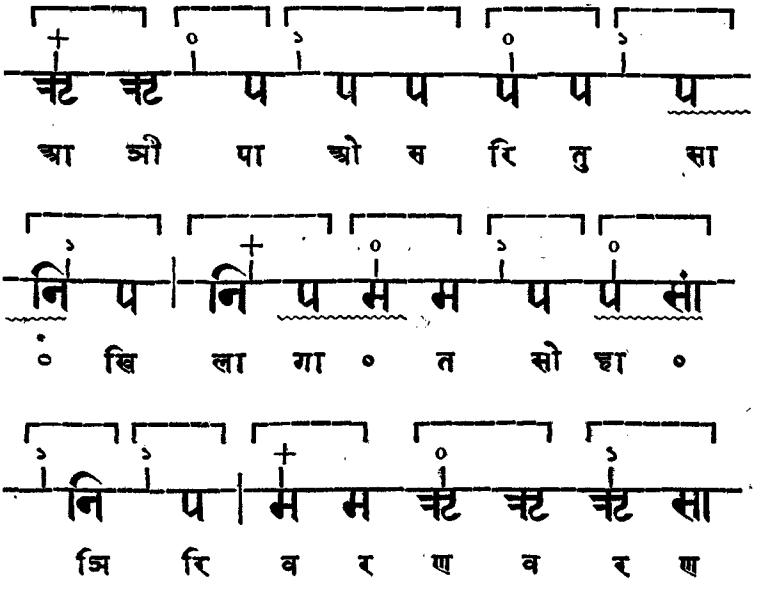

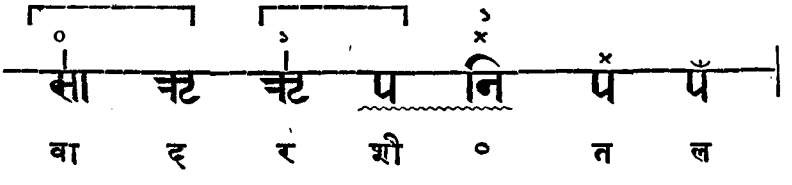
सा चट चट प नि प पँ
वा द र शी ० त ल

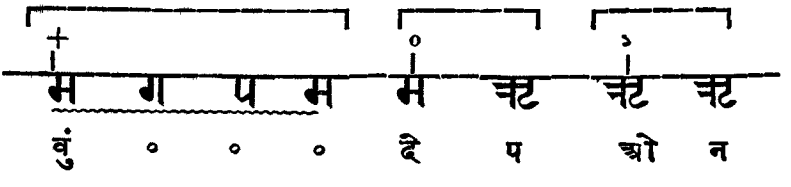
म ग प म म चट चट चट
वुं ० ० ० दे प ओ न

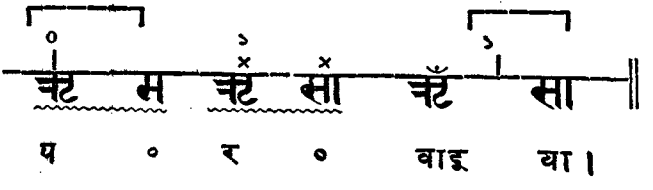
चट म चट सा चँ सा
प ० र ० वाइ या।

अन्तरा।

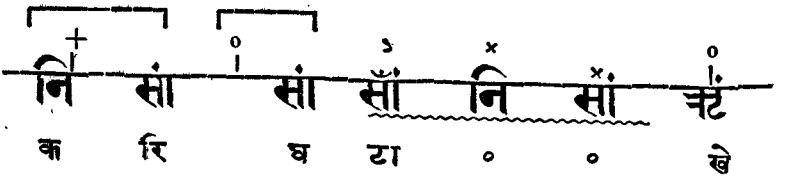
नि सां सां सॉं नि सां चट
क रि घ टा ० ० खे

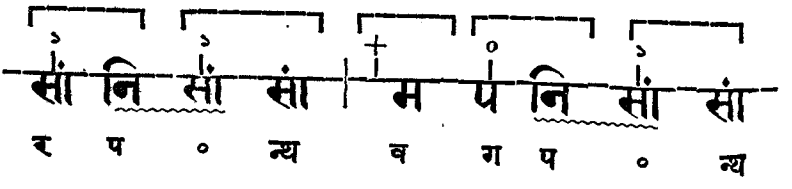
सां नि सां सां म प नि सां सां
र प ० न्य व ग प ० न्य

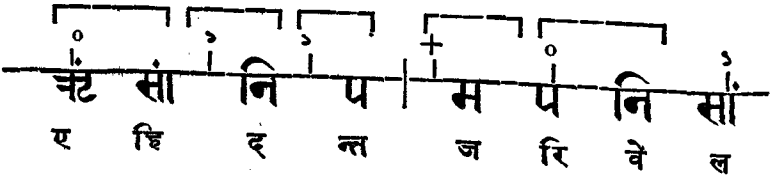
चट सां नि प म प नि सां
ए हि द न्त ज रि वे ल

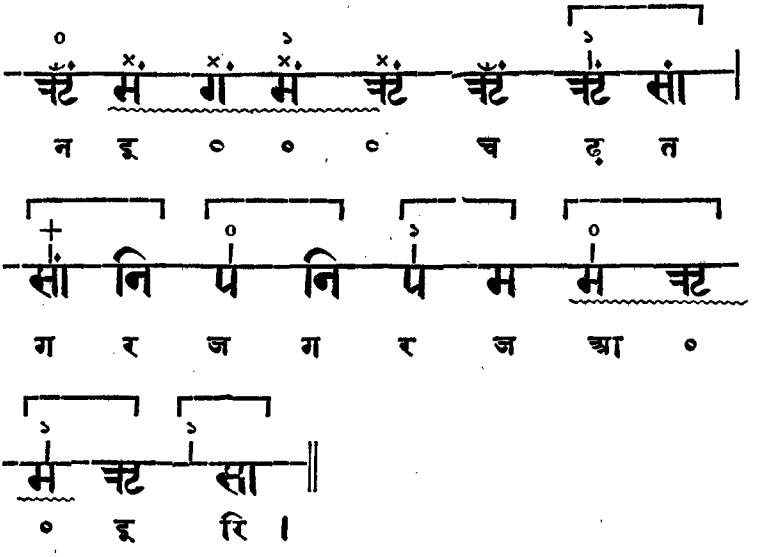
चँटं मं गं मं चटं चँटं चटं सां
न ट्ट ० ० ० च ट्ट त
सां नि पं नि पं म मं चट
ग र ज ग र ज आ ०
मं चट सा
० ट्ट रि ।

सञ्चारी।

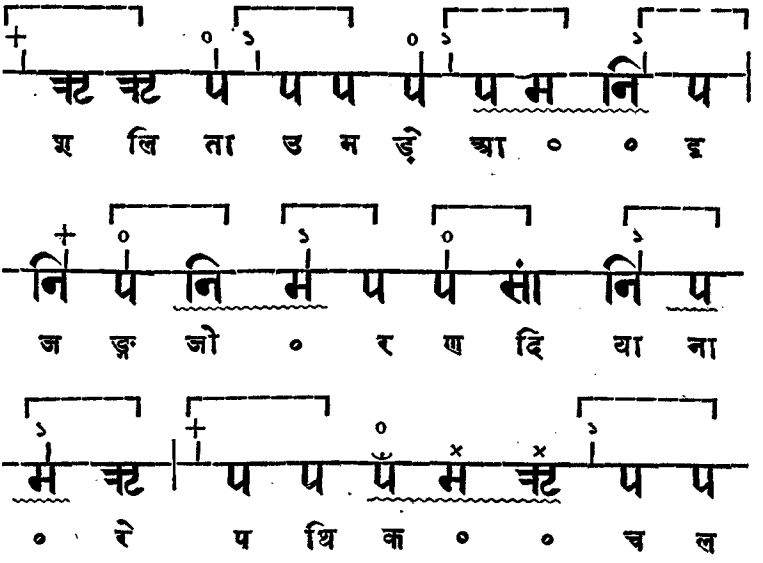
चट चट पं पं पं पं पं म नि पं
श्र लि ता उ म ड़े आ ० ० ट्ट
नि पं नि मं पं पं सां नि पं
ज ङ्घ जो ० र ण दि या ना
मं चट पं पं पँ मं चट पं पं
० रे प थि क ० ० च ल

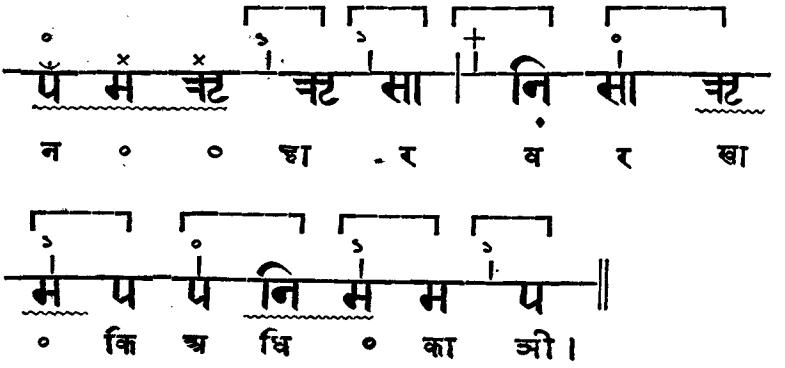
पँ म ऋट ऋट सा नि सां ऋट
न ० ० हा र व र खा
म प प नि म म प
० कि अ धि ० का ओ।

आभोग।

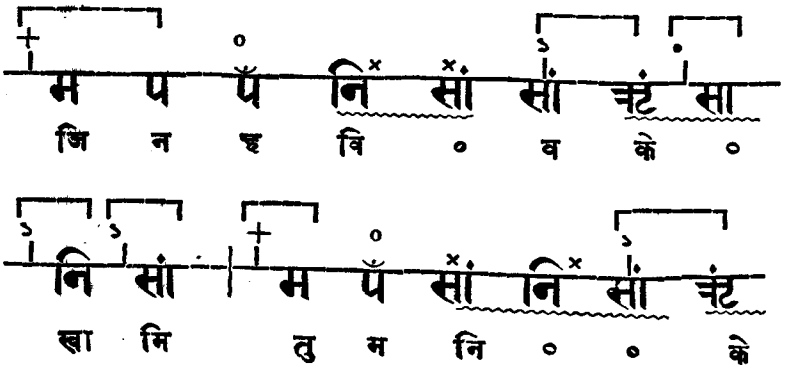
म प पँ नि सां सां ऋटं सा
जि न ह वि ० व के ०
नि सां म पँ सां नि सां ऋट
खा मि तु न नि ० ० के
सां सां नि प नि प म पँ
० जा ० न त ० मा नो
सां नि सां ऋटं ऋट मं गं मं
मे ० ० न सा ० ० ०

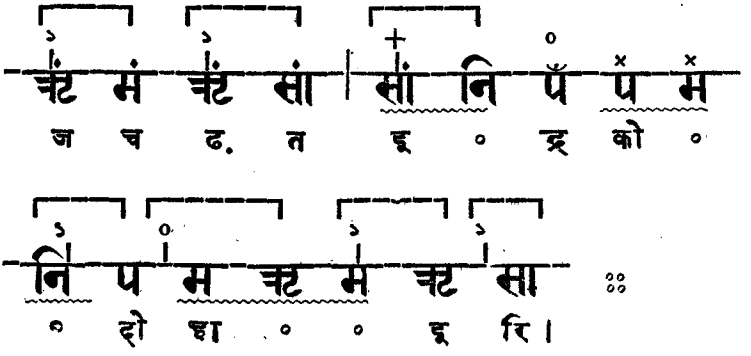

विष्णुपद।

देशी झिंझिटी—सम्पूर्ण।

ताल ठुंरी।

जय नारायण, ब्रह्म सनातन, श्रीपति कमलाकान्तम्।
नाम अनन्त कहा लागे वरनु, शेषन पारलहन्तम्॥
मच्छ कच्छ शुकर नरहर प्रभु, वामनरूपधरन्तम्।
परशुराम ओही रामचन्द्र हो, लीलाकोटीधरन्तम्॥
होय बलभद्र सब दैत्य संहारे, कंसके केशगहन्तम्।
जगन्नाथ जगमग चिन्तामणि, बैठे हे निचिन्तम्॥
कल्की होय कलङ्कयो हरि हे, जगदीश गुणवन्तम्।
दशमस्कन्दा भागवत गावे, सुर शरण भगवन्तम्॥

आस्थायी॥

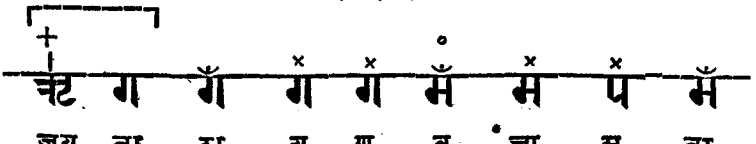

ग ग | मँ प प पँ प प म
त नं, श्री प ति क म ला का
गँ ऋ सा | सां सां सां सां सां सां
न्त ० म् ना म अ न न्त क
सां नि नि धँ ध प | धँ नि नि
हा ला गे व र नु, शे ष न
निँ धँ पँ म गँ ऋ सा ||
या र ल ह न्त ० म्।
पँ प ध | सां सां सां सां सां सां
म च्छ क च्छ पु क र न र
सां सां सां सां | सां सां सां सां
ह र प्र भु वा म न रू
नि नि धँ सां नि निँ धँ पँ |
प ध र ं ० ० न्त ० म्।

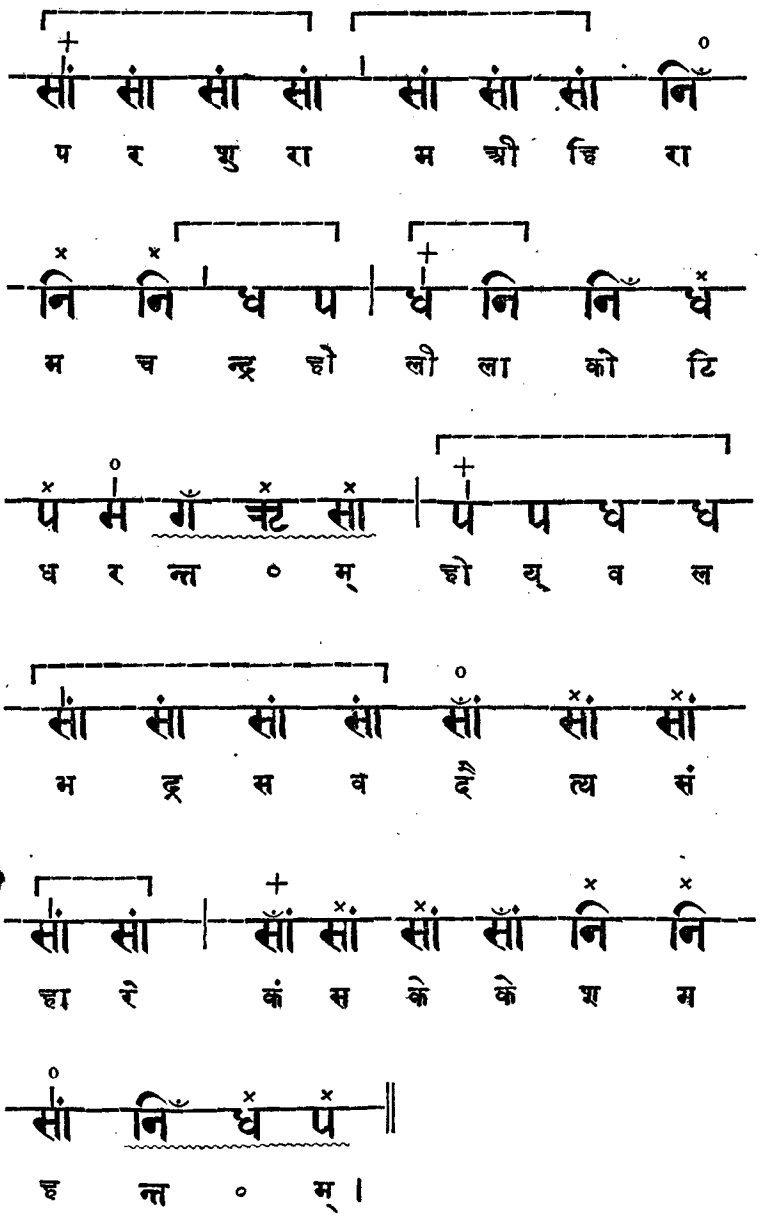
सां सां सां सां सां सां सां निँ
प र शु रा म श्री हि रा
नि नि ध प ध नि निँ धं
म च न्द्र हो ली ला को टि
पं मं गँ रँ सां पं प ध ध
ध र न्त ० म् हो य् व ल
सां सां सां सां सँां सां सां
भ द्र स व दै त्य सं
सां सां सँां सां सां सँां नि नि
हा रे कं स के के श म
सां निँ धं पं
ह न्त ० म्।

सां सां सां सां सां सां नि नि
ज ग न्ना थ ज ग म ग
नि धँ प प धं नि ध प
चि न्ता म णि वै ठे हे नि
म गँ चट सा
चि न्त ० म्।
प प धँ सां सां सां सां सां
क ल् की हो य क ल ङ्
सां सां सां सां सां सां सां
यो ह रि हे ज ग दी
नि नि नि धँ सां नि नि ध प
श गु ण व ० ० न्त ० म्
सां सां सां सां सां नि नि नि नि
द श म स्क न्धा भा ग व त

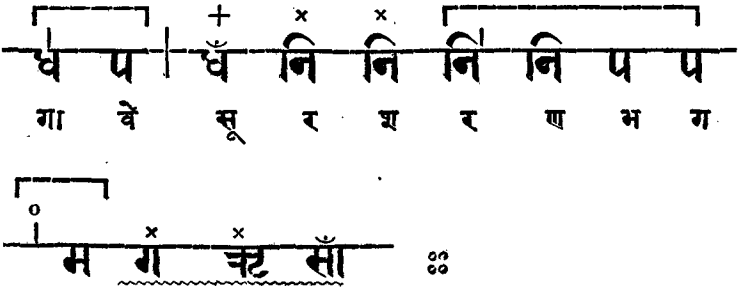

हिण्डोल-ओड़व।

ताल सेओरा।

ना देर् देर् तोम्देर् तोम् देर् नारे ताना देरे ना,
दिम् दिम् ओदानि दानि दानि देरे ना देर् देर् ता ना।
गाये ओड़व राग सब गुणियन समाझ हिण्डोल॥

आस्थायी।

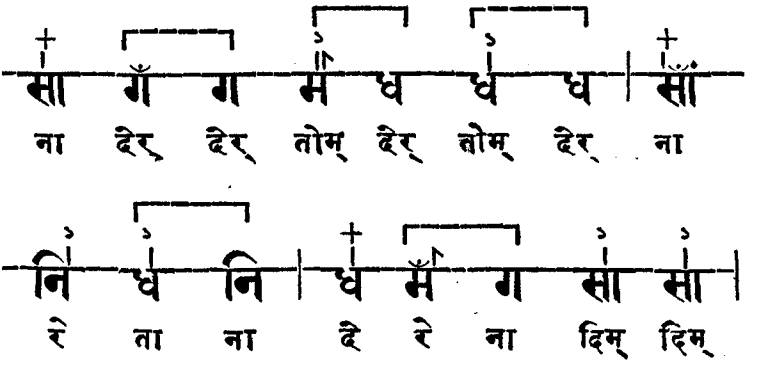

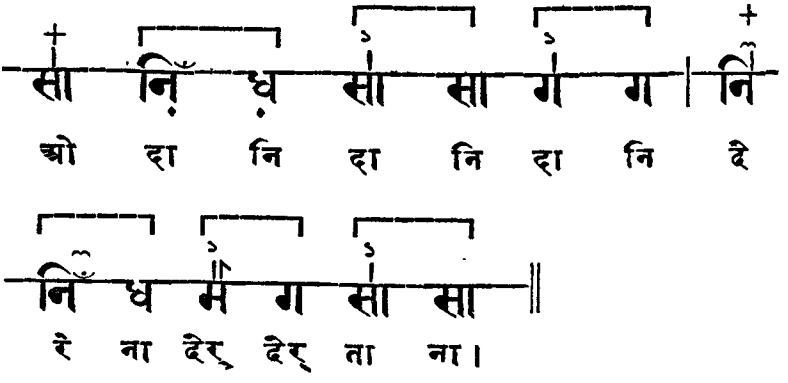
सा नि ध सा सा ग ग नि
ओ दा नि दा नि दा नि दे
नि ध म ग सा सा
रे ना देर् देर् ता ना।

अन्तरा।

ध मं ध सां सां सां सां सां
गा ० ये ओ ड़ व रा ग
सां सां सां सां नि नि नि ध
स व गु णि य न स मा
ध नि धं मं गं सा गं ग
झ हि ण्डो ० ल
मं ध नि नि मं धं नि सां

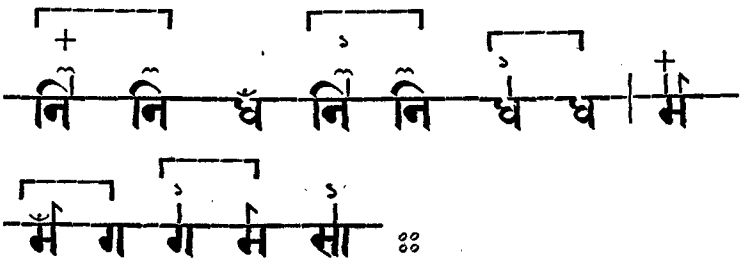

ध्रुपद।

भूपाली—खाड़व।

पटताल।

मुषलायुधविबुधा विबुधधरणीधृतमुखरे,
वरुणसुतापतिवक्षसि लम्बित सम्भ्रम तर्ज्जितविधुमुखरे।
सुकुटार्पितविकटोज्ज्वलमुनिगणतनुनिर्ज्जितहिमभूधर रे,
जय रोहिणीसुत सुरमण्डलनुत॥

आस्थायी।

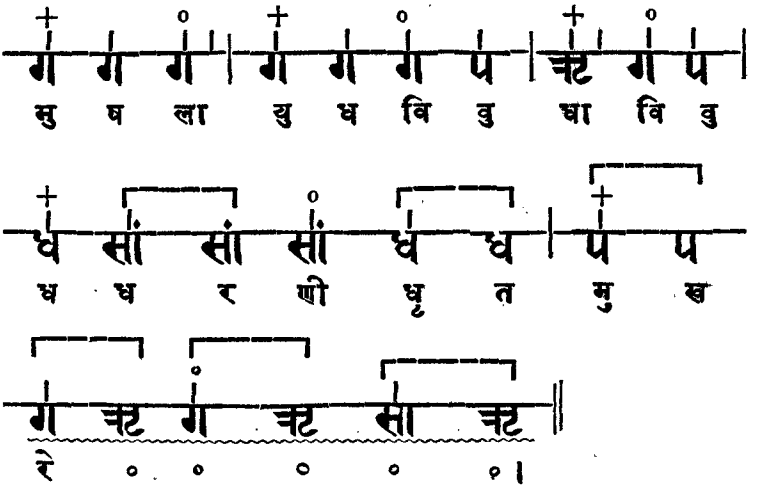

अन्तरा।

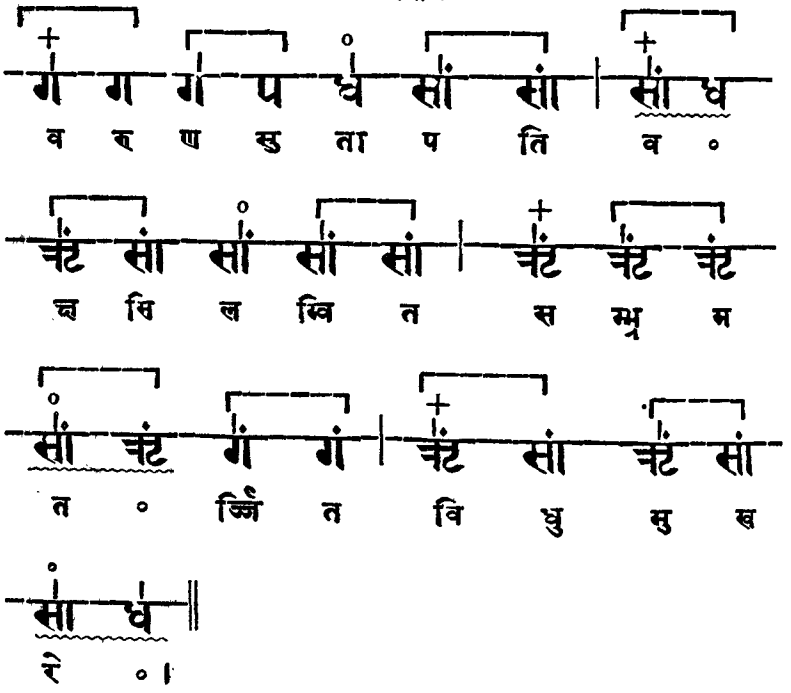
गं ग गं प ध सां सां | सां ध
व रु ण सु ता प ति व ०
चंट सां सां सां सां | चंट चंट चंट
च पि ल खि त स भ्र म
सां चंट गं गं | चंट सां चंट सां
त ० र्जि त वि धु मु ख
सां ध ‖
रे ०।

सञ्चारी।

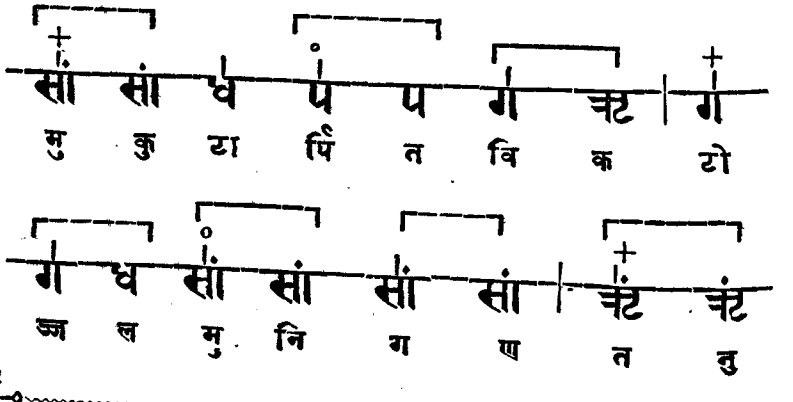
सां सां ध प प गं चंट | गं
मु कु टा पिं त वि क टो
गं ध सां सां सां सां | चंट चंट
ज्ज ल मु नि ग ण त तु

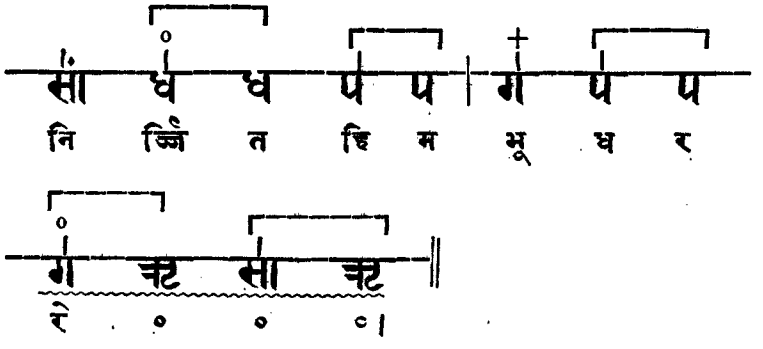
सां ध ध प प | ग प प
नि ज्जै त हि म भू ध र
ग चट सा चट ‖
रे ० ० ०।

आभोग।

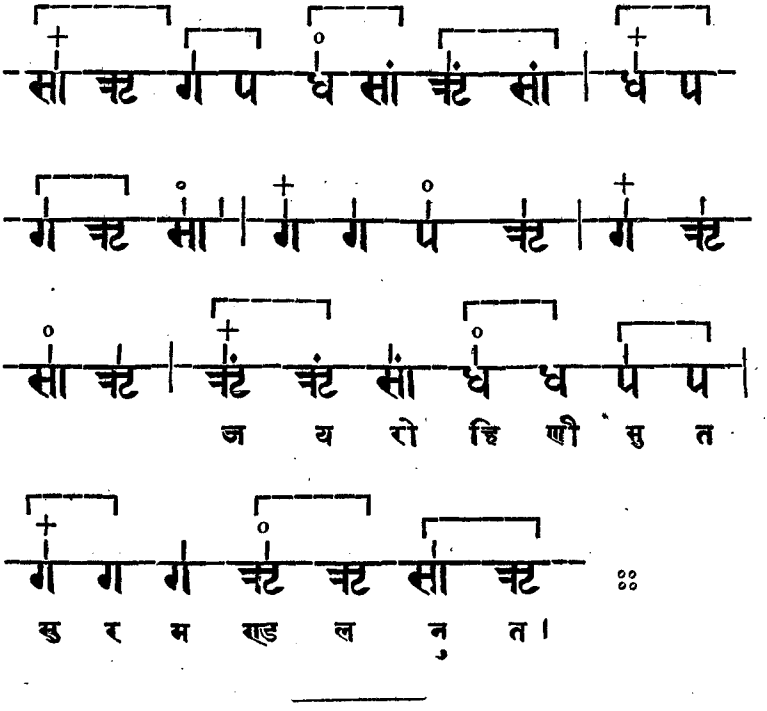
सा चट ग प ध सां चटं सां | ध प
ग चट सा | ग ग प चट | ग चट
सा चट | चटं चटं सां ध ध प प |
ज य रो हि णी सु त
ग ग ग चट चट सा चट ‖
ड र म ण्ड ल नु त।

विष्णुपद।

देश्रो झिंझिट—सम्पूर्ण।

ताल काश्रोयाली।

माथे पर मकुट श्रुतिकुण्डल बिशाल लाल।
अलक कुटिल सोहली मद्गनि॥
कछनिकलित कटि किङ्किनि विचिच तट।
पीताम्बर अङ्गमे विराजे द्युति वैजनि॥
कहे जय दयाल् शुनि मेरो मन हरलिनि।
मन्द मन्द वाजे गोविन्द पाय पयजनि॥

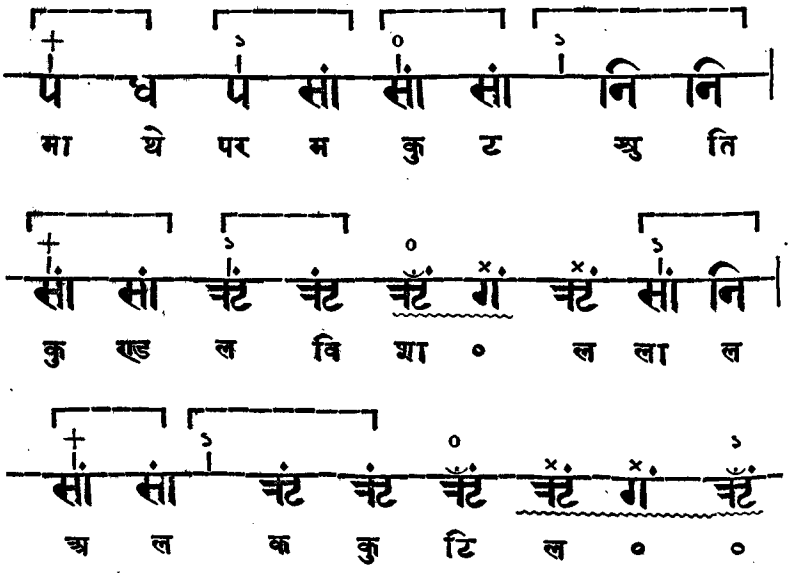

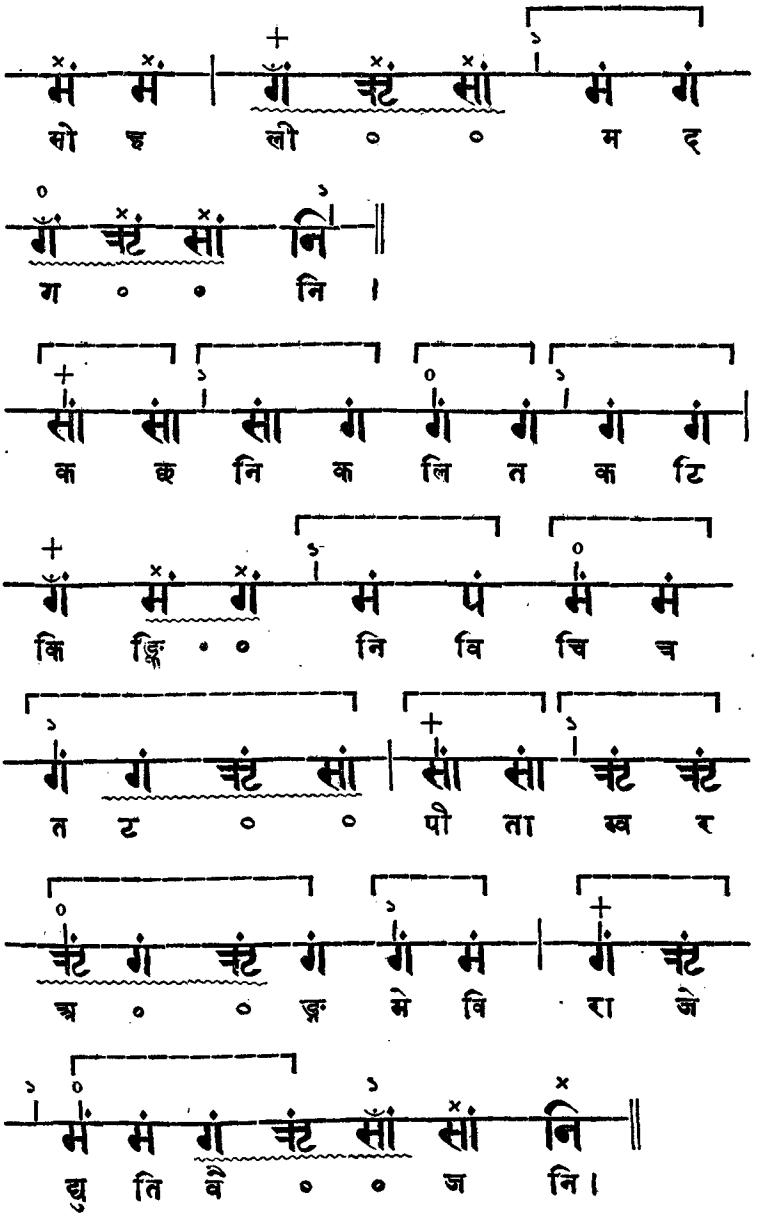
मं मं | गँ चटं सां | मं गं
सो ह ली ० ० म द
गँ चटं सां | नि ‖
ग ० ० नि ।
सां सां सां गं | गं गं गं गं |
क छ नि क लि त क टि
गँ मं गं | मं पं | मं मं
कि ङ्कि ० ० नि वि चि च
गं गं चटं सां | सां सां | चटं चटं
त ट ० ० पी ता म्ब र
चटं गं चटं गं | गं मं | गं चटं
अ ० ० ङ्क मे वि रा जे
मं मं गं चटं | सँां सां | नि ‖
द्यु ति वै ० ० ज नि ।
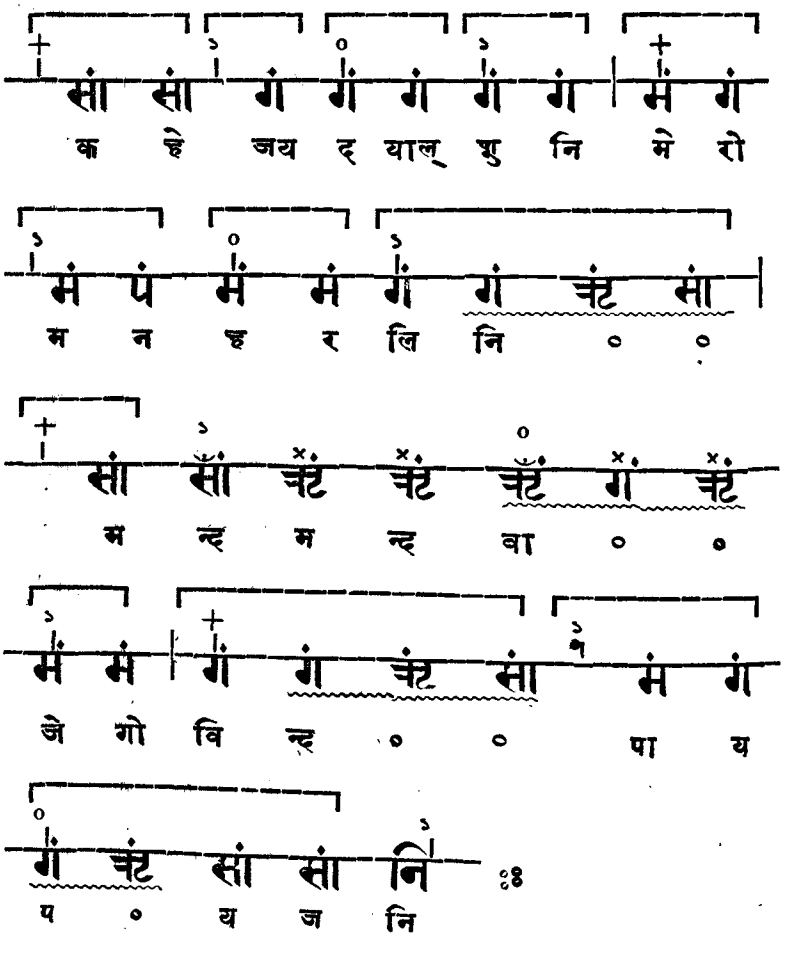
सां सां गं गं गं गं गं मं गं
क हे जय द याल् शु नि मे रो
मं पं मं मं गं गं चंट सां
म न ह र लि नि ० ०
सां सां चंट चंट चंट गं चंट
म न्द म न्द वा ० ०
मं मं गं गं चंट सां मं गं
जे गो वि न्द ० ० पा य
गं चंट सां सां नि
य ० य ज नि

ध्रुपद।

ललित-सम्पूर्ण।

ताल तेओरा।

असुर दलन अघहरण अशरण शरण अलख ए अवि-
नाशी आनन्दनद्वन्द अच्युत सारङ्गधर।
वनअरि विश्वरूप वामन विश्वम्बर शङ्कर।

आस्थायी।

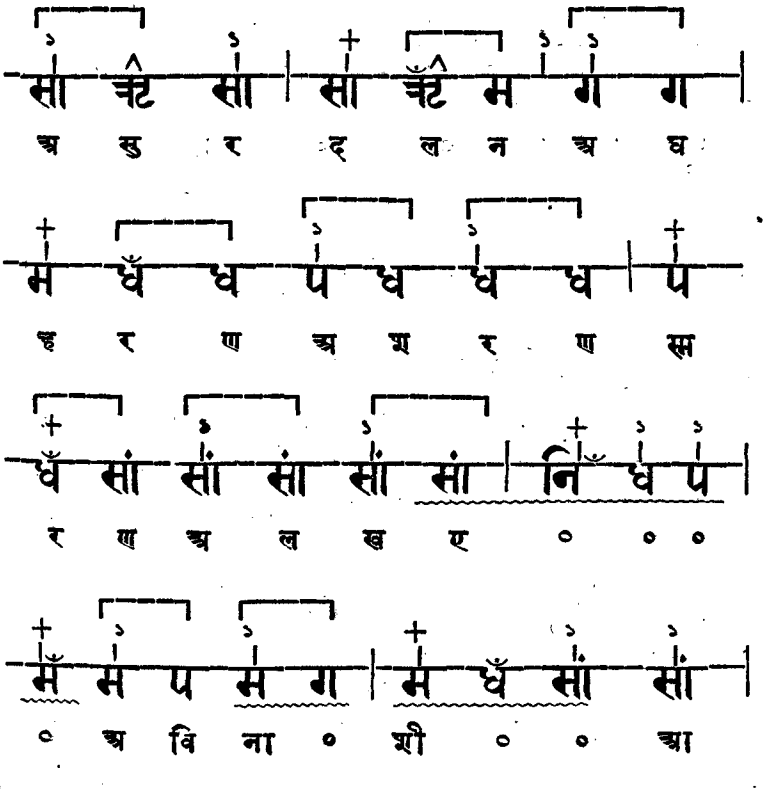

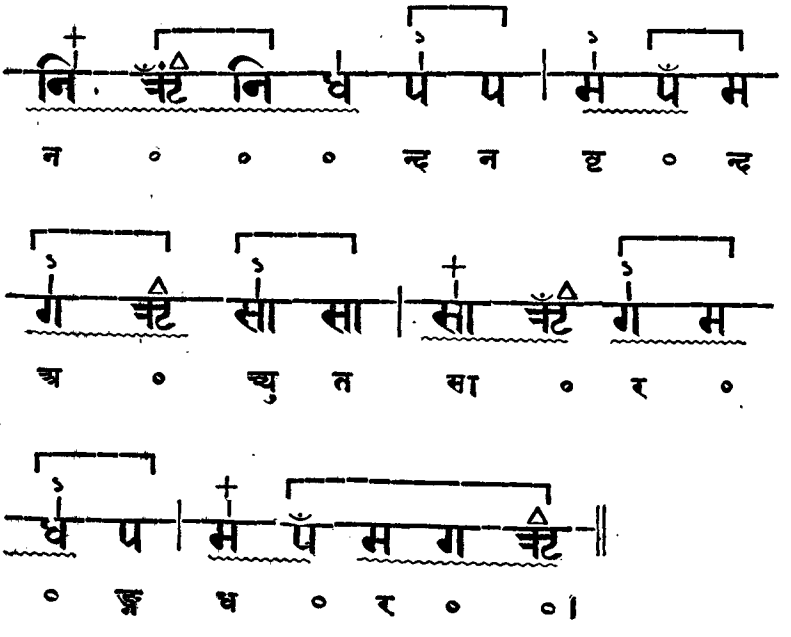
नि नँ नि ध प प | म पँ म
न ० ० ० न्द न ट ० न्द
ग ग सा सा | सा गँ ग म
अ ० च्यु त सा ० र ०
ध प | म पँ म ग गँ ‖
० ङ्ग ध ० र ० ०।

अन्तरा।
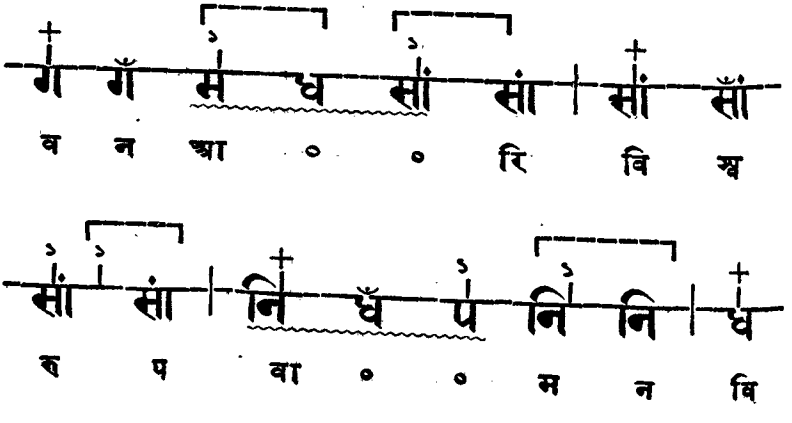
ग गँ म ध सां सां | सां सां
व न आ ० ० रि वि श्व
सां सां | नि धँ प नि नि | ध
रू प वा ० ० म न वि

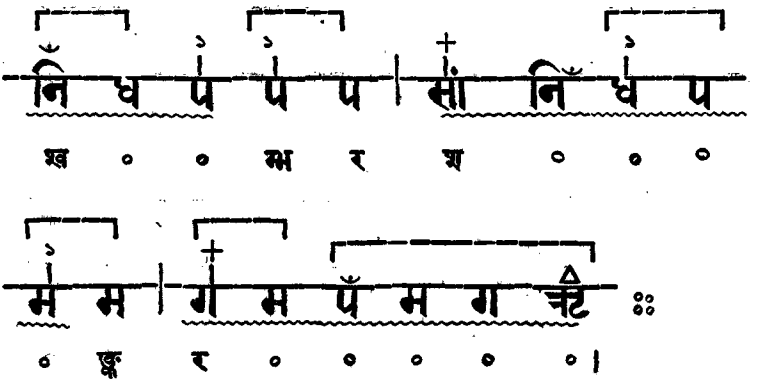

तेलेना।

देश—सम्पूर्ण।

ताल काओयाली।

दारा दारा देर् देर् दिम् दिम् तातानाना तादिया
नारे तादिया नारे तारे दानि।
देर् देर् दिम् देर् देर् दिम् ता दिया तारे दानि
ताना नेतारे ताना नेतारे ताना नेतारे ताना नेता
नारे ना तारे दानि।

आखायी।

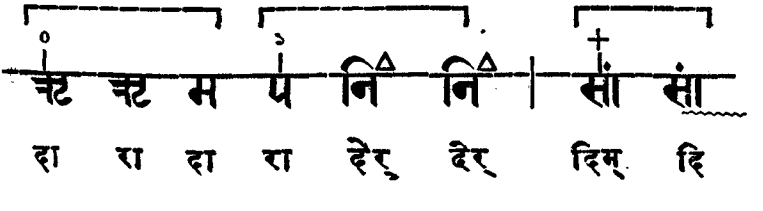

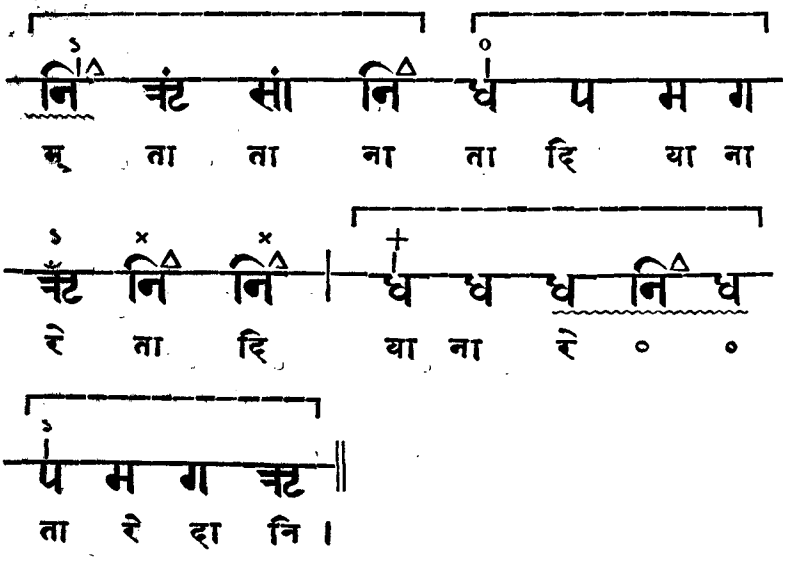
नि चंट सां नि ध प म ग
म् ता ता ना ता दि या ना
चंट नि नि | ध ध ध नि ध
रे ता दि या ना रे ० ०
प म ग चट
ता रे दा नि।

अन्तरा।

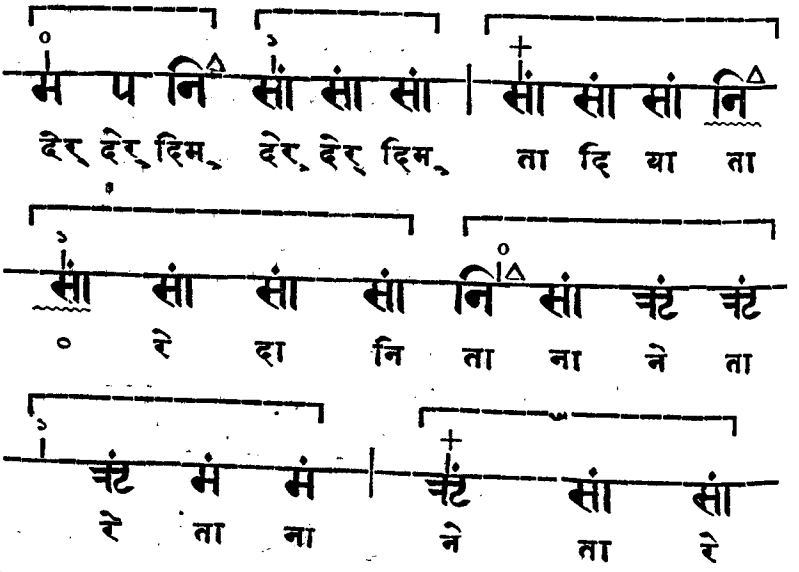
म प नि सां सां सां | सां सां सां नि
देर् देर् दिम् देर् देर् दिम् ता दि या ता
सां सां सां सां नि सां चंट चंट
० रे दा नि ता ना ने ता
चंट मं मं | चंट सां सां
रे ता ना ने ता रे

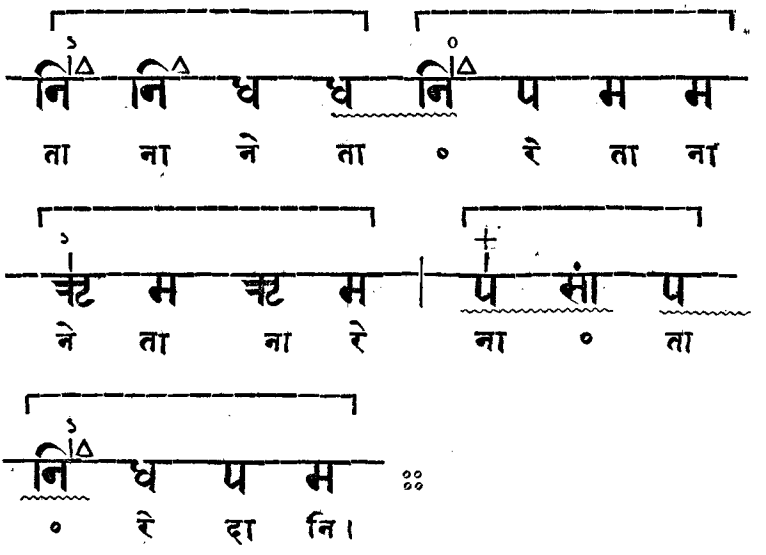

ध्रुपद।

सुरट—सम्पूर्ण।

ताल तेओट।

देशे मारुडुंङ्गेरे मोरा लावोले देशे मारुडुंङ्गेरे
मोरालावोले देशे।
एके आं धि आरि विजुरिचमके यमुना जी कर
रहिं सोओर् देशे।

आस्थायी।

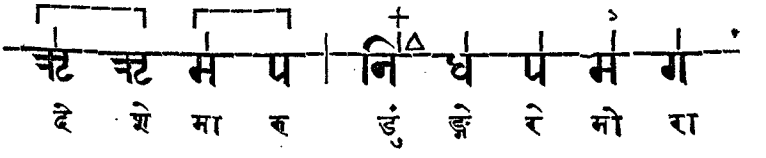

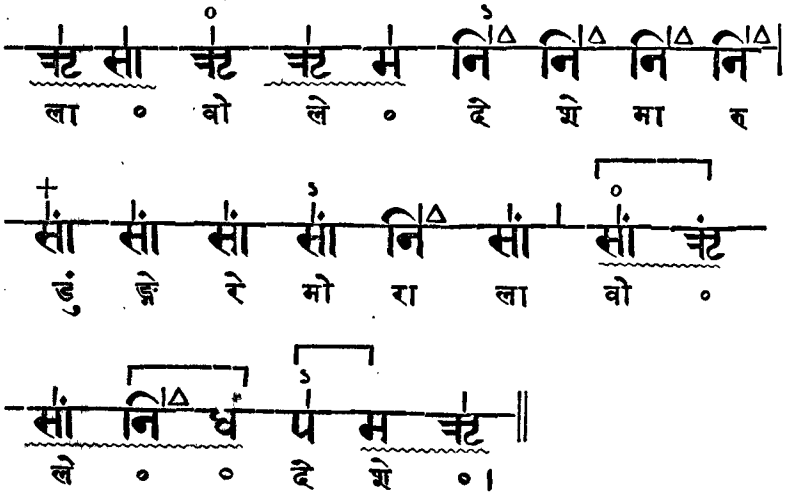
चट सां चट चट म नि नि नि नि
ला ० वो ले ० दे शे मा रु
सां सां सां सां नि सां सां चट
डुं ङ्गे रे मो रा ला वो ०
सां नि ध प म चट
ले ० ० दे शे ०।

अन्तरा।

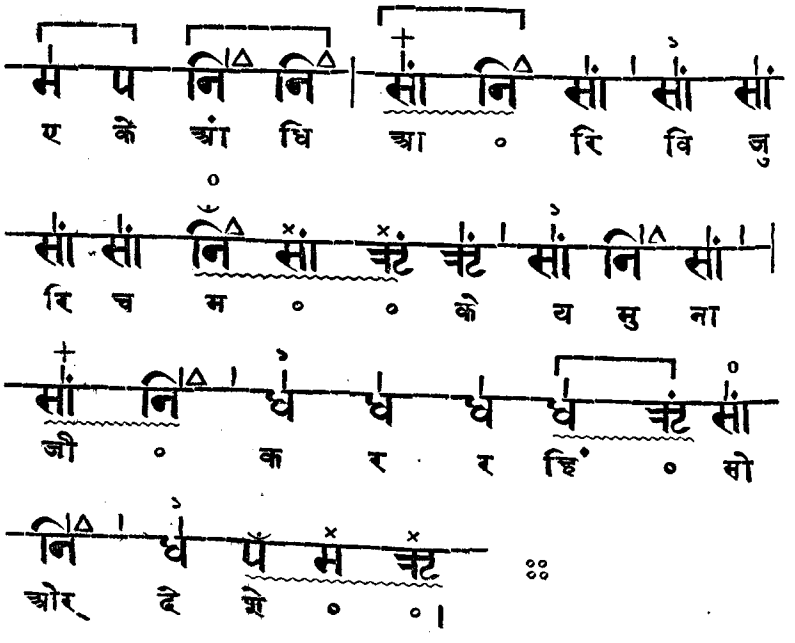
म प नि नि सां नि सां सां सां
ए के आं धि आ ० रि वि जु
सां सां नि सां चट चट सां नि सां
रि च म ० ० के य मु ना
सां नि ध ध ध ध चट सां
जी ० क र र हिं ० सो
नि ध प म चट
ओर दे शे ० ०।

खेयाल।

सोहिनी—खाड़व।

ताल आड़ाठेका।

डरे आजु मोहिनिधे मोहनाने।
यमुनाकिनारमे मुरली वाजाये गाओत राग सरस सुर सोहिनी।

आस्थायी॥

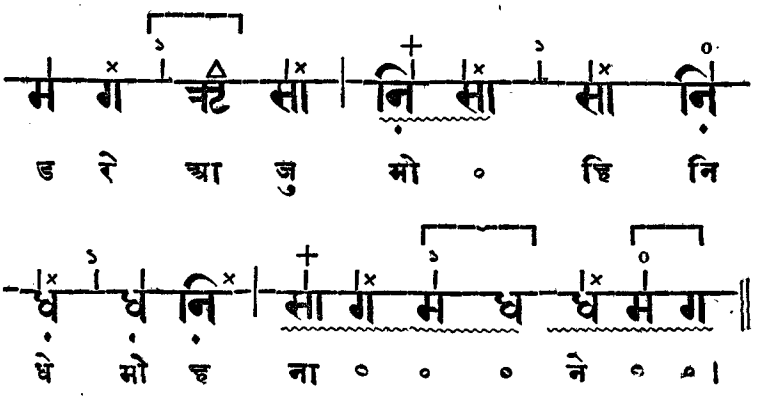

अन्तरा।

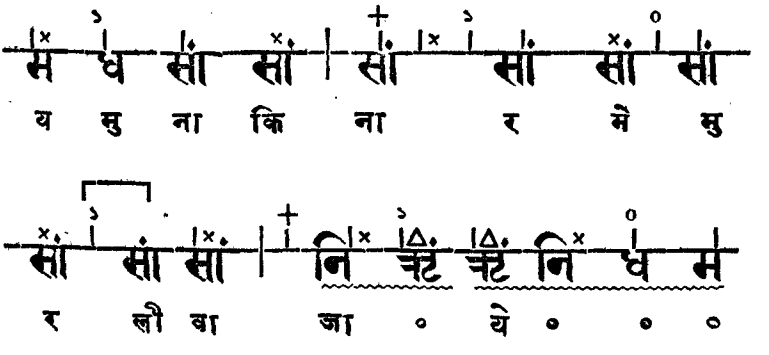

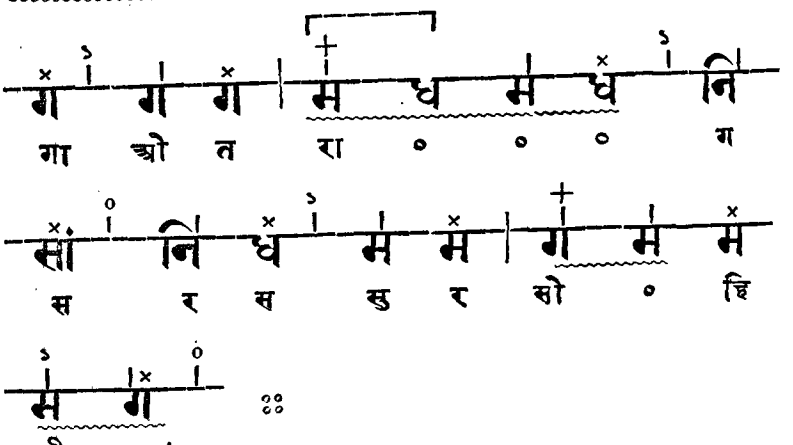

तेलेना।

झङ्करा—सम्पूर्ण।

ताल आड़ाठेका।

तोम् तानारे तेदेदानि तानुम् तादेरे दानि ओदानि ता नुम तानाना तेदानि तारे दानि ता दिम् दिम्।
ना देर् देर् तोम् ताना देर् नाते दानि तारे दानि ता दिम् दिम् दिम् ता ना ना नारे ता दारे ता दानि।

आस्थायी

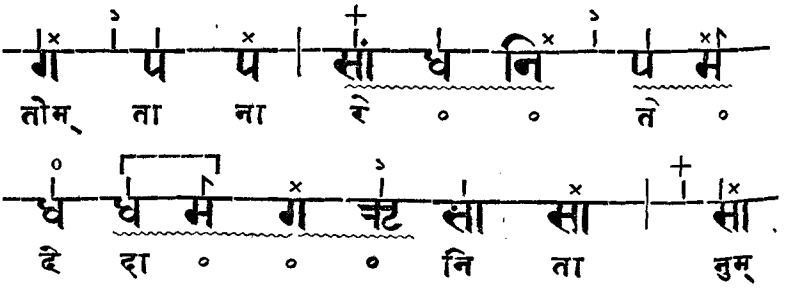

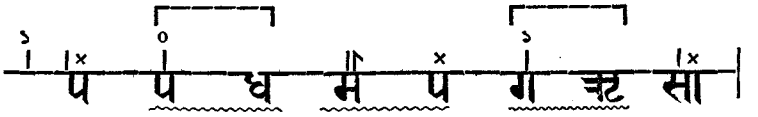
प प ध म प ग ऋट सा
ता दे ० रे ० दा ० नि

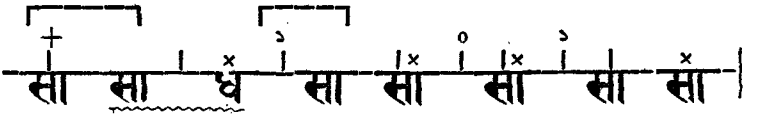
सा सा ध सा सा सा सा सा
ओ दा ० नि ता नुम् ता ना

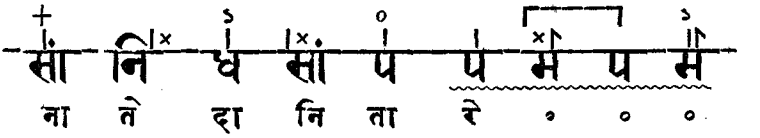
सां नि ध सां प प म प म
ना ते दा नि ता रे ० ० ०

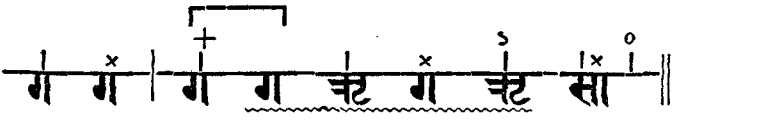
ग ग ग ग ऋट ग ऋट सा
दा नि ता दि ० ० म् दिम्।

अन्तरा।

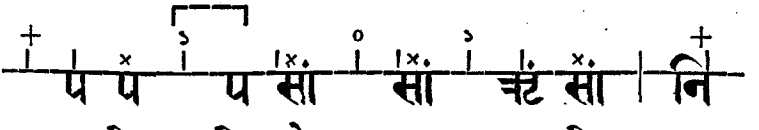
प प प सां सां ऋटं सां नि
ना देर् देर् तोम् ता ना देर् ना

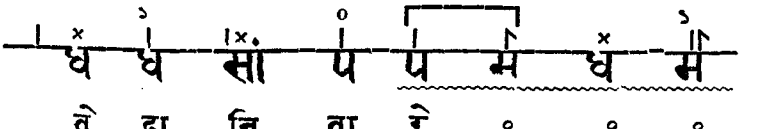
ध ध सां प प म ध म
ते दा नि ता रे ० ० ०

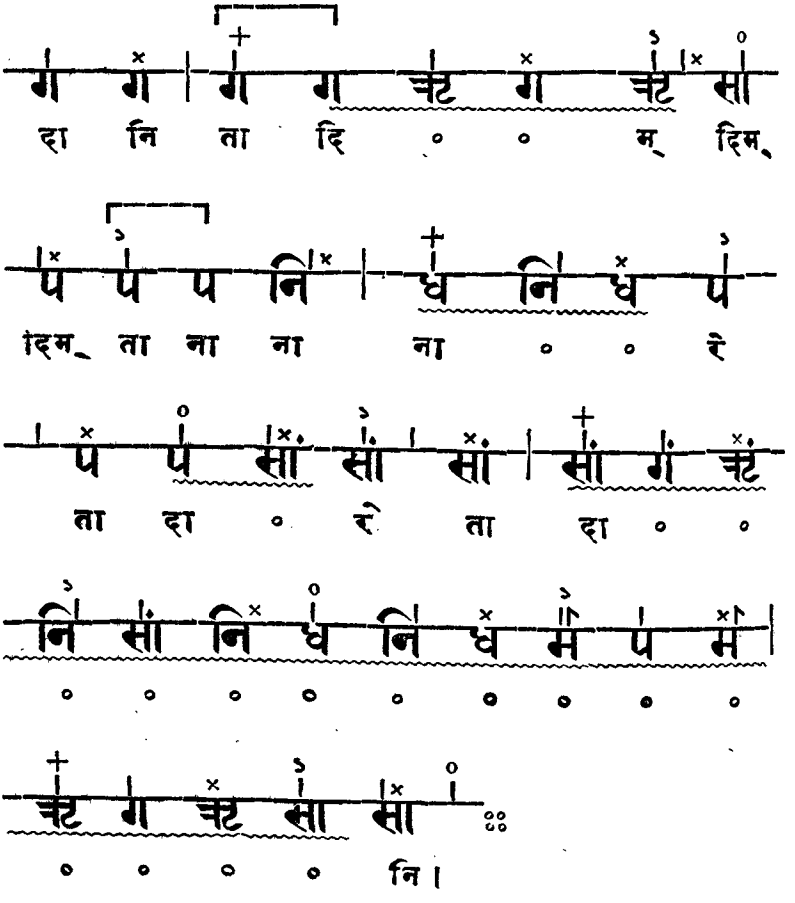
ग ग | ग ग चट ग चट सा
दा नि ता दि ० ० म् दिम्
प प प नि | ध नि ध प
दिम् ता ना ना ना ० ० रे
प प सां सां सां | सां गं चट
ता दा ० रे ता दा ० ०
नि सां नि ध नि ध मं प मं
० ० ० ० ० ० ० ० ०
चट ग चट सा सा
० ० ० ० नि।

खेयाल।

सिन्धु—सम्पूर्ण।

ताल मथ्यमान।

हे मथुरेश मुरारे चाहि कुवलयगञ्जन वामन गौरे।
नलिनलोचन भवभयभञ्जन मदनमथन व्रजवाल-
सङ्ग दनुजारे॥

आस्थायी।

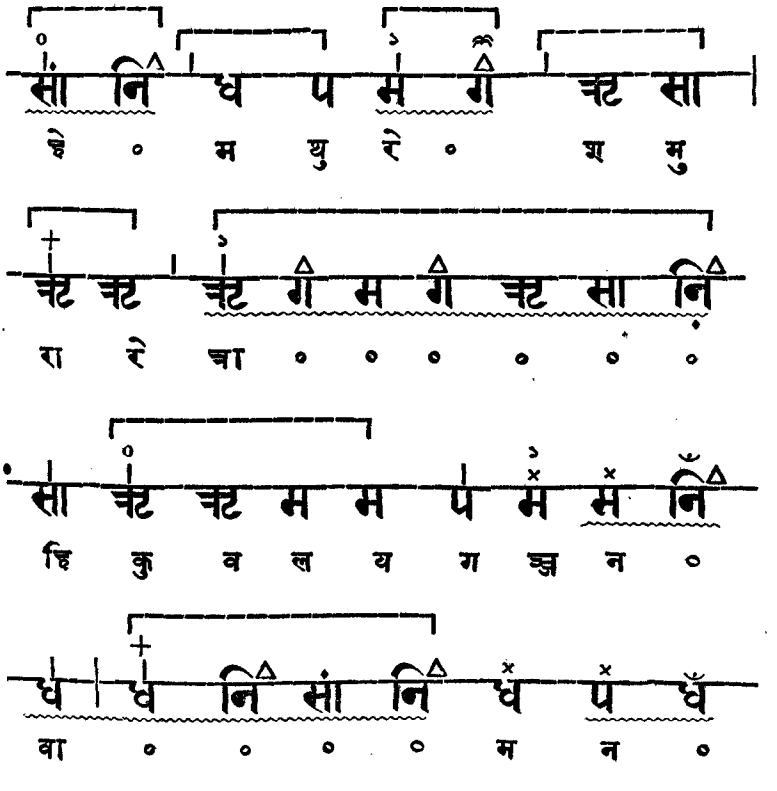

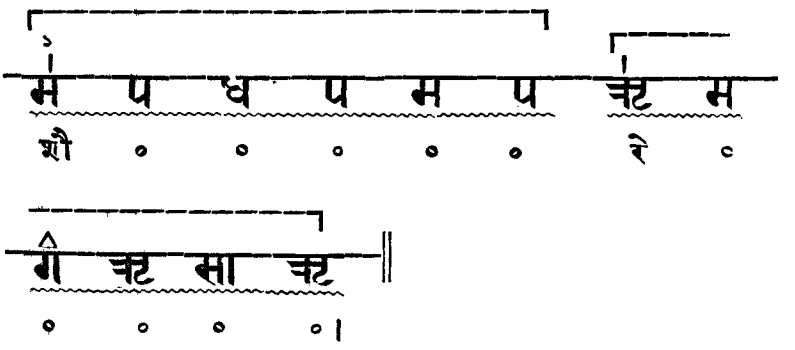
म प ध प म प नि म
शौ ० ० ० ० ० रे ०
गं नि सा नि
० ० ० ०।

अन्तरा।

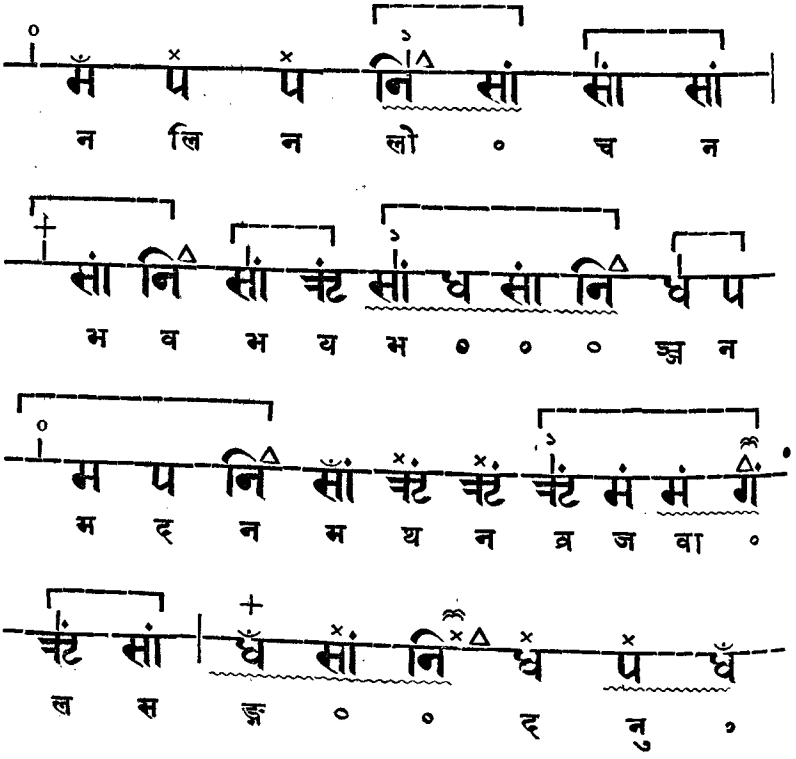
मँ प प निं सां सां सां
न लि न लो ० च न
सां निं सां नि सां ध सां निं ध प
भ व भ य भ ० ० ० ञ्ज न
म प निं सां नि नि नि मं मं गं
म द न म थ न व्र ज वा ०
नि सां धँ सां निं ध प धँ
ल स ङ्ग ० ० द नु ०

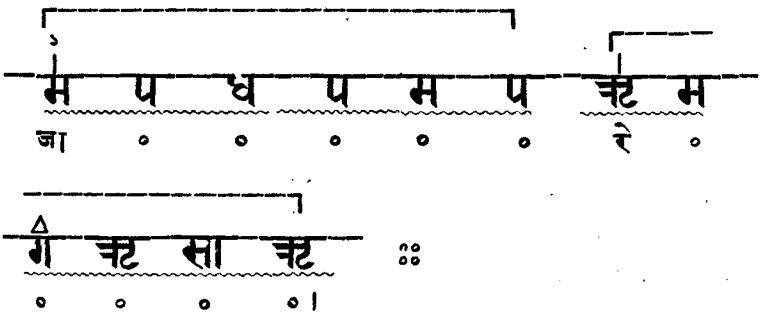

ध्रुपद।

गुज्जरी तोड़ी—सम्पूर्ण।

ताल तेओरा।

शम्भु गौरीनाथ वाहन दृखव माला रुण्ड गरल गरे विराजत
शशी फोंका रत्न बहुविध चन्द्र शोभित शीश एदूया।
केतवास पुराण हर चिपुरारि पाणि पिणाकि शङ्कर सुदिन कर।
मे विष एदूया श्याम रामको कृपा किजे दिजे काशीवास
जय सोंरीं झाङे कोटतेति श एदूया॥

आख्यायी।

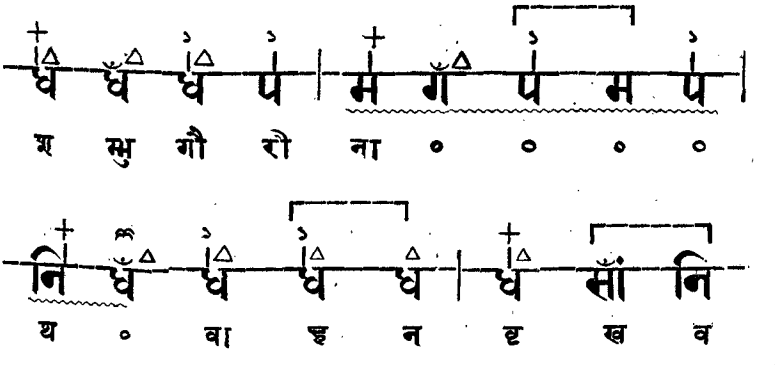

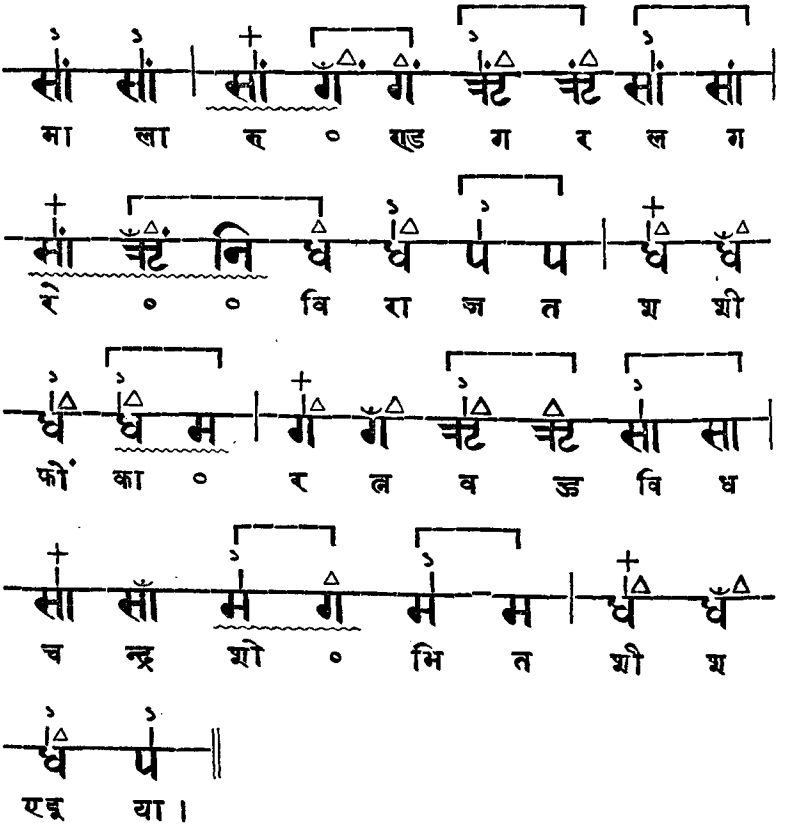
सां सां | सां ग ग चं चं सां सां
मा ला क ० ण्ड ग र ल ग
सां चं नि ध ध प प | ध ध
रे ० ० वि रा ज त श शी
ध ध म | ग ग चं चं सा सा
फों का ० र ल व ङ वि ध
सा सॉं म ग म म | ध ध
च न्द्र शे ० भि त शी श
ध प
एड या।

अन्तरा।

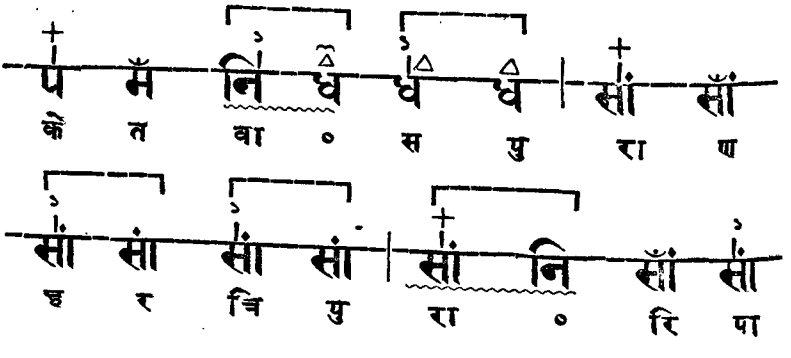
प मॅं नि ध ध ध | सां सॉं
के त वा ० स पु रा ण
सां सां सां सां | सां नि सॉं सां
ह र चि पु रा ० रि पा

सां गं | रें सां सां नि ध प प |
णि पि णा ० कि श ० क्र र
ध धं ध ध ध प | प पं
स दि न क र। मे वि श
प नि नि | ध | प | प मं
ए ह या ० ० श्या म
नि ध ध ध | सां सां नि सां
रा ० म को कृ पा ० कि
सां | सां नि सां ग | रें सां सां सां
जे दि जे का शी वा स ज य
सां सां | रें सां नि ध प म ग रें |
सों रि झा ० ० ० ० ० ० ०

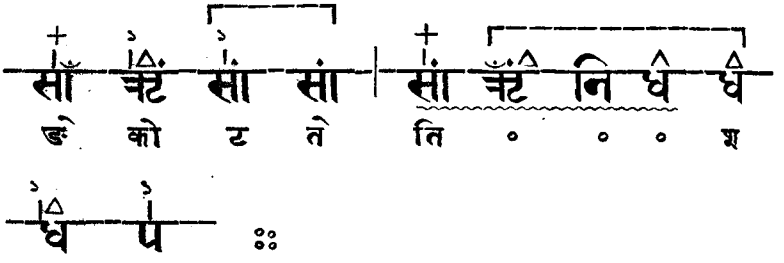

ध्रुपद।

देओसाग—सम्पूर्ण।

ताल—झांपताल।

दुर्गे दरणि दुख दारिद्र दाहनि दुष्ट विदारिणि
कर शम्भु-जाया।
असुर संहारिणि रक्तबीज मारिणि दिन
अभयवर सुरनर पाया॥
संसार तारिणि तारा तरणि तेउ कीरे
कृपा ने कया परमा माया।
सप्तदीप नवखण्ड चैलोक्य व्यापित इयातें
सुयश चारु आनन्द पाया॥

आस्थायी।

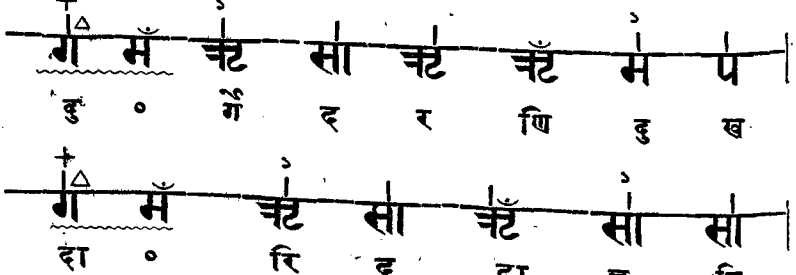

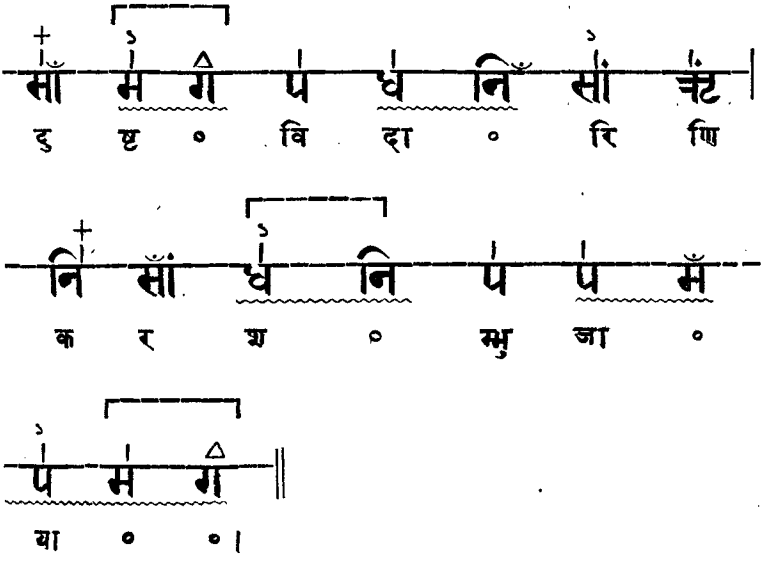
सां म ग प ध नि सां रें
दु ष्ट ० वि दा ० रि णि
नि सां ध नि प प मँ
क र श ० भु जा ०
प म ग
या ० ०।

अन्तरा।
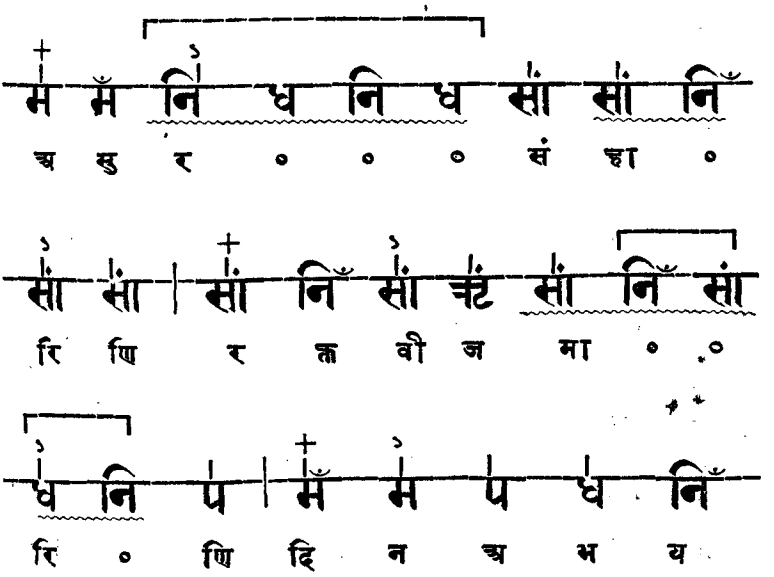
म मँ नि ध नि ध सां सां नि
अ सु र ० ० ० सं हा ०
सां सां सां नि सां रें सां नि सां
रि णि र क्त बी ज मा ० ०
ध नि प मँ म प ध नि
रि ० णि दि न अ भ य

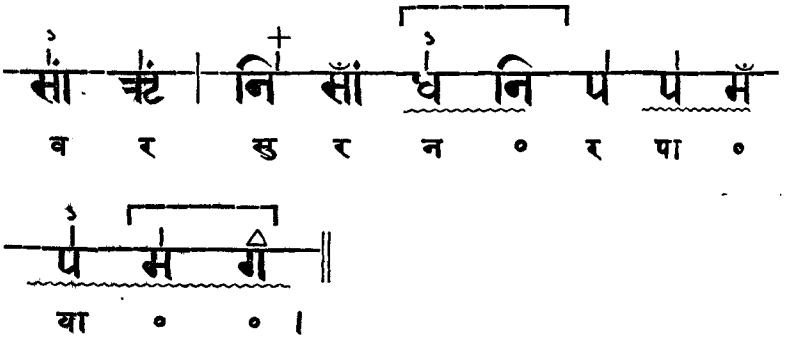
सां रें नि सां ध नि प प मँ
व र सु र न ० र पा ०
प म गं
या ० ० ।

सञ्चारी।
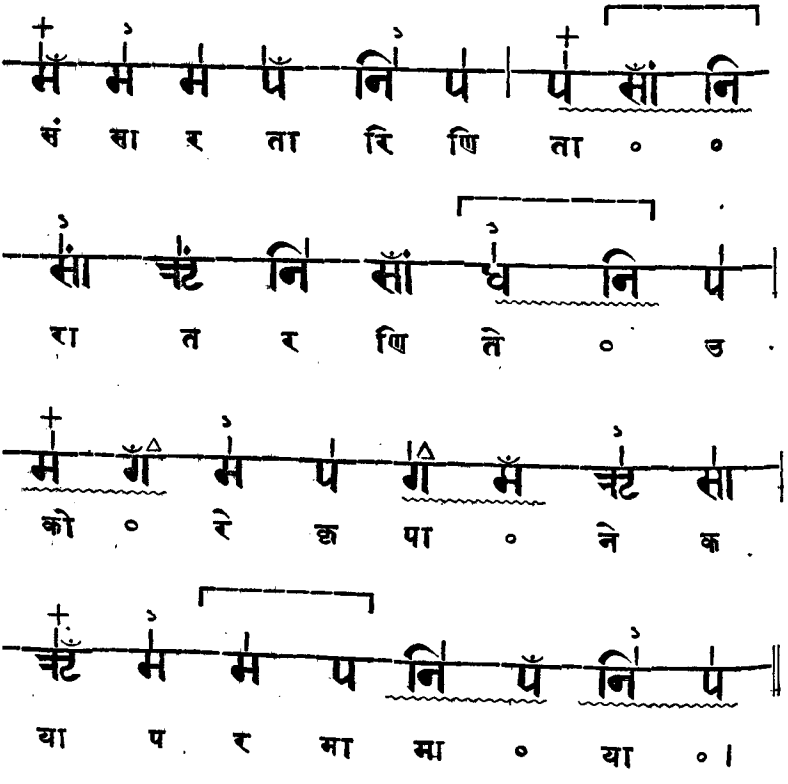
मँ म म पँ नि प प सां नि
सं सा र ता रि णि ता ० ०
सां रें नि सां ध नि प
रा त र णि ते ० उ
म गँ म प गं मँ रें सा
को ० रे क्ष पा ० ने क
रें म म प नि पँ नि प
या प र मा मा ० या ० ।

आभोग।

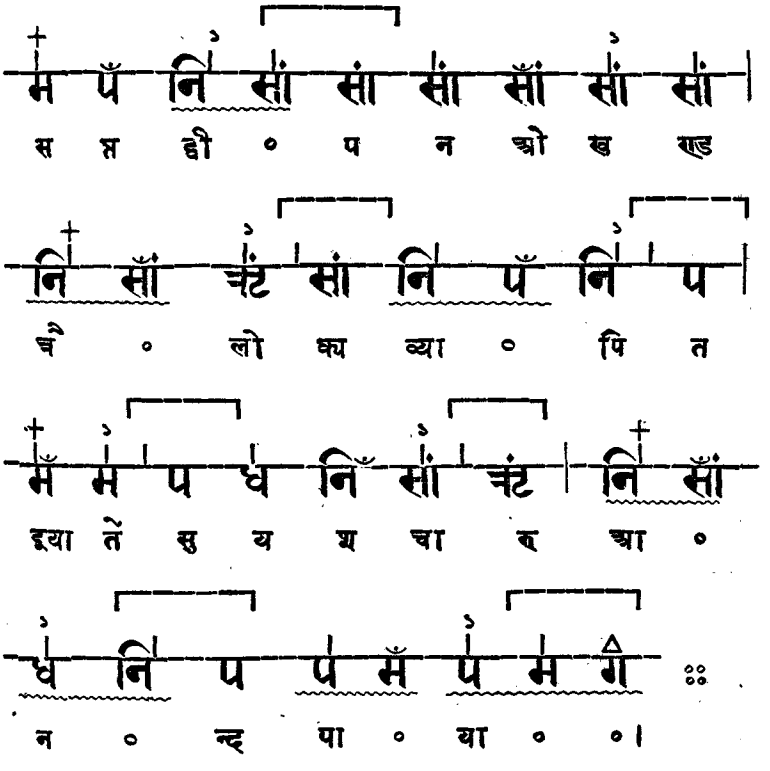
म पँ नि सां सां सां सां सां सां
स न्न ह्री ० प न ओ ख ण्ड
नि सां रंट सां नि पँ नि प
चै ० लो क्य व्या ० पि त
मँ म प ध निँ सां रंट नि सां
इया तें सु य श चा रु आ ०
ध नि प प मँ प म ग ::
न ० न्द पा ० या ० ०।

ध्रुपद।

वृन्दावनी सारङ्ग—ओड़व।

ताल तेओरा।

दिम् दिम् दारा दिम् दारा दिम् दारा दिम् दारा तादेरे
दानि ओता ता ना ना ना ना देर् देर् तादा।
ओ दाना तोम् तोम् दारा ओ दाना तोम् तोम् दारा दिम्
दिम् दिम् दिम् तानुम् ता देरे दानि ओ ता ता
ना ना ना ना देर् देर् तादा॥
ओ ता ता ना ना ना ना देर् देर् तादा।

आस्थायी।

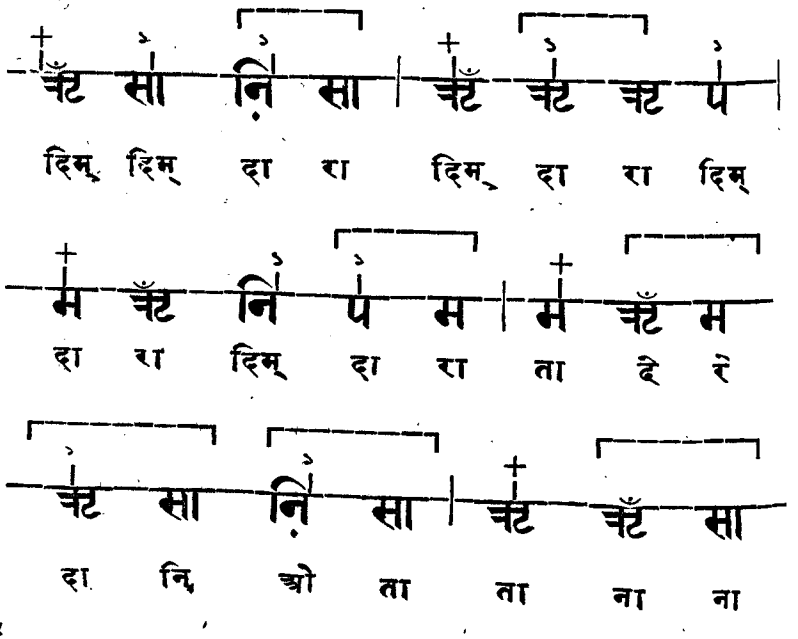

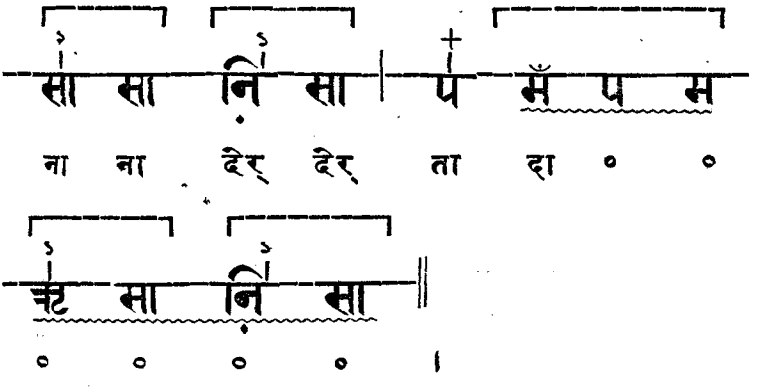
सा सा नि़ सा | प मँ प म
ना ना देर् देर् ता दा ० ०
चट सा नि़ सा ‖
० ० ० ० |

अन्तरा।

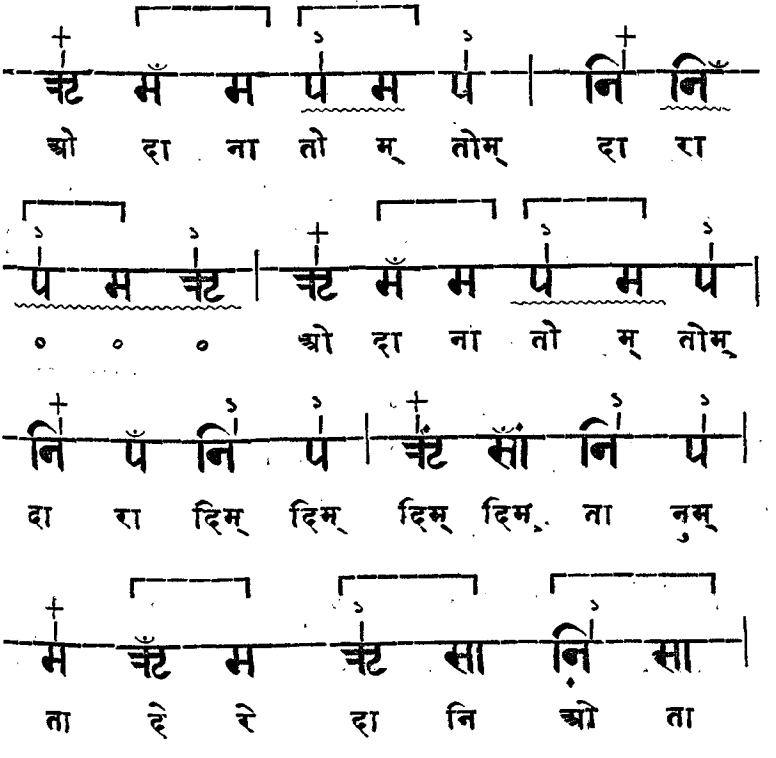
चट मँ म प म प | नि निँ
ओ दा ना तो म् तोम् दा रा
प म चट | चट मँ म प म प |
० ० ० ओ दा ना तो म् तोम्
नि पँ नि प | चट सां नि प |
दा रा दिम् दिम् दिम् दिम् ता नुम्
म चँट म चट सा नि़ सा |
ता दे रे दा नि ओ ता

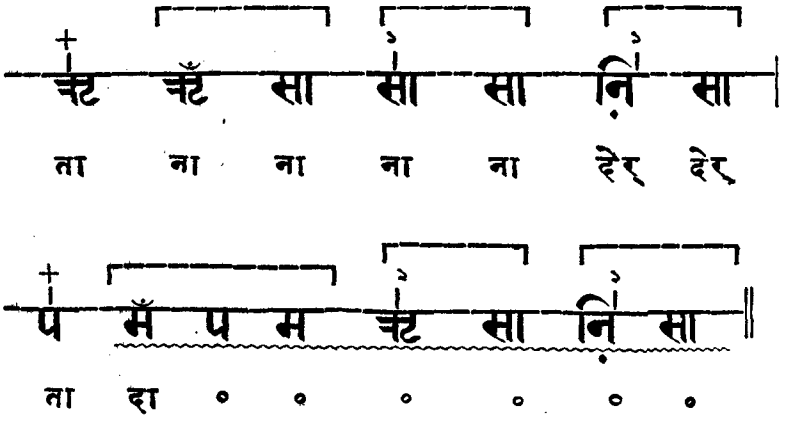
चट चटँ सा सां सा नि़ सा
ता ना ना ना ना देर् देर्
प मँ प म चट सा नि़ सा
ता दा ० ० ० ० ० ०

अन्तरा।
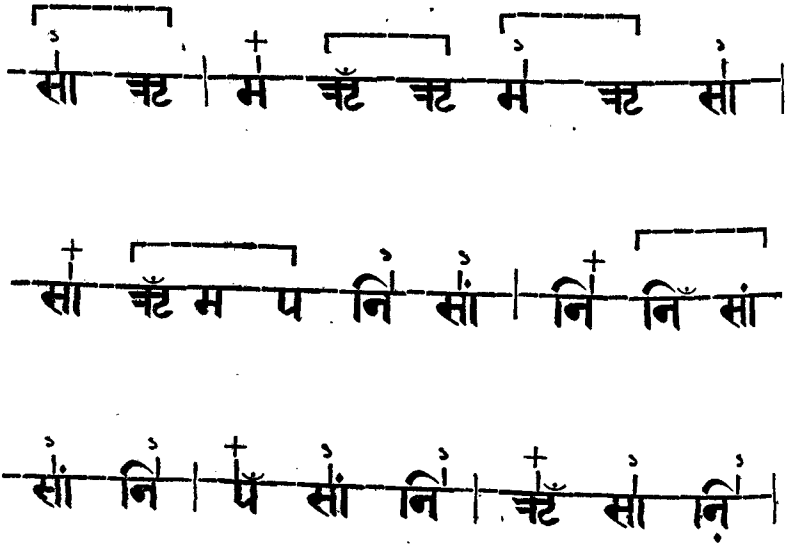
सां चट | म चटँ चट | म चट सां |
सां चटँ म प नि़ सां | नि़ निँ सां
सां नि़ | पँ सां नि़ | चटँ सा नि़ |

ध्रुपद।

षड्‌ज-सारङ्ग—सम्पूर्ण।

ताल सुरफाक्ता।

चन्द्र गगने मारुरे ओदे तेताना तिया इया इया किटिताका

ताका धुम्‌किटि ताकाधेरे किटिताका।

उपजत भेद थो दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् दिग् था॥

आस्थायी।

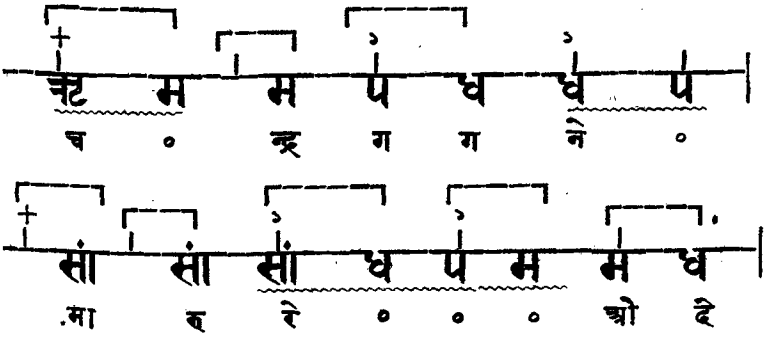

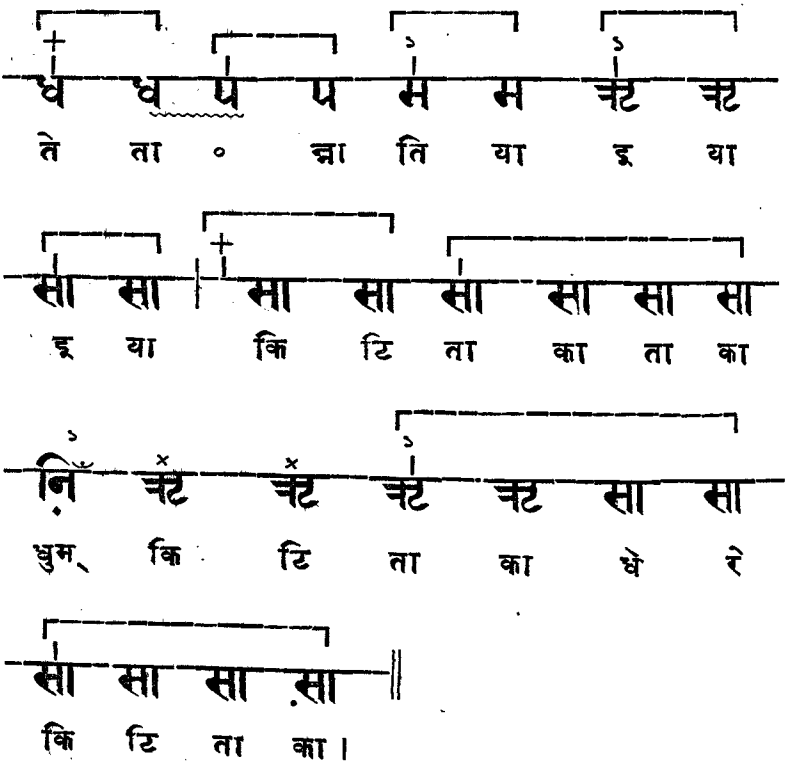
ध ध प प म म नि नि
ते ता ० ना ति या इ या
सा सा मा सा सा सा सा सा
इ या कि टि ता का ता का
नि नि नि नि सा सा
धुम् कि टि ता का धे रे
सां सा सा सा
कि टि ता का।

अन्तरा।

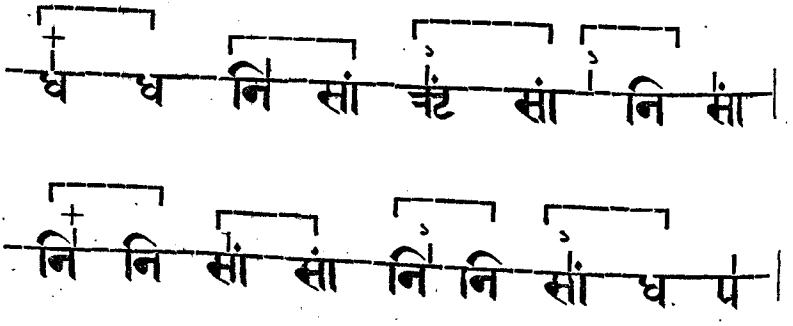
ध ध नि सां नि सां नि सां
नि नि सां सां नि नि सां ध प

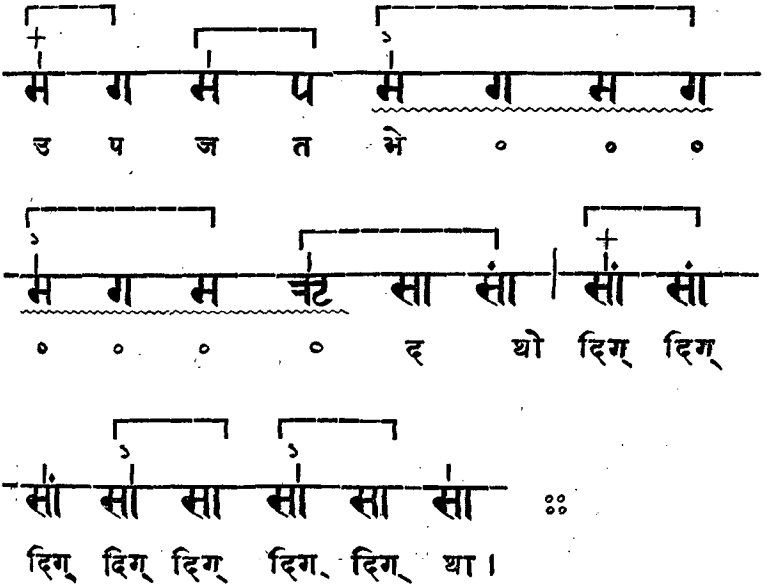

ध्रुपद।

भैरवी—सम्पूर्ण।

ताल—सूथ त्रिताली।

प्रलय-पयोधिजले धृतवानसि वेदं विहितवहित्रचरित्रमखेदं।
केशवधृतमीन-शरीर जय जगदीश हरे ॥ १ ॥

आस्थायी ॥

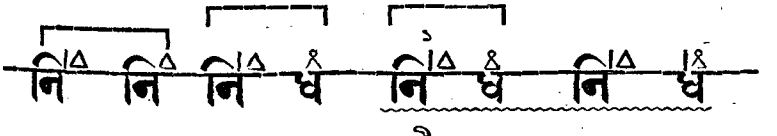

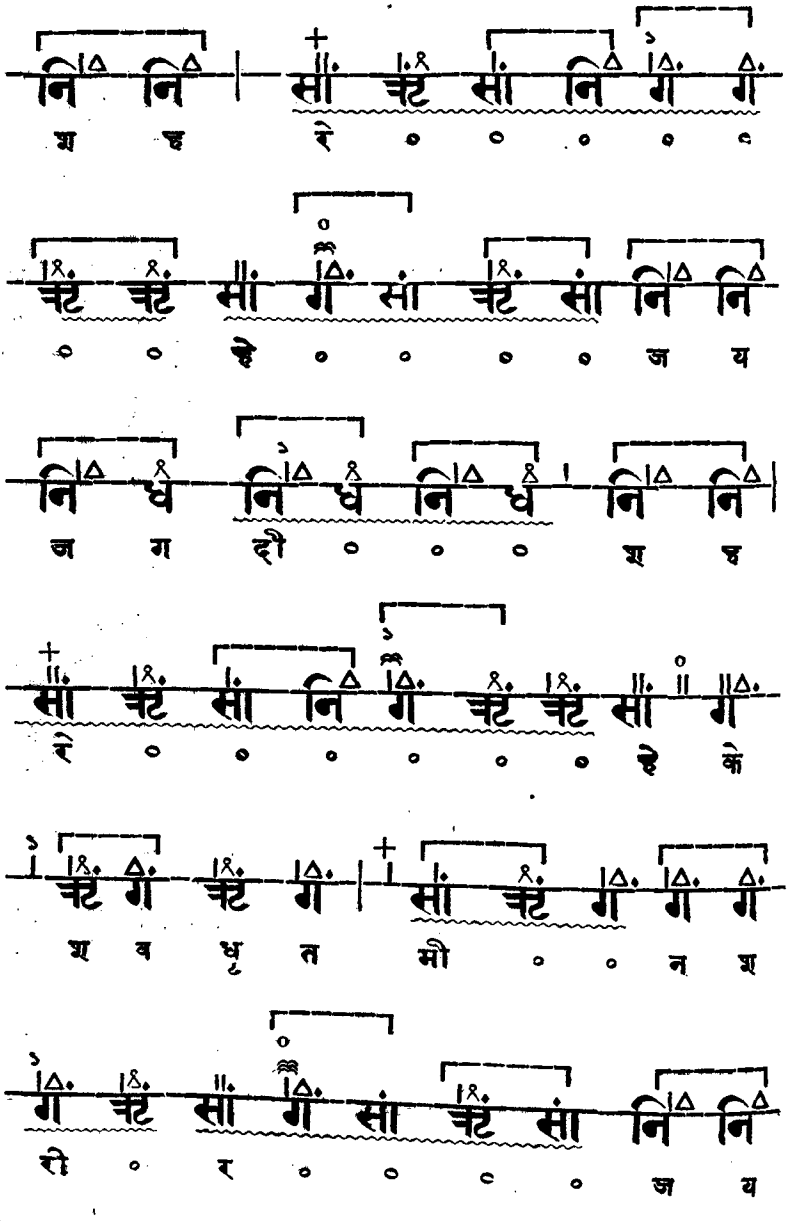
नि नि | सां रेंटं सां नि गं गं
ग ह रे ० ० ० ० ०
रेंटं रेंटं सां गं सां रेंटं सां नि नि
० ० हे ० ० ० ० ज य
नि धं नि धं नि धं | नि नि |
ज ग दी ० ० ० ग ह
सां रेंटं सां नि गं रेंटं रेंटं सां गं
रे ० ० ० ० ० ० हे के
रेंटं गं रेंटं गं | सां रेंटं गं गं गं
ग व धृ त मी ० ० न ग
गं रेंटं सां गं सां रेंटं सां नि नि
री ० र ० ० ० ० ज य

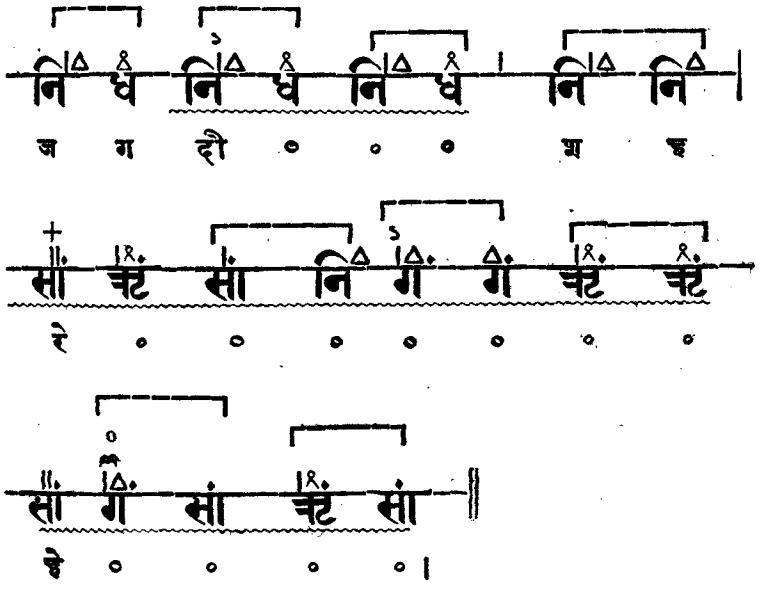
नि ध नि ध नि ध नि नि
ज ग दी ० ० ० ग ह
सां रें सां नि गं गं रें रें
रे ० ० ० ० ० ० ०
सां गं सां रें सां
हे ० ० ० ०

अन्तरा।

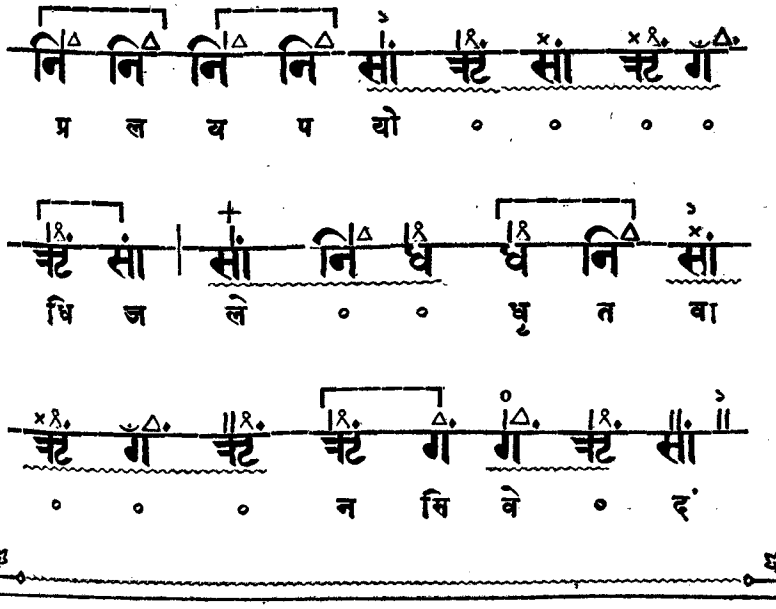
नि नि नि नि सां रें सां रें गं
प्र ल य प यो ० ० ० ०
रें सां सां नि ध ध नि सां
धि ज ले ० ० धृ त वा
रें गं रें रें गं गं रें सां
० ० ० न सि वे ० दं

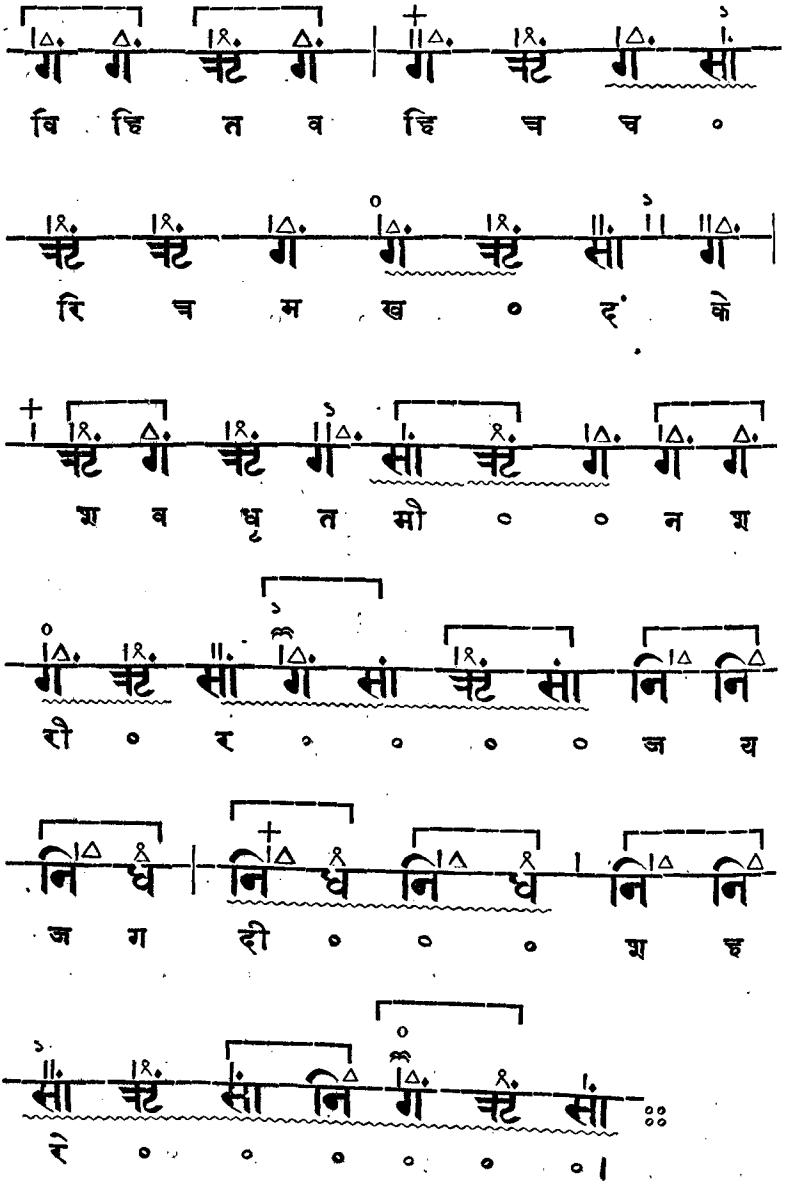
गं गं चटं गं | गं चटं गं सां
बि हि त व हि च च ०
चटं चटं गं गं चटं सां गं |
रि च म ख ० दं के
चटं गं चटं गं सां चटं गं गं गं
श व धृ त मौ ० ० न श
गं चटं सां गं सां चटं सां नि नि
री ० र ० ० ० ० ज य
नि धं | नि धं नि धं | नि नि
ज ग दी ० ० ० श ह
सां चटं सां नि गं चटं सां ::
रे ० ० ० ० ० ०।

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे
धरणिधारणकिणचक्रगरिष्ठे ।
केशव धृतकच्छपरूप
जय जगदीश हरे । २ ।

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव धृतशूकररूप
जय जगदीश हरे । ३ ।

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गं ।
केशव धृतनरहरिरूप
जय जगदीश हरे । ४ ।

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पदनखनीरजनितजनपावन ।
केशव धृतवामनरूप
जय जगदीश हरे । ५ ।

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापं ।
केशव धृतभृगुपतिरूप
जय जगदीश हरे । ६ ।

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुखमौलिबलिं रमणीयं।
केशव धृतरामशरीर
जय जगदीश हरे। ७।

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभं।
केशव धृतहलधररूप
जय जगदीश हरे। ८।

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातं।
केशव धृतबुद्धशरीर
जय जगदीश हरे। ९।

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालं।
केशव धृतकल्किशरीर
जय जगदीश हरे। १०।

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं
शृणु शुभदं सुखदं भवसारं।
केशव धृतदशविधरूप
जय जगदीश हरे॥*

---

* यही गान या श्लोकका भागसमुदाय ऊपरमे लिखे हुये सुरका अनुसार गाना चाहिये।

ध्रुपद।

भैरव—सम्पूर्ण।

ताल चौताल।

लम्बोदर गजानन गिरिजासुत गणेश एकरदन
प्रसन्नवदन अरुणवेश।
नर नारी गुणि गन्धर्व्व किन्नर यश तोमार मिल
ब्रह्मा विष्णु औरते पूजत महेश।
अष्टसिद्ध नवनिध मूषिकवाहन विद्यापति
सुमेरत तिनके शेष।
अस्तुत करत तानसेन आए भाए रम्भा विघ्नहरण
विनायकरूप स्वरूप अशेष।

आस्थायी।

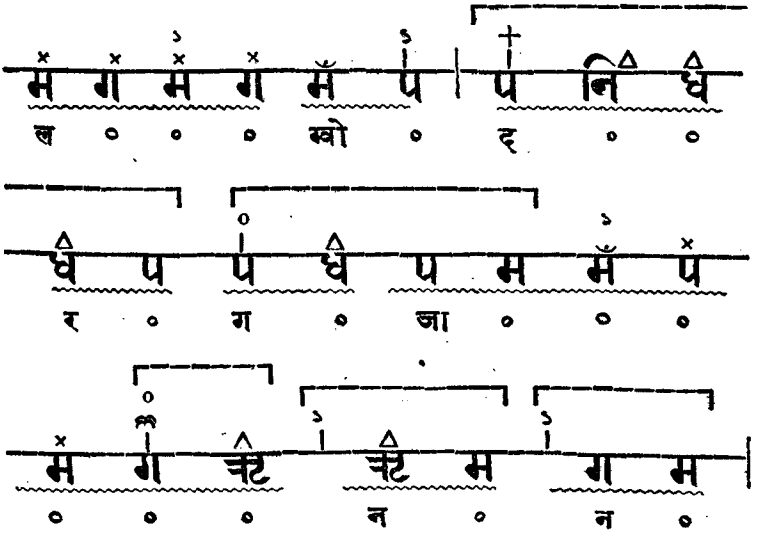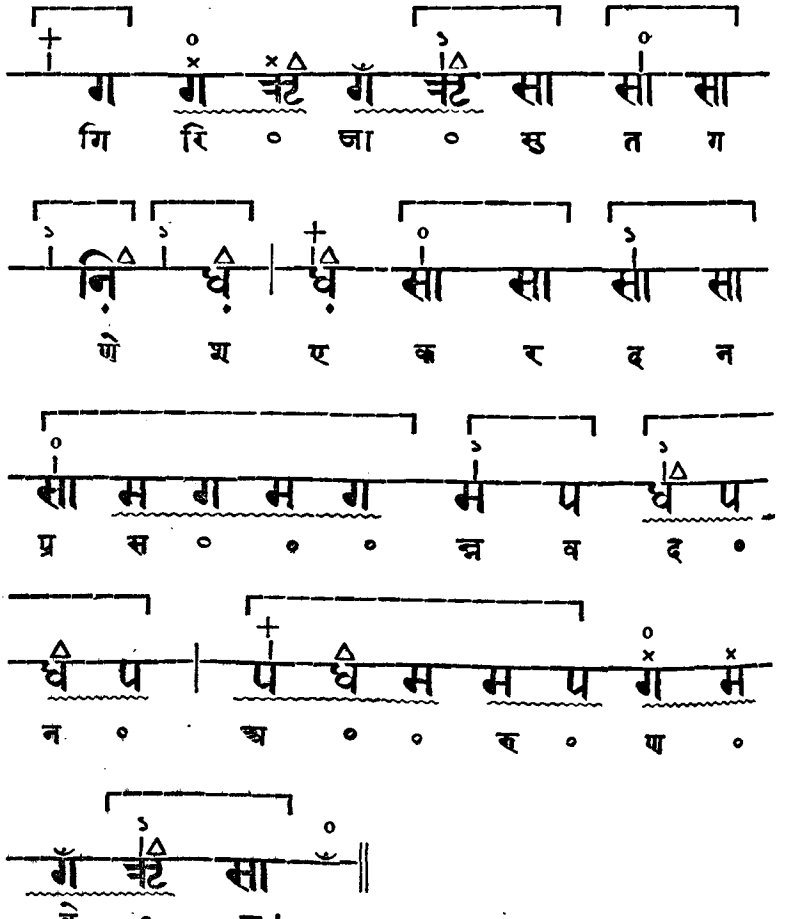

ग ग चट गँ चट सा सा सा
गि रि ० जा ० सु त ग
नि़ ध़ ध़ सा सा सा सा
णे श ए क र द न
सा म ग म ग म प ध प
प्र स ० ० ० न्न व द ०
ध प प ध म म प ग म
न ० अ ० ० क ० ण ०
गँ चट सा
वे ० श।

अन्तरा।

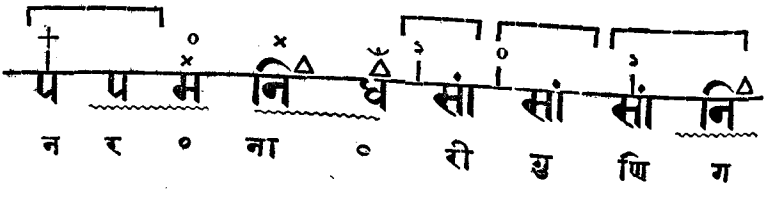
प प म नि ध सां सां सां नि
न र ० ना ० री यु णि ग

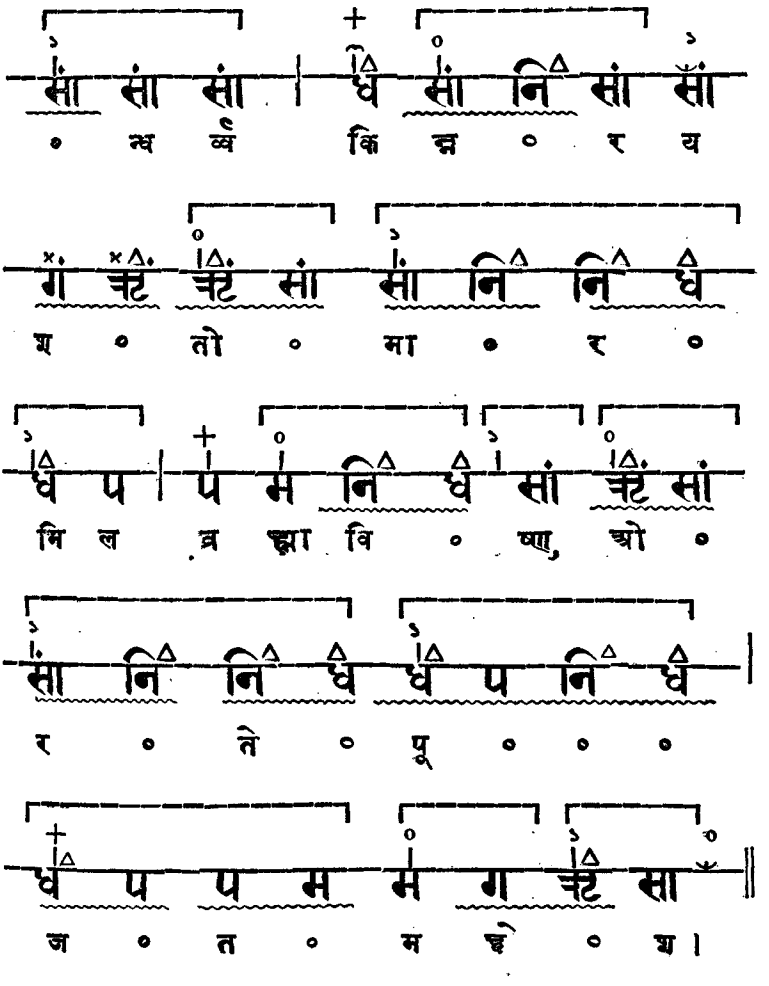
सां सां सां | धं सां निं सां सां
० स्व र्व कि न्न ० र य
गं चटं चटं सां सां निं निं धं
ग ० तो ० मा ० र ०
धं प | प म निं धं सां चटं सां
मि ल ब्र ह्मा वि ० ष्णु, ओ ०
सां निं निं धं धं प निं धं
र ० ते ० पू ० ० ०
धं प प म म ग चटं सा
ज ० त ० म हे ० श।
सञ्चारी।
सा धं धं प धं पं धं धं
अ ष्ट सि ० ० ० द्ध न

44262

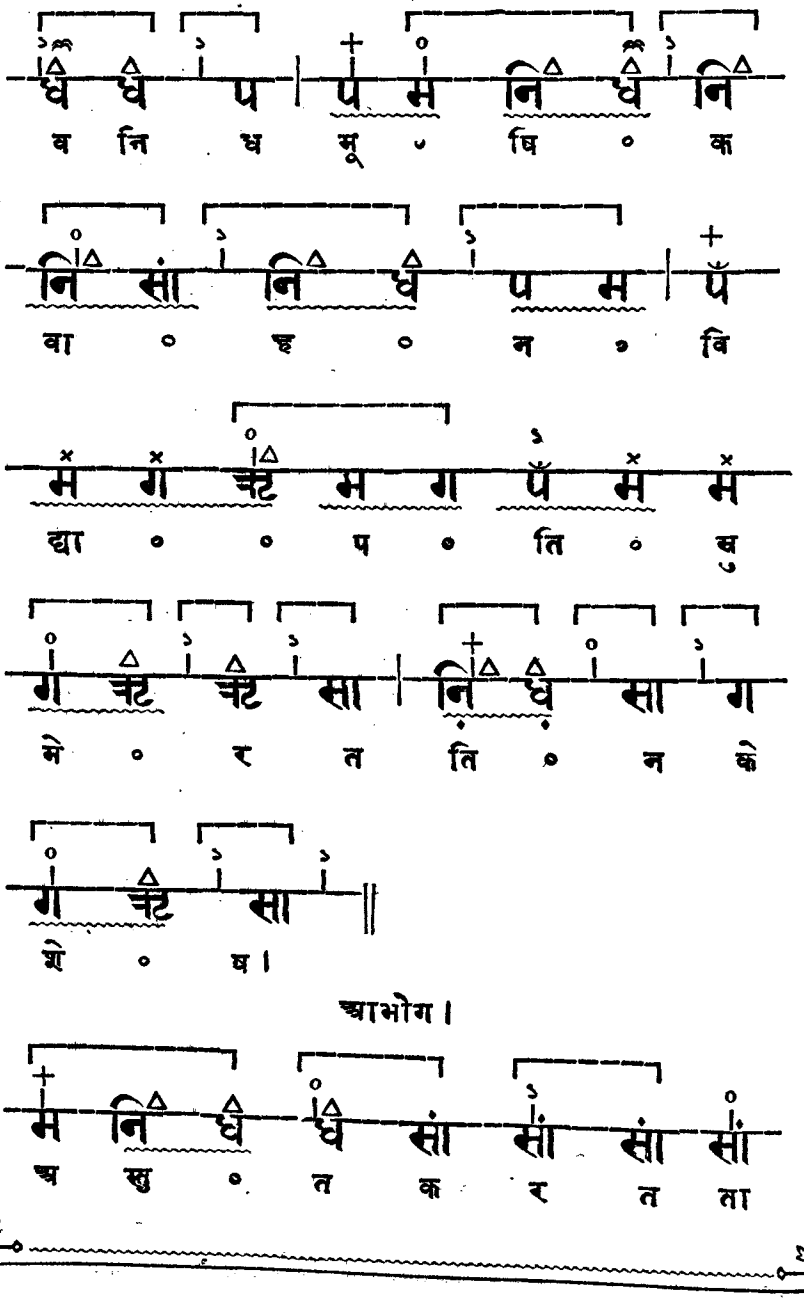
ध ध प | प म नि ध नि
व नि ध मू ० षि ० क
नि सां नि ध प म | पँ
वा ० ह ० न ० वि
म ग चट म ग पँ म म
द्या ० ० प ० ति ० ज
ग चट चट सा | नि ध सा ग
मे ० र त ति ० न के
ग चट सा ‖
शे ० ष।

आभोग।

म नि ध ध सां सां सां सां
अ सु ० त क र त ता

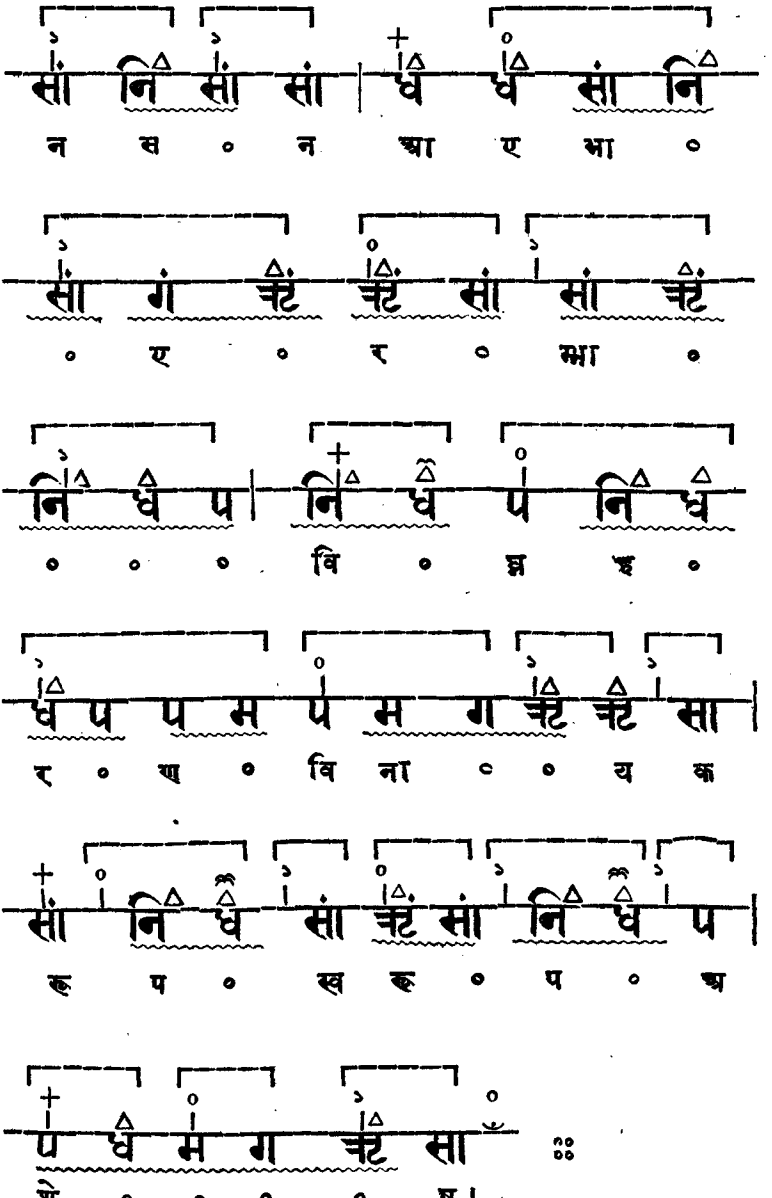
सां नि सां सां | ध ध सां नि
न स ० न आ ए भा ०
सां गं रें रें सां सां रें
० ए ० र ० भा ०
नि ध प | नि ध प नि ध
० ० ० वि ० घ्न ह ०
ध प प म प म ग रे रे सा |
र ० ण ० वि ना ० ० य क
सां नि ध सां रें सां नि ध प |
रू प ० ख रू ० प ० अ
प ध म ग रे सा ::
शे ० ० ० ० ष।

ध्रुपद।

हामिर—सम्पूर्ण।

ताल तेओरा।

सकलजनगणपालिनि नरदेवसम्पद्दायिनि कुदृग्-
भिकुटीरोधामहाराज्ञि विविधरिपुभयहारिणि।
अखिलभारतवर्षजनपदमानगौरववर्द्धिनि याचे सदा तव
कृपालेशं सुखयशोगुणशालिनि।
पातु कण्ठे सारदा त्वां शिरसि रक्षतु कालिका वाङ्मूले
भैरवी हृदि पातु शङ्करगेहिनी।
वासनेयं वङ्गभूसुरक्षेचमोहनशर्म्मणः परिवसतु माधव-
कामिनी कमलालया तव वेश्मनि।

आस्थायी।

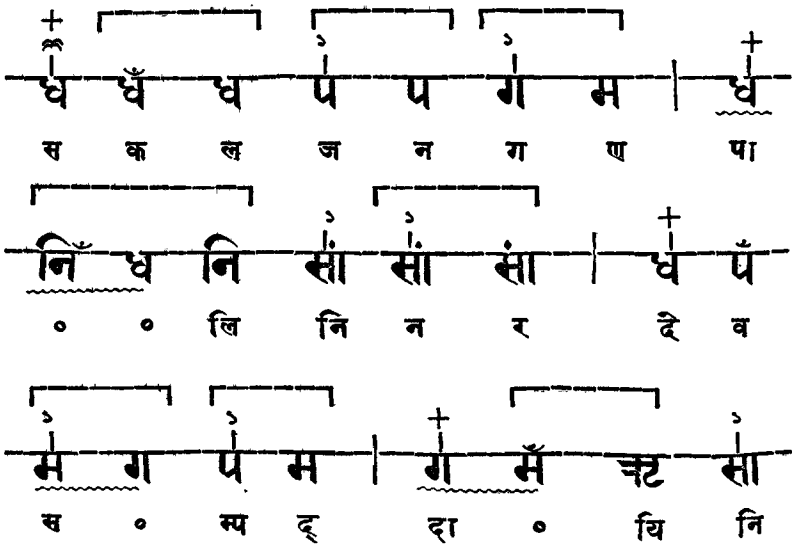

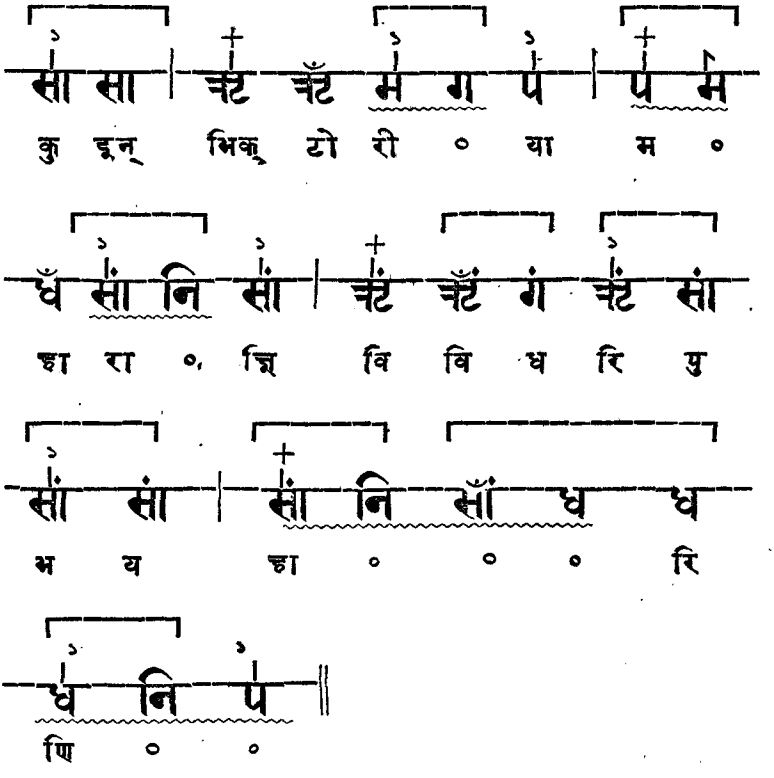
सा सा | नि नि म ग प | प म
कु इन् भिक् टो री ० या म ०
धँ सां नि सां | नि नि गं नि सां
हा रा ०, ञ्चि वि वि ध रि पु
सां सां | सां नि साँ ध ध
भ य हा ० ० ० रि
ध नि प ‖
णि ० ०

अन्तरा।

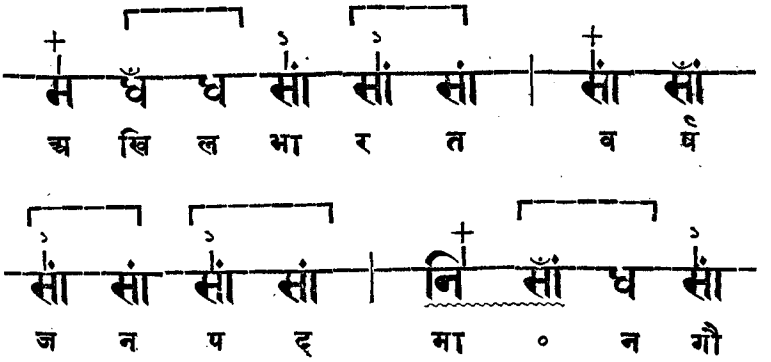
म धँ ध सां सां सां | सां साँ
अ खि ल भा र त व र्ष
सां सां सां सां | नि साँ ध सां
ज न प द मा ० न गौ

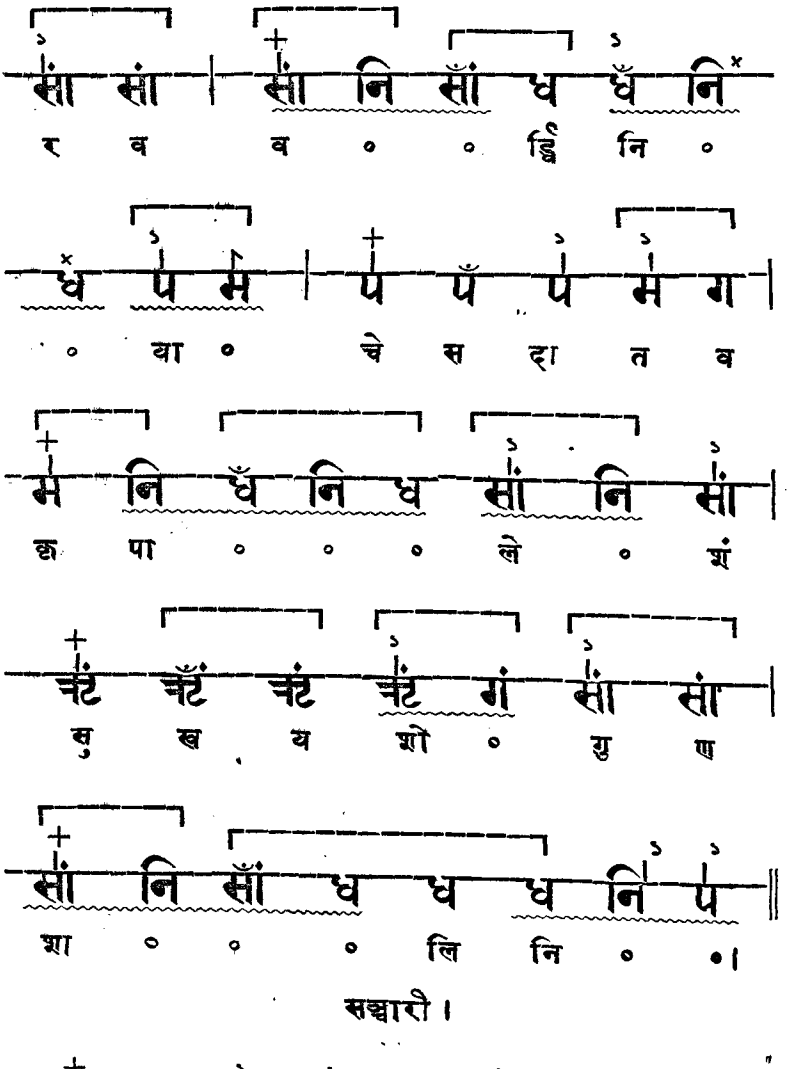
सां सां | सां नि सां ध धँ नि
र व व ० ० ड्वि नि ०
ध प म | प पँ प म ग
० या ० चे स दा त व
म नि धँ नि ध सां नि सां
क्ष पा ० ० ० ले ० शं
चंट चँटं चंट चंट गं सां सां
सु ख य शो ० गु ण
सां नि सां ध ध ध नि प
शा ० ० ० लि नि ० ०।

सञ्चारी।

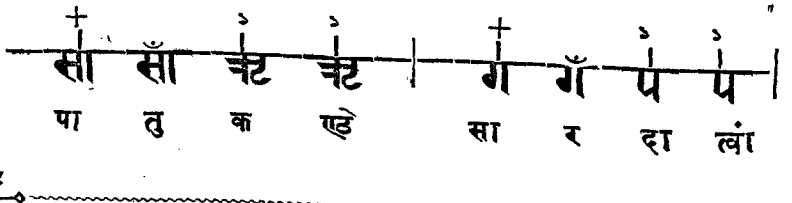
सां सां चंट चंट | गं गँ पं पं
पा तु क एडे सा र दा त्वं
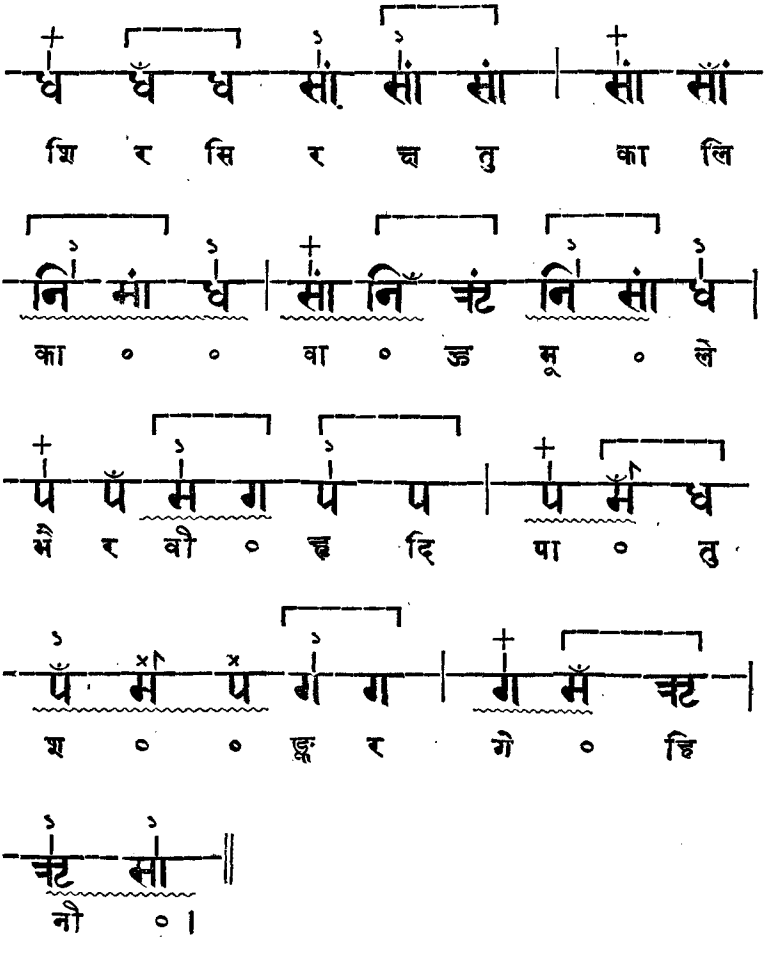
ध धँ ध सां सां सां सां सां
शि र सि र च्च तु का लि
नि सां ध सां नि चं नि सां ध
का ० ० वा ० ऊ मू ० ले
प पँ म ग प प प मँ ध
भै र वौ ० च्च दि पा ० तु
पँ मँ प ग ग ग मँ चं
श ० ० ङ्ग र गे ० हि
चं सां
नौ ०।

आभोग।

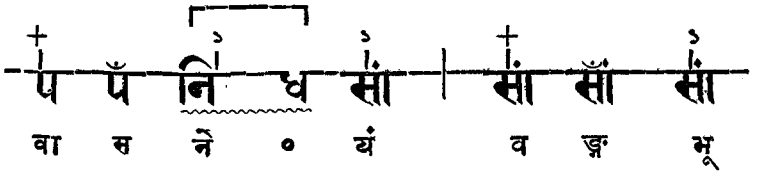
प पँ नि ध सां सां सां सां
वा स नें ० यं व ङ्ग भू

सां सां ध धँ सां सां चंट सां
सु र द्वे च मो ह न श
सँां नि सां ध प पं धँ प
र्म णः ० प रि व स तु
म ग म ध निँ ध नि सां
मा ध व का ० ० मि नी
सां चटं चंट गँ चंट सां सां सां
क म ला ० ल या त व
सां निँ सां ध ध नि पं ::
वे ० ० भ्म नि ० ०।

যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা

সেতার-শিক্ষা-বিধায়ক-গ্রন্থ।

শ্রীশৌরীন্দ্রমোহন ঠাকুর মিউজিক ডাক্তার

নাইট্ কমাণ্ডার অব্ দি অর্ডার অব্ লিওপোল্ড, অব্ বেলজিয়ম; নাইট্ কমাণ্ডার অব্ দি ফার্ষ্ট ক্লাস অর্ডার অব্ আলবার্ট অব্ সাক্সনি; সিভেলিয়ার অব্ দি ইম্পিরিয়েল অর্ডার অব্ মেড্জেডি অব্ টার্কি; নেপালের সঙ্গীতনায়ক ও সঙ্গীতসাগর; বঙ্গ সঙ্গীত বিদ্যালয়ের প্রতিষ্ঠাতা ও সভাপতি; কলিকাতা ইউনিভারসিটির ফেলো; গ্রেট ব্রিটন ও আয়র্লণ্ডের রএল আসিয়াটিক্ সোসাইটির মেম্বর এবং সাহিত্যের রএল সোসাইটির ফেলো; সুইডেনের রাজধানী ষ্টক্হলমের সঙ্গীত বিদ্যার রএল সোসাইটির অনরেরি মেম্বর; ফ্রান্সের রাজধানী পারিস্ নগরস্থ একাডেমির আফিসার; বেলজিয়মের বিজ্ঞান-সাহিত্য-শিল্পের রএল একাডেমির এসোসিএট মেম্বর; আম্ষ্টার্ডমের সঙ্গীত বিদ্যার রএল সোসাইটির করেস্পণ্ডিং মেম্বর; নিদারলণ্ডস্থ হেগনগরীয় রয়েল ফাইললজিকেল ও এথ্নগ্রাফিকাল ভারতীয় ইনিষ্টিটিউসনের ফরেন্ মেম্বর; জেনিভা নগরস্থ বিশ্ব-বিদ্যালয়ের করেস্পণ্ডিং মেম্বর; রোমের সেণ্টসিসিলিয়াস্থ রএল একাডেমির সোসিও অনরেরিও; ইটালির সোসাইটা ডিডাস-কালিকার সোসিও অনরেরিও; ফ্লরেন্সের রএল মিউজিকেল ইনষ্টিটিউটের একাডেমির একাডেমিকো করস্পণ্ডেণ্টি; ঊরবিনোস্থ র‍্যাফেলো একাডেমির করেস্পণ্ডিং মেম্বর; পারমার রএল বিশ্ববিদ্যালয়ের সোসিও বেনিমেরিটো; বোলোগ্নার ফিলহারমণিক সোসাইটির সোসিও অনরেরিও; গ্রীসের এথেন্স নগরস্থ আরচিওলজিকেল্ সোসাইটির মেম্বর; সিসিলি দ্বীপস্থ পালারমোর রএল একাডেমির সোসিও অনরেরিও; সার্ডিনিয়া দ্বীপস্থ সেসেরি বিশ্ববিদ্যালয়ের পেট্রন; জাপানের ওসাকার ইম্পিরিএল একাডেমির মেম্বর;
ইত্যাদি ইত্যাদি ইত্যাদি
কর্ত্তৃক প্রণীত।

বঙ্গ সঙ্গীত বিদ্যালয়ের অন্যতর শিক্ষক
শ্রীকালীপ্রসন্ন বন্দ্যোপাধ্যায় কর্ত্তৃক
প্রকাশিত।

দ্বিতীয় সংস্করণ।

কলিকাতা।
শ্রীযোগেন্দ্রনাথ বিদ্যারত্ন কর্ত্তৃক নূতন বাঙ্গালা যন্ত্রে
মুদ্রিত।
সন—১২৮৫।

(All Rights Reserved)

BOMBAY BRANCH
OF THE
Royal Asiatic Society.
CLASS

YANTRA KSHETRA DIPIKÀ,

OR

A TREATISE ON THE "SETAR,"

CONTAINING

THE REQUISITE RULES FOR PERFORMING ON THE INSTRUMENT,

TOGETHER WITH

VARIOUS EXERCISES AND TWO HUNDRED AND TWO AIRS,

COMPOSED AND COMPILED,

BY

SOURINDRO MOHUN TAGORE, MUS. DOC.,

Knight Commander of the Order of Leopold of Belgium; Knight Commander of the 1st Class Order of Albert of Saxony; Chevalier of the Imperial Order of Medjidie of Turkey; Sangita Náyaka and Sangita Ságara, of Nepaul; Founder and President of the Bengal Music School; Fellow of the University of Calcutta; Member of the Royal Asiatic Society, and Fellow of the Royal Society of Literature, Great Britain and Ireland; Honorary Member of the Royal Academy of Music, Stockholm, Sweden; Officier d'Academie, Paris; Associate Member of the Royal Academy of Science, Letters and Fine Arts, of Belgium; Corresponding Member of the Royal Musical Society of Amsterdam; Foreign Member of the Royal Philological and Ethnographical Institution of Netherlands India at the Hague; Corresponding Member of the Royal University of Geneva; Socio Onorario of the Royal Academy of St. Cecilia, Rome; Socio Onorario Societa Didascalica Italiana; Accademico Corrispondente of the Academy of the Royal Musical Institute of Florence; Socio Corrispondente of the Royal Academy of Raffaello, Urbino, Italy; Socio Benemerito of the Royal University of Parma; Socio Onorario of the Philharmonic Society of Bologna; Honorary Member of the Archæological Society of Athens, Greece; Socio Onorario of Royal Academy of Palermo, Sicily; Patron of the Atheneum of the Royal University of Sassari, Sardinia; Member of the Imperial Academy of Ossaca, Japan;

&c. &c. &c.

PUBLISHED BY

KALLY PROSONNO BANERJEA,

PROFESSOR, BENGAL MUSIC SCHOOL.

SECOND EDITION.

Calcutta:

J. N. VIDYARATNA, 38, SHAMPOOKER STREET.

1879.

(All Rights Reserved.)

ORI
787.9
Tag 1 Yan

PRINTED
BY J. N. VIDYARATNA, AT THE NEW BENGAL PRESS,
38, SHAMPOOKER STREET,
CALCUTTA.

যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা

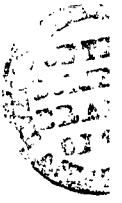

সেতার-শিক্ষা-বিধায়ক-গ্রন্থ।

শ্রীশৌরীন্দ্রমোহন ঠাকুর মিউজিক ডাক্তার

নাইট্ কমাণ্ডার অব্ দি অর্ডার অব্ লিওপোল্ড, অব্ বেলজিয়ম; নাইট্ কমাণ্ডার অব্ দি ফার্ষ্ট ক্লাস অর্ডার অব্ আলবার্ট অব্ সাক্সনি; সিভেলিয়ার অব্ দি ইম্পিরিয়েল অর্ডার অব্ মেড্জেডি অব্ টার্কি; নেপালের সঙ্গীতনায়ক ও সঙ্গীতসাগর; বঙ্গ সঙ্গীত বিদ্যালয়ের প্রতিষ্ঠাতা ও সভাপতি; কলিকাতা ইউনিভারসিটির ফেলো; গ্রেট ব্রিটন ও আয়র্লণ্ডের রএল আসিয়াটিক্ সোসাইটির মেম্বর এবং সাহিত্যের রএল সোসাইটির ফেলো; সুইডেনের রাজধানী ষ্টক্হলমের সঙ্গীত বিদ্যার রএল সোসাইটির অনরেরি মেম্বর; ফ্রান্সের রাজধানী পারিস্ নগরস্থ একাডেমির আফিসার; বেলজিয়মের বিজ্ঞান-সাহিত্য-শিল্পের রএল একাডেমির এসোসিএট মেম্বর; আমষ্টার্ডমের সঙ্গীত বিদ্যার রএল সোসাইটির করেস্পণ্ডিং মেম্বর; নিদারলণ্ডস্থ হেগনগরীয় রয়েল ফাইললজিকেল ও এথ্নগ্রাফিকাল ভারতীয় ইনিষ্টিটিউসনের ফরেন্ মেম্বর; জেনিভা নগরস্থ বিশ্ব-বিদ্যালয়ের করেস্পণ্ডিং মেম্বর; রোমের সেণ্টসিসিলিয়াস্থ রএল একাডেমির সোসিও অনরেরিও; ইটালির সোসাইটা ডিডাস-কালিকার সোসিও অনরেরিও; ফ্লরেন্সের রএল মিউজিকেল ইন্ষ্টিটিউটের একাডেমির একাডেমিকো করস্পণ্ডেণ্টি; উরবিনোস্থ র‍্যাফেলো একাডেমির করেস্পণ্ডিং মেম্বর; পারমার রএল বিশ্ববিদ্যালয়ের সোসিও বেনিমেরিটো; বোলোগ্নার ফিলহারমণিক সোসাইটির সোসিও অনরেরিও; গ্রীসের এথেন্স নগরস্থ আরচিওলজিকেল্ সোসাইটির মেম্বর; সিসিলি দ্বীপস্থ পালারমোর রএল একাডেমির সোসিও অনরেরিও; সার্ডিনিয়া দ্বীপস্থ সেসেরি বিশ্ববিদ্যালয়ের পেট্রন; জাপানের ওসাকার ইম্পিরিএল একাডেমির মেম্বর;
ইত্যাদি ইত্যাদি ইত্যাদি
কর্ত্তৃক প্রণীত।

বঙ্গ সঙ্গীত বিদ্যালয়ের অন্যতর শিক্ষক
শ্রীকালীপ্রসন্ন বন্দ্যোপাধ্যায় কর্ত্তৃক
প্রকাশিত।

দ্বিতীয় সংস্করণ।

কলিকাতা।
শ্রীযোগেন্দ্রনাথ বিদ্যারত্ন কর্ত্তৃক নূতন বাঙ্গালা যন্ত্রে
মুদ্রিত।
সন—১২৮৫।

(All Rights Reserved)

শ্রীযোগেন্দ্রনাথ বিদ্যারত্ন কর্ত্তৃক মুদ্রিত।

প্রথমবারের ভূমিকা।

এতদ্দেশীয়-বিবিধ-বিদ্যা-বিনাশক ধূমকেতু দুর্জ্জয় যবন জাতি ও ওস্তাদ্‌দিগের কুহক-কুজ্‌ঝটিকা-জালে আমাদিগের প্রাচীন সঙ্গীত বিদ্যাচলটী ঘোর আচ্ছন্ন থাকাপ্রযুক্ত তাহার পাদদেশ পর্য্যন্ত এতকাল শিক্ষার্থিদিগের বুদ্ধির দুরারোহপ্রায় রহিয়াছিল। কিছুদিন হইল আমাদিগের সঙ্গীতাচার্য্য পূজ্যপাদ শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী মহাশয় তদারোহণজন্য "সঙ্গীত-সার" সোপান প্রস্তুত করেন, তাহাতে সাধারণের সঙ্গীত-বিদ্যা-গিরি-শৃঙ্গে উঠিবার আর বাধা নাই। ঐ সোপান অবলম্বনে অনেকে এক্ষণে তদধিত্যকা পর্য্যন্তও সুখগম্য বোধ করিতেছেন, সেই সঙ্গীত-সার সোপান সুখে অবলোকিত হউক, এতদভিপ্রায়ে সঙ্গীত-বিদ্যা-বিদ্যোতক সুবিখ্যাত বিদ্যানুরাগী শ্রীল শ্রীযুক্ত রাজা শৌরীন্দ্র মোহন ঠাকুর বাহাদুর মহোদয় সম্প্রতি আবার এই "যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা" প্রস্তুত করিয়াছেন। এই গ্রন্থে সেতার যন্ত্রের অবয়ববিষয়ক বিবরণ, তাহার পূর্ব্বতন সংজ্ঞা, তাহার প্রতিকৃতি, ধারণনিয়ম, ষড়্‌জাদি সপ্তস্বর, তাহাদিগের লিখনপ্রণালী, কোন্ অঙ্গুলীতে কিপ্রকার রীতিতে আঘাত করিলে কিরূপ "বোল" ব্যক্ত হয়, তাহার নিয়ম, স্পর্শ, কৃন্তন, গমক, "আশ" ও মূর্চ্ছনা ইত্যাদিযোগে অনুলোম-বিলোম-সহকারে নানাবিধ সাধনপ্রণালী ও তদুপযোগী নানাবিধ গত যথানিয়মে বিশেষ রূপে লিখিত হইয়াছে, মন্থর-গতি, মণ্ডুক-গতি ইত্যাদি যে কয়েকটী গতি সঙ্গীতে সর্ব্বদা ব্যবহার হয়, তাহাদিগের নিয়ম, তালের সংক্ষিপ্ত বিবরণ,

শ্রেষ্ঠালঙ্কার, সংযোগালঙ্কার ও ছন্দোঽলঙ্কারাদির নিয়ম যথারীতিতে এই গ্রন্থে লিখিতে ত্রুটি হয় নাই, গ্রন্থের পরিশিষ্টে বিবিধ প্রাচীন গত সংগ্রহপূর্ব্বক রাজা বাহাদুর এই "যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা" দেদীপ্যমান করিয়া দীপিকাবাহকতা আমাকেই দিয়াছেন, আমি ইহা মুদ্রিত ও প্রচারিত করিলাম। এক্ষণে রাজা বাহাদুরের হাতযশ ও আমার অদৃষ্ট কতদূর সফল হইয়া উঠে বলিতে পারি না ইতি।

শ্রীকালীপ্রসন্ন বন্দ্যোপাধ্যায়।

প্রকাশক।

দ্বিতীয়বারের ভূমিকা।

যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা প্রথমবারে যে পঞ্চ শত খণ্ড মুদ্রিত হয়, তাহা অতি অল্প দিনের মধ্যেই নিঃশেষ হইয়া গিয়াছে। অধুনা সঙ্গীত শাস্ত্রের বিশেষ আলোচনা, শিক্ষার্থিদিগের আন্তরিক ব্যগ্রতা দর্শনে বিশেষতঃ কতিপয় সঙ্গীতানুরাগী বন্ধুর অনুরোধে ইহা দ্বিতীয়বার মুদ্রিত ও প্রকাশিত হইল। ইতিপূর্ব্বে আমাদিগের দেশে লিখন দৃষ্টে সঙ্গীত শিক্ষা প্রণালী প্রচলিত না থাকাতে সহজে লোকের বোধগম্য করিবার জন্য ইহার প্রথম মুদ্রাঙ্কন সময়ে সঙ্গীতের প্রধান অঙ্গ ধাতুর (সপ্তস্বরের) উদারা, মুদারা ও তারা এই গ্রামত্রয়ভেদজ্ঞাপনার্থ তিনটী সরল রেখা এবং মাত্রাকাল সূক্ষ্মরূপে বিভাগ না করিয়া স্থূল ভাবে ব্যবহার করা হইয়াছিল। সম্প্রতি দেশের সে ভাব পরিবর্ত্তিত হওয়াতে (শিক্ষার্থিগণ লিখনদৃষ্টে সঙ্গীত শিক্ষার মর্ম্ম অবগত হওয়াতে) দ্বিতীয় সংস্করণে তিন রেখার পরিবর্ত্তে এক রেখা ও মাত্রাকালের সূক্ষ্মবিভাগ অবলম্বিত হইল।

ভ্রম, প্রমাদ, বিশেষতঃ বঙ্গ সঙ্গীত বিদ্যালয়স্থ ছাত্রগণের উত্তেজনায় ব্যস্ততানিবন্ধন প্রথম সংস্করণে যে যে স্থান অসংলগ্ন, অনাবশ্যক এবং অপরিপুষ্টাঙ্গ ছিল, দ্বিতীয় সংস্করণে গ্রন্থকর্ত্তা সেই সকল স্থান সংলগ্ন, পরিত্যাগ ও পূর্ণাঙ্গ করিতে যত্নের ত্রুটি করেন নাই, বলিতে পারি না কত দূর কৃতকার্য্য হইয়াছেন। প্রথম সংস্করণে এই গ্রন্থে ৯৪টী মাত্র গত ছিল, এবারে আরও ১০৮টী নূতন গত সংগ্রহ করিয়া দেওয়াতে গতের সংখ্যা ২০২ হইয়াছে, সুতরাং গ্রন্থের কলেবরও পূর্ব্বাপেক্ষা

অনেক বড় হইয়াছে। নূতন সংগৃহীত ১০৮টী গতের মধ্যে অধিকাংশ গতই গ্রন্থকার প্রস্তুত করিয়া দিয়াছেন। এস্থলে ইহাও বক্তব্য যে, অপরাপর ব্যক্তি হইতে সংগৃহীত গত সমূহের রাগের বিশুদ্ধতা পক্ষে গ্রন্থকার দায়ী নহেন। সঙ্গীত কুতূহলীগণ প্রথম সংস্করণের ন্যায় দ্বিতীয় সংস্করণের প্রতি সমাদর প্রকাশ করিলে গ্রন্থকার সমুদায় শ্রম ও যত্ন সফল জ্ঞান করিবেন।

পরিশেষে কৃতজ্ঞতা সহকারে প্রকাশ করিতেছি যে, বঙ্গসঙ্গীত বিদ্যালয়ের অন্যতর শিক্ষক শ্রীযুক্ত পণ্ডিত রামপ্রসন্ন শ্রুতিরত্ন মহাশয় এই গ্রন্থের দ্বিতীয় সংস্করণ সময়ে বিশেষ সাহায্য করিয়াছেন।

শ্রীকালীপ্রসন্ন বন্দ্যোপাধ্যায়।

প্রকাশক।

নির্ঘণ্ট।

বিষয়	পৃষ্ঠা।
অবয়ব	২
সেতারযন্ত্র	৫
ধারণ	৬
ষড়্‌জাদি সপ্তস্বর	৭
স্বরলিপি প্রকরণ	ঐ
অঙ্গুলীর নিয়ম	১৩
সেতারের বোল ও আঘাতের নিয়ম	ঐ
অনুলোম ও বিলোম সাধন	১৫
পিত্তলের দ্বিতীয় তারে প্রকারান্তর স্বরগ্রাম সাধন	২৫
তালাদির নিয়ম	২৮
স্বরনিবন্ধনী প্রকরণ	৩৪
স্পর্শ	৪৬
কৃন্তন	৫৮
স্পর্শ-কৃন্তন	৭২
বিক্ষেপ ও প্রক্ষেপ	৮৬
গমক	৯১
ঘর্ষণ বা আশ	৯৮
মূর্চ্ছনা	১০৬
শ্রেষ্ঠালঙ্কার বা ছেড়	১৪৫
সংযোগালঙ্কার	১৭৮
ছন্দোঽলঙ্কার	২০৪
পরিশিষ্ট	২৪০

গতের সূচীপত্র।

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
১	লুম	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৭
২	বৃন্দাবনী-সারঙ্গ	” ” ”	ঐ
৩	বিভাস	” ” ”	৩৮
৪	দেশ	” ” ”	ঐ
৫	দেবকিরী	” ” ”	৩৯
৬	গৌড়-সারঙ্গ	” ” ”	৪০
৭	খাম্বাবতী বা খাম্বাজ	০ ০ ০	ঐ
৮	ইমন্	০ ০ ০	৪১
৯	সিন্ধু	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৪২
১০	ঝিঝিট	” ” ”	৪৩
১১	পুরবী-গৌরী	০ ০ ০	ঐ
১২	ঝিঝিট	০ ০ ০	৪৪
১৩	ছায়ানট	০ ০ ০	৫০
১৪	খাম্বাজ	০ ০ ০	৫১
১৫	শুরু বেলাবলী (সুখল বেলাওল)	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৫২
১৬	খাম্বাজ	০ ০ ০	ঐ
১৭	দেও-ঝিঝিট	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৫৪
১৮	অরুণ-মল্লার	গ্রন্থকার	৫৫
১৯	সোহিনী-খাম্বাজ	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৫৬
২০	বৃন্দাবনী-সারঙ্গ	” ” ”	৫৭
২১	খাম্বাজ	” ” ”	৬১
২২	ঝিঝিট	” ” ”	ঐ

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
২৩	পাহাড়ী-ঝিঝিট	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৬২
২৪	সোহিনী-বাহার	» » »	৬৩
২৫	ভূপালী	গ্রন্থকার	৬৪
২৬	বৃন্দাবনী-সারঙ্গ	»	৬৫
২৭	ঝিঝিট-খাম্বাজ	০ ০ ০	৬৬
২৮	ইম্নি	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৬৭
২৯	খাম্বাজ	০ ০ ০	৬৯
৩০	সিন্ধু-ভৈরবী	০ ০ ০	ঐ
৩১	সিন্ধু-ভৈরবী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৭৫
৩২	খাম্বাজ	০ ০ ০	৭৬
৩৩	মিশ্র-বারোঁয়া	০ ০ ০	৭৭
৩৪	মিশ্র-বেহাগ	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৭৮
৩৫	পুরবী	গ্রন্থকার	৭৯
৩৬	ইম্নি	০ ০ ০	৮০
৩৭	ঝিঝিট	০ ০ ০	৮২
৩৮	লুম-ঝিঝিট	০ ০ ০	ঐ
৩৯	সোহিনী	০ ০ ০	৮৩
৪০	ঝিঝিট-খাম্বাজ	০ ০ ০	৮৪
৪১	ছায়ানট	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৮৮
৪২	ললিত	০ ০ ০	৮৯
৪৩	ভূপালী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৯০
৪৪	পরজ	০ ০ ০	৯২
৪৫	ভৈরবী	০ ০ ০	৯৩
৪৬	ইমন্	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৯৪
৪৭	ভৈরবী	০ ০ ০	৯৫
৪৮	সিন্ধু-ভৈরবী	০ ০ ০	১০০
৪৯	ঝিঝিট	০ ০ ০	১০১
৫০	সিন্ধু	০ ০ ০	১০২
৫১	ইমন্	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	১০৪
৫২	পিলু	০ ০ ০	১১৩
৫৩	জংলা-খাম্বাজ	০ ০ ০	১১৫

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
৫৪	ইমন্	০ ০ ০	১১৬
৫৫	বেলাবলী	০ ০ ০	১১৭
৫৬	ছায়ানট	০ ০ ০	১১৮
৫৭	ইমন্	০ ০ ০	১১৯
৫৮	দেশ	০ ০ ০	১২০
৫৯	ইমন্-ভূপালী	০ ০ ০	১২২
৬০	কামোদ	গ্রন্থকার	১২৩
৬১	কেদারা	০ ০ ০	১২৪
৬২	দেশ-মল্লার	০ ০ ০	১২৬
৬৩	পরজ	০ ০ ০	১২৭
৬৪	বেহাগ	০ ০ ০	১২৯
৬৫	কাফি-সিন্ধু	০ ০ ০	১৩১
৬৬	কালাংড়া	০ ০ ০	১৩২
৬৭	ইমন্-কল্যাণ	০ ০ ০	১৩৩
৬৮	খাম্বাজ	০ ০ ০	১৩৪
৬৯	সুরট	০ ০ ০	১৩৬
৭০	কেদারা	০ ০ ০	১৩৭
৭১	হাম্বির	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	১৩৮
৭২	ইমন্-কল্যাণ	০ ০ ০	১৩৯
৭৩	জয়-জয়ন্তী	০ ০ ০	১৪০
৭৪	ইমন্-ভূপালী	০ ০ ০	১৪১
৭৫	মিঞার মল্লার	০ ০ ০	১৪২
৭৬	ইমন্-কল্যাণ	০ ০ ০	১৪৯
৭৭	সিন্ধু	০ ০ ০	১৫০
৭৮	যোগিঞা	০ ০ ০	১৫১
৭৯	হাম্বির	০ ০ ০	১৫২
৮০	গৌড়-সারঙ্গ	০ ০ ০	১৫৩
৮১	সিন্ধু	০ ০ ০	১৫৪
৮২	কেদারা	০ ০ ০	১৫৫
৮৩	ভূপ-কল্যাণ	০ ০ ০	১৫৭
৮৪	হাম্বির	গ্রন্থকার	১৫৯

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
৮৫	কেদারা	গ্রন্থকার	১৬০
৮৬	গৌড়-সারঙ্গ	”	১৬২
৮৭	পুরবী	”	১৬৪
৮৮	ইমন্	”	১৬৬
৮৯	মেঘ	”	১৬৮
৯০	ইমন্-কল্যাণ	”	১৭০
৯১	বেহাগ	”	১৭২
৯২	ভূপালী	”	১৭৩
৯৩	ভূপালী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	১৮৫
৯৪	ভৈরবী	” ” ”	১৮৬
৯৫	লুমঝিঝিট	গ্রন্থকার	১৮৮
৯৬	বিভাস	”	১৯১
৯৭	সোহিনী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	১৯৮
৯৮	ললিত	” ” ”	১৯৯
৯৯	ইমন্-কল্যাণ	গ্রন্থকার	২০০
১০০	সিন্ধুড়া	০ ০ ০	২০২
১০১	মালশ্রী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৪৩
১০২	শ্রী	” ” ”	২৪৫
১০৩	সুরট	০ ০ ০	২৪৬
১০৪	জয়জয়ন্তী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৪৯
১০৫	কামোদ	০ ০ ০	২৫১
১০৬	মেঘ	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৫২
১০৭	বিভাস	গ্রন্থকার	২৫৪
১০৮	নটনারায়ণ	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৫৫
১০৯	সোহিনী-বাহার	” ” ”	২৫৭
১১০	পঞ্চম	” ” ”	২৫৯
১১১	ভৈরবী	গ্রন্থকার	২৬১
১১২	সিন্ধুড়া	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৬৩
১১৩	ভৈরবী	০ ০ ০	২৬৫
১১৪	হিণ্ডোল	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৬৭
১১৫	বেহাগ	গ্রন্থকার	২৬৮

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
১১৬	মালব বা মারোয়া	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৭১
১১৭	সিন্ধু-ভৈরবী	০ ০ ০	২৭৩
১১৮	বসন্ত	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৭৫
১১৯	খাম্বাজ	০ ০ ০	২৭৭
১২০	ভৈরব	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৭৯
১২১	লুমঝিঝিট	০ ০ ০	২৮২
১২২	ছায়ানট	গ্রন্থকার	২৮৪
১২৩	ছায়ানট	০ ০ ০	২৮৮
১২৪	বৃহন্নট অথবা নটনারায়ণ	গ্রন্থকার	২৯০
১২৫	সুরট	”	২৯৩
১২৬	মূলতানী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	২৯৬
১২৭	ঝিঝিট-খাম্বাজ	০ ০ ০	২৯৮
১২৮	ভীমপলশ্রী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩০০
১২৯	সুরট-খাম্বাজ	০ ০ ০	৩০২
১৩০	বেলাবলী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩০৪
১৩১	পিলু	০ ০ ০	৩০৬
১৩২	তোড়ী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩০৮
১৩৩	মূলতানী	০ ০ ০	৩০৯
১৩৪	গৌরী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩১০
১৩৫	হাম্বির	গ্রন্থকার	৩১২
১৩৬	ইমন্-পুরিয়া	”	৩১৪
১৩৭	গোঁড়	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩১৫
১৩৮	মালি-গৌরা	গ্রন্থকার	৩১৭
১৩৯	রামকেলী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩১৯
১৪০	বাগীশ্বরী	” ” ”	৩২০
১৪১	তোড়ী	” ” ”	৩২২
১৪২	সারঙ্গ	গ্রন্থকার	৩২৪
১৪৩	যোগিঞা	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩২৫
১৪৪	খট	” ” ”	৩২৭
১৪৫	আশাবরী	” ” ”	৩২৮
১৪৬	যোগিঞা	গ্রন্থকার	৩৩০

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
১৪৭	গুজ্জরী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৩৩
১৪৮	আলাহিয়া	” ” ”	৩৩৪
১৪৯	সরফরদা	” ” ”	৩৩৬
১৫০	কোকভ	” ” ”	৩৩৮
১৫১	দেওগিরী	” ” ”	৩৩৯
১৫২	বেলাবলী	” ” ”	৩৪১
১৫৩	বারোঁয়া	” ” ”	৩৪৩
১৫৪	ধানশ্রী	” ” ”	৩৪৪
১৫৫	পুরিয়া-ধানশ্রী	” ” ”	৩৪৬
১৫৬	বরাড়ী	” ” ”	৩৪৮
১৫৭	চিত্রা-গৌরী	” ” ”	৩৪৯
১৫৮	দেশ	০ ০ ০	৩৫০
১৫৯	শ্যাম	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৫২
১৬০	কামোদ	” ” ”	৩৫৩
১৬১	কল্যাণ	” ” ”	৩৫৪
১৬২	পুরিয়া	” ” ”	৩৫৬
১৬৩	জঁয়েৎ	” ” ”	৩৫৭
১৬৪	ইমন্-ভূপালী	০ ০ ০	৩৫৯
১৬৫	দেশ	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৬০
১৬৬	বিভাস	গ্রন্থকার	৩৬১
১৬৭	আলাহিয়া	”	৩৬৩
১৬৮	পাহাড়ী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৬৬
১৬৯	লুম	” ” ”	৩৬৭
১৭০	গারা	” ” ”	৩৬৮
১৭১	শঙ্করা	” ” ”	৩৬৯
১৭২	শঙ্করাভরণ	” ” ”	৩৭১
১৭৩	বাহার	” ” ”	৩৭২
১৭৪	ভৈরব	০ ০ ০	৩৭৪
১৭৫	দেশ	০ ০ ০	৩৭৬
১৭৬	কানাড়া	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৭৭
১৭৭	সাহানা	” ” ”	৩৭৮

সংখ্যা	যে রাগের গত	প্রণয়নকর্ত্তার নাম	পৃষ্ঠা
১৭৮	আড়ানা	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৮০
১৭৯	বাহার	” ” ”	৩৮২
১৮০	কানাড়া	০ ০ ০	৩৮৪
১৮১	লুম	০ ০ ০	৩৮৫
১৮২	ঝিঝিট	০ ০ ০	৩৮৬
১৮৩	বেহাগ	০ ০ ০	৩৮৮
১৮৪	সুরট	গ্রন্থকার	৩৮৯
১৮৫	ভৈরবী	০ ০ ০	৩৯১
১৮৬	গারা	০ ০ ০	৩৯৩
১৮৭	সিন্ধুড়া	০ ০ ০	৩৯৪
১৮৮	মালকোশ	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৩৯৫
১৮৯	খাম্বাজ	০ ০ ০	৩৯৬
১৯০	ভূপালী	০ ০ ০	৩৯৭
১৯১	কর্ণাট	গ্রন্থকার	৩৯৮
১৯২	কেদারা	০ ০ ০	৪০০
১৯৩	পুরবী	০ ০ ০	৪০১
১৯৪	ঝিঝিট-খাম্বাজ	গ্রন্থকার	৪০৩
১৯৫	ভৈরবী	০ ০ ০	৪০৪
১৯৬	ভৈরব	০ ০ ০	৪০৬
১৯৭	ভৈরবী	০ ০ ০	৪০৭
১৯৮	বাগীশ্বরী	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৪০৮
১৯৯	ত্রিবণী	” ” ”	৪০৯
২০০	রামকেলী	” ” ”	৪১০
২০১	কানাড়া	গ্রন্থকার	৪১২
২০২	বিভাস	অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী	৪১৬

যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা।

" সঙ্গীতং দ্বিবিধং প্রোক্তং দৃশ্যং শ্রাব্যঞ্চ সূরিভিঃ ॥ "

অপরঞ্চ

" গীতঞ্চ দ্বিবিধং প্রোক্তং যন্ত্রগাত্রবিভাগতঃ।
যন্ত্রং স্যাৎ বেণুবীণাদি গাত্রন্তু মুখজং মতং ॥ "

পণ্ডিতগণ সংস্কৃত সঙ্গীত শাস্ত্রকে দৃশ্য ও শ্রাব্যভেদে দুইভাগে বিভক্ত করিয়াছেন। তন্মধ্যে দৃশ্যকে সামান্যতঃ নৃত্য এবং শ্রাব্যকে গীত বলিয়া পরিগণনা করেন। গীত আবার দুইভাগে বিভক্ত, যথা ;—যান্ত্রিক ও গাত্রিক অথবা কাণ্ঠিক। এই নিমিত্ত কেহ কেহ সঙ্গীতকে একেবারেই তিনভাগে বিভক্ত করিয়া থাকেন। আমাদের দেশে যন্ত্র, কণ্ঠ এবং শরীরের অন্যান্য অঙ্গপ্রত্যঙ্গ, সঙ্গীতসাধনের এই ত্রিবিধ উপায় নির্দ্ধারিত আছে। যন্ত্রদ্বারা বাদ্য বা যন্ত্রসঙ্গীত, কণ্ঠদ্বারা গান বা কণ্ঠসঙ্গীত এবং অঙ্গপ্রত্যঙ্গদ্বারা নৃত্যক্রিয়া সংসাধিত হইয়া থাকে। ইহার মধ্যে গানই সর্ব্বাপেক্ষা কঠিন, সুতরাং বহু আয়াস ও সময়সাধ্য। বাদ্যক্রিয়া যত্ন ও অভ্যাস করিলে অপেক্ষাকৃত স্বল্পতম আয়াসে আয়ত্ত হয়, আর তালবোধ থাকিলে বোধ হয়, বুদ্ধিমানেরা কিঞ্চিৎ উপদিষ্ট হইলেই নৃত্যের সারমর্ম্ম অল্পক্লেশে উপলব্ধি করিতে পারেন। কিন্তু বাদ্যসাধনই আমাদিগের এ পুস্তকের উদ্দেশ্য, সুতরাং অন্যান্য বিষয়ের বিচারণা পরিত্যাগ করিয়া তাহারই

বিষয় বিশেষরূপে বর্ণন করা যাইবে। আমাদের দেশে বাদ্য বা যন্ত্র-সঙ্গীতশিক্ষোপযোগী বিবিধ যন্ত্র আছে, কিন্তু তাহার মধ্যে সেতারনামক যন্ত্রে যেমন সহজে ও স্বল্পায়াসে এ বিদ্যা শিক্ষিত হয়, এমন আর কিছু-তেই হয় না। ইহার সারিকা অর্থাৎ পর্দ্দাগুলি যথোচিত বিন্যস্ত থাকাতে ইহা প্রথম শিক্ষার্থীদিগের পক্ষে সুরাদি, শুদ্ধ সুরাদি কেন, রাগাদি বাজাইবারও নিতান্ত উপযোগী, অতএব যাঁহারা প্রথম সঙ্গীত শিক্ষা করিতে আরম্ভ করেন, তাঁহাদিগের পক্ষে সেতার যন্ত্রদ্বারাই অভ্যাস করা উচিত; তাহাতে কতক অভ্যাস হইলে সঙ্গীতে কতক অধিকার হয়। পরে অন্যান্য যন্ত্রে বা কণ্ঠে শিক্ষা ফলবতী হইতে পারে। অতএব আমরা সেতারশিক্ষাপ্রণালী অবলম্বন করিয়া এই গ্রন্থ লিখিতে আরম্ভ করি-লাম। বস্তুতঃ সেতারের অবয়বাদি অবগত হইলে জানা যায় যে, ইহা অপেক্ষা সহজ ও সম্পূর্ণ যন্ত্র এ দেশে প্রায় নাই। সেতারের অবয়বাদি বিশেষরূপে জানিতে পারিলে যন্ত্রবন্ধনের ও রাগাদি বাজাইবার বিশেষ সুবিধা হইবে বলিয়া অগ্রে তাহারই বর্ণন করা যাইতেছে।

অবয়ব।

আমাদের দেশে সেতার যন্ত্রের বহুল প্রচার, সুতরাং ইহার আকার প্রায় সকলেই জানেন, তজ্জন্য সমুদয় অবয়বের বর্ণনা না করিয়া শুদ্ধ যেগুলি বাদ্যক্রিয়ার বিশেষ উপযোগী, তাহাই বলা বিধেয়। এদেশ-প্রচলিত অধিকাংশ সেতার যন্ত্রেরই আকার তিন হস্তপরিমিত, কিন্তু তদপেক্ষা বৃহদাকারেরও ব্যবহার হইয়া থাকে। সেতারের খোল বা ধ্বনিকোষ, তব্‌লী বা ধ্বনিপট্টক, দাণ্ডা বা দণ্ড, পট্‌রি বা অঙ্গুলি-পট্টক, কাণ বা কীলক, তার বা তন্ত্র, পহি বা শালায়নী, সওয়ারি বা তন্ত্রাসন, মান্‌কা বা মানিকা, পর্দ্দা বা সারিকা, তাঁত বা তান্তবসূত্র এবং আড়ি বা সেতু এই গুলি বিশেষ প্রয়োজনীয়। এতদ্ভিন্ন অন্য যাহা কিছু আছে, তৎসমুদয়ই অলঙ্কারমাত্র।

সেতার যন্ত্র, খোল ও দাণ্ডা এই দুই প্রধান ভাগে বিভক্ত। খোল অপেক্ষাকৃত বিস্তৃত, অলাবু (লাউ) দ্বারা নির্ম্মিত, সুতরাং প্রায়ই

গোলাকার। খোলের উপরে নিবদ্ধ চক্রাকার কাষ্ঠফলককে তব্‌লী বলে; এই তব্‌লীর গোড়ায় যে অস্থি বা অন্য কোন ঘনপদার্থের এক খণ্ড আবদ্ধ থাকে, তাহার নাম পন্থি, ঐ পন্থিতে তার সকল সংযোজিত থাকে। পূর্ব্বোক্ত তব্‌লীর মধ্যস্থলে অস্থিনির্ম্মিত যে চতুষ্কোণ পদার্থ থাকে, তাহাকে সওয়ারি বলে; ইহার এক পার্শ্বে সারি সারি কয়েকটী খাঁজ আছে, তাহার উপর দিয়া তারগুলি গিয়া পন্থিতে আবদ্ধ হয়। তারের স্বর কিয়ৎপরিমাণে উচ্চ বা নিম্ন করিবার নিমিত্ত পন্থির সন্নিকটে সওয়ারির নিম্নে হস্তিদন্ত প্রভৃতি ঘন পদার্থনির্ম্মিত গোল বা অন্য আকারের যে পদার্থ থাকে, তাহাকে মান্‌কা বলে। মান্‌কা তব্‌লীর উপরে থাকে; ইহার ভিতর দিয়া নায়কী তার যায়, কেহ কেহ অপরাপর তারেও মান্‌কা ব্যবহার করিয়া থাকেন। এই তারের স্বর অল্প পবিমাণে চড়া বা নরম করিতে হইলে ইহাকে নিম্নে বা ঊর্দ্ধে সঞ্চালিত করিতে হয়। তব্‌লীতে এই কয়েকটীমাত্র থাকে। খোল ও তব্‌লীর সহিত যষ্টির ন্যায় যে এক দীর্ঘ, স্বল্প পরিসর ও শূন্যগর্ভ কাষ্ঠখণ্ড সংযোজিত থাকে, তাহার নাম দাণ্ডা; উহার পশ্চাদ্ভাগ প্রায়ই গোল এবং সম্মুখভাগ সমতল; এই সমতল ভাগকে সারিকাস্থান অথবা পট্‌রি বলে। ঐ পট্‌রির উপরে ধাতুনির্ম্মিত যে সকল পলতোলা রেখা সারি সারি বসান থাকে, তাহাদিগের প্রত্যেকের নাম পর্দ্দা, ইহাদের সংখ্যা কোন যন্ত্রে ষোল, কোন যন্ত্রে সতের; সতেরর অধিক প্রায়ই দৃষ্ট হয় না। এই পর্দ্দাগুলির বিন্যাস ইচ্ছামত হইতে পারে না; স্বরগ্রাম ও তৎপ্রসূতি দ্বাবিংশতি শ্রুতির অনুযায়ী করিয়া ইহাদিগকে বসাইতে হয়, সুতরাং ঐ পর্দ্দাগুলি পরস্পর সমব্যবধানেও থাকে না। উক্ত পর্দ্দাগুলির অব্যবহিত উপরেই যে দুই অস্থিফলক সমান্তরালভাবে বসান থাকে, তাহাদিগের উভয়কেই আড়ি বলে, অস্থিভিন্ন অন্য কোন কঠিন পদার্থেরও আড়ি হইতে পারে। ঐ আড়ির প্রথমখানি অপেক্ষাকৃত উচ্চ, অপরখানি কেবল তারগুলি সংযত করিবার জন্যই ব্যবহৃত হইয়া থাকে। ইহাদিগের পরেই কাণ। কাণের সংখ্যা পাঁচ,—কোন কোন সেতারে ইহার অধিকও দেখা

যায়। তন্মধ্যে দুইটী উপরে আর তিনটী বা ততোধিক পার্শ্বে সংলগ্ন থাকে; এগুলি অস্থির বা অন্য কোন কঠিন পদার্থেরও হইতে পারে। আর দাণ্ডার পশ্চাৎ ভাগে যে, এক একটী সূত্রগুচ্ছ দ্বারা প্রত্যেক সারিকা আবদ্ধ থাকে, তন্তুনির্ম্মিত বলিয়া তাহাদিগকে তান্তবসূত্র বলা যায়। কিন্তু সামান্য সূতা বা রেসমের দ্বারাও সারিকাবন্ধন হইতে পারে। শক্ত হইবে সুতরাং অনেক দিন যাইবে বলিয়া তান্তব-সূত্রই সচরাচর ব্যবহৃত হয়। প্রত্যেক সারিকা ইচ্ছামত নড়ান যাইতে পারে, যে সকল সেতারের পর্দ্দা উচ্চ নীচ করিয়া নড়ান যায়, সে সকল সেতারের নাম সচলঠাট সেতার। এইরূপ পর্দ্দাচালন পদ্ধতি কেবল সুরকে কোমল এবং তীব্র করিবার জন্য ব্যবহৃত হয়। এক্ষণে সেতারের অবয়ব একরূপ বলা হইল। ইহার উপর তার চড়াইলেই সেতার সম্পূর্ণ অবয়ব ধারণ করে।

সেতারের পূর্ব্বতন সংস্কৃত নাম ত্রিতন্ত্রী। তিনটী তন্ত্রবিশিষ্ট যে যন্ত্র, তাহাকেই সংস্কৃতভাষায় ত্রিতন্ত্রী বলে। বস্তুতও পূর্ব্বে ত্রিতন্ত্রীতে তিনটী করিয়া তার আবদ্ধ থাকিত, যেহেতু এখনও পশ্চিমদেশীয় কোন কোন সেতারে তিনটী তার সংলগ্ন থাকা দেখিতে পাওয়া যায়, কিন্তু ইহা অতি বিরল। যাহা হউক, যবন রাজাদিগের রাজত্বকালে সঙ্গীতের ক্রিয়াসিদ্ধাংশ উহাদিগের নিকট বিশেষ আদৃত হওয়াতে কেহ কেহ বলেন, আমাদিগের সংস্কৃত নামের ঐক্য রাখিয়া আমীর খস্রু এই ত্রিতন্ত্রীর "সেতার" আখ্যা প্রদান করেন। পারসিক ভাষায় "সে" শব্দের অর্থ তিন এবং "তার" শব্দের অর্থ তন্ত্র। যদিও এই যন্ত্রের সংস্কৃতানুযায়ী নাম ত্রিতন্ত্রী এবং পারসিক নাম সেতার এতদুভয় শব্দেরই অর্থগত ঐক্য আছে বটে, কিন্তু কার্য্যগত কোন ঐক্য সচরাচর দেখিতে পাওয়া যায় না। কারণ এক্ষণে ইহাতে সাধারণতঃ পাঁচটী তার যোজিত থাকে, এবং যন্ত্র বড় হইলে উক্ত পাঁচটী ব্যতীত আরও তিন চারিটী অপেক্ষাকৃত ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র তার আবদ্ধ থাকা দেখিতে পাওয়া যায়, এই শেষোক্ত তারগুলির নাম চিকারী বা পার্শ্বতন্ত্রিকা। সংস্কৃতসঙ্গীতগ্রন্থকর্ত্তারা যে নানাবিধ বীণার নাম নির্দ্দেশ করিয়াছেন,

তন্মধ্যে ত্রিতন্ত্রীও অন্যতর বীণাজাতির মধ্যে পরিগণিত। তদনুসারে ইহার নাম ত্রিতন্ত্রী বীণা, আর এতদ্দেশে কচুয়া সেতার নামে চেপ্টা রকম একপ্রকার সেতারের ব্যবহার আছে, তাহার সংস্কৃত নাম কচ্ছপী বীণা। যাহাই হউক, ত্রিতন্ত্রী বীণা এবং কচ্ছপী বীণা এতদুভয়ই সর্ব্বসাধারণতঃ সেতার বলিয়া প্রসিদ্ধ।

আমাদিগের বর্ণ্যমান সেতারে পাঁচটী তার আবদ্ধ থাকিবে, উক্ত পাঁচটী তারের মধ্যে তিনটী পিত্তলের, অপর দুইটী পাকা লৌহনির্ম্মিত। সামান্যতঃ পিত্তলের তারগুলিকে কাঁচা, আর লৌহের দুটীকে পাকা তার বলে। ইহাদের মধ্যে চারিটী লৌহের হইলেও হানি নাই, কিন্তু একটী পিত্তলের অথবা অন্য কোন কাঁচা ধাতুর হওয়া আবশ্যক। কোন্ তারটী কোন্ স্বরে বাঁধা থাকে, শিক্ষার্থীদিগের সহজে বোধগম্য হইবার জন্য নিম্নভাগে একটী সেতারের প্রতিকৃতি অঙ্কিত হইল। ঐ সেতারের উপরিস্থিত তারজড়িত পাঁচটী কাণে এক, দুই করিয়া চিহ্ন নির্দ্দিষ্ট করা হইয়াছে।

সেতার যন্ত্র।

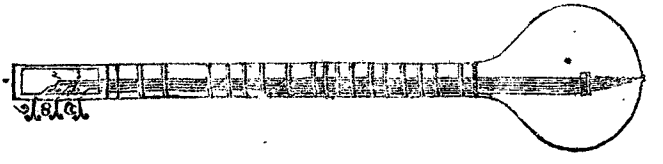

(২) এবং (৩) চিহ্নবিশিষ্ট তারদ্বয়কে স্বর করিয়া বাঁধা প্রসিদ্ধ, এই দুইটী তার প্রায়ই পিত্তলের হইয়া থাকে, এবং ঐ দুইটী তার সমস্বরে বাঁধার ব্যবহারহেতু উহাদের নাম জুড়ী, তাহার পর (১) চিহ্নবিশিষ্ট তারটীকে ঐ আবদ্ধ জুড়ীর মধ্যম করিয়া বাঁধা কর্ত্তব্য; এই তারটী পাকালৌহ ব্যতীত অপর কোন কাঁচা ধাতুর হইতে পারে না, এটীর নাম নায়কী অর্থাৎ প্রধান তার। চারিচিহ্নবিশিষ্ট তারটীও লৌহনির্ম্মিত, সমস্বরে আবদ্ধ উক্ত জুড়ীর অবলম্বনে এটী সচরাচর পঞ্চম করিয়া বাঁধা যায়, কিন্তু রাগবিশেষে ইচ্ছাধীন গান্ধার, মধ্যম ইত্যাদিও করা যাইতে পারে, ফলতঃ এ তারটী পঞ্চম বলিয়াই প্রসিদ্ধ। কথিত

হইল, পাঁচটী তারের মধ্যে চারিটী লৌহের হইলেও ক্ষতি নাই, কিন্তু একটী পিত্তলের অথবা অন্য কোন কাঁচা ধাতুর হওয়া উচিত, সেটী ঐ পাঁচচিহ্নবিশিষ্ট তার, ঐটীর নাম ষড়্জ। উহা, পূর্ব্বোক্ত আবদ্ধ জুড়ীর নিম্ন সপ্তকের ষড়্জ বা সুর করিয়া বাঁধিতে হয়। এই তারটী পিত্তল অথবা অন্য কোন কাঁচা ধাতুর না হইলে নিম্নের ষড়্জ ভাল শোনায় না। কিন্তু "ছেড়" ভালরূপে বাজাইবার জন্য কেহ কেহ পঞ্চম তারকে চতুর্থ তারের স্থানে এবং চতুর্থকে পঞ্চমের স্থানে বসাইয়া থাকেন, কিন্তু সে স্থলেও উক্ত তারদ্বয় যে যে ধাতুর নির্ম্মিত বলিয়া উক্ত হইয়াছে, তাহার অথবা উহাদের নামের কিছুমাত্র ব্যতিক্রম হইবে না। কথিত হইয়াছে, কোন কোন সেতারবিশেষে পাঁচটীর অতিরিক্ত কাণও থাকে, ঐ কাণগুলি দাণ্ডার পার্শ্বে পার্শ্বে যোজিত থাকে এবং ঐ কাণগুলিতে প্রায়ই পাকা ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র তার আবদ্ধ করা ব্যবহার আছে। এই চিকারীগুলি বাদক ইচ্ছাক্রমে বাঁধিয়া লন, তবে তাহার মধ্যে কথা এই, যখন ঐ চিকারীর কাণ যে পর্দ্দার পার্শ্বে যোজিত হয়, তখন ঐ পর্দ্দার অনুরূপ সুর করিয়া বাঁধাই রীতি।

ধারণ।

সেতার যন্ত্র রীতিমত ধরিতে গেলে, খোলের পশ্চাদ্ভাগ ধারকের সম্মুখ দিকে থাকিবে, দক্ষিণ হস্তের মণিবন্ধ সহকারে তব্‌লীর পার্শ্বদিক্ চাপিয়া বাম হস্তে দাণ্ডাটীকে আল্গোছে হেলাইয়া রাখা কর্ত্তব্য। বাম হস্তের তর্জ্জনী প্রথম তারের উপর টিপিয়া মধ্যমাঙ্গুলী পট্‌রির উপর কুঞ্চিতভাবে আল্গোছে রাখিয়া বৃদ্ধাঙ্গুলী দাণ্ডার পশ্চাদ্ভাগে ঠেস রাখিবে। বাম হস্ত এমনি আল্গোছে থাকিবে, যেন ইচ্ছামত ইহাকে দাণ্ডার নিম্নে ও ঊর্দ্ধে অতি সহজে নামাইতে ও উঠাইতে পারা যায়। কেহ কেহ খোলের উপর হাঁটু দিয়া বাজান, কিন্তু ও প্রণালীতে বড় সেতারে রাগাদি ভালরূপে বাজান আমাদিগের মতে কিছু কষ্টকর বলিয়া বোধ হয়।

ষড়্‌জাদি সপ্তস্বর।

স্নিগ্ধ অথচ রঞ্জনগুণবিশিষ্ট ধ্বনিবিশেষের নাম স্বর। স্বরই সঙ্গীতের মূল। ষড়্‌জ, ঋষভ, গান্ধার, মধ্যম, পঞ্চম, ধৈবত এবং নিষাদ এই সাতটী শুদ্ধস্বর। ইহাদের প্রত্যেককে এক একটী ধাতু বলে। সচরাচর কথোপকথনে প্রত্যেক স্বরের সাঙ্কেতিক নাম সা, ঋ, গ, ম, প, ধ ও নি মাত্র ব্যবহার করা যায়। কথিত সা, ঋ, গ, ম, প, ধ ও নি একত্র করিলে গ্রাম বা সপ্তক সংজ্ঞা হয়। সপ্তক অসংখ্য, কিন্তু মনুষ্যকণ্ঠে উদারা, মুদারা এবং তারা এই তিনটী মাত্র সপ্তক উত্তমরূপে সংসাধিত হইয়া থাকে। গ্রাম বা সপ্তক লিখিবার প্রণালী নিম্নে প্রদর্শিত হইতেছে।

স্বরলিপি-প্রকরণ।

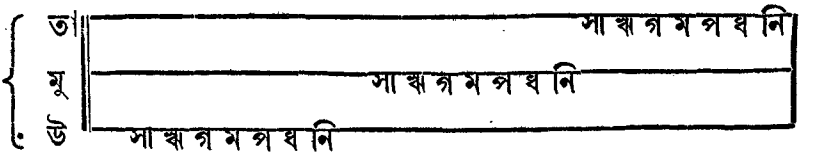

উপরি লিখিত তিনটী সরল রেখার মধ্যে সকলের নিম্ন রেখাটীতে যে সাতটী স্বর লেখা আছে, ঐ কয়েকটী স্বর উদারা সপ্তকের, উদারা সপ্তক জ্ঞাপন জন্য ঐ রেখার আদিতে (উ) লেখা আছে। ঐ সরল রেখা তিনটীর মধ্যস্থিত রেখাটীতে মুদারা সপ্তকের স্বর কয়েকটী লেখা হইল, সেই জন্য উহার পূর্ব্বে (মু) দেওয়া আছে। আর সকলের উপরের রেখাটীতে তারা সপ্তকেরই সাতটী স্বর লেখা হেতু ঐ রেখার আদিভাগে (তা) নির্দ্দিষ্ট আছে। প্রাচীনকালে একমাত্র সরল রেখাতেই গ্রামত্রয় লিখিবার রীতি বিধিবদ্ধ ছিল। তদপেক্ষা অতি সহজে বোধগম্য হইবার জন্য উল্লিখিত প্রণালীতে পৃথক্ তিন রেখায় তিনটী গ্রাম লিখিবার পদ্ধতি আবিষ্কৃত করা যায়, কিন্তু ইহাতে নিরর্থক অনেক স্থান আবদ্ধ হয় বলিয়া আমরাও অতঃপর সেই প্রাচীন নিয়মানুমত এক রেখাতেই ত্রিসপ্তক লিপিবদ্ধ করিব। ঐ সপ্তকত্রয়ের পার্থক্যজ্ঞাপনার্থ উদারা সপ্তকের স্বরসমূহের নিম্নে এক একটী বিন্দু দেওয়া যাইবে,

মুদারা সপ্তকের স্বর যেমন তেমনি থাকিবে এবং তারা সপ্তকের স্বরের উপরিভাগে এক একটী বিন্দু যোগ করা যাইবে। যথা;—

সা ঋ গ ম প ধ নি সা ঋ গ ম প ধ নি সাঁ ঋঁ গঁ মঁ পঁ ধঁ নিঁ

এই প্রণালীতে শুদ্ধ ত্রিসপ্তক কেন, অনন্ত সপ্তক এক রেখাতে লেখা যাইতে পারিবে। কেবল মুদারার নিম্ন ও উচ্চ সপ্তকের সংখ্যানুসারে স্বরসমূহের নিম্নে ও উচ্চে বিন্দু দিলেই হইবে। যথা;—সা, সাঁ; এই দুইটী সার মধ্যে প্রথমটীদ্বারা উদারার নিম্ন সপ্তক এবং দ্বিতীয়টীদ্বারা তারার উচ্চ সপ্তক জানা যাইতেছে।

সেতার যন্ত্রে সচরাচর পূর্ণ উদারা মুদারা, এবং তারা সপ্তকের অর্দ্ধ অর্থাৎ সা, ঋ, গ ও ম পর্য্যন্ত এই আড়াই সপ্তকের অধিক প্রায় থাকে না। নিম্ন অঙ্কিত প্রতিমূর্ত্তির হস্তস্থিত সেতারের একাদি অঙ্কবিশিষ্ট সতেরখানি পর্দ্দার বিবরণ বিশেষরূপে হৃদয়ঙ্গম করিতে পারিলেই সেতার যন্ত্রে ঐ সার্দ্ধ দ্বিসপ্তক কি নিয়মে বিন্যস্ত থাকে ও সংসাধিত হয়, তাহা অনায়াসে বোধগম্য হইবে।

প্রথমে দক্ষিণ হস্তের তর্জ্জনীতে মিজ্‌রাপ পরিয়া সেতারটী বাম হস্তে যথানিয়মে ধরিতে হয়। তদনন্তর মিজ্‌রাপ দিয়া দুই চিহ্ন বিশিষ্ট জুড়ীর কাঁচা তার ছাড়িয়া আঘাত করিলে উদারার ষড়্‌জ হইবে, বাম হস্তের তর্জ্জনীদ্বারা ঐ কাঁচা তার দ্বিতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া ঐরূপ আঘাত করিলে উদারার ঋষভ হইবে, বাম হস্তের মধ্যমাঙ্গুলী-দ্বারা ঐ তার তৃতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার গান্ধার হইবে, নায়কী তার ছাড়িয়া আঘাত করিলে উদারার মধ্যম হইবে, নায়কী তার তর্জ্জনীদ্বারা দ্বিতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার পঞ্চম হইবে, নায়কী তার মধ্যমাঙ্গুলীদ্বারা তৃতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার ধৈবত হইবে এবং ঐ তার মধ্যমাঙ্গুলী-দ্বারা পঞ্চম পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার নিষাদ হইবে। এই প্রণালীতে প্রথমে উদারা সপ্তকের স্বরগ্রাম স্থির হয়। পরে মধ্যমাঙ্গুলী দ্বারা নায়কী তার ষষ্ঠ পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে মুদা-রার ষড়্‌জ হইবে। ঐ নিয়মে সপ্তম পর্দ্দায় ঋষভ, অষ্টম পর্দ্দায় গান্ধার, নবম পর্দ্দায় মধ্যম, একাদশ পর্দ্দায় পঞ্চম, দ্বাদশ পর্দ্দায় ধৈবত, এবং ত্রয়োদশ পর্দ্দায় নিষাদ সম্পন্ন হয়। এই সাতটী স্বরকে মুদারা সপ্তকের স্বর কহে। সচরাচর গান বা বাদ্য আরম্ভসময়ে এই মুদারা সপ্তকই অব-লম্বনীয়, ইহার বিশেষ কারণ সঙ্গীতসারে সপ্তকপ্রকরণে দ্রষ্টব্য। নায়কী তার মধ্যমাঙ্গুলীদ্বারা চতুর্দ্দশ পর্দ্দাতে চাপিয়া দক্ষিণ হস্তের মিজ্‌-রাপযুক্ত তর্জ্জনীর আঘাত করিলে তারাগ্রামের ষড়্‌জ হইবে, পঞ্চদশ পর্দ্দায় তারার ঋষভ, ষোড়শ পর্দ্দাতে তারার গান্ধার, এবং সপ্তদশ পর্দ্দাতে তারার মধ্যম সম্পন্ন হয়। এই নিয়মে আড়াই সপ্তক সেতারে সম্পন্ন হইয়া থাকে। দক্ষিণ হস্তের আঘাতগুলি পর্দ্দা সকলের শেষে যে খালি স্থান আছে, সেইখানকার তারে হওয়া উচিত, তাহা না হইলে শব্দ উত্তমরূপে প্রকাশ পাইবে না। প্রথম, চতুর্থ এবং দশম এই তিনখানি পর্দ্দার স্বর প্রকৃত স্বর নহে। প্রথমখানির নাম উদারার কড়িমধ্যম, স্বাভাবিক মধ্যম হইতে এই স্বর কিঞ্চিৎ চড়া অর্থাৎ উচ্চ। যাবনিক ভাষায় কড়িশব্দে উচ্চতাকে বুঝায়। চতুর্থ পর্দ্দার স্বরের

নাম উদারার কোমল নিষাদ, অর্থাৎ ইহা স্বাভাবিক নিষাদ হইতে কিঞ্চিৎ ন্যূন। দশম পর্দ্দার স্বরটীর নাম মুদারার কড়িমধ্যম।

কোন তীব্র স্বরকে স্বরলিপিবদ্ধ করিতে হইলে পূর্ব্বোক্ত রেখাতে লিখিত প্রকৃত স্বরের মস্তকে এইরূপ (৮) পতাকা চিহ্ন দেওয়া যাইবে। যে স্বরের মস্তকে এইরূপ চিহ্ন থাকিবে, তাহাকে তীব্র স্বর বলিয়া জানা কর্ত্তব্য, পতাকা চিহ্নই তীব্রতাজ্ঞাপক চিহ্ন, কিন্তু যদ্যপি ঐ পতাকা চিহ্নটী আবার এইরূপ (৮) বিন্দুযুক্ত হয়, তবে তাহা অতিতীব্রতাজ্ঞাপক বলিয়া জানিতে হইবে। যে প্রকৃত স্বরের উপর এইরূপ (△) ত্রিকোণ চিহ্ন থাকিবে, সেটীকে কোমল স্বর বলিয়া জ্ঞান করা কর্ত্তব্য, কিন্তু যদ্যপি আবার ঐ ত্রিকোণ চিহ্নটী এইরূপ (▲) বিন্দুযুক্ত হয়, তবে তাহাকে অতিকোমলতাজ্ঞাপক বলিয়া জানিতে হইবে।

সতেরখানি পর্দ্দাবিশিষ্ট সেতার যন্ত্রে উক্ত তীব্র এবং কোমল স্বর সহিত সার্দ্ধ দ্বিসপ্তকসন্নিবিষ্ট পূর্ণ উদারা এবং মুদারা সপ্তকের স্বর কয়েকটী ও তারা গ্রামের সা, ঋ, গ ও ম এই চারিটী স্বর মাত্র যে প্রকারে বিন্যস্ত থাকে, অবিকল সেইরূপ স্বরলিপি নিম্নে লিখিত হইতেছে।

১ ২ ৩ ৪ ৫ ৬ ৭ ৮ ৯ ১০ ১১ ১২ ১৩ ১৪ ১৫ ১৬ ১৭

সা ঋ গ ম ▲ প ধ নি ▲ নি সা ঋ গ ম ▲ প ধ নি সাঁ ঋঁ গঁ মঁ

উদারা সপ্তকের সা, ঋ ও গ এই তিনটী স্বর পূর্ব্ব-কথিত নিয়মে কাঁচা তারে সাধন জন্য উহাদের মস্তকে কোন সংখ্যা অঙ্কিত হয় নাই। কথিত হইয়াছে নায়কী তার ছাড়িয়া আঘাত করিলে উদারার মধ্যম হইবে, সেই জন্য উদারার মধ্যমের উপর একাদি সংখ্যার প্রয়োজন করে না; প্রথম পর্দ্দা উদারার তীব্র মধ্যম হইতে আরম্ভ হইয়া সেতারে না কি সংখ্যাতে সতেরখানি পর্দ্দা হইয়া থাকে, সেই জন্য ঐ কড়িমধ্যম হইতে একাদিক্রমে সতের পর্য্যন্ত সংখ্যা প্রত্যেক স্বরের মস্তকে লিখিত হইল। বস্তুতঃ স্বরলিপি মাত্রেই যে, প্রত্যেক স্বর একাদি সংখ্যাবিশিষ্ট করিয়া লিখিতে হইবে এমন নহে, কেবল সেতার যন্ত্রের পর্দ্দা

কয়েকখানির স্বরলিপির সহিত সম্বন্ধ, প্রথম পাঠার্থীদিগকে সহজে বুঝাইবার জন্য উপরি লিখিত স্বরগুলি একাদি সংখ্যাযোগে লিখিত হইয়াছে।

ষড়্জাদি সপ্ত স্বরের ঊর্দ্ধগতির নাম অনুলোম, যেমন সা, ঋ, গ, ম, প, ধ, ও নি। সপ্ত স্বরের অধোগতির নাম বিলোম, যেমন নি, ধ, প, ম, গ, ঋ, সা। গায়কেরা সচরাচর প্রথমোক্ত গতিকে আরোহী এবং শেষোক্তটীকে অবরোহী বলিয়া থাকেন। পূর্ব্বে কথিত হইয়াছে যে, সা, ঋ, গ ও ম ইত্যাদি সাতটী স্বরকে সাতটী ধাতু এবং ক-আদি বর্ণ উচ্চারণকালকে মাত্রা বলে। প্রাচীন পণ্ডিতদিগের মতে মাত্রা পাঁচ প্রকার, যথা; হ্রস্ব, দীর্ঘ, প্লুত, অর্দ্ধ এবং অণু। সহজে একটী মাত্র লঘু বর্ণ উচ্চারণ করিতে যে সময়ের আবশ্যক, তাহাকে একমাত্র অথবা হ্রস্বমাত্র কাল বলা যায়; তাহার চিহ্ন এইরূপ (।) এক একটী দণ্ড; উদাহরণ যথা;—সা ঋ ইত্যাদি। দুইটী লঘু বর্ণ সহজে উচ্চারণ করিতে যে সময়ের প্রয়োজন, সেই সময়ের নাম দ্বিমাত্র বা দীর্ঘমাত্র কাল; তাহার চিহ্ন এইরূপ (॥) দুইটী দণ্ড, উদাহরণ যথা;—সা ঋ ইত্যাদি। তিনটী লঘুবর্ণ উচ্চারণের যে সময়, তাহাকে ত্রিমাত্র অথবা প্লুতমাত্র কাল কহে, তাহার চিহ্ন এইরূপ (।।।) তিনটী দণ্ড, উদাহরণ যথা;—সা ঋ ইত্যাদি। তিন মাত্রার অতিরিক্ত মাত্রা হইলেও তাহাকে প্লুত মাত্রা বলা যায়। তিন মাত্রার অতিরিক্ত যত মাত্রা হইবে, সেই মাত্রার সংখ্যানুসারে উপরি উক্ত দণ্ড চিহ্ন কয়েকটীরও সংখ্যা নির্দ্দিষ্ট হইবে। মনে কর যেন কোন স্থানে ছয়মাত্র কালের প্রয়োজন আছে, সে স্থলে সেই ছয়টী মাত্রা লিখিবার জন্য ছয়টী দণ্ড চিহ্ন লিখিতে হইবে, উদাহরণ যথা;—সা ঋ ইত্যাদি। গানাদিতে প্লুত মাত্রারই অধিক প্রয়োজন দেখিতে পাওয়া যায়। এক মাত্রার অর্দ্ধেকটুকু সময়ের নাম ব্যঞ্জন বা অর্দ্ধমাত্র কাল, অথবা দুইটী অর্দ্ধ মাত্রা উচ্চারণে একমাত্র কাল সম্পন্ন হইয়া থাকে। এইরূপ (৺) অর্দ্ধচন্দ্র চিহ্নই অর্দ্ধমাত্রাকালজ্ঞাপক চিহ্ন; উদাহরণ যথা;—

সাঁ ঋঁ ইত্যাদি। এই চিহ্নটী এক দুই ইত্যাদি মাত্রার সহিত একত্র লিখিবার সময় দণ্ড চিহ্নের পার্শ্বে পার্শ্বে থাকিবে, যেমন সাঁ ঋঁ ইত্যাদি। গীতে কখন কখন অণুমাত্রা অর্থাৎ অর্দ্ধমাত্রার অর্দ্ধমাত্রা ব্যবহার দেখিতে পাওয়া যায়, দুইটী অণুমাত্রাতে একটী অর্দ্ধমাত্রা এবং চারিটী অণুমাত্রাতে একটী পূর্ণমাত্রা সম্পন্ন হইয়া থাকে। অণু-মাত্রার এইরূপ (×) ডমরু চিহ্ন, এই চিহ্নটীও অর্দ্ধমাত্রার অনুরূপভাবে লিখিত হইবে। যথা ;—সাঁ ঋঁ, সাঁ ঋঁ ইত্যাদি। প্রাচীন পণ্ডিতেরা উক্ত পাঁচপ্রকার মাত্রাদ্বারাই সঙ্গীতক্রিয়া লিপিবদ্ধ করিতেন, কিন্তু আমাদিগের বিবেচনায় উক্ত পঞ্চবিধ মাত্রাদ্বারা কখনই স্বর বা স্বর-সমূহের বিশেষ বিশেষ স্থিতিকাল সুন্দররূপে হৃদয়ঙ্গম হইতে পারে না, অতএব এ স্থলে আরও কয়েকটী মাত্রাজ্ঞাপক চিহ্ন প্রকটিত করা গেল। স্বর এক মাত্রার দুই তৃতীয়াংশ কাল স্থায়ী হইলে এইরূপ (↑) বাণ চিহ্ন, তৃতীয়াংশ কাল স্থায়ী হইলে এইরূপ (ᛘ) ত্রিশূল চিহ্ন, এবং অষ্টমাংশ কাল স্থায়ী হইলে এইরূপ (০) যব চিহ্ন ব্যবহার করা যাইবে ; এই সকল মাত্রা চিহ্নও স্বরের উপরে উপরে থাকিবে। যথা ;— সাঁ ঋঁ গঁ ইত্যাদি। বোধ করি পূর্ব্বোক্ত পাঁচ প্রকার এবং এই ত্রিবিধ মাত্রার যোগেই স্বরলিপি অপেক্ষাকৃত বিশদ হইতে পারিবে। কথিত ধাতু এবং মাত্রা এতদুভয়ে মিলিত হইয়া প্রকাশ পাইলে তাহাকে প্রকৃত গীত বলা যায়।

গীত দুইপ্রকার, গাত্রজ এবং যন্ত্রজ। যে গীত মনুষ্যকণ্ঠে সুস্পষ্টরূপে উৎপাদিত হইয়া লোকের চিত্তরঞ্জন করে, তাহার নাম কণ্ঠগীত, আর যে গীত বীণা অথবা সেতারাদি যন্ত্রে প্রতিপন্ন হয়, তাহার নাম যন্ত্রগীত।

কথিত হইয়াছে কালজ্ঞাপক মাত্রাচিহ্ন প্রত্যেক স্বরের উপরে উপরে দেওয়া থাকিবে, কিন্তু তালবিশেষের অনুরোধে এমনও হয় যে, দুইটী তিনটী অথবা তদতিরিক্ত স্বরের উপর কোন মাত্রাচিহ্নই নাই, মাত্রাচিহ্নটী সর্ব্বশেষের স্বরটীর উপর দেওয়া আছে, সেখানে একমাত্রা কালের মধ্যে সর্ব্বশেষ স্বরটীর সহিত পূর্ব্ব স্বরগুলি সমভাবে প্রকাশিত

হইবে। এবং সেই কয়েক স্বর এইরূপ (⌐¬) একটী ভগ্ন বন্ধনীদ্বারা পরস্পর সংলগ্ন থাকিবে। যেমন সা ঋ গ, এইরূপ ঘটনা প্রায় গতের পাদান্তেই হইয়া থাকে। যেখানে কোন স্বরের উপর মাত্রাচিহ্ন আছে, অথচ ঐ স্বরের পর একটী অথবা তদতিরিক্ত স্বরের উপর কোন মাত্রা-চিহ্ন নাই, সে স্থলে পূর্ব্ব স্বরের উপরিস্থিত নির্দ্দিষ্ট মাত্রাকালের মধ্যে সমুদয় নির্মাত্র পর স্বরগুলি সমভাবে প্রকাশিত হইবে, এবং নির্মাত্র স্বরগুলি মাত্রাবিশিষ্ট স্বরের সহিত একটী বন্ধনীদ্বারা পরস্পর সংযত থাকিবে, যেমন সাঋগ ইত্যাদি। ছন্দের অনুরোধে কখন কখন এমনও হয় যে, মাত্রাচিহ্ন কোন স্বরের উপরে না থাকিয়া স্বরহীন খালি স্থানেও থাকে, সে স্থলে সেই মাত্রার অর্দ্ধ সময় বিশ্রাম এবং অবশিষ্ট অর্দ্ধ সময়ের মধ্যে পরবর্ত্তী স্বর বা স্বরসমূহ প্রকাশ করিতে হইবে। যথা;—সা সাঋ ইত্যাদি।

অঙ্গুলীর নিয়ম।

সেতারবাদন আরম্ভ এবং স্বরের অধোগতির সময় বামহস্তের তর্জ্জনী এবং স্বরের ঊর্দ্ধগতির সময় মধ্যম অঙ্গুলীর ব্যবহার হইয়া থাকে।

সেতারের বোল ও আঘাতের নিয়ম।

যে সকল স্বরের নীচে (আ) চিহ্ন থাকিবে, সেই সেই স্বরে আঘাত হইবে, যেমন সাঋ ইত্যাদি।
আ আ

সেতারবাদকেরা ডা, রা, ডি, রি, ডে, রে ইত্যাদি নানারূপ কাল্পনিক

বোল ব্যবহার করেন। ডা, রা, ডি, রি, ডে, রে ইত্যাদি বোলগুলি স্বরের নীচে নীচে লিখিত হইয়া থাকে (১) যেমন সা ঋ গ ম প ধ
ডা রা ডি রি ডে রে
ইত্যাদি।

যে স্বরের নীচে ডা দেওয়া থাকিবে, সেখানকার আঘাত কোলের দিকে হওয়া উচিত, আর যে সকল স্বরের নীচে রা দেওয়া থাকিবে, সে সকল স্বরের আঘাত তাহার উল্‌টা দিকে অর্থাৎ ডার বিপরীত ভাবে হইবে। এইরূপ উল্‌টা আঘাত অর্থাৎ রার আঘাতের সময় নায়কী তারের সহিত জুড়ীর তারের ঝঙ্কার লাগা কর্ত্তব্য। ডা, ডে অথবা ডি এই তিনটী শব্দই এক কার্য্য প্রতিপাদক বলিয়া প্রসিদ্ধ, রা, রে অথবা রি এই তিনটী শব্দও সমান ফলদায়ক।

প্রথম শিক্ষার্থী সেতারীদিগকে সহজে বুঝাইবার এবং গত বাজাইবার জন্য ডা, রা, ডা, রা, ডে, রে, ডে, রে, ডি, রি, ডি, রি, ডাএরে, ডাএরে প্রভৃতি কতকগুলি কাল্পনিক বোল নির্দ্দিষ্ট আছে, তাহা না হইলে প্রথম সাধন অথবা গত শিক্ষা করা কঠিন। এই সকল বোল, লিখিত মাত্রানুযায়িক লঘু এবং গুরুরূপে ব্যবহৃত হইয়া থাকে। রাগ লিপিবদ্ধের সময় ডা, রা ইত্যাদি বোল লিখিত হয় না; সেখানে কেবল আঘাতের স্থানে (আ) লেখা যাইবে। যেহেতু রাগ বাজাইবার সময় বাদক আপন ইচ্ছানুসারে যেস্থানে কোলের দিকে আঘাত ভাল বোধ করিবেন, সেস্থলে তাহাই দিবেন, এবং যেস্থানে তদ্বিপরীত রা উত্তম বিবেচনা করেন, সেখানে তাহাই দিতে পারিবেন। রাগ বাজাইবার আঘাত কতক অংশে বাদকের সুবিধার উপর নির্ভর করে।

---

(১) ডা, রা, ডি, রি, ডে, রে ইত্যাদি বোল প্রথম সেতার সাধন এবং গতে ব্যবহার হয়, অপরঞ্চ রাগাদির আলাপে কেবল স্বরের নীচে নীচে (আ) মাত্র লিখিত হইয়া থাকে। ইহার বিশেষ বিবরণ অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী মহাশয় কৃত সঙ্গীতসারের গতপ্রকরণে এবং রাগপ্রকরণে দ্রষ্টব্য।

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

অনুলোম। বিলোম।

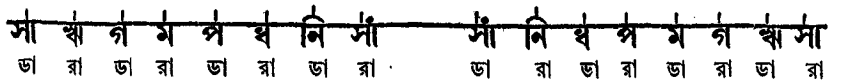

প্রথমে মুদারা গ্রামের স্বর সাতটী অনুলোম গতিতে এক মাত্রানুসারে ধীরে ধীরে এক একটী করিয়া স্পষ্টরূপে পুনঃ পুনঃ সাধন করা উচিত। তদনন্তর ঐ সাতটী স্বর বিলোমভাবে সাধিতে হইবে। এই রূপে পৃথগ্‌ভাবে অনুলোম ও বিলোম সাধন করিতে করিতে হস্তের জড়তা কিয়ৎপরিমাণে অপগত হইলে একেবারে অনুলোম ও বিলোম সাধন করা কর্ত্তব্য। অনন্তর অনুলোম এবং বিলোমসাধনের উদাহরণ যে যেরূপ প্রদর্শিত হইবে, তৎসমুদয়ই মাত্রানুযায়িক পৃথক্ রূপে প্রথমে অনুলোম, পরে বিলোম, তৎপরে অনুলোম এবং বিলোম উভয়মিশ্রণে সাধনরীতি অবলম্বিত হইবে। প্রথম উদাহরণের স্বরগুলি যতটুকু কাল অবলম্বন করিয়া সাধনা করিবে, পরে দ্বিমাত্রানুসারে যে সাধনগুলি লিখিত আছে, সেইগুলি উপরোক্ত কালের দ্বিগুণ কাল অবলম্বন করিয়া যথানিয়মে সাধন করিতে হইবে (১)।

অনুলোম। বিলোম।

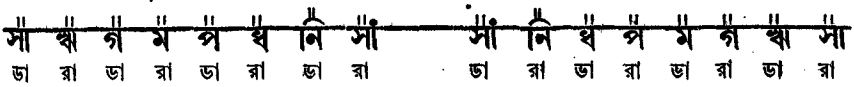

(১) অধ্যাপক গোস্বামী মহাশয় বলেন, এক একমাত্র কাল গ্রহণজন্য যুবা মনুষ্যের স্বাভাবিক নাড়ীর এক একটী আঘাত গৃহীত হইবে, তদনুসারেই মাত্রাকাল স্থির করা কর্ত্তব্য। শিক্ষাকালে যদি কোন শিক্ষক উপস্থিত থাকেন, স্বাভাবিক নাড়ীর গতির সহিত মাত্রাগ্রহণকাল করতালদ্বারা দর্শাইয়া দিবেন, এবং পাদাঙ্গুলীর মৃদু আঘাতদ্বারা ছাত্রদিগকে বাদনকালে যথানির্দ্দিষ্ট মাত্রানুযায়িক কাল স্থির রাখিতে আদেশ করিবেন। আর যত দিন সুরের নাম ও সুরের সারিকাগুলি বিশেষরূপে বোধ না হয়, তত দিন পর্য্যন্ত সেই সঙ্গে সুরগুলি মৃদুভাবে উচ্চারণ করিতে বিধি দিবেন। বাদনকালে পদাঙ্গুলীর মৃদু আঘাতদ্বারা মাত্রা নির্দ্দিষ্ট রাখা সকল সময়েই প্রয়োজনীয়। মাত্রার অন্যান্য বিবরণ সঙ্গীতসারে দ্রষ্টব্য।

অনুলোম। বিলোম।

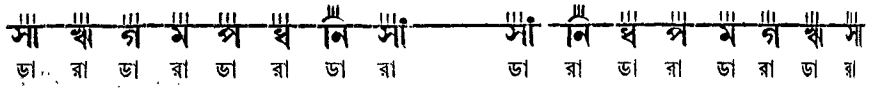

অনুলোম। বিলোম।

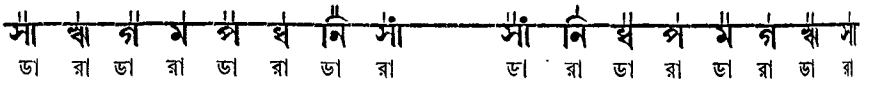

অনুলোম। বিলোম।

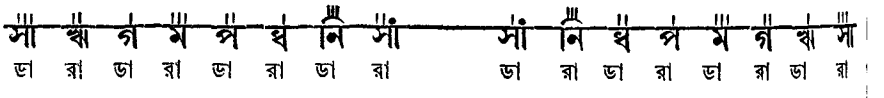

স্বরসমূহের মধ্যে মধ্যে সমমাত্রা ব্যবধানে যে, এক একটী লম্বমান সরল রেখা নির্দ্দিষ্ট থাকে, তাহাদিগকে বিভাজক রেখা বলে। প্রত্যেক পদের মধ্যে মধ্যে এক একটী, পদবিশেষের শেষে দুইটী করিয়া বিভাজক রেখা নির্দ্দিষ্ট থাকিবে, আর এইরূপ (꠸) পদ্ম চিহ্ন দ্বারা কোন গতাদির সম্পূর্ণতা বুঝাইবে।

অনুলোম সাধন।

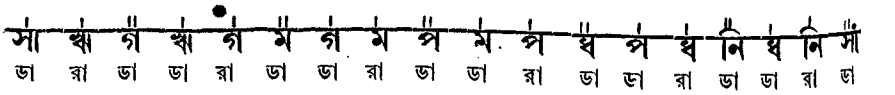

বিলোম সাধন।

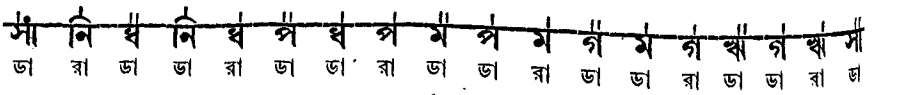

অনুলোম সাধন।

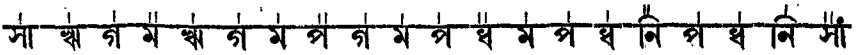

বিলোম সাধন।

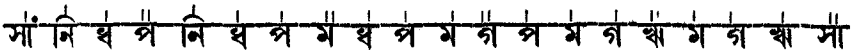

অনুলোম সাধন।

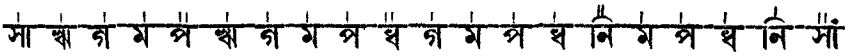

বিলোম সাধন।

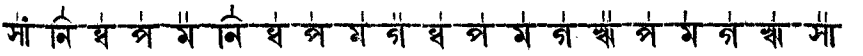

অনুলোম সাধন।

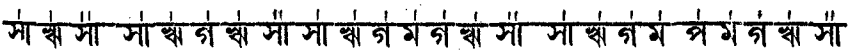

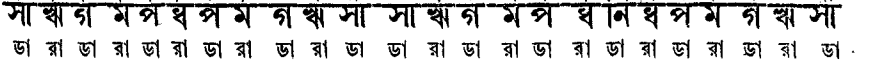

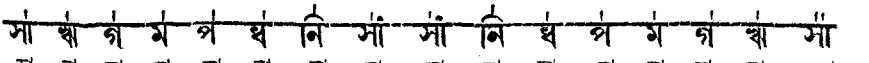

বিলোম সাধন।

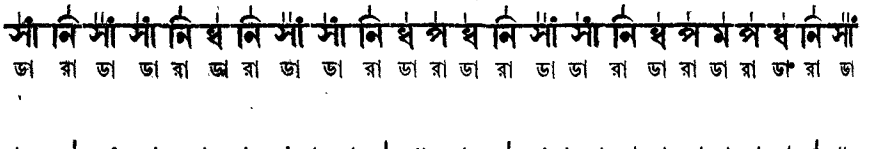

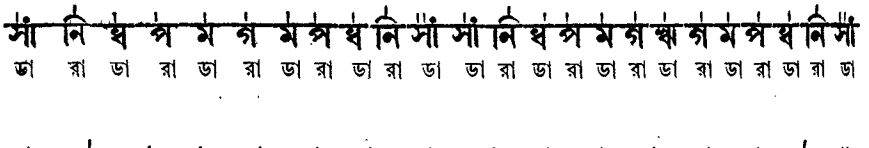

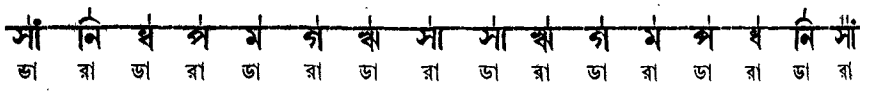

অনুলোম। বিলোম।

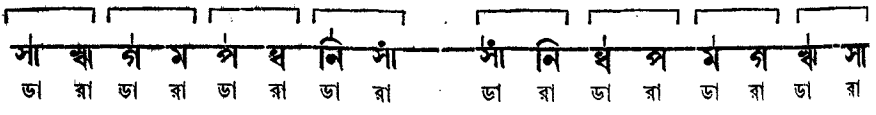

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

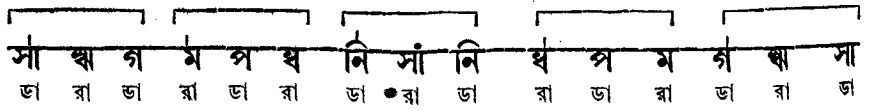

অনুলোম। বিলোম।

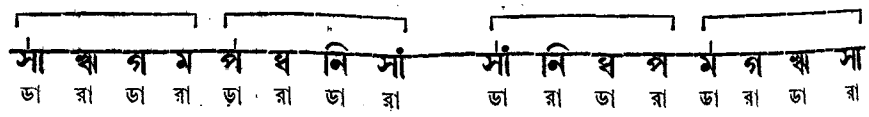

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

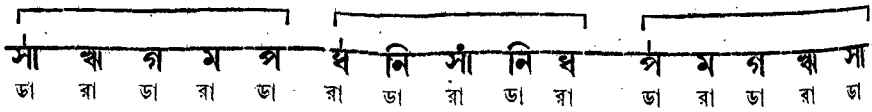

অনুলোম। বিলোম।

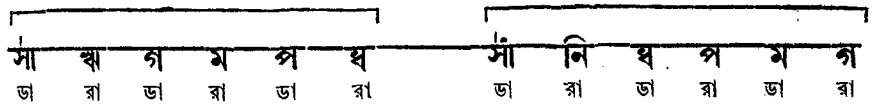

অনুলোম। বিলোম।

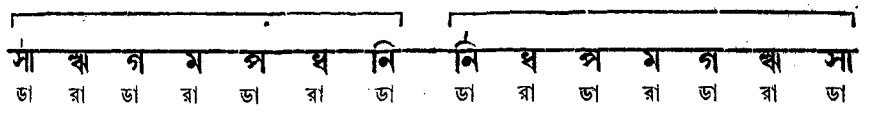

অনুলোম। বিলোম।

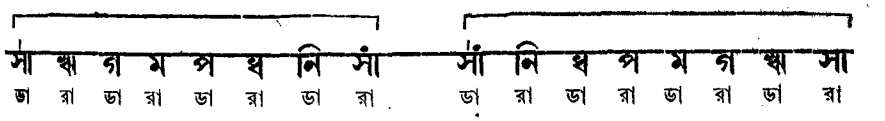

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

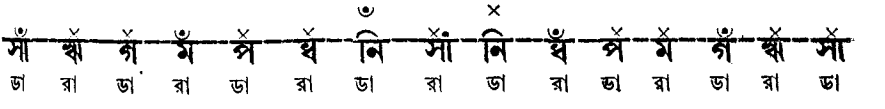

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

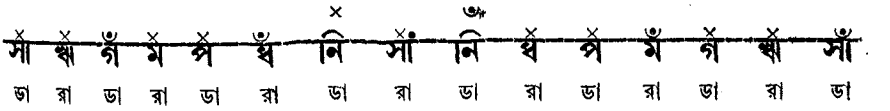

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

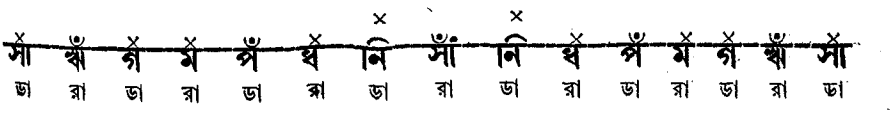

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

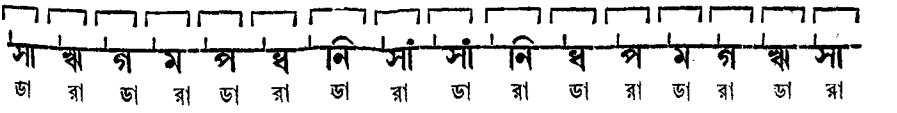

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

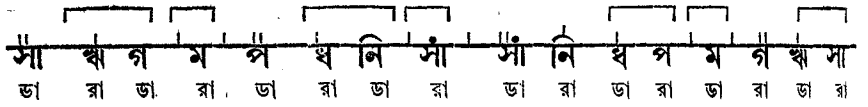

অনুলোম সাধন।

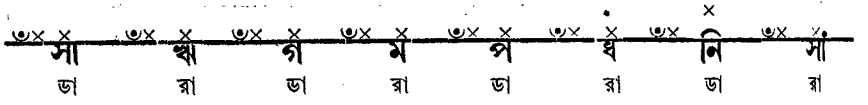

বিলোম সাধন।

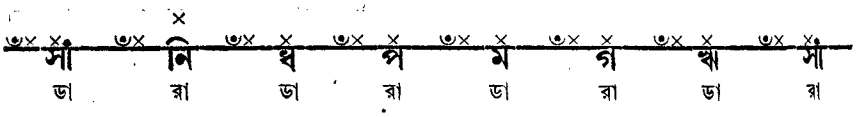

অনুলোম সাধন।

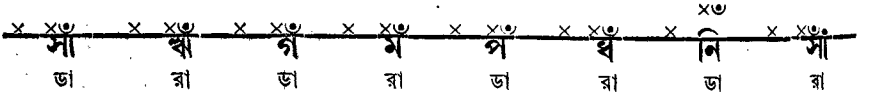

বিলোম সাধন।

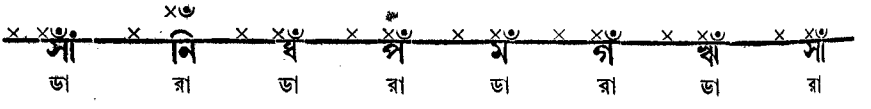

অনুলোম। বিলোম।

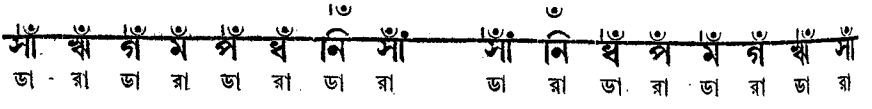

অনুলোম। বিলোম।

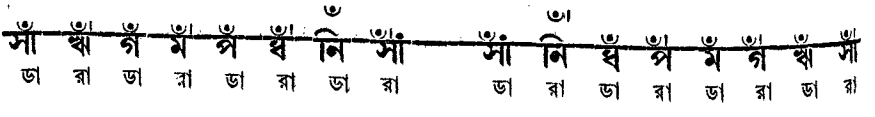

অনুলোম। বিলোম।

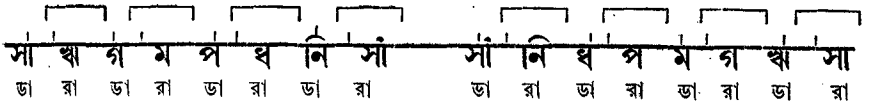

অনুলোম। বিলোম।

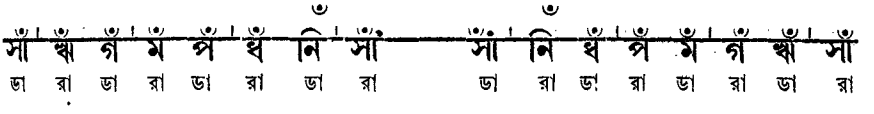

অনুলোম। বিলোম।

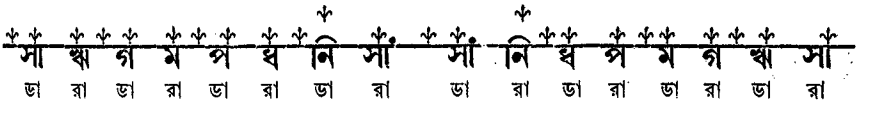

অনুলোম। বিলোম।

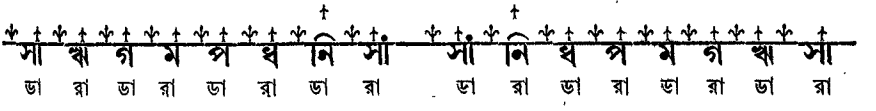

অনুলোম। বিলোম।

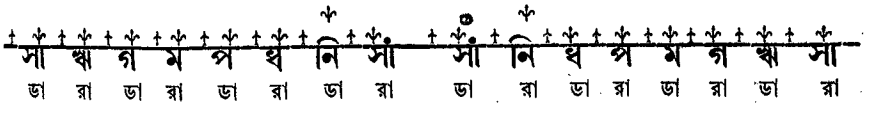

অনুলোম সাধন।

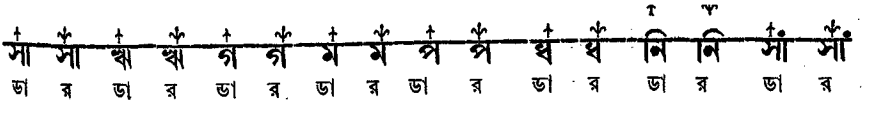

বিলোম সাধন।

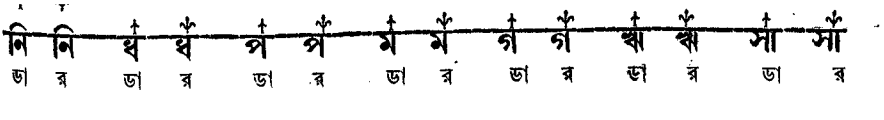

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

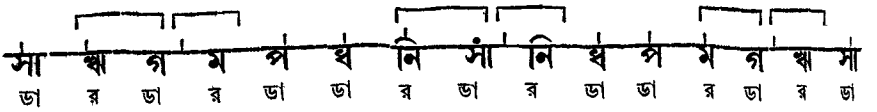

অনুলোম ও বিলোম সাধন।

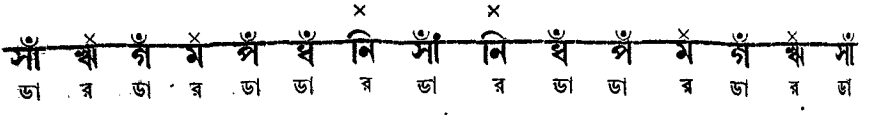

অনুলোম সাধন।

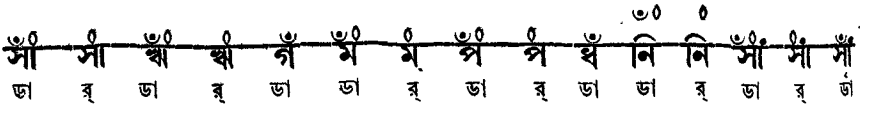

বিলোম সাধন।

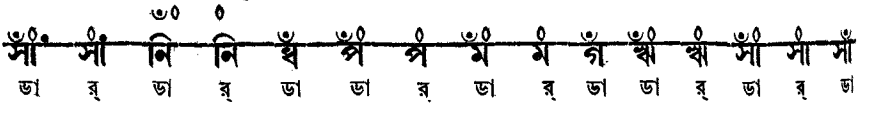

যে সকল সাধন পূর্ব্বে সাধিত হইল, সে সমুদয়গুলি মুদারার, অর্থাৎ মধ্য সপ্তকের। এক্ষণে যথানিয়মে উদারা সপ্তক সাধন কর্ত্তব্য। মুদারা সপ্তকে যে সাতটী স্বর নির্দ্দিষ্ট আছে, উদারা সপ্তকেও সেই সাত স্বর ভিন্ন অপর আর কিছুই নাই, কেবল স্থানগত ভেদজন্য স্বরের নিম্নতা ও উচ্চতা নিবন্ধন পরস্পরকে ভিন্ন বলিয়া বোধ হইয়া থাকে, বাস্তবিক উভয়ে পৃথক্ নহে। এবং তারা সপ্তকেও ঐরূপ জানিবে। বস্তুতঃ সাতটী স্বরের অধিক প্রকৃত স্বর কখনই হয় না (১)। সাত স্বরের অধিক আটটী করিতে গেলে পূর্ব্ব সপ্তকের ষড়্‌জের সহিত মিলিয়া যায়, এতদ্বিষয়ক অনেক প্রমাণ ইংরাজী ধ্বনিবিৎ পণ্ডিতেরাও প্রদর্শন

(১) ইহার অন্যান্য বিবরণ সঙ্গীতসারে দ্রষ্টব্য।

করিয়াছেন। তাঁহারা বলেন, এক সেকেণ্ড অথবা ১৯ মাত্রাকালমধ্যে ৩২ বার ভাইব্রেসন্ (Vibration.) অর্থাৎ কম্পন বা অনুরণন ব্যতীত একটী স্বর অর্থাৎ সঙ্গীতধ্বনি নিষ্পন্ন হয় না। স্বরগ্রাম বা সপ্তকের প্রসূতির স্বরূপ বাইশটী শ্রুতি পূর্ব্বে নির্দ্দিষ্ট হইয়াছে। সংস্কৃত-সঙ্গীতগ্রন্থকর্ত্তারা বলেন যে, ষড়্জে চারিটী, ঋষভে তিনটী, গান্ধারে দুইটী, মধ্যমে চারিটী, পঞ্চমে চারিটী, ধৈবতে তিনটী ও নিষাদে দুইটী শ্রুতি পাওয়া যায়। ষড়্জ হইতে আরম্ভ করিয়া নিষাদ পর্য্যন্ত যে কয়েকটী স্বরের নাম উল্লেখ করা গেল, ঐ কয়েকটী স্বরেই দ্বাবিংশতিশ্রুতিসম্ভূত একটী পূর্ণ স্বরগ্রাম হয়। নিষাদের অব্যবহিত পরেই যে ষড়্জ, ঐ ষড়্জটী পূর্ব্ব ষড়্জের সপ্তকৈকমাত্র উচ্চ বলিয়া প্রতিপন্ন হয়। যদ্যপি এস্থলে বিবেচনা করা যায় যে, ১৯ মাত্রাকালমধ্যে অন্যূন বত্রিশবার অনুরণনে একটী স্বর সম্পন্ন হইয়া থাকে, তবে সপ্তকান্তরের ষড়্জে যাইতে গেলে সেই নির্দ্দিষ্ট মাত্রাকালমধ্যে, তদ্দ্বিগুণ অর্থাৎ চতুঃষষ্টিবার অনুরণনের অবশ্যই প্রয়োজন হইবে (১)। প্রত্যেক উচ্চ সপ্তকে যদ্যপি দ্বিগুণ করিয়া অনুরণন বৃদ্ধি হইয়া যায়, তাহা হইলে কোন ষড়্জ তাহার সপ্তকৈক উচ্চ বা নিম্নের ষড়্জের অর্দ্ধ বা দ্বিগুণ অনুরণনজনিত সমস্বর বলিয়া অনুভূত হইবে, তদ্ভিন্ন তাহার শ্রুতিসংখ্যা বা নামভেদ কিছুই প্রতিপন্ন হইবে না।

এস্থলে শিক্ষার্থীরা প্রশ্ন করিতে পারেন যে, উদারা সপ্তক না সাধাইয়া মধ্য সপ্তক সর্ব্বাগ্রে সাধনের তাৎপর্য্য কি? উদারা সপ্তকে না কি পিত্তলের তারের প্রয়োজন হয়, আরব্ধিদিগের পক্ষে প্রথমেই

---

(১) পণ্ডিতেরা নাড়ীর এক এক আঘাতের সহিত এক এক মাত্রাকাল স্থির করেন, ইহার বিশেষ প্রমাণ সঙ্গীতসারে লিখিত আছে। এক মিনিটকালের মধ্যে যুবা পুরুষের স্বাভাবিক নাড়ীর গতি অন্যূন অশীতিবার হইয়া থাকে এবং উক্ত এক মিনিটকাল ষষ্টি সেকেণ্ড দ্বারা সাব্যস্ত হয়; এস্থলে বিবেচ্য এই যে, অশীতি মাত্রা এবং ষষ্টি সেকেণ্ড, এই উভয়ই সমকালসাপেক্ষ, কিন্তু প্রত্যেক সেকেণ্ডকালে কত টুকু মাত্রা আবশ্যক করে, তাহা দেখিতে গেলে অশীতি মাত্রাকে ষষ্টি সেকেণ্ডদ্বারা ভাগ করিতে হয়, তাহা হইলে তাহার ফল অর্থাৎ প্রত্যেক সেকেণ্ডের প্রতি ১৯ মাত্রা আবশ্যক করিবে।

কাঁচাতারে অঙ্গুলী সঞ্চালনা অপেক্ষাকৃত কষ্টসাধ্য বলিয়া বোধ হওয়াতে প্রথমেই মুদারা সপ্তক দেওয়া হইয়াছে। মুদারা সপ্তক সাধনে হস্তের কিঞ্চিৎ জড়তা ভাঙ্গিলে পর উদারা সপ্তক সাধন করা কর্ত্তব্য।

উদারা সপ্তকসাধন।

অনুলোম। বিলোম।

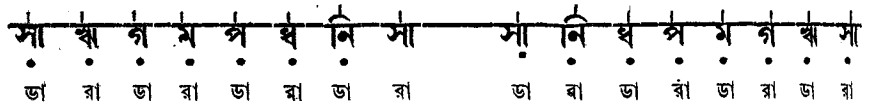

শিক্ষকেরা শিক্ষার্থীদিগের হস্তের জড়তা-অপগমের জন্য উদারা সপ্তকেও পূর্ব্ব-সাধিত মুদারা সপ্তকের কতকগুলি সাধনা যথানিয়মে ছাত্রদিগকে পুনরভ্যাস করাইবেন।

কথিত হইয়াছে যে, সপ্ত স্বর কোমল বা তীব্রভাবে বিকৃত হয়। স্বর সাতটী বিকৃত হইলে প্রত্যেক স্বরগ্রামে সংখ্যায় দ্বাদশটী করিয়া হইয়া থাকে (১)। যথা :—

বিকৃত স্বরগ্রাম।

অনুলোম।

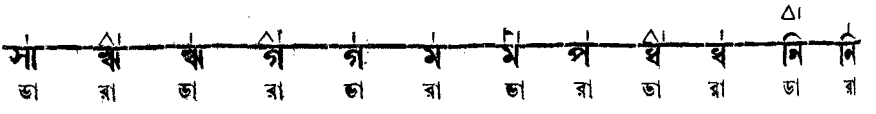

বিলোম।

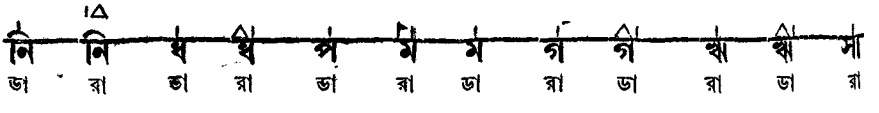

(১) ততঃ সপ্ত স্বরাঃ শুদ্ধা বিকৃতা দ্বাদশাপ্যমী। ইতি সঙ্গীতদর্পণং।

অপি চ এ স্থলে একটী অচল ঠাটের সেতার আনাইয়া এই বিকৃত স্বরের বিষয়টী বিশেষরূপে ছাত্রদিগকে বুঝাইয়া দেওয়া শিক্ষকদিগের কর্ত্তব্য।

বিকৃত স্বরগ্রামে ছাত্রেরা দেখিবেন যে, মধ্যম স্বর কোমলভাবে বিকৃত না হইয়া তীব্রভাবে বিকৃত হইয়াছে, সেইজন্য উহার মস্তকে পতাকা-চিহ্নও দেওয়া আছে। তাহার কারণ, কোমল মধ্যম বলিয়া কোন একটী স্বর আমাদিগের দেশে প্রচলিত নাই। আমাদের দেশাচারানুসারে মধ্যম তীব্রভাবেই বিকৃত হইয়া থাকে, ফলতঃ পঞ্চমকে কোমল করিলেও যে ফল, মধ্যমকে তীব্র করিলেও সেই ফল দর্শে। তবে কোমল পঞ্চম বলিয়া ব্যবহার করা আমাদের রীতি নাই, কিন্তু ইউরোপে কোমল পঞ্চম বলিয়া ব্যবহার করার প্রথা আছে; যাহাই হউক, তাহাতে কার্য্যগত কোন বিশেষ হানি নাই। অন্যান্য স্বরের পক্ষেও এইরূপ (১)। ঋষভাদি অপর ছয়টী স্বরের আশ্রয়, অর্থাৎ গ্রামস্থান বলিয়া ষড়্জ কোমল বা তীব্রভাবে বিকৃত হয় না, ঐ সর্ব্বপ্রধান স্বর ষড়্জ সর্ব্বদাই প্রকৃতিস্থ থাকে।

পিত্তলের দ্বিতীয় তারে প্রকারান্তর স্বরগ্রামসাধন।

যে সকল স্বর পূর্ব্বে পাকা অর্থাৎ নায়কী তারে সাধিত হইয়াছে, সেই সকল স্বর যদি কাঁচা তারে সাধিতে হয়, তাহা হইলে তৎসমুদায় স্বরলিপিবদ্ধ করিবার সময় তাহাদিগের মস্তকোপরি এইরূপ [□] চতুষ্কোণ চিহ্ন ব্যবহার করা যাইবে। পূর্ব্বে বলা হইয়াছে যে, দুই চিহ্ন বিশিষ্ট কাঁচা তার ছাড়িয়া আঘাত করিলে উদারার ষড়্জ হইবে, ঐ তার বাম হস্তের তর্জনীদ্বারা দ্বিতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার ঋষভ, তৃতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার গান্ধার হইবে। নায়কী তার ছাড়িয়া আঘাত করিলে উদারার মধ্যম হয়, কিন্তু দ্বিতীয় তার চতুর্থ পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলেও ঐ মধ্যম

(১) অর্থাৎ যে কোন স্বরকে কোমল করা যাউক না কেন, তাহার অব্যবহিত পূর্ব্ব স্বরকে তীব্র করিলেও সমান ফল দর্শে। শিক্ষক এই স্থলে এইটী সেতারে দেখাইয়া সপ্রমাণ করিয়া দিবেন।

হইবে। নায়কী তার দ্বিতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে যে পঞ্চম হয়, দ্বিতীয় তার ষষ্ঠ পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলেও সেই পঞ্চম প্রদর্শিত হইবে। নায়কী তার তৃতীয় পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার ধৈবত হয়, দ্বিতীয় তার সপ্তম পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলেও উদারার ধৈবত হইবে। নায়কী তার পঞ্চম পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলে উদারার নিষাদ হয়, দ্বিতীয় তার অষ্টম পর্দ্দায় চাপিয়া আঘাত করিলেও উদারার নিষাদ হইবে। এইরূপে দ্বিতীয় তারের দ্বারা নবম পর্দ্দায় মুদারার ষড়্জ, একাদশ পর্দ্দায় ঋষভ, দ্বাদশ পর্দ্দায় গান্ধার, ত্রয়োদশ পর্দ্দায় মধ্যম, (১) চতুর্দ্দশ পর্দ্দায় পঞ্চম, পঞ্চদশ পর্দ্দায় ধৈবত এবং ষোড়শ পর্দ্দায় নিষাদ স্বর সম্পন্ন হইয়া থাকে।

প্রথম, পঞ্চম ও দশম এই তিনখানি পর্দ্দায় কাঁচা তার চাপিয়া আঘাত করিলে ক্রমান্বয়ে উদারার কোমল ঋখব, উদারার কড়ি মধ্যম ও মুদারার কোমল ঋষভ সম্পন্ন হয়। এই নিয়মে কাঁচা তারে মুদারাগ্রাম সম্পূর্ণরূপে সংসাধিত হইয়া থাকে; কিন্তু উক্ত নিয়মে যে সমুদায় স্বর সাধিত হয়, শ্রুতিবিভাগানুসারে বিচার করিয়া দেখিতে গেলে সমুদায়গুলি ঠিক প্রকৃত স্বর হয় না, কোন কোনটী প্রায়ই কিছু কিছু তীব্রভাব ধারণ করে। বাহুল্যভয়ে বা তত বিশেষ প্রয়োজন বোধ না হওয়াতে এস্থলে তাহার বিচার উপেক্ষিত হইল।

সেতার যন্ত্রে সচরাচর যে ষোল বা সতরখানি পর্দ্দা থাকে, তদ্দ্বারা পূর্ণ উদারা, মুদারা ও তারার অর্দ্ধ, এই সার্দ্ধ-দ্বিসপ্তক স্বর প্রতিপন্ন হইয়া থাকে, কিন্তু শুদ্ধ কাঁচা তারে স্বরসাধন করিতে হইলে উদারা ও মুদারা এই দুই সপ্তকের অধিক স্বর পাওয়া যায় না। যে সেতারে সতরখানি পর্দ্দা আবদ্ধ থাকে, তাহাতে বড় অধিক তারার ষড়্জ পর্য্যন্ত মাত্র পাওয়া যাইতে পারে। এস্থলে কেহ কেহ এরূপ বলিতে পারেন যে, শুদ্ধ কাঁচা তারসাধনে যদি সার্দ্ধ-দ্বিসপ্তক না পাওয়া যায়, তাহা হইলে নায়কী তার পরিত্যাগ করিয়া স্বতন্ত্ররূপে কাঁচা তারে আবার

(১) এই পর্দ্দাখানি কিঞ্চিৎ কোমল করিয়া লওয়া কর্ত্তব্য।

স্বরগ্রাম সাধনের কারণ কি ? তাহার তাৎপর্য্য এই যে, পাকা লৌহ-নির্ম্মিত নায়কী তারের ধ্বনি অপেক্ষা পিত্তল-নির্ম্মিত কাঁচা তারের ধ্বনি কিঞ্চিৎ মৃদু ও শ্রবণমধুর হয়। বাদ্যের অলঙ্কারের জন্য সময়ে সময়ে ধ্বনির মৃদুতা ও উগ্রতার প্রয়োজন হইয়া থাকে। নায়কী তার সম্বন্ধীয় আঘাতগুলি কিঞ্চিৎ উগ্রস্বর (১) প্রকাশক এবং কাঁচা তারের আঘাতনিচয় কিঞ্চিৎ মৃদু (২) স্বরপ্রকাশক হয়; এই নিমিত্তই পুনরায় কাঁচা তারে রীতিপূর্ব্বক স্বরগ্রাম সাধাইবার প্রয়োজন হইল (৩)।

পিত্তলতারে মৃদুস্বরসাধন।

অনুলোম। বিলোম।

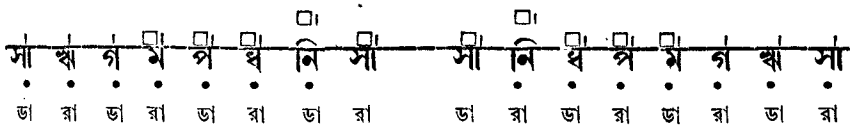

অনুলোম। বিলোম।

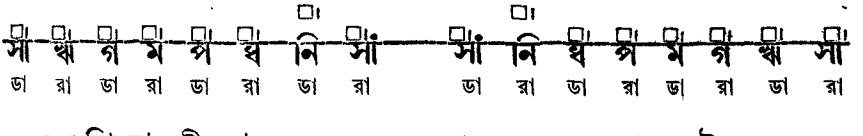

যদ্যপি নায়কী তারে মৃদুস্বরের আবশ্যক হয়, তাহা হইলে যে স্বর হইতে যে স্বর পর্য্যন্ত ঐরূপ কার্য্যের প্রয়োজন হইবে, সেই পূর্ব্বস্বর হইতে পর স্বর পর্য্যন্ত প্রত্যেক স্বরের মস্তকে এইরূপ (···) বিন্দুরেখা চিহ্ন থাকিবে, যেমন:—সা ঋ গ ম প ধ নি সাঁ। নায়কী তারে এইরূপ মৃদু ধ্বনি প্রকাশ করা কেবল মৃদু আঘাতদ্বারা সম্পাদিত

(১) Loud

(২) Soft

(৩) ছাত্রদের সংস্কার দৃঢ় করণজন্য শিক্ষার সঙ্গে সঙ্গে প্রত্যেক স্বরগ্রাম এবং সমুদয় সাধনাগুলির আনুপূর্ব্বিক স্বরলিপি করাণ শিক্ষকের কর্ত্তব্য।

হইয়া থাকে। "গৎ" বাদনসময়ে যদ্যপি উগ্র এবং মৃদু না করিয়া সমুদয় আঘাত সমভাবে দেওয়া যায়, তাহা হইলে নিতান্ত শ্রুতি-কঠোর এবং নিরলঙ্কৃত বোধ হইবে। বস্তুতঃ এইরূপ কার্য্য কেবল গৎ বা গীতাদির বিশেষ অলঙ্কার জন্য।

ইতি স্বরসাধনপ্রকরণ সমাপ্ত।

তালাদির নিয়ম।

অখণ্ড কালকে এক, দ্বি, ত্রি ইত্যাদি মাত্রা সংখ্যানুসারে ছন্দোগত করিয়া বিভাগ করার নাম তাল। ঐ সকল মাত্রার সংখ্যাবিশেষে, লঘু ও গুরু ভেদে এবং ছন্দ ও সমাদির বিভিন্নতানুসারে তালবিশেষের নাম নির্দ্দিষ্ট হইয়া থাকে। তাল দিবার সময় আঘাত এবং বিরাম (যাহাকে সচরাচর ফাঁক বলে) এই দুইটীরই প্রয়োজন সর্ব্বদা দৃষ্ট হয়। উভয় কর মৃদুবল-সহকারে সংযত করিলে যে আঘাত হয়, তাহাকে সচরাচর তাল কহে; আর উভয় কর সংযত না করিয়া শুদ্ধ মাত্র উত্তান করিলে ফাঁক প্রতিপন্ন হইবে। আঘাতের এইরূপ (১) এক অঙ্কচিহ্ন এবং ফাঁকের অর্থাৎ যে স্থানে আঘাত না হইবে, তাহার এইরূপ (০) বিন্দুচিহ্ন নির্দ্দিষ্ট আছে। এই উভয়বিধ চিহ্নই মাত্রা-চিহ্নদণ্ডের উপরে উপরে থাকিবে, যেমন:—$\overset{১}{\text{সা}}\ \overset{০}{\text{ঋ}}$ ইত্যাদি। বস্তুতঃ তালটী ছন্দোব্যতীত আর কিছুই নহে। ছন্দঃপ্রভৃতি গ্রন্থে শ্লোকাদির যেমন চারিটী পাদ বা ভাগ থাকে, তালেরও সেইরূপ চারিটী পাদ বা ভাগ আছে। যথা:—সম, বিষম, অতীত এবং অনাগত। অনাগত শব্দটী সচরাচর অনাঘাত বলিয়াও ব্যবহৃত হয়। এই চারি ভাগ হইতেই শাস্ত্রকারেরা তালগ্রহণ বিধিবদ্ধ করেন (*)। গীতাদির সম-

---

* সমাতীতানাগতাশ্চ বিষমশ্চ গ্রহা মতাঃ। চত্বারঃ কথিতাস্তালে সূক্ষ্মদৃষ্ট্যা বিচক্ষণৈঃ॥

কালে যদি তালগ্রহণ করা যায়, তাহার নাম সমগ্রহ; যদ্যপি পূর্ব্বে গীত আরম্ভ করিয়া পশ্চাৎ তালগ্রহণ করা হয়, তাহার নাম অতীত গ্রহ; যদ্যপি তালগ্রহণের পর গীতাদির আরম্ভ হয়, তাহাকে অনাগত গ্রহ কহে; আর অতীত এবং অনাগত এতদুভয়ের মধ্যকালে তালগ্রহণের নাম বিষম গ্রহ। বস্তুতঃ এই চারিপ্রকার গ্রহের মধ্যে সমগ্রহই সর্ব্বপ্রসিদ্ধ, সমের এইরূপ (+) পতঙ্গ চিহ্ন। এই চিহ্নটীও মাত্রাচিহ্নের উপরিভাগে থাকিবে।

ফাঁক স্থান হইতেও তালগ্রহণের ব্যবহার আমাদের দেশীয় রীত্যনুসারে দেখিতে পাওয়া যায়; তালে যথানির্দ্দিষ্ট লয় (*) স্থির রাখা অতি কর্ত্তব্য।

লয়প্রবৃত্তির নিয়মকে যতি কহে (†) অর্থাৎ প্রবৃত্তিসূচক

গীতাদিসমকালস্তু সমপাণিঃ সমগ্রহঃ। গীতাদৌ বিহিতে পশ্চাত্তালবৃত্তির্বিধীয়তে। অতীতাখ্যো গ্রহো জ্ঞেয়ঃ সোঽবপাণিরিতি স্মৃতঃ॥ পূর্ব্বং তালপ্রবৃত্তিঃ স্যাৎ পশ্চাদ্গীতাদিরুচ্যতে। অনাগতঃ স বিজ্ঞেয়ঃ স এব পরিপাণিকঃ॥ আদ্যন্তয়োরনিয়মো বিষমগ্রহশব্দভাক্। ইতি দর্পণং। তালে গীতগতে সাম্যকারী তস্য গ্রহাশয়ঃ। অনাগতসমাতীতাঃ ক্রমাদেষাং তু লক্ষণং॥ গীতারম্ভে মুদা পূর্ব্বং সমুচ্চার্য্যাক্ষরদ্বয়ং। তালস্য ন্যসনাদ্যক্তস্তদৈবানাগতো গ্রহঃ॥ গীতোচ্চারণকালে তু যদা তালস্য সংগতিঃ। তদা সম ইতি প্রোক্তঃ সমকালসমুদ্ভবাৎ॥ তালস্তদাতীত ইতি গ্রহঃ প্রোক্তঃ পুরাতনৈঃ। ইতি সঙ্গীতসারঃ। তথা অন্যান্যসঙ্গীতগ্রন্থেঽপি।

* কালের অবিচ্ছেদগতির নাম লয়। সঙ্গীতের সময় সামান্যতঃ অবলম্বিত লয়টী স্থির রাখা সঙ্গীতশিক্ষার্থীদের পক্ষে অতি কর্ত্তব্য, অর্থাৎ প্রথমে যে পরিমাণ লয় আশ্রয় করিয়া গীতাদির আরম্ভ হইবে, সেই অবলম্বিত লয় অনুসারে তাহারই দ্রুত অর্থাৎ "দুন্" তাহারই অণুদ্রুত অর্থাৎ "চৌদুন্" তাহারই গুরু অর্থাৎ "ঠা" তাহারই ভগ্ন অর্থাৎ "আড়ি" যথাযোগ্য স্থানে ইচ্ছাধীন প্রয়োগ বিধেয়, পরন্তু প্রথম অবলম্বিত লয় উল্লঙ্ঘন করিয়া ক্রমশঃ অপেক্ষাকৃত দ্রুততা বা ভগ্নতানুসারে গতিকৌশল প্রদর্শনকে সংস্কৃত এবং ইউরোপীয় সঙ্গীতগ্রন্থকর্ত্তারা যার পর নাই দোষ বলিয়া স্বীকার করেন। গানাদির সময় যথাবলম্বিত স্বরগ্রাম পরিত্যাগ করা যতদূর দূষ্য, অবলম্বিত লয় উল্লঙ্ঘন করাও তদপেক্ষা স্বল্প দোষাবহ নহে, অতএব এতদুভয়ের প্রতি সঙ্গীতকুতূহলী মাত্রেরই সমভাবে বিশেষ মনোযোগ রাখা প্রয়োজনীয়।

† লয়প্রবৃত্তিনিয়মো যতিরিত্যভিধীয়তে। ইতি রাগবিবোধঃ।

নিয়মানুযায়িক ছন্দোগত যে বিশ্রামবিশেষের দ্বারা কোন তালবিশেষের লয়ের সহিত অন্য তালবিশেষের লয়ের যে বিভেদ দেখা যায়, তাহার নাম যতি। যতিচিহ্ন এইরূপ, (৪) ইহাও দণ্ড চিহ্নের উপর উপর থাকে,

যেমন :— সা ঋ ইত্যাদি। যেখানে তালবিশেষের একটী পূর্ণমঞ্চ অর্থাৎ "আওর্দা" বা "ফেরা" পরিসমাপ্তি হয়, তাহাকে মান বা বিশ্রামস্থান বলে। প্রত্যেক মঞ্চ মাত্রানুযায়িক বিরামান্তে এক একটী বিভাজক রেখাদ্বারা ভাগ করা কর্ত্তব্য ; যেমন :—+ ১ ০ ১ | সা ঋ গ ম |। প্রাচীন সংস্কৃত রীতিতে প্রায়ই সমস্থান হইতে তালটী গৃহীত হইয়া ফাঁক স্থানে বিরামান্তে একটী পূর্ণমঞ্চ সমাপন করে। পুনর্ব্বার সমস্থানে তালের পুনর্গ্রহণ হইয়া থাকে, সংস্কৃতমতানুযায়ী দ্রুত ত্রিতালী তাল যথা :— + ১ ১ ০ | সা ঋ গ ম |। পরন্তু এক্ষণকার প্রচলিত মতে সেটী অবিকল হয় না, আধুনিক গায়কেরা তালটী সমস্থান হইতে গ্রহণকরণানন্তর যথাযোগ্য ফাঁক অর্থাৎ শূন্যস্থানে বিরাম না করিয়া পুনর্ব্বার সমে সমাপন করেন, যেমন :— + ১ ০ ১ + | সা ঋ গ ম সা |। কথিত উদাহরণটী দ্রুত-ত্রিতালী বা কাওয়ালীর (*) আধুনিক নিয়মানুযায়িক একটী পূর্ণমঞ্চ প্রতিপন্ন করিতেছে। বস্তুতঃ দ্রুত-ত্রিতালী চারি মাত্রায় সম্পন্ন হয়। চলিত মতে দ্রুত-ত্রিতালী সম হইতে গ্রহণানন্তর ফাঁকে বিশ্রাম না করিয়া পুনর্ব্বার সমস্থানে বিরাম করিতে গেলে শাস্ত্র এবং যুক্তি এতদুভয়তই দূষ্য হইয়া পড়ে। যেহেতু প্রথম মাত্রাতে দ্রুত-ত্রিতালীর সম হইয়া চতুর্থ মাত্রা ফাঁক স্থানে তালের বিরাম হওয়া কর্ত্তব্য। কিন্তু চতুর্থ মাত্রাতে বিরাম না করিয়া পুনর্ব্বার প্রথম মাত্রা সমস্থানে আসিলে দ্রুত-ত্রিতালী পাঁচটী মাত্রার তাল হইয়া পড়ে। চারিমাত্রাবিশিষ্ট

(*) কাবালজাতীয় গায়কেরা সর্ব্বদা এই তাল ব্যবহার করে বলিয়া ইহার অপর একটী নাম কাওয়ালী।

তালকে পাঁচমাত্রাবিশিষ্ট করা নিতান্ত অযৌক্তেয়। যদ্যপি কেহ এমন সন্দেহ করেন যে, চারিমাত্রাবিশিষ্ট দ্রুত-ত্রিতালী তাল, পাঁচমাত্রা-বিশিষ্ট হইলে সঙ্গতে বেতালা হয় না কেন? তাহার সদুত্তর এই যে, আমাদের দেশে তালবিরামে মঞ্চ মঞ্চ ভাগ করার রীতি নাই, যে স্থান হইতে তালগ্রহণ হইয়াছে, সেই গ্রহণস্থানে প্রতিগ্রহণে প্রতিবার " হা " দেওয়া ব্যবহার আছে, অবিচ্ছেদে সঙ্গত হওয়া জন্য মধ্যে মধ্যে সেই বিরামকাল যে দুষ্য, সহসা তাহা বোধ হয় না। পরন্তু গানাদির অবসানে সেই সমে আসিয়া যেমন " হা " দিবেন, তখন সমস্থানে বিরামজন্য তালানুযায়িক নির্দ্দিষ্ট মাত্রা অপেক্ষা একটী মাত্রা অধিক হইবে। যেমন দুই সপ্তাহে চতুর্দ্দশ দিবস মাত্র, অর্থাৎ এক রবিবার হইতে গণনা আরম্ভ করিয়া পর সপ্তাহের শনিবার পর্য্যন্ত গণনাবসান হইলে চতুর্দ্দশ দিবস পূর্ণ হয়, কিন্তু যদ্যপি পূর্ব্ব সপ্তাহের রবিবার হইতে গণনারম্ভ করিয়া পর সপ্তাহের শনিবারে গণনা শেষ না করিয়া তৃতীয়সপ্তাহের প্রথম গ্রহণদিবস রবিবার পর্য্যন্ত লইয়া গণনা সমাপ্ত করা যায়, তাহাতে দুই সপ্তাহে অর্থাৎ চতুর্দ্দশ দিবস মধ্যে তৃতীয় সপ্তাহের প্রথম দিবস গ্রহণজন্য অপেক্ষাকৃত কি একদিন অধিক হইবে না? পরন্তু ক্রমান্বয়ে সপ্তাহ সপ্তাহ গণনা করিলে ঐ দোষ অনুভব হওয়া দুষ্কর। পাঠক বিবেচনা করিবেন, কোন তালবিশেষের সমস্থান হইতে আরম্ভ করণানন্তর যথাযোগ্য স্থানে বিরাম না করিয়া পুনর্গ্রহণস্থানে বিরাম করাও তদনুরূপ কি না? যাবতীয় তালসম্বন্ধে যে, এইরূপ ব্যবহারানুযায়িক বিশ্রামবৈপরীত্য ঘটিয়া থাকে, তাহা কদাচ নহে, এমন অনেক তাল আছে, যাহা সংস্কৃতানুযায়িক তাল-বিশ্রামস্থলে ব্যবহারানুগত বিরামও হইয়া থাকে। পরন্তু এস্থলে সে সকল কথার বিশেষ প্রয়োজন করে না।

সেতারের গতে প্রায় তিন চারিটী তালের সাধারণতঃ অধিক প্রয়োজন দৃষ্ট হয়, তন্মধ্যে দ্রুত-ত্রিতালী, মধ্যমান এবং শ্লথ-ত্রিতালীর গৎই অধিক, এতদ্ব্যতীত একতালা, কদাচিৎ সওয়ারি বা পঞ্চমসওয়ারি এবং অন্যান্য তালেরও প্রয়োজন হইয়া থাকে। গতাদিতে যেমন ডা রা,

ডি রি ইত্যাদি কতকগুলি কাল্পনিক বোলের ব্যবহার দৃষ্ট হয়, তেমনি তালসম্বন্ধেও সঙ্গতি করিবার সময় ধাধিন্, ধিন্, তেটে, কেটে, থুনা, রে প্রভৃতি বহুবিধ বোলেরও প্রয়োজন হইয়া থাকে। পরন্তু এই সকল বোল বর্ণানুযায়িক মাত্রানুসারে ব্যবহৃত না হইয়া তালগত মাত্রানুসারে প্রতিপন্ন হয়।

দ্রুত-ত্রিতালী।

দ্রুত-ত্রিতালী চারিটী লঘু মাত্রার তাল। যথা :—

ধাধিক্কা,	ধাধিক্কা,	তিতিস্তা,	নাধিক্কা।

মধ্যমান।

মধ্যমান চারিটী দীর্ঘ অথবা আটটী লঘু মাত্রার তাল। যথা :—

ধিক্কা ধিধী, ধিক্কা ধিধী, ধিত্তা তিতী, তিক্কা ধিধী।

কথিত অষ্টমাত্রা-বিশিষ্ট মধ্যমান তাল চারিমাত্রা-বিশিষ্ট দ্রুত-ত্রিতালী অপেক্ষা দ্বিগুণ গুরুভাবে ব্যবহার্য্য।

শ্লথ-ত্রিতালী।

শ্লথ-ত্রিতালী চারিটী প্লুত অথবা ষোলটী লঘু মাত্রার তাল। যথা :—

ধা ধিন্না, ত্রেকে ধা, ধিন্না, থুন্, থুন্না তেটী খেতা, গেদা ঘিনি।

এই তালটী এইরূপে ব্যবহার হয়, শ্লথ-ত্রিতালী, কাওয়ালী অপেক্ষা চতুর্গুণ এবং মধ্যমান অপেক্ষা দ্বিগুণ গুরু।

একতালা।

একতালা তিনটী দীর্ঘ অথবা ছয়টী লঘু মাত্রার তাল। যথা :—

ধিনি	ধাগ্,	থুনা	তেটে,	ধাগ্	থুনা।

চৌতাল।

চৌতাল দুইটী দীর্ঘ ও দুইটী লঘু মাত্রার তাল। যথা :—

ধাগে	দিন্‌তা	কত্তাগি	দিন্‌তা	তেটিকতা	গদিঘিনি।

সুরফাক্তা।

সুরফাক্তা দুইটী দীর্ঘ ও একটী লঘু মাত্রার তাল। যথা :—

ধাধিন্	নাগ্‌দিৎ	ধিনিনাক্	গদ্দী	ঘিনিনাক্।

ঝাঁপতাল।

ঝাঁপতাল দুইটী দীর্ঘ ও দুইটী প্লুত মাত্রার তাল। যথা :—

ধাগে	ধাগে	দিন্	তাকে	ধাগে	দিন্।		

ধামার।

ধামার সাত মাত্রার তাল। যথা :—

কেধে	টেঁ	ধেটে	ধা	গদি	নে	দেনে	তা।

আড়া চৌতাল।

আড়া চৌতাল একটী লঘু ও তিনটী দীর্ঘ মাত্রার তাল। যথা :—

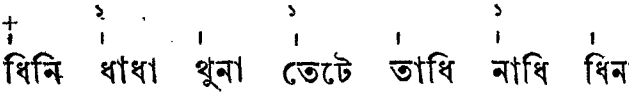

পঞ্চম সওয়ারী।

পঞ্চম সওয়ারী পঞ্চদশ মাত্রার তাল। যথা :—

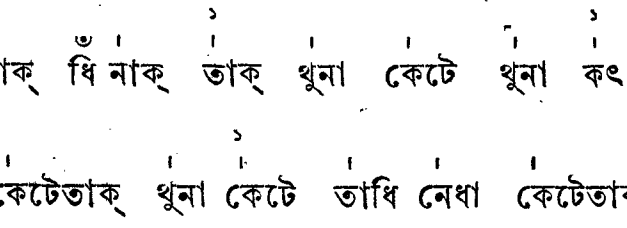

যখন উপরোক্ত বোলযোগে গীতাদির সহিত সঙ্গতি করা যায়, তখন ঐ সকল বোলের উচ্চারণ কিঞ্চিৎকাল-সাপেক্ষ; তজ্জন্য পাঁচ পাঁচটী হ্রস্ব অক্ষর উচ্চারণের কাল অর্থাৎ ক, খ, গ, ঘ, ঙ, এই পাঁচটী বর্ণের উচ্চারণকাল একমাত্রাকাল বলিয়া ব্যবহৃত হয়, ইহা সঙ্গীতশাস্ত্র-সিদ্ধ*।

স্বরনিবন্ধনী-প্রকরণ।

ডারা ডারা ইত্যাদি বোলযোগে যথানির্দ্দিষ্ট মাত্রানুযায়িক তালে এবং স্বরবর্ণবিভূষিত শ্রুতি-মনোহর রাগে সংবদ্ধ হইয়া নানাচ্ছন্দে সেতারাদি যন্ত্রে যাহা বাদিত হয়, সংস্কৃতসঙ্গীত-গ্রন্থকারেরা তাহাকে স্বরনিবন্ধনী কহেন। সচরাচর গায়কেরা স্বরনিবন্ধনীকে "গৎ" বলিয়া ব্যাখ্যা করেন। ঐ গৎ আবার যদি এস্‌রারে বাদিত হয়, তাহা হইলে উহাকে "লেহারা" বলে, "লেহারা" এবং "গৎ" এই দুইটীই

---

* পঞ্চ হ্রস্বাক্ষরোচ্চারকালো মাত্রাভিধীয়তে। ইতি সর্ব্বসঙ্গীতশাস্ত্রং।

পারস্য শব্দ। সামান্যতঃ স্বরনিবন্ধনী মাত্রেই প্রায় দুইটী করিয়া পাদ বা ভাগ থাকে। প্রথমটীর নাম আস্থায়ী এবং পরেরটীর নাম অন্তরা। আস্থায়ী এবং অন্তরা ব্যতীত বাদকেরা সমস্থান ও রাগ স্থির রাখিয়া স্বীয় স্বীয় ইচ্ছামত আরও অতিরিক্ত পাদবিশেষদ্বারা গতের বিস্তার করিতে পারেন; স্বরনিবন্ধনীর অতিরিক্ত ঐরূপ পাদনিচয়কে পারস্য-ভাষায় "উপজ" কহে, সংস্কৃতভাষায় উহার নাম ক্ষুদ্রতানিকা। প্রত্যেক ক্ষুদ্রতানিকার অন্তে পূর্ব্ব সমস্থান স্থির রাখিয়া প্রথম পাদ আস্থায়ী প্রদর্শন করা কর্ত্তব্য।

সঙ্গীত-গুরু ভরতাচার্য্য বলেন, ষড়্জাদি সপ্ত স্বর মণ্ডিত, শ্রুতি, গমক এবং মূর্চ্ছনাদি*বিভূষিত লোকচিত্তহারী যে ধ্বনিবিশেষ তাহার নাম রাগ। কথিত আছে, পৃথিবীর সৃষ্টিকালে ভগবান্ ব্রহ্মা প্রজা-রঞ্জনজন্য ছয়টী ঋতুর অনুসারী করিয়া আদি ছয়টী মাত্র রাগ প্রথমে প্রচার করেন। যথা :—শ্রী, বসন্ত, পঞ্চম, মেঘ, ভৈরব এবং নট-নারায়ণ। অনন্তর ছত্রিশটী রাগিণী ঐ ছয়টী রাগের ভার্য্যারূপে ক্রমে কল্পিত হয়। ঐ ছয় রাগ এবং ছত্রিশটী রাগিণী, ইহাদিগের পরস্পর মিশ্রণে আবার বহুতর উপরাগ এবং উপরাগিণীর ক্রমশঃ সৃষ্টি হইয়া আসিতেছে। উক্ত রাগ রাগিণী সকল শুদ্ধ, সালঙ্ক এবং সংকীর্ণ এই তিন জাতিতে বিভক্ত। যে সকল রাগ অন্য রাগের সংস্রবে না জন্মিয়া স্বতঃসিদ্ধরূপে প্রতিপন্ন হয়, তাহাদের নাম শুদ্ধজাতি, কথিত আদি ছয়টী রাগ ব্যতীত শুদ্ধজাতীয় রাগ আর নাই (১)। দুইটী রাগের মিশ্রণে যে সকল রাগ জন্মে, তাহারা সালঙ্ক জাতীয়; আর বহুতর রাগসংযোগে যে সকল রাগ জন্মিয়া থাকে, তাহাদিগকে সংকীর্ণ জাতীয় রাগ বলে। সচরাচর সংকীর্ণ জাতীয় রাগের ভাগই অধিক দেখিতে পাওয়া যায়। এই তিন জাতীয় রাগের প্রত্যেকেই আবার ওড়ব,

---

* গমক এবং মূর্চ্ছনার বিষয় পরে জ্ঞাতব্য।

(১) গায়কেরা আদি ছয়টী রাগ সম্বন্ধে সময়ে সময়ে নানারূপ তর্কবিতর্ক করিয়া থাকেন। ইহার মীমাংসা সঙ্গীতসার এবং আদি ছয় রাগ বিষয়ক প্রস্তাবে দ্রষ্টব্য। অপরঞ্চ কোহলিয়ের মতে রাগ অথবা রাগিণী এতদুভয় শব্দই রাগশব্দবাচ্য।

খাড়ব এবং সম্পূর্ণ এই তিন শ্রেণীতে বিভক্ত হইয়া থাকে। যে সকল রাগ পাঁচ স্বরে মণ্ডিত অর্থাৎ পাঁচটী স্বরে সম্পন্ন হইয়া থাকে, তাহারা ওড়ব (১) শ্রেণীভুক্ত। যে রাগগুলি ছয় সুর বিশিষ্ট তাহারা খাড়ব (২) শ্রেণীয়, আর যে রাগসমূহ সাত সুর বিশিষ্ট, সেগুলিকে সম্পূর্ণ শ্রেণীভুক্ত রাগ কহে (৩)। ষড়্জ, ঋষভ, গান্ধার, মধ্যম, পঞ্চম, ধৈবত এবং নিষাদ এই সপ্ত স্বরের মধ্যে যে স্বরটী যে রাগে বহুলভাবে প্রযুক্ত হয়, সেই স্বরকেই সেই রাগের বাদী বা অংশ অথবা রাজা এবং হিন্দী ভাষায় জান্ বলে। বাদীর সহযোগী যে সুর তাহাকে সম্বাদী বা মন্ত্রী বলা যায়। রাগবিশেষে যে সুরবিশেষ সংযোজিত হইলে রাগ ভ্রষ্ট হয়, তাহার নাম বিবাদী অথবা বৈরী। বাদী, সম্বাদী এবং বিবাদী ব্যতীত অবশিষ্ট যে সুরগুলি রাগমধ্যে ব্যবহৃত হয়, তাহাদের নাম অনুবাদী বা ভৃত্য। যে সকল রাগ সম্পূর্ণ শ্রেণীভুক্ত বিকৃত স্বর ব্যতীত তাহাদের বিবাদী সুর কখনই সম্ভবে না। যেহেতু সম্পূর্ণ শ্রেণীভুক্ত রাগসমূহে তদুপযোগী সাত সুরেরই প্রয়োজন হইয়া থাকে।

---

(১) পাঁচটী মাত্র স্বরে যে স্বর-গ্রামবিশেষ পূর্ণ হয়, তাহাকে ইংরাজী মতে "পেণ্টাটনিক্ স্কেল্" (Pentatonic scale.) কহে।

(২) ছয়টী সুর মাত্রে যে স্বরগ্রামবিশেষ পূর্ণ হয়, তাহাকে ইংরাজী সঙ্গীত-গ্রন্থে "হেক্সাটনিক্ স্কেল্" (Hexatonic scale.) কহে।

(৩) সাতটী সুরে যে একটী পূর্ণ প্রকৃত স্বরগ্রাম স্থির হয়, ইংরাজী ভাষায় তাহাকে "ডায়টনিক্ স্কেল্" (Diatonic scale.) বলে। অপর সূক্ষ্ম সূক্ষ্ম বাইশ শ্রুতি যোগে যে গ্রাম-বিশেষ নিষ্পন্ন হয়, ঐরূপ গ্রাম-বিশেষকে ইংরাজী সঙ্গীত-বেত্তারা "এন্হারমনিক্ স্কেল্" (Enharmonic scale.) বলেন। অধুনাতন ইউরোপীয়েরা এন্হারমনিক্ স্কেল্-পদ্ধতি ব্যবহার করেন না, প্রাচীন গ্রীক্ প্রভৃতি জাতির মধ্যেই ইউরোপখণ্ডে উহার বিশেষ প্রচলন ছিল; পরন্তু এখন পর্য্যন্তও উক্ত প্রকার গ্রাম-প্রণালী ভারতবর্ষে বিশেষরূপে ব্যবহৃত হইয়া থাকে। এতদ্ব্যতীত আরব্য, পারস্য, চীনপ্রভৃতি আসিয়াস্থ দেশনিচয়েও উহার প্রয়োজন দৃষ্ট হয়। দ্বাদশটী বিকৃত-স্বরে যে-স্বরগ্রাম বিশেষ নিষ্পন্ন হয়, তাহার ইংরাজী নাম "ক্রোমেটিক্ স্কেল্" (Chromatic scale.)।

(১)

লুম—সম্পূর্ণ।

দ্রুত-ত্রিতালী।

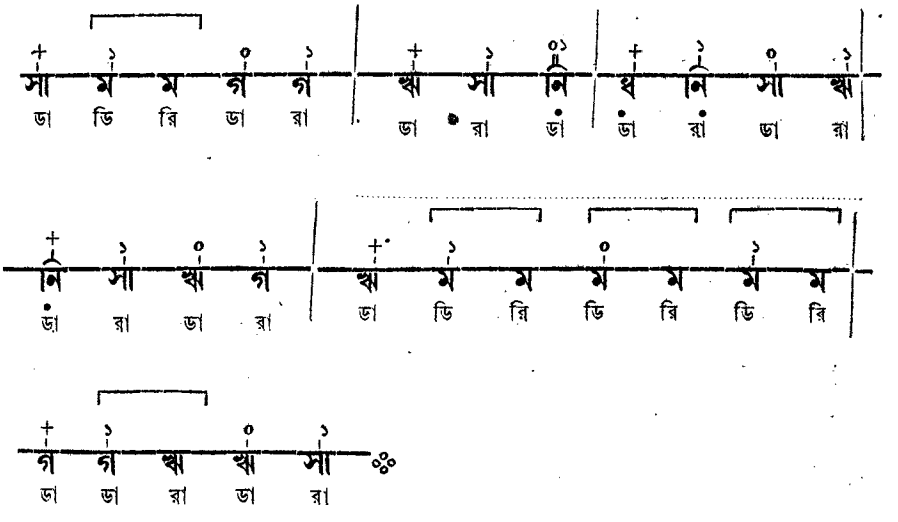

(২)

বৃন্দাবনীসারঙ্গ—ওড়ব (১)।

দ্রুত-ত্রিতালী।

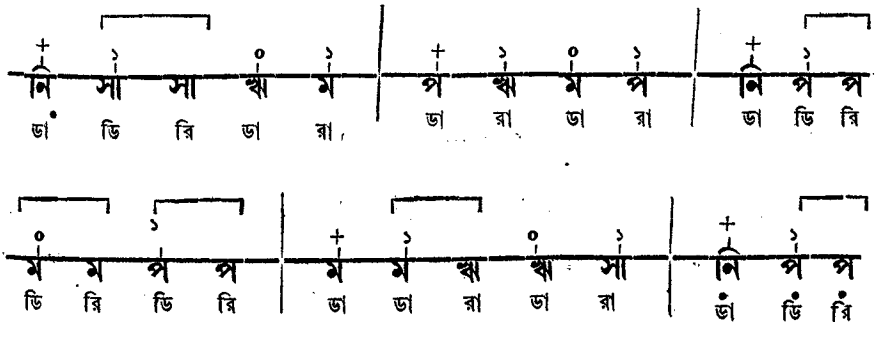

(১) গান্ধার এবং ধৈবত সারঙ্গের বিবাদী স্বর; কিন্তু উত্থাপনের সময় ধৈবত কৌশল ক্রমে দিতে পারিলে রাগ নষ্ট হয় না।

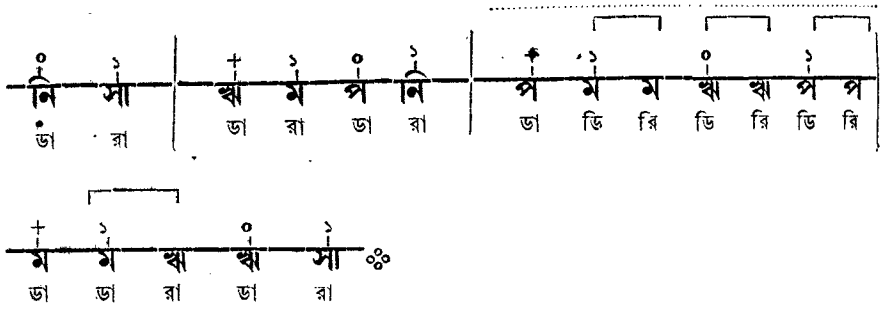

(৩)

বিভাস—খাড়ব (১)।

দ্রুত-ত্রিতালী।

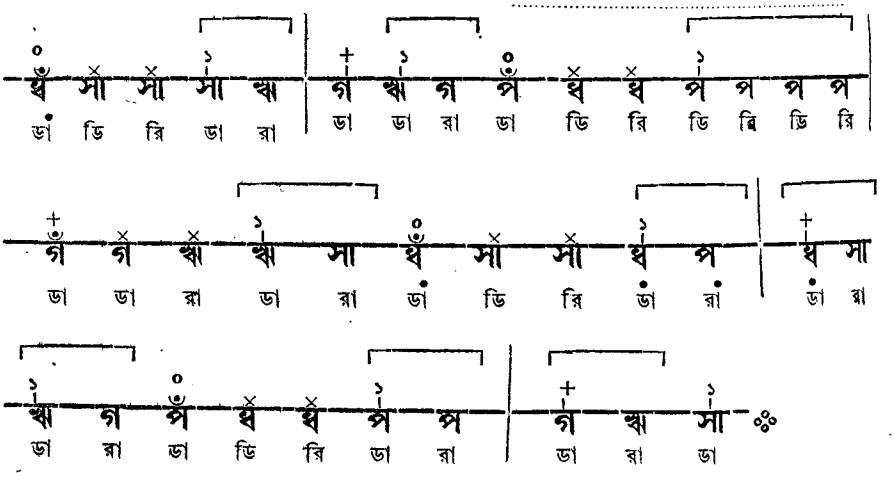

(৪)

দেশ—সম্পূর্ণ।

দ্রুত-ত্রিতালী।

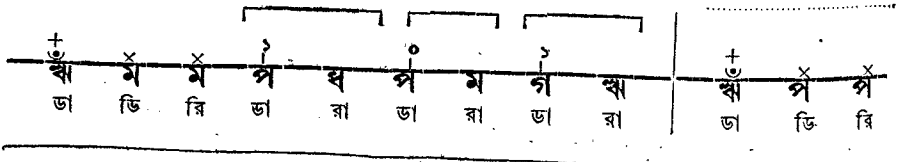

(১) বিভাসের মধ্যম স্বর বিবাদী।

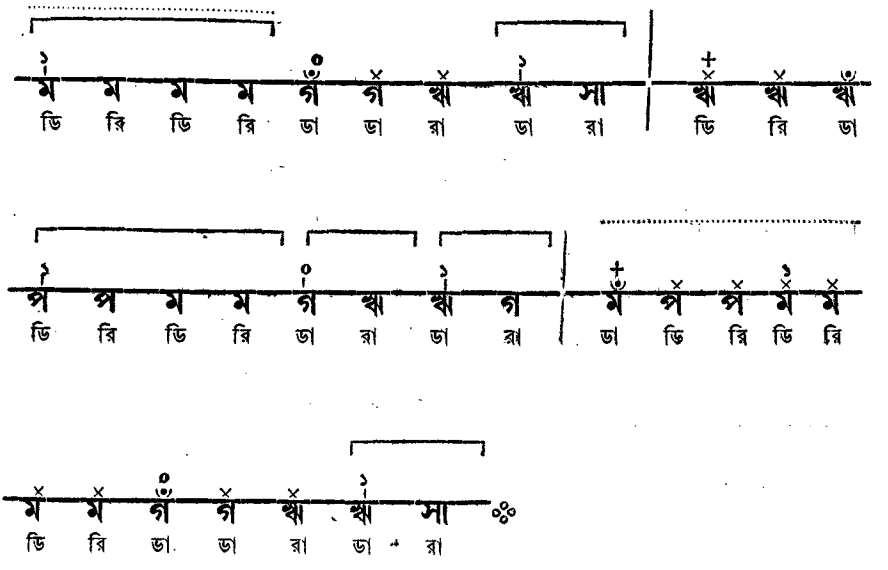

(৫)

দেবকিরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

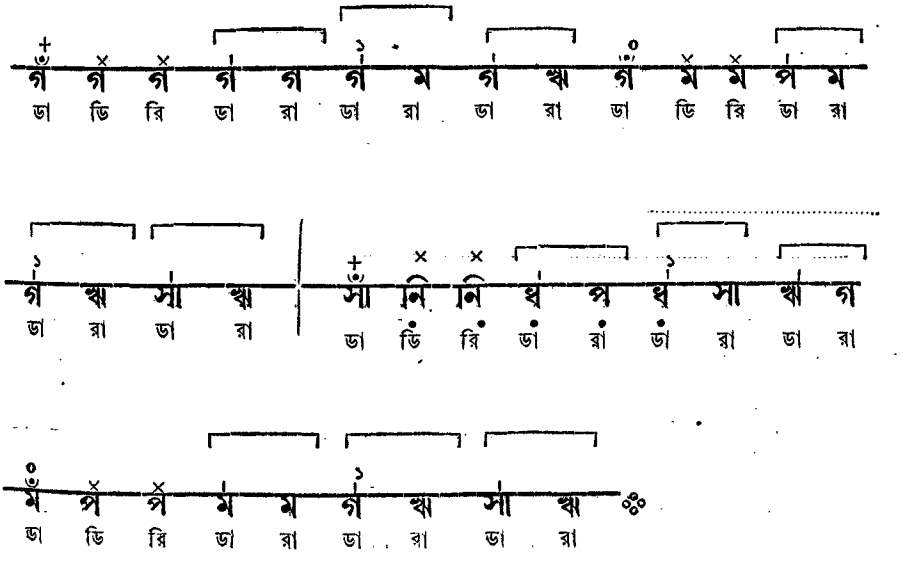

(৬)

গৌড়সারঙ্গ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

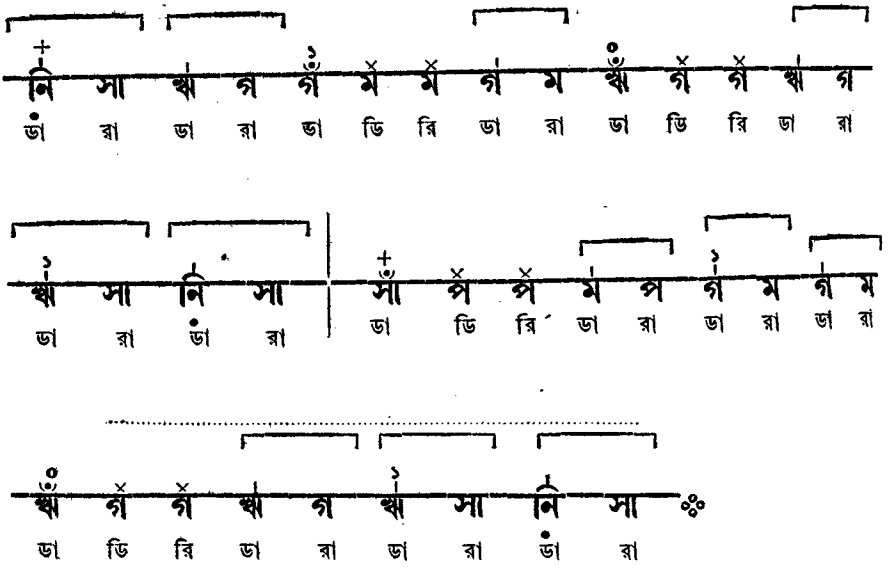

(৭)

খাম্বাবতী বা খাম্বাজী—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(নি)

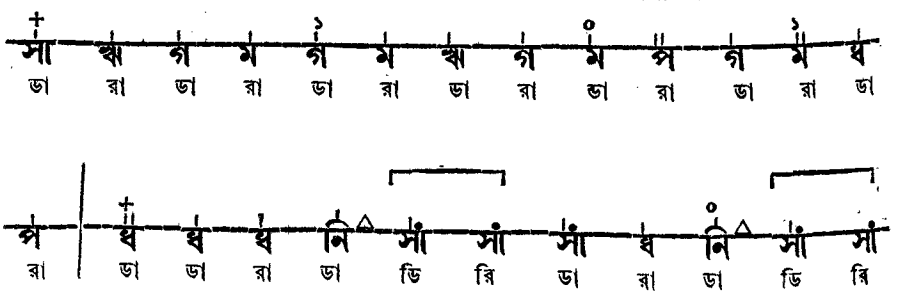

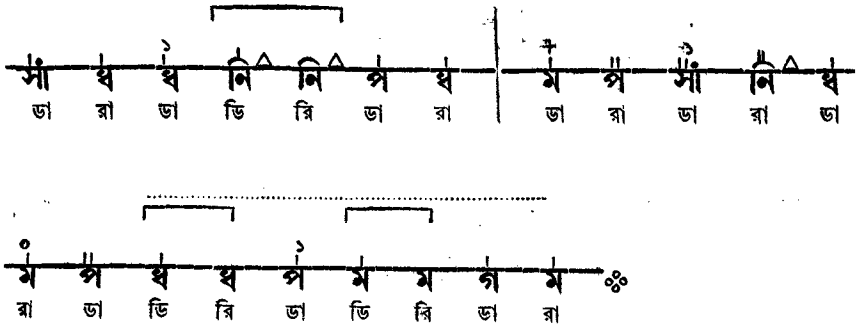

(৮)

ইমন্—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঽম)

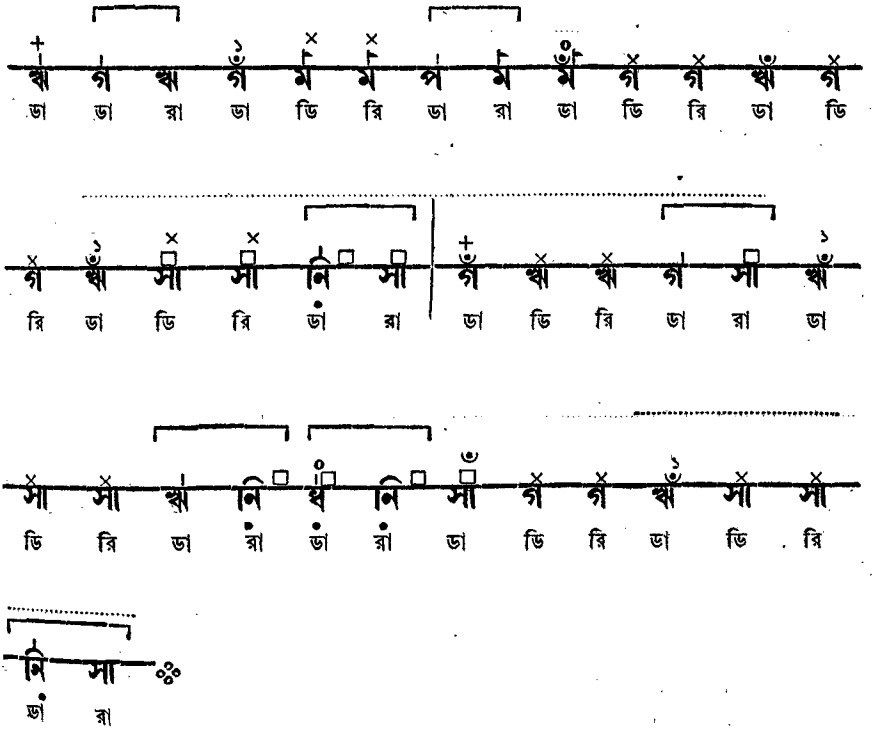

(৯)

সিন্ধু—সম্পূর্ণ।

একতালা।

(গ নি)

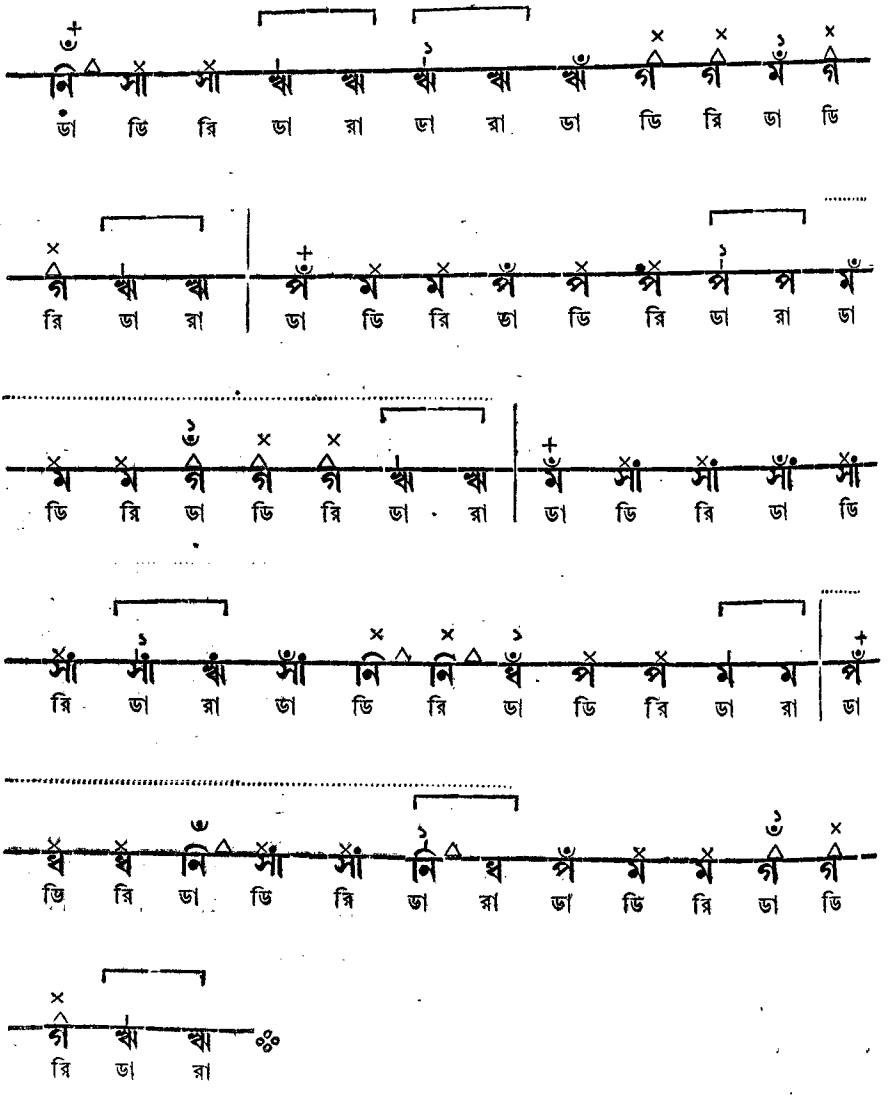
নি সাঁ সাঁ ঋ ঋ ঋ ঋ ঋঁ গ গ মঁ গ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডা ডি
গ ঋ ঋ পঁ মঁ মঁ পঁ পঁ পঁ পঁ প মঁ
রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডা
মঁ মঁ গ গ গ ঋ ঋ মঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ
ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডি
সাঁ সাঁ ঋ সাঁ নি নি ঋ পঁ পঁ মঁ মঁ পঁ
রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডা
ঋ ঋ নি সাঁ সাঁ নি ঋ পঁ মঁ মঁ গ গ
ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডি
গ ঋ ঋ
রি ডা রা

(১০)

ঝিঁঝিটী—সম্পূর্ণ।

একতালা।

(নি)

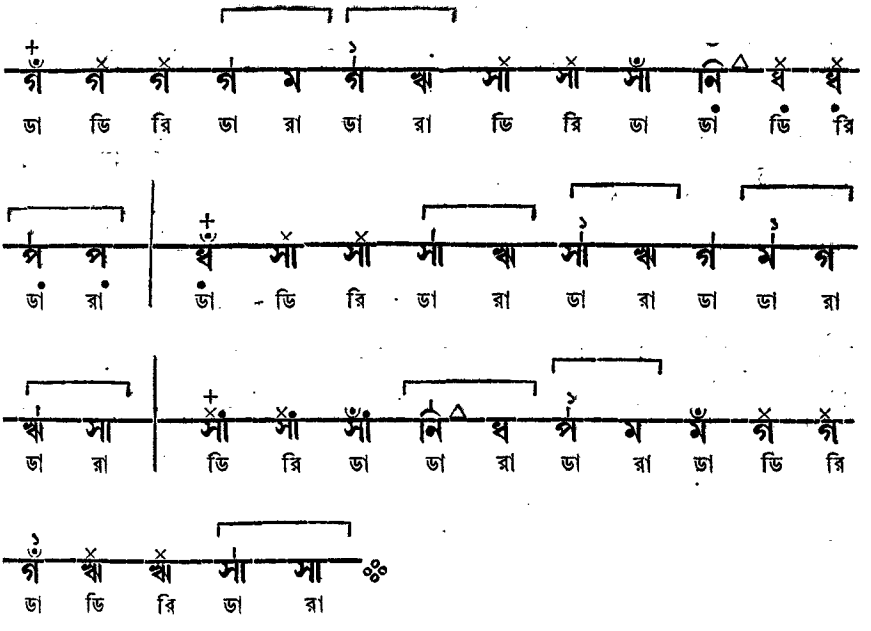

(১১)

পুরবীগৌরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ*)

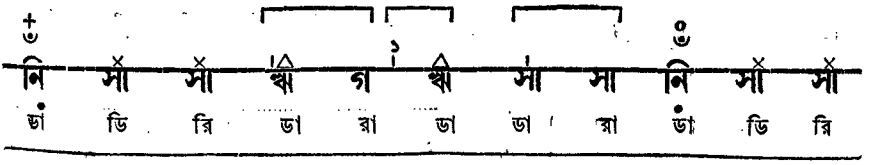

* যে রাগে যে কোন স্বর প্রকৃত ও বিকৃতভাবে ব্যবহৃত হইলে সে সকল রাগের বিকৃত স্বর গতের শিরোভাগে ব্যবহার করা যাইবে না।

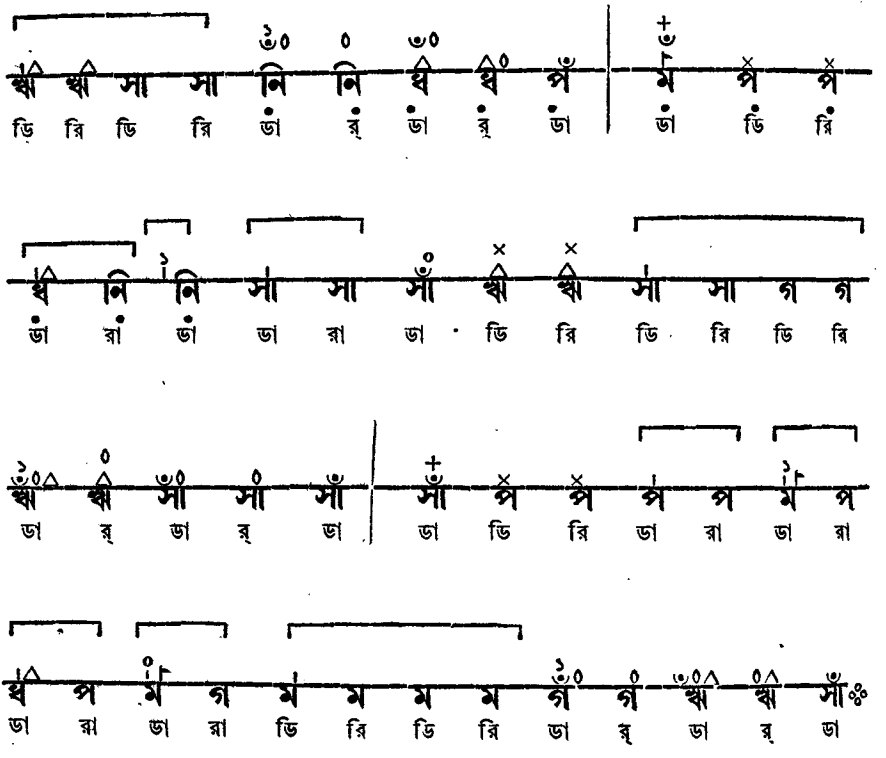

(১২)

ঝিঝিটী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

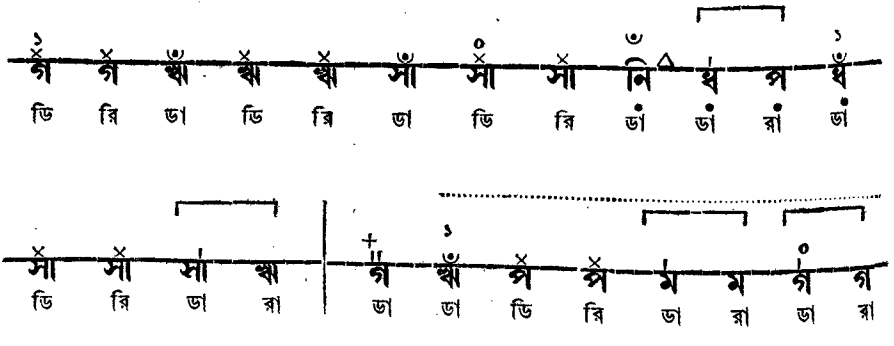

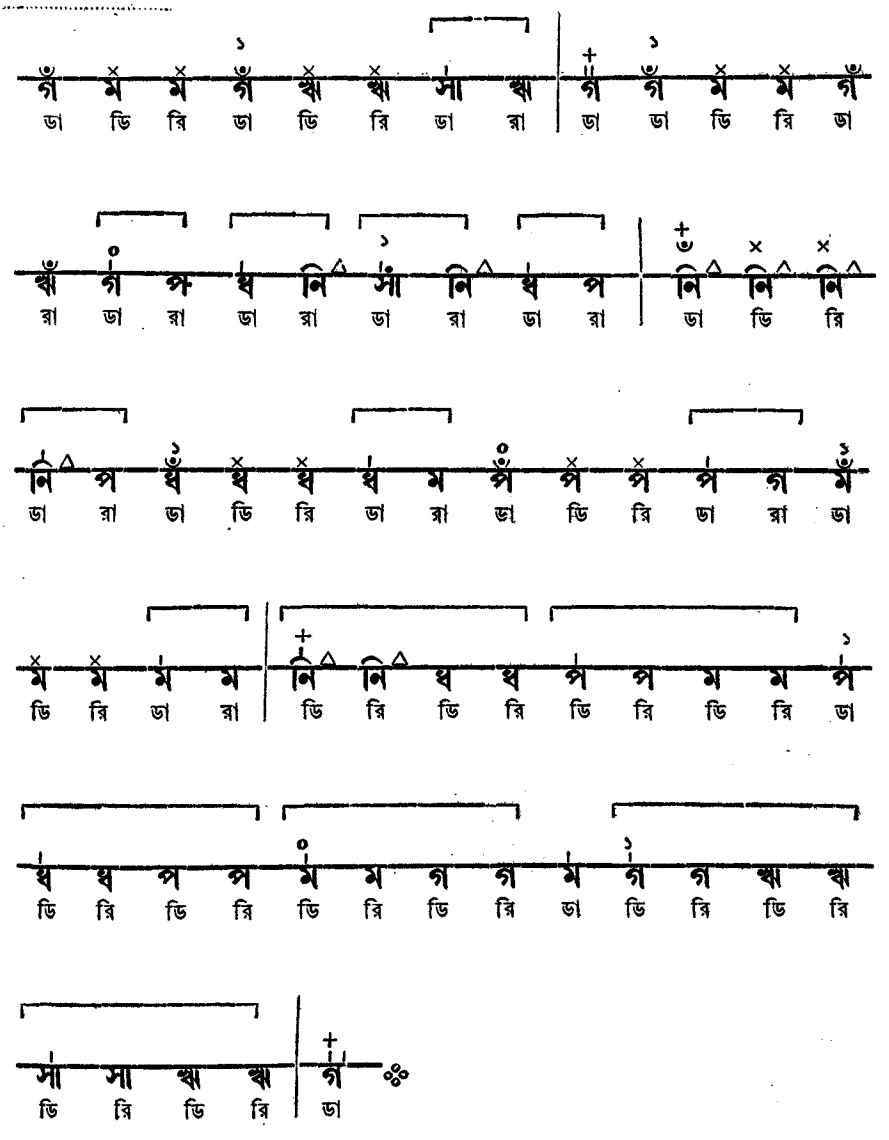
গঁ ম ম গঁ ঋ ঋ সা ঋ | গ গঁ ম ম গঁ
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা | ডা ডা ডি রি ডা
ঋঁ গ ক্ষ ধ নি সাঁ নি ধ প | নি নি নি
রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা | ডা ডি রি
নি প ধঁ ধ ধ ধ ম পঁ প প প গ মঁ
ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
ম ম ম ম | নি নি ধ ধ প প ম ম প
ডি রি ডা রা | ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা
ধ ধ প প ম ম গ গ ম গ গ ঋ ঋ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডি রি
সা সা ঋ ঋ | গ
ডি রি ডি রি | ডা

বিস্তার।

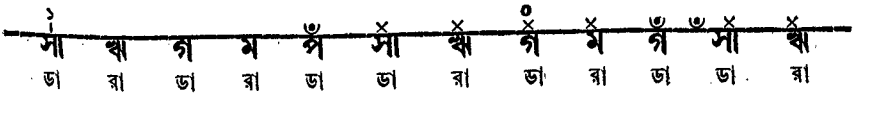
সা ঋ গ ম পঁ সাঁ ঋ গঁ ম গঁ সাঁ ঋ
ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা রা ডা ডা রা

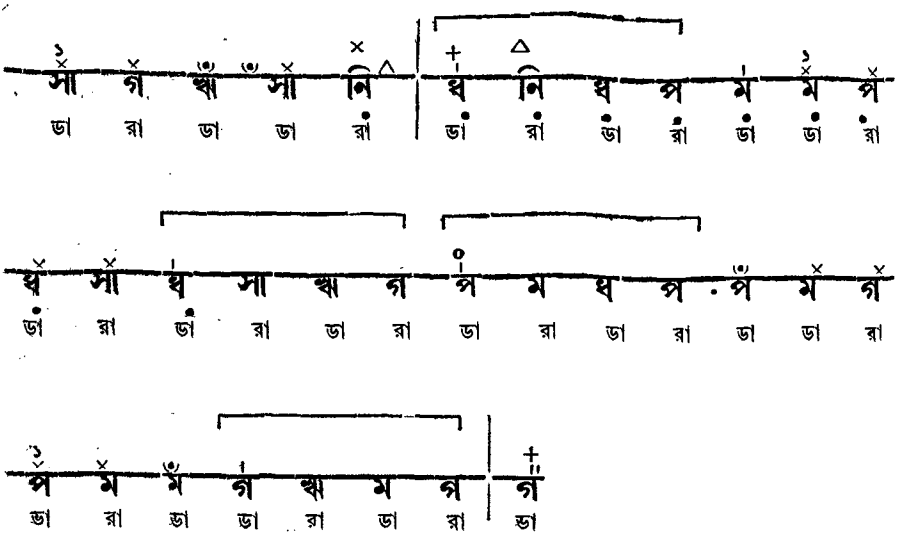

স্পর্শ।

যাহার পরে আরও আবশ্যক মত সারিকা থাকে, এমন যে কোন সারিকা হউক না কেন, সেই খানি বাম হস্তের তর্জ্জনীর দ্বারা চাপিয়া তারে দক্ষিণ হস্তের তর্জ্জনীর আঘাত দিয়াই বাম হস্তের তর্জ্জনী সারিকা হইতে না তুলিয়া সেই আঘাতের অনুরণন থাকিতে থাকিতে মধ্যম অঙ্গুলীর দ্বারা তাহার পরের সারিকা স্পর্শ করিতে হয়, সেই স্পর্শ করার নাম স্পর্শ। স্পর্শটী এমনরূপে করিতে হইবে, যাহাতে সেই স্পৃষ্ট সারিকাসম্ভূত স্বরের সূক্ষ্ম ধ্বনিটী অনায়াসে শোনা যায়, স্পর্শ জ্ঞাপন জন্য এইরূপ (০) তুলক চিহ্ন নির্দ্দিষ্ট আছে। যে স্বরের মস্তকে এইরূপ তুলক চিহ্ন থাকে, গতে সেই ধাতুর নিম্নে প্রায়ই এই রূপ (এ) চিহ্ন থাকিবে (১)।

---

(১) রাগাদির আলাপের সময়ে ডা এ রা, ডারা ইত্যাদি কাল্পনিক বোলের নাম বিশেষ আবশ্যক করে না, সেই জন্য সে স্থলে স্পৃষ্ট সারিকাসম্ভূত স্বরের নীচে (এ) এই চিহ্নের পরিবর্ত্তে একটী মাত্র শূন্য দেওয়া থাকিবে।

অনুলোম সাধন।

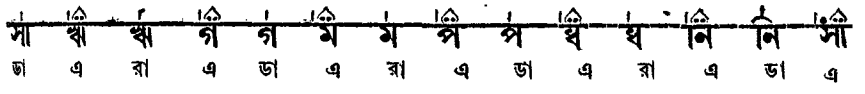

বিলোম সাধন।

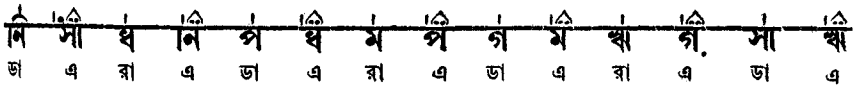

অনুলোম সাধন।

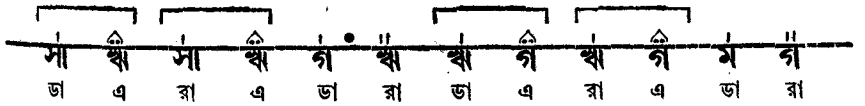

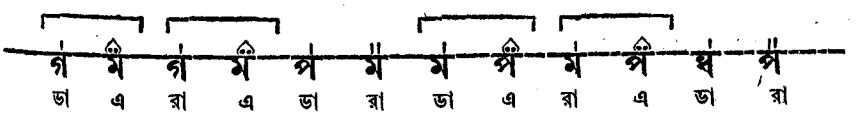

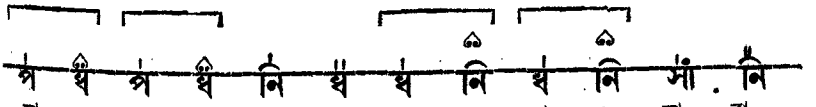

বিলোম সাধন।

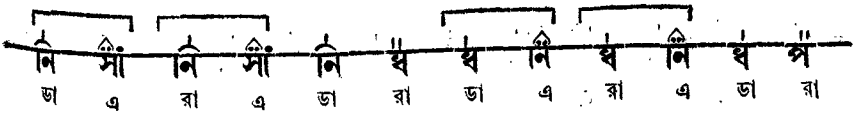

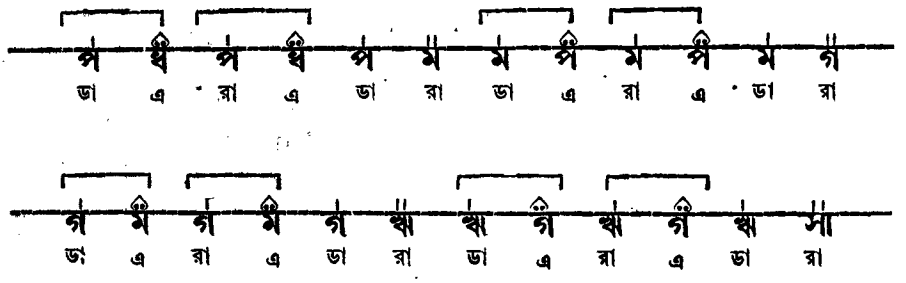

অনুলোম সাধন।

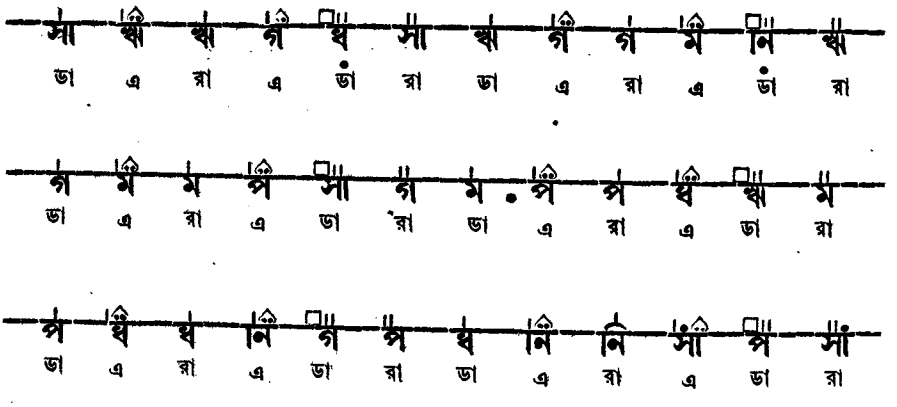

বিলোম সাধন।

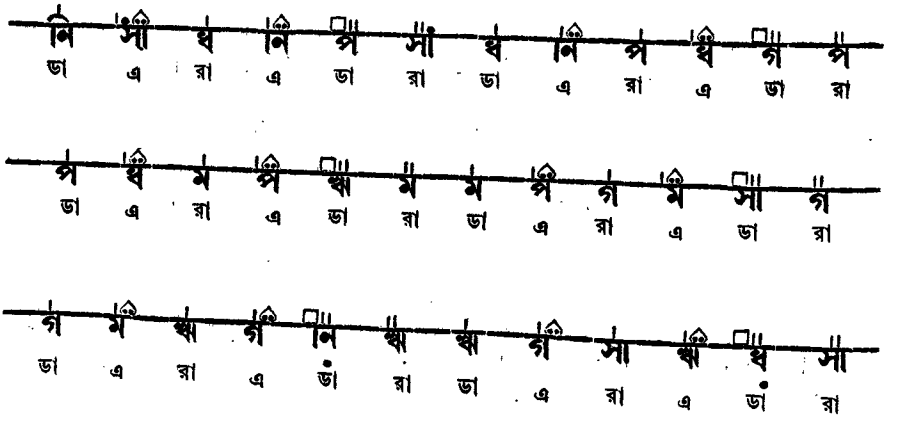

অনুলোম সাধন।

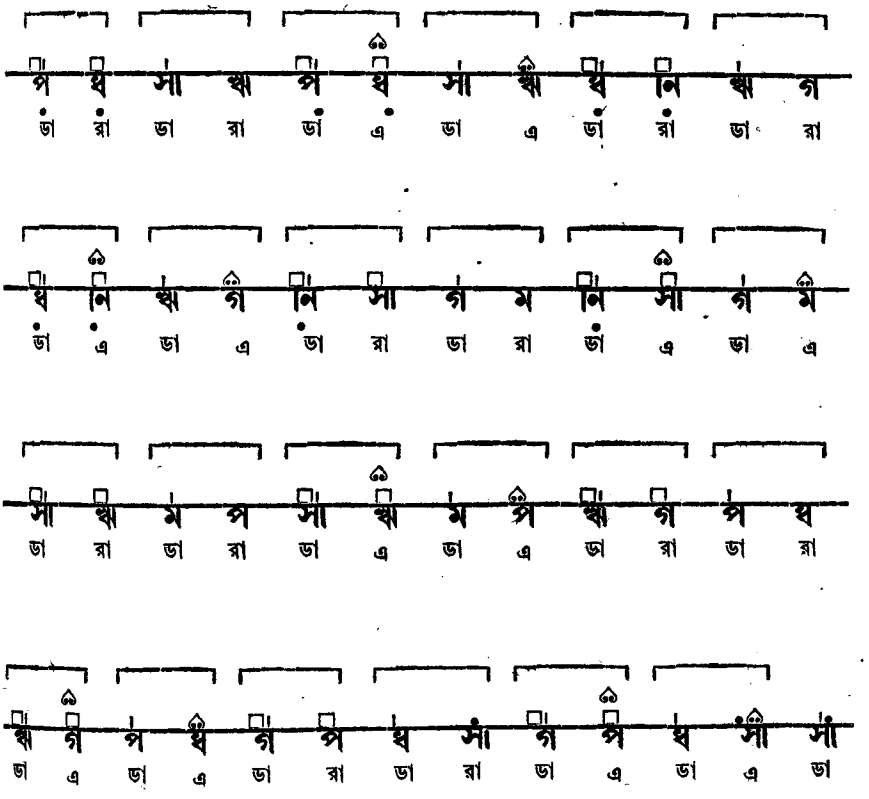

বিলোম সাধন।

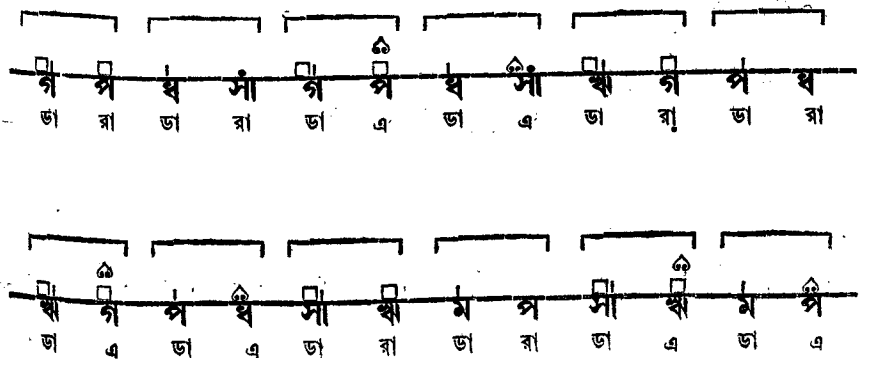

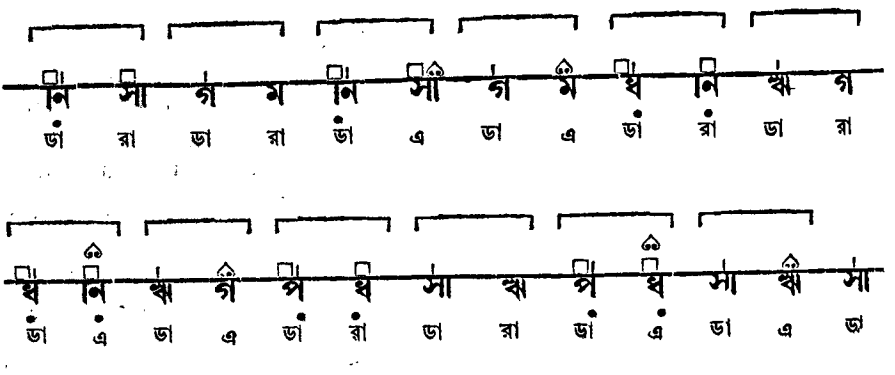

মিশ্র সাধন।

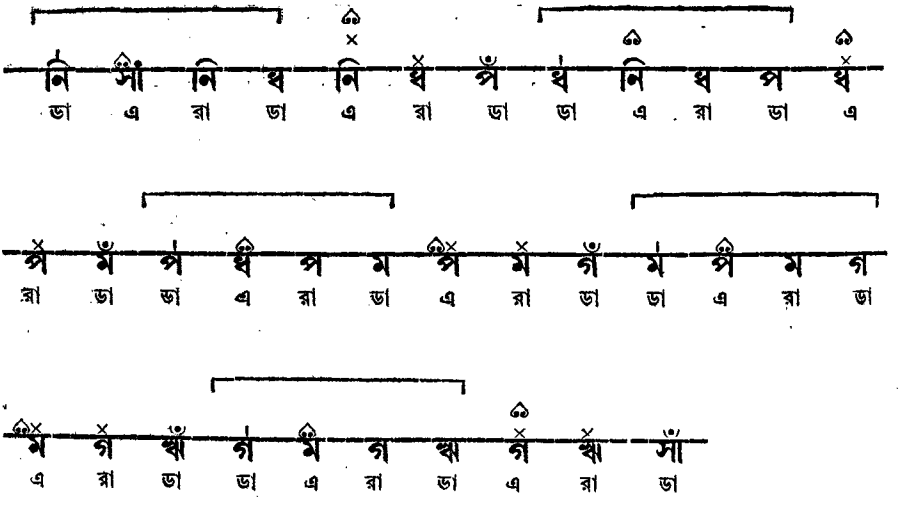

(১৩)

ছায়ানট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

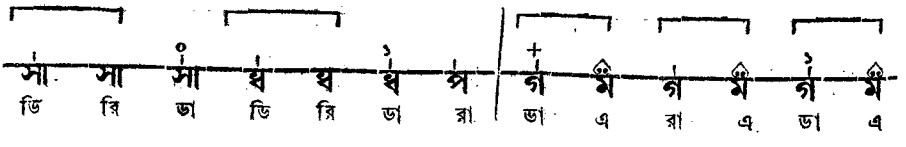

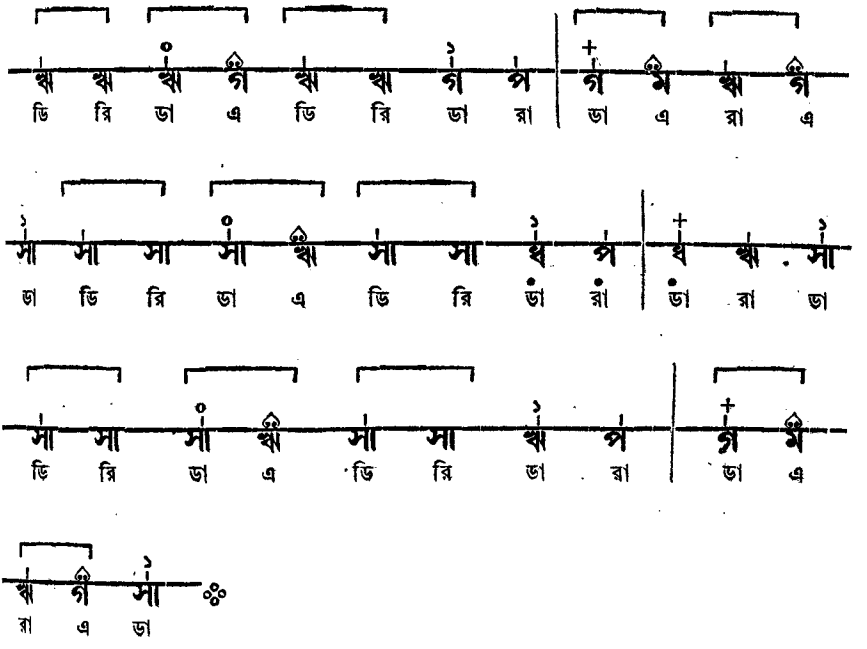

(১৪)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

(নি)

মধ্যমান।

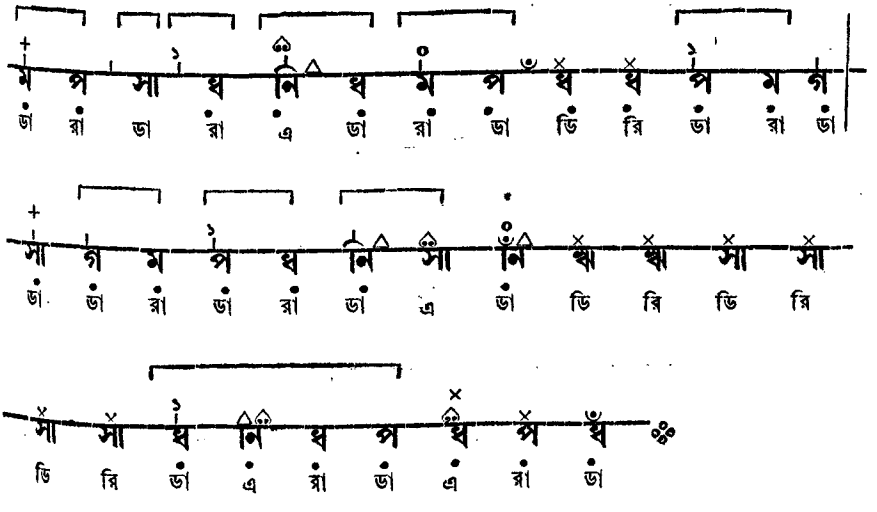

(১৫)

শুক্ল বেলাবলী (সুখল বেলাওল)—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

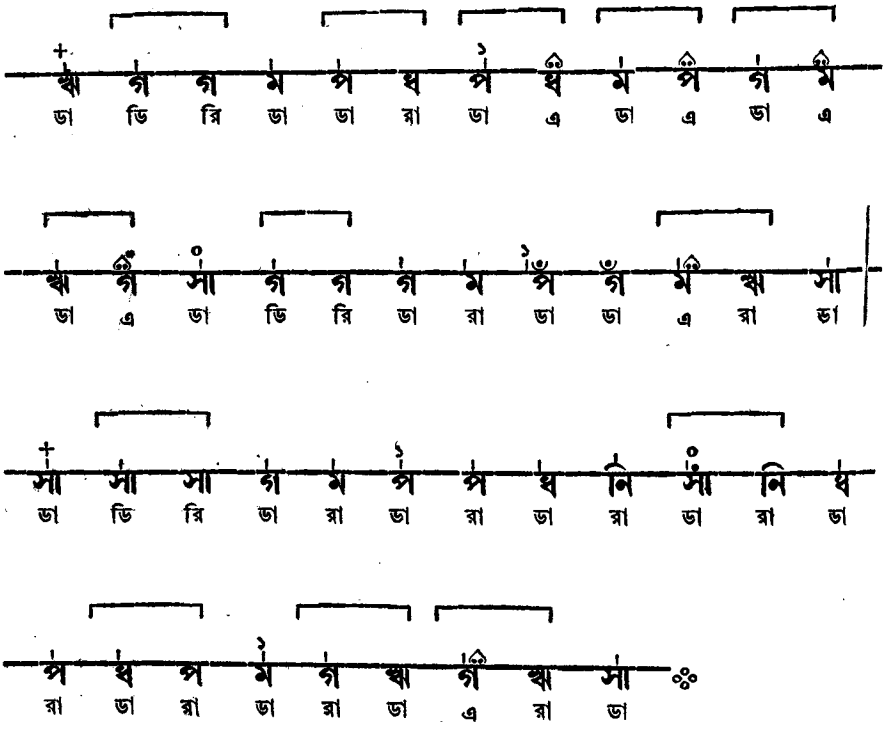

(১৬)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

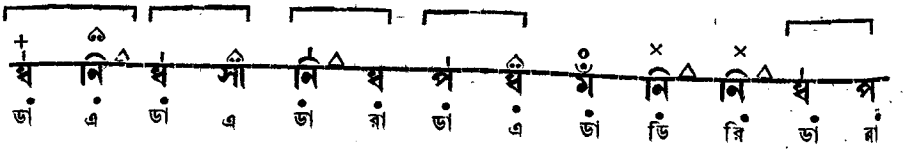

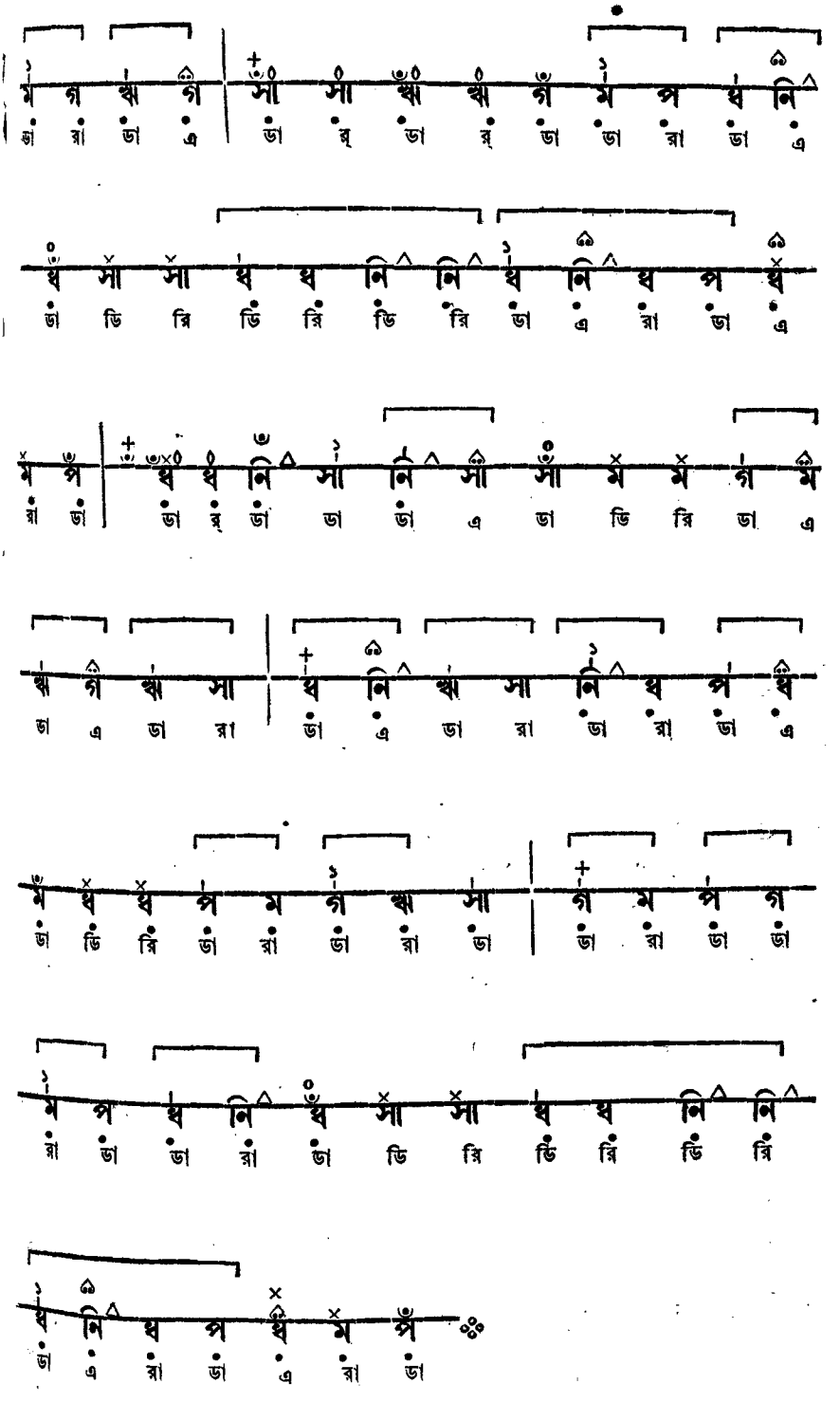
ম গ ঋ গ | সা সা ঋ ঋ গ ম প ধ নি
ডা রা ডা এ | ডা র্ ডা র্ ডা ডা রা ডা এ
ধ সা সা ধ ধ নি নি ধ নি ধ প ধ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা এ
ম প | ধ ধ নি সা নি সা সা ম ম গ ম
রা ডা | ডা র্ ডা ডা ডা এ ডা ডি রি ডা এ
ঋ গ ঋ সা | ধ নি ঋ সা নি ধ প ধ
ডা এ ডা রা | ডা এ ডা রা ডা রা ডা এ
ম ধ ধ প ম গ ঋ সা | গ ম প গ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা | ডা রা ডা ডা
ম প ধ নি ধ সা সা ধ ধ নি নি
রা ডা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ধ নি ধ প ধ ম প
ডা এ রা ডা এ রা ডা

(১৭)

দেওঝিঝিটী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

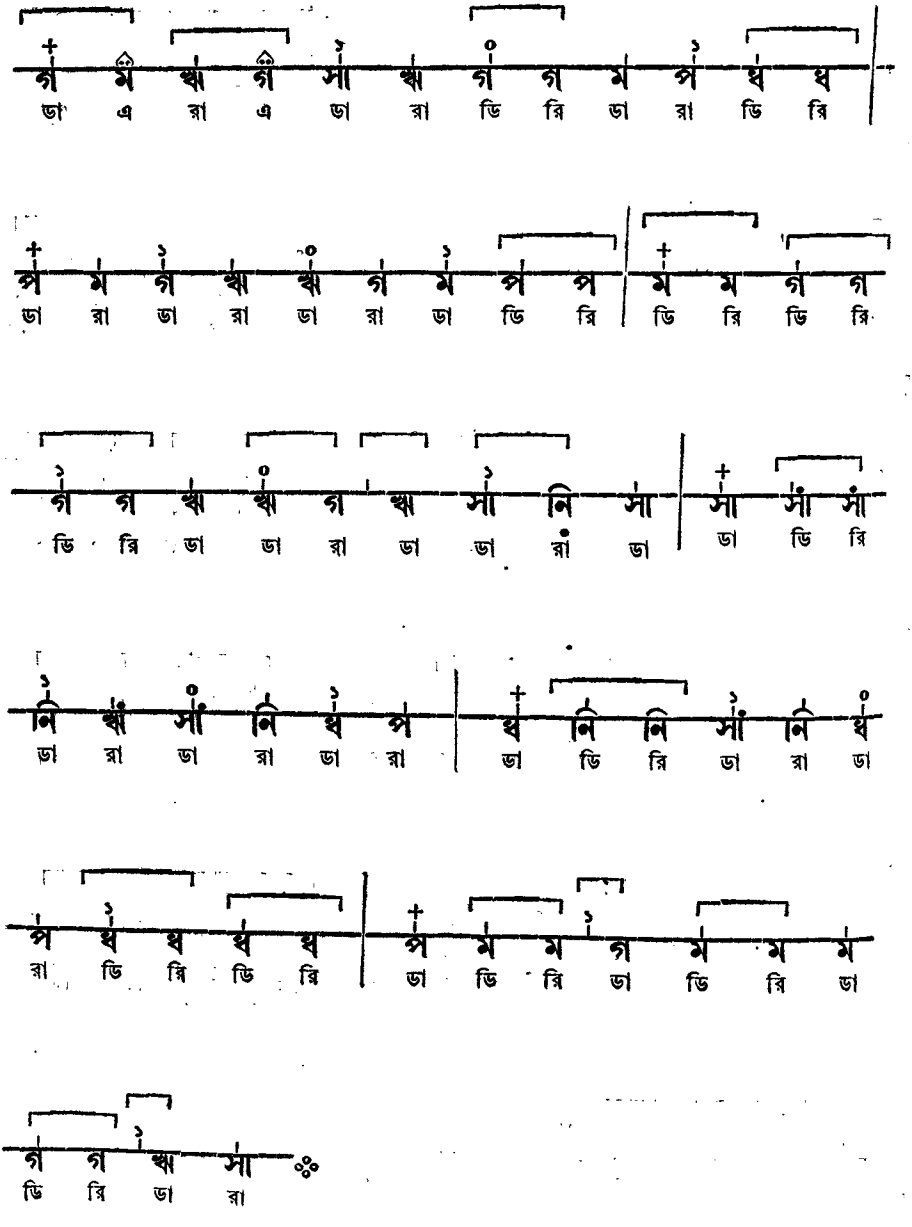
গ ম ঋ গ সা ঋ গ গ ম প ধ ধ
ডা এ রা এ ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি
প ম গ ঋ ঋ গ ম প প | ম ম গ গ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি | ডি রি ডি রি
গ গ ঋ ঋ গ ঋ সা নি সা | সা সাঁ সাঁ
ডি রি ডা ডা রা ডা ডা রাঁ ডা | ডা ডি রি
নি ঋঁ সাঁ নি ধ প | ধ নি নি সাঁ নি ধ
ডা রা ডা রা ডা রা | ডা ডি রি ডা রা ডা
প ধ ধ ধ ধ | প ম ম গ ম ম ম
রা ডি রি ডি রি | ডা ডি রি ডা ডি রি ডা
গ গ ঋ সা ঃ
ডি রি ডা রা

(১৮)

অরুণ মল্লার—সম্পূর্ণ।

দ্রুত-ত্রিতালী।

(স্থান)

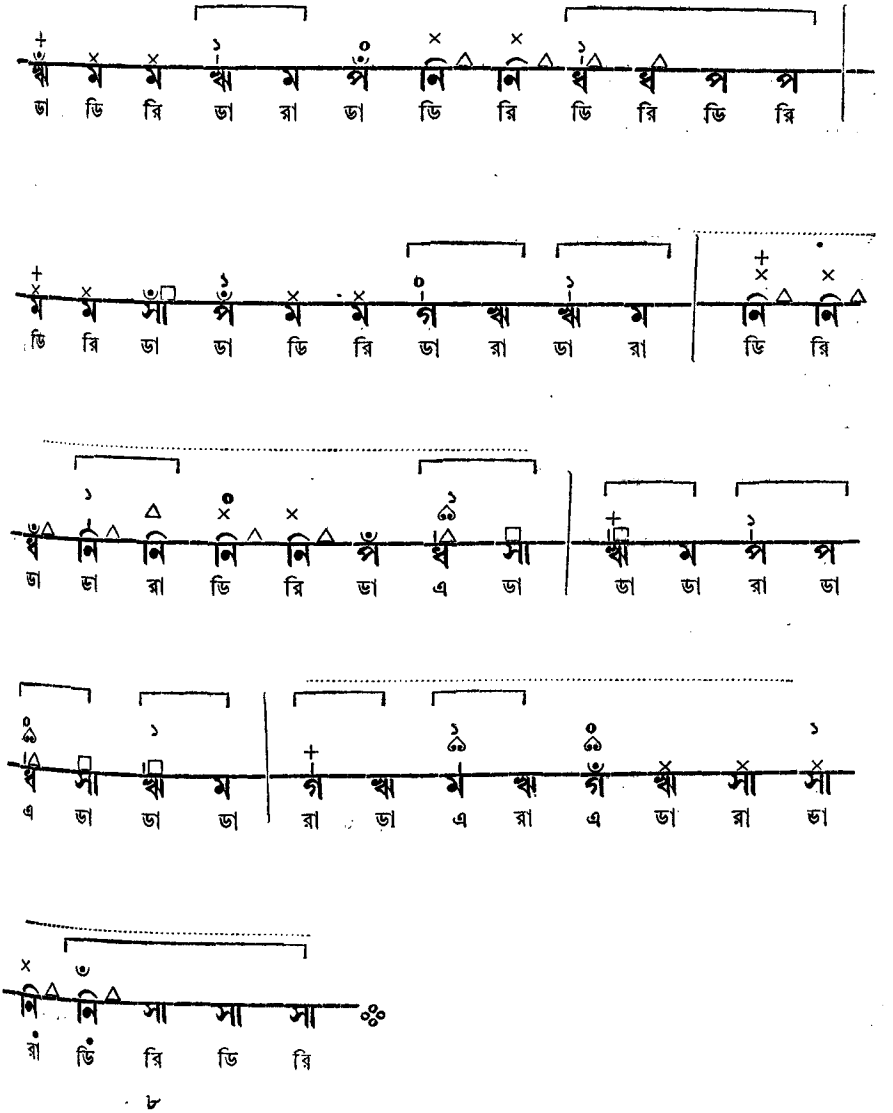
ঋঁ ম ম ঋ ম পঁ নি নি ধ ধ প প
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ম ম সা পঁ ম ম গ ঋ ঋ ম নি নি
ডি রি ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডি রি
ধঁ নি নি নি নি পঁ ধ সা ঋ ম প প
ডা ডা রা ডি রি ডা এ ডা ডা ডা রা ডা
ধ সা ঋ ম গ ঋ ম ঋ গঁ ঋ সা সা
এ ডা ডা ডা রা ডা এ রা এ ডা রা ডা
নি নি সা সা সা
রাঁ ডিঁ রি ডি রি

(১৯)

সোহিনী খাম্বাজ—সম্পূর্ণ*।

মধ্যমান।

(নি)

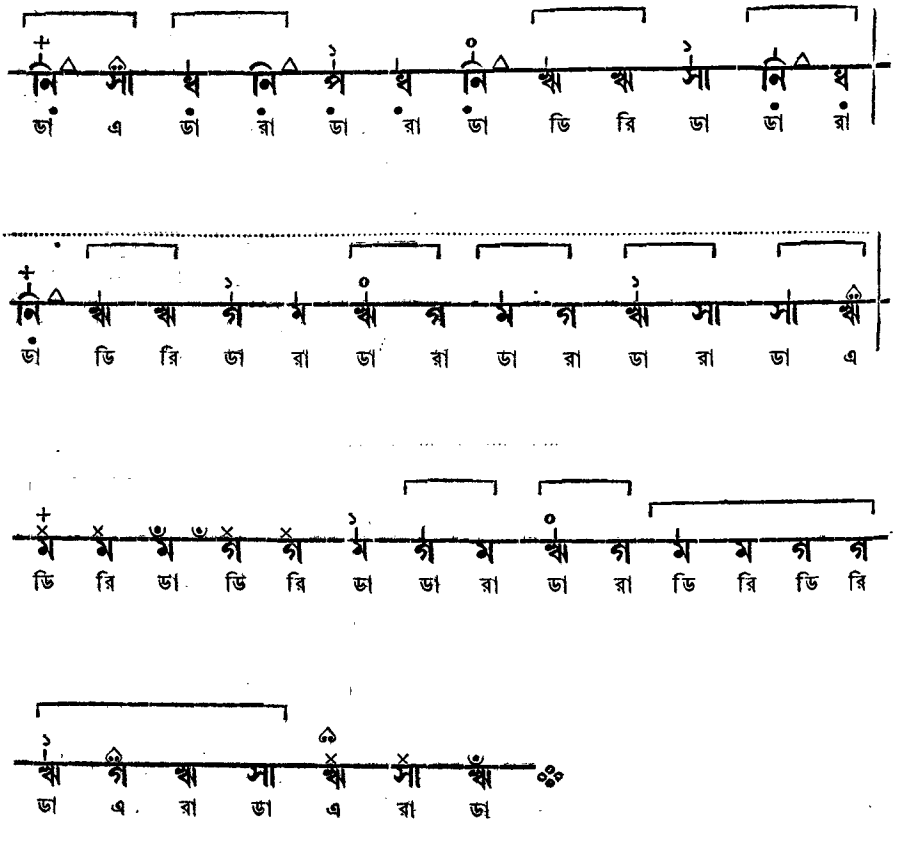

---

* এই গৎটীতে সোহিনীর ভাগ অতি অল্প থাকা প্রযুক্ত সোহিনীর কোমল ঋষভের বিশেষ প্রয়োজন হইল না। কেবল খাম্বাজের উপযোগী কোমল নিষাদই ব্যবহৃত হইল। কিন্তু সময়ে সময়ে বিবেচনাপূর্ব্বক কোমল ঋষভ ব্যবহার করিতে পারিলেও অযৌক্তেয় হইবে না।

(২০)

বৃন্দাবনী—সারঙ্গ। ওড়ব

একতালা।

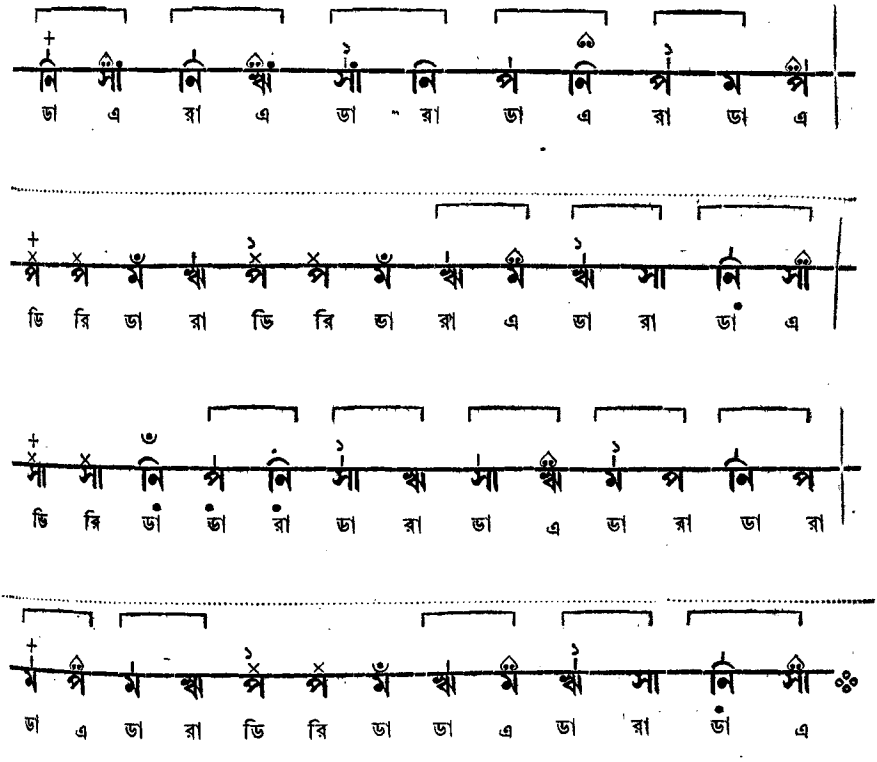
নি সাঁ নি ঋঁ সাঁ নি প নি প ম প
ডা এ রা এ ডা রা ডা এ রা ডা এ
প প মঁ ঋ প প মঁ ঋ মঁ ঋ সা নি সাঁ
ডি রি ডা রা ডি রি ডা রা এ ডা রা ডাঁ এ
সাঁ সাঁ নি প নি সাঁ ঋ সাঁ ঋঁ ম প নি প
ডি রি ডাঁ ডা রা ডা রা ডা এ ডা রা ডা রা
ম প ম ঋ প প মঁ ঋ মঁ ঋ সা নি সাঁ
ডা এ ডা রা ডি রি ডা ডা এ ডা রা ডাঁ এ

বিস্তার।
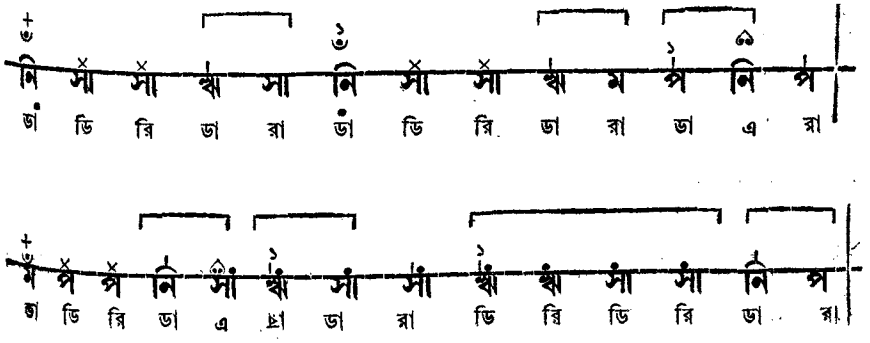
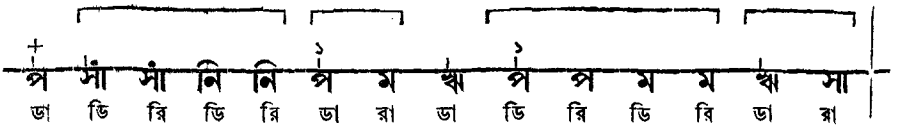

কৃন্তন।

যাহার পরে আরও সারিকা পাওয়া যাইতে পারে, এমন একখানি সারিকা বাম হস্তের তর্জ্জনীর টীপযোগে ধারণপূর্ব্বক পরের সারিকা মধ্যম-অঙ্গুলীর শেষ ভাগ দ্বারা চাপিয়া ঐ চাপিত তার কাটিয়া লওয়াকে কৃন্তন বলে। যে সারিকায় চাপিত তারে কৃন্তন সম্পন্ন হয়, সেই সারিকার স্বর প্রকাশ না হইয়া তর্জ্জনীর টীপযোগে ধৃত সারিকারই স্বর বিশেষরূপে ব্যক্ত হইবে। যে স্বরে কৃন্তন সম্পন্ন হইবে, ঐ স্বরের মস্তকে '—' এইরূপ একটী ক্ষুদ্র রেখা চিহ্ন, এবং পূর্ব্ব স্বরটীর নীচে কেবলমাত্র একটী 'এ' চিহ্ন দেওয়া থাকিবে। অপিচ যেখানে কেবল কৃন্তনের প্রয়োজন হয়, সেখানে তর্জ্জনী চাপিত সারিকার স্বরে অথবা যে স্বর মধ্যম অঙ্গুলীর দ্বারা কাটিয়া লওয়া যায়, এই উভয় স্বরের কোনটীতেই আঘাত হইবে না, শুদ্ধ কাটিয়া লইতে যে স্বরটুকু-মাত্র ব্যক্ত হইবে, তাহাই উদ্দেশ্য। যেখানে খোলা তারে তর্জ্জনী কিম্বা মধ্যম-অঙ্গুলীর দ্বারা কৃন্তন করা যায়, সেই স্থলে কোন সারিকার আবশ্যক করে না।

যদ্যপি যথামাত্রানুযায়িক আঘাতানন্তর উপরোক্ত নিয়মে কোন পর্দ্দায় তার কাটিয়া লওয়া যায়, তবে ঐ রূপ তারকর্ত্তনকে আঘাত কৃন্তন কহে। আঘাত কৃন্তন স্থলে যে সারিকার তার কাটিতে হইবে, সেই স্বরের নিম্নে আঘাতের চিহ্ন ডা, রা, ইত্যাদি বোলের বর্ণ এবং মস্তকে কথিত রেখা চিহ্ন দেওয়া থাকিবে; এবং পূর্ব্বস্বরের নিম্নে 'এ' চিহ্ন থাকিবে *।

* যে আঘাত কৃন্তন স্থলে কৃন্তন সমুদ্ভূত পূর্ব্ব পর্দ্দার স্বর এত স্বল্পক্ষণ স্থায়ী হইবে যে, তাহা কর্ণে ধারণা করা অতি কষ্টসাধ্য, সে স্থলে সেই স্বর পৃথক্ করিয়া লিখিত হইবে না।

কৃন্তন-সাধন।

অনুলোম।

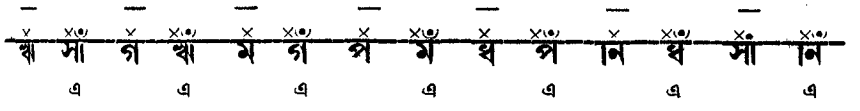

বিলোম।

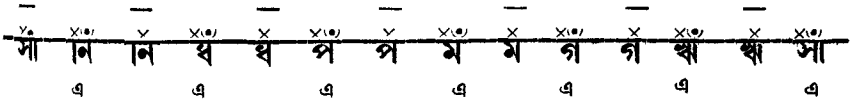

আঘাত-কৃন্তন।

অনুলোম।

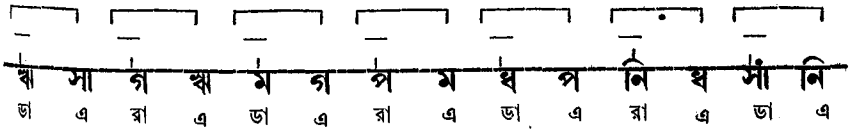

বিলোম।

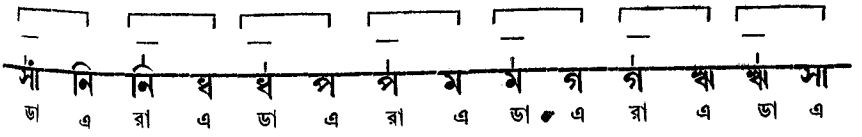

কৃন্তন সাধন।

অনুলোম।

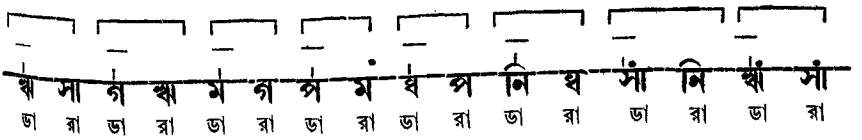

বিলোম।

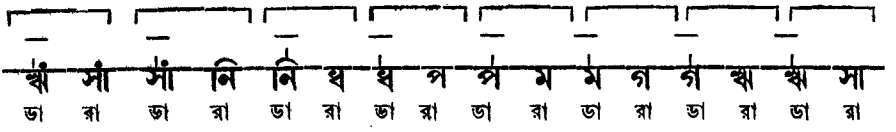
ঋঁ সাঁ সাঁ নি নি ধ ধ প প ম ম গ গ ঋ ঋ সা
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা

অনুলোম।

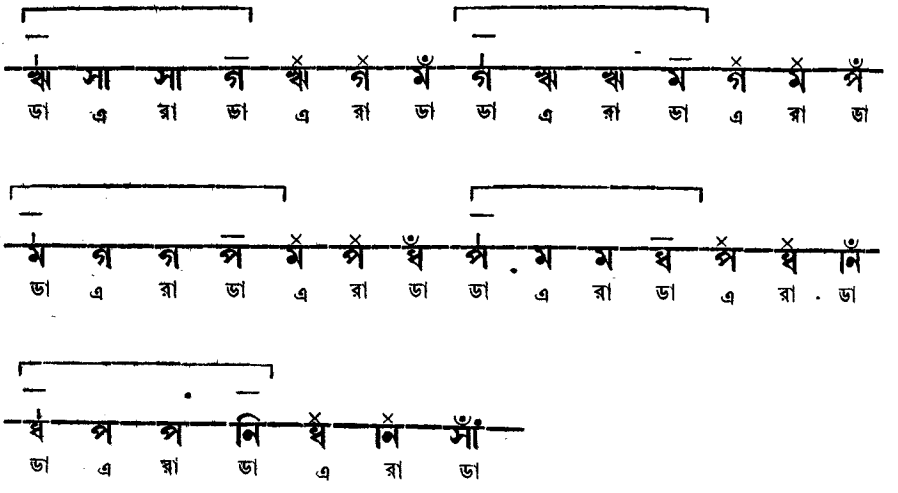
ঋ সা সা গ ঋ গ মঁ গ ঋ ঋ ম গ ম পঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা এ রা ডা এ রা ডা
ম গ গ প ম প ধ প . ম ম ধ প ধ নঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা এ রা ডা এ রা . ডা
ধ প প নি ধ নি সাঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা

বিলোম।

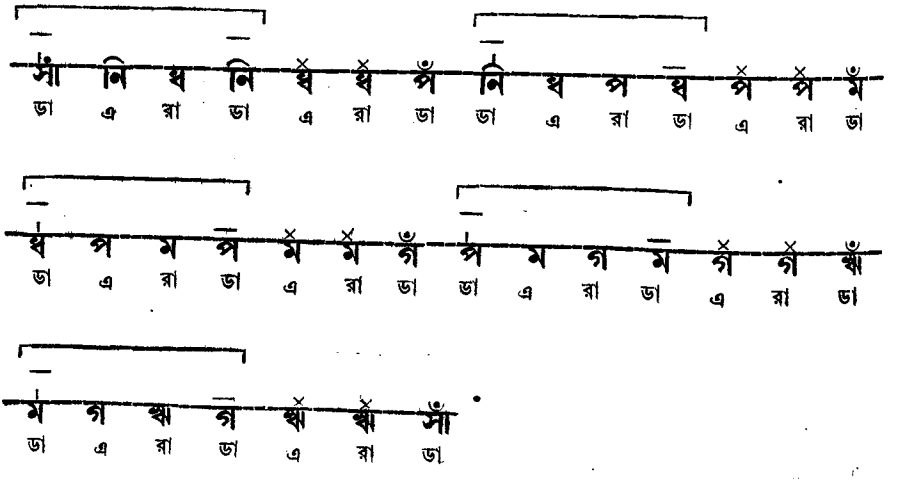
সাঁ নি ধ নি ধ ধ পঁ নি ধ প ধ প প মঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা এ রা ডা এ রা ডা
ধ প ম প ম ম গঁ প ম গ ম গ গ ঋঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা এ রা ডা এ রা ডা
ম গ ঋ গ ঋ ঋ সাঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা

(২১)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

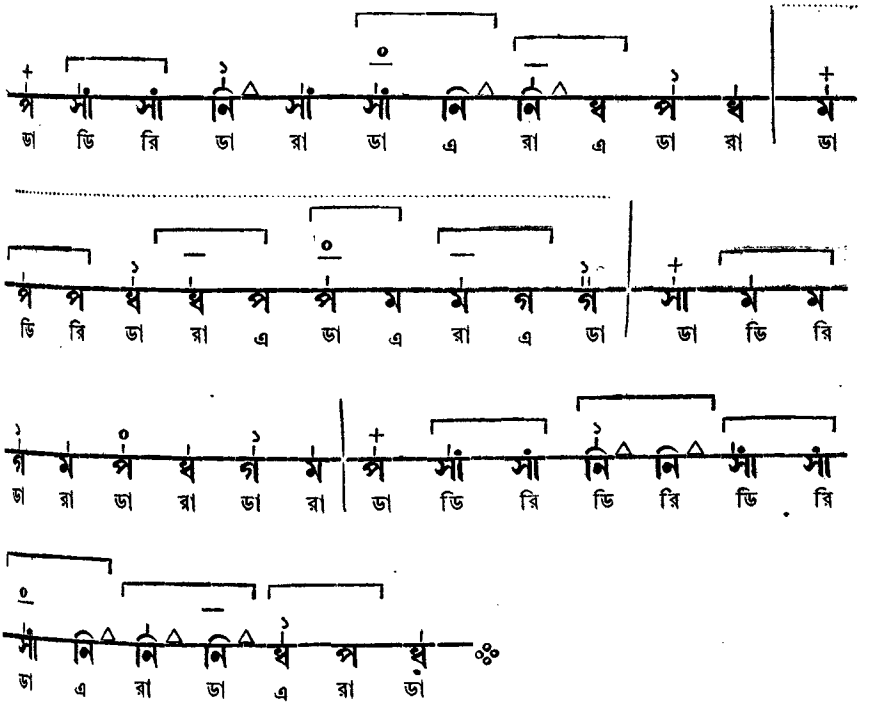

(২২)

ঝিঝিটী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

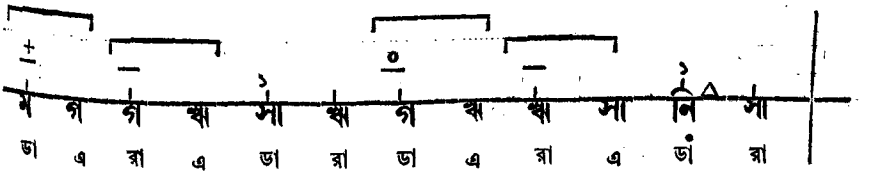

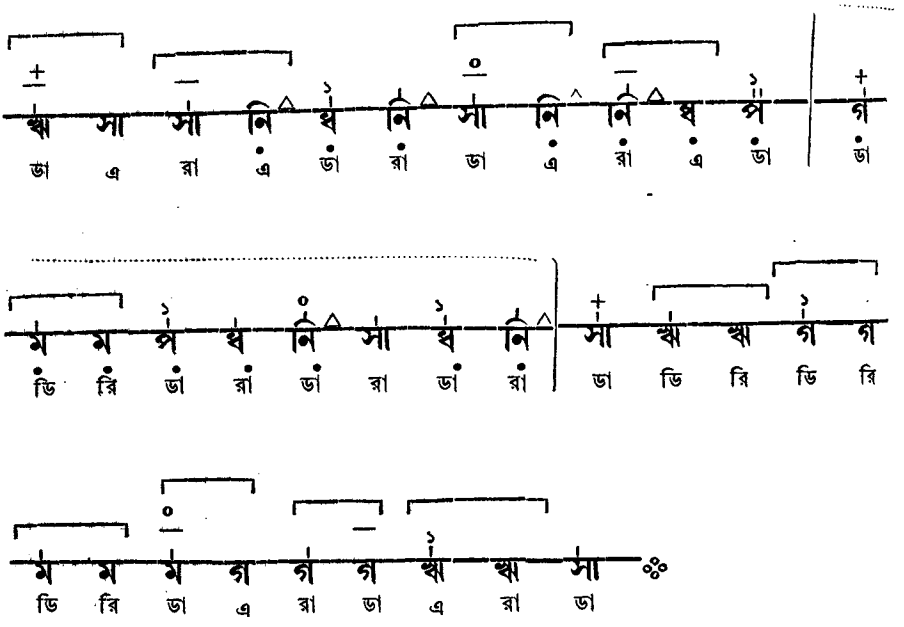

(২৩)

পাহাড়ী ঝিঁঝিটী—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(নি)

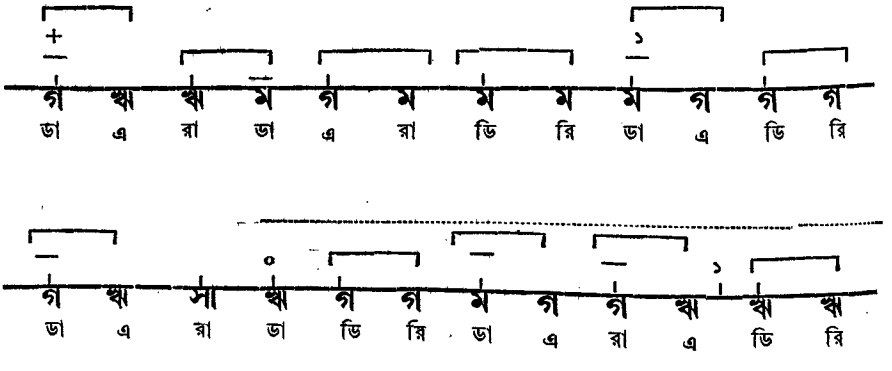

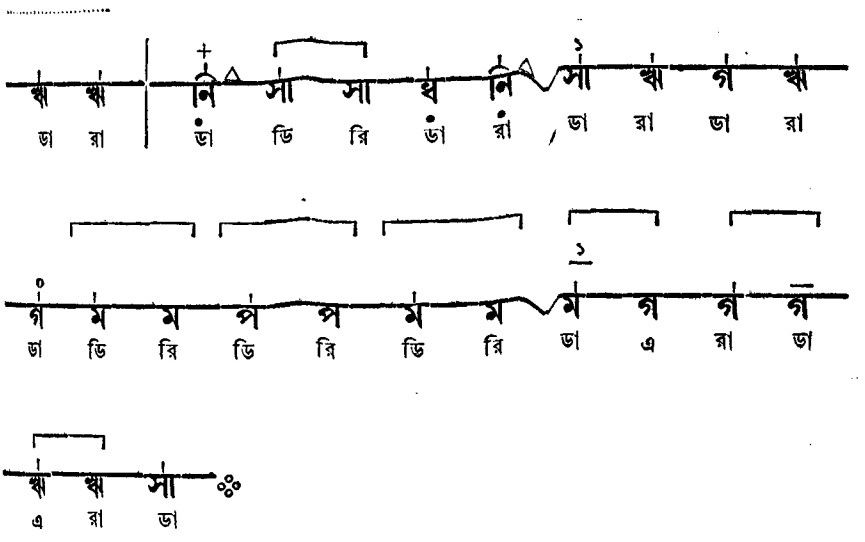

(২৪)

সোহিনী-বাহার—সম্পূর্ণ*।

একতালা।

(ঋ)

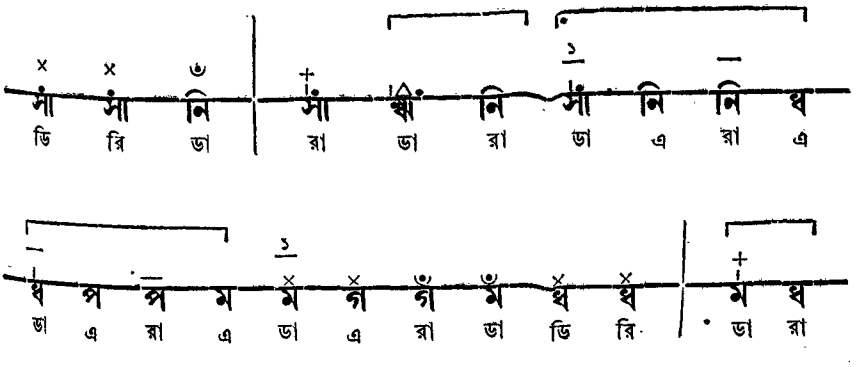

*এই গৎটীতে সোহিনীর ভাগ বেশী থাকা প্রযুক্ত তদুপযোগী কোমল ঋষভের ব্যবহার অধিক হইল। রাগে কিঞ্চিৎ প্রবেশ হইলে ছাত্রেরা বাহারের কোমল গান্ধার ও কোমল নিষাদ যথা যথা স্থানে ব্যবহার করিতে পারিবেন।

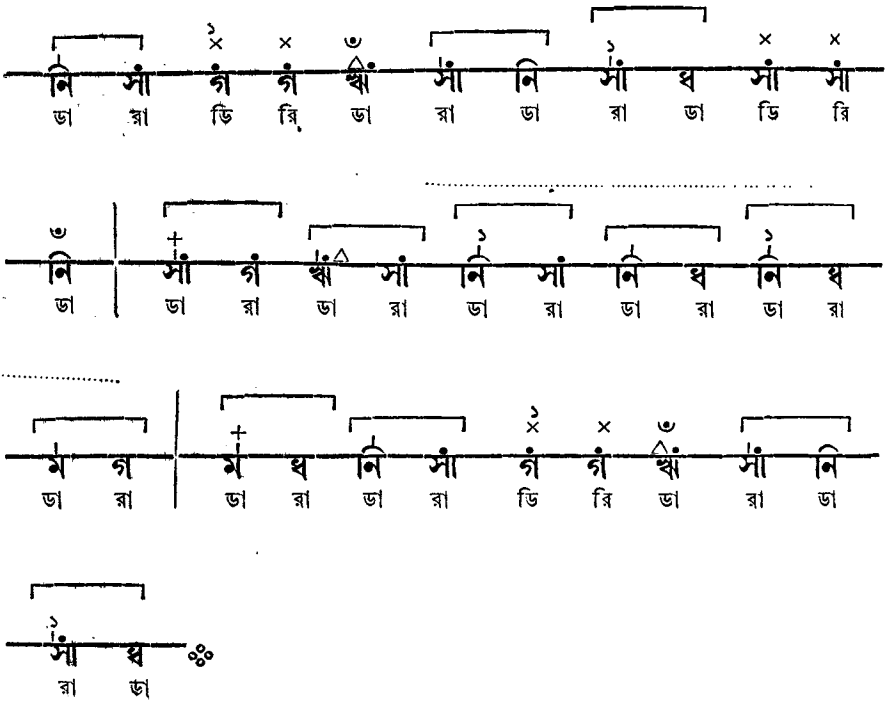

(২৫)

ভূপালী—খাড়ব *।

মধ্যমান।

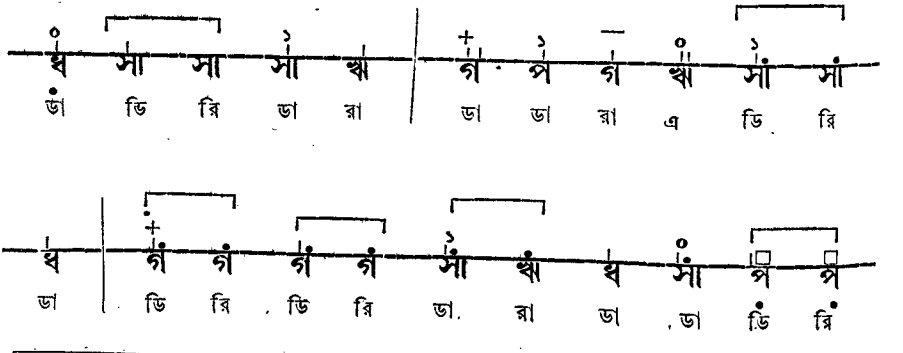

* ইহার মধ্যম স্বর বিবাদী।

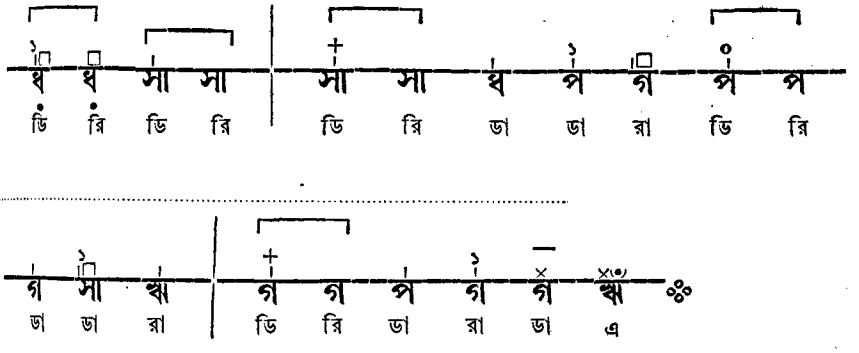

(২৬)

বৃন্দাবনী-সারঙ্গ—ওড়ব।

একতালা।

আস্থায়ী।

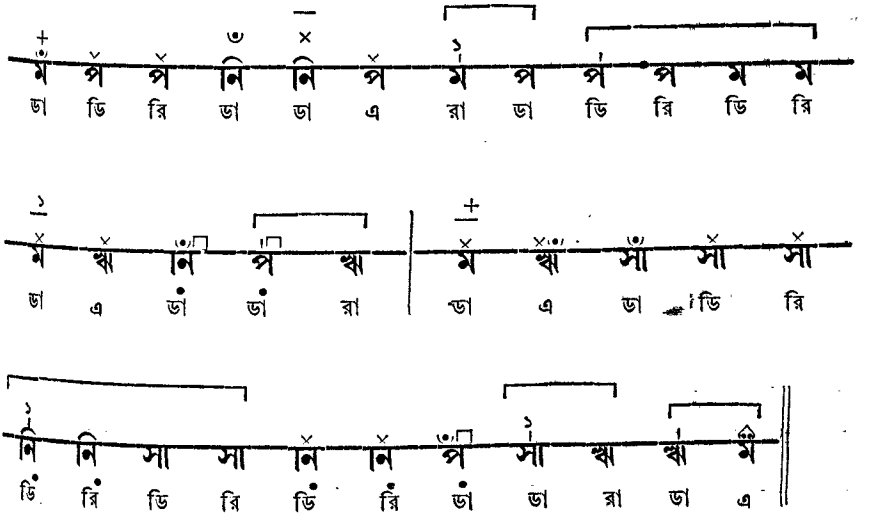

অন্তরা।

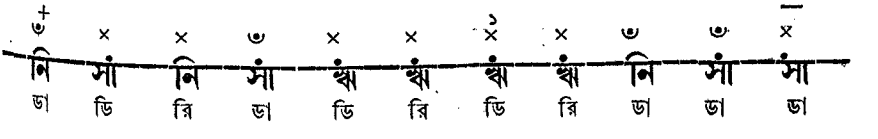

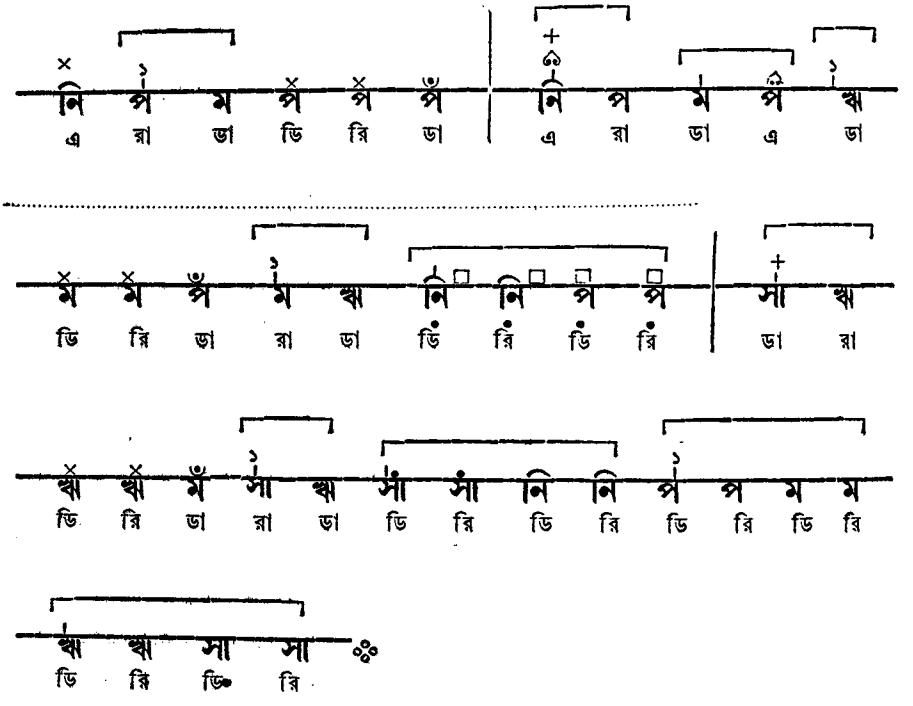

(২৭)

ঝিঝিট-খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

আস্থায়ী।

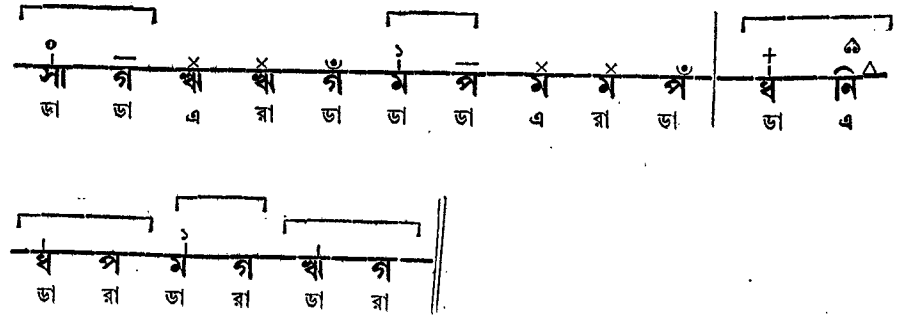

অন্তরা।

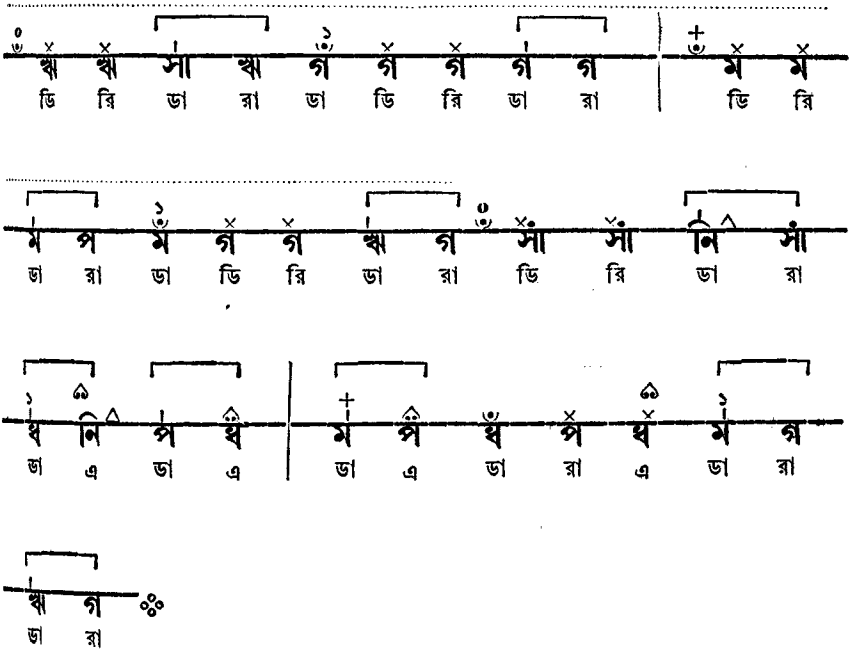

(২৮)

ইম্নি—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ম)

আস্থায়ী।

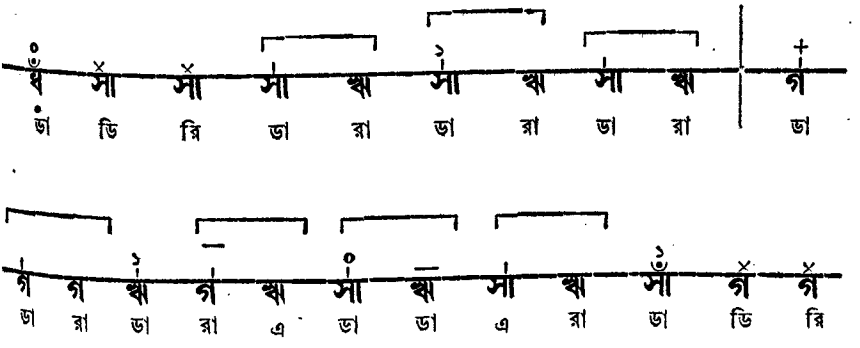

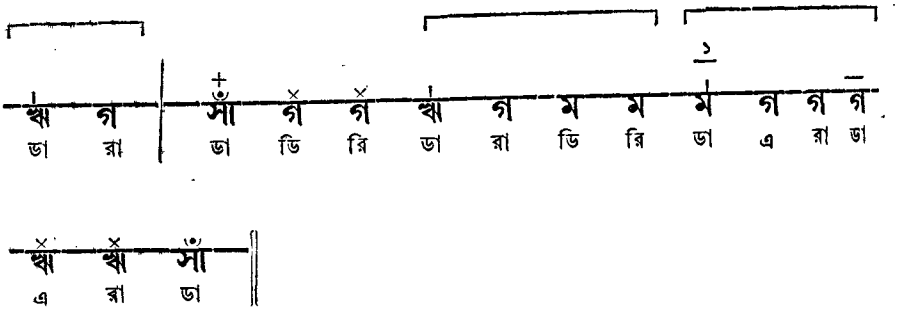
ঋ গ | সাঁ গ গ ঋ গ ম ম ম গ গ গ
ডা রা | ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা এ রা ডা
ঋ ঋ সাঁ ||
এ রা ডা

অন্তরা।

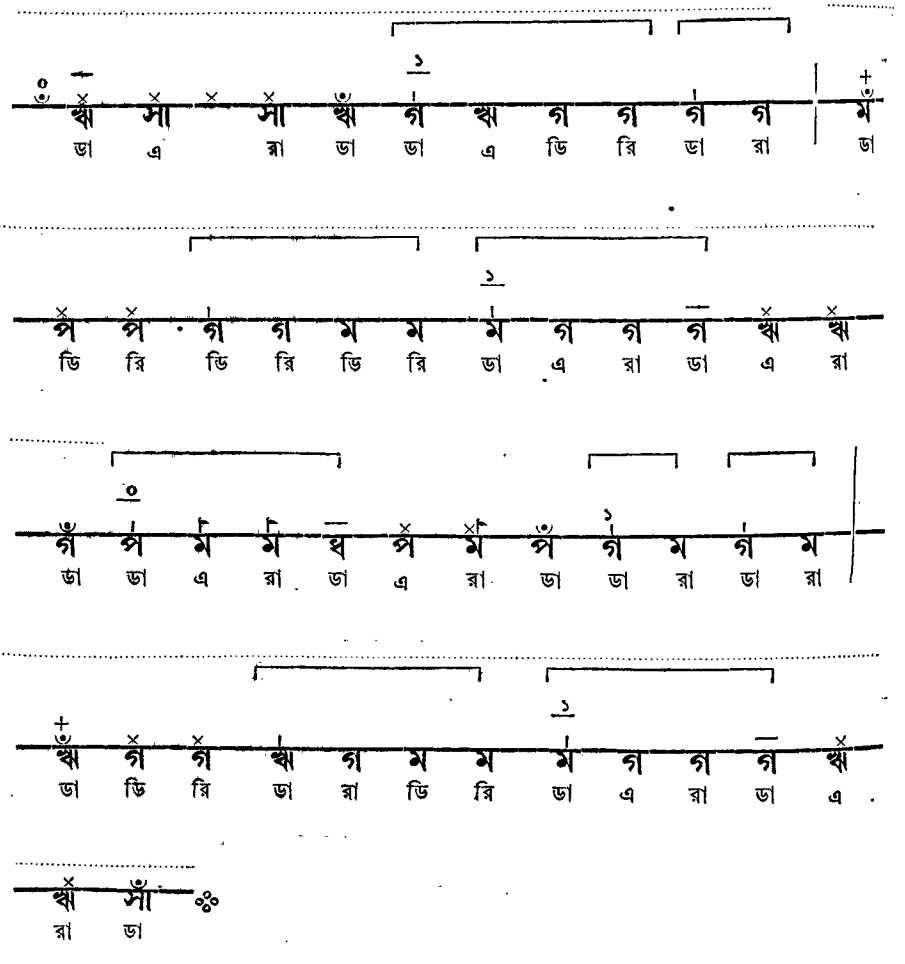
ঋ সা সা ঋ গ ঋ গ গ গ গ | ম
ডা এ রা ডা ডা এ ডি রি ডা রা ডা
প প গ গ ম ম ম গ গ গ ঋ ঋ
ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা এ রা
গঁ প ম ম ঘ প ম প গ ম গ ম
ডা ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা রা ডা রা
ঋ গ গ ঋ গ ম ম ম গ গ গ ঋ
ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা এ রা ডা এ
ঋ সাঁ
রা ডা

(২৯)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

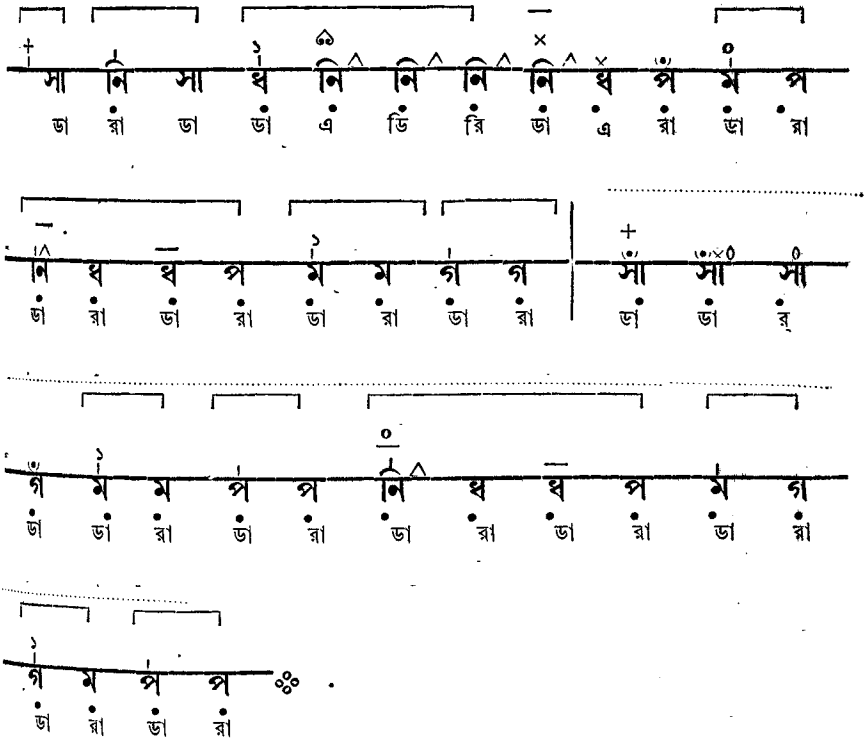

(৩০)

সিন্ধুভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ধ নি)

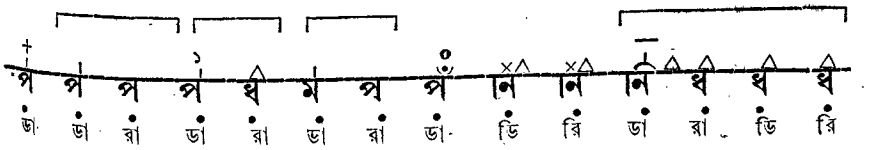

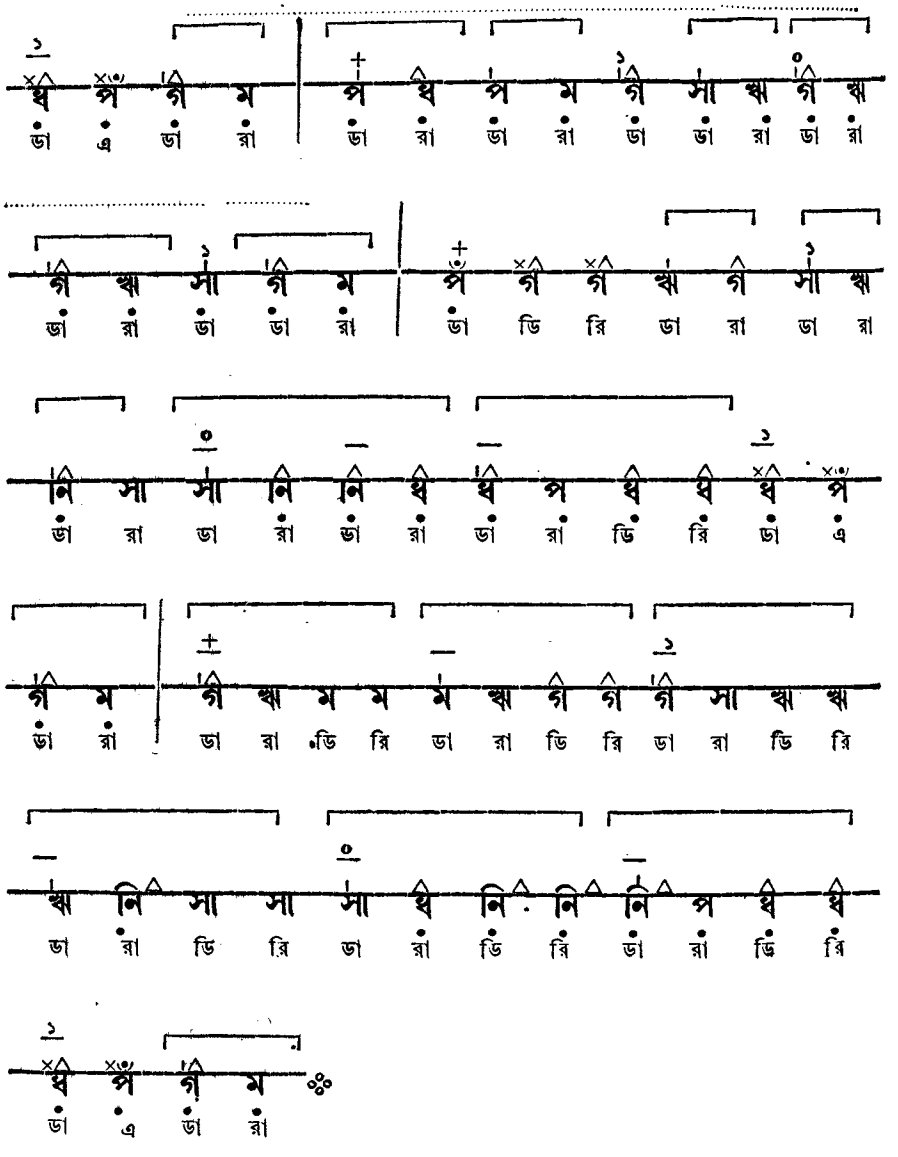
ডা এ ডা রা
ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা রা
ডা রা ডা ডা রা
ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডা এ
ডা রা
ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি
ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি
ডা এ ডা রা

বিস্তার।

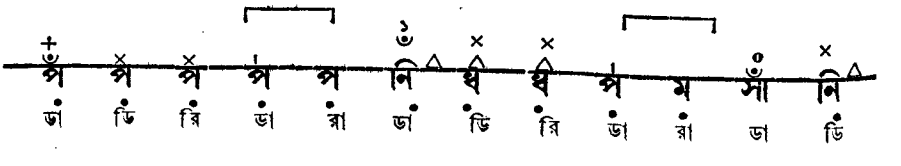
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা ডি

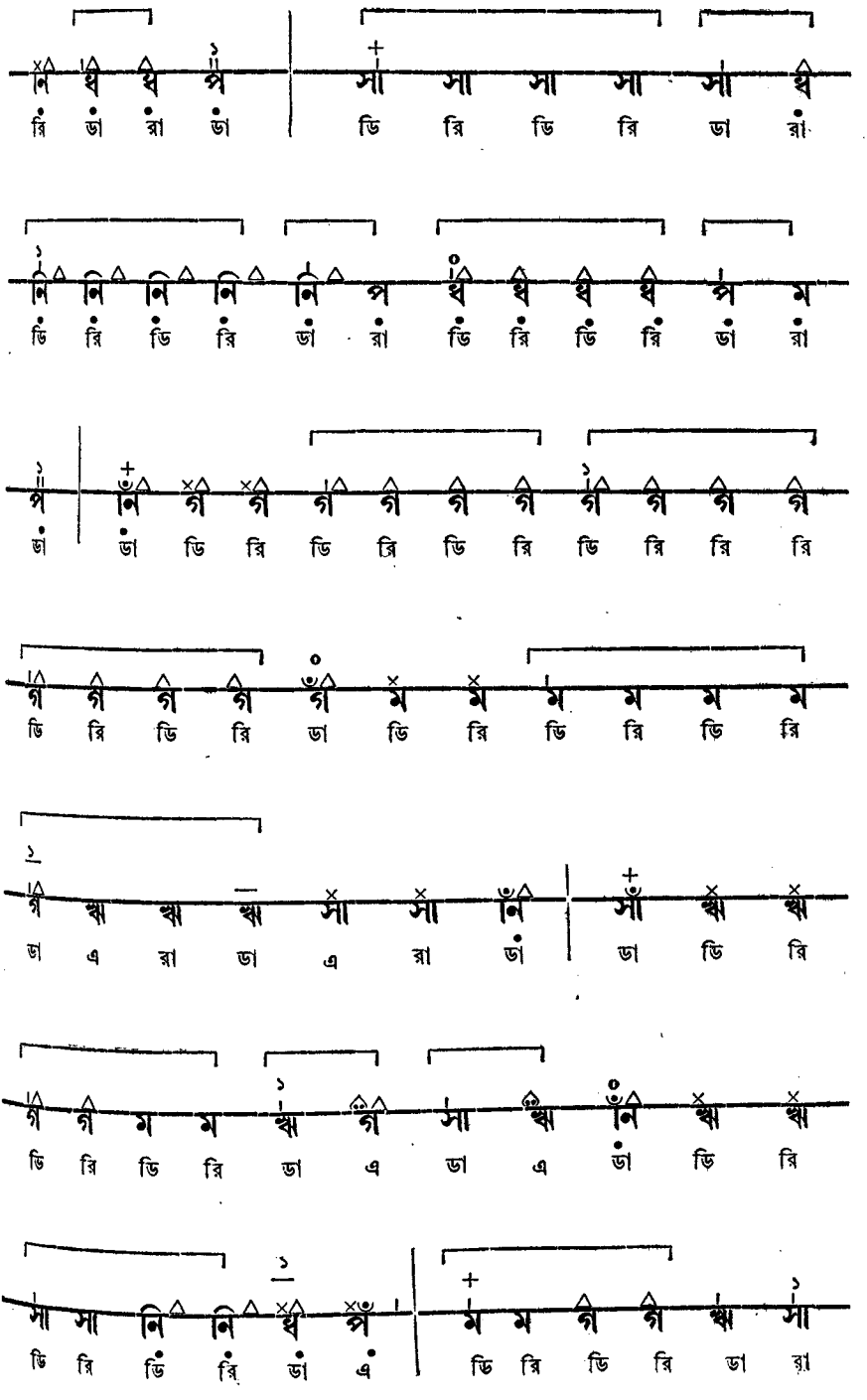
নি ধ ধ প | সাঁ সা সা সা সা ধ
রি ডা রা ডা | ডি রি ডি রি ডা রা
নি নি নি নি নি প ধ ধ ধ ধ প ম
ডি রি ডি রি ডা রা ডি রি ডি রি ডা রা
প | নঁ গ গ গ গ গ গ গ গ গ গ
ডা | ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি রি রি
গ গ গ গ গ ম ম ম ম ম ম
ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডি রি ডি রি
গ ঋ ঋ ঋ সা সা নঁ | সাঁ ঋ ঋ
ডা এ রা ডা এ রা ডা | ডা ডি রি
গ গ ম ম ঋ গ সা ঋ নঁ ঋ ঋ
ডি রি ডি রি ডা এ ডা এ ডা ডি রি
সা সা নি নি ধ পঁ | ম ম গ গ ঋ সা
ডি রি ডি রি ডা এ | ডি রি ডি রি ডা রা

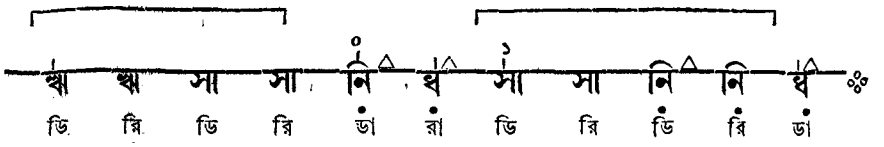

পূর্ব্বে স্পর্শ ও কৃন্তনের বিধি পৃথক্ পৃথক্ রূপে প্রকাশ করা গিয়াছে, এক্ষণে ঐ উভয় ক্রিয়া মিশ্রণ করিয়া কিরূপে সাধিতে হইবে, তাহা স্পষ্ট বুঝান যাইতেছে। গৎ কিম্বা রাগাদির আলাপে উক্ত ক্রিয়া প্রায় সর্ব্বদাই হইয়া থাকে।

স্পর্শ-কৃন্তন।

পূর্ব্ব-কথিত রীত্যনুসারে তর্জ্জনী চাপিত কোন স্বরে আঘাতানন্তর মধ্যম অঙ্গুলী দ্বারা পরের সারিকা স্পর্শ করিয়া সেই স্পৃষ্ট সারিকার স্বর ঐ মধ্যমাঙ্গুলী দ্বারা কাটিয়া লওয়াকে স্পর্শ-কৃন্তন বলে। যে স্বরে স্পর্শ-কৃন্তন হইবে তাহার উপর এইরূপ "A" চিহ্ন দেওয়া হইবে। স্পর্শ-কৃন্তন-স্থলে স্পর্শের একটী সূক্ষ্ম স্বর এবং কর্ত্তন জন্য পূর্ব্ব-সারিকার আর একটী স্বর শ্রুত হইবে।

স্পর্শকৃন্তন-সাধন।

অনুলোম।

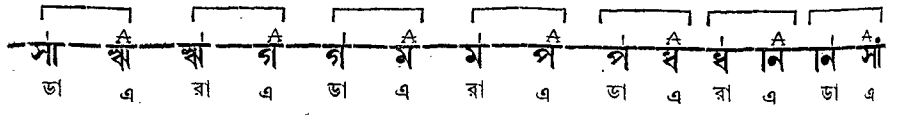

বিলোম।

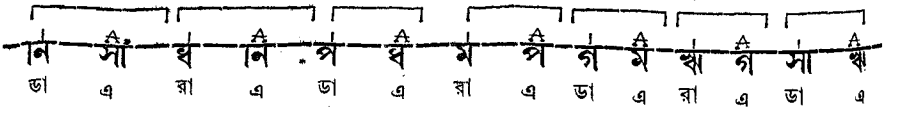

অনুলোম।

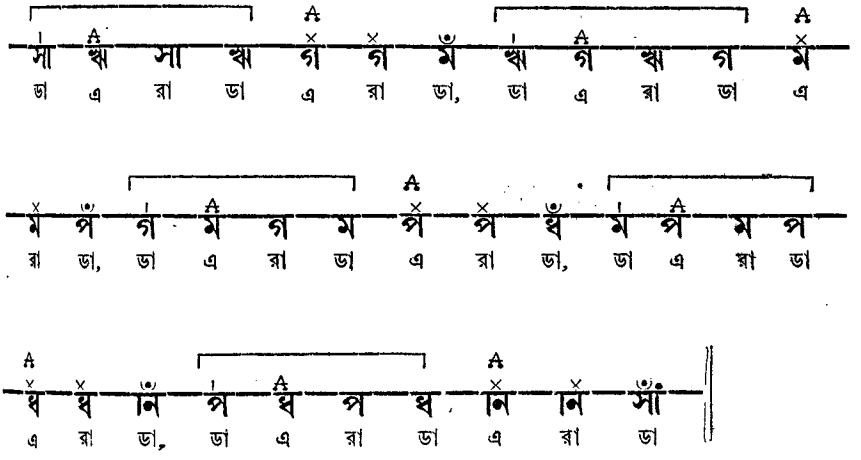

বিলোম।

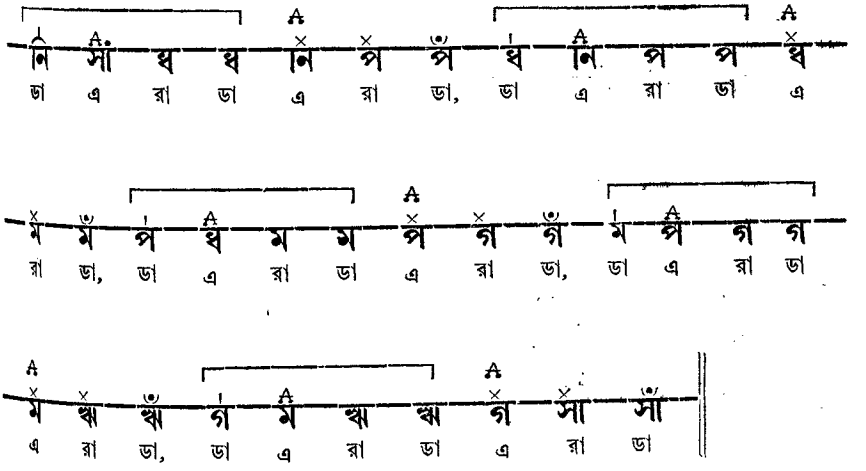

অনুলোম।

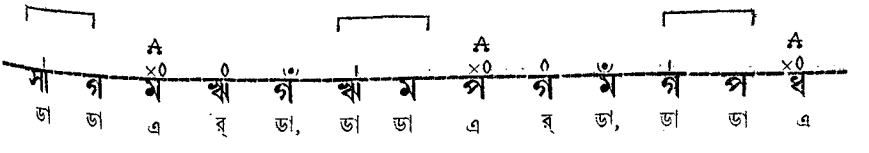

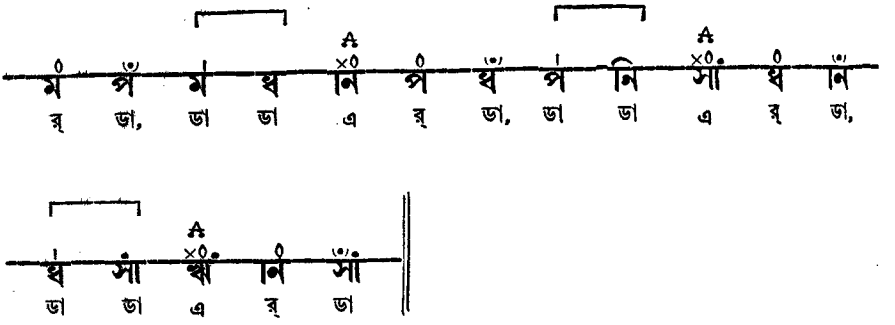
ম প ম ধ নি প ধ প নি সাঁ ধ নি
র্ ডা, ডা ডা এ র্ ডা, ডা ডা এ র্ ডা,
ধ সাঁ ঋঁ নি সাঁ
ডা ডা এ র্ ডা

বিলোম।

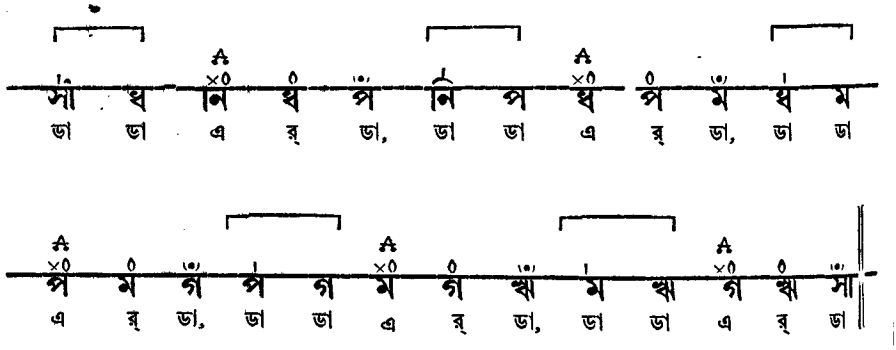
সাঁ ধ নি ধ প নি প ধ প ম ধ ম
ডা ডা এ র্ ডা, ডা ডা এ র্ ডা, ডা ডা
প ম গ প গ ম গ ঋ ম ঋ গ ঋ সা
এ র্ ডা, ডা ডা এ র্ ডা, ডা ডা এ র্ ডা

অনুলোম।

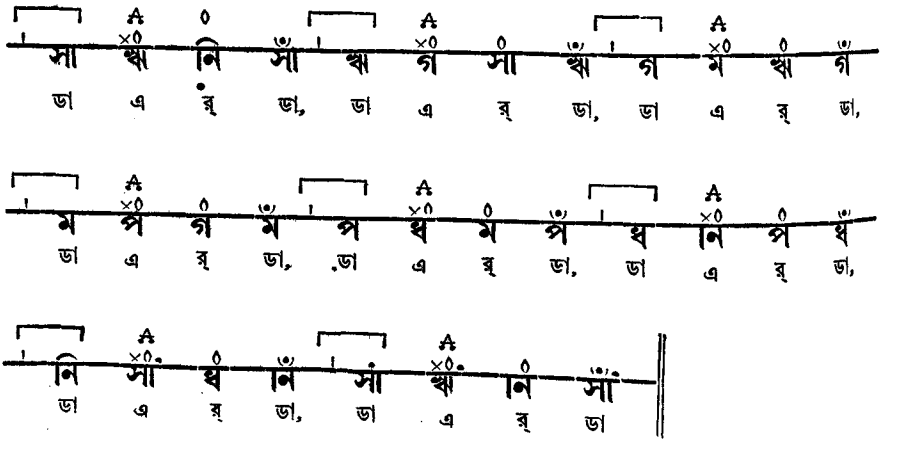
সা ঋ নি সাঁ ঋ গ সা ঋ গ ম ঋ গ
ডা এ র্ ডা, ডা এ র্ ডা, ডা এ র্ ডা,
ম প গ ম প ধ ম প ধ নি প ধ
ডা এ র্ ডা, ডা এ র্ ডা, ডা এ র্ ডা,
নি সাঁ ধ নি সাঁ ঋঁ নি সাঁ
ডা এ র্ ডা, ডা এ র্ ডা

বিলোম।

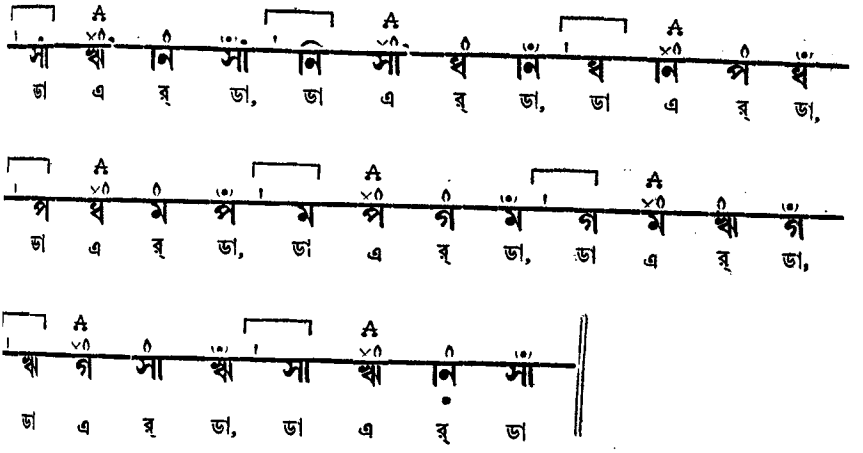

(৩১)

সিন্ধু-ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(গ ধ নি)

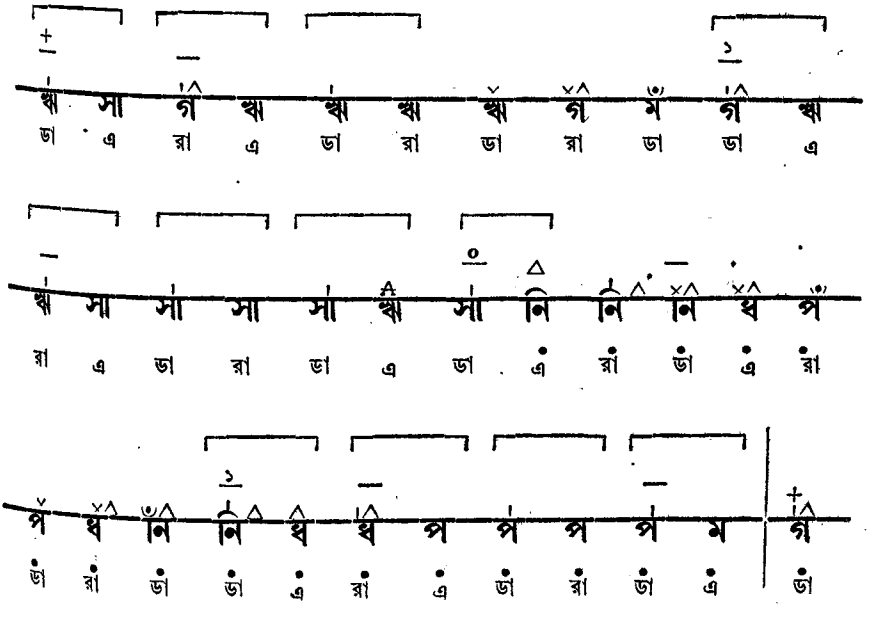

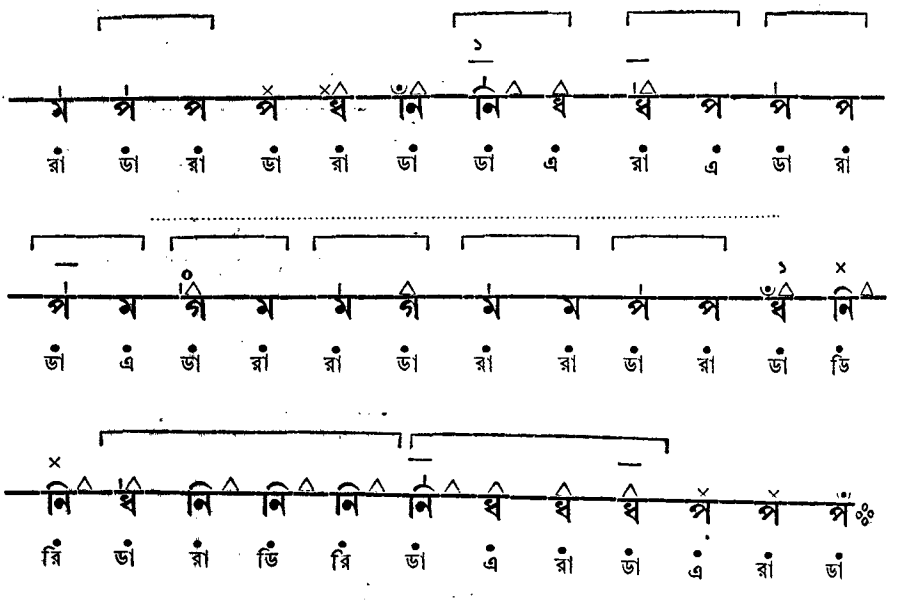

(৩২)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

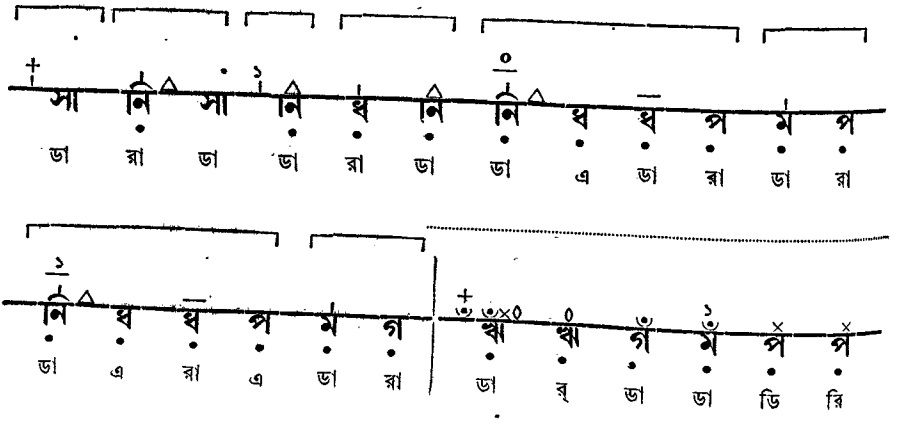

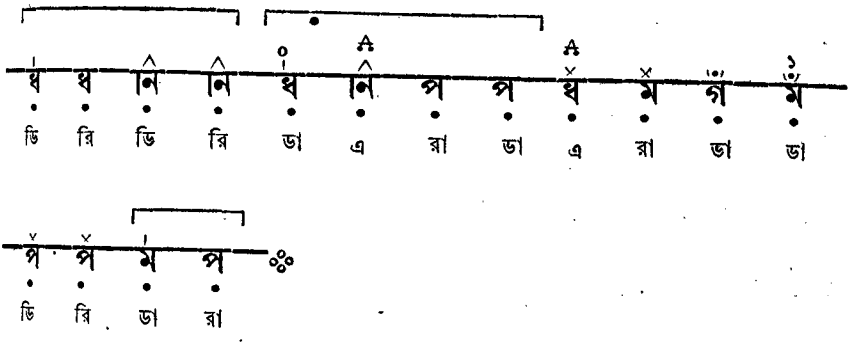

(৩৩)

মিশ্র-বারোঁয়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ)

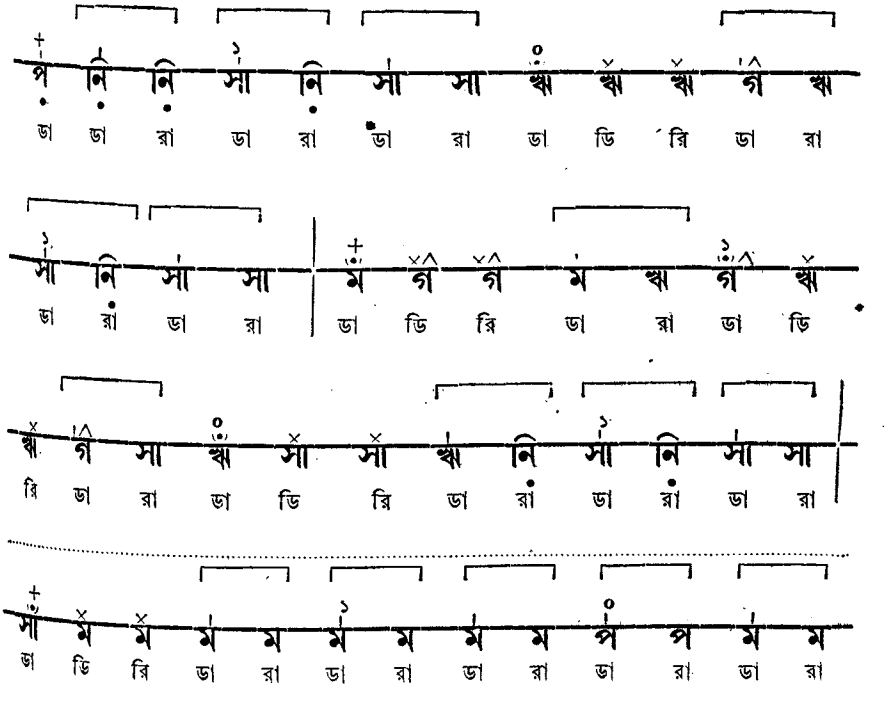

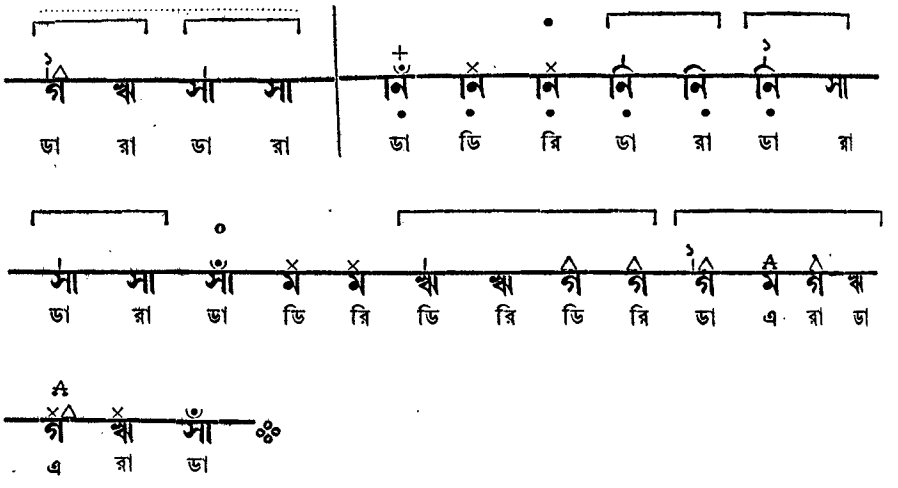

(৩৪)

মিশ্র-বেহাগ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

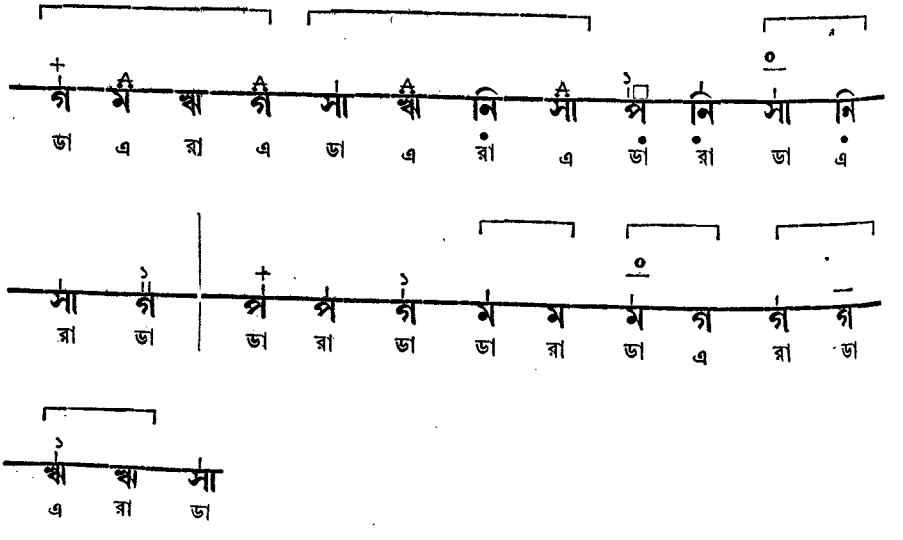

অন্তরা।

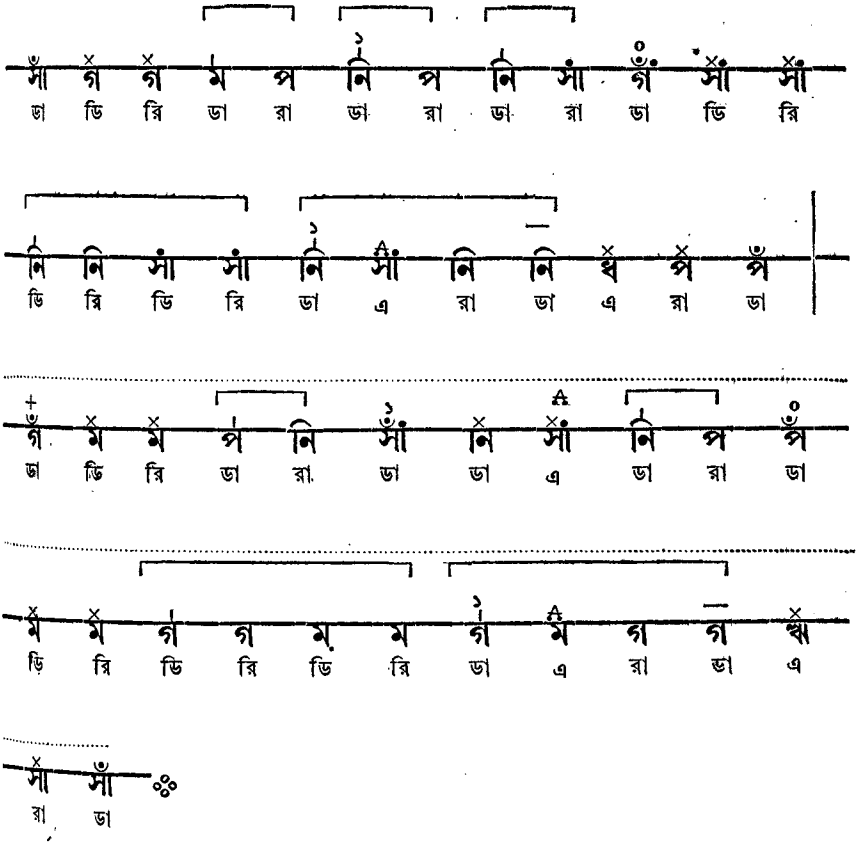

(৩৫)

পুরবী—সম্পূর্ণ।

একতালা।

(ঋ ম)

আস্থায়ী।

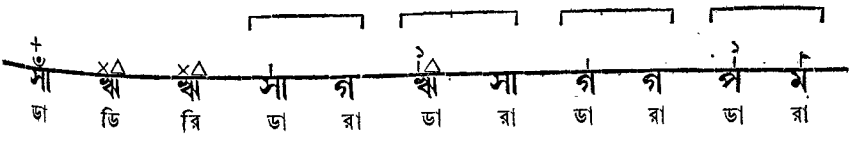

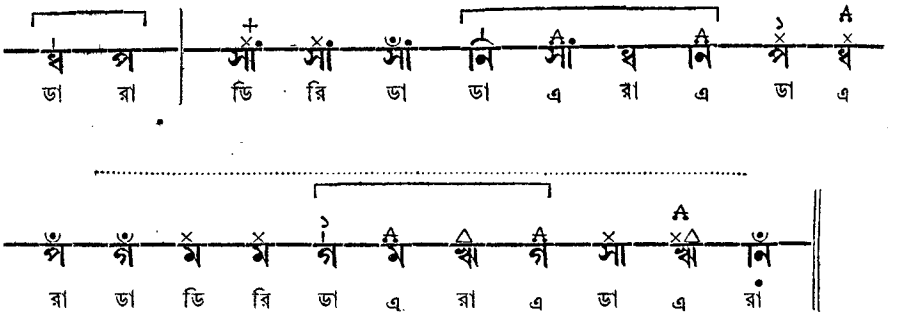

অন্তরা।

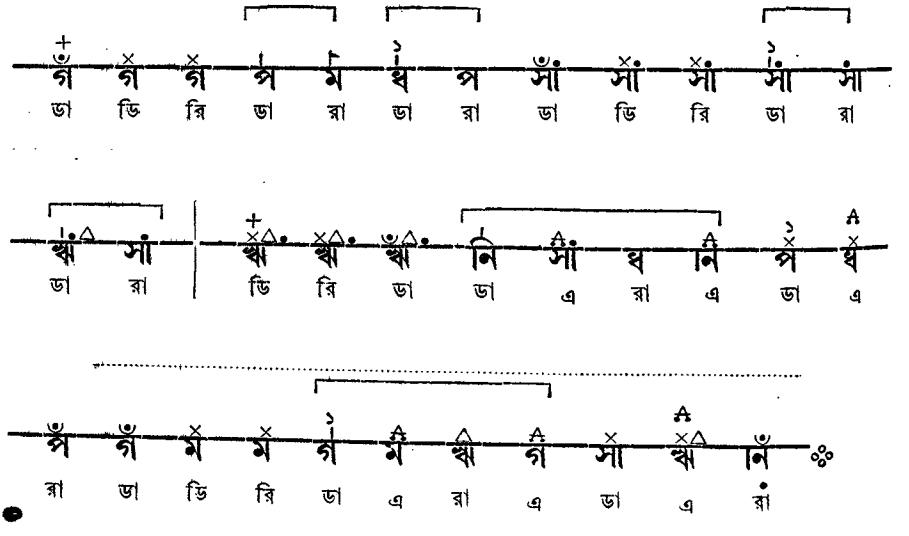

(৩৬)

ইম্নি—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

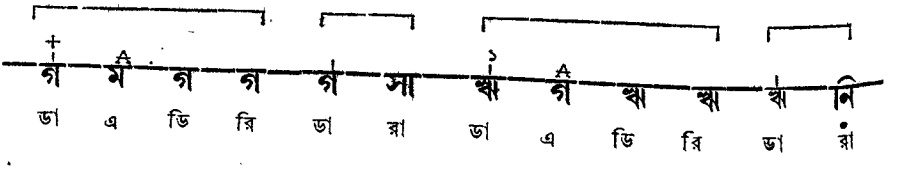

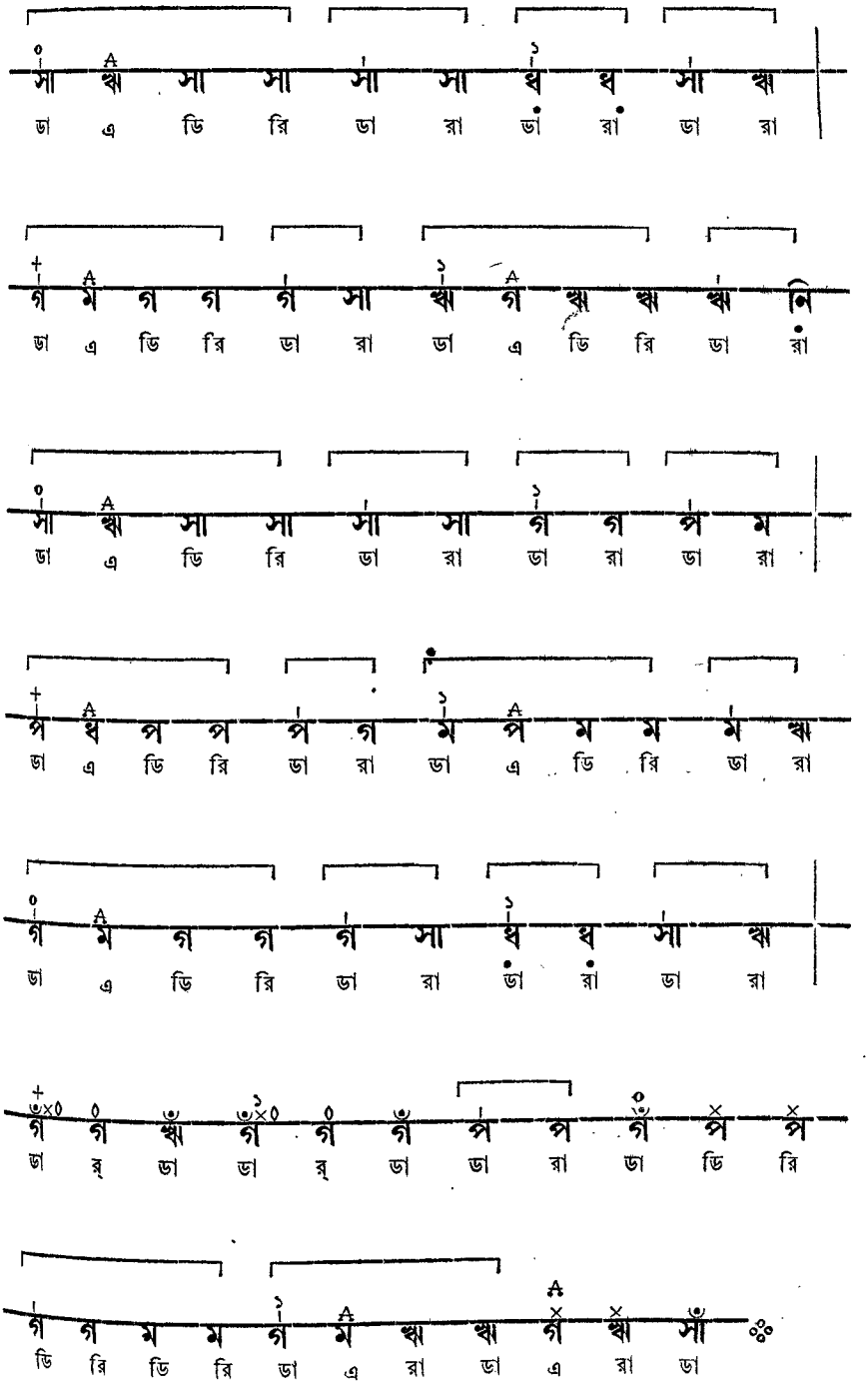
সা ঋ সা সা সা সা ধ ধ সা ঋ
ডা এ ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা
গ ম গ গ গ সা ঋ গ ঋ ঋ ঋ নি
ডা এ ডি রি ডা রা ডা এ ডি রি ডা রা
সা ঋ সা সা সা সা গ গ প ম
ডা এ ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা
প ধ প প প গ ম প ম ম ম ঋ
ডা এ ডি রি ডা রা ডা এ ডি রি ডা রা
গ ম গ গ গ সা ধ ধ সা ঋ
ডা এ ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা
গ গ ঋ গ গ গ প প গ প প
ডা র্ ডা ডা র্ ডা ডা রা ডা ডি রি
গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ গ ঋ সাঁ
ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা এ রা ডা

(৩৭)

ঝিঁঝিট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

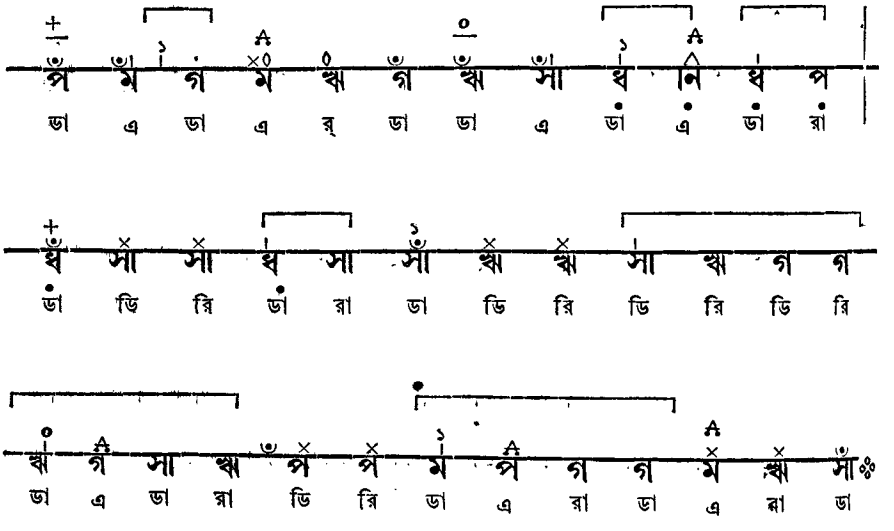

(৩৮)

লুম-ঝিঁঝিট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

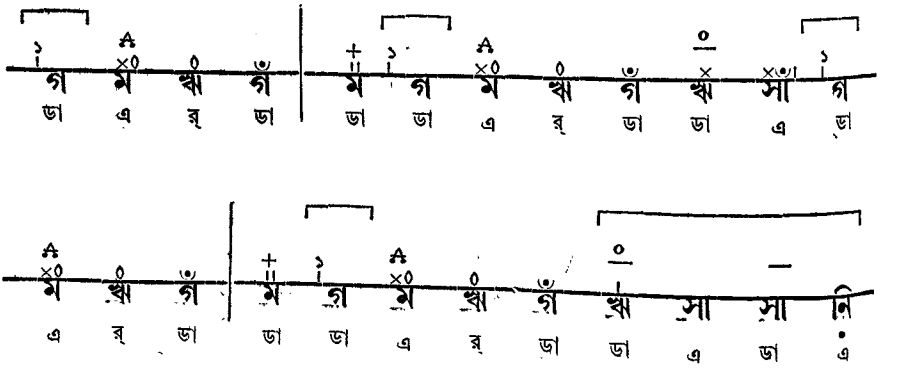

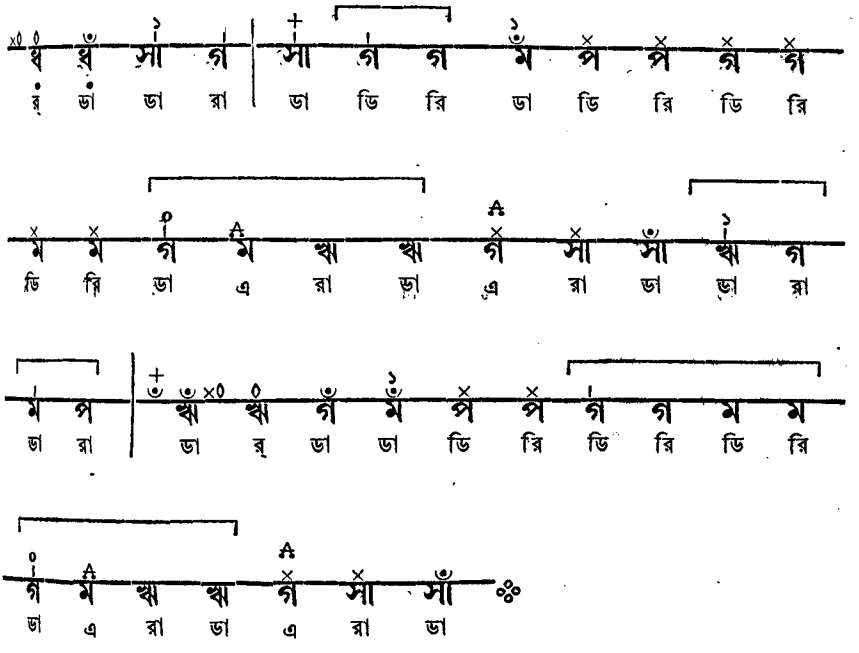

(৩৯)

সোহিনী—খাড়ব *।

মধ্যমান।

(ঋ)

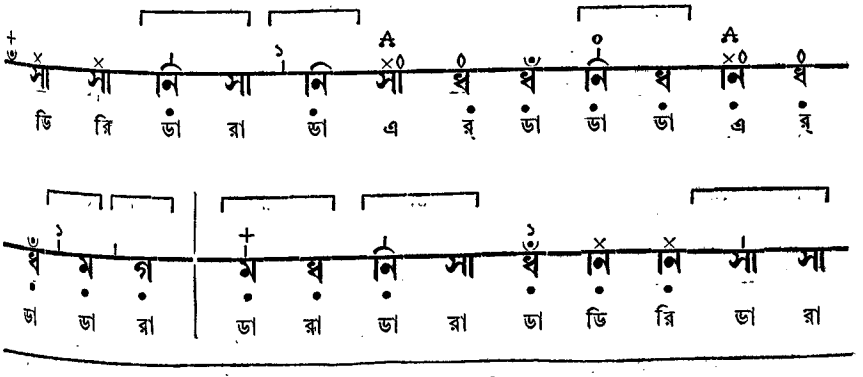

* ইহার পঞ্চম বিবাদী।

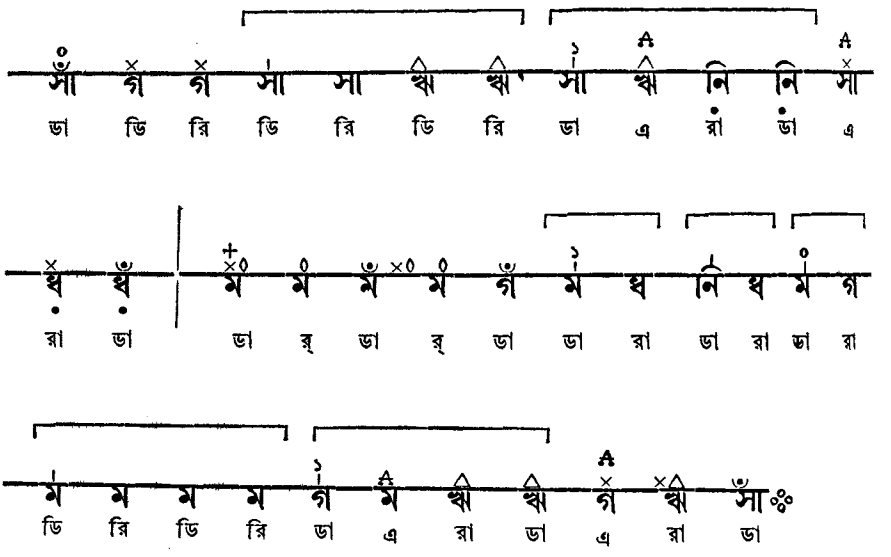

(৪০)

ঝিঝিট-খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

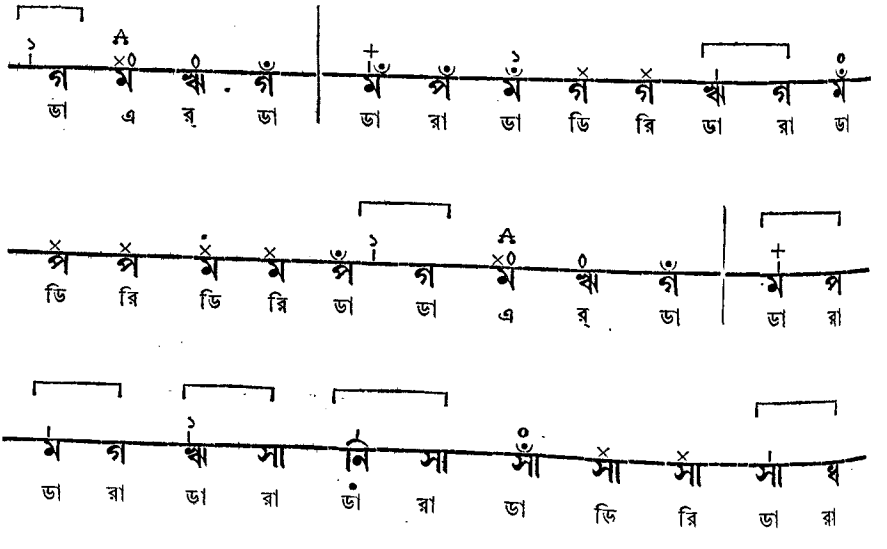

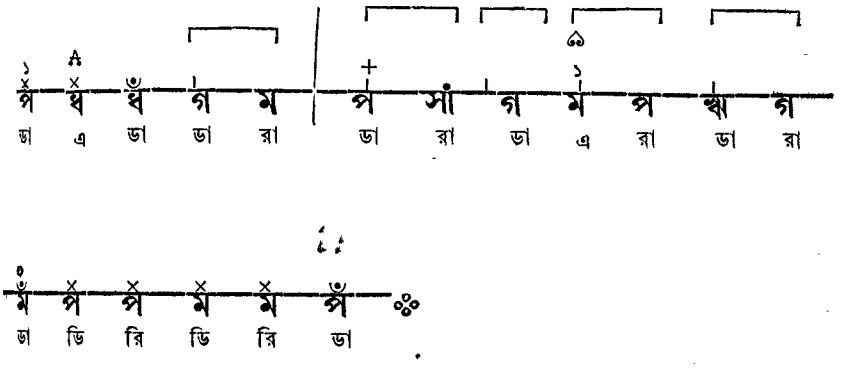
ডা এ ডা ডা রা ডা রা ডা এ রা ডা রা
ডা ডি রি ডি রি ডা

বিস্তার।

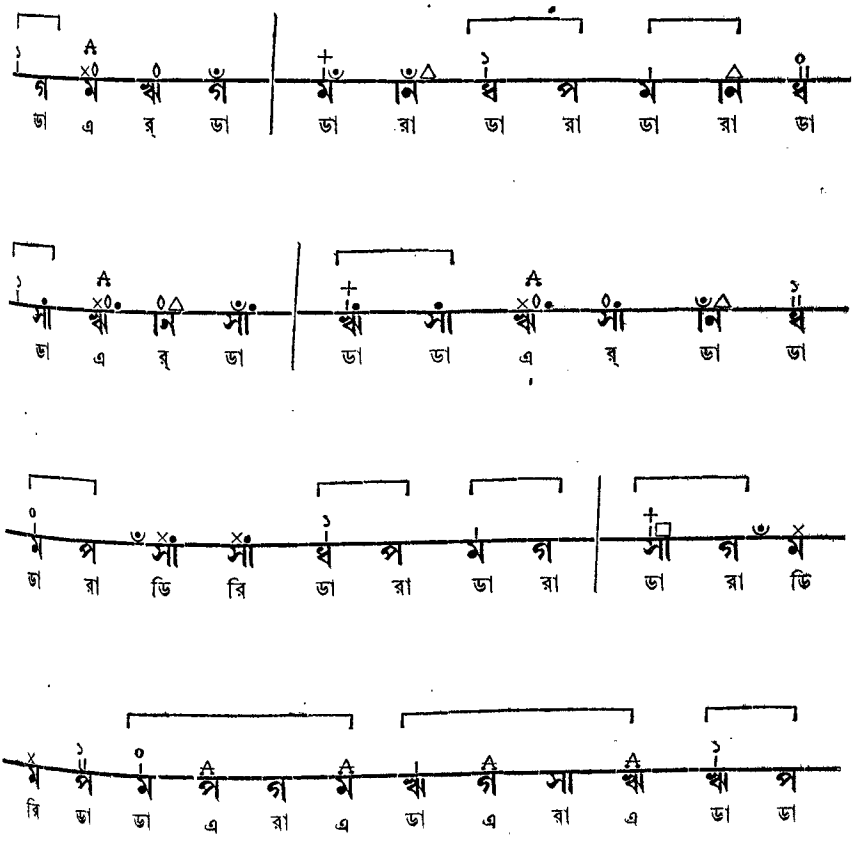
ডা এ র্ ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডা এ র্ ডা ডা ডা এ র্ ডা ডা
ডা রা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডি
রি ডা ডা এ রা এ ডা এ রা এ ডা ডা

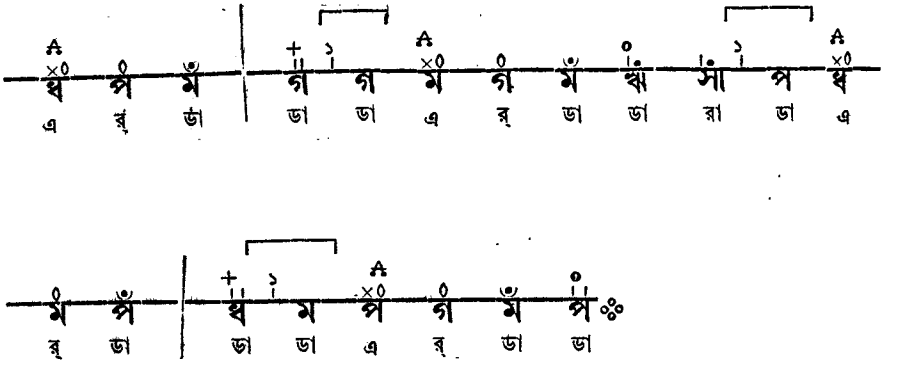

বিক্ষেপ এবং প্রক্ষেপ।

কোন একটী স্বরে আঘাত করিয়াই সেই স্বর হইতে এক, দুই বা ততোঽধিক স্বর ব্যবধানে বামহস্তের অঙ্গুলীর ঘর্ষণযোগে অবিচ্ছেদে ঊর্দ্ধগতিতে যাওয়ার নাম বিক্ষেপ; বিক্ষেপের এইরূপ " > " কোণ চিহ্ন নির্দ্দিষ্ট আছে, বিক্ষেপযোগে যে স্বরে যাইতে হইবে, তাহার মস্তকে ঐ চিহ্ন থাকিবে। উক্ত নিয়মে অধোগতিতে যাওয়ার নাম প্রক্ষেপ, প্রক্ষেপস্থলে ঐ কোণ চিহ্ন এইরূপ " < " বিপরীতভাবে ব্যবহৃত হইবে। বিক্ষেপ-প্রক্ষেপ-স্থলে দুইটী মাত্র স্বর প্রকাশ পায়, তন্মধ্যে প্রথমটী আঘাতে দ্বিতীয়টী অঙ্গুলীর ঘর্ষণে উৎপন্ন হয়। মধ্যের স্বরগুলি অপ্রকাশ থাকে।

বিক্ষেপ এবং প্রক্ষেপ।

বিক্ষেপ সাধন।

অনুলোম।

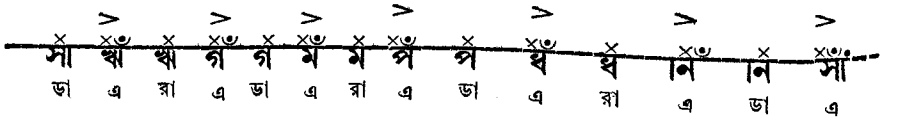

বিলোম।

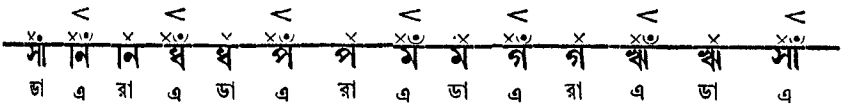

মিশ্রসাধন।

অনুলোম।

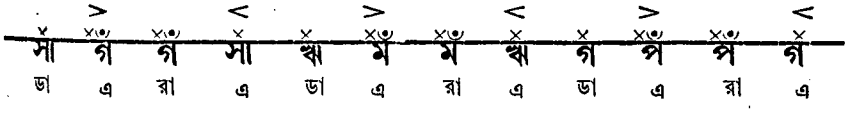

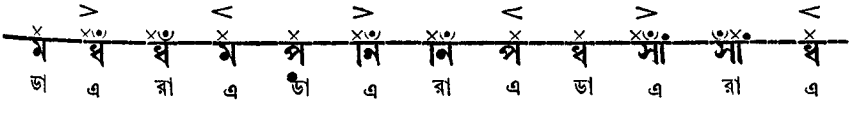

বিলোম।

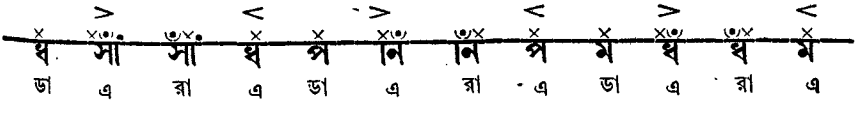

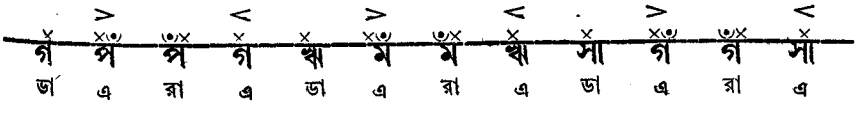

অনুলোম।

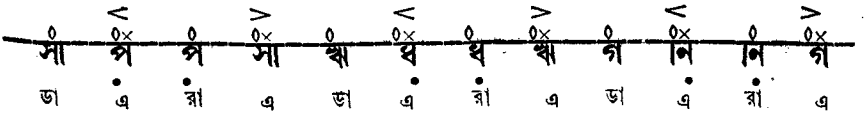

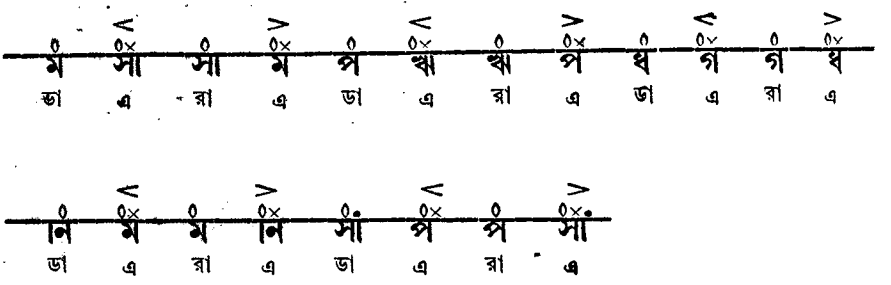

বিলোম।

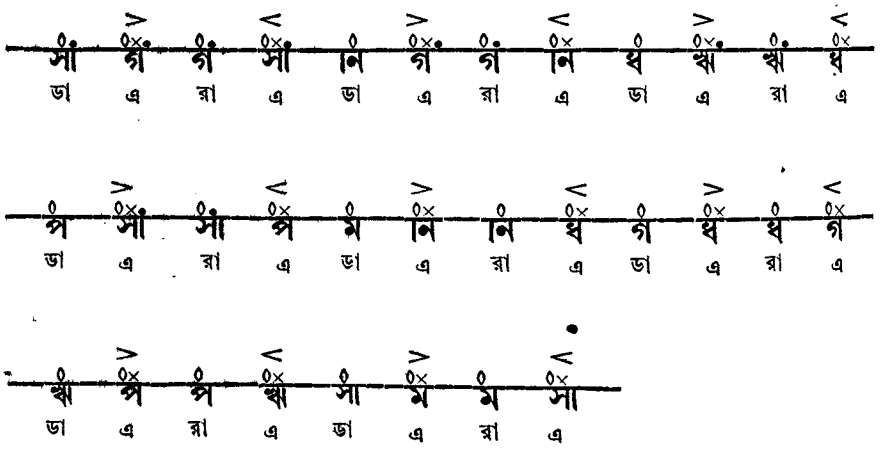

(৪১)

ছায়ানট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

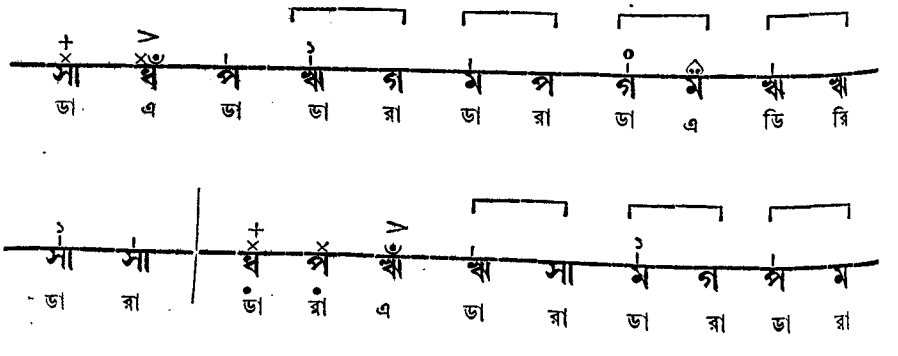

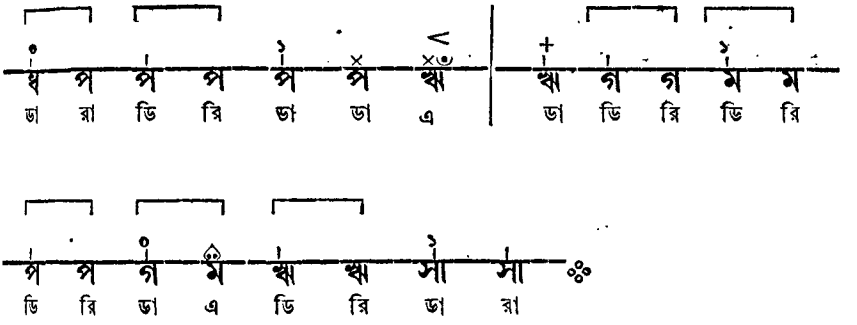

(৪২)

ললিত—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ)

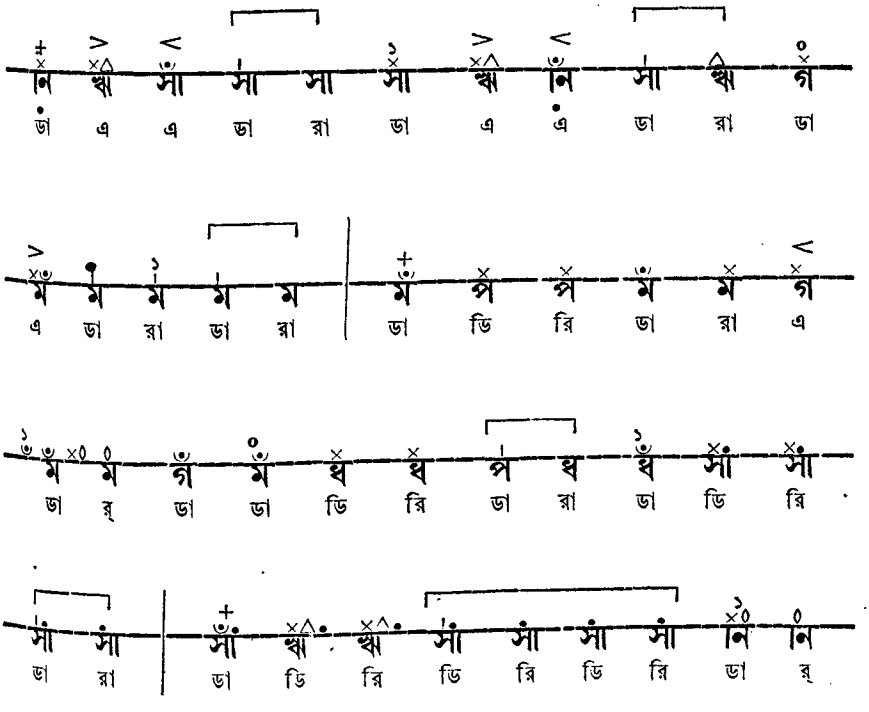

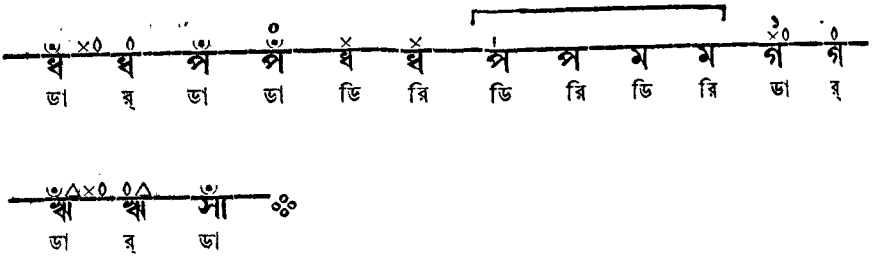

(৪৩)

ভূপালী—খাড়ব।

শ্লথ-ত্রিতালী।

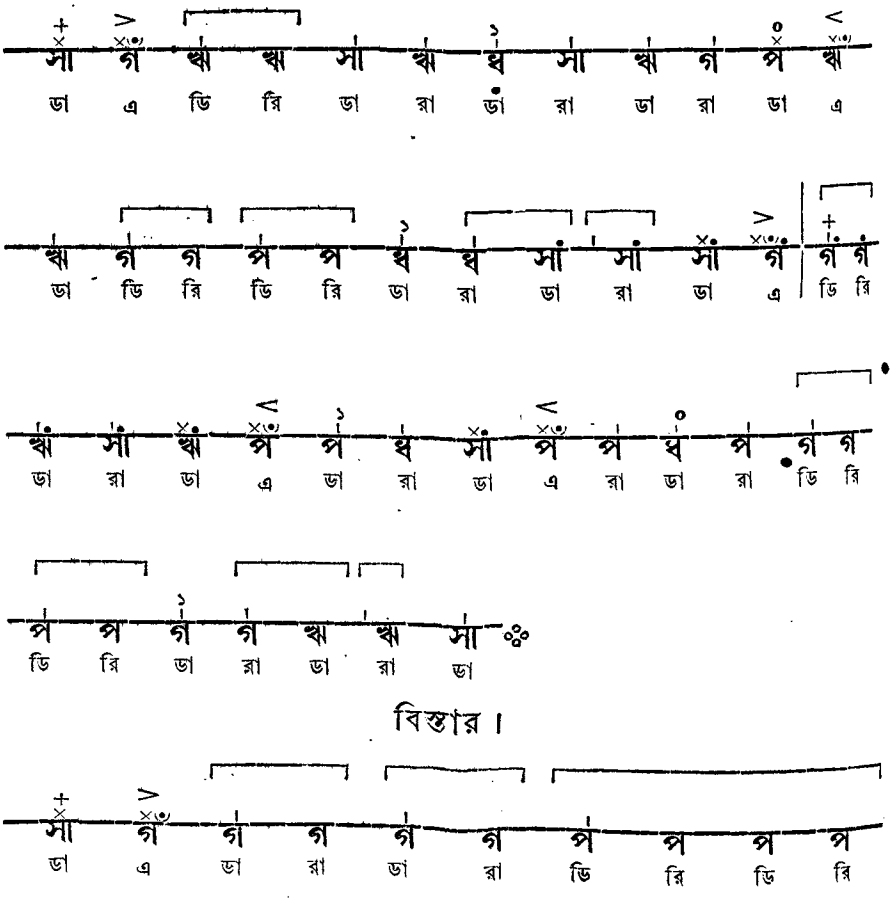

বিস্তার।

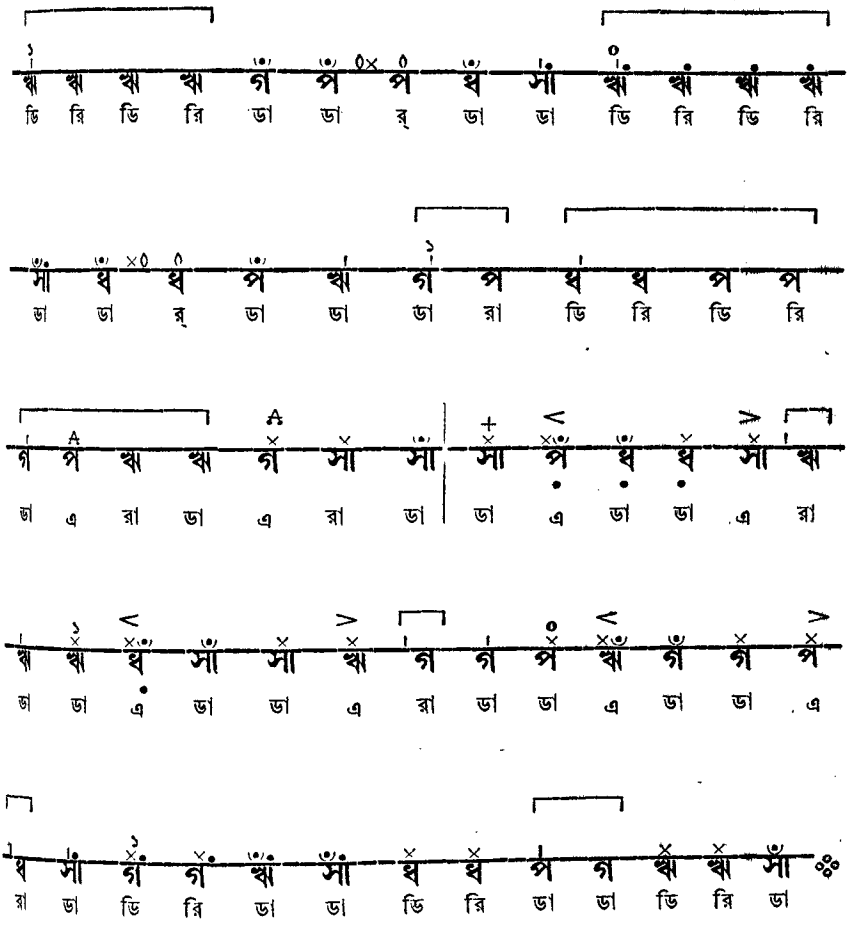
ডি রি ডি রি ডা ডা র্ ডা ডা ডি রি ডি রি
ডা ডা র্ ডা ডা ডা রা ডি রি ডি রি
গ প ঋ ঋ গ সা সা সা প ধ ধ সা ঋ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা এ ডা ডা এ রা
ঋ ঋ ধ সা সা ঋ গ গ প ঋ গ গ প
ডা ডা এ ডা ডা এ রা ডা ডা এ ডা ডা এ
ধ সা গ গ ঋ সা ধ ধ প গ ঋ ঋ সা
রা ডা ডি রি ডা ডা ডি রি ডা ডা ডি রি ডা

গমক।

স্বরকম্পনের নাম গমক, কোন স্বরকে কম্পিত করিতে হইলে তারে আঘাত দিয়াই সেই তার সারিকার উপর মৃদুভাবে ঘর্ষণ করিতে হয়। গমকের এই প্রকার "ო" গজকুম্ভাকৃতি চিহ্ন নির্দ্দিষ্ট আছে, কম্পনের সংখ্যানুসারে এই চিহ্ন ব্যবহার করিতে হইবে, অর্থাৎ যতবার কম্পনের আবশ্যক, ততগুলি উক্ত চিহ্ন কম্পনীয় স্বরের উপরে স্থাপন করা কর্ত্তব্য।

গমক-সাধন।

অনুলোম ও বিলোম।

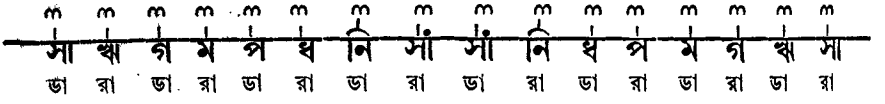

অনুলোম ও বিলোম।

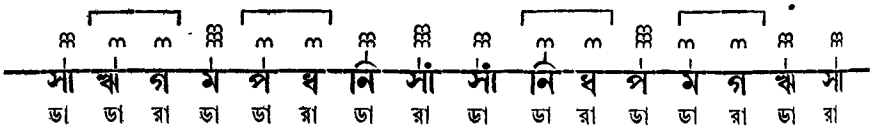

(৪৪)

পরজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ম ধ)

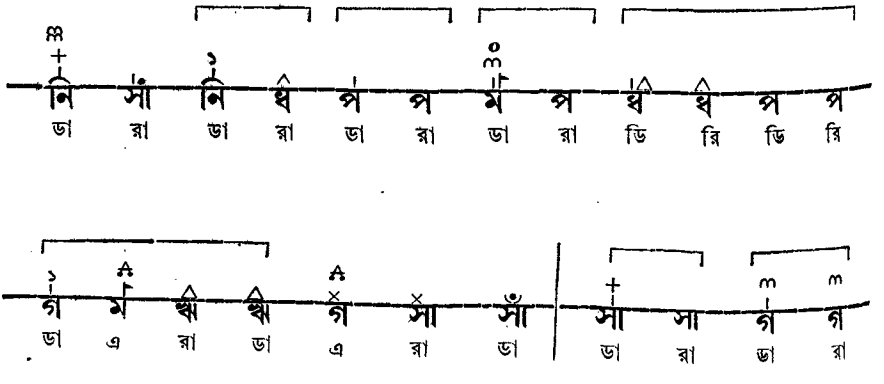

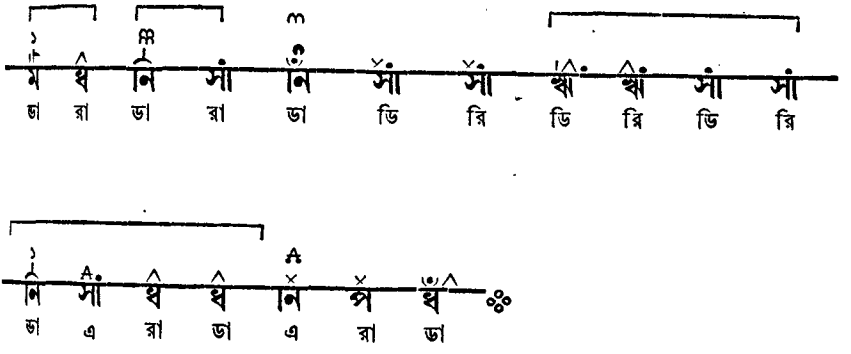

(৪৫)

ভৈরবী*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

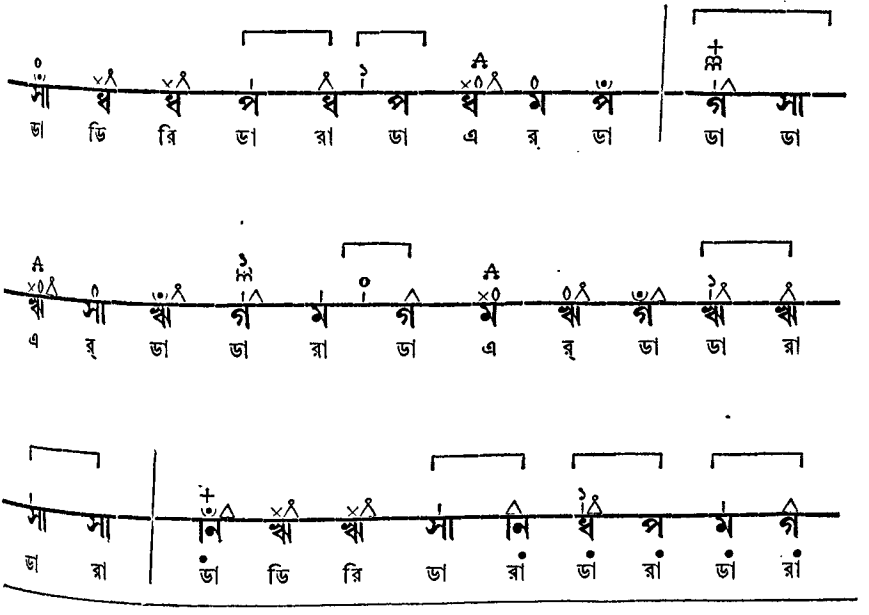

* ওস্তাদ্‌জী লছমীপ্রসাদ হইতে প্রাপ্ত।

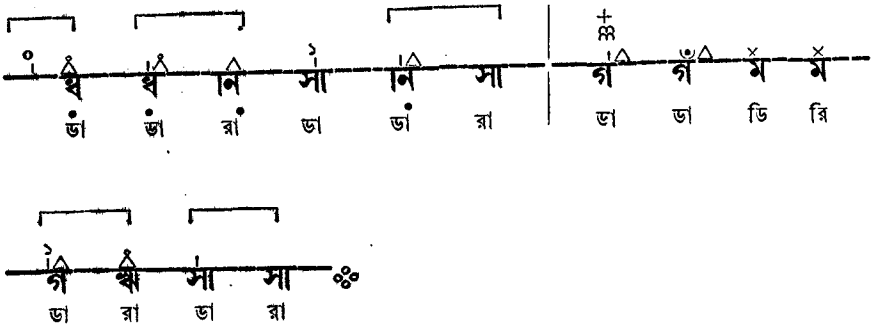

(৪৬)

ইমন্—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(ম)

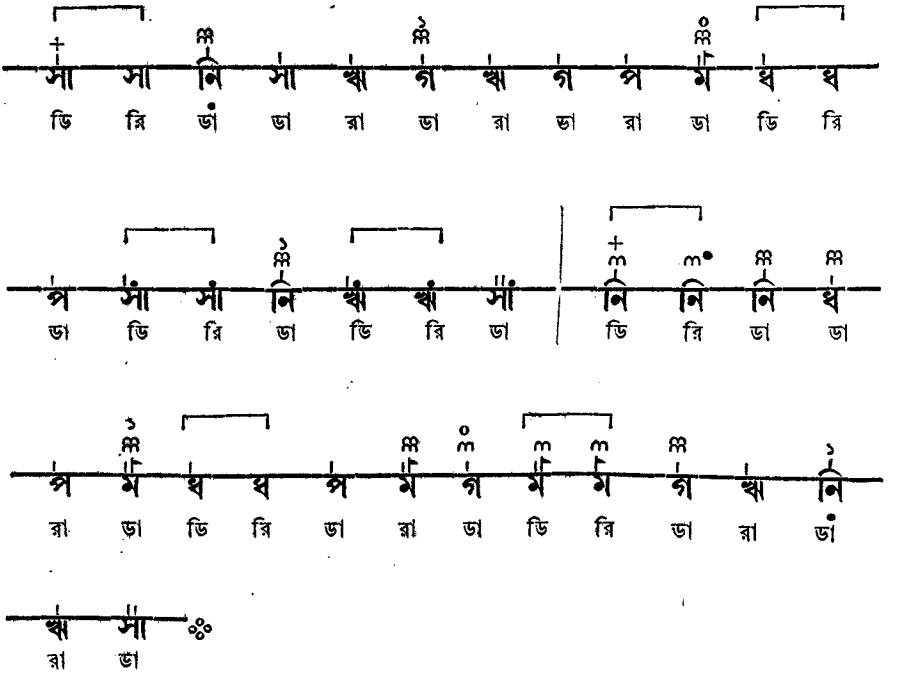

(৪৭)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

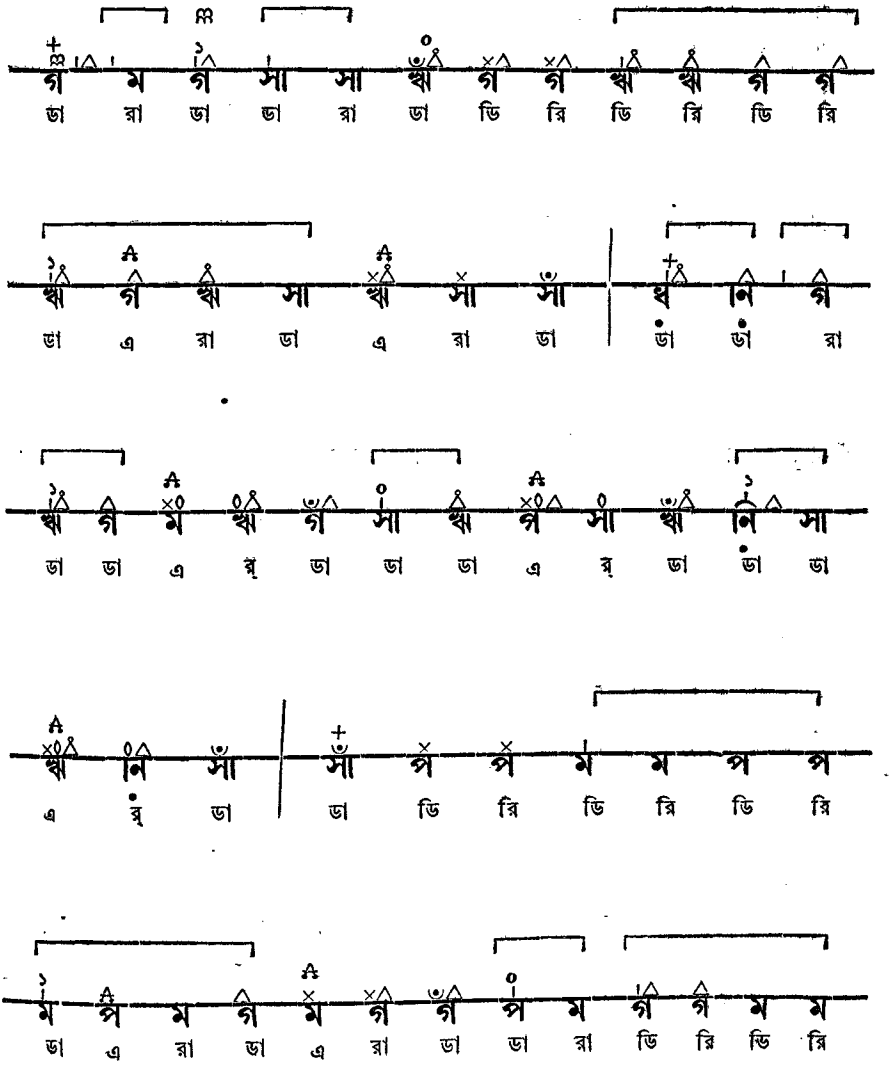
গ ম গ সা সা ঋঁ গ গ ঋ ঋ গ গ
ডা রা ডা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ঋ গ ঋ সা ঋ সা সাঁ ধ নি গ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা ডাঁ রা
ঋ গ ম ঋ গ সা ঋ গ সা ঋ নি সা
ডা ডা এ র্ ডা ডা ডা এ র্ ডা ডা ডা
ঋ নি সাঁ সাঁ প প ম ম প প
এ র্ ডা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ম প ম গ ম গ গ প ম গ গ ম ম
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা রা ডি রি ডি রি

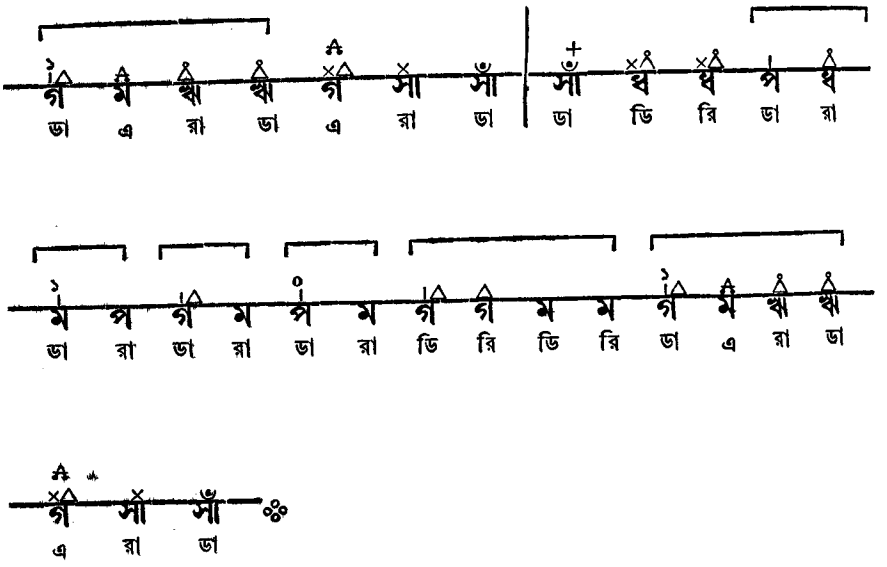
গ ম ঋ ঋ গ সা সাঁ | সাঁ ধ ধ প ধ
ডা এ রা ডা এ রা ডা | ডা ডি রি ডা রা
ম প গ ম প ম গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা
গ সা সাঁ
এ রা ডা

বিস্তার।

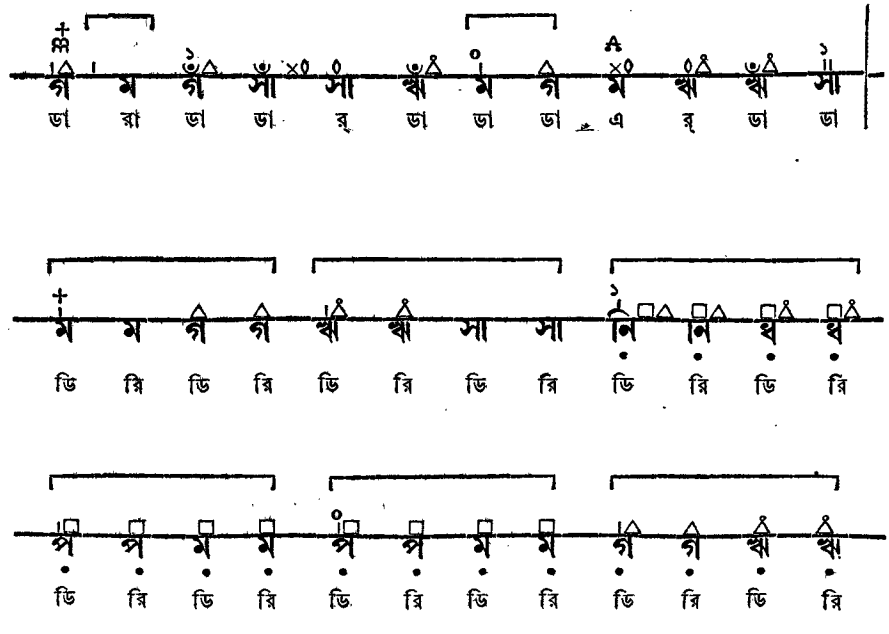
গ ম গ সাঁ সা ঋ ম গ ম ঋ ঋ সা
ডা রা ডা ডা র্ ডা ডা ডা এ র্ ডা ডা
ম ম গ গ ঋ ঋ সা সা নি নি ধ ধ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
প প ম ম প প ম ম গ গ ঋ ঋ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

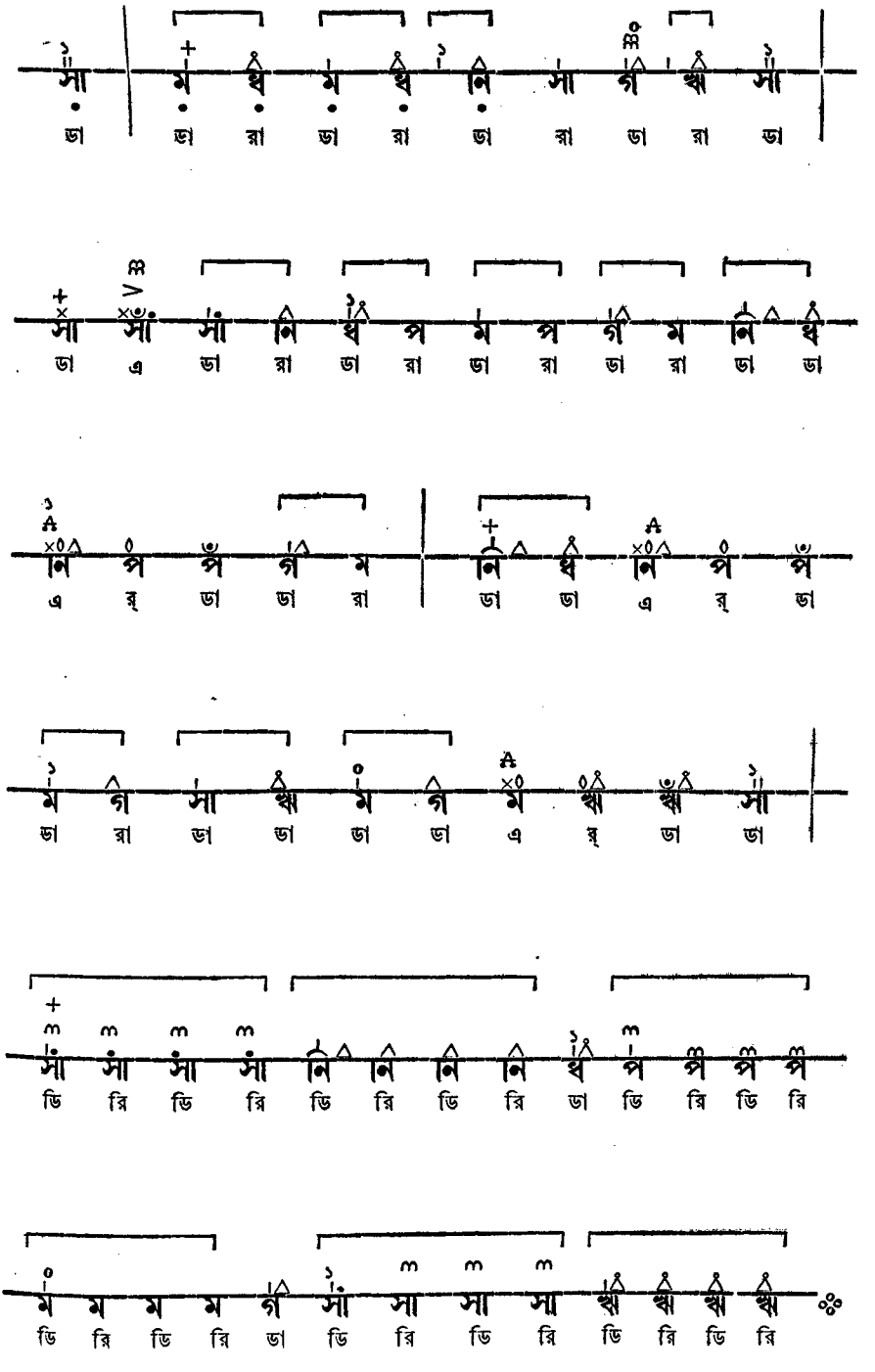
সা ম ধ ম ধ নি সা গ ঋ সা
ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
সা সাঁ সাঁ নি ধ প ম প গ ম নি ধ
ডা এ ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা
নি প পঁ গ ম নি ধ নি প পঁ
এ র্ ডা ডা রা ডা ডা এ র্ ডা
ম গ সা ঋ ম গ ম ঋ ঋ সা
ডা রা ডা ডা ডা ডা এ র্ ডা ডা
সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি নি নি নি ধ প প প প
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডি রি
ম ম ম ম গ সাঁ সা সা সা ঋ ঋ ঋ ঋ
ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

ঘর্ষণ বা আশ।

কোন সারিকায় তার চাপিয়া আঘাতানন্তর সেই আঘাতজনিত অণুরণন থাকিতে থাকিতে বামহস্তের অঙ্গুলীর ঘর্ষণযোগে এক বা ততোঽধিক স্বরে ক্রমান্বয়ে যাওয়ার নাম ঘর্ষণ বা আশ। আশযোগে যে স্বর হইতে যে স্বর পর্য্যন্ত যাইতে হইবে, তন্মধ্যবর্ত্তী প্রত্যেক স্বরের সূক্ষ্ম অণুরণন প্রকাশ পাইবে। বিক্ষেপ এবং প্রক্ষেপের ন্যায় আশেরও অনুলোম ও বিলোম হইয়া থাকে, বিশেষের মধ্যে বিক্ষেপ প্রক্ষেপের স্থলে মধ্যবর্ত্তী স্বরগুলি অপ্রকাশ থাকে, ইহার স্বরগুলি প্রকাশ পায়। আশের এইরূপ "———" সরল রেখা চিহ্ন নির্দ্দিষ্ট আছে, এই চিহ্নটী আশযুক্ত স্বরগুলির নিম্নে থাকিবে এবং যে সকল স্বর আশ-যোগে প্রকাশ পাইবে, তাহার নীচে এক একটী শূন্য দেওয়া যাইবে।

আশ-সাধন।

অনুলোম।

সাঁ	ঋ	ঋ	গ	গ	ম	ম	প	প	ধ	ধ	নি	নি	সাঁ
ডা	০	রা	০	ডা	০	রা	০	ডা	০	রা	০	ডা	০

বিলোম।

সাঁ	নি	নি	ধ	ধ	প	প	ম	ম	গ	গ	ঋ	ঋ	সা
ডা	০	রা	০	ডা	০	রা	০	ডা	০	রা	০	ডা	০

অনুলোম।

সাঁ	ঋ	গ	ঋ	গ	ম	গ	ম	প	ম	প	ধ	প	ধ	নি	ধ	নি	সাঁ
ডা	০	০	রা	০	০	ডা	০	০	রা	০	০	ডা	০	০	রা	০	০

বিলোম।

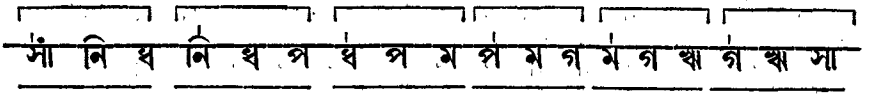

অনুলোম।

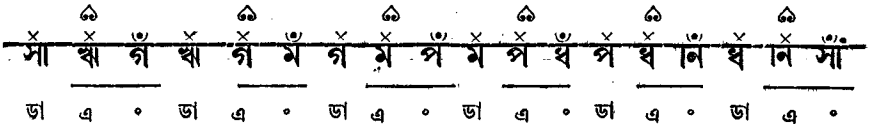

বিলোম।

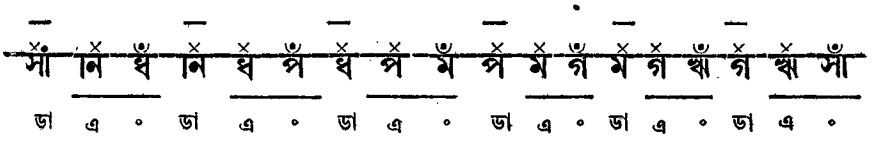

অনুলোম।

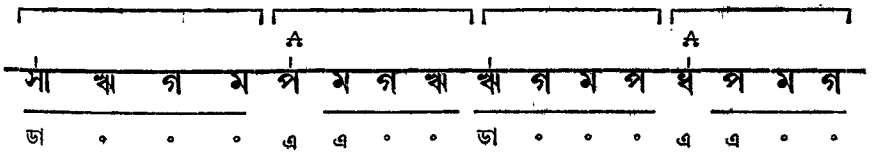

বিলোম।

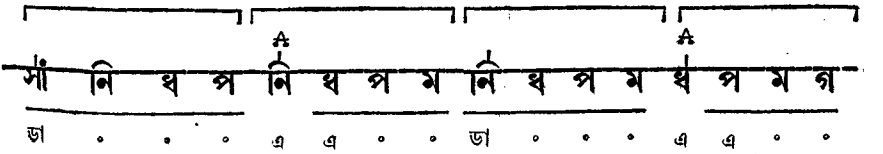

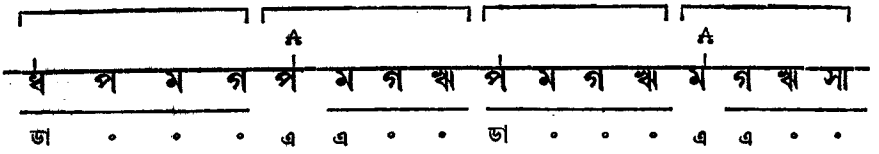

অনুলোম ও বিলোম।

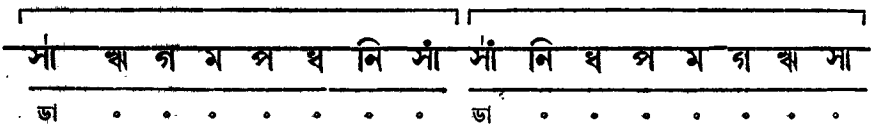

(৪৮)

সিন্ধুভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(~~গ ধ নি~~)

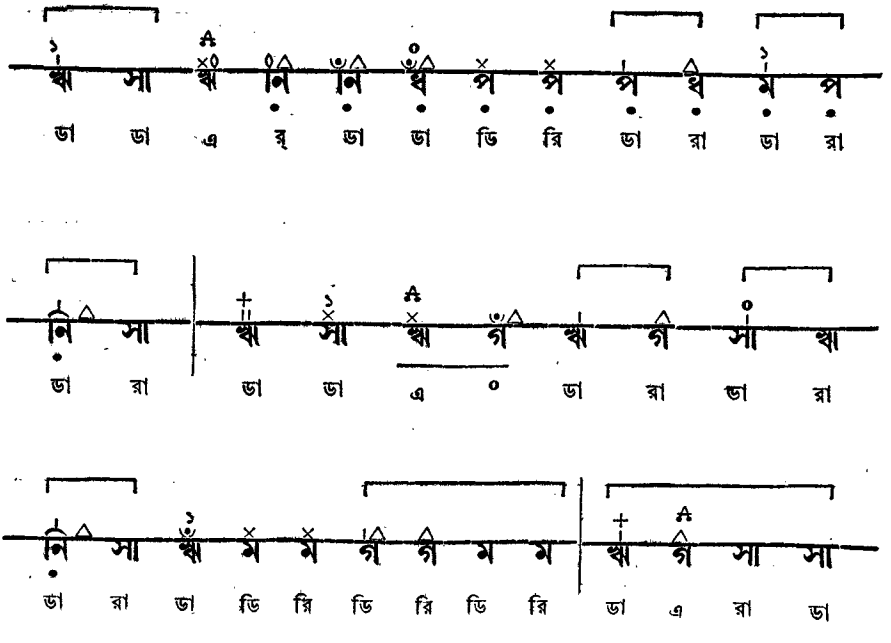

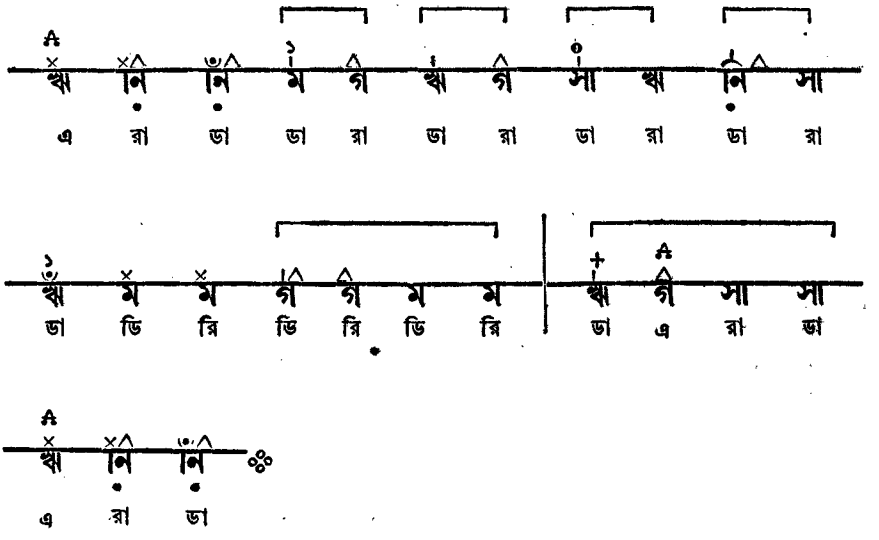

(৪৯)

ঝিঝিট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

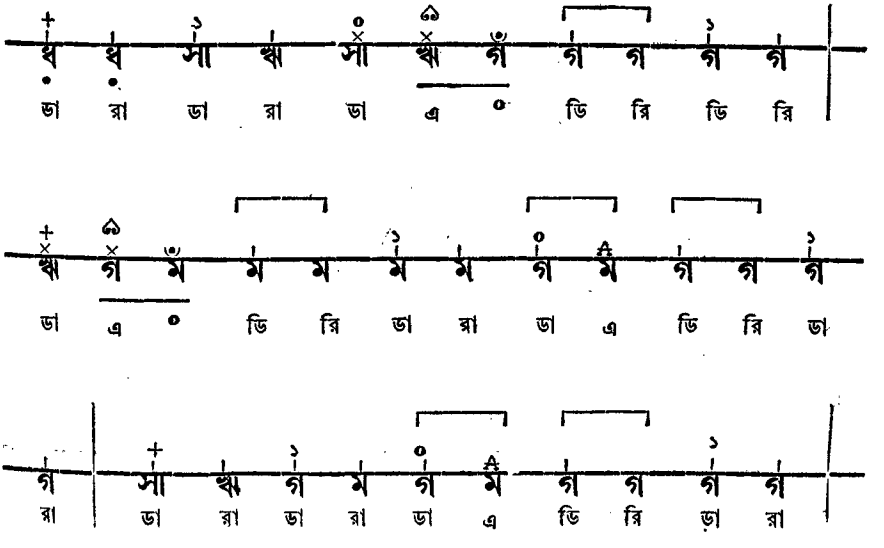

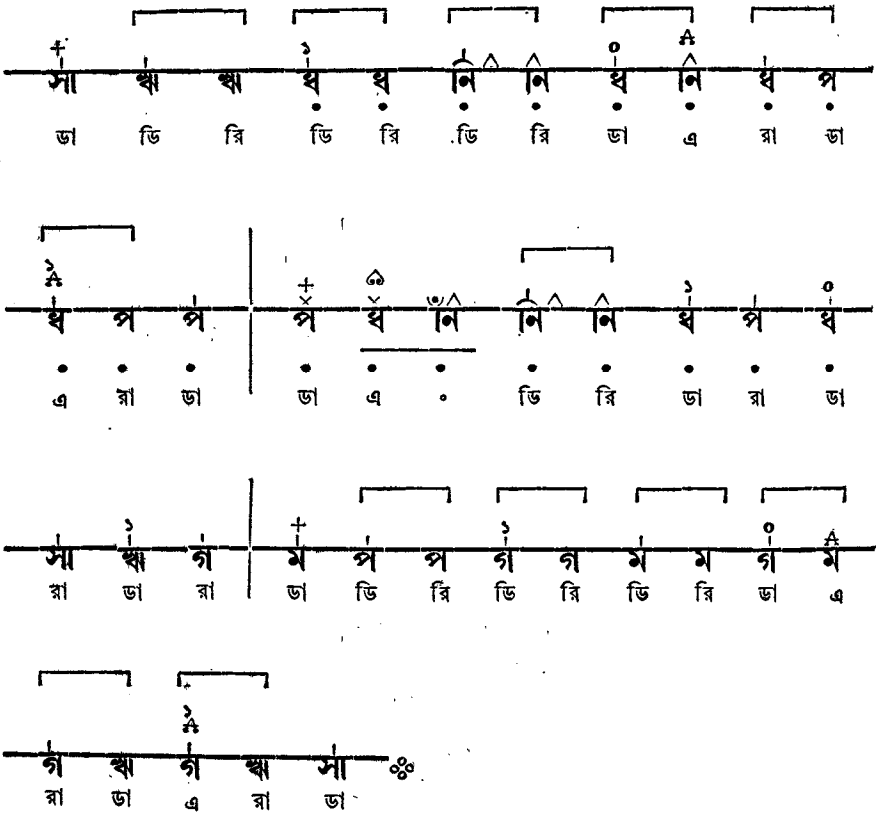

(৫০)

সিন্ধু—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

আস্থায়ী।

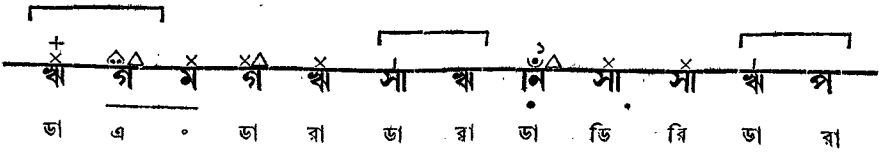

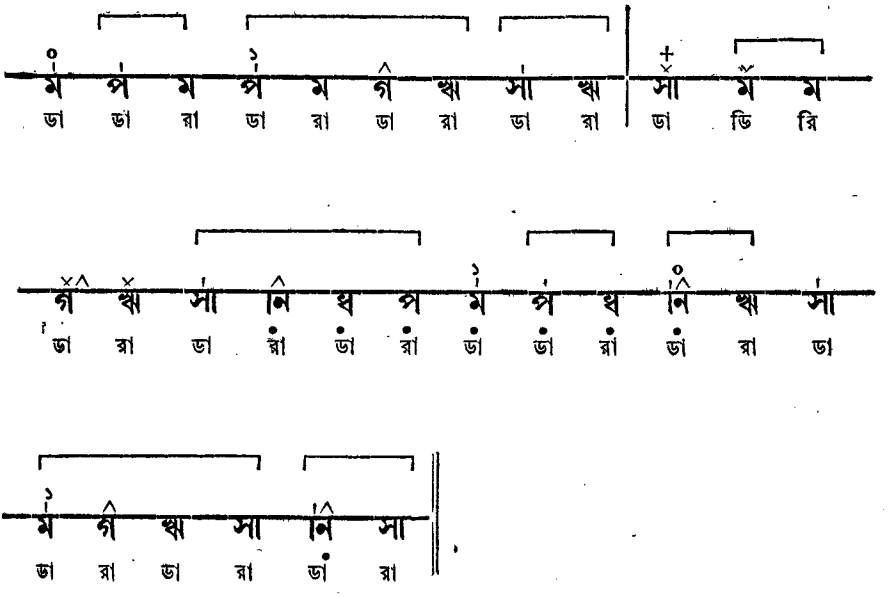
ম প ম প ম গ ঋ সা ঋ | সা ম ম
ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা | ডা ডি রি
গ ঋ সা নি ধ প ম প ধ নি ঋ সা
ডা রা ডা রাঁ ডা রাঁ ডা ডাঁ রাঁ ডাঁ রা ডা
ম গ ঋ সা নি সা
ডা রা ডা রা ডাঁ রা

অন্তরা।

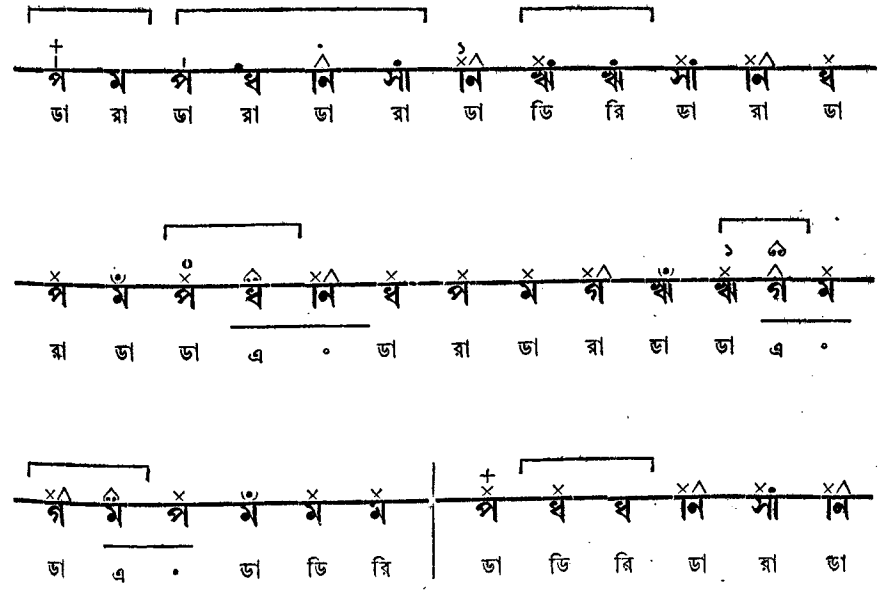
প ম প ধ নি সাঁ নি ঋঁ ঋঁ সাঁ নি ধ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
প ম প ধ নি ধ প ম গ ঋ ঋ গ ম
রা ডা ডা এ ০ ডা রা ডা রা ডা ডা এ ০
গ ম প ম ম ম | প ধ ধ নি সাঁ নি
ডা এ ০ ডা ডি রি | ডা ডি রি ডা রা ডা

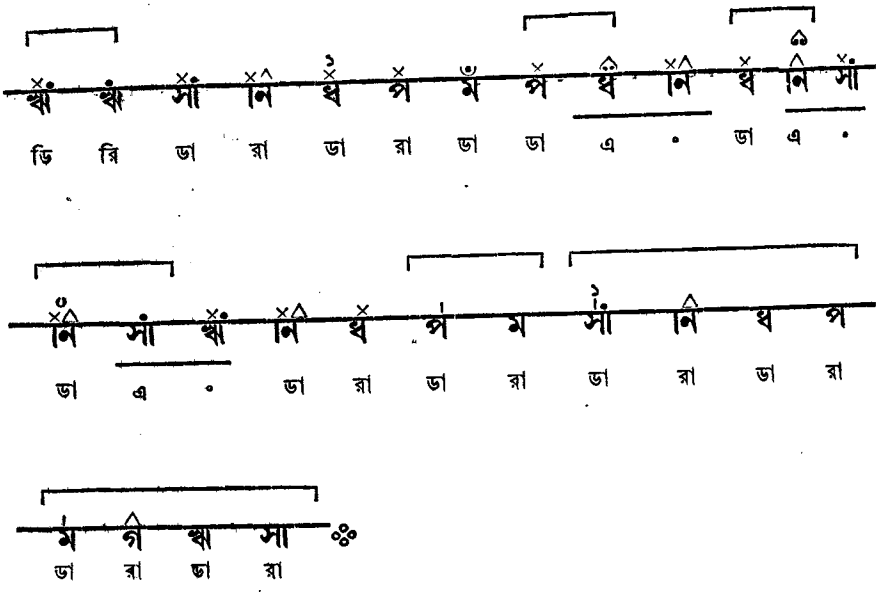

(৫১)

ইমন্—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(মঁ)

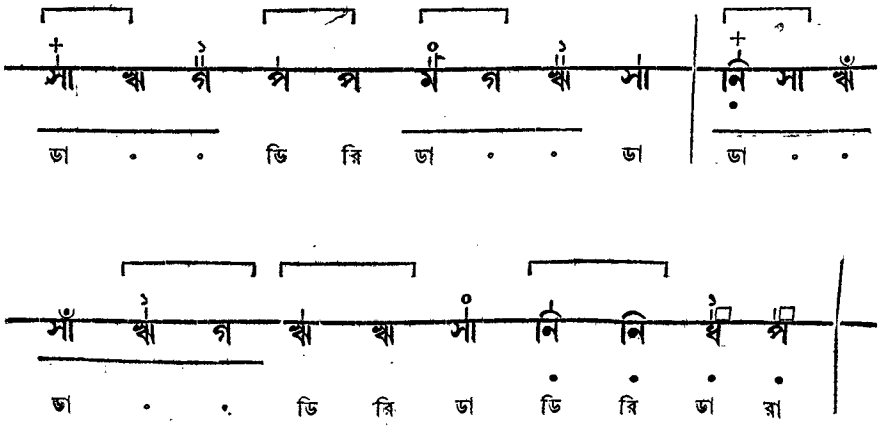

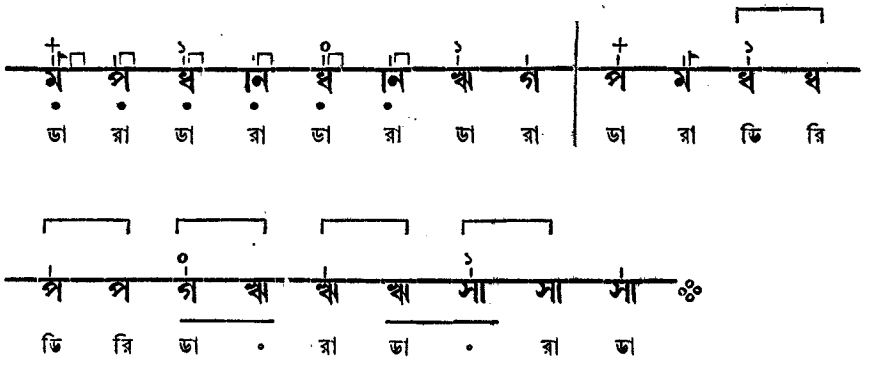
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি
ডি রি ডা রা ডা রা ডা

বিস্তার।

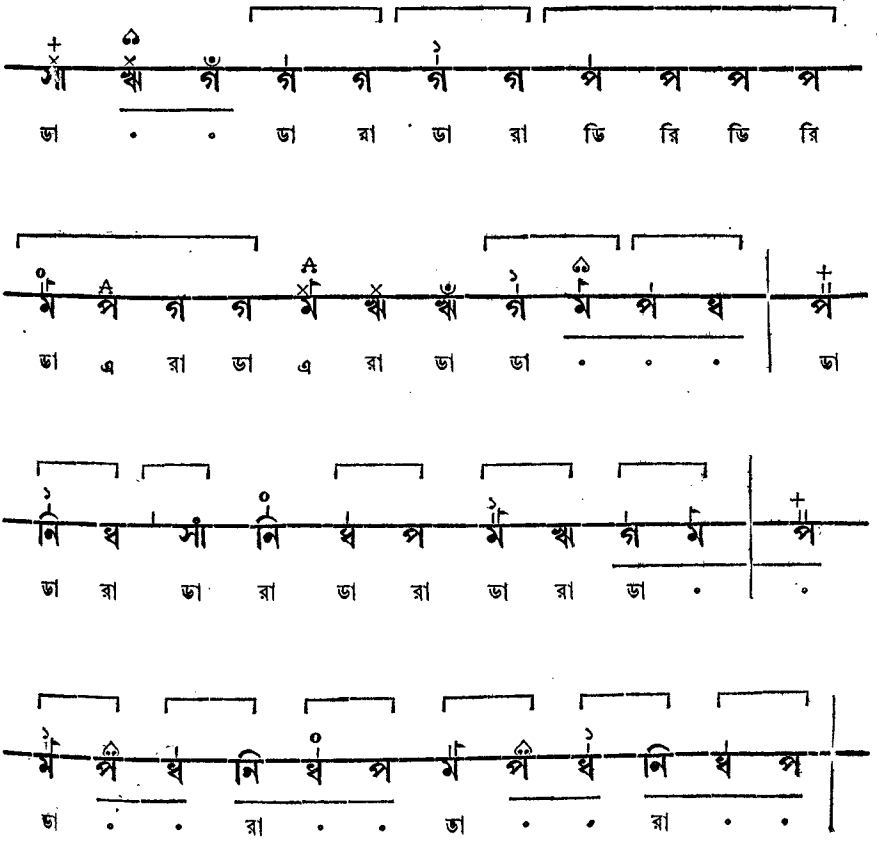
ডা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা ডা
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডা রা তা রা

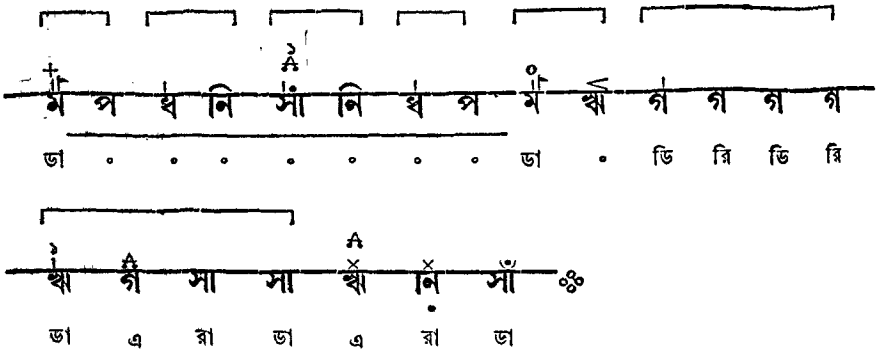

মূর্চ্ছনা।

বাম হস্তের তর্জ্জনী বা মধ্যমাঙ্গুলী দ্বারা যে কোন সারিকায় তার আকর্ষণ করিয়া অনুলোম বা বিলোম গতিতে পরের বা পূর্ব্ববর্ত্তী এক, দুই বা ততোঽধিক স্বর অবিচ্ছেদে প্রকাশ করার নাম মূর্চ্ছনা। মূর্চ্ছনা রাগাদির প্রধান অলঙ্কার স্বরূপ এবং ইহা দ্বারা রাগাদির যথেষ্ট বিস্তার ও শোভাবৃদ্ধি হয়। অনুলোমে আঘাতানন্তর আকর্ষণ, এবং বিলোমে অগ্রে আকর্ষণ পরে আঘাত হইবে, এই নিয়মটী স্মরণ রাখা কর্ত্তব্য। মূর্চ্ছনাস্থলে যে স্বর হইতে মূর্চ্ছনা আরম্ভ হয়, তাহার নিম্নে আঘাতের চিহ্ন এবং মূর্চ্ছনাযোগে প্রকাশিত স্বর বা স্বরসমূহের নিম্নে শূন্য ব্যবহার করা যাইবে। যেখানে কোন নিম্ন স্বরের সারিকায় তার আকৃষ্ট হইয়া পর স্বর আঘাতে প্রকাশ পাইবে, তথায় আহত স্বরের নীচে আঘাতের চিহ্ন দেওয়া যাইবে। মূর্চ্ছনার এইরূপ "~~~~~~~~~~~~~~~~" তরঙ্গিত রেখা চিহ্ন নির্দ্দিষ্ট আছে, এই চিহ্নটীও মূর্চ্ছিত স্বরের নিম্নে থাকিবে।

মূর্চ্ছনা-সাধন।

অনুলোম।

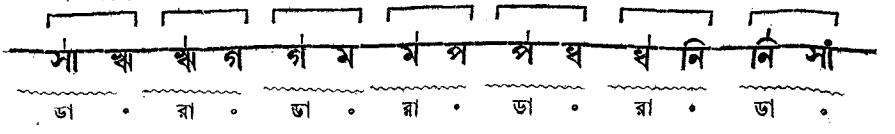

বিলোম।

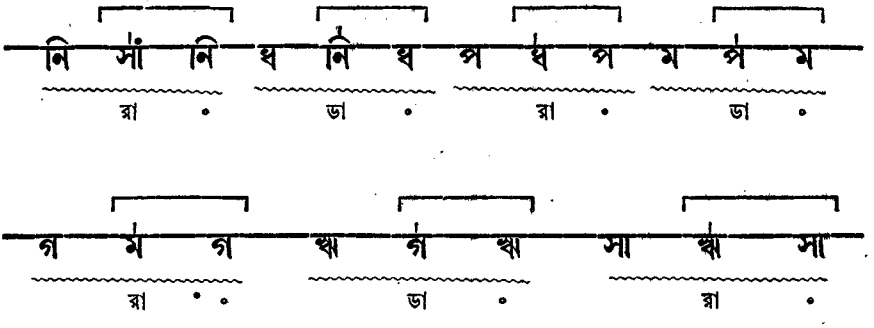

অনুলোম।

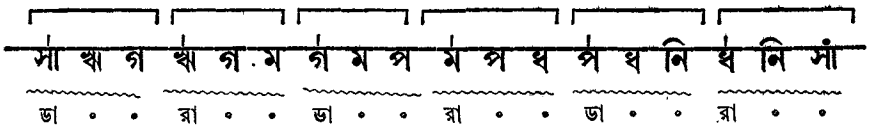

বিলোম।

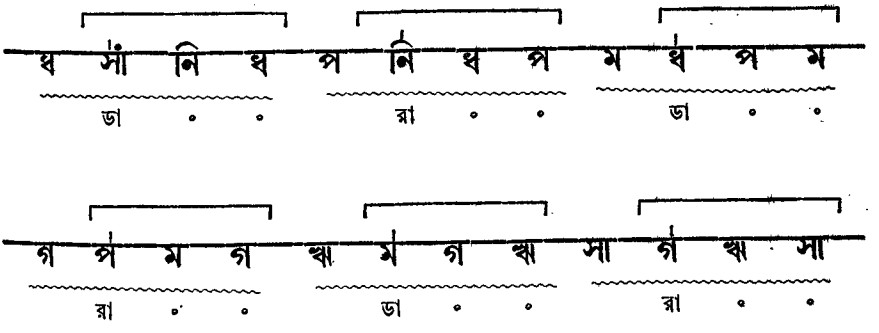

অনুলোম।

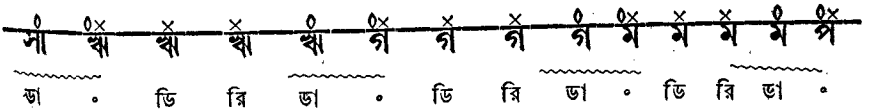

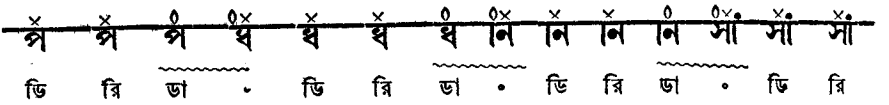

বিলোম।

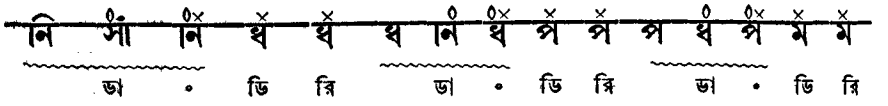

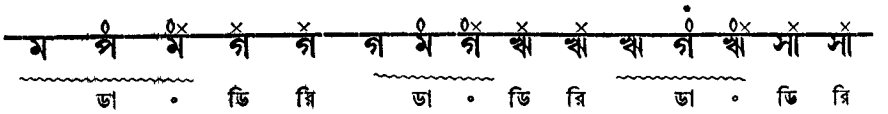

অনুলোম।

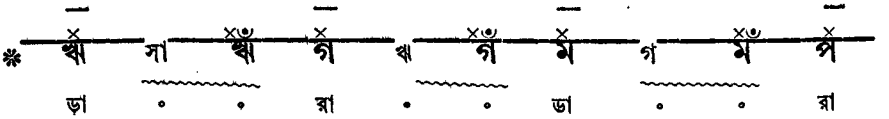

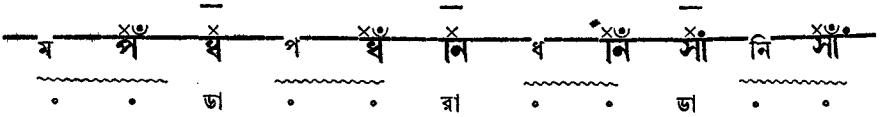

বিলোম।

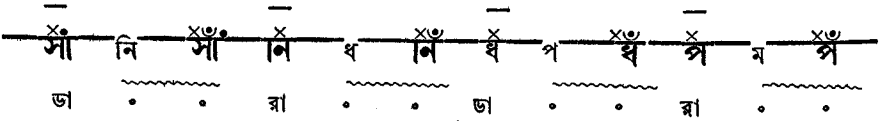

* ক্ষুদ্র অক্ষরে মুদ্রিত স্বরগুলির মাত্রাকাল এত অল্প যে, তাহা সূক্ষ্মরূপে লিখিতে গেলে গ্রন্থ অত্যন্ত কঠিন হইয়া উঠে। সেই জন্য উল্লিখিত স্বরগুলির পৃথক্ মাত্রাকাল না লিখিয়া পূর্ব্ব স্বরের মাত্রাকালমধ্যে তাহা "প্রকাশ্য" করা গেল এবং পূর্ব্ব নিয়মানুসারে সমাংশ বোধ হইবার আশঙ্কায় বন্ধনী ভুক্তও করা গেল না। শিক্ষকগণ সূক্ষ্ম কালটী বুঝাইয়া দিবেন।

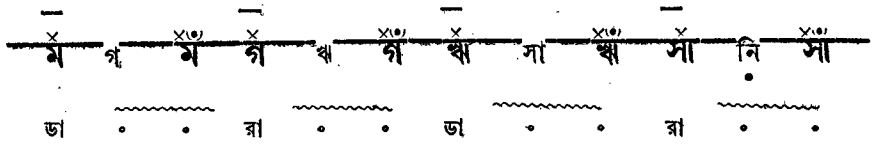

অনুলোম।

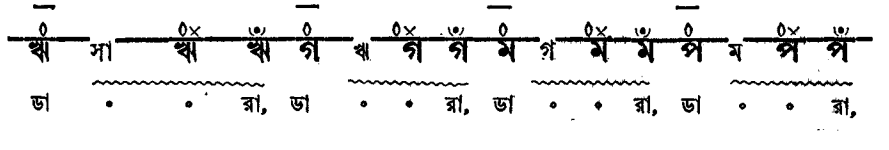

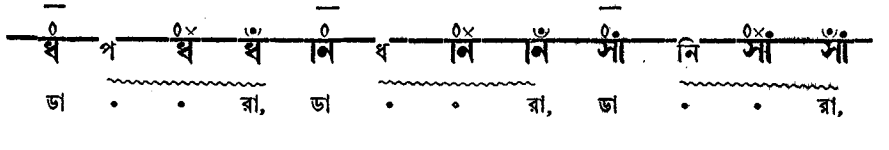

বিলোম।

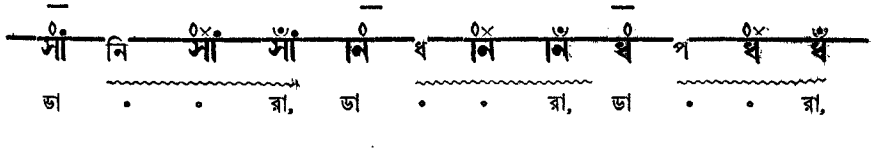

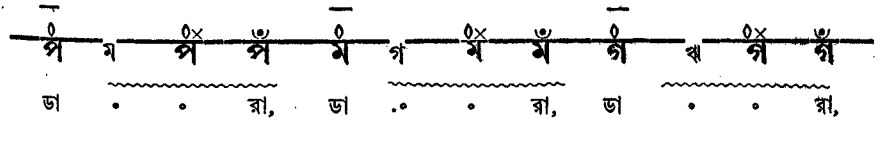

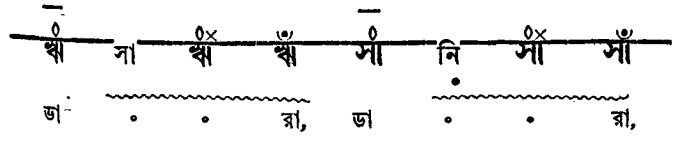

অনুলোম।

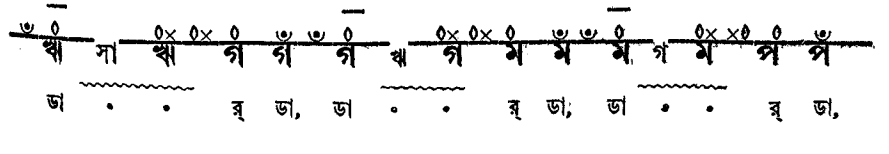

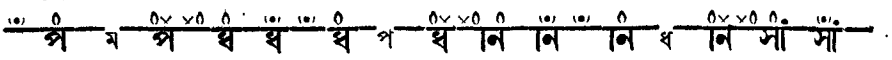
প ম প ধ ধ ধ প ধ নি নি নি ধ নি সাঁ সাঁ
ডা • • র্ ডা, ডা • • র্ ডা, ডা • • র্ ডা,

বিলোম।

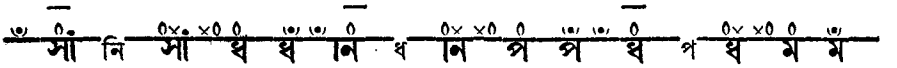
সাঁ নি সাঁ ধ ধ নি ধ নি প প ধ প ধ ম ম
ডা • • র্ ডা, ডা • • র্ ডা, ডা • • র্ ডা,

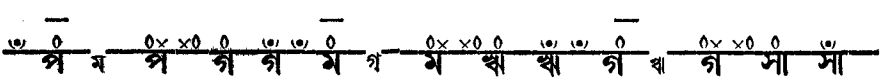
প ম প গ গ ম গ ম ঋ ঋ গ ঋ গ সা সা
ডা • • র্ ডা, ডা • • র্ ডা, ডা • • র্ ডা,

অনুলোম।

ঋ সা ঋ ঋ গ ঋ গ গ ম ম গ ম ম প
ডা • • রা ডা • • রা ডা, ডা • • রা ডা

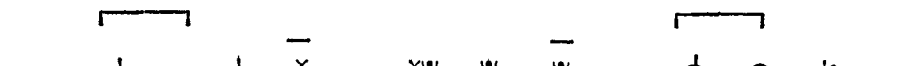
ম প প ধ ধ প ধ ধ নি ধ নি নি সাঁ
• • রা ডা, ডা • • রা ডা • • রা ডা,

বিলোম।

সাঁ নি সাঁ সাঁ নি ধ নি নি প ধ প ধ ধ প
ডা • • রা ডা • • রা ডা, ডা • • রা ডা

ম প প গ ম গ ম ম গ ঋ গ গ সা
• • রা ডা, ডা • • রা ডা • • রা ডা,

অনুলোম।

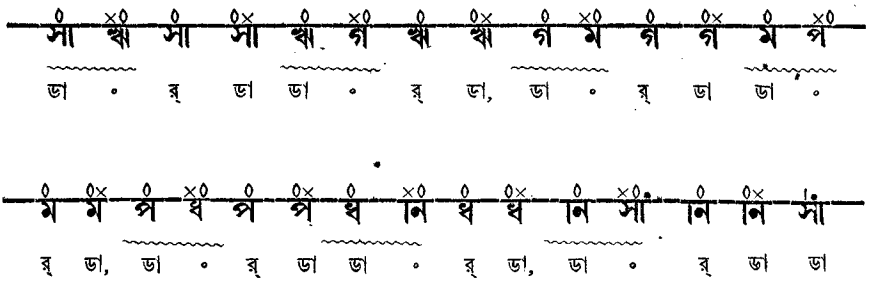

বিলোম।

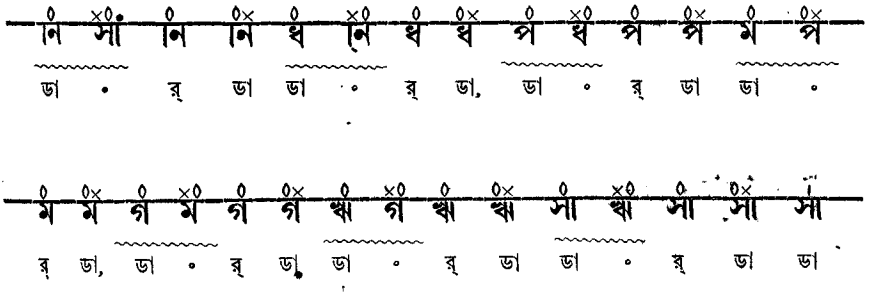

অনুলোম।

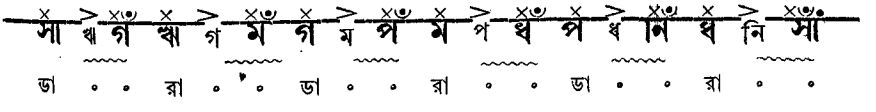

বিলোম।

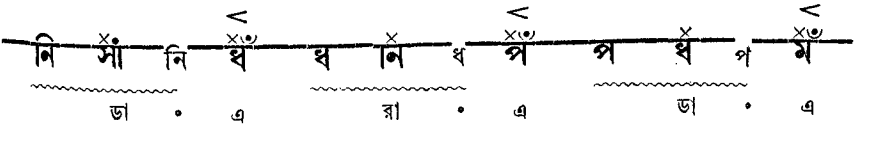

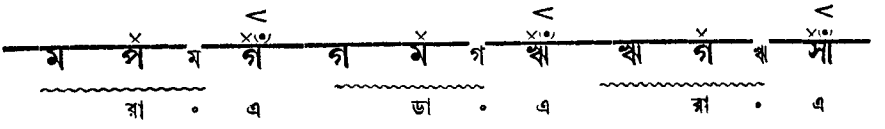

অনুলোম।

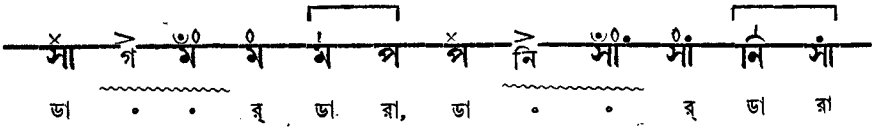

বিলোম।

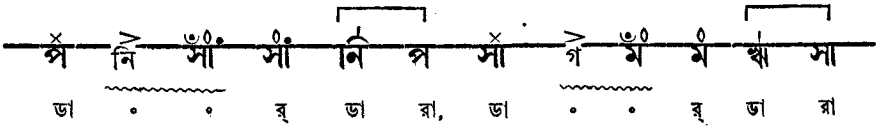

বিকৃত-সাধন অনুলোম।

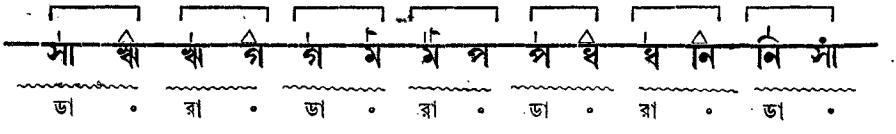

বিলোম।

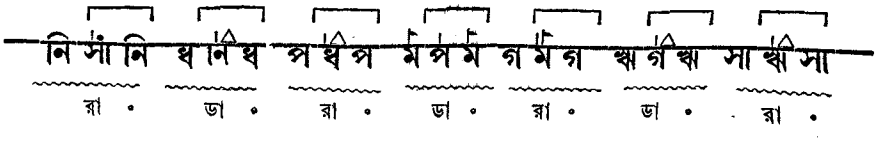

অনুলোম।

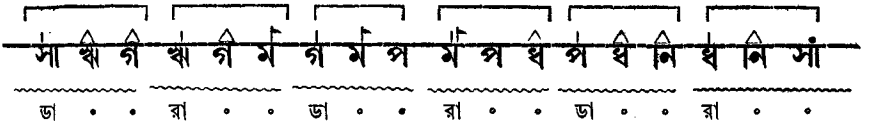

বিলোম।

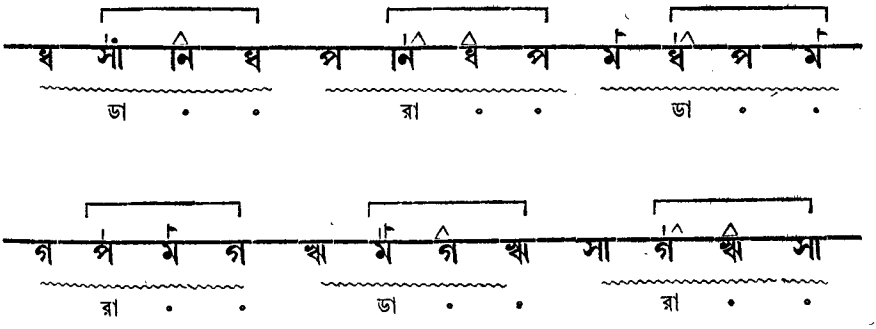

(৫২)

পিলু—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ধ)

আস্থায়ী।

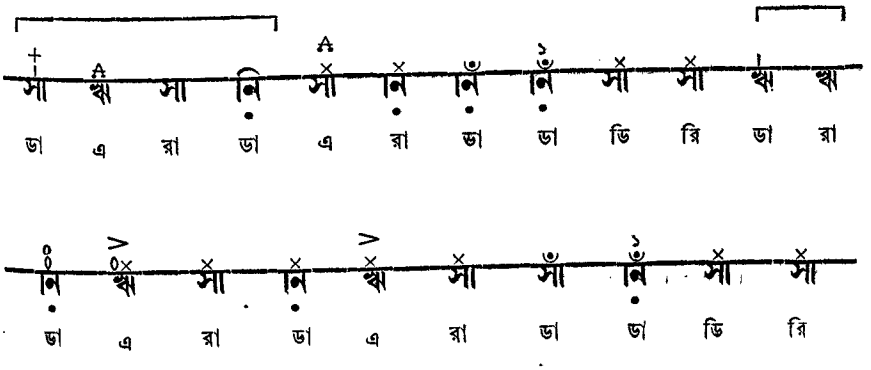

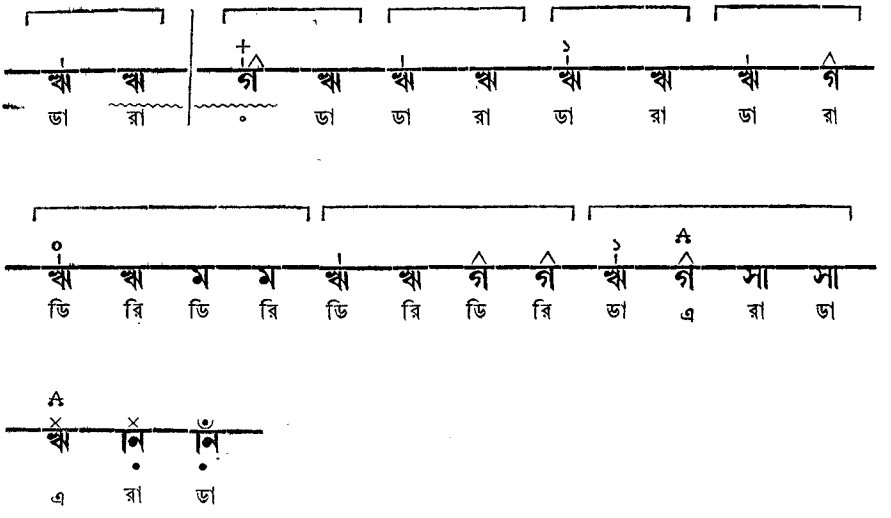
ঋ ঋ | গ ঋ ঋ ঋ ঋ ঋ ঋ গ
ডা রা | ডা ডা রা ডা রা ডা রা
ঋ ঋ ম ম ঋ ঋ গ গ ঋ গ সা সা
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা
ঋ নি নি
এ রা ডা

অন্তরা।

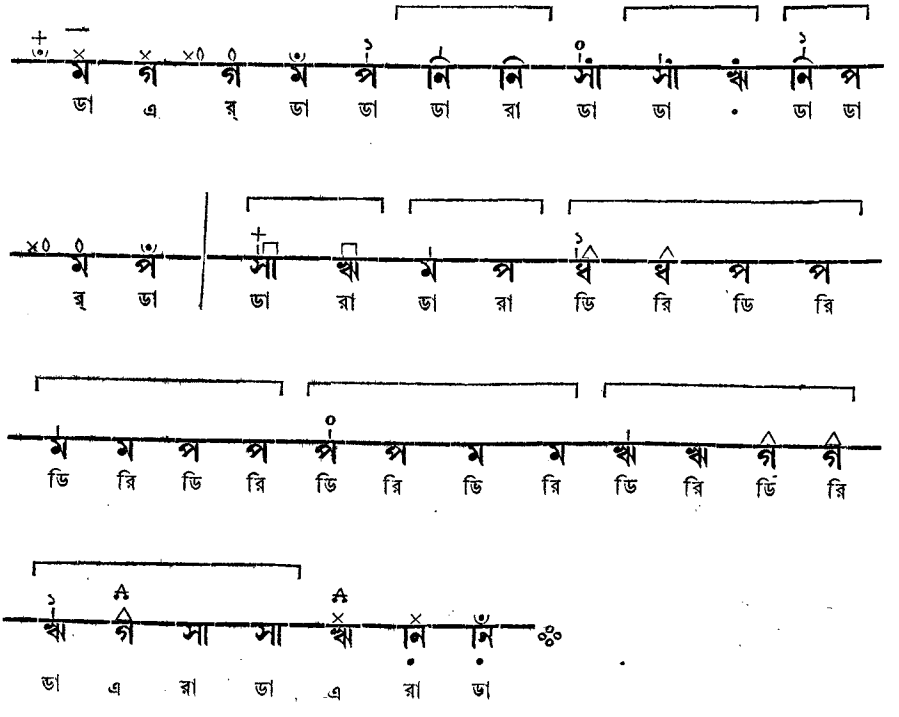
ম গ গ ম প নি নি সাঁ সাঁ ঋঁ নি প
ডা এ র্ ডা ডা ডা রা ডা ডা ডা ডা
ম প | সা ঋ ম প ধ ধ প প
র্ ডা | ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি
ম ম প প প প ম ম ঋ ঋ গ গ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
ঋ গ সা সা ঋ নি নি
ডা এ রা ডা এ রা ডা

(৫৩)

জংলা-খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

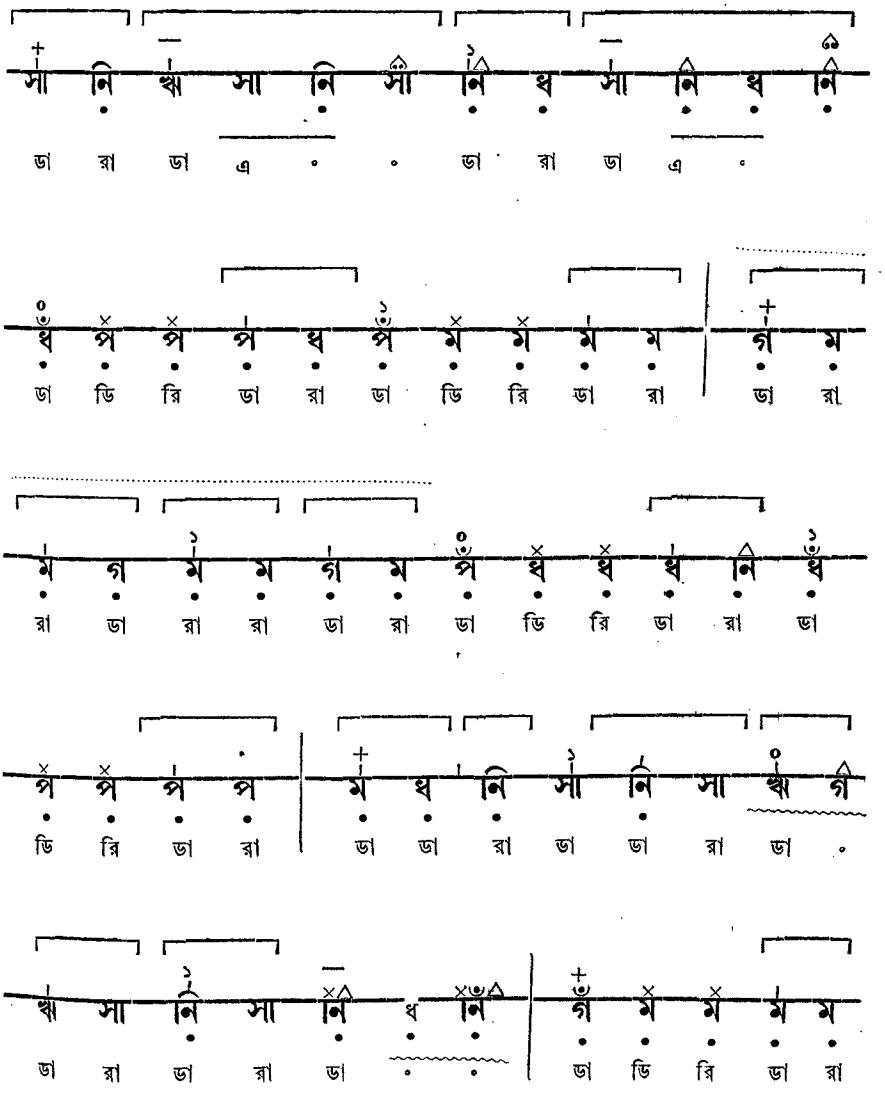
সা নি ঋ সা নি সাঁ নি ধ সা নি ধ নি
ডা রা ডা এ ০ ০ ডা রা ডা এ ০
ধঁ প প প ধ পঁ ম ম ম ম গ ম
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ম গ ম ম গ ম পঁ ধ ধ ধ নি ধঁ
রা ডা রা রা ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
প প প প ম ধ নি সা নি সা ঋ গ
ডি রি ডা রা ডা ডা রা ডা ডা রা ডা ০
ঋ সা নি সা নি ধ নি গঁ ম ম ম ম
ডা রা ডা রা ডা ০ ০ ডা ডি রি ডা রা

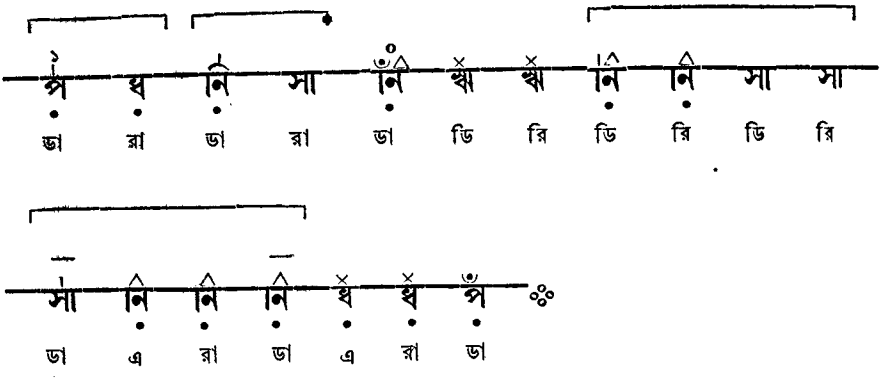

(৫৪)

ইমন্—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(দ্রুত)

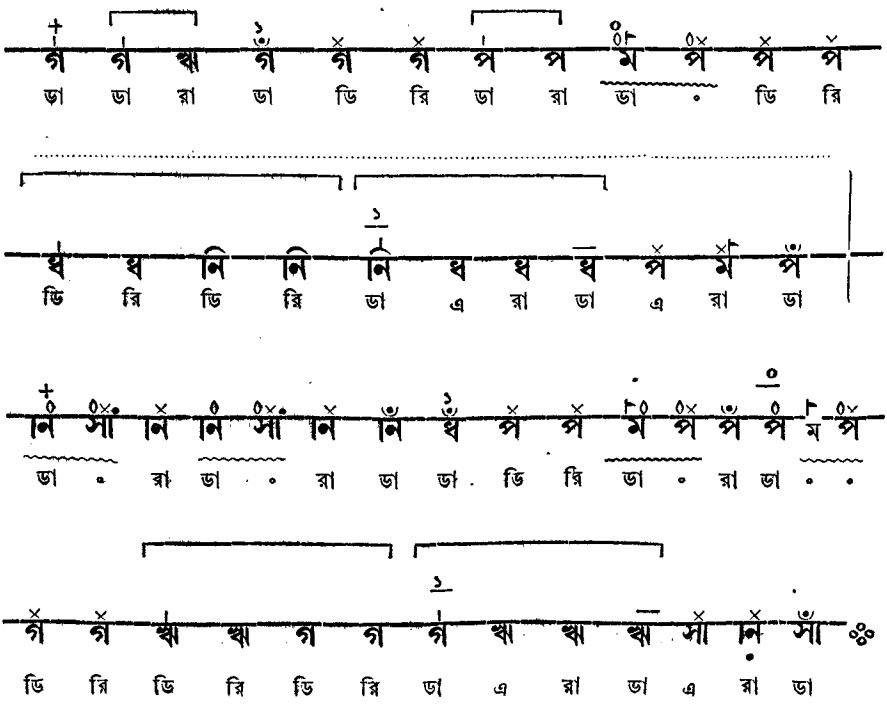

(৫৫)

বেলাবলী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

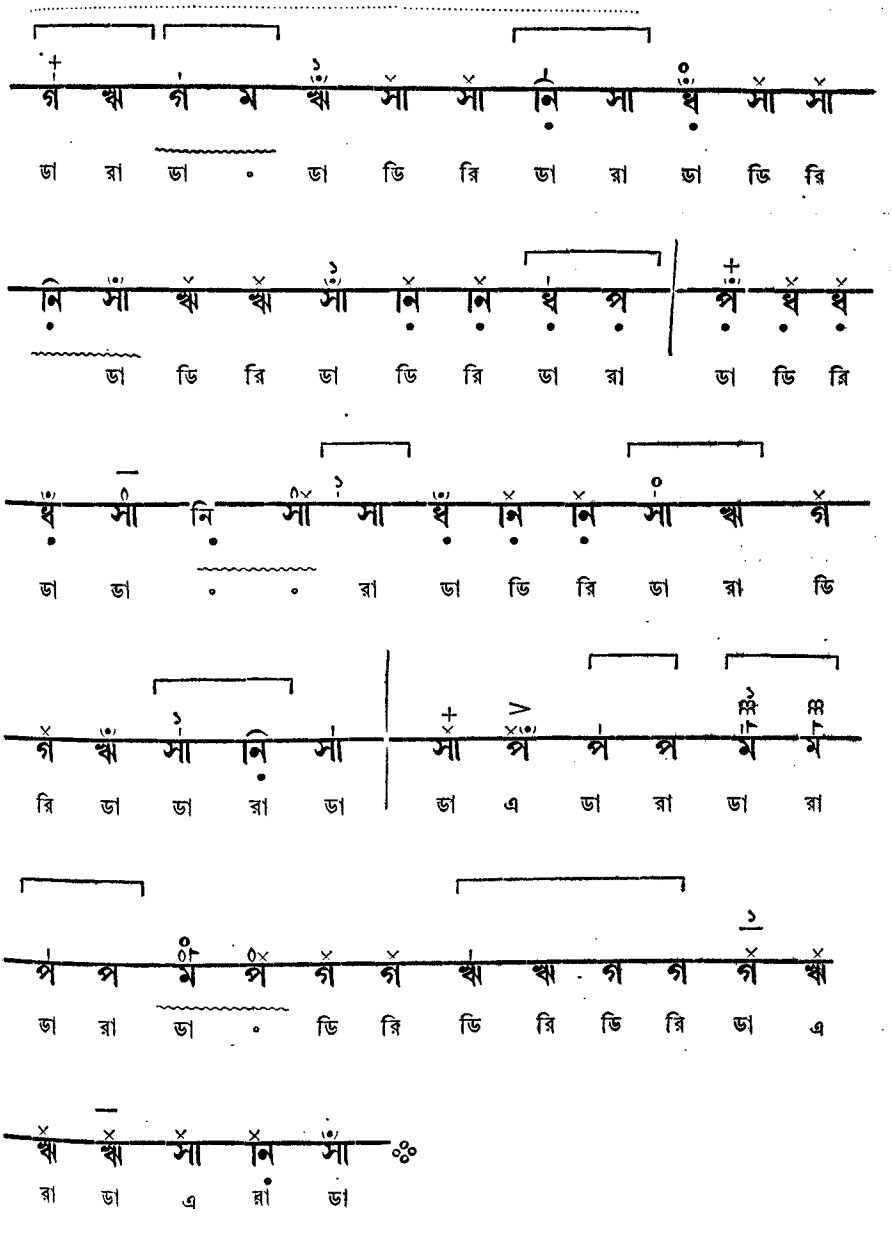
গ ঋ গ ম ঋ সা সা নি সা ধ সা সা
ডা রা ডা ০ ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
নি সাঁ ঋ ঋ সাঁ নি নি ধ প প ধ ধ
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
ধ সা নি সা সা ধ নি নি সা ঋ গ
ডা ডা ০ ০ রা ডা ডি রি ডা রা ডি
গ ঋ সা নি সা সা প প প ম ম
রি ডা ডা রা ডা ডা এ ডা রা ডা রা
প প ম প গ গ ঋ ঋ গ গ গ ঋ
ডা রা ডা ০ ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ
ঋ ঋ সা নি সাঁ
রা ডা এ রা ডা

(৫৬)

ছায়ানট*—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

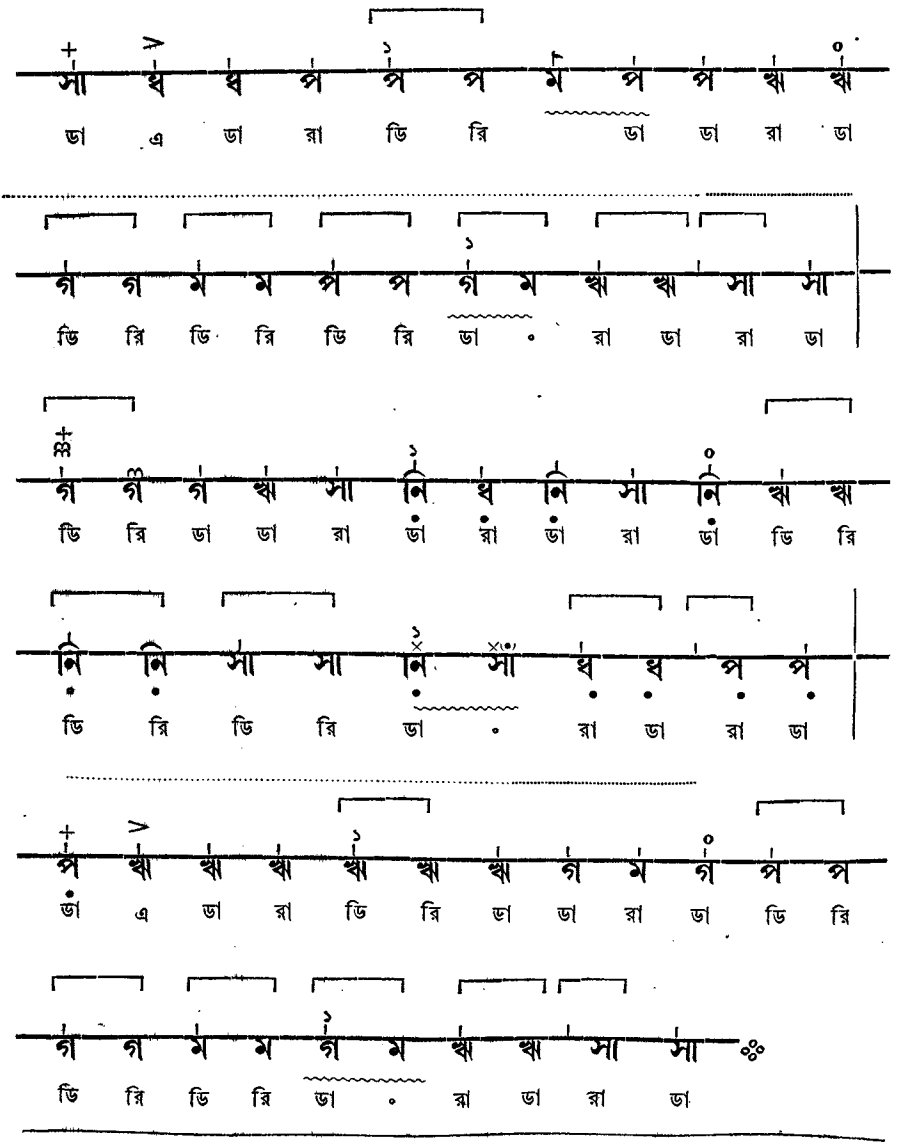
সা ধ ধ প প প ম প প ঋ ঋ
ডা এ ডা রা ডি রি ডা ডা রা ডা
গ গ ম ম প প গ ম ঋ ঋ সা সা
ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা রা ডা
গ গ গ ঋ সা নি ধ নি সা নি ঋ ঋ
ডি রি ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
নি নি সা সা নি সাঁ ধ ধ প প
ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা রা ডা
প ঋ ঋ ঋ ঋ ঋ ঋ গ ম গ প প
ডা এ ডা রা ডি রি ডা ডা রা ডা ডি রি
গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ সা সা
ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা রা ডা

* ওস্তাদ্‌জী লছমীপ্রসাদ হইতে প্রাপ্ত।

(৫৭)

ইমন্—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ম)

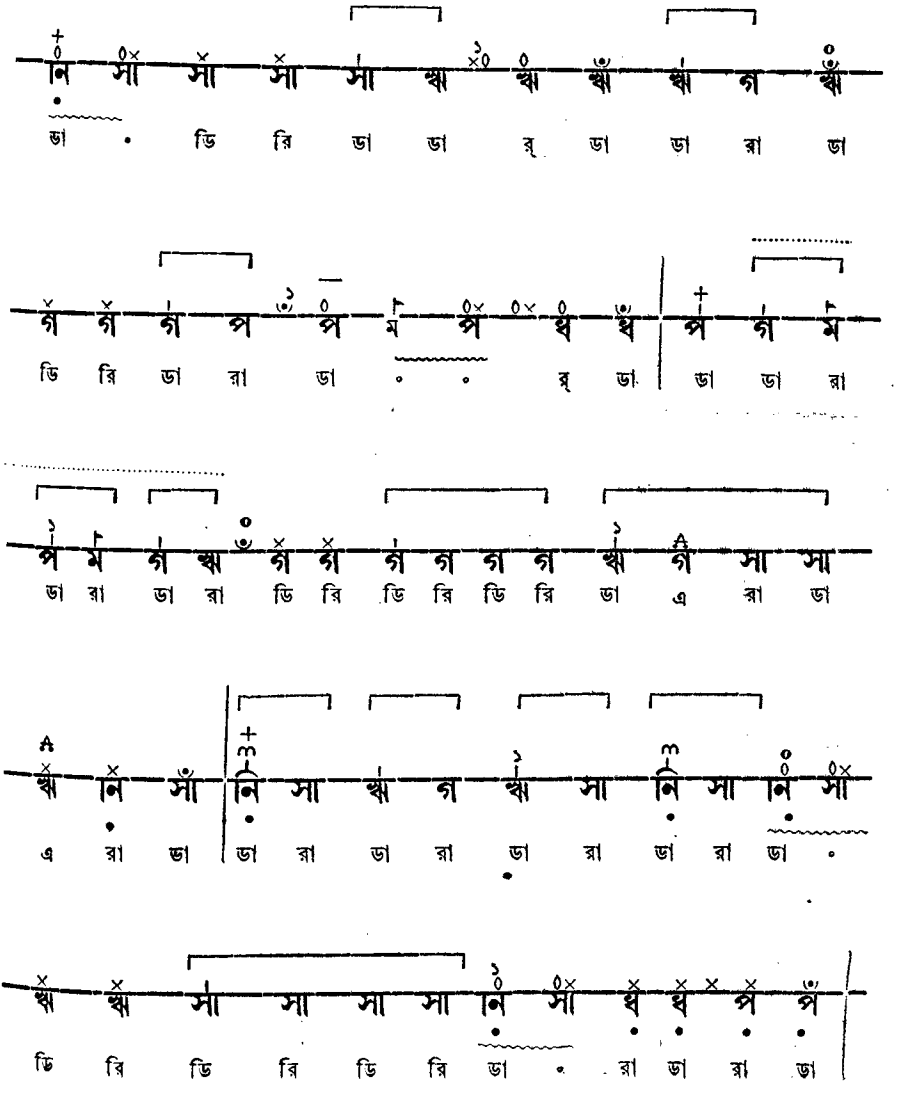

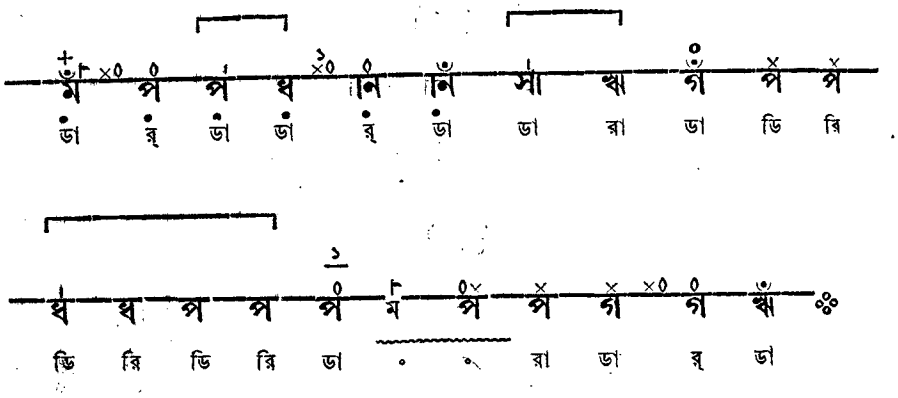

(৫৮)

দেশ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

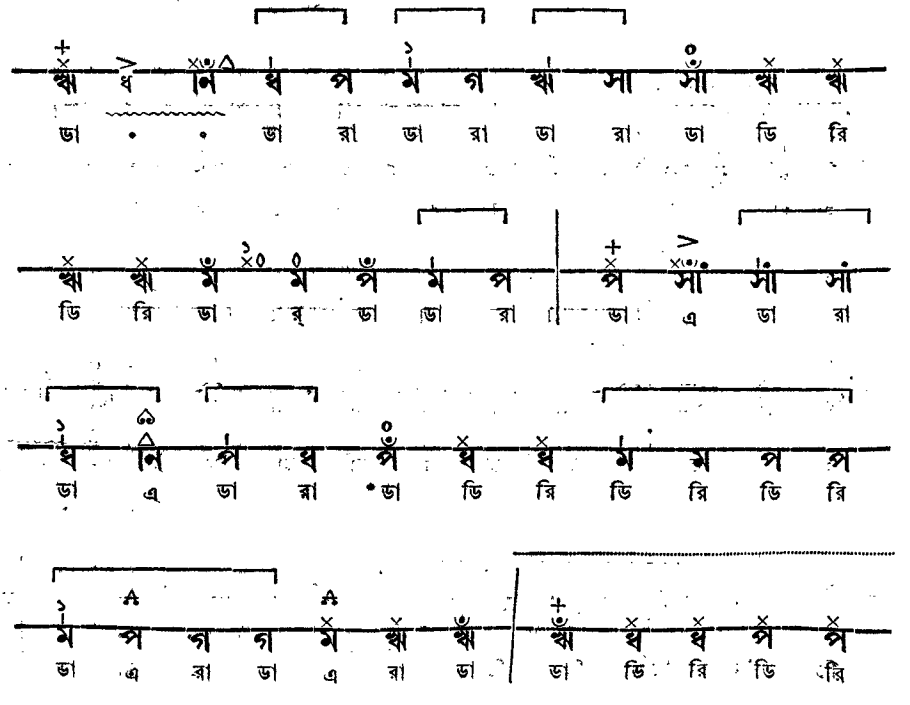

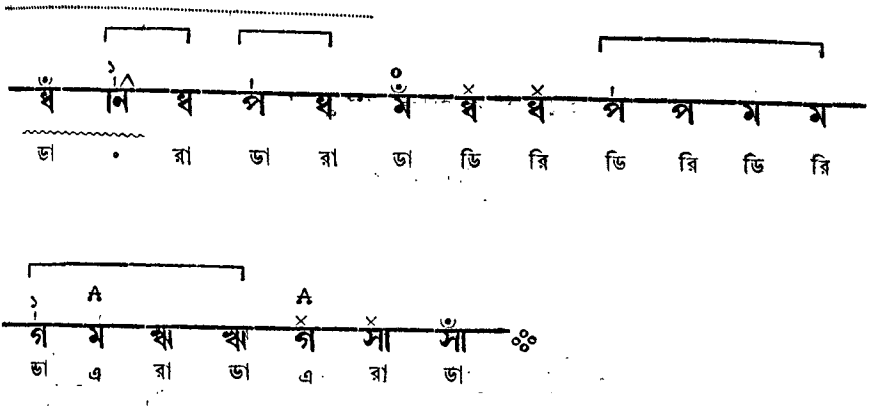
ধঁ নি ধ প ধ মঁ ধ ধ প প ম ম
ডা • রা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
গ ম ঋ ঋ গ সা সাঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা

বিস্তার।

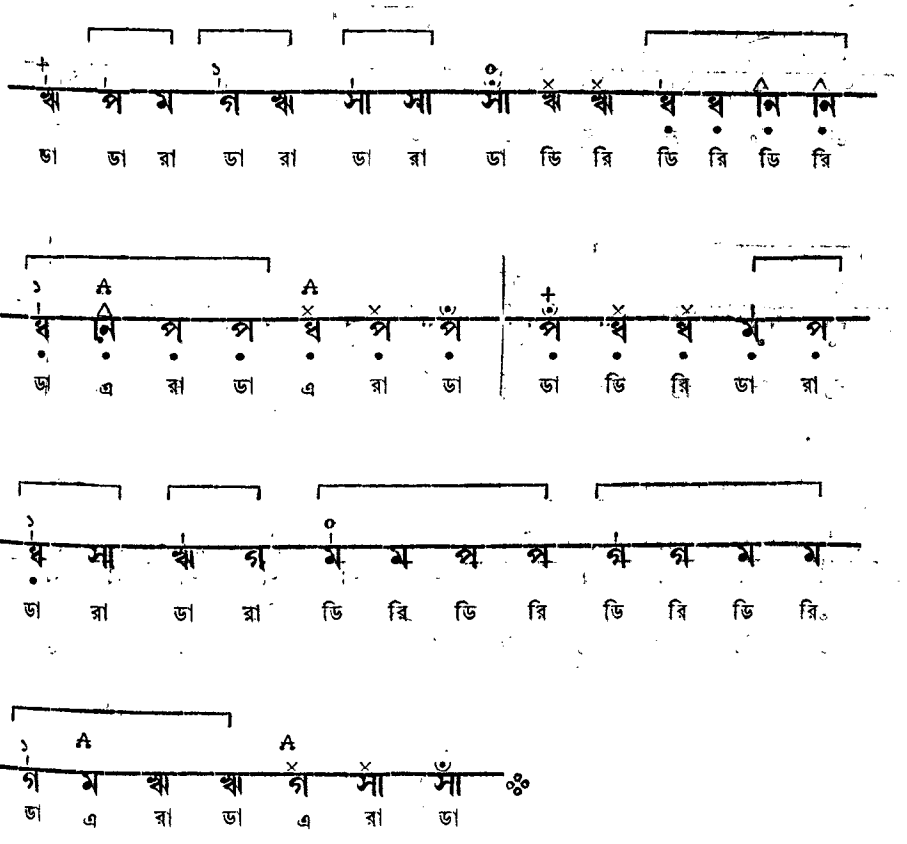
ঋ প ম গ ঋ সা সা সাঁ ঋ ঋ ধ ধ নি নি
ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ধ নি প প ধ প প প ধ ধ মূ প
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা ডি রি ডা রা
ধ সা ঋ গ ম ম প প গ গ ম ম
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
গ ম ঋ ঋ গ সা সাঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা

(৫৯)

ইমন্ ভূপালী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(মি)

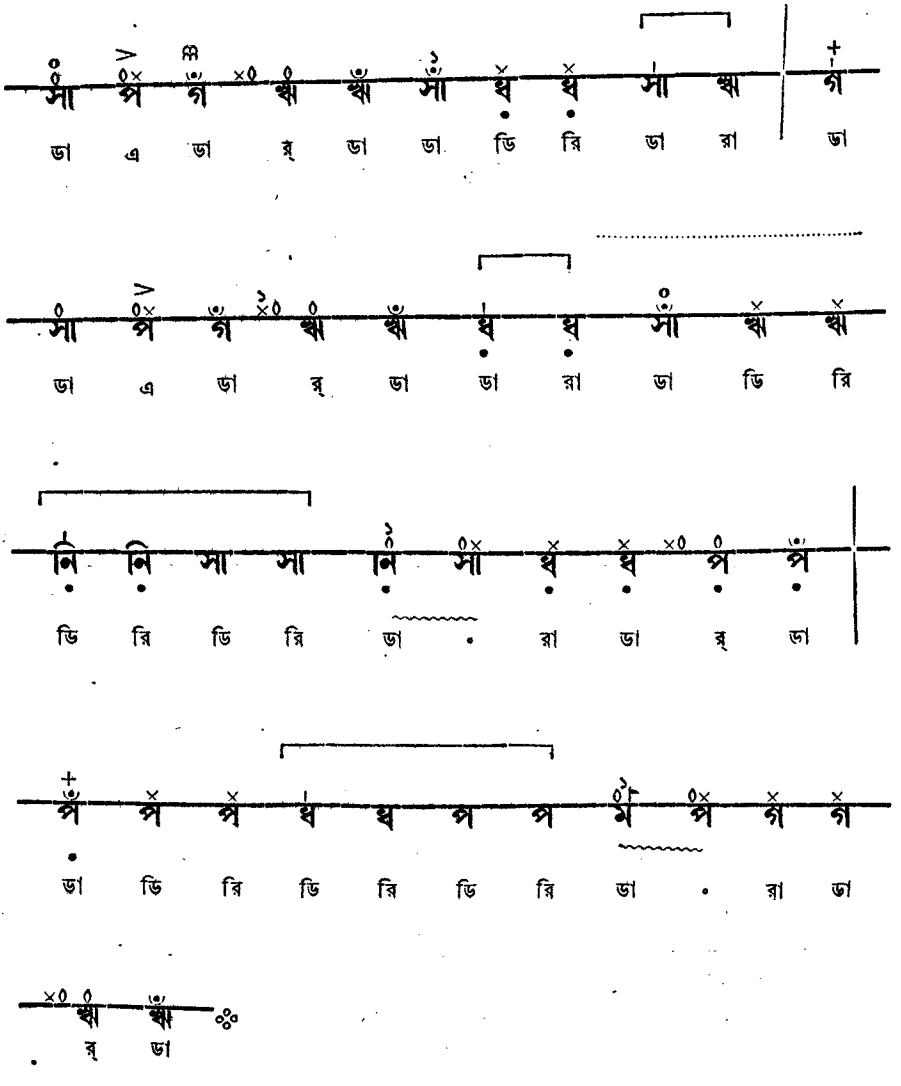

(৬০)

কামোদ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

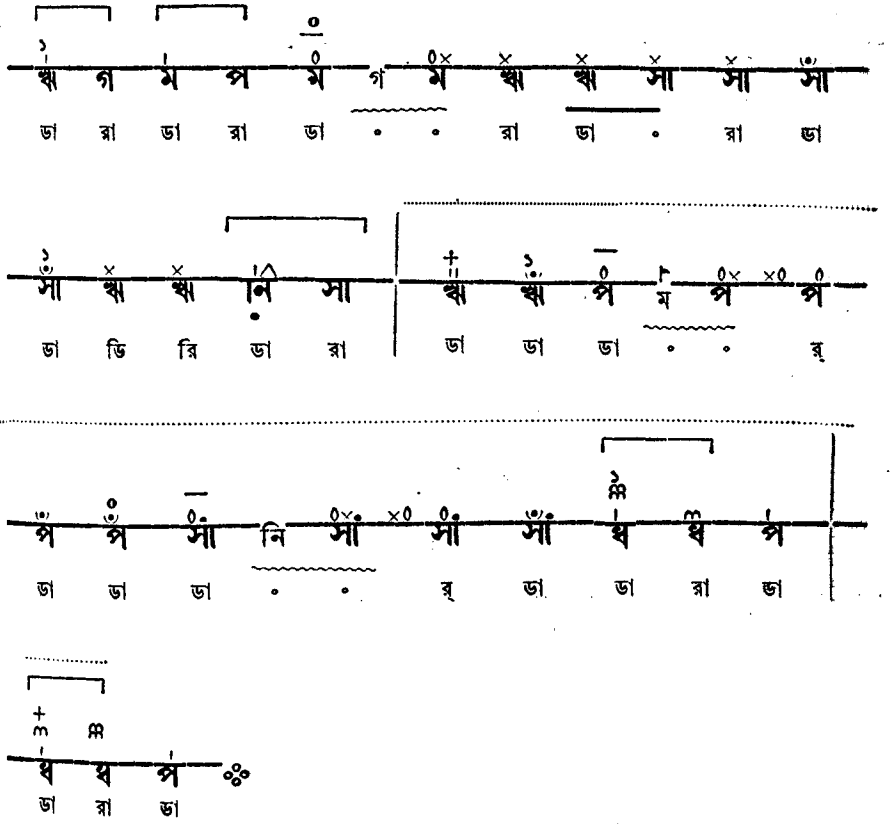

বিস্তার।

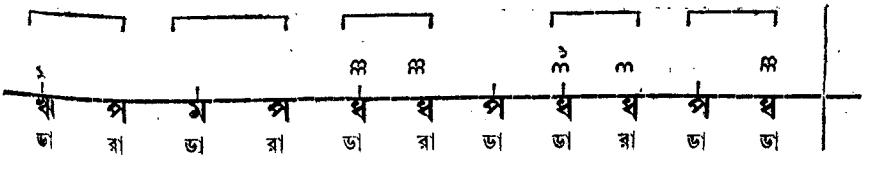

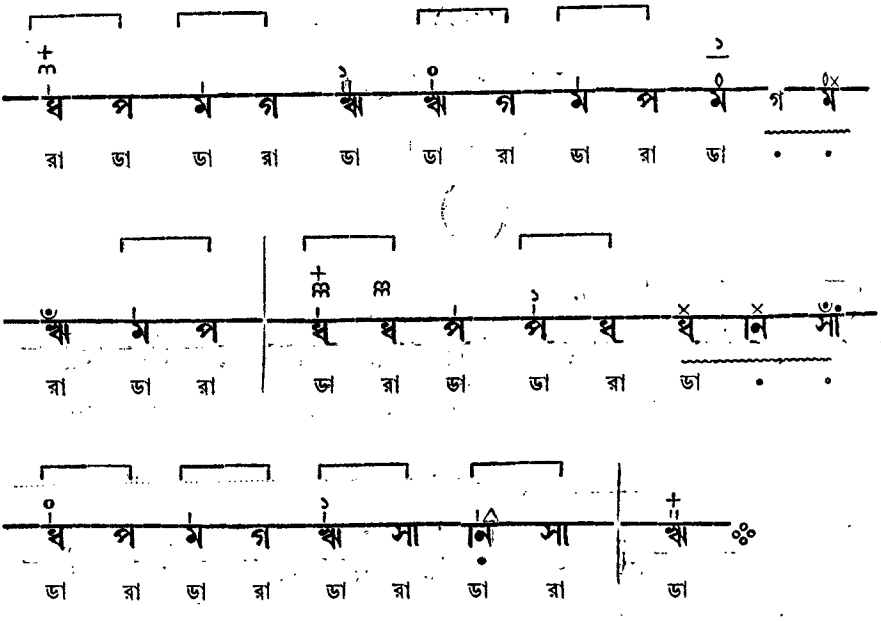

(৬১)

কেদারা—সম্পূর্ণ।

দ্রুত-ত্রিতালী।

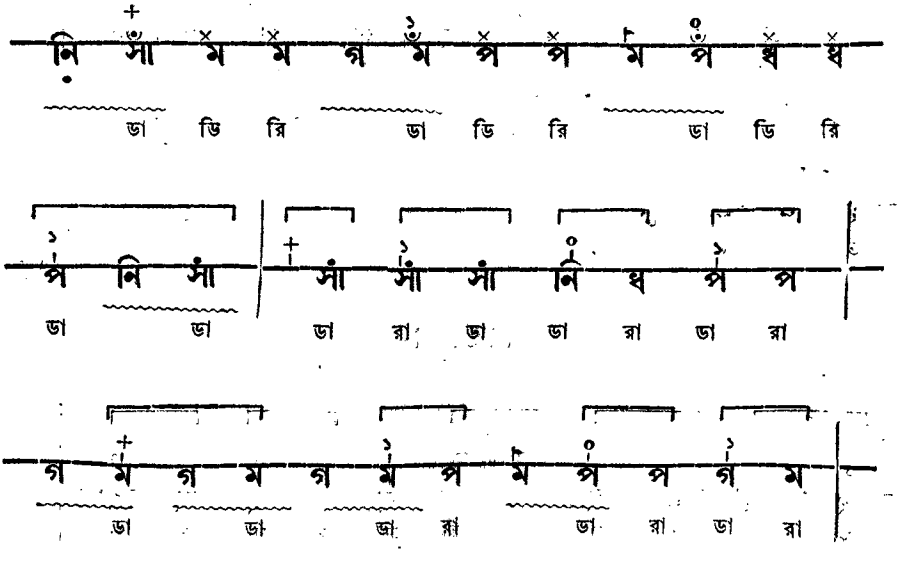

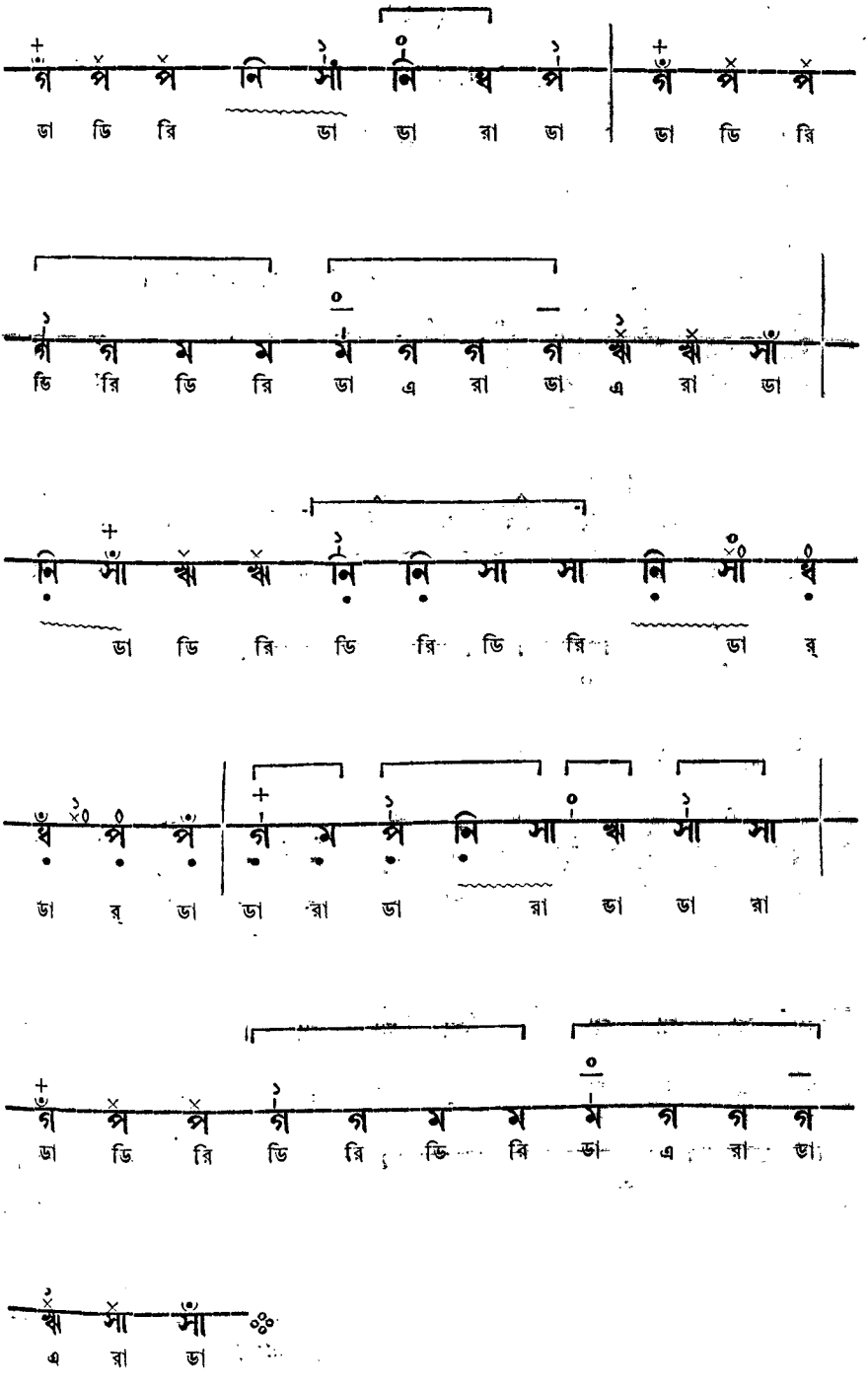
গ প প নি সাঁ নি ধ প | গঁ প প
ডা ডি রি ডা ডা রা ডা | ডা ডি রি
গ গ ম ম ম গ গ গ ঋ ঋ সাঁ
ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা এ রা ডা
নি সাঁ ঋ ঋ নি নি সা সা নি সাঁ ধ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্
ধ প প | গ ম প নি সা ঋ সা সা |
ডা র্ ডা ডা রা ডা রা ডা ডা রা
গ প প গ গ ম ম ম গ গ গ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা
ঋ সা সাঁ
এ রা ডা

(৬২)

দেশ মল্লার*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

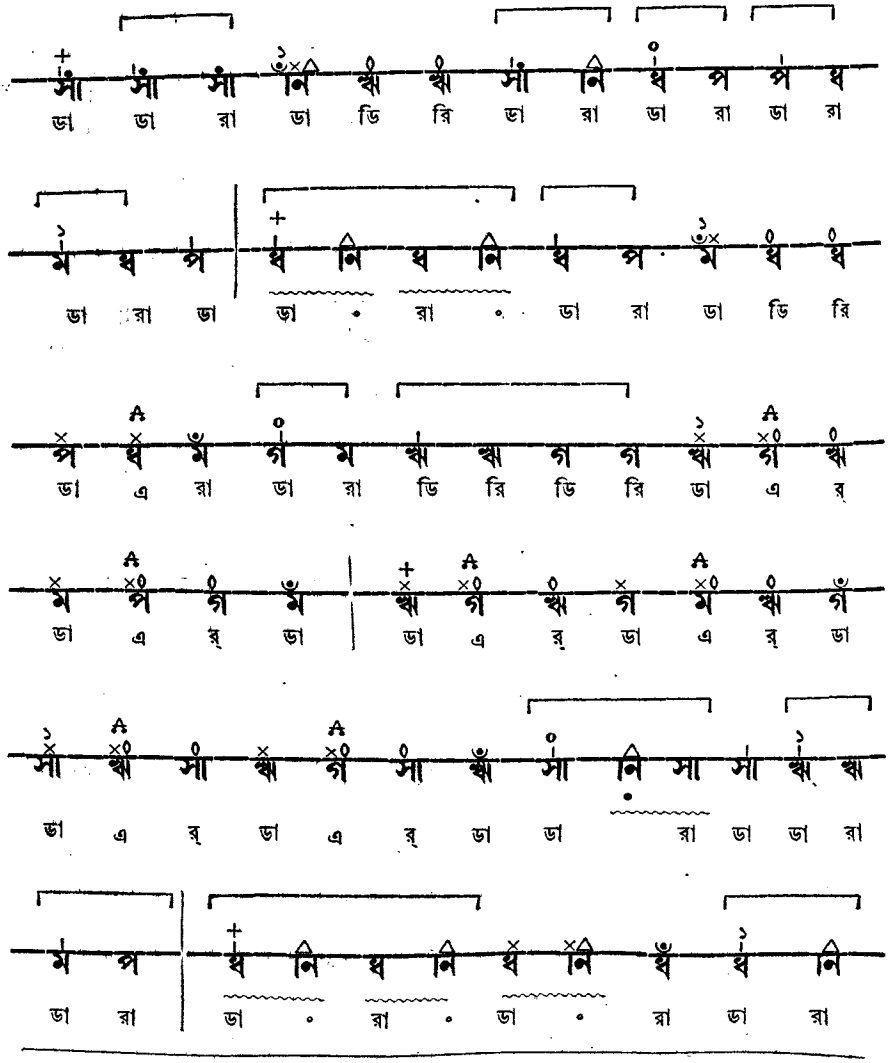

* মাধব বাবুর কোন ছাত্র হইতে প্রাপ্ত।

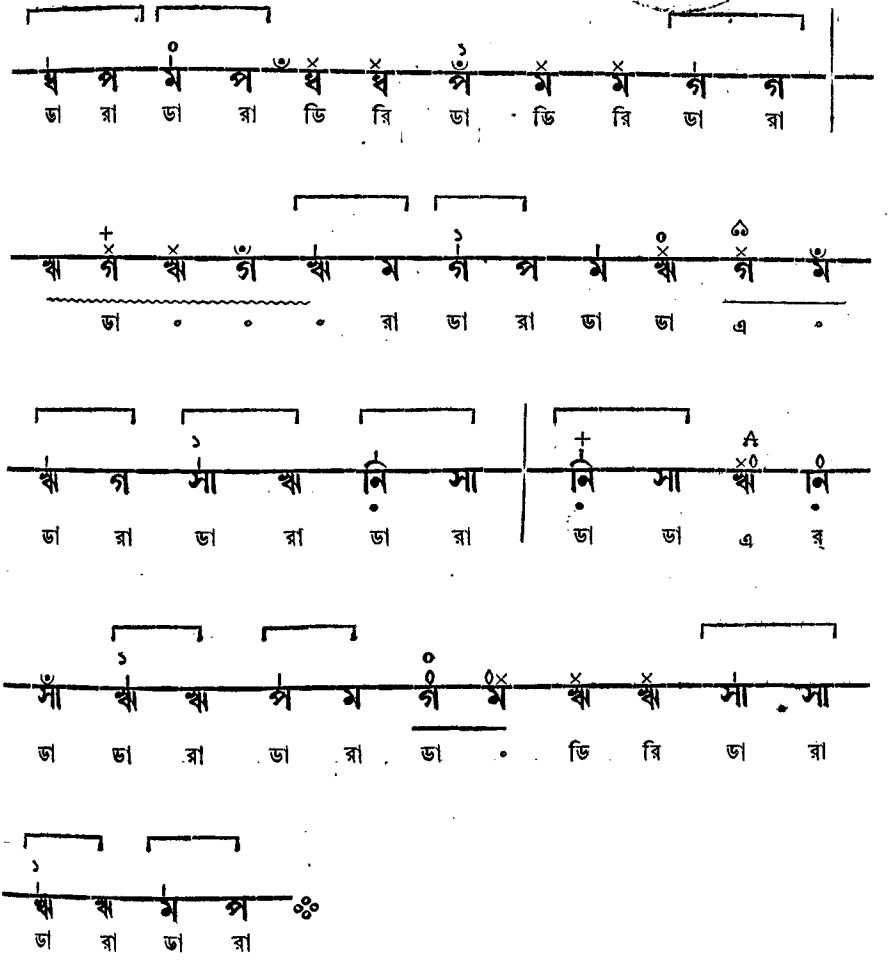

(৬৩)

পরজ—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(ঋ ম ধ)

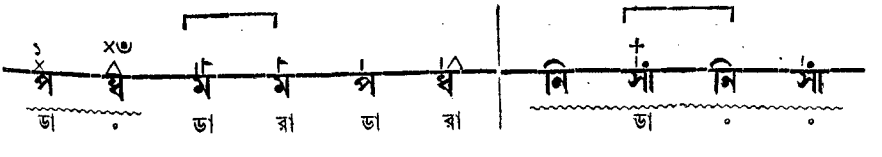

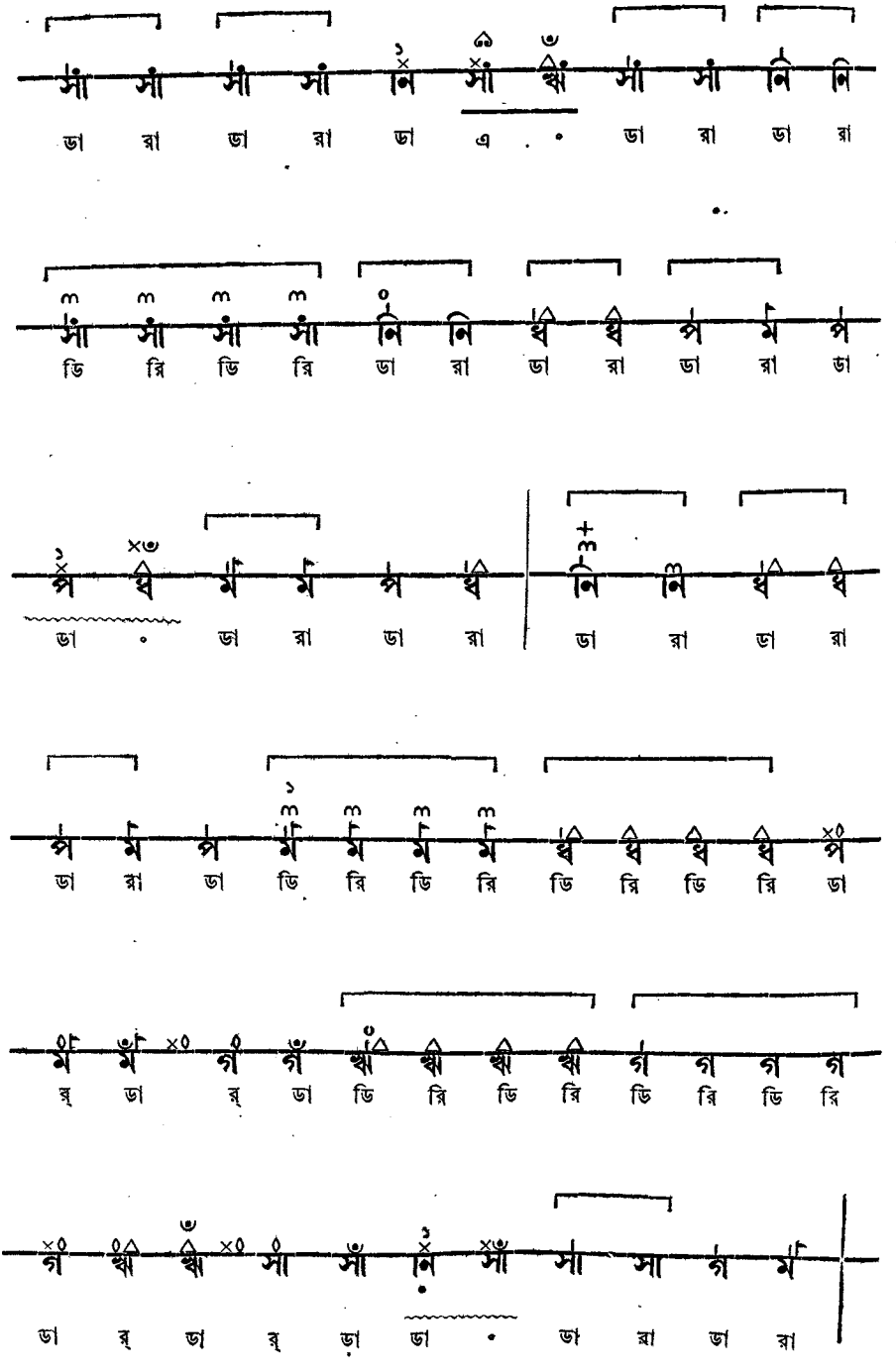
ডা রা ডা রা ডা এ • ডা রা ডা রা
ডি রি ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডা • ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা
ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা
র্ ডা র্ ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
ডা র্ ডা র্ ডা ডা • ডা রা ডা রা

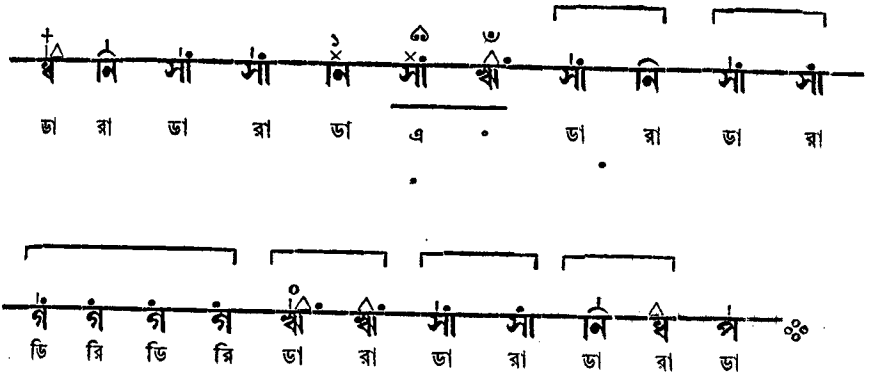

(৬৪)

বেহাগ*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

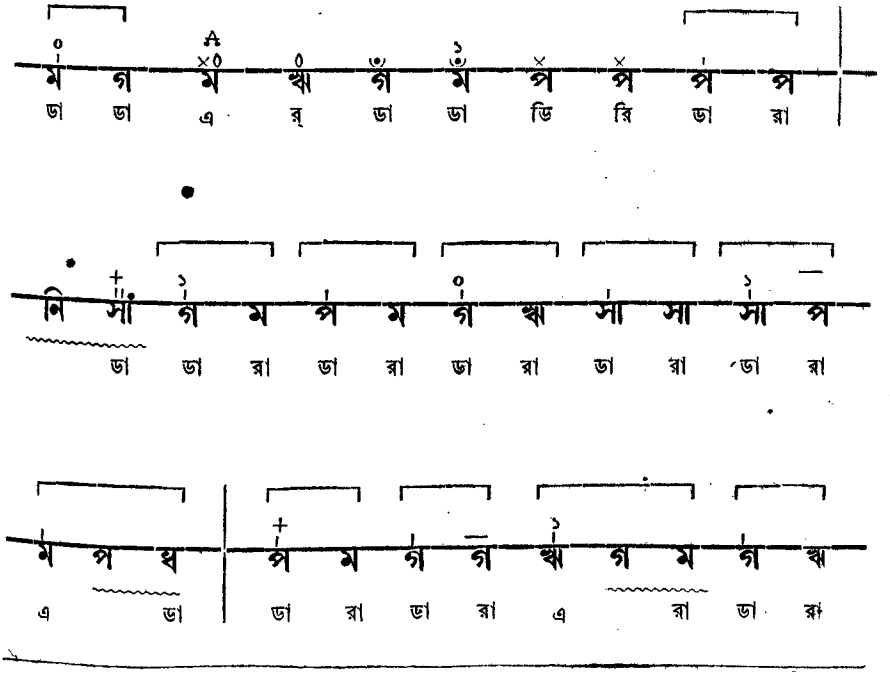

* ওস্তাদ্‌জী লছমীপ্রসাদ হইতে প্রাপ্ত।

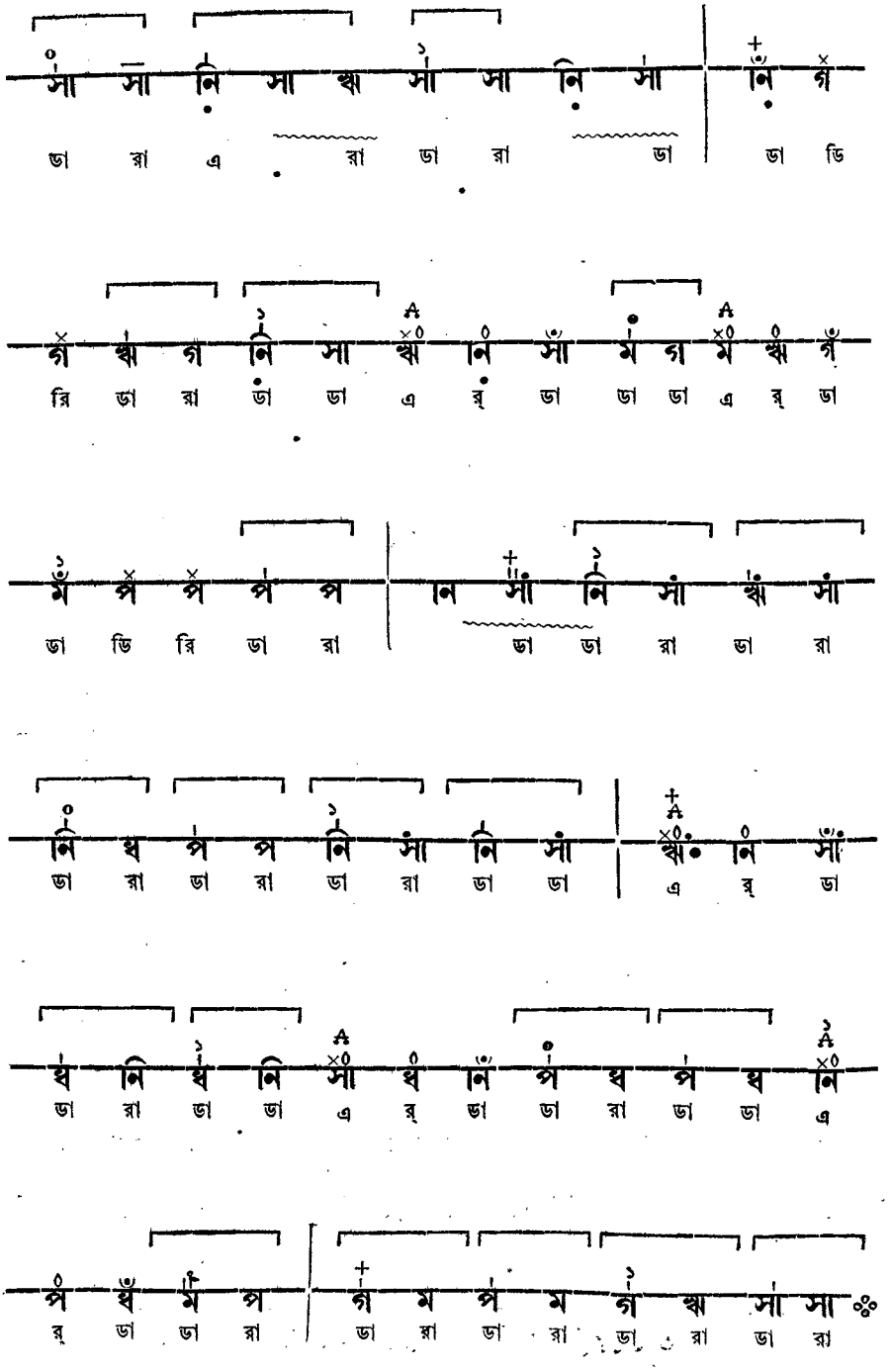
সা সা নি সা ঋ সা সা নি সা | নি গ
ডা রা এ রা ডা রা ডা | ডা ডি
গ ঋ গ নি সা ঋ নি সা ম গ ম ঋ গ
রি ডা রা ডা ডা এ র্ ডা ডা ডা এ র্ ডা
মঁ প প প প | নি সাঁ নি সাঁ ঋঁ সাঁ
ডা ডি রি ডা রা | ডা ডা রা ডা রা
নি ধ প প নি সাঁ নি সাঁ | ঋ নি সাঁ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা | এ র্ ডা
ধ নি ধ নি সাঁ ধ নি প ধ প ধ নি
ডা রা ডা ডা এ র্ ডা ডা রা ডা ডা এ
প ধঁ মঁ প | গ ম প ম গ ঋ সা সা
র্ ডা ডা রা | ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা

(৬৫)

কাফি-সিন্ধু—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

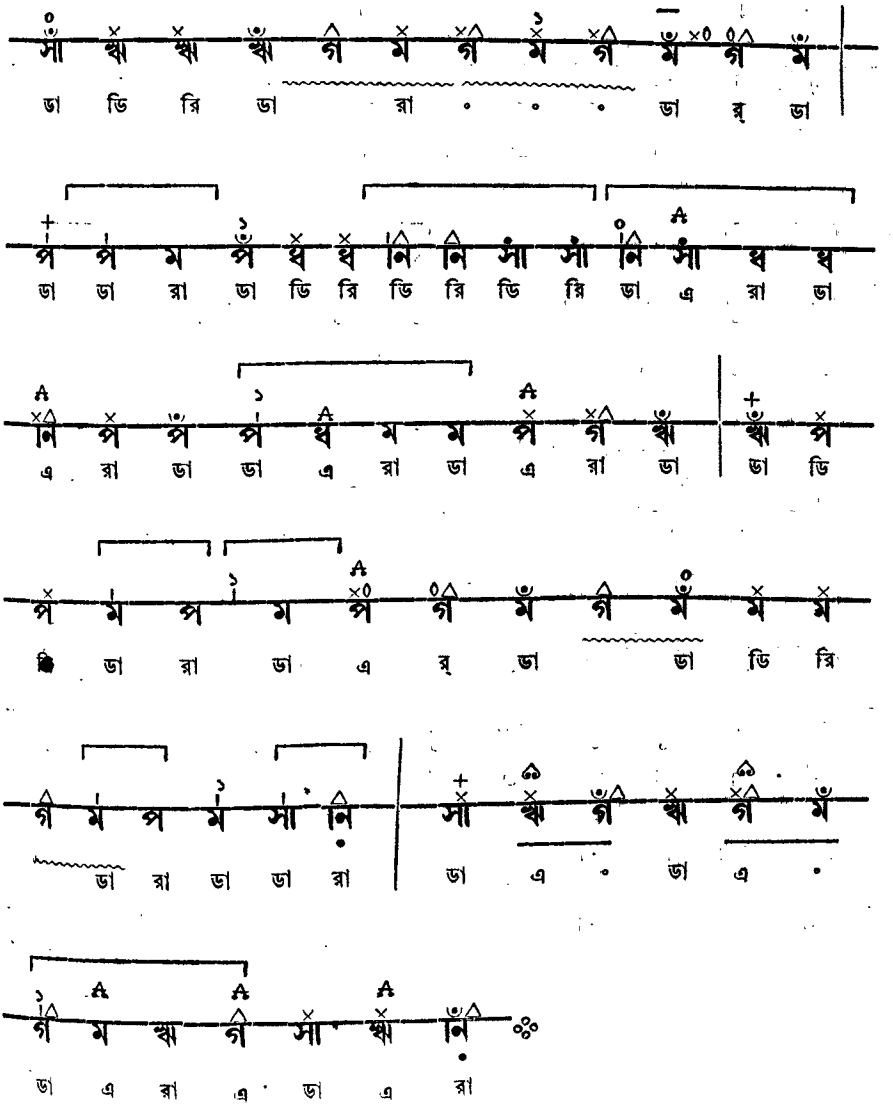
সাঁ ঋা ঋা ঋা গ ম গ ম গ ম গ ম
ডা ডি রি ডা রা ডা র্ ডা
প প ম পঁ ধ ধ নি নি সাঁ সাঁ নি সাঁ ধ ধ
ডা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা
নি প প প ধ ম ম প গ ঋা
এ রা ডা ডা এ রা ডা এ রা ডা
ঋা প
ডা ডি
প ম প ম প গ ম গ ম ম ম
ডা রা ডা এ র্ ডা ডা ডি রি
গ ম প ম সা নি
ডা রা ডা ডা রা
সা ঋা গ ঋা গ ম
ডা এ ডা এ
গ ম ঋা গ সা ঋা নি
ডা এ রা এ ডা এ রা

(৬৬)

কালাংড়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(~~ঋ ধ নি~~) *

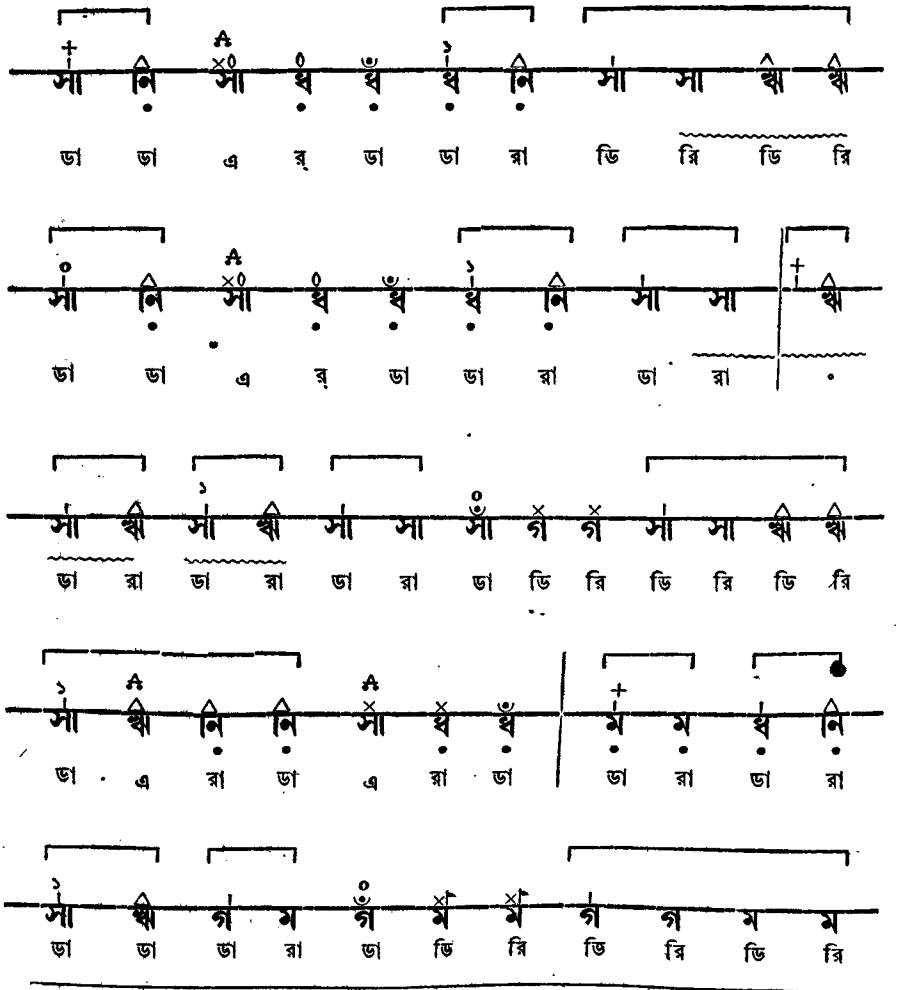
সা নি সা ধ ধঁ ধ নি সা সা ঋ ঋ
ডা ডা এ র্ ডা ডা রা ডি রি ডি রি
সা নি সা ধ ধঁ ধ নি সা সা ঋ
ডা ডা এ র্ ডা ডা রা ডা রা
সা ঋ সা ঋ সা সা সাঁ গ গ সা সা ঋ ঋ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
সা ঋ নি নি সা ধ ধঁ ম ম ধ নি
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা রা ডা রা
সা ঋ গ ম গঁ ম ম গ গ ম ম
ডা ডা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি

* মধ্যম গ্রামে বিন্যস্ত বলিয়া গৎটীতে এই এই বিকৃত স্বরের প্রয়োজন হইল। প্রকৃত ঠাট ঋ, ধ।

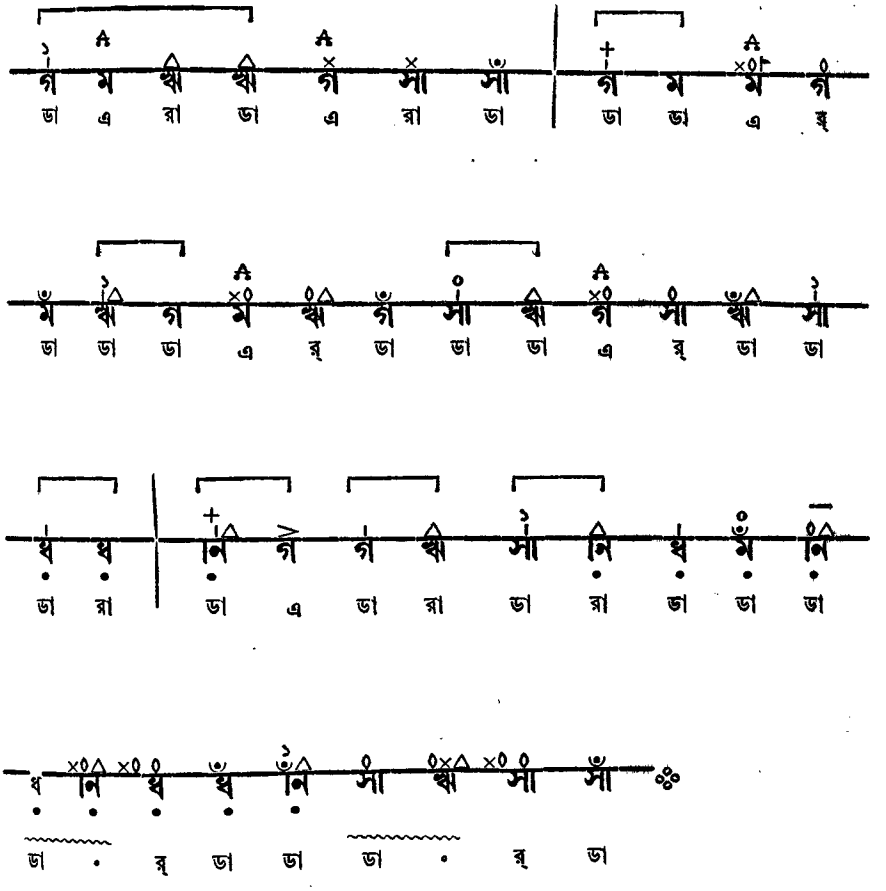

(৬৭)

ইমন্-কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

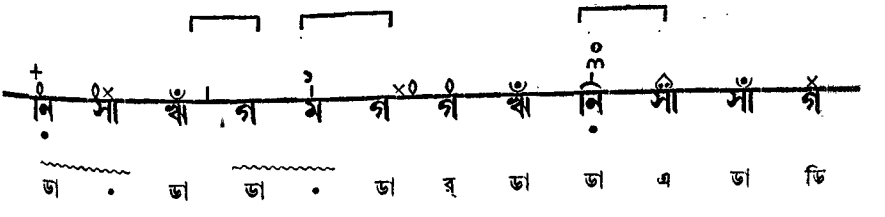

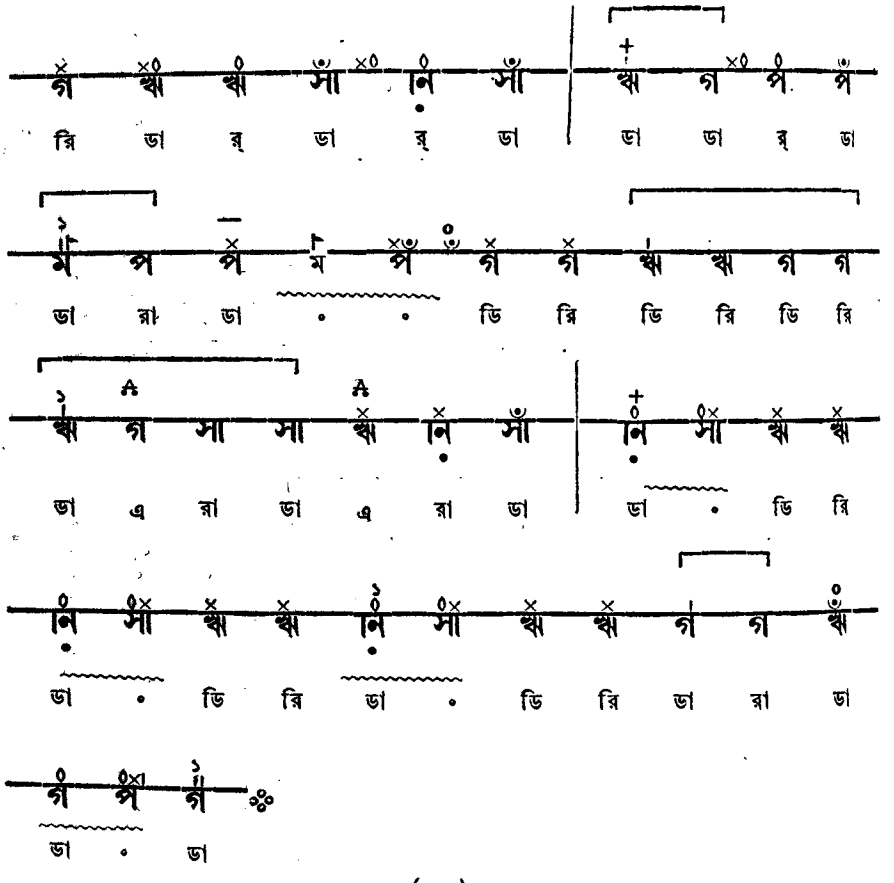

(৬৮)

খাম্বাজ*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

আস্থায়ী।

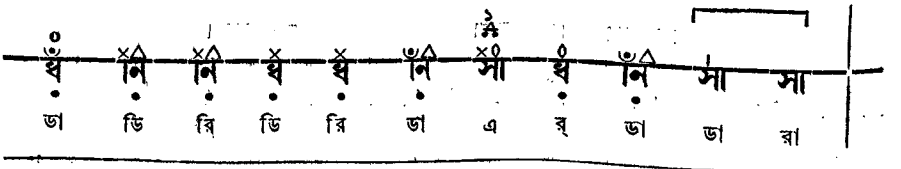

* নিধুবাবু হইতে প্রাপ্ত।

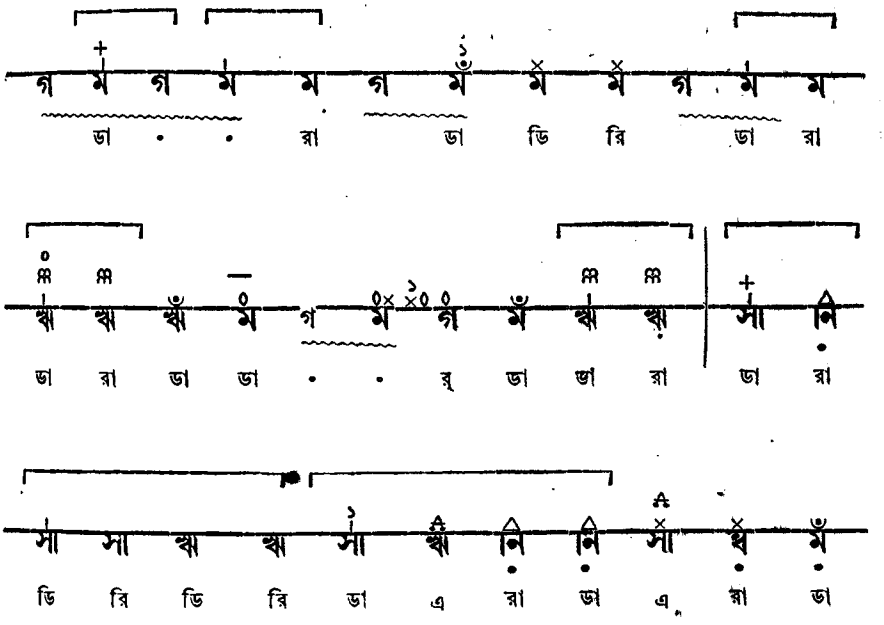
গ ম গ ম ম গ ম ম ম গ ম ম
ডা • • রা ডা ডি রি ডা রা
ঋ ঋ ঋঁ ম গ ম গ মঁ ঋ ঋ সা নি
ডা রা ডা ডা • • র্ ডা ডা রা ডা রা
সা সা ঋ ঋ সা ঋঁ নি নি সা ধ মঁ
ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা এ রা ডা

অন্তরা।

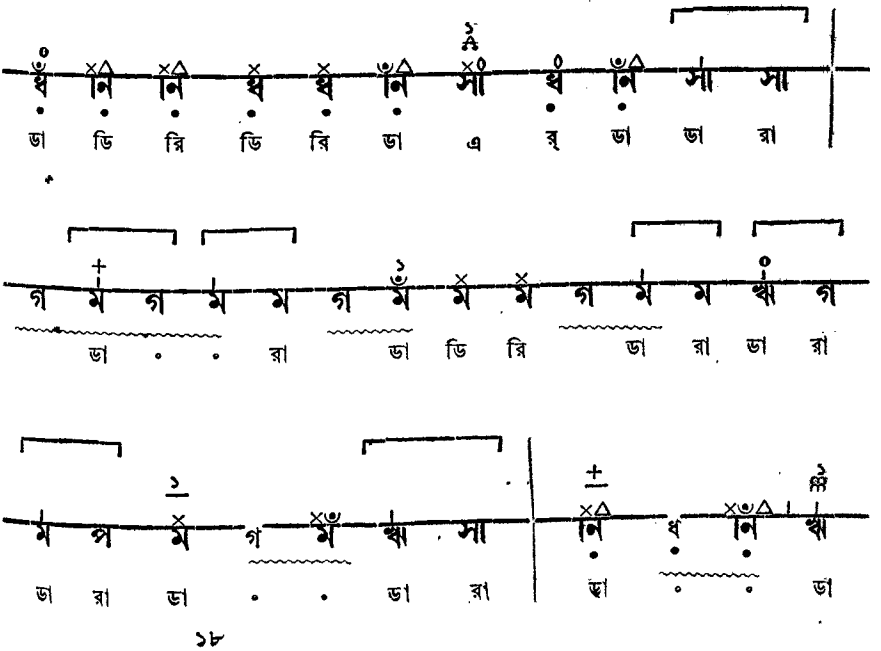
ধঁ নি নি ধ ধ নি সা ধ নি সা সা
ডা ডি রি ডি রি ডা এ র্ ডা ডা রা
গ ম গ ম ম গ মঁ ম ম গ ম ম ঋ গ
ডা • • রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ম প ম গ মঁ ঋ সা নি ধ নি ঋ
ডা রা ডা • • ডা রা ডা • • ডা

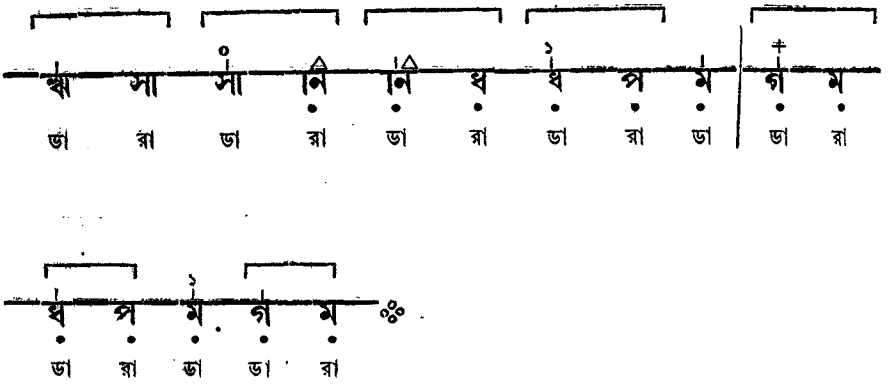

(৬৯)

সুরঠ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

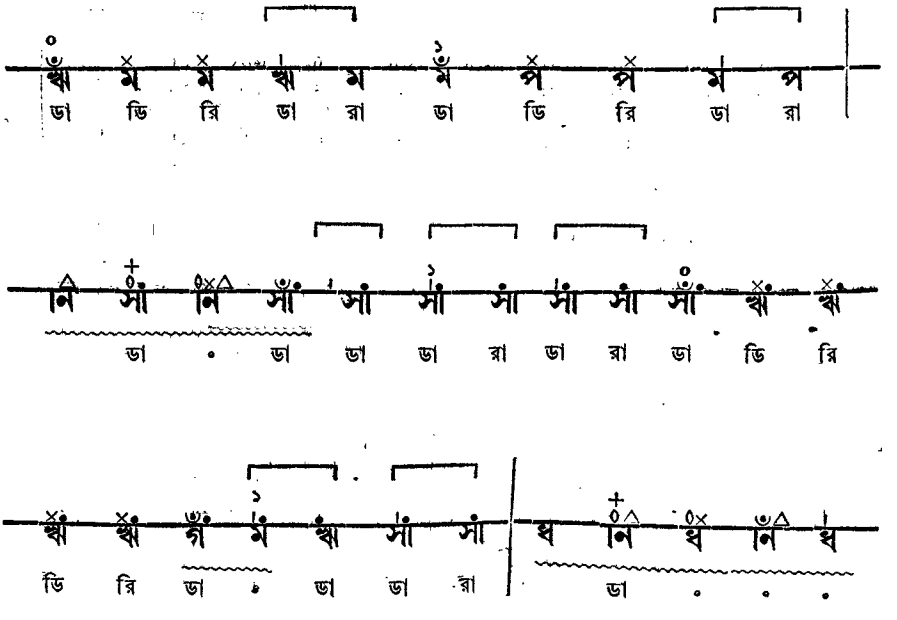

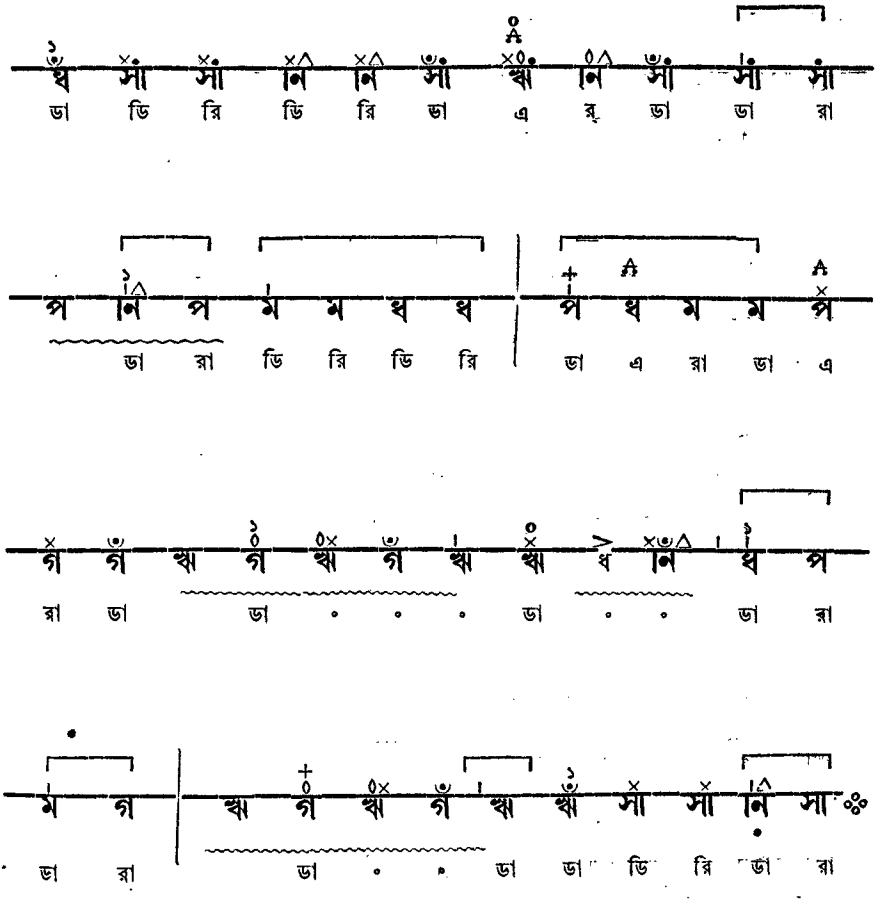

(৭০)

কেদারা—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

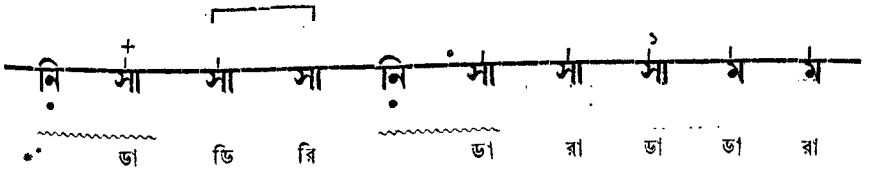

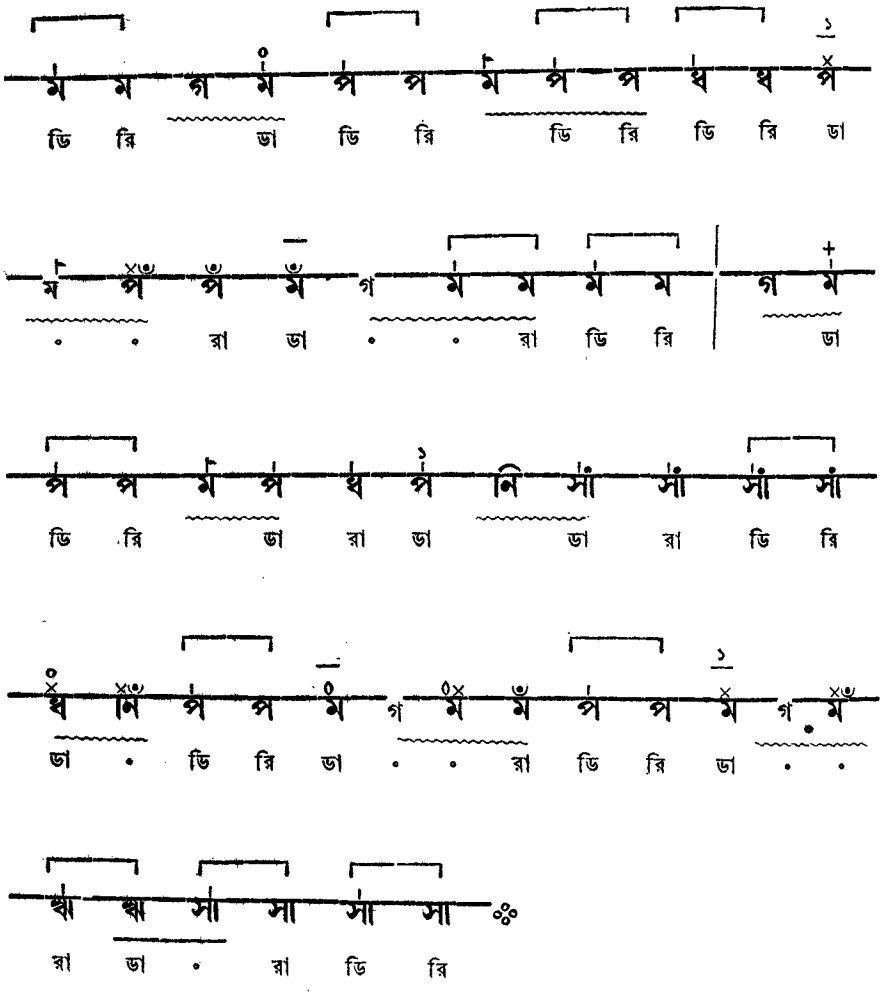

(৭১)

হাম্বির—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

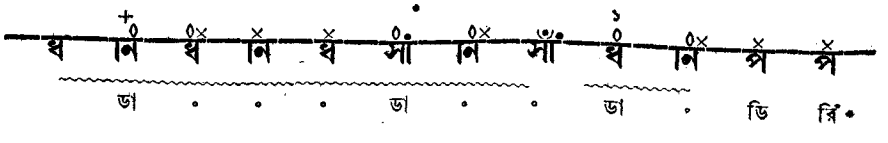

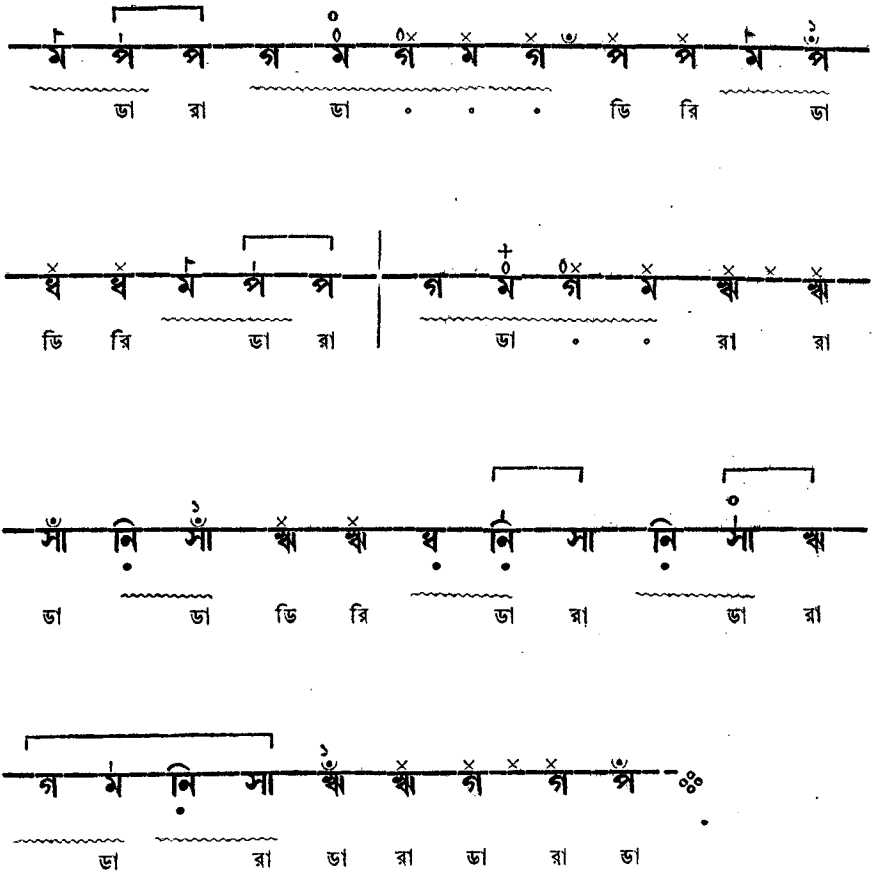

(৭২)

ইমন্-কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

দ্রুতত্রিতালী।

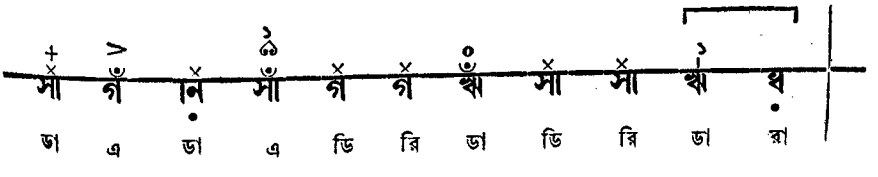

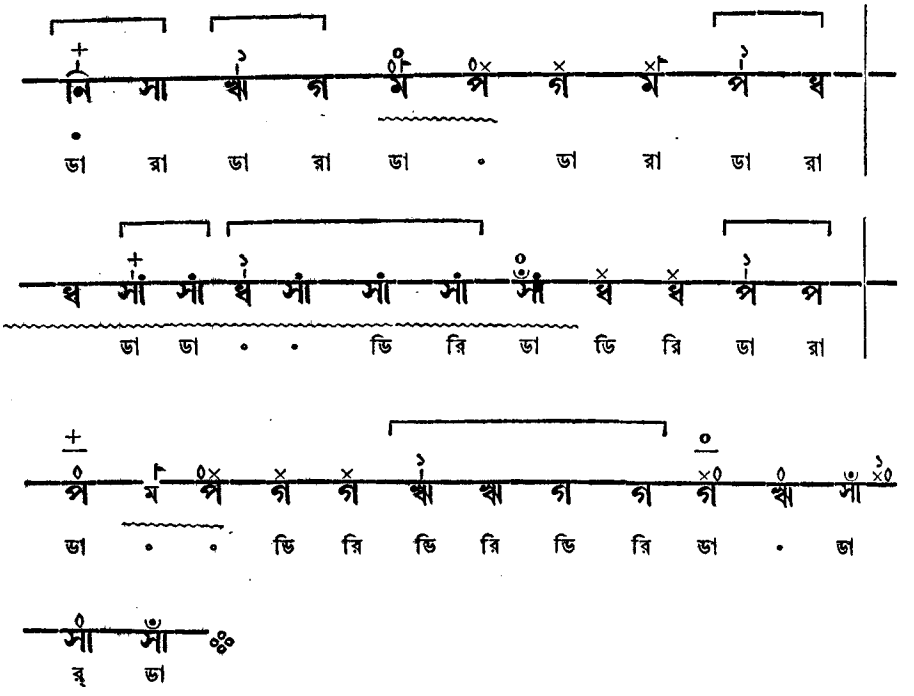

(৭৩)

জয়জয়ন্তী*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

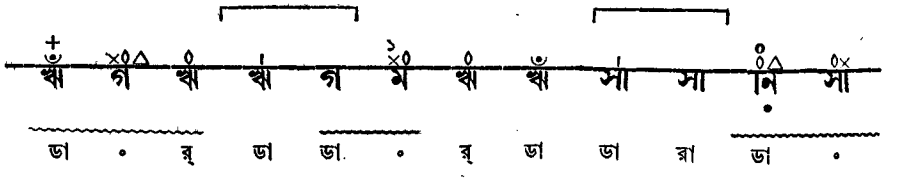

---

* কোন কোন রাগে কোন স্বরের প্রকৃত এবং বিকৃতাবস্থা উভয়ই প্রয়োজন হয়। রাগে কিঞ্চিৎ প্রবেশ না হইলে তাহাদিগের প্রয়োগ স্থির করিতে শিক্ষার্থীরা সমর্থ হইবেন না। জয়জয়ন্তী রাগে উভয় গান্ধারের প্রয়োজন, এই জন্য ঠাট লিখিবার স্থলে কোন গান্ধার দেওয়া হইল না। যে খানে যে গান্ধার লাগিবে শিক্ষার্থীরা গতের মধ্যে দেখিতে পাইবেন। অন্যান্য গৎ সম্বন্ধেও এইরূপ জানিবেন।

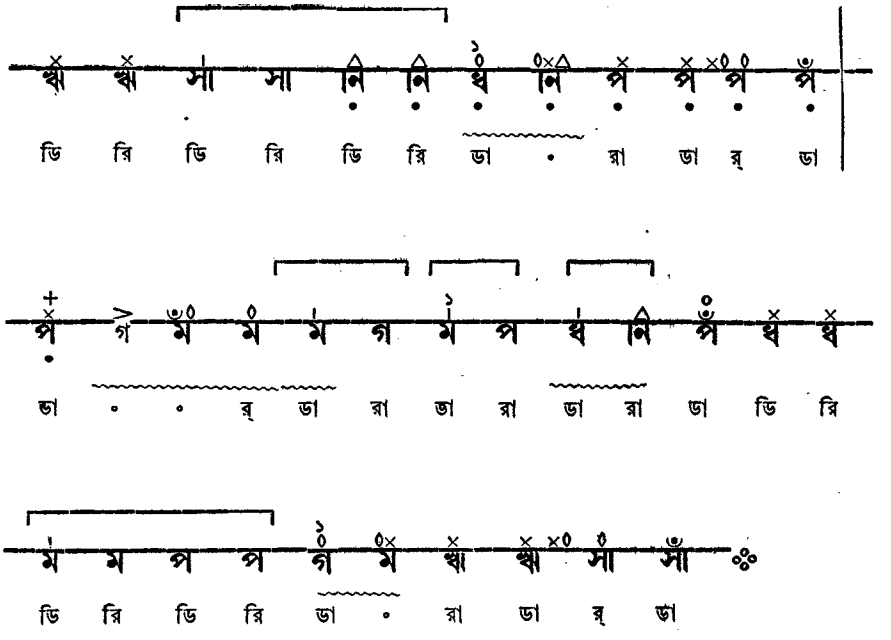

(৭৪)

ইমন্-ভূপালী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ম)

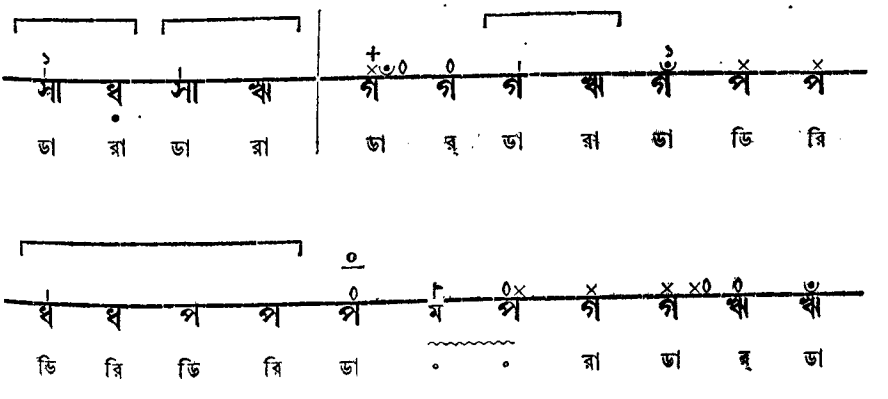

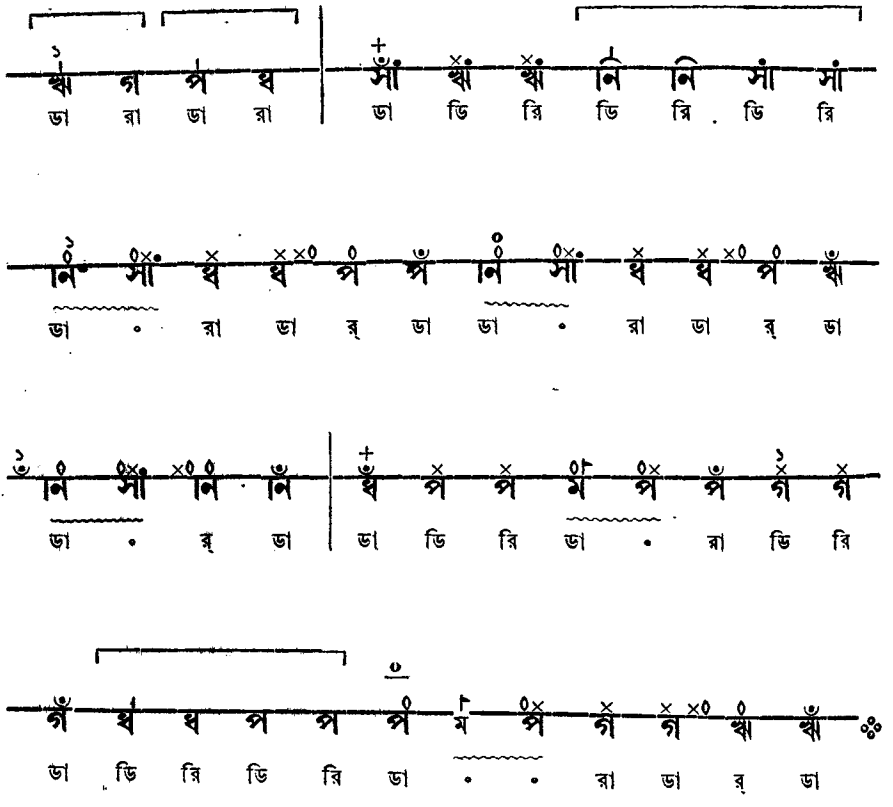

(৭৫)

মিঞার মল্লার।

মধ্যমান।

(গ নি)

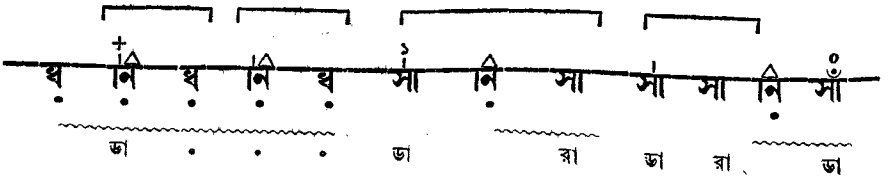

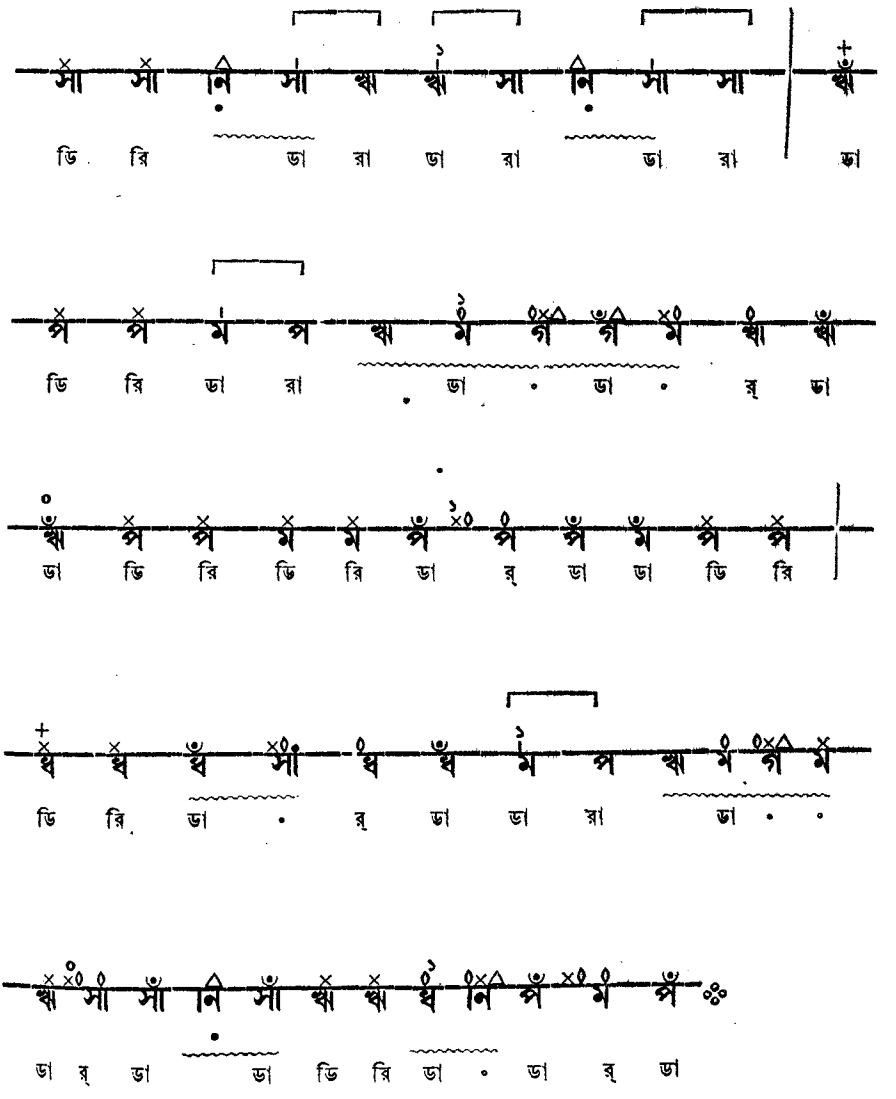
ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডি রি ডা রা ডা • ডা • র্ ডা
ডা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা ডা ডি রি
ডি রি ডা • র্ ডা ডা রা ডা • •
ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা • ডা র্ ডা

বিস্তার।

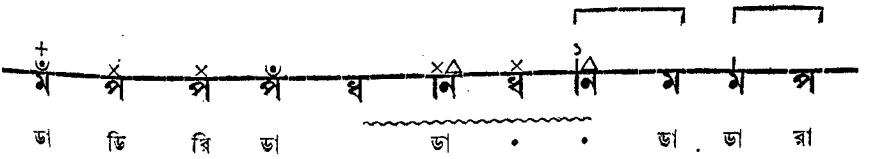
ডা ডি রি ডা ডা • • ডা ডা রা

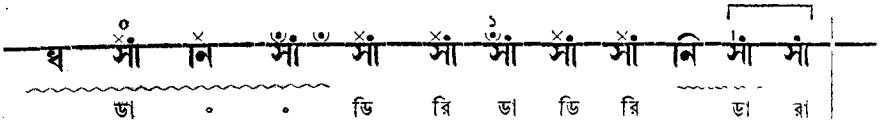
ঋ সাঁ নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ সাঁ
ডা ০ ০ ডি রি ডা ডি রি ডা রা

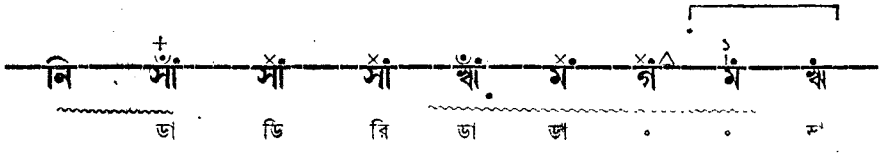
নি সাঁ সাঁ সাঁ ঋঁ মঁ গঁ মঁ ঋ
ডা ডি রি ডা ডা ০ ০ ম

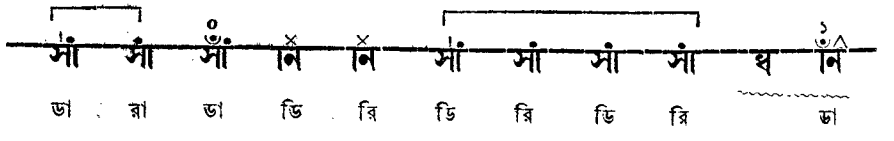
সাঁ সাঁ সাঁ নি নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ ঋ নি
ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা

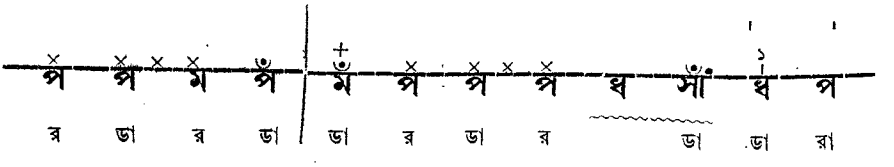
প প ম পঁ মঁ প প প ঋ সাঁ ঋ প
র ডা র ডা ডা র ডা র ডা ডা রা

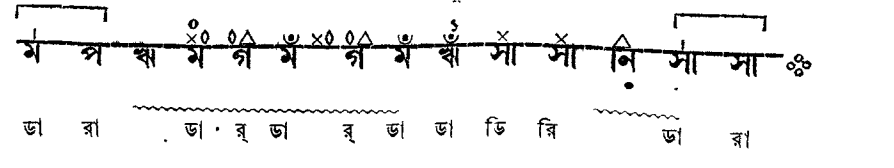
ম প ঋ মঁ গঁ মঁ গঁ মঁ ঋঁ সা সা নি সা সা
ডা রা ডা র্ ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা রা

নিপুণ বাদকগণ বাদনকালে তৃতীয়, চতুর্থ ও পঞ্চম তারে আঘাত দিয়া নানাপ্রকার স্বরকৌশল প্রদর্শন পূর্ব্বক গতাদির মধুরতা বৃদ্ধি করিয়া থাকেন। এই প্রকার স্বরকৌশল প্রদর্শন করিতে হইলে তৃতীয় তারটী দ্বিতীয় তারের সমসুরে না বাঁধিয়া উদারার নিম্ন সপ্তকের পঞ্চম করিয়া বাঁধিতে হয়; সুতরাং সেই তার হইতে প্রথম সারিকায় কোমল ধৈবত, দ্বিতীয় সারিকায় ধৈবত ও তৃতীয় সারিকায় নিষাদ সম্পন্ন হয়। চতুর্থ প্রভৃতি অপরাপর সারিকায়ও শ্রুতি-বিভাগানুযায়িক অন্যান্য স্বরও উৎপন্ন হইতে পারিবে; এবং স্বরলিপি-বদ্ধ করিবার সময় ঐ সকল স্বরের নিম্নে এক একটী ক্ষুদ্রাক্ষরে "তৃ" দেওয়া যাইবে। চতুর্থ তারোৎপন্ন স্বর লিপিবদ্ধ করিবার সময় তাহার নিম্নে একটী ক্ষুদ্র "চ" লিখিত হইবে। কখন কখন পাঁচ চিহ্নবিশিষ্ট তারে সারিকাযোগে উদারার নিম্ন সপ্তকের ঋষভাদি স্বরও প্রদর্শিত হইয়া থাকে। স্বরলিপির মধ্যগত এই সকল স্বরের নিম্নে সপ্তক জ্ঞাপক শূন্য চিহ্নযোগে একটী ক্ষুদ্র "প" দেওয়া থাকিবে।

শ্রেষ্ঠালঙ্কার বা ছেড়।

গতাদি বাদনকালে যে কোন তারে যে কোন স্বর প্রকাশ করিয়া নায়কী ও আহত তার ভিন্ন অন্যান্য তারে বিভিন্নরূপে মাত্রানুযায়ী আঘাত করত যে বাদনক্রিয়া নিষ্পন্ন করা যায়, তাহার নাম ছেড়। বস্তুতঃ ছেড় সুর সংযোগ ভিন্ন আর কিছুই নহে। আলাপে ছেড়ের বহুবিধ কৌশল প্রদর্শিত হইয়া থাকে। যে সকল গতের মধ্যে মধ্যে ছেড় দেওয়া যায়, তাহাদিগকে ছেড়সংযুক্ত গত বলে। ছেড় লিখিবার রীতি এই, গতাদির স্বরলিপির নিম্নে একটী অতিরিক্ত রেখা টানিয়া তাহাতে ছেড়ের স্বরগুলি মাত্রাদি প্রয়োজনীয় চিহ্নসহ লিখিত হইবে। ছেড়যুক্ত স্বরনিবন্ধনীর সহিত সঙ্গতের বোল লিখিবার প্রয়োজন হইলে ঐ অতিরিক্ত রেখার নিম্নে সঙ্গত রেখায় লেখা উচিত।

ছেড় সাধন।

অনুলোম।

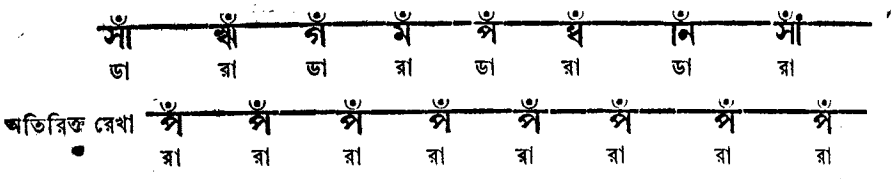

অনুলোম।

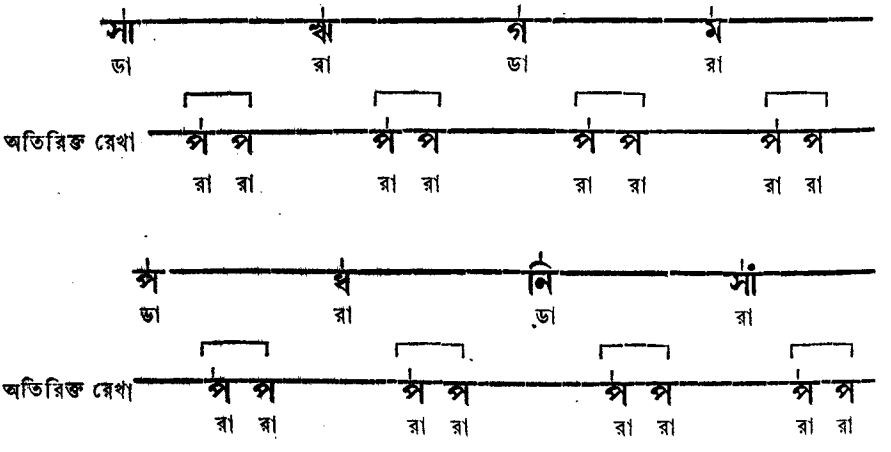

অনুলোম।

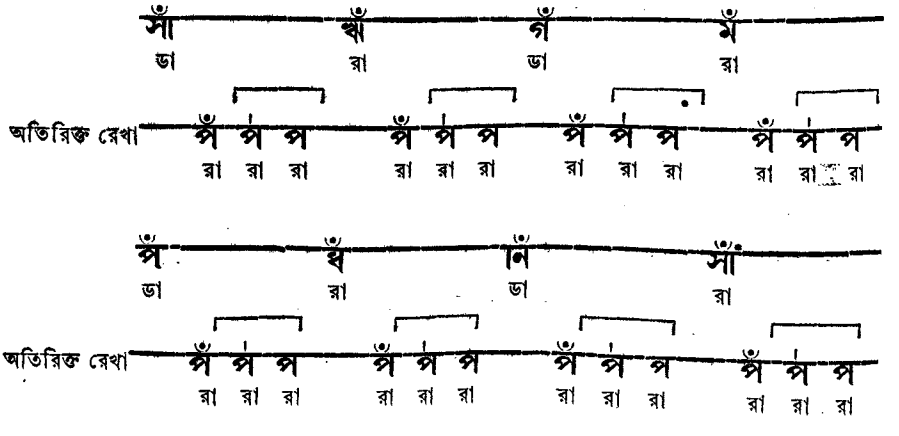

অনুলোম।

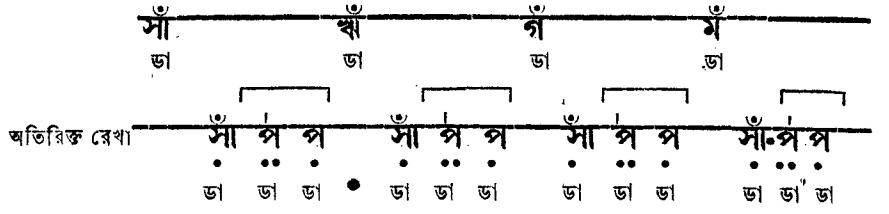
সাঁ ঋাঁ গাঁ মাঁ
ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
সাঁ পাঁ পাঁ সাঁ পাঁ পাঁ সাঁ পাঁ পাঁ সাঁ পাঁ পাঁ
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা

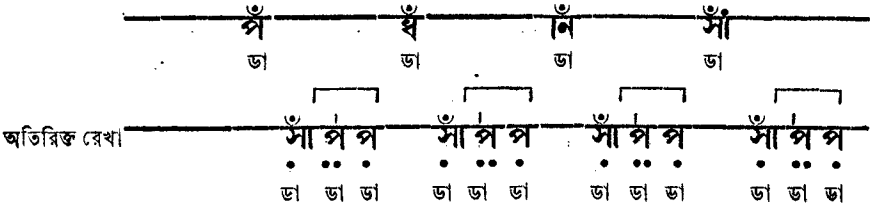
পাঁ ধাঁ নাঁ সাঁ
ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
সাঁ পাঁ পাঁ সাঁ পাঁ পাঁ সাঁ পাঁ পাঁ সাঁ পাঁ পাঁ
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা

অনুলোম।

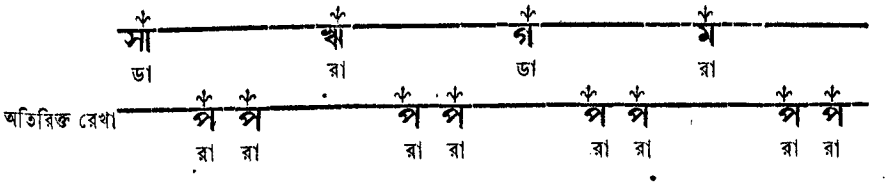
সাঁ ঋাঁ গাঁ মাঁ
ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ
রা রা রা রা রা রা রা রা

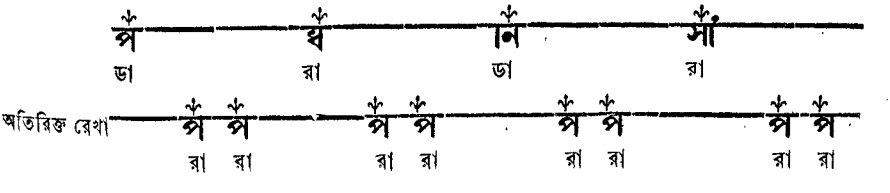
পাঁ ধাঁ নাঁ সাঁ
ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ পাঁ
রা রা রা রা রা রা রা রা

অনুলোম।

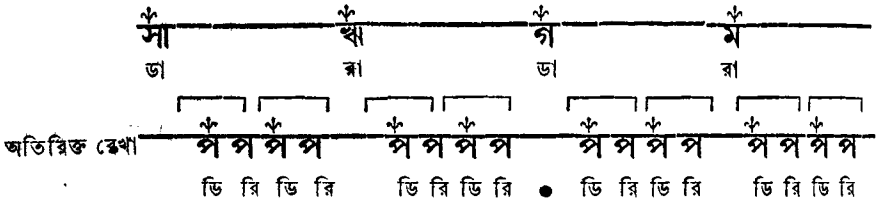
সা ঋ গ ম
ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প প প প প প প প প প প
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

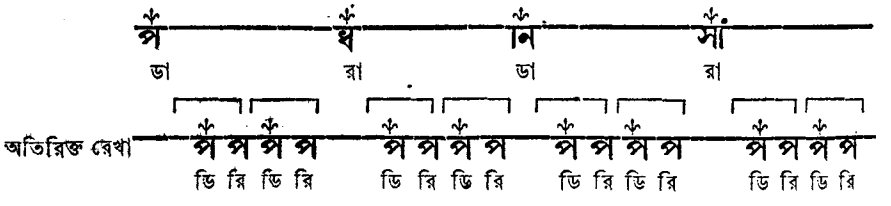
প ধ নি সাঁ
ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প প প প প প প প প প প
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

অনুলোম।

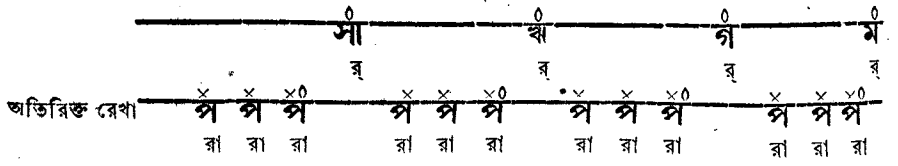
সা ঋ গ ম
র্ র্ র্ র্
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প প প প প প প প প প প
রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা

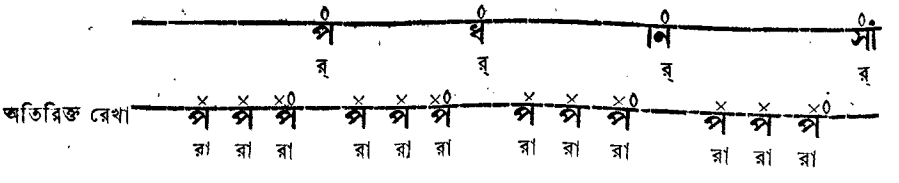
প ধ নি সাঁ
র্ র্ র্ র্
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প প প প প প প প প প প
রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা রা

মিশ্র সাধন।

অনুলোম।

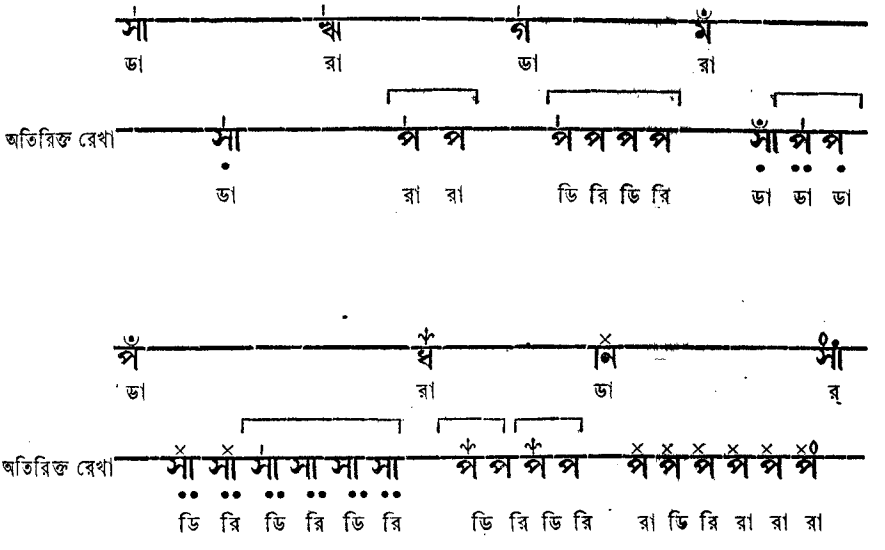

(৭৬)

ইমন্ কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

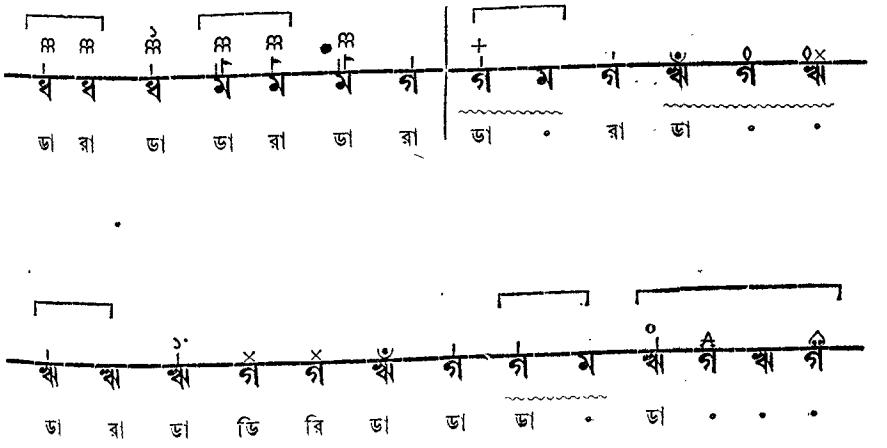

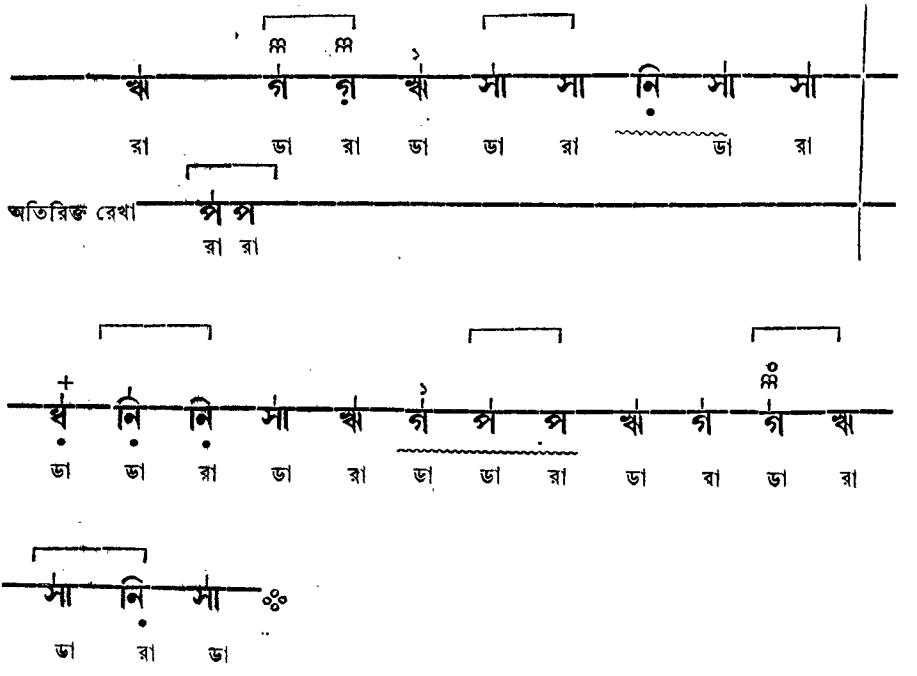

(৭৭)

সিন্ধু—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

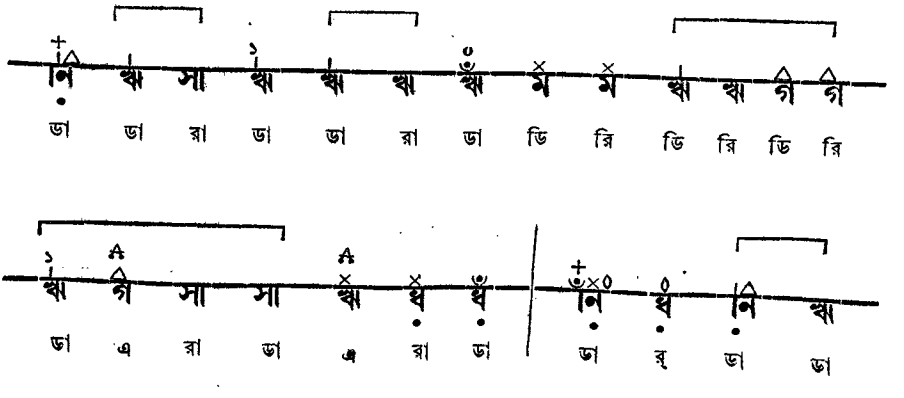

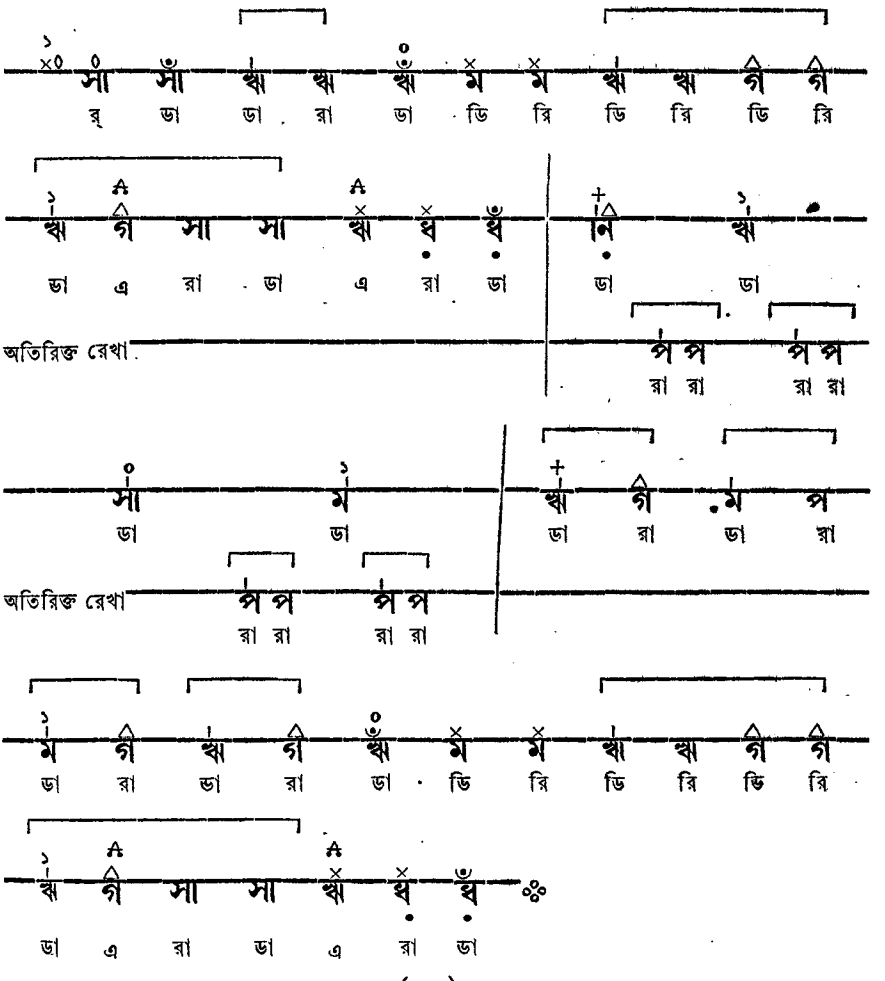
সা সাঁ ঋ ঋ ঋঁ ম ম ঋ ঋ গ গ
র্ ডা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ঋ গ সা সা ঋ ধ ধঁ নি ঋ
ডা এ রা ডা এ রা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
রা রা রা রা
সা ম ঋ গ ম প
ডা ডা ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
রা রা রা রা
ম গ ঋ গ ঋঁ ম ম ঋ ঋ গ গ
ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ঋ গ সা সা ঋ ধ ধঁ
ডা এ রা ডা এ রা ডা

(৭৮)

যোগিঞা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ)

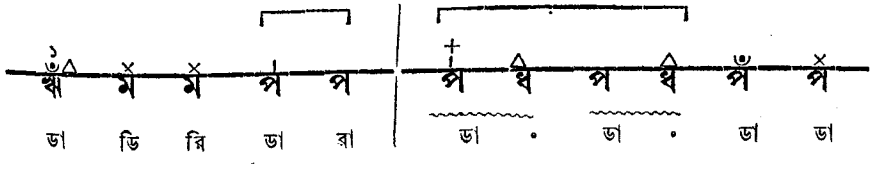

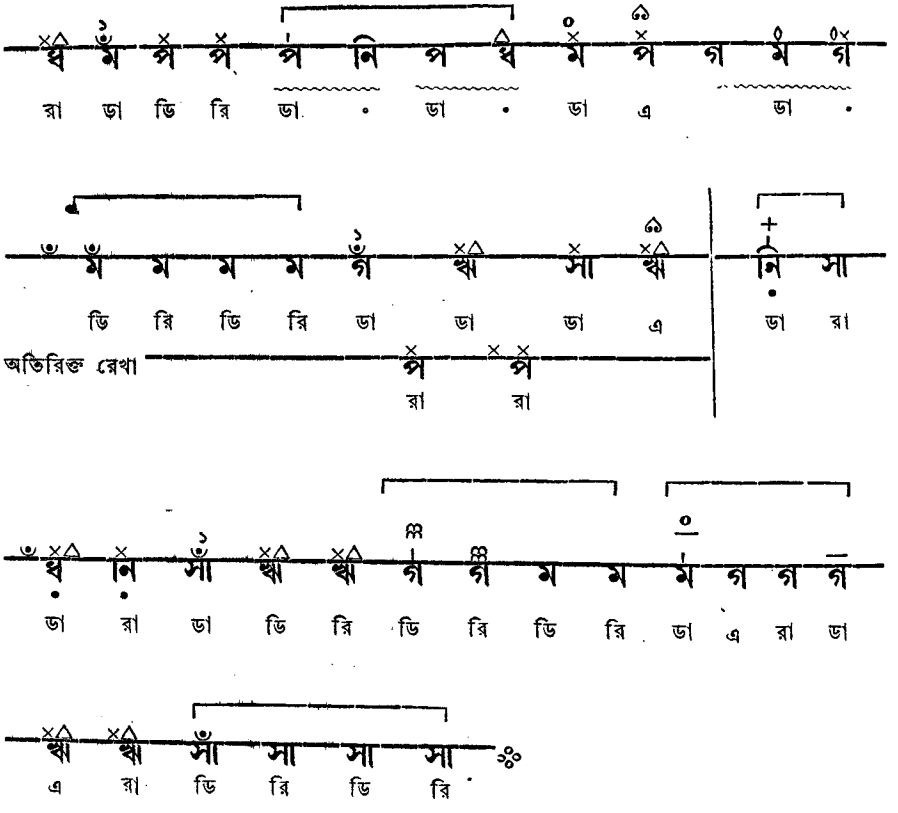

(৭৯)

হাম্বির*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

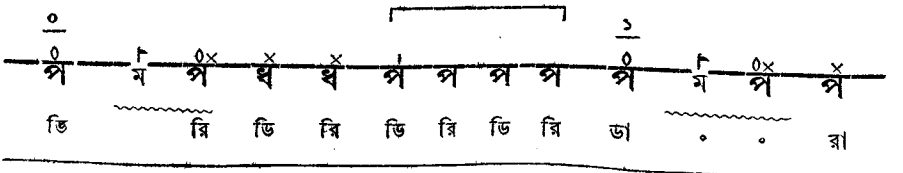

* ওস্তাদ্‌জী লছ্‌মীপ্রসাদ হইতে প্রাপ্ত।

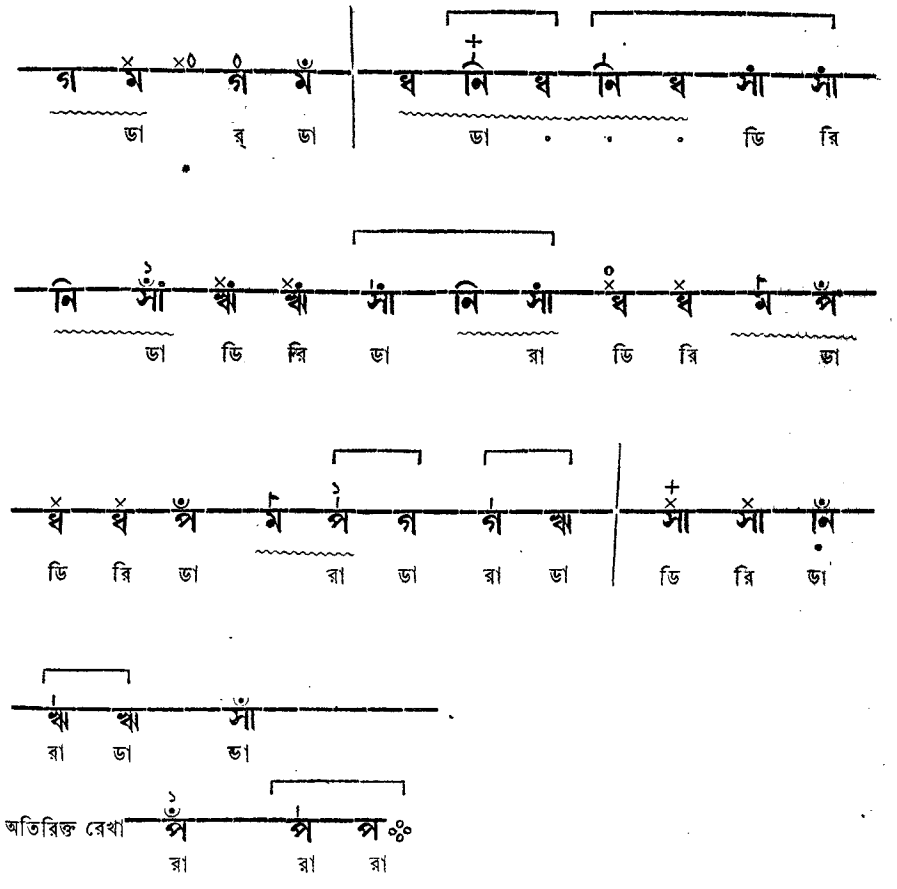

(৮০)

গৌড়সারঙ্গ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

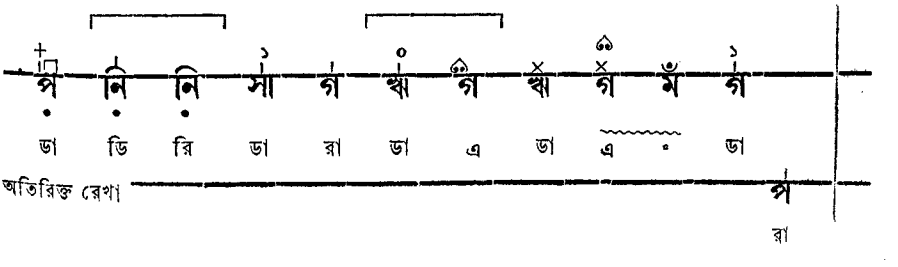

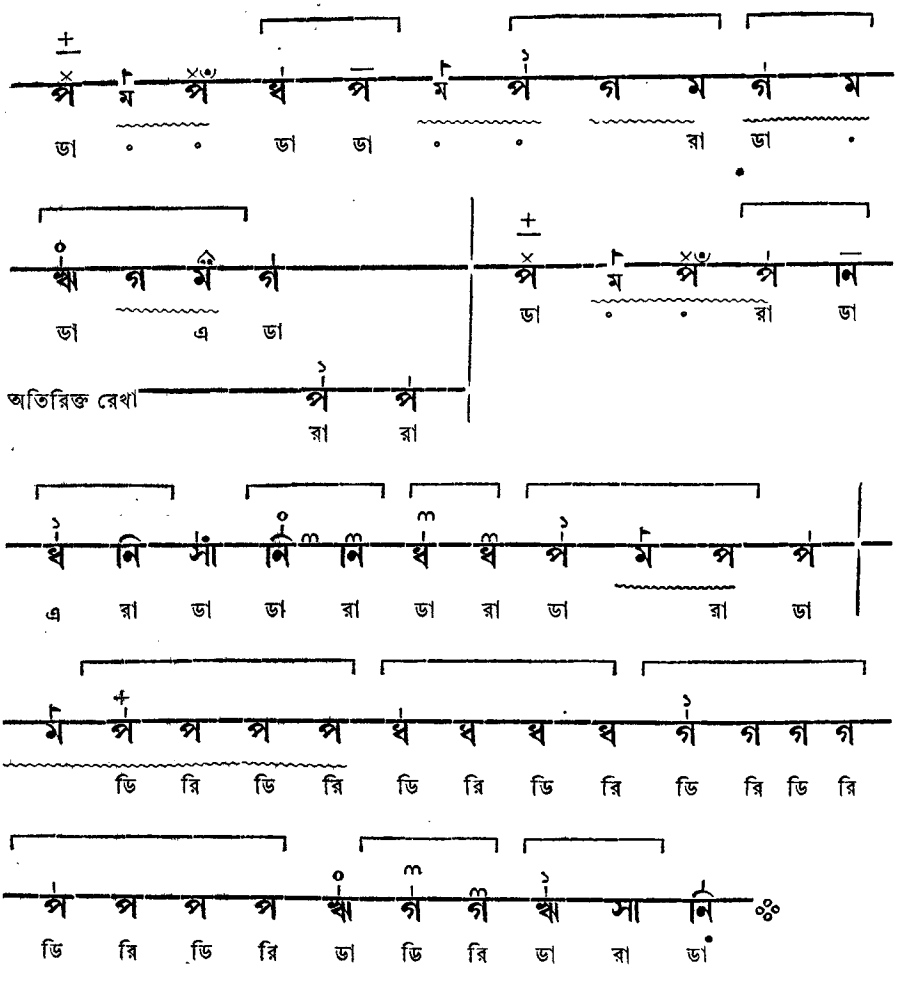

(৮১)

সিন্ধু—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(গ নি)

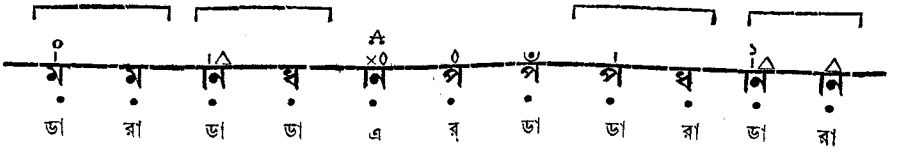

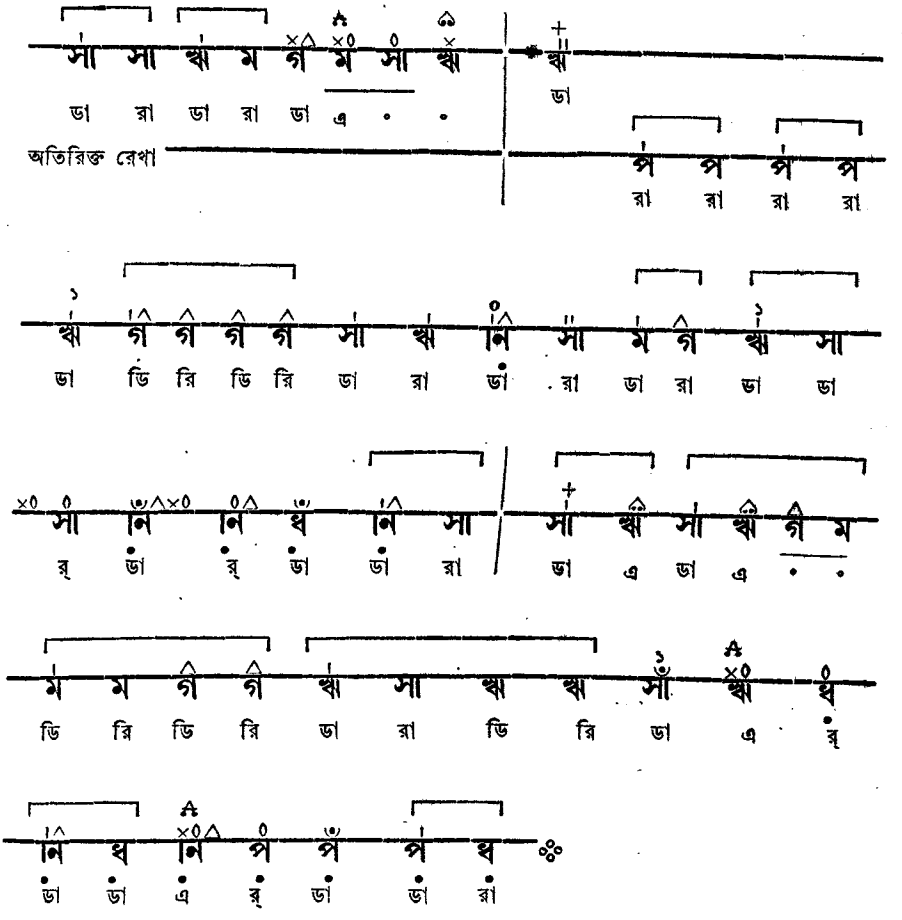
সা সা ঋ ম গ ম সা ঋ ঋ প প প প
ডা রা ডা রা ডা এ • • ডা রা রা রা রা
অতিরিক্ত রেখা
ঋ গ গ গ গ সা ঋ নি সা ম গ ঋ সা
ডা ডি রি ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা
সা নি নি ধ নি সা সা ঋ সা ঋ গ ম
র্ ডা র্ ডা ডা রা ডা এ ডা এ • •
ম ম গ গ ঋ সা ঋ ঋ সাঁ ঋ ধ
ডি রি ডি রি ডা রা ডি রি ডা এ র্
নি ধ নি প প প ধ ❋
ডা ডা এ র্ ডা ডা রা

(৮২)

কেদারা*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

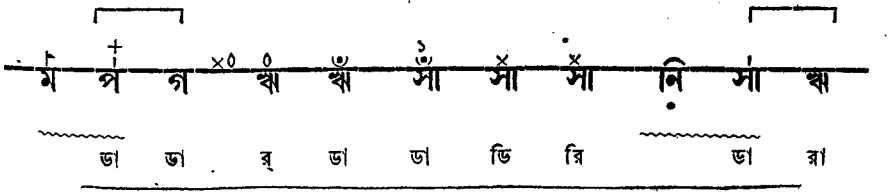

* ওস্তাদ্‌জী লছমীপ্রসাদ হইতে প্রাপ্ত।

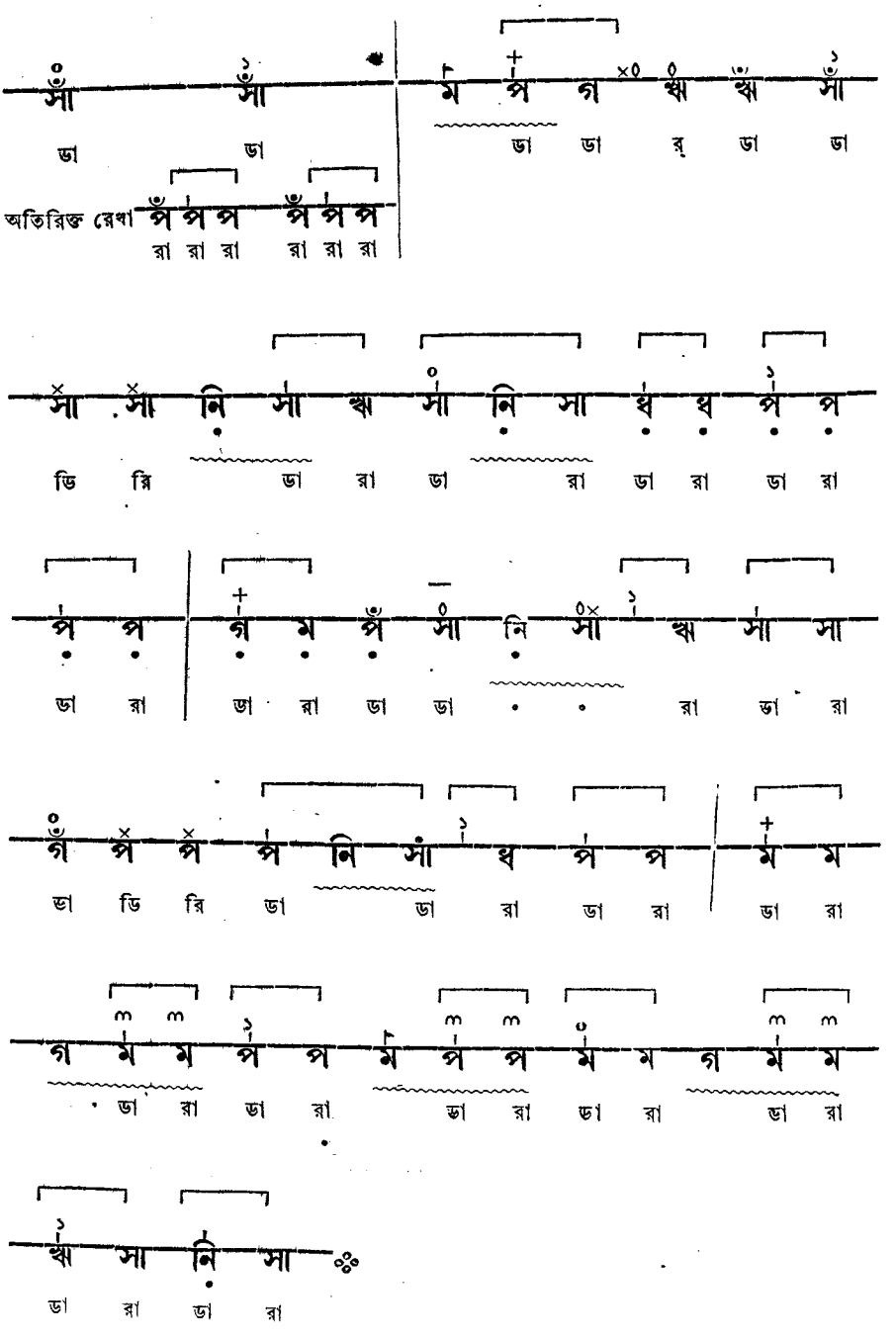
সাঁ সাঁ মা পা গা ঋা ঋা সাঁ
ডা ডা ডা ডা ব্ ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা পাঁ পা পা পাঁ পা পা
রা রা রা রা রা রা
সা সা নি সা ঋা সা নি সা ধা ধা পা পা
ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা
পা পা গা মা পাঁ সা নি সা ঋা সা সা
ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা রা
গাঁ পাঁ পাঁ পা নি সাঁ ধা পা পা মা মা
ডা ডি রি ডা ডা রা ডা রা ডা রা
গ মা মা পা পা মা পা পা মা মা গ মা মা
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা
ঋা সা নি সা
ডা রা ডা রা

(৮৩)

ভূপ-কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

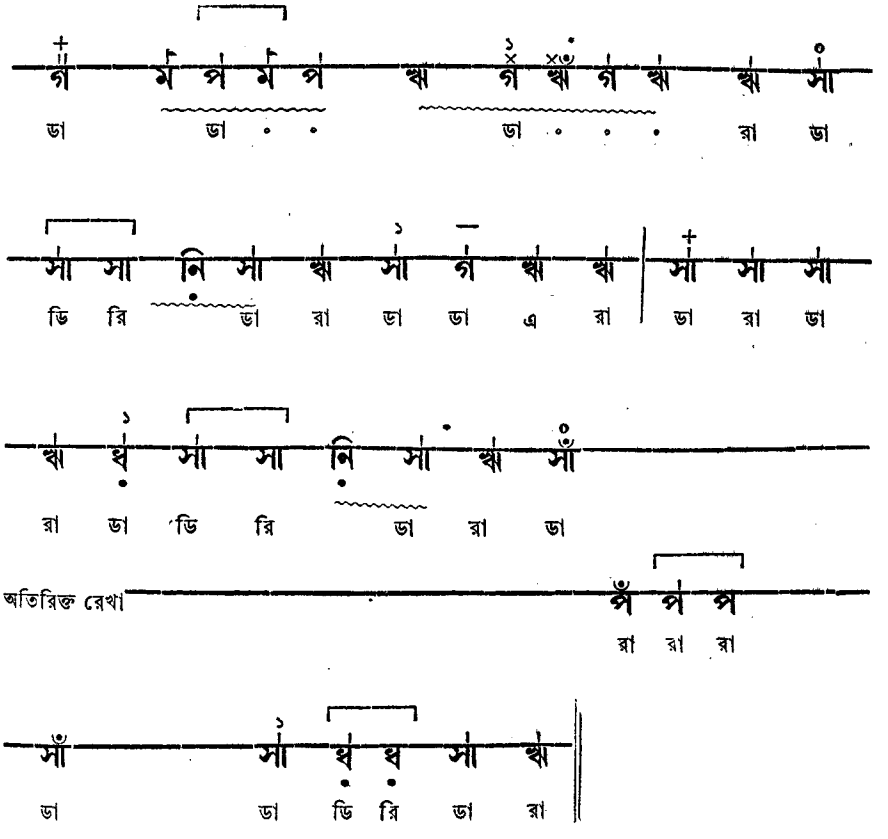

অন্তরা

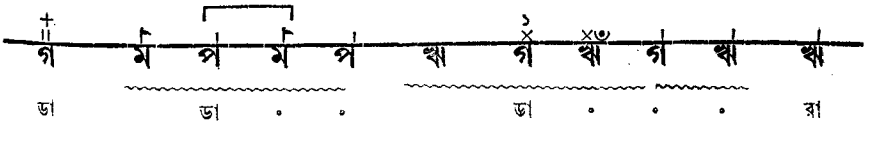

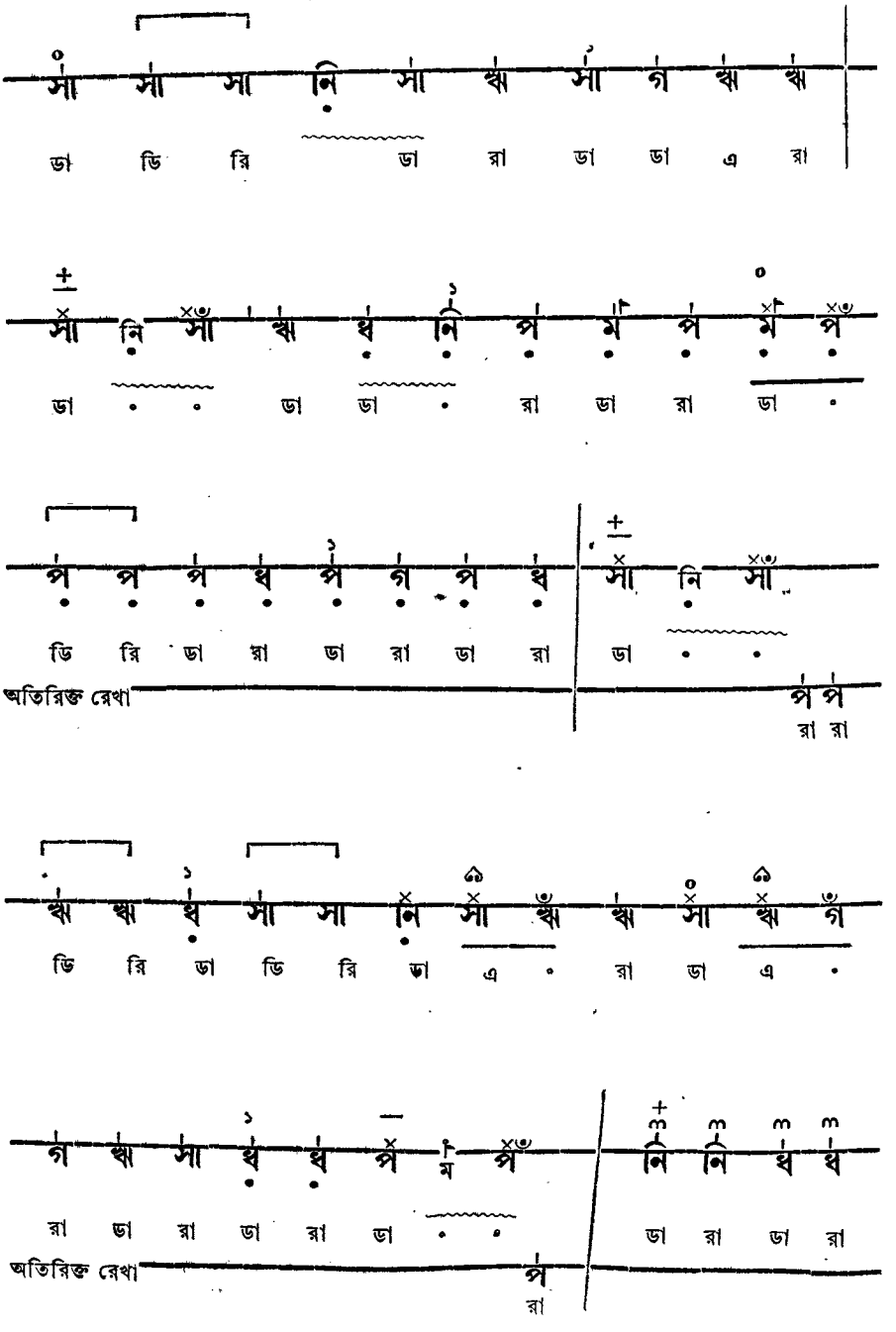
সা সা সা নি সা ঋ সা গ ঋ ঋ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডা এ রা
সা নি সাঁ ঋ ধ নি প ম প ম প
ডা ডা ডা রা ডা রা ডা
প প প ধ প গ প ধ সা নি সা
ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প
রা রা
ঋ ঋ ধ সা সা নি সা ঋ ঋ সা ঋ গ
ডি রি ডা ডি রি ডা এ রা ডা এ
গ ঋ সা ধ ধ প ম প নি নি ধ ধ
রা ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
প
রা

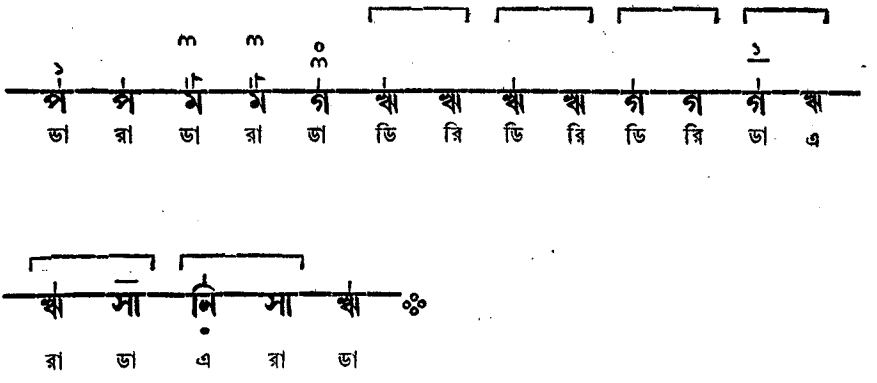

(৮৪)

হাম্বির—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

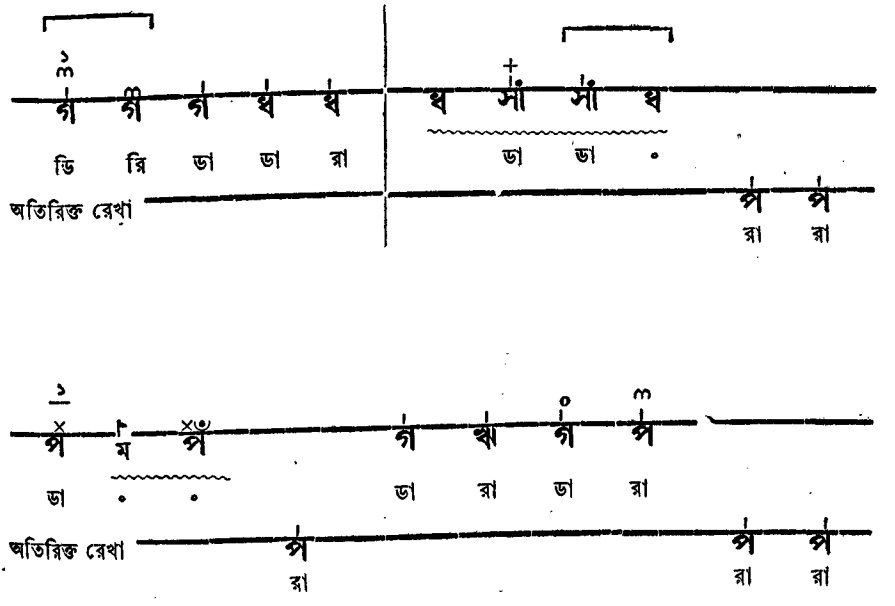

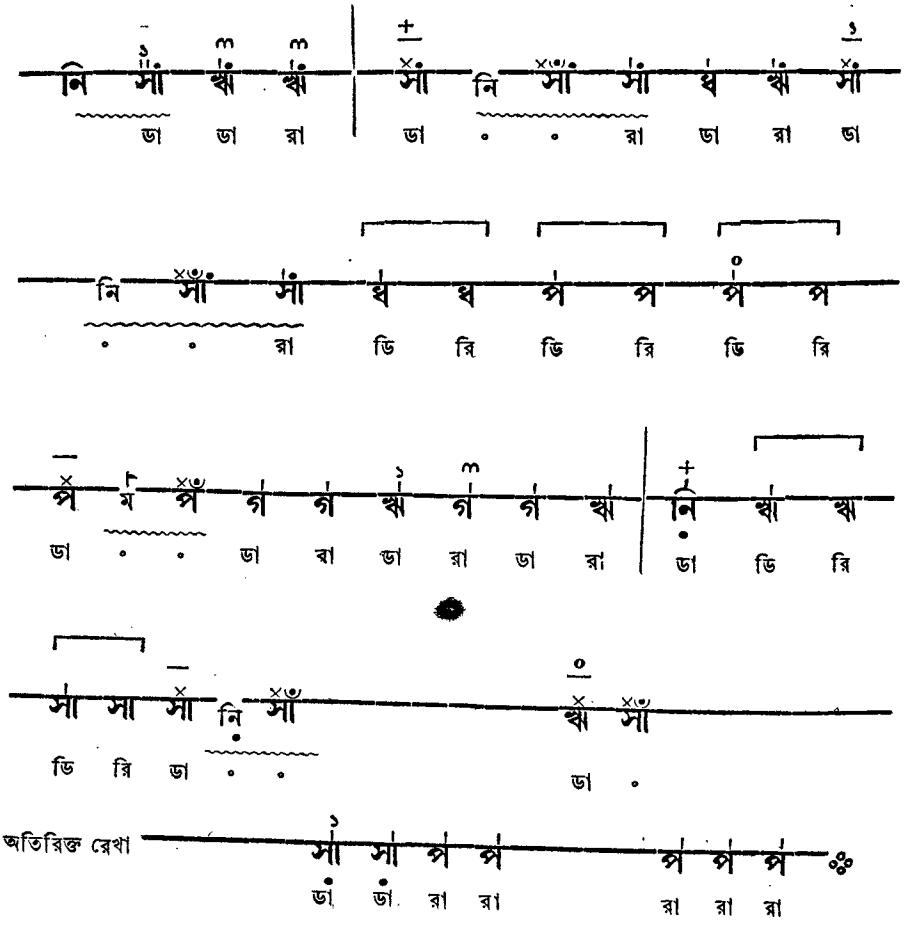

(৮৫)

কেদারা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

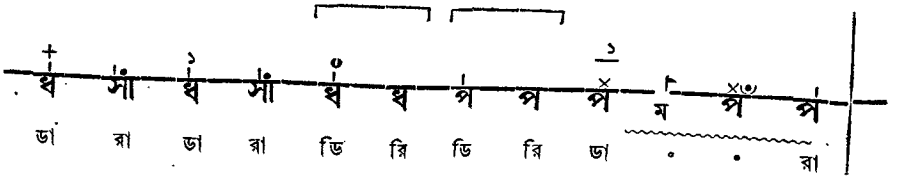

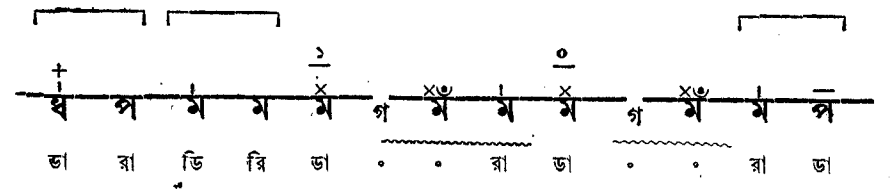
ধ প ম ম ম গ ম ম ম গ ম ম প
ডা রা ডি রি ডা ০ ০ রা ডা ০ ০ রা ডা

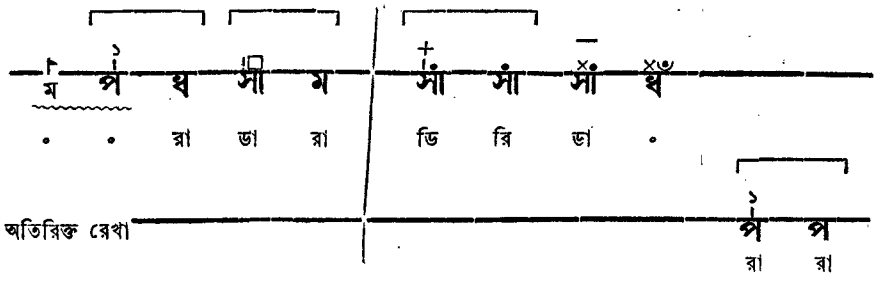
ম প ধ সাঁ ম সাঁ সাঁ সাঁ ধ
০ ০ রা ডা রা ডি রি ডা ০
অতিরিক্ত রেখা
প প
রা রা

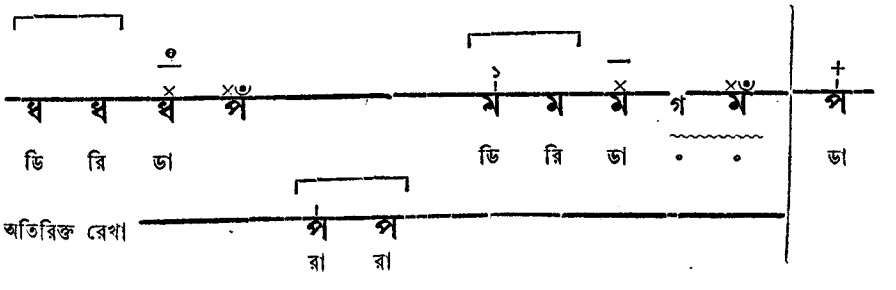
ধ ধ ধ প ম ম ম গ ম প
ডি রি ডা ডি রি ডা ০ ০ ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প
রা রা

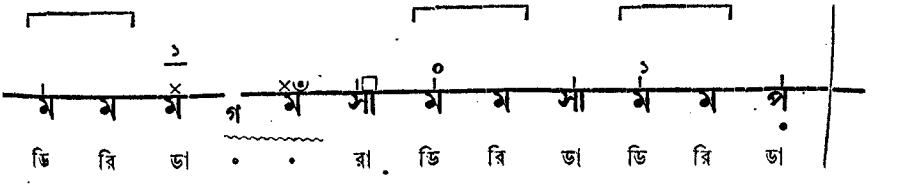
ম ম ম গ ম সা ম ম সা ম ম প
ডি রি ডা ০ ০ রা ডি রি ডা ডি রি ডা

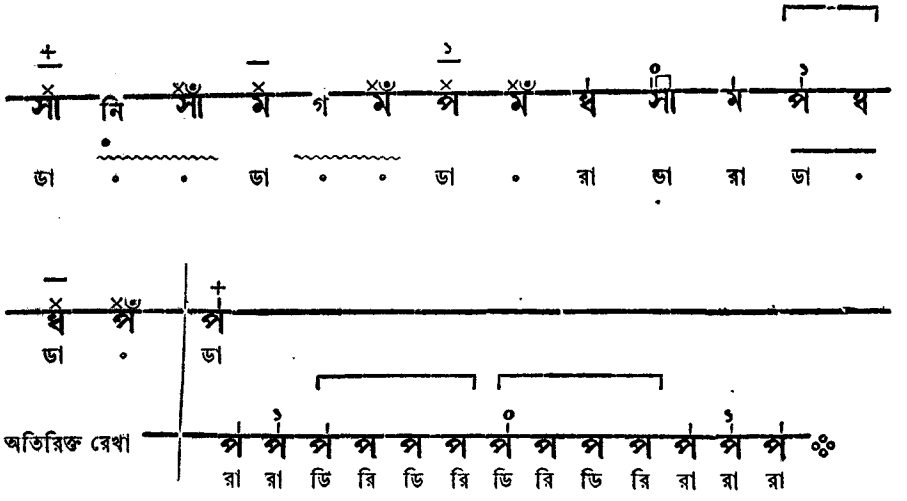

(৮৬)

গৌড়-সারঙ্গ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

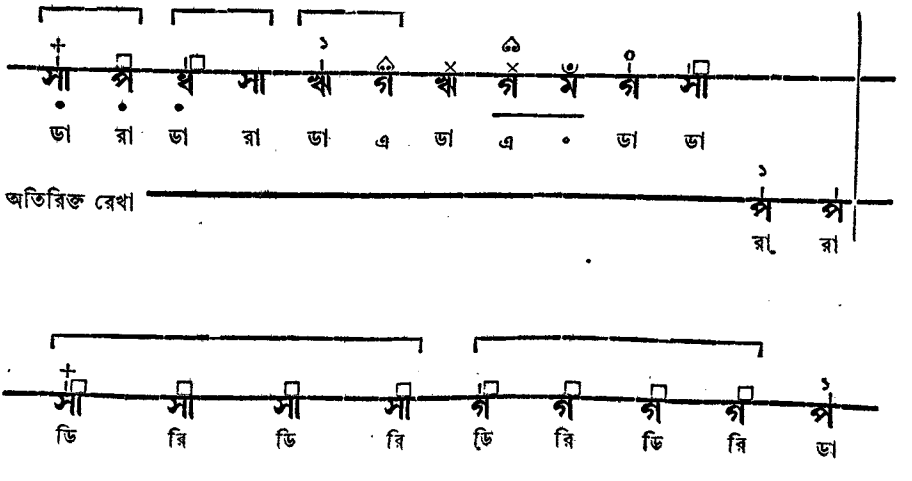

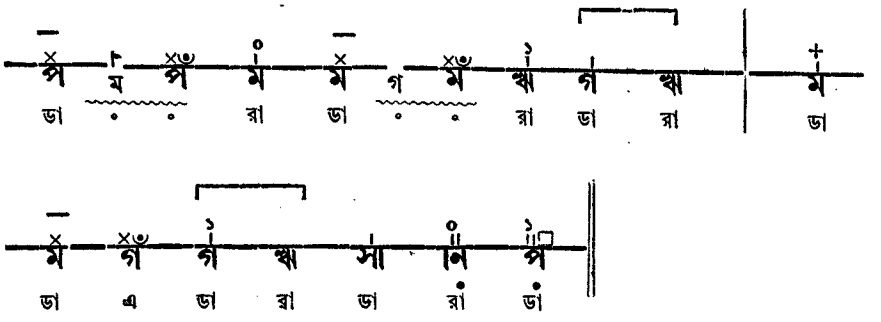
প ম পঁ ম ম গ মঁ ঋ গ ঋ | ম
ডা রা ডা রা ডা রা | ডা
ম গঁ গ ঋ সা নি প
ডা এ ডা রা ডা রা ডা

অন্তরা

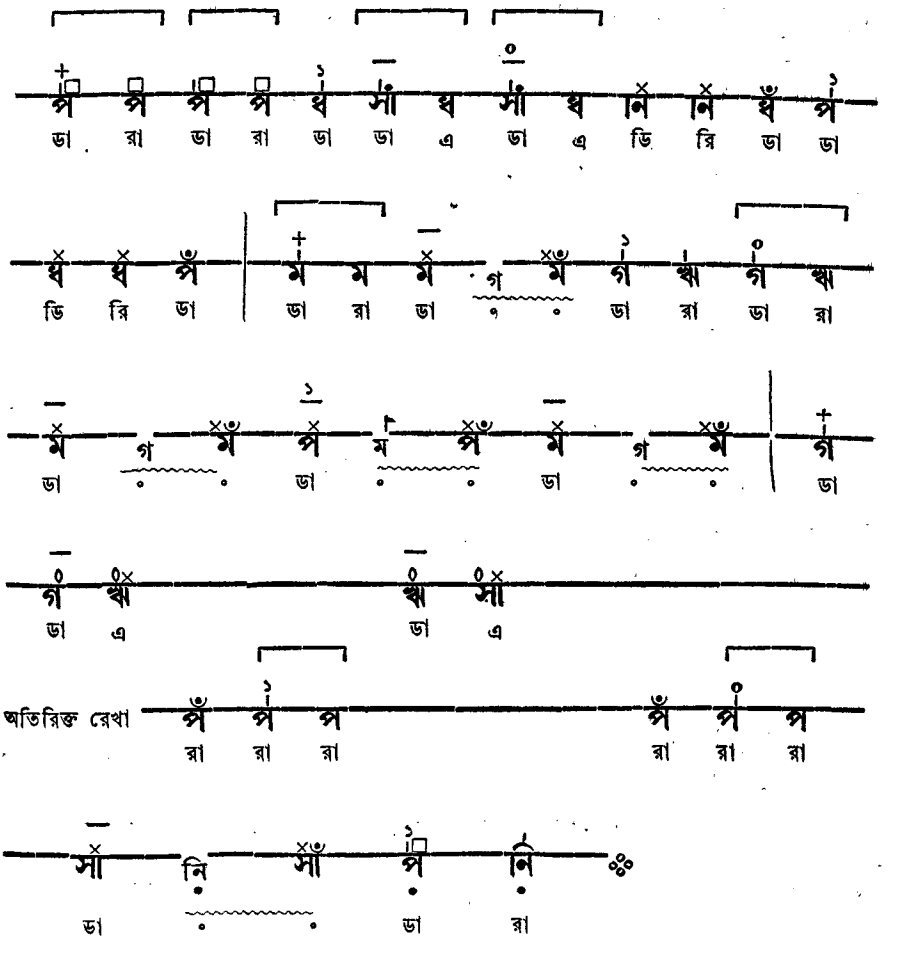
প প প প ধ সাঁ ধ সাঁ ধ নি নি ধঁ প
ডা রা ডা রা ডা ডা এ ডা এ ডি রি ডা ডা
ধ ধ পঁ | ম ম ম গ মঁ গ ঋ গ ঋ
ডি রি ডা | ডা রা ডা ডা রা ডা রা
ম গ মঁ প ম পঁ ম গ মঁ | গ
ডা ডা ডা ডা | ডা
গ ঋ ঋ সা
ডা এ ডা এ
অতিরিক্ত রেখা পঁ প প পঁ প প
রা রা রা রা রা রা
সা নি সাঁ প নি
ডা ডা রা

(৮৭)

পূরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ—ম)

আস্থায়ী।

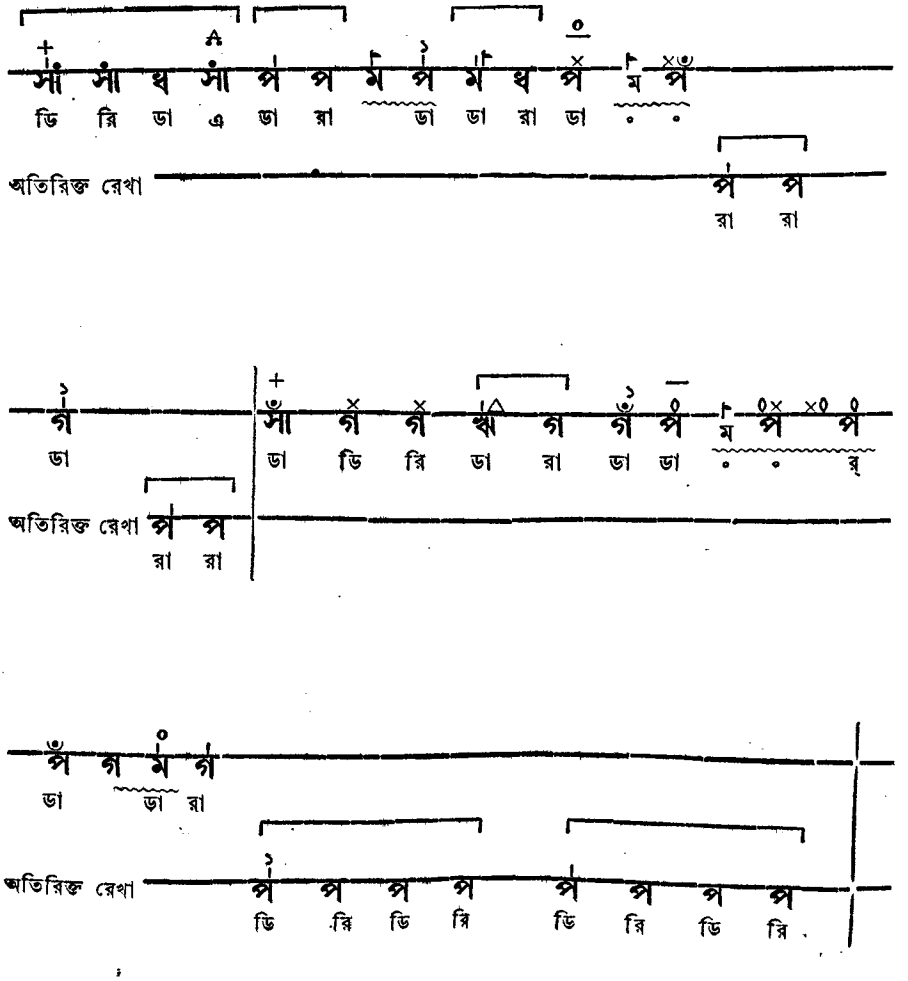

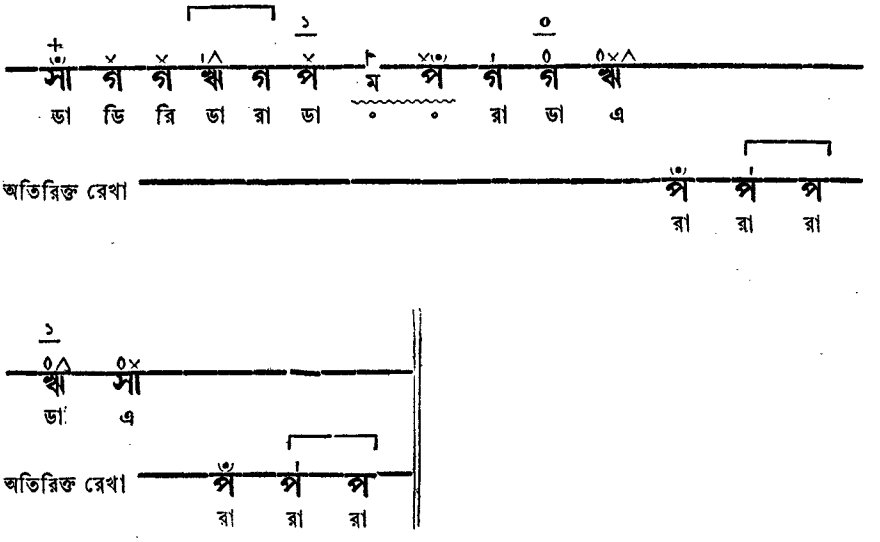
সাঁ গ গ ঋ গ প ম প গ গ ঋ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
প প প
রা রা রা
ঋ সা
ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
প প প
রা রা রা

অন্তরা।

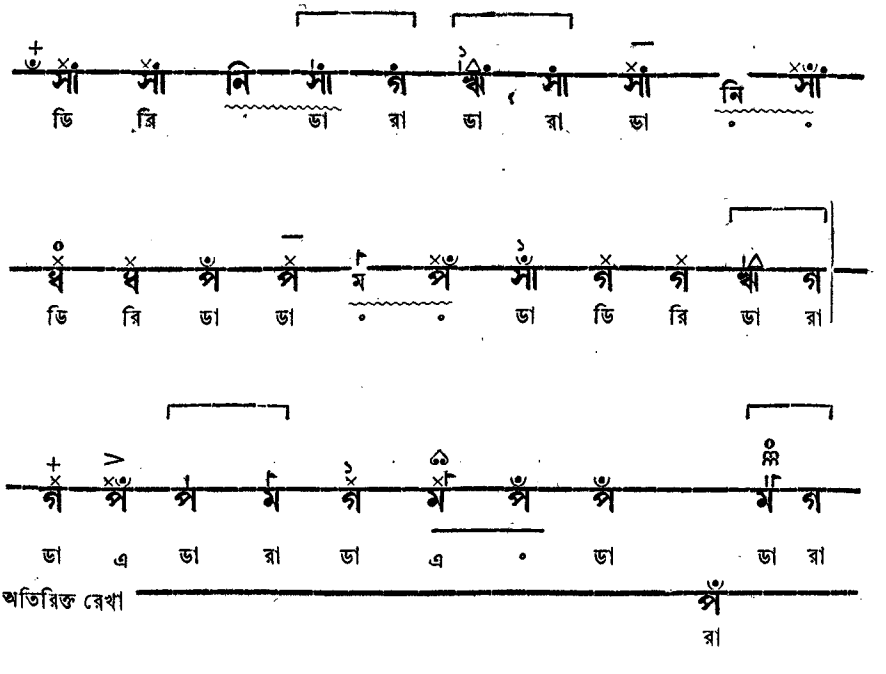
সাঁ সাঁ নি সাঁ গ ঋ সাঁ সাঁ নি সাঁ
ডি রি ডা রা ডা রা ডা
ধ ধ প প ম প সাঁ গ গ ঋ গ
ডি রি ডা ডা ডা ডি রি ডা রা
গ প প ম গ ম প প ম গ
ডা এ ডা রা ডা এ ডা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
প
রা

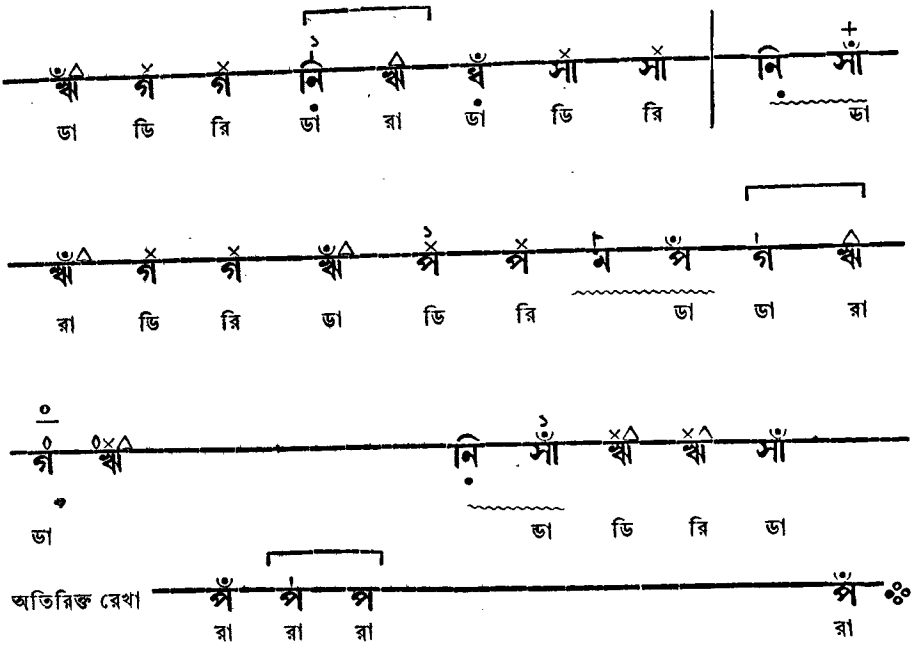

(৮৮)

ইমন—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

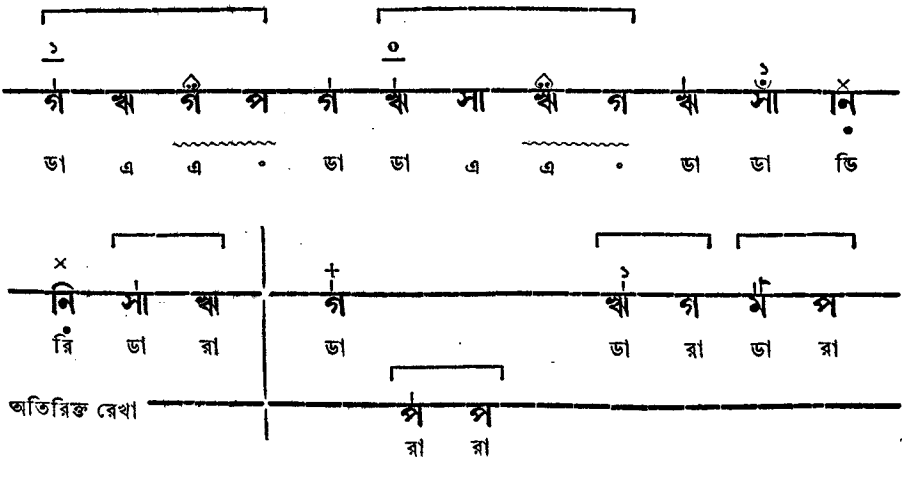

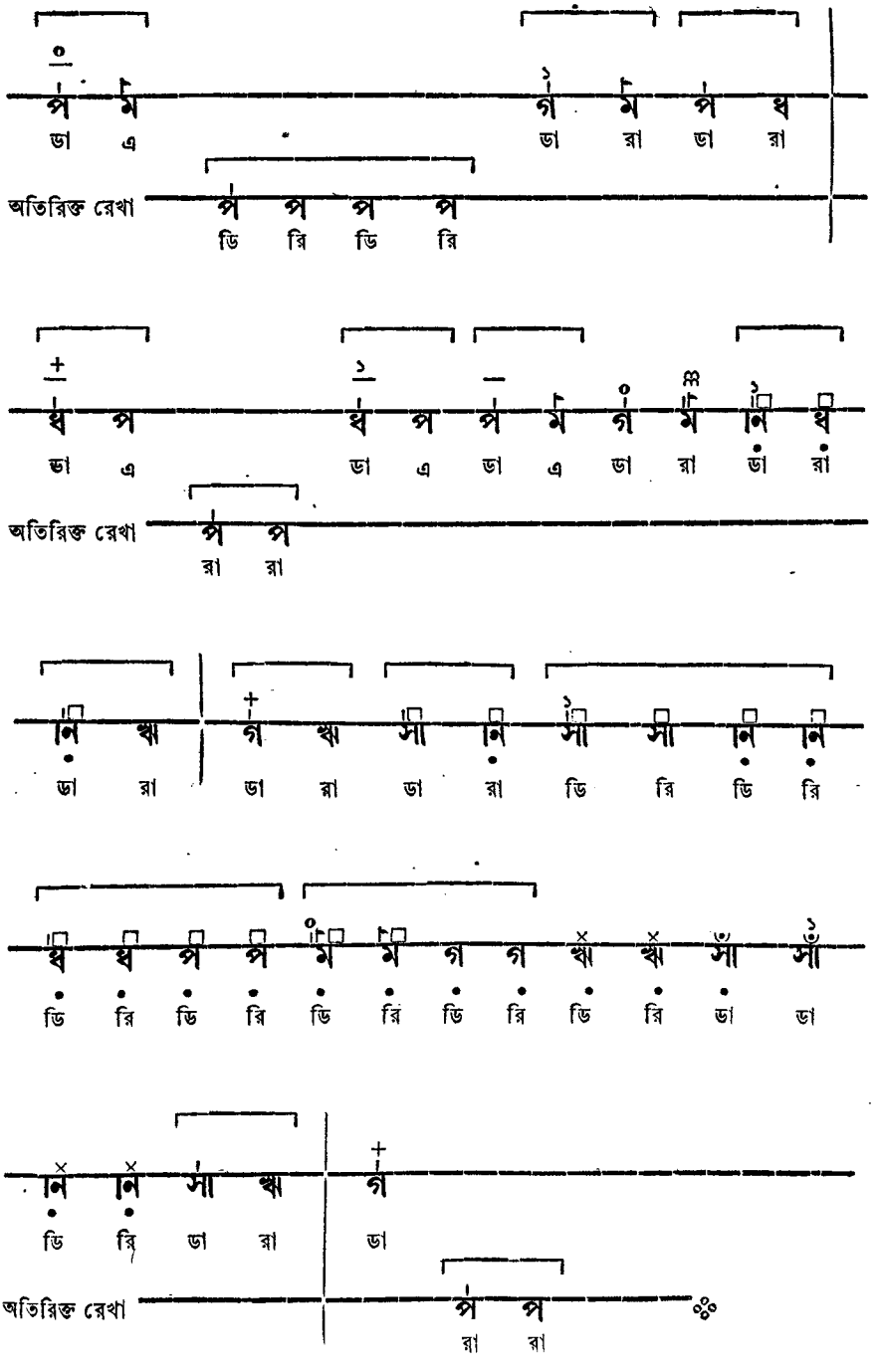
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা

(৮৯)

মেঘ—খাড়ব* ।

মধ্যমান ।

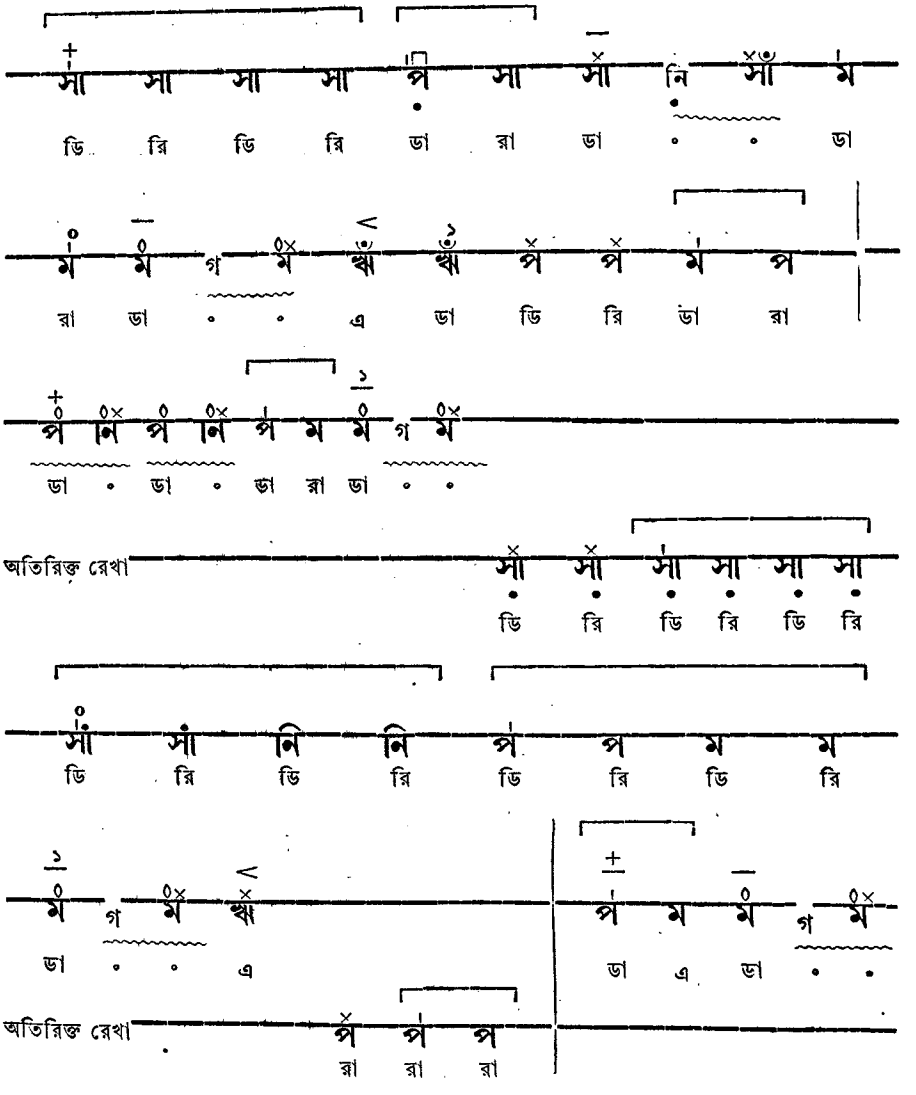
সা সা সা সা প সা সাঁ নি সাঁ ম
ডি রি ডি রি ডা রা ডা • • ডা
ম ম গ ম ঋঁ ঋঁ প প ম প
রা ডা • • এ ডা ডি রি ডা রা
প নি প নি প ম ম গ ম
ডা • ডা • ডা রা ডা • •
অতিরিক্ত রেখা
সাঁ সাঁ সা সা সা সা
ডি রি ডি রি ডি রি
সাঁ সাঁ নি নি প প ম ম
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
ম গ ম ঋ
ডা • • এ
প ম ম গ ম
ডা এ ডা • •
অতিরিক্ত রেখা
প প প
রা রা রা

* ধৈবত বিবাদী।

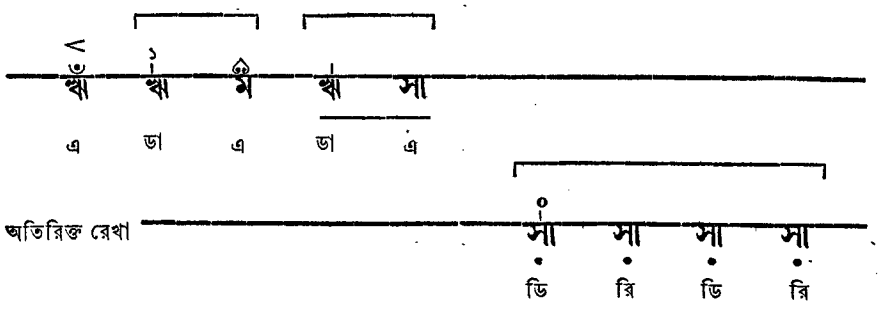
ঋ ঋ ম ঋ সা
এ ডা এ ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
সা সা সা সা
ডি রি ডি রি

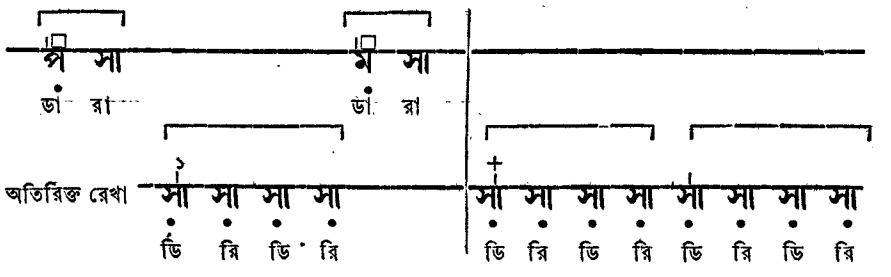
প সা ম সা
ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা সা
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

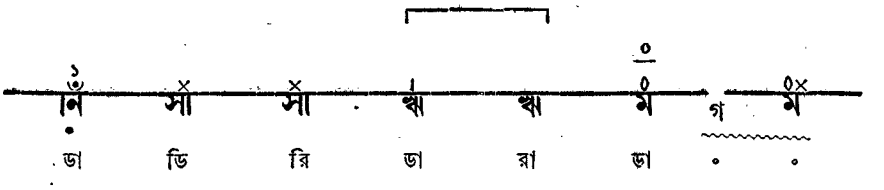
ন সা সা ঋ ঋ ম গ ম
ডা ডি রি ডা রা ডা

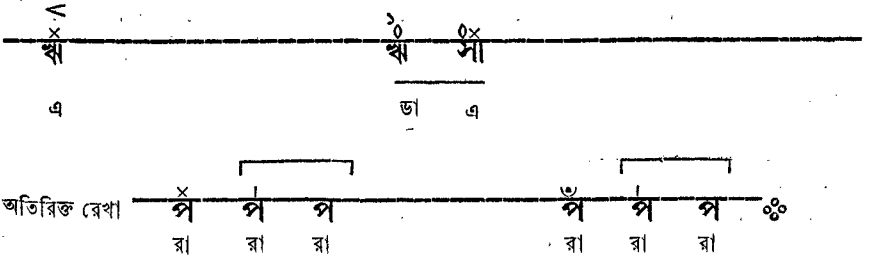
ঋ ঋ সা
এ ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প
রা রা রা রা রা রা

(৯০)

ইমন-কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

আস্থায়ী।

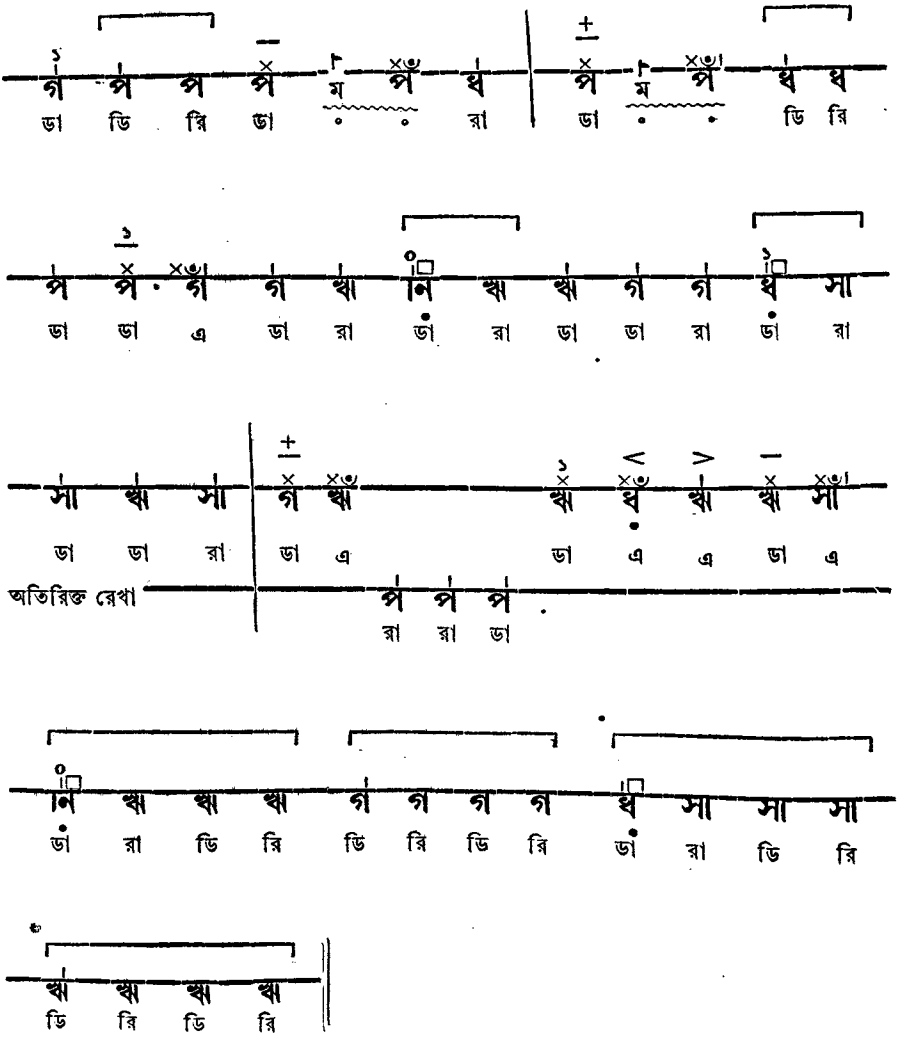

অন্তরা।

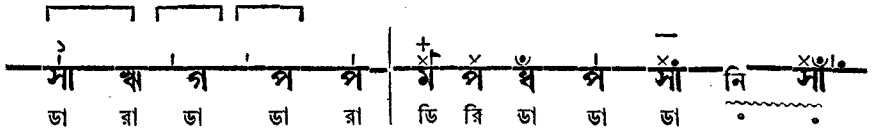
সা ঋ গ প প | ম প ধ প সাঁ নি সাঁ
ডা রা ডা ডা রা | ডি রি ডা ডা ডা

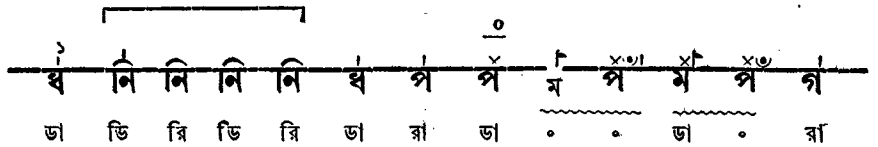
ধ নি নি নি নি ধ প প ম প ম প গ
ডা ডি রি ডি রি ডা রা ডা ডা রা

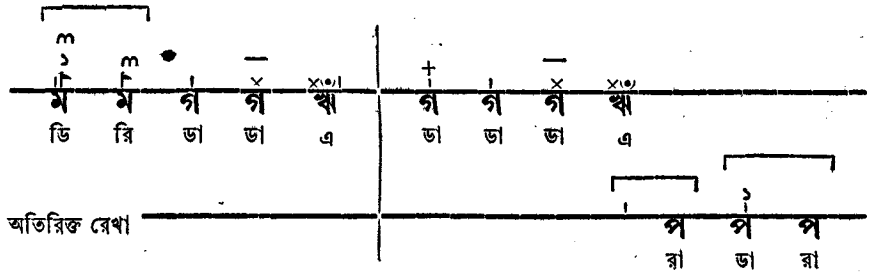
ম ম গ গ ঋ | গ গ গ ঋ
ডি রি ডা ডা এ | ডা ডা ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
প প প
রা ডা রা

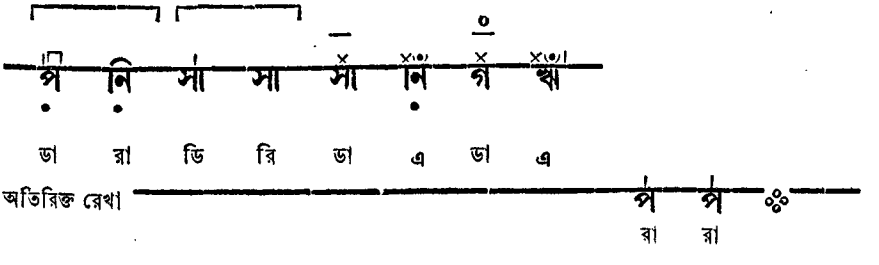
প নি সা সা সা নি গ ঋ
ডা রা ডি রি ডা এ ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
প প
রা রা

(৯১)

বেহাগ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

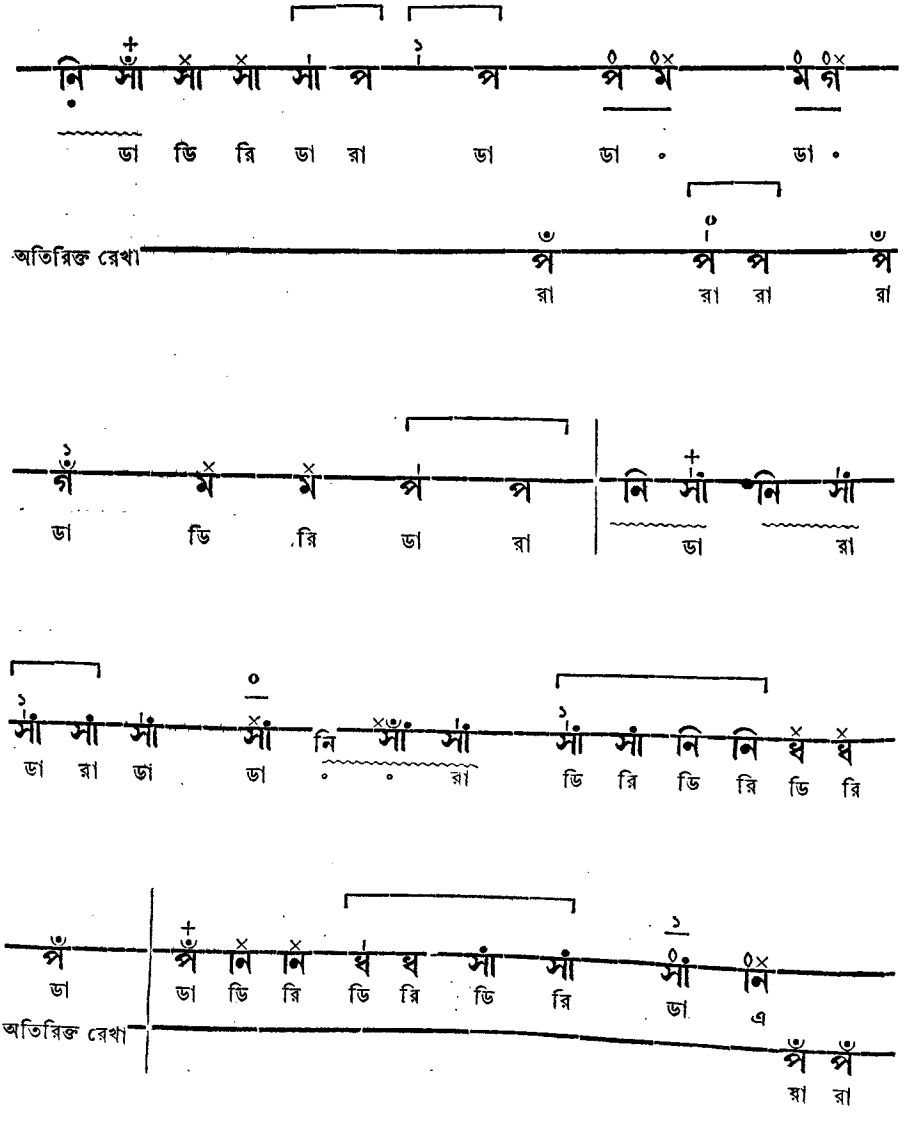
নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ প প প ম ম গ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
রা রা রা রা
গঁ ম ম প প নি সাঁ নি সাঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা
সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি নি ধ ধ
ডা রা ডা ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি
পঁ পঁ নি নি ধ ধ সাঁ সাঁ সাঁ নি
ডা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ
অতিরিক্ত রেখা
পঁ পঁ
য়া রা

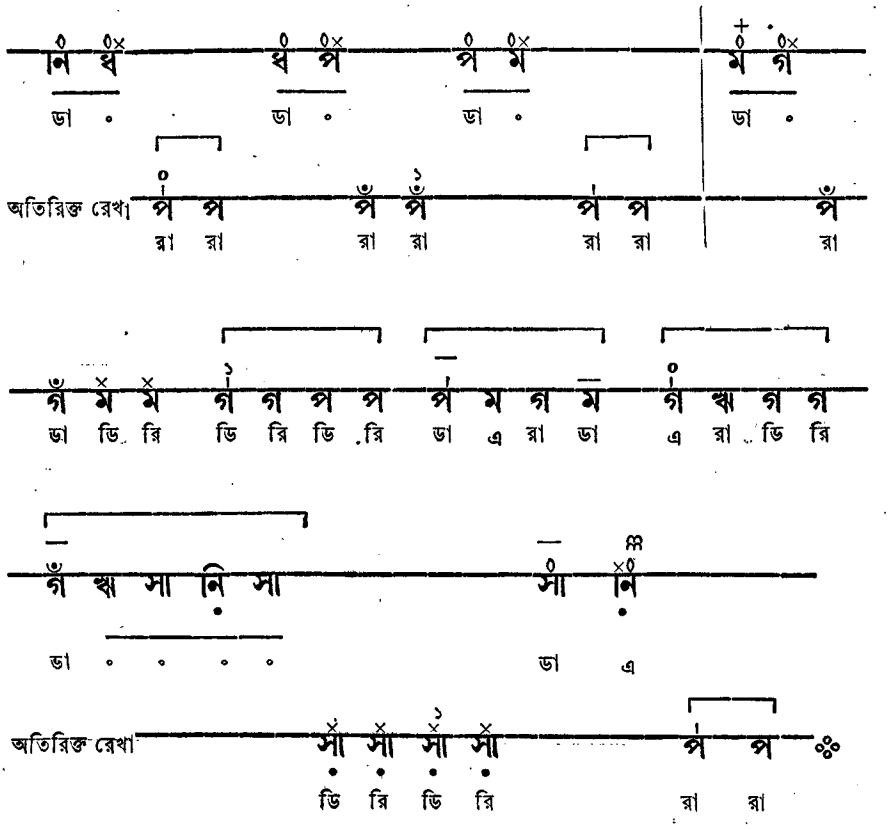

(৯২)

ভূপালী—খাড়ব।

শ্লথত্রিতালী।

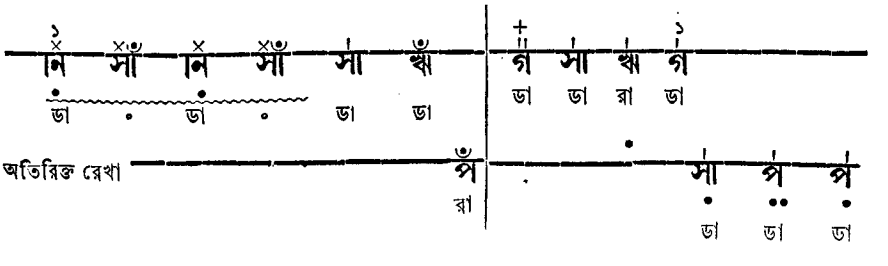

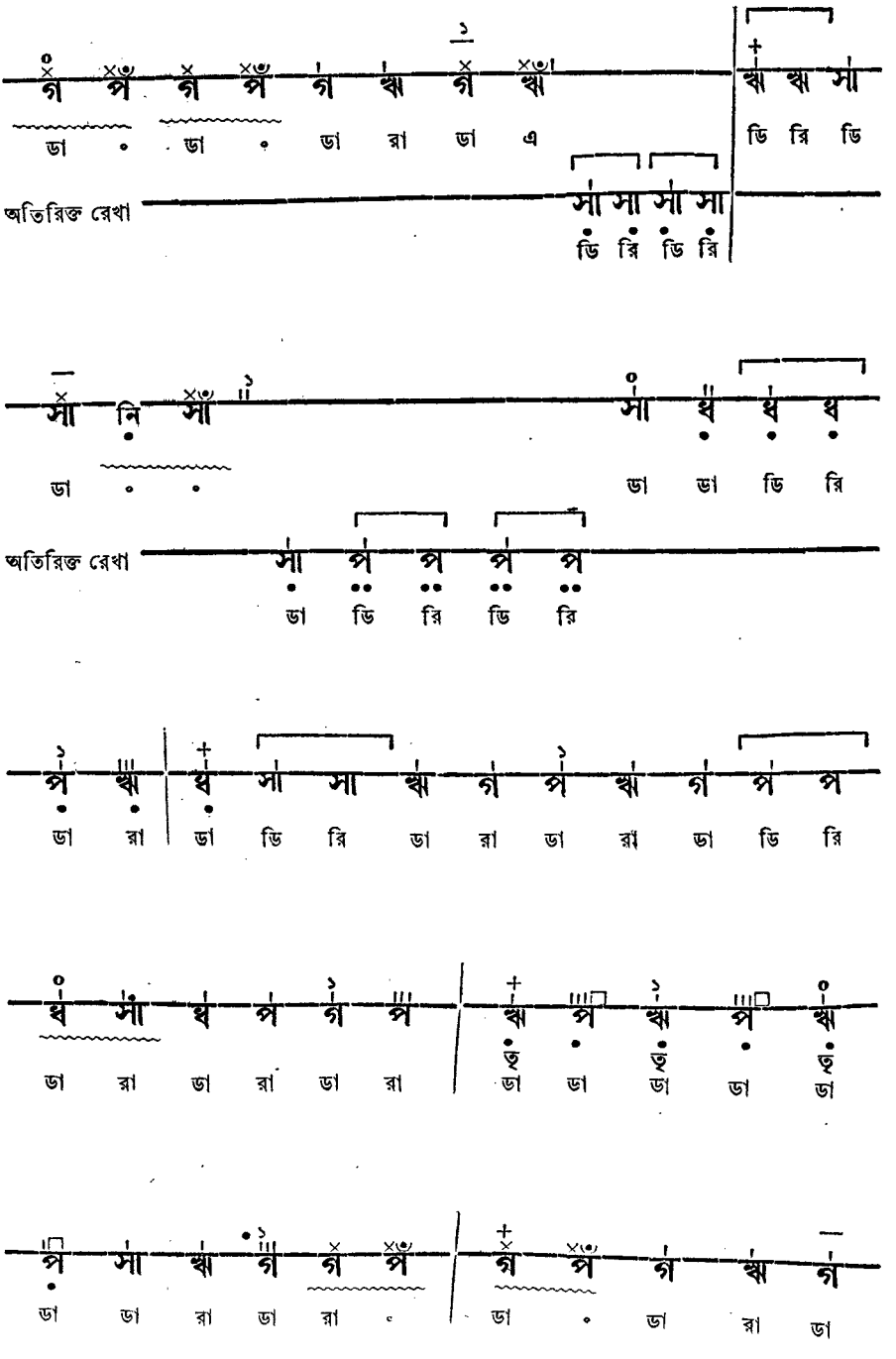
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা

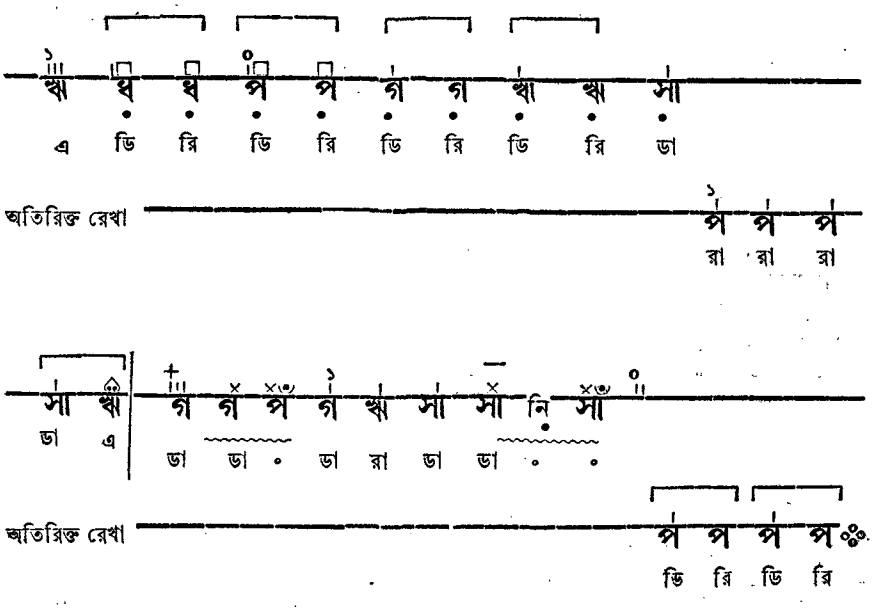
ঋ ধ ধ প প গ গ ঋ ঋ সা
এ ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প
রা রা রা
সা ঋ গ গ প গ ঋ সা সা নি সা
ডা এ ডা ডা ডা রা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
ডি রি ডি রি

বিস্তার।

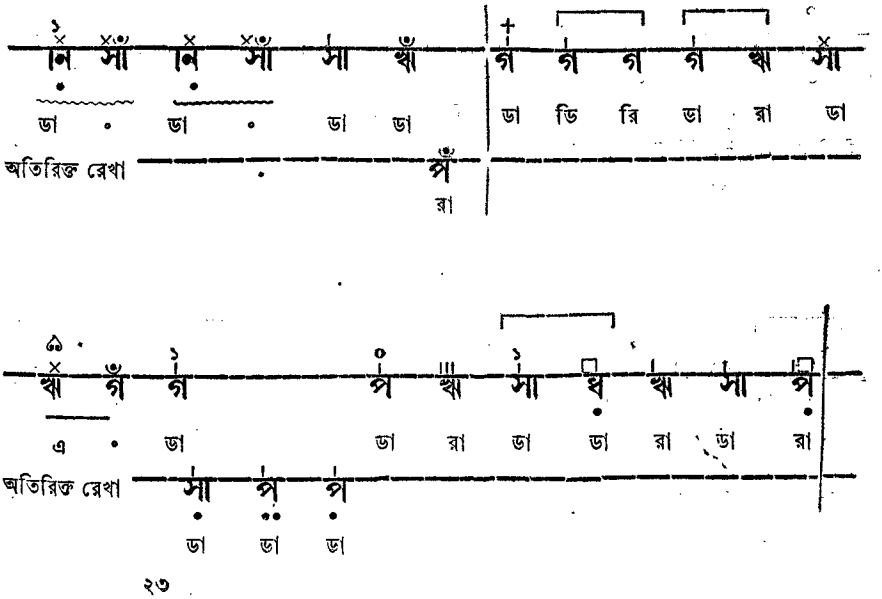
নি সাঁ নি সাঁ সা ঋঁ গ গ গ গ ঋ সা
ডা ডা ডা ডা ডা ডি রি ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা
পঁ
রা
ঋ গঁ গ প ঋ সা ধ ঋ সা প
এ ডা ডা রা ডা ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
সা প প
ডা ডা ডা

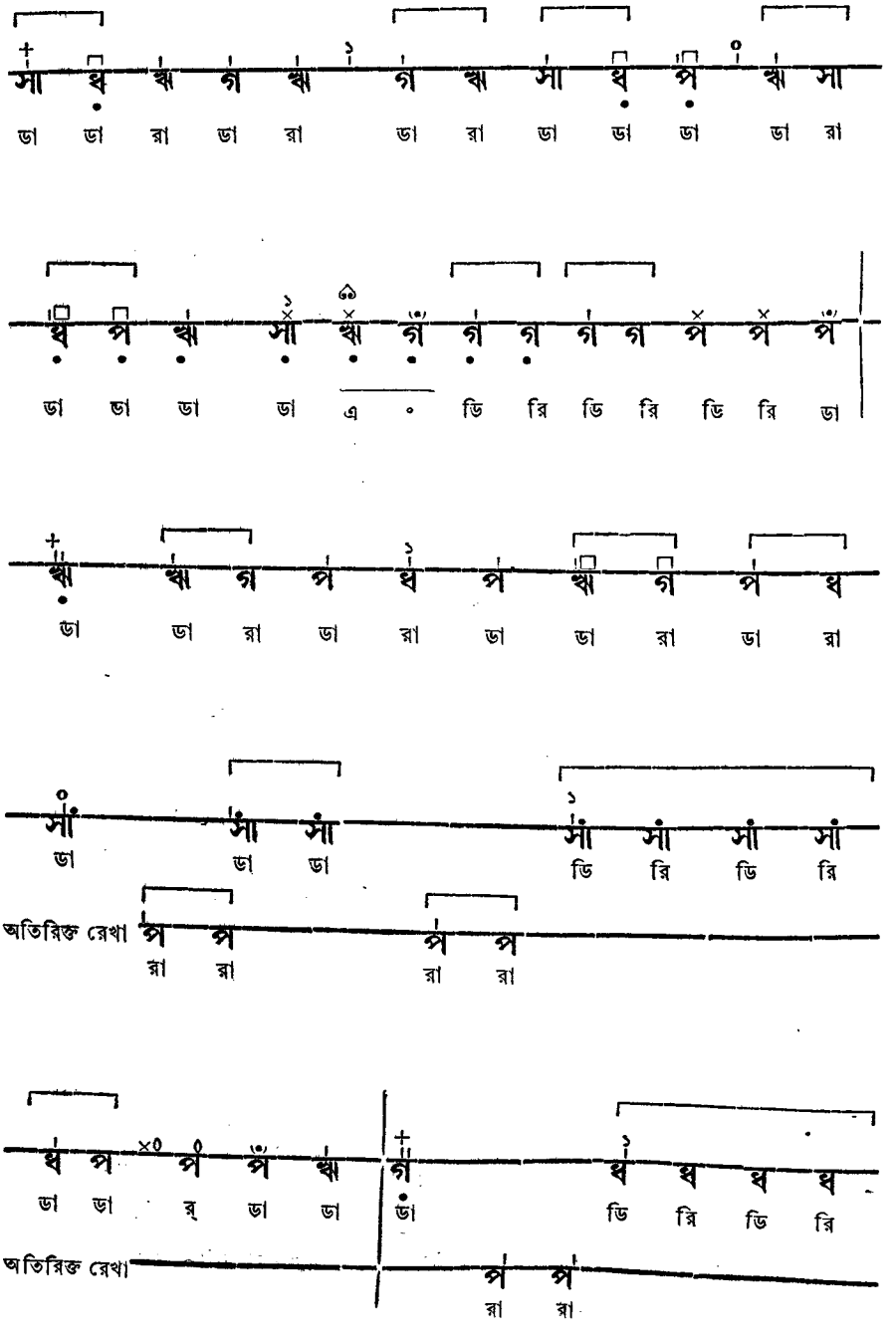
সা ধ ঋ গ ঋ গ ঋ সা ধ প ঋ সা
ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা ডা ডা রা
ধ প ঋ সা ঋ গ গ গ গ গ প প প
ডা ডা ডা ডা এ ০ ডি রি ডি রি ডি রি ডা
ঋ ঋ গ প ধ প ঋ গ প ধ
ডা ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা রা
সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ
ডা ডা ডা ডি রি ডি রি
অতিরিক্ত রেখা প প প প
রা রা রা রা
ধ প প প ঋ গ ধ ধ ধ ধ
ডা ডা র্ ডা ডা ডা ডি রি ডি রি
অতিরিক্ত রেখা প প
রা রা

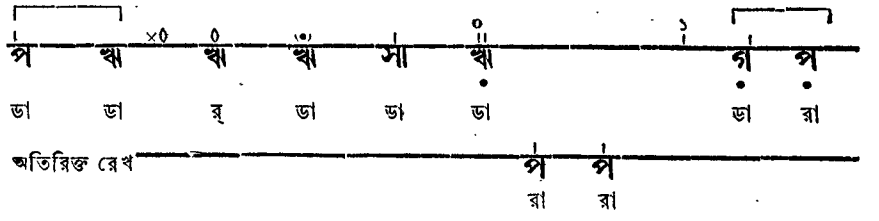
প ঋ ঋ ঋ সা ঋ গ প
ডা ডা র্ ডা ডা ডা ডা রা
অতিরিক্ত রেখ প প
রা রা

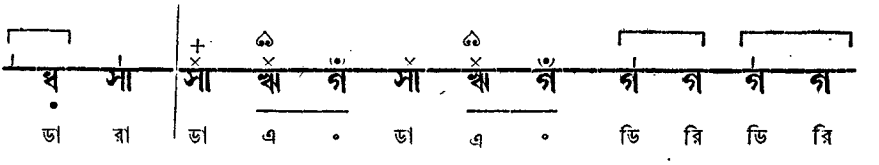
ধ সা সা ঋ গ সা ঋ গ গ গ গ গ
ডা রা ডা এ ডা এ ডি রি ডি রি

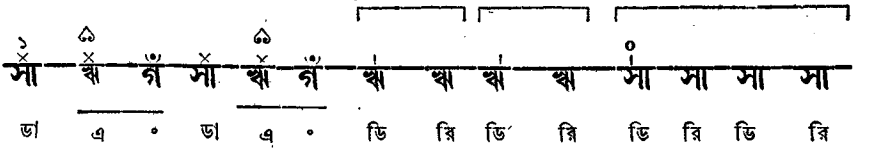
সা ঋ গ সা ঋ গ ঋ ঋ ঋ ঋ সা সা সা সা
ডা এ ডা এ ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

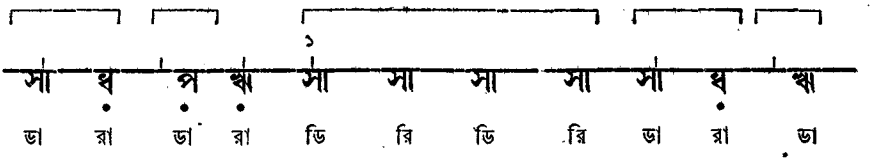
সা ধ প ঋ সা সা সা সা সা ধ ঋ
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা রা ডা

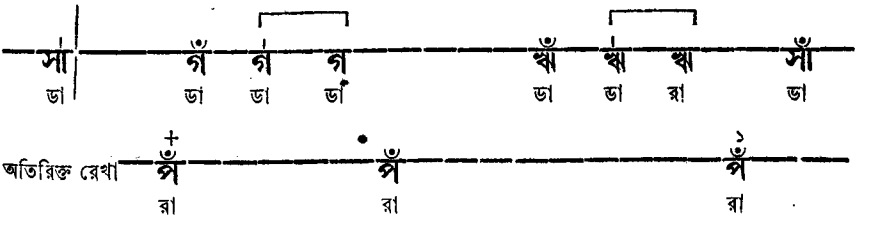
সা গঁ গ গ ঋঁ ঋ ঋ সাঁ
ডা ডা ডা ডা ডা ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা পঁ পঁ পঁ
রা রা রা

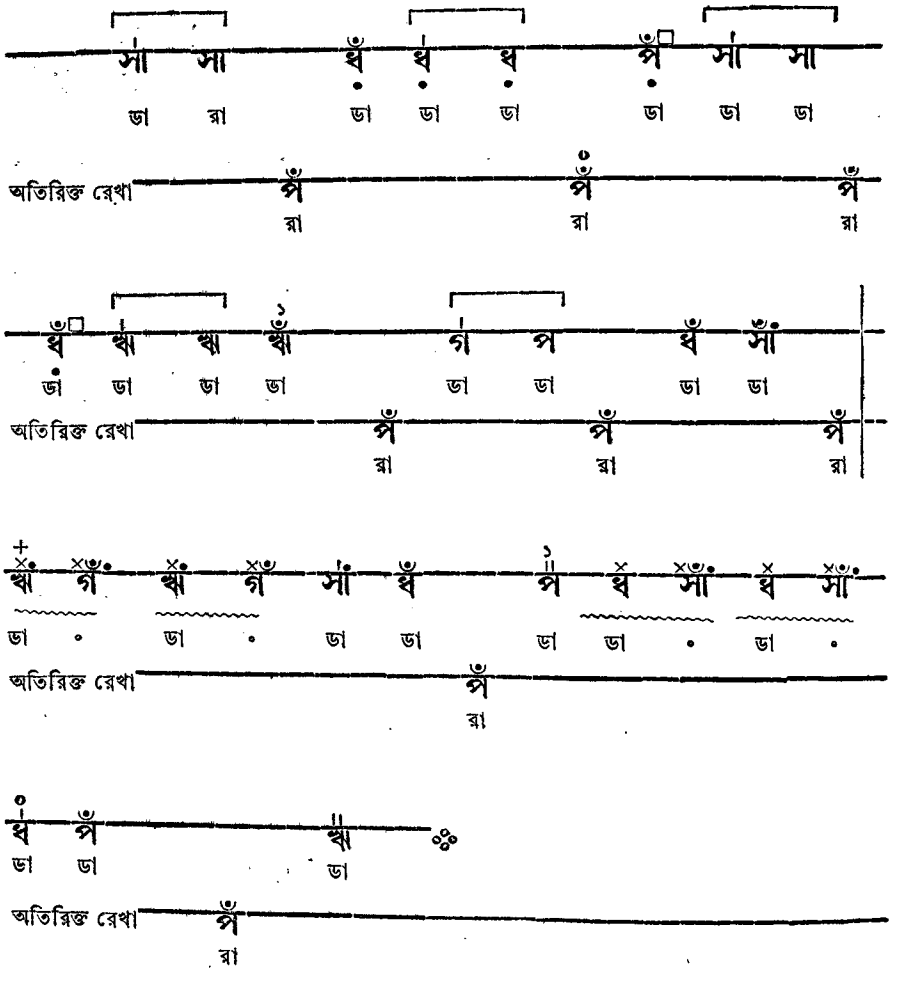
সাঁ সা ধঁ ধঁ ধঁ পঁ সাঁ সা
ডা রা ডা ডা ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
পঁ পঁ পঁ
রা রা রা
ধঁ ঋঁ ঋঁ ঋঁ গঁ পঁ ধঁ সাঁ
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
পঁ পঁ পঁ
রা রা রা
ঋঁ গঁ ঋঁ গঁ সাঁ ধঁ পঁ ধঁ সাঁ ধঁ সাঁ
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
পঁ
রা
ধঁ পঁ ঋঁ
ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
পঁ
রা

সংযোগালঙ্কার।

দুই তিন (১) অথবা তদতিরিক্ত পরস্পর অবিরোধী স্বর নিম্নলিখিত নিয়মে একত্র ধ্বনিত হওয়ায় অনির্ব্বচনীয় আনন্দকর চিত্তাকর্ষক একটী

(১) দুইটী, তিনটী অথবা তদতিরিক্ত সুরের পরস্পর যোগে যে শ্রবণমনোহর ধ্বনিবিশেষ জন্মে, ইংরাজী ভাষায় তাহাকে "কন্‌কর্ড" (Concord) এবং তদ্বৈপরীত্যে

স্বরের উৎপত্তি হয়, সেই স্বরসংযোগকে সঙ্গীতে সংযোগালঙ্কার কহে। যেমন পীত এবং নীল বর্ণের মিশ্রণে হরিদ্বর্ণের উৎপত্তি, তেমনি দুইটী ভিন্ন ভিন্ন স্বর একত্র ধ্বনিত হইলে একটী স্বতন্ত্র ধ্বনি শ্রুতিগোচর হইয়া থাকে (১)।

স্বরনিচয় যেমন বাদী, সম্বাদী, অনুবাদী এবং বিবাদীর নিয়মে রাগে প্রযুক্ত হয়, সংযোগালঙ্কারেও তেমনি উক্ত চারিপ্রকারে সংযুক্ত হইয়া থাকে, সুতরাং সংযোগও চারিপ্রকার হইল, যথা :—বাদী সংযোগ, সম্বাদী সংযোগ, অনুবাদী সংযোগ ও বিবাদী সংযোগ। বাদী সংযোগ আবার দুই ভাগে বিভক্ত, যথা :—স্বজাতীয় বাদী সংযোগ এবং বিজাতীয় বাদী সংযোগ। কোন স্বরকে সপ্তকান্তরের সেই স্বরের সহিত সংযুক্ত করিলে তাহাকে স্বজাতীয় বাদী সংযোগ কহে; যেমন উদারা সপ্তকের ষড়্‌জ এবং মুদারা সপ্তকের ষড়্‌জ, উদারা সপ্তকের ঋষভ এবং মুদারা সপ্তকের ঋষভ, মুদারা সপ্তকের গান্ধার এবং তারা সপ্তকের গান্ধার ইত্যাদি স্বরের পরস্পর সংযোগ। সমান শ্রুতি-বিশিষ্ট অথচ অব্যবহিত পূর্ব্ব বা পরবর্ত্তী স্বর ব্যতীত যে উভয় স্বরের পরস্পর সংযোগ, তাহাকে বিজাতীয় বাদী সংযোগ কহে। যেমন চতুঃ-শ্রুতি-বিশিষ্ট ষড়্‌জ এবং পঞ্চম, ত্রিশ্রুতি-বিশিষ্ট ঋষভ এবং ধৈবত, দ্বিশ্রুতিবিশিষ্ট গান্ধার এবং নিষাদ ইত্যাদি স্বরের পরস্পর সংযোগ (২)।

শ্রবণকঠোর যে সুরযোগ, তাহাকে "ডিস্‌কর্ড" (Discord) বলে। ইউরোপীয় চিত্রবিৎ পণ্ডিতেরা বর্ণপরস্পরের যোগে দৃশ্য মনোহর হইলে তাহাকে "কন্‌কর্ড" (Concord) এবং তদ্বিপরীত ভাবকে "ডিস্‌কর্ড" (Discord) বলিয়া থাকেন।

(১) যেমন পীত এবং নীলবর্ণের মিশ্রণে একটী স্বতন্ত্র হরিদ্বর্ণ জন্মে, তেমনি কোন সুর বিশেষ ব্যষ্টি ভাবে অর্থাৎ পৃথক্‌রূপে ধ্বনিত হইলে যেরূপ শ্রবণপ্রত্যক্ষ হয়, দুইটী সুরের পরস্পর মিশ্রণে সমষ্টিভাবে যে ধ্বনিবিশেষের উৎপত্তি হয়, সেই সমষ্টিধ্বনি ব্যষ্টিধ্বনি হইতে অবশ্যই বিভিন্ন হইয়া থাকে। যেমন ষড়্‌জ গান্ধারের সহিত একত্র মিলিয়া ধ্বনিত হইলে স্বাভাবিক ষড়্‌জের ধ্বনি অপেক্ষা এই ধ্বনি অবশ্যই বিভিন্ন হয়।

(২) বাদিসংযোগসম্বাদিসংযোগৌ দ্বিবিধৌ তথা। তথানুবাদিসংযোগঃ সংযোগা-লঙ্কৃতিস্ত্রিধা॥ বাদিসংযোগস্য পুনর্দ্বৈবিধ্যং শাস্ত্রসম্মতং। স্বজাতীয়ো বিজাতীয়ঃ স এব

সপ্তম, অষ্টম এবং দ্বাদশ শ্রুতির ব্যবধানতায় যে দুই স্বরের পরস্পর সংযোগ হয়, তাহাকে সম্বাদী সংযোগ কহে। যেমন গান্ধার এবং পঞ্চম, ষড়্‌জ এবং গান্ধার, মধ্যম এবং নিষাদ ইত্যাদি স্বরের পরস্পর সংযোগ (৩)।

বাদী, সম্বাদী এবং অব্যবহিত পূর্ব্ব বা পরবর্ত্তী স্বর পরিত্যাগে উভয় স্বরের যে সংযোগ হয়, তাহার নাম অনুবাদী সংযোগ। অব্যবহিত

ভবিতুং ক্ষমঃ॥ স্বরস্যৈকস্য চেৎ সপ্তকান্তরেণ স্বরেণ চ। সংযোগঃ স্যাৎ সজাতীয়ো বাদি-সংযোগ ইষ্যতে॥ সমানশ্রুতিযোগস্তু যথা ব্যবহিতে স্বরে। বিজাতীয়ো হি স প্রোক্তঃ সঙ্গীতজ্ঞৈর্মনীষিভিরিতি ভরতসম্মতম্॥ অপি চ—সমানশ্রুতিবিশিষ্টস্বরাণাং যঃ সংযোগঃ স বাদিসংযোগো ভবতি রাজা চ সর্ব্বেষামিতি কোহলীয়ে॥

(৩) সপ্তাষ্টৌ দ্বাদশ বা শ্রুতয়ো মধ্যে সদা যয়োঃ স্বরয়োঃ। ভবতঃ সম্বাদিনৌ তৌ কথিতৌ সঙ্গীতবেদিভিঃ প্রাজ্ঞৈঃ॥ ইতি ধ্বনিমঞ্জর্য্যাং দর্পণেঽপি চৈতদুক্তং। ইংরাজী মতে সংযোগালঙ্কারকে "হার্‌মণি" (Harmony) "কর্ড" (Chord) অথবা "প্লুরি-টোন্" (Pluritone) কহে। পরস্পর সমান ব্যবধানতায় যে স্বরসংযোগ হয়, তাহার প্রমাণ "ওয়েবর" সাহেবের সঙ্গীত বিদ্যা-বিষয়ক গ্রন্থে লিখিত আছে। উক্ত গ্রন্থকার আরও বলেন যে, প্রথম অবলম্বিত প্রত্যেক স্বর তাহার তৃতীয় এবং পঞ্চম স্বরের সহিত সংযুক্ত হয়, যেমন ষড়্‌জ, গান্ধার এবং পঞ্চম; মধ্যম, ধৈবত এবং ষড়্‌জ; পঞ্চম, নিষাদ এবং ঋষভ ইত্যাদি। এইরূপ সংযোজিত স্বরের প্রথমটীকে "রুট্" (Root) অথবা "ফন্‌ডামেণ্টেল" (Fundamental.) অর্থাৎ প্রধান অথবা মূলস্বর; দ্বিতীয়টীকে "মীডিয়েণ্ট" (Mediant) অর্থাৎ মধ্যস্থ; তৃতীয়টীকে "ডমিনেণ্ট" (Dominant) অর্থাৎ অতিরেকী স্বর বলে। নিম্ন স্বর অপেক্ষা উচ্চ স্বর অধিক প্রকাশ পায় বলিয়া উহাকে অতিরেকী স্বর বলে। ইংরাজীমতে কখন কখন প্রথম, তৃতীয়, পঞ্চম এবং সপ্তম এই চারিটী স্বরেও পরস্পর সংযোজিত হইয়া থাকে, যথা:—ষড়্‌জ, গান্ধার, পঞ্চম এবং নিষাদ ইত্যাদি। দুইটী স্বরের যোগকে ইংরাজী ভাষায় "টুফোল্ডকর্ড" (Two fold Chord) তিনটী স্বরের যোগকে "থ্রিফোল্ডকর্ড" (Three fold Chord) এবং চারিটী স্বরের যোগকে "ফোর্ ফোল্ডকর্ড" (Four fold Chord) কহে। এই প্রকার ত্রয়োদশবিধ সংযোগালঙ্কারপদ্ধতি ইউরোপীয় স্বরসংযোজয়িতারা বিধিবদ্ধ করিয়াছেন। (See Encyclopædia or Dictionary of music by J. F. Danneley.) যাহাই হউক, এত বাহুল্য স্বর সংযোগপদ্ধতি আমাদের দেশে বড় একটা ব্যবহার নাই।

পূর্ব্ব বা পরবর্ত্তী স্বরের পরস্পর যোগকে বিবাদী সংযোগ কহে (১)। তাহা সহসা শুনিলে নিতান্ত শ্রুতিকঠোর বোধ হয়, সেই জন্য সংস্কৃত স্বর-সংযোজয়িতারা সঙ্গীতে তাহাকে দূষ্য জ্ঞান করেন (২)। এইরূপ স্বর সংযোগ-পদ্ধতি রাগের বাদী, বিবাদী ইত্যাদি বিবেচনায় ব্যবহার করা কর্ত্তব্য।

ষড়্জ, ঋষভ ইত্যাদি প্রত্যেক স্বরের স্বরগ্রাম অনুসারে যথানির্দ্দিষ্ট শ্রুতিসংখ্যা সমতায় প্রকৃত এবং বিকৃত স্বরের অবিবেচনায় উল্লিখিত চারি প্রকার প্রণালীতে স্বরের সংযোগ হইয়া থাকে। ইংরাজী-সঙ্গীত-তত্ত্বজ্ঞেরা চিত্রবিদ্যার সহিত সঙ্গীতবিদ্যার বিশেষ সম্বন্ধ স্থির করেন। প্রাচীন সংস্কৃত সঙ্গীত-শাস্ত্রবিশারদ মহামহোপাধ্যায় মহর্ষি নারদ স্বকৃত সংহিতায় এতদ্বিষয়ের অপ্রতিপোষকতা করেন নাই। সংস্কৃতমতে ষড়্জের রং কৃষ্ণবর্ণ, ঋষভ ধূম্রবর্ণ, গান্ধার সুবর্ণবর্ণ, মধ্যম কুন্দপুষ্পের

---

(১) অব্যবহিতপূর্ব্বপরস্বরপরিত্যাগেন বাদিসম্বাদিসংযোগভিন্নো য উভয়স্বরসংযোগঃ স ত্বনুবাদিসংযোগো ভবতি তথা বাদিসম্বাদ্যনুবাদিসংযোগভিন্নো যঃ স্বরদ্বয়সংযোগঃ; স চৈব বিবাদীতি কোহলীয়ে॥ অপি চ—ফিল্ড সাহেব বলেন, যে বাদী সংযোগকে গ্রীক-জাতিরা "এণ্টাফোনিয়া" এবং বিবাদী সংযোগকে "ডায়াফোনিয়া" বলে।

(২) পূর্ব্বস্বরের সহিত যে পর স্বরের পরস্পর যোগ হয় না, তাহার অন্যতর প্রমাণ সংস্কৃত ব্যাকরণেও দেখিতে পাওয়া যায়। যেমন বাক্ + খনতি, খবর্ণের পূর্ব্ব বর্ণ ক, সেইহেতু কবর্ণের সহিত সন্ধি অর্থাৎ খএর মিল না হইয়া প্রকৃতাবস্থাতেই থাকে, যথা বাক্ খনতি। কিন্তু যদ্যপি বাক্ + গঞ্জনং এইরূপ পদপ্রয়োগ করা যায়, তবে কবর্ণের পর বর্গের তৃতীয় বর্ণ গকার থাকা প্রযুক্ত কবর্ণের স্থানে গ হইয়া বাগ্‌গঞ্জনং এইরূপ প্রয়োগ হইবে। সেইরূপ ষড়্জের সহিত ঋষভের মিল না হইয়া তৃতীয় স্বর গান্ধারের সহিত স্বতই মিলিত হইবে। অপিচ অব্যবহিত পূর্ব্ব বা পর স্বরের সহিত কোন স্বর বিশেষের সংযোগ সংস্কৃতমতে যদিও নিতান্ত দূষ্য বটে, পরন্তু ইংরাজীমতে যথা নিয়মিত দুইটী স্বরের সহিত অব্যবহিত পূর্ব্ব বা পর স্বরের যোগ নিতান্ত দূষ্য হয় না। যেমন স্বর, গান্ধার এবং নিষাদ। কোন কোন সঙ্গীতগ্রন্থকার রাগাদির স্বরূপনাশভয়ে সংযোগালঙ্কারপদ্ধতি ব্যবহার করেন নাই। বস্তুতঃ রাগবিশেষে স্বরবিশেষ বিবেচনায় স্বরনিবন্ধনী এবং শ্রেষ্ঠালঙ্কারের সহিত ইহার ব্যবহারে পাণ্ডিত্য প্রকাশ পায়।

বর্ণ, পঞ্চম পীতবর্ণ, ধৈবত ধূসরবর্ণ এবং নিষাদ শুকপক্ষীর ন্যায় হরিদ্বর্ণ (১)।

ফিল্‌ড সাহেব (২) কৃত ইংরাজী বর্ণবিদ্যা-বিষয়ক গ্রন্থে দেখিতে পাওয়া যায়, ষড়্‌জের সহিত নীল, ঋষভের সহিত ধূম্র, গান্ধারের সহিত রক্ত, মধ্যমের সহিত নারঙ্গী, পঞ্চমের সহিত পীত, ধৈবতের সহিত ধূসর এবং নিষাদের সহিত হরিদ্বর্ণের মিলন আছে। উক্ত গ্রন্থকার আরও বলেন যে, নীল, পীত এবং লোহিত এই তিনটী বর্ণই মূলবর্ণ। ইন্দ্রধনুর প্রতি দৃষ্টি করিলে সচরাচর কথিত তিনটী বর্ণেরই উপলব্ধি হইবে। ষড়্‌জের সহিত নীল, গান্ধারের সহিত লোহিত, এবং পঞ্চমের সহিত পীত বর্ণের সৌসাদৃশ্য পূর্ব্বে স্থিরীকৃত হইয়াছে।

সংস্কৃত সঙ্গীত গ্রন্থকর্ত্তারা শ্রুতি অনুযায়িক যেরূপ স্বর-সংযোগ-পদ্ধতি বিধিবদ্ধ করিয়াছেন (৩), বর্ণগত সংযোগের সহিত তাহার বিশেষ প্রতিপোষকতাও দেখিতে পাওয়া যায়। নীলবর্ণের সহিত হরিদ্বর্ণের সংযোগ যেমন চিত্রবিদ্যাবিৎ পণ্ডিতদিগের মতে নিতান্ত দৃষ্টিকদর্য্য, ষড়্‌জের সহিত নিষাদের সংযোগও তেমনি সঙ্গীত-তত্ত্বজ্ঞের

---

(১) কৃষ্ণবর্ণো ভবেৎ ষড়্‌জ ঋষভঃ শুকপিঞ্জরঃ। কনকাভস্তু গান্ধারো মধ্যঃ কুন্দসম-প্রভঃ॥ পঞ্চমস্তু ভবেৎ পীতো ধূসরং ধৈবতং বিদুঃ। নিষাদঃ শুকবর্ণঃ স্যাৎ ইত্যতঃ স্বর-বর্ণতা॥ অপিচ; পঞ্চমো মধ্যমঃ ষড়্‌জ ইত্যেতে ব্রাহ্মণাঃ স্মৃতাঃ। ঋষভো ধৈবতশ্চাপি ইত্যেতৌ ক্ষত্রিয়াবুভৌ॥ গান্ধারশ্চ নিষাদশ্চ বৈশ্যাবর্দ্ধেন বৈ স্মৃতৌ। শূদ্রত্বং বিদ্ধি চার্দ্ধেন পতিতত্বান্ন সংশয়ঃ॥ ইতি নারদসংহিতায়াং॥

(২) (ফিল্‌ডস্ ক্রোম্যাটিক্)Field's Chromatics.

(৩) অযুতানি চ ষট্‌ত্রিংশদযুতানি শতানি চ। স্বরাণাং ভেদযোগশ্চ জ্ঞাতব্যো মুনি-সত্তমৈঃ॥ ইতি অদ্ভুতরামায়ণে। নারদ ঋষি গানশিক্ষাসময়ে উলূকের নিকট অসংখ্য স্বরযোগ শিক্ষা করেন। ভারতবর্ষে স্বরযোগভেদ যে, অসংখ্যপ্রকার ছিল, তাহারও এই একটী অন্যতর প্রমাণ। অনেকে কহিয়া থাকেন যে, স্বরযোগপদ্ধতি সংস্কৃতসঙ্গীতে অল্প আছে, কিন্তু সেটী তাঁহাদিগের ভ্রম; সঙ্গীতপদ্ধতি ভিন্ন পুরাণাদি শাস্ত্রেও অনন্ত স্বর-যোগভেদস্বীকার দেদীপ্যমান রহিয়াছে।

নিকটে শ্রবণবিরুদ্ধ হয়। স্বর সংযোগপদ্ধতি স্বরলিপিবদ্ধ করিতে গেলে নিম্নলিখিত নিয়ম অবলম্বন করা কর্ত্তব্য (১)।

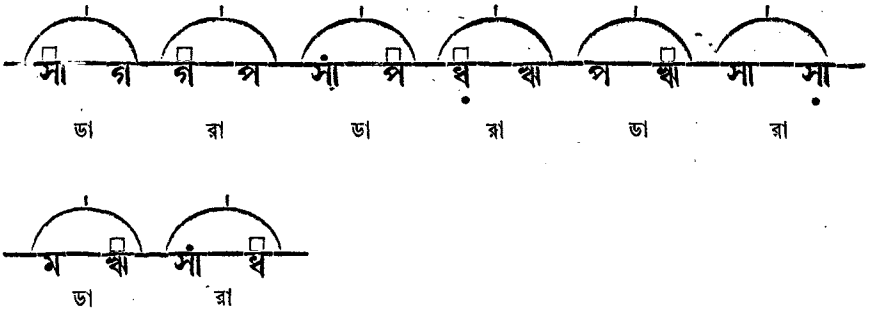

ধনুশ্চিহ্নই সংযোগালঙ্কারজ্ঞাপকচিহ্ন। যত প্রকার স্বরসংযোগ-প্রণালী প্রদর্শিত হইল, তৎসমুদয় আমাদের সেতারে প্রয়োজন হয় না। তন্নিমিত্ত যে সংযোগগুলি সহজে এবং স্বল্পায়াসে সেতারে প্রদর্শন করাইতে পারা যায়, সেই গুলি নিম্নলিখিত নিয়মে ক্রমে সাধান যাইতেছে।

সংযোগ সাধন।

অনুলোম।

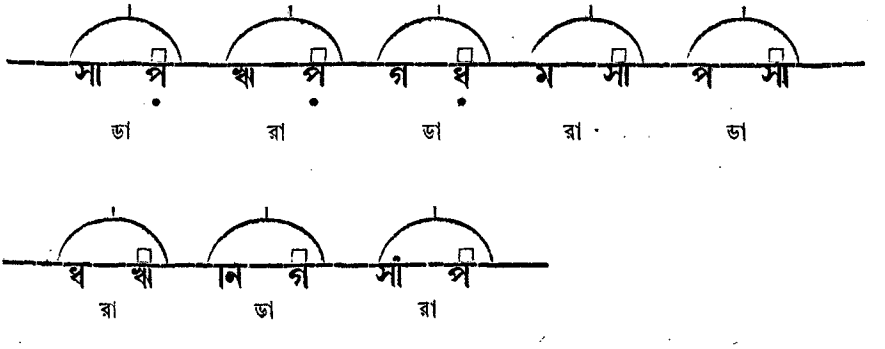

(১) এইরূপ সংযোগালঙ্কারপদ্ধতি শ্রেষ্ঠালঙ্কারেও ব্যবহার করা যায়।

বিলোম।

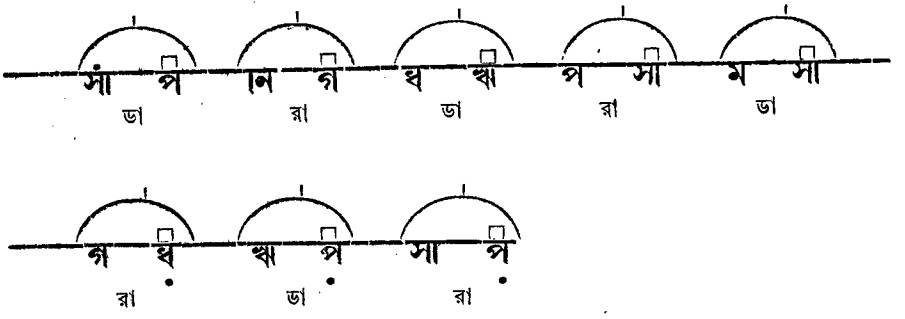
সা প নি গ ধ ঋ প সা ম সা
ডা রা ডা রা ডা
গ ধ ঋ প সা প
রা ডা রা

অনুলোম।

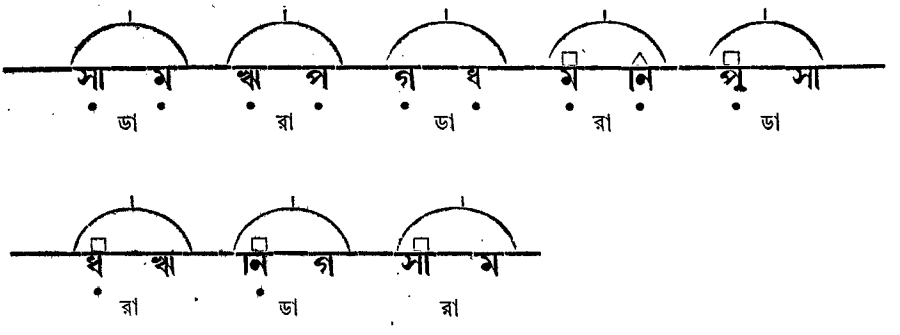
সা ম ঋ প গ ধ ম নি প সা
ডা রা ডা রা ডা
ধ ঋ নি গ সা ম
রা ডা রা

বিলোম।

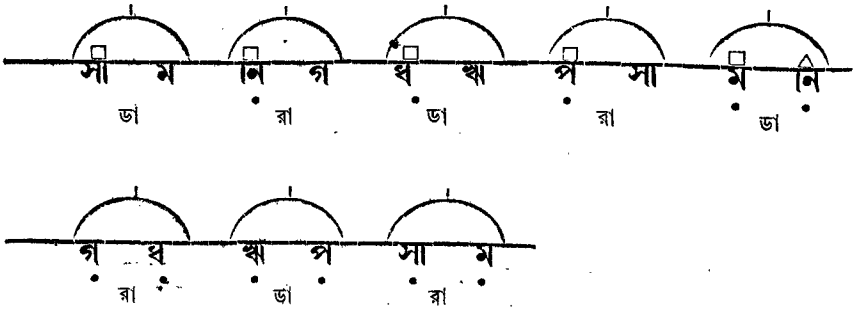
সা ম নি গ ধ ঋ প সা ম নি
ডা রা ডা রা ডা
গ ধ ঋ প সা ম
রা ডা রা

অনুলোম।

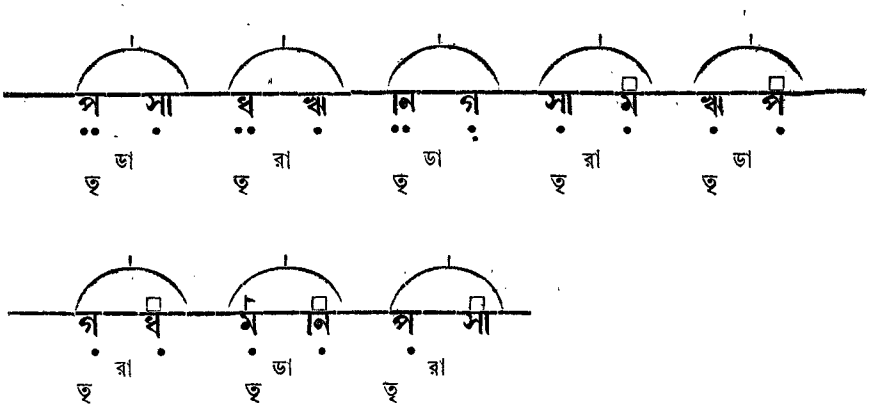

বিলোম।

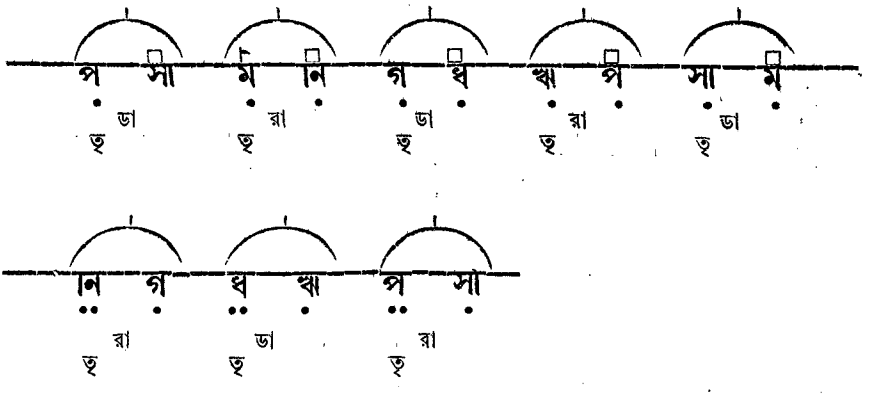

(৯৩)

ভূপালী—খাড়ব।

শ্লথত্রিতালী।

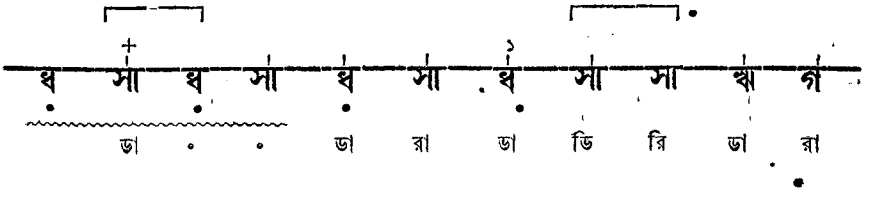

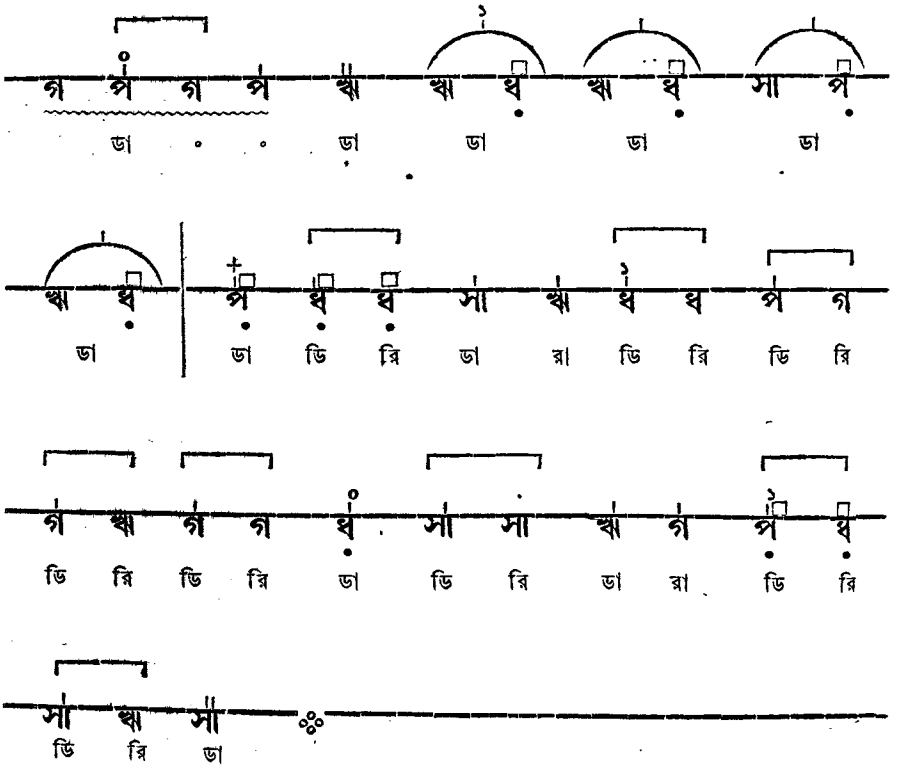

(৯৪)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

আস্থায়ী।

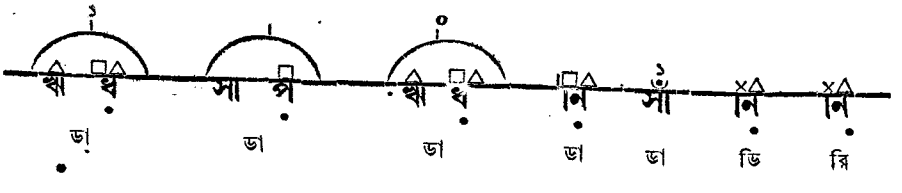

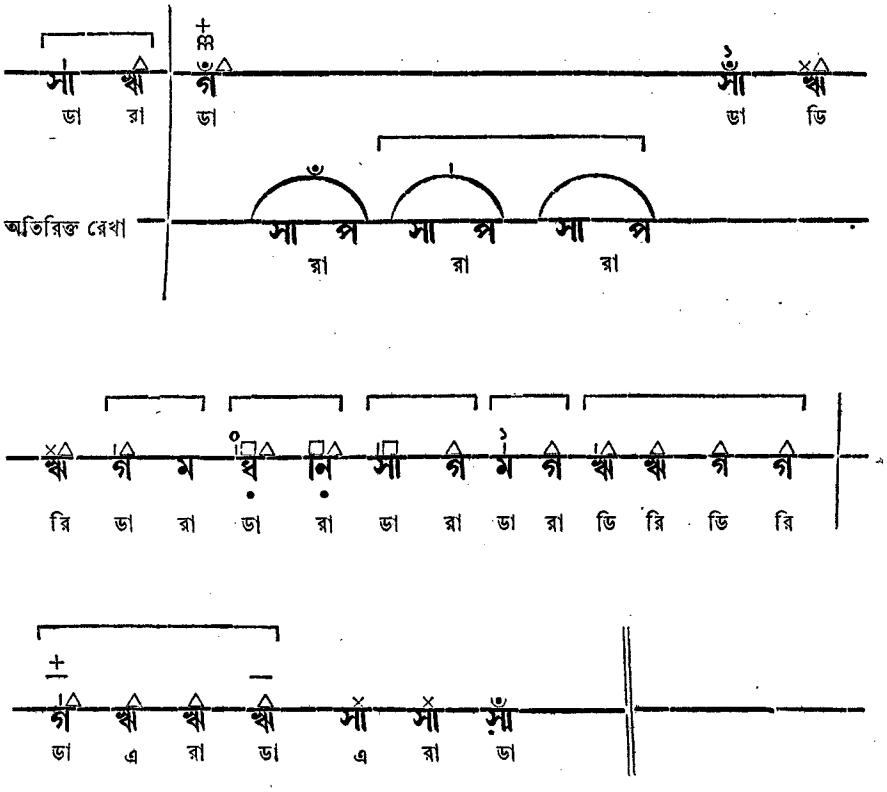

অন্তরা।

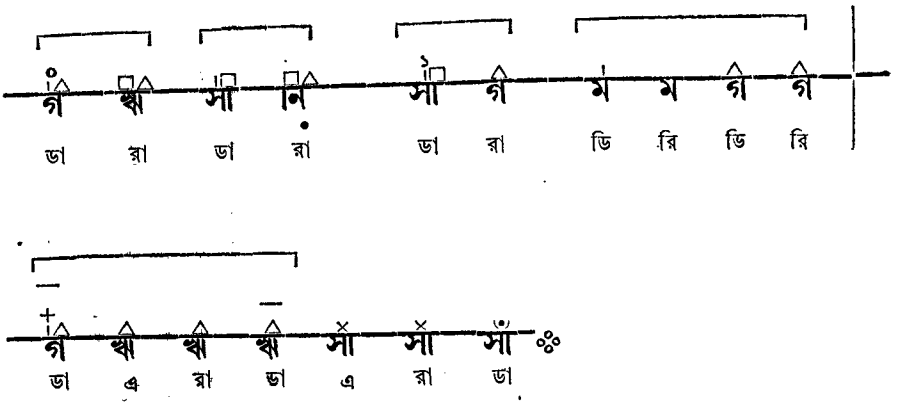

(৯৫)

লুমঝিঝিট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

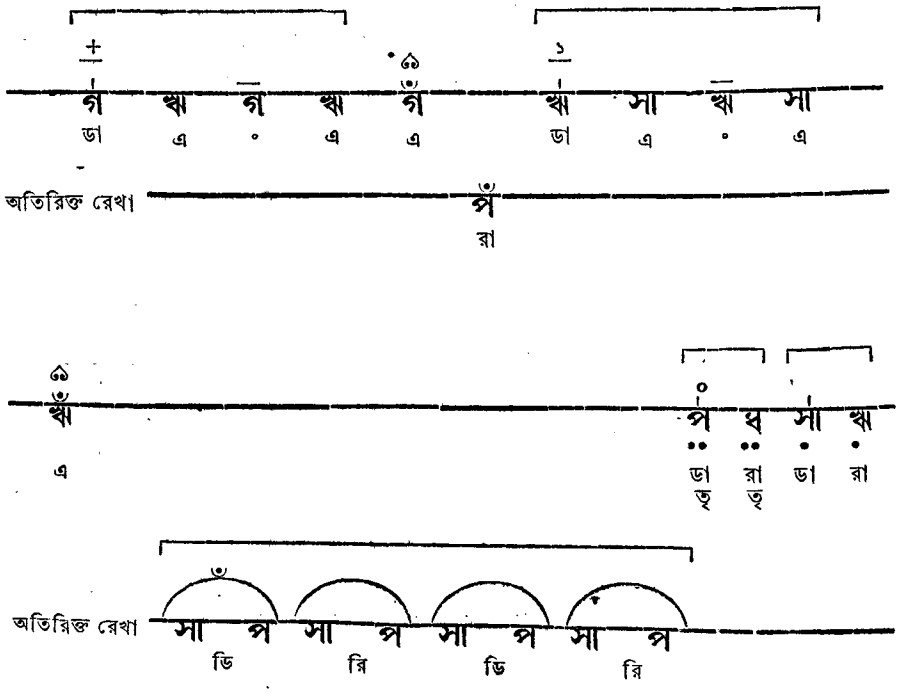

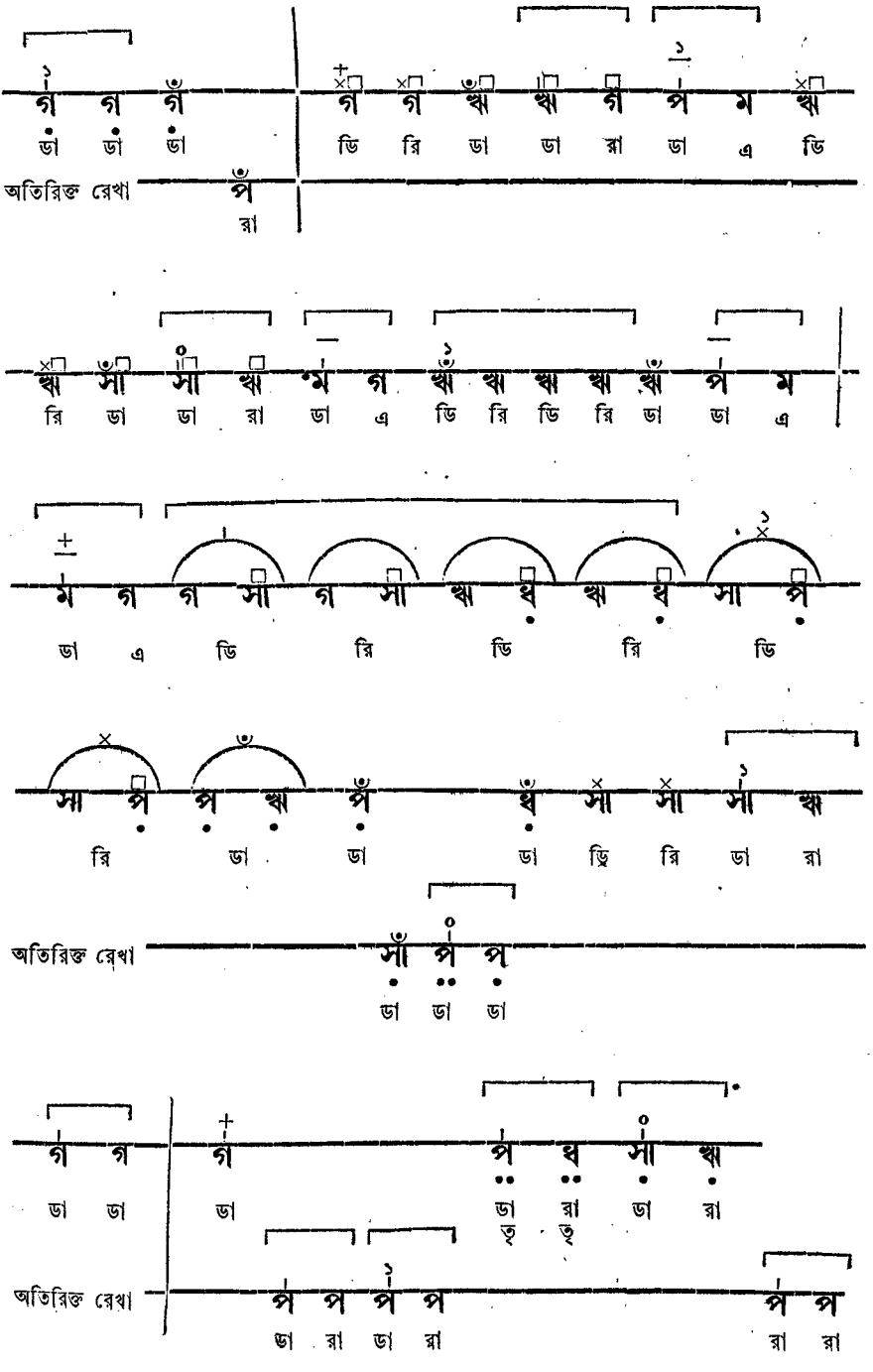
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা

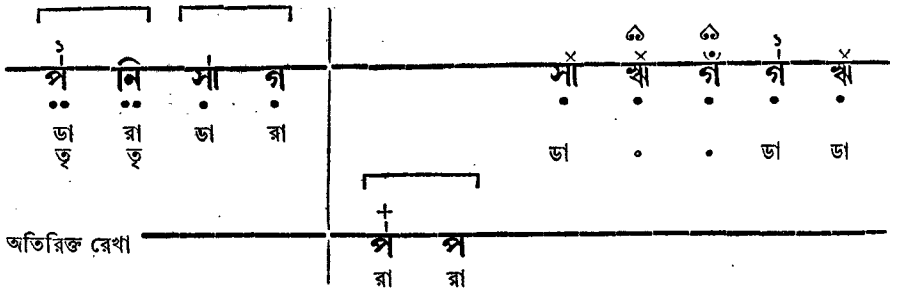
অতিরিক্ত রেখা

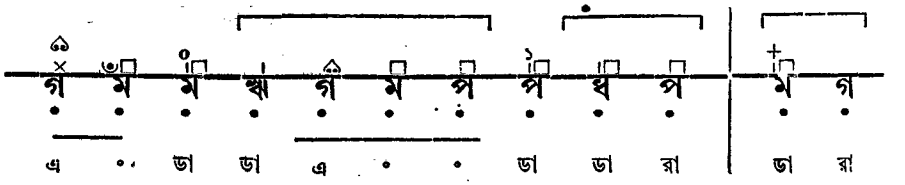

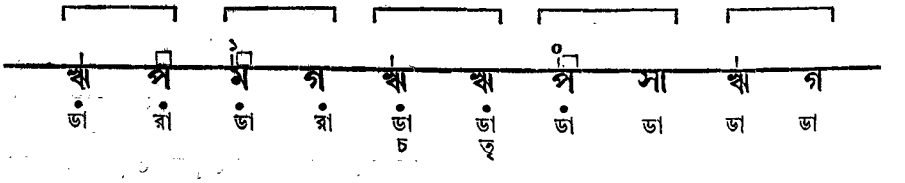

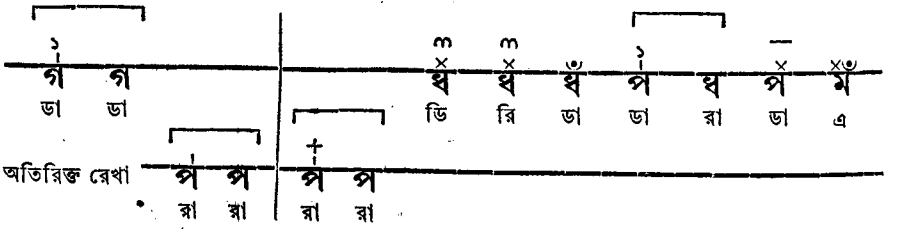
অতিরিক্ত রেখা

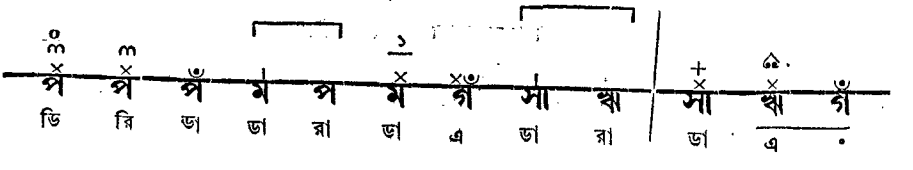

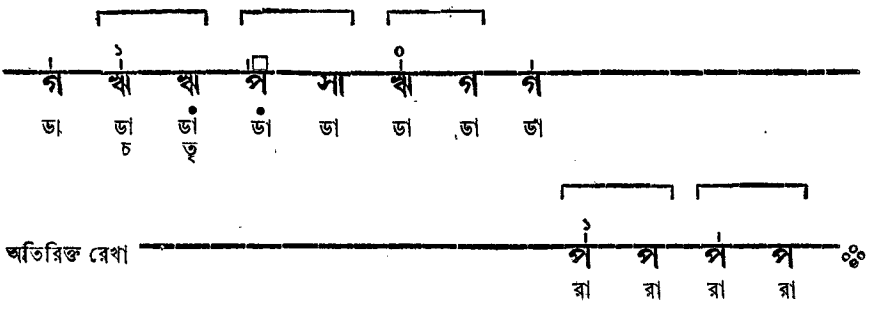

(৯৬)

বিভাস—খাড়ব।

মধ্যমান।

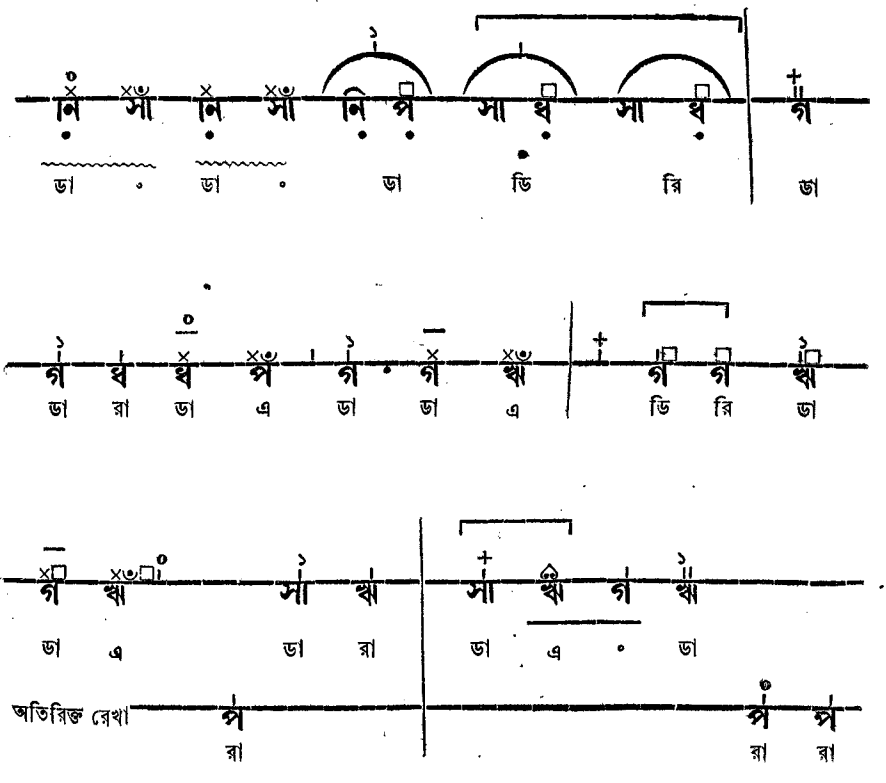

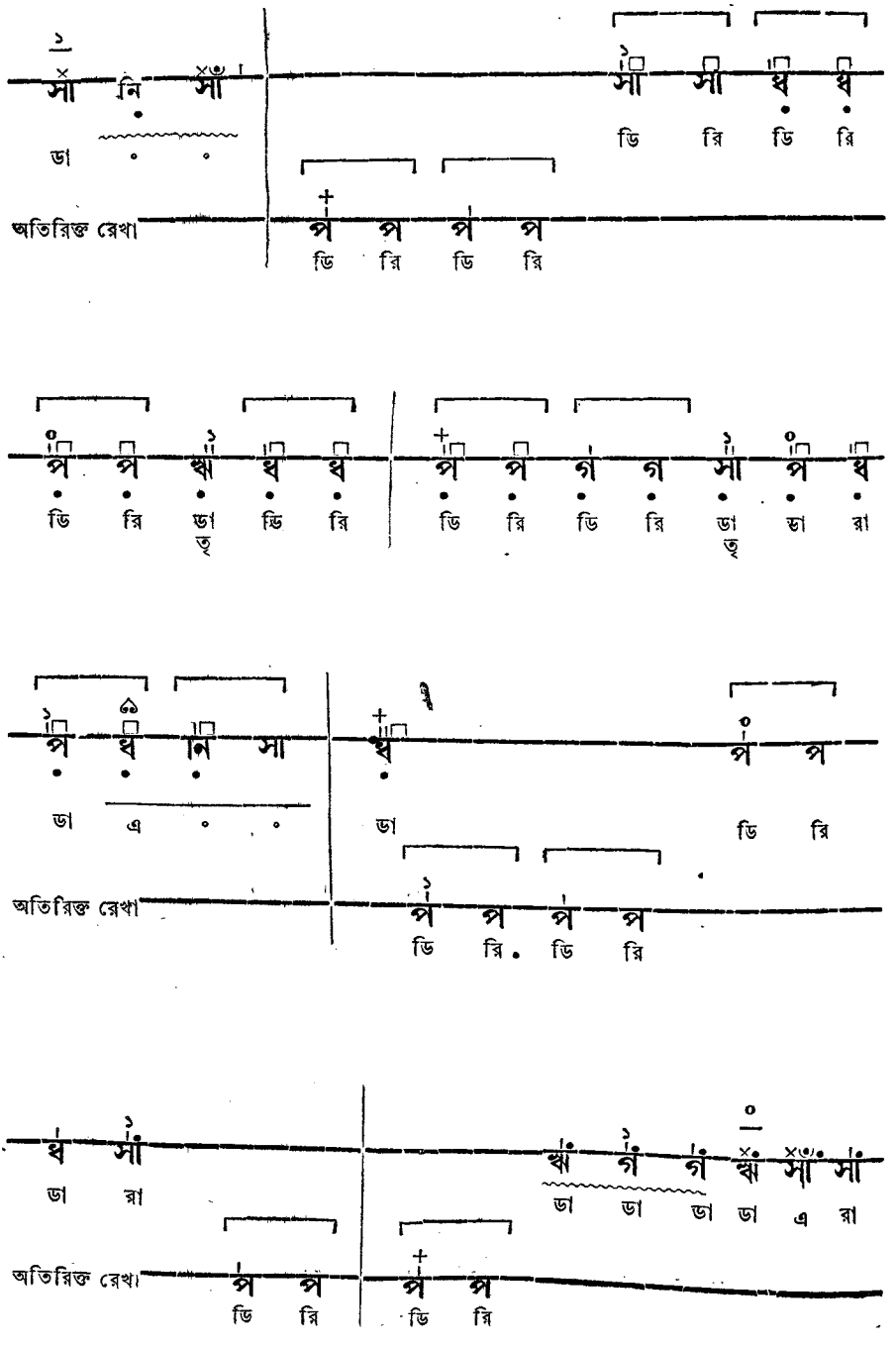
সা নি সা
ডা
অতিরিক্ত রেখা
সা সা ধ ধ
ডি রি ডি রি
প প প প
ডি রি ডি রি
প প ঋ ধ ধ
ডি রি ডা ডি রি
তৃ
প প গ গ সা প ধ
ডি রি ডি রি ডা ডা রা
তৃ
প ধ নি সা
ডা এ
ধ
ডা
প প
ডি রি
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
ডি রি ডি রি
ধ সা
ডা রা
ঋ গ গ ঋ সা সা
ডা ডা ডা ডা এ রা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
ডি রি ডি রি

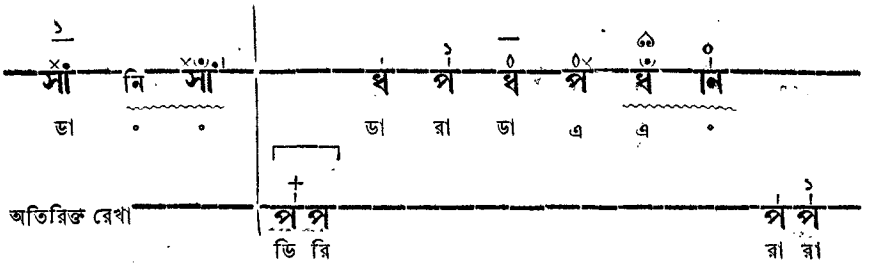
সাঁ নি সাঁ ধ প ধ প ধ নি
ডা ডা রা ডা এ এ
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
ডি রি রা রা

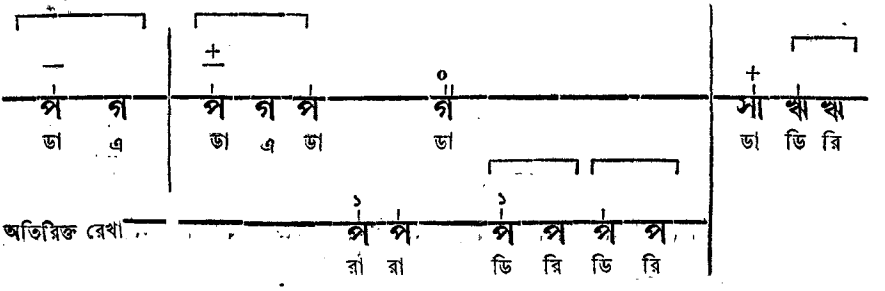
প গ প গ প গ সা ঋ ঋ
ডা এ ডা এ ডা ডা ডি রি
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প
রা রা ডি রি ডি রি

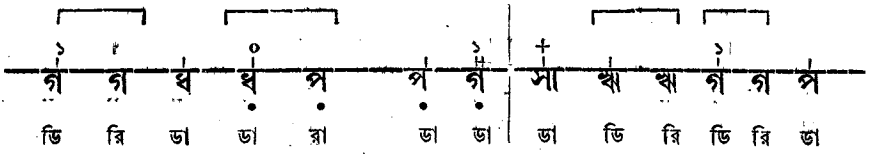
গ গ ধ ধ প প গ সা ঋ ঋ গ গ প
ডি রি ডা ডা রা ডা ডা ডা ডি রি ডি রি ডা

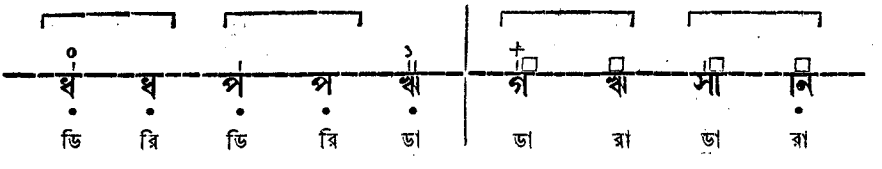
ধ ধ প প ঋ গ ঋ সা নি
ডি রি ডি রি ডা ডা রা ডা রা

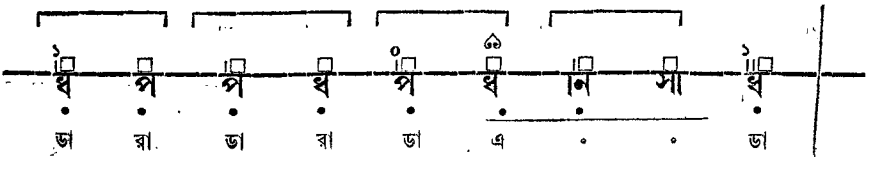
ধ প প ধ প ধ নি সা ধ
ডা রা ডা রা ডা এ ডা

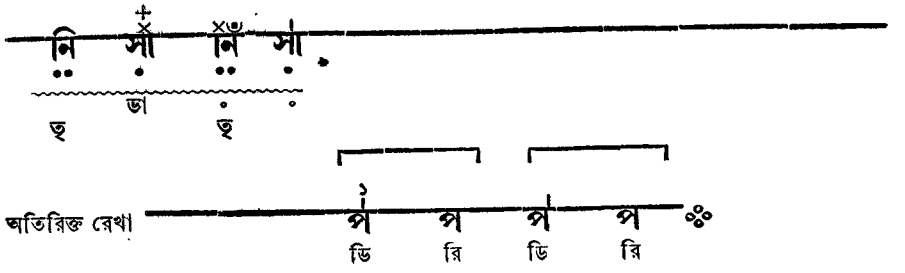
নি সাঁ নি সাঁ
ডা
তৃ তৃ
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
ডি রি ডি রি

বিস্তার।

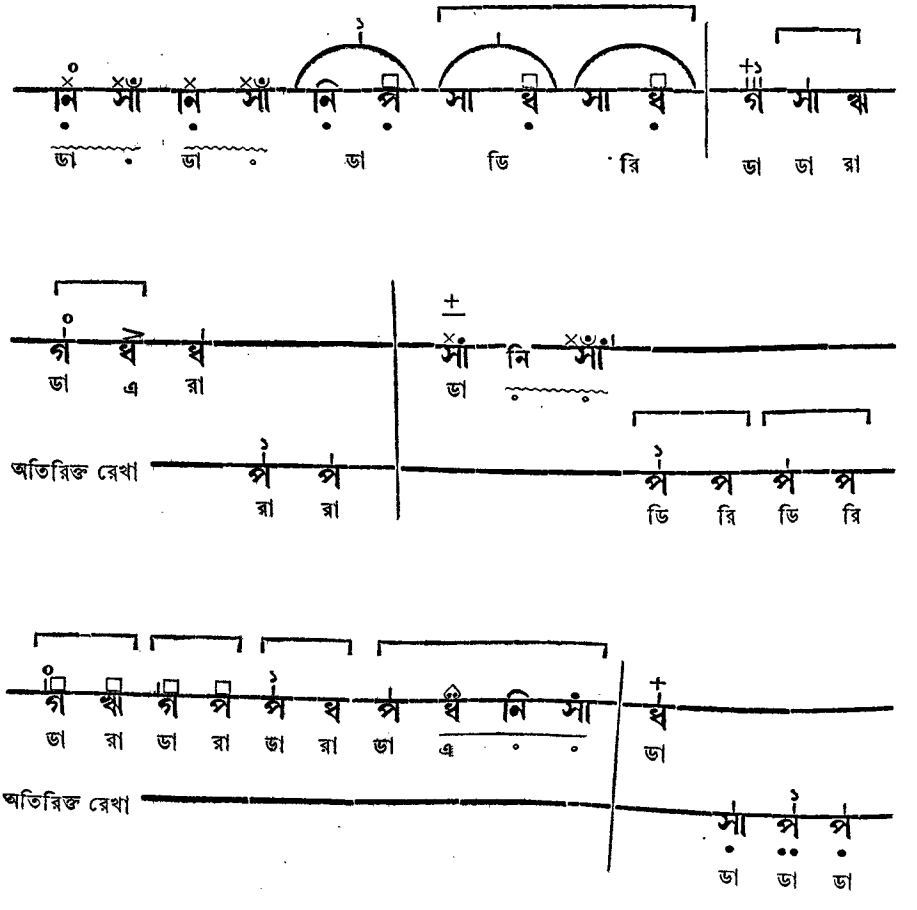
নি সাঁ নি সাঁ নি প সা ধ সা ধ গ সা ঋ
ডা ডা ডা ডি রি ডা ডা রা
গ ধ ধ সাঁ নি সাঁ
ডা এ রা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প
রা রা ডি রি ডি রি
গ ঋ গ প প ধ প ধ নি সাঁ ধ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা এ ডা
অতিরিক্ত রেখা
সা প প
ডা ডা ডা

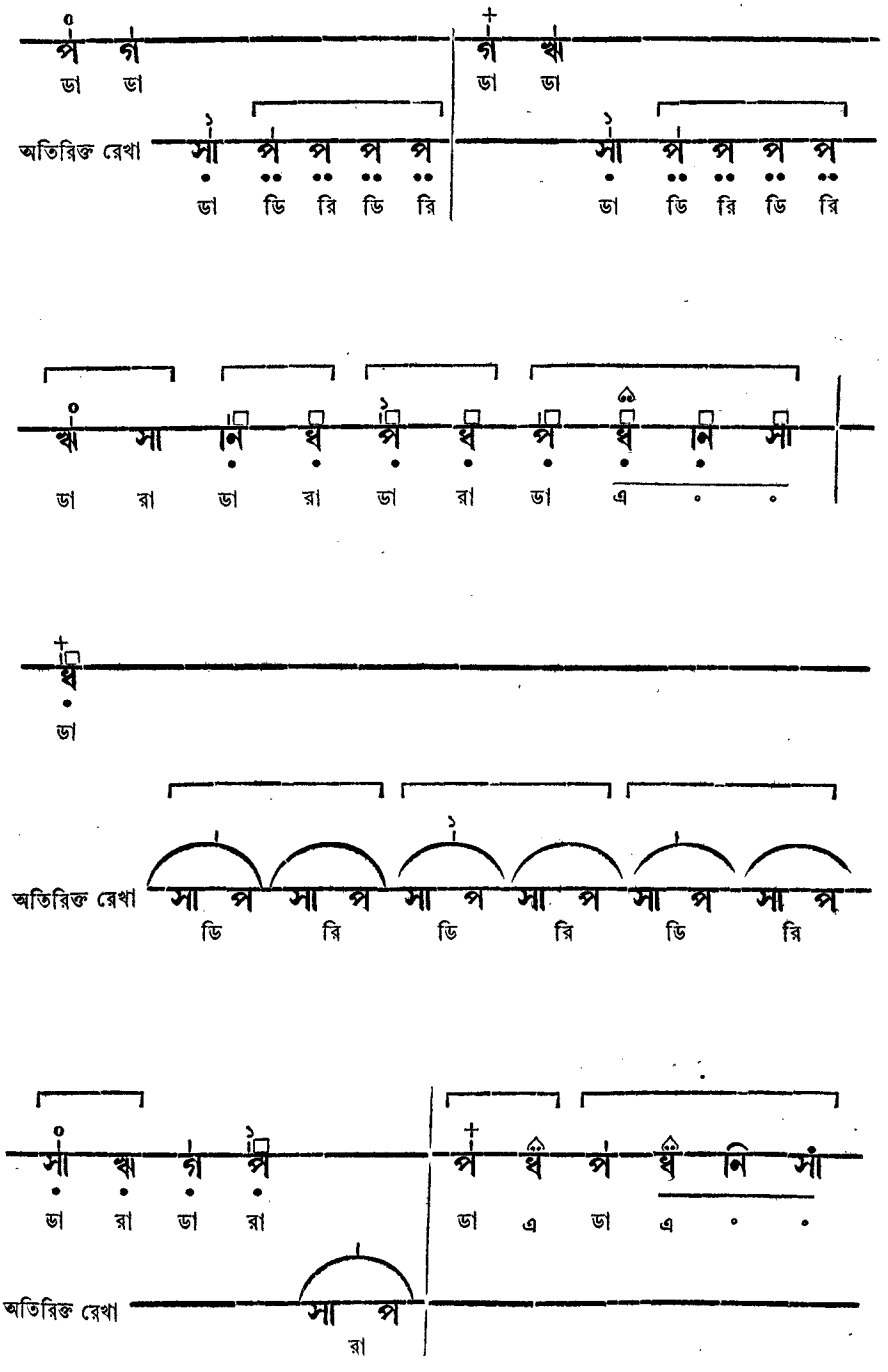
০ + ১
প গ গ ঋা সা প প প প প সা প প প প প
ডা ডা ডা ডা ডা ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডি রি
অতিরিক্ত রেখা
০ ১ ৩
ঋা সা নি ধ প ধ প ধ নি সা
ডা রা ডা রা ডা রা ডা এ ০ ০
+
ধ
ডা
অতিরিক্ত রেখা
সা প সা প সা প সা প সা প সা প
ডি রি ডি রি ডি রি
০ ১ + ৩
সা ঋা গ প প ধ প ধ নি সাঁ
ডা রা ডা রা ডা এ ডা এ ০ ০
অতিরিক্ত রেখা
সা প
রা

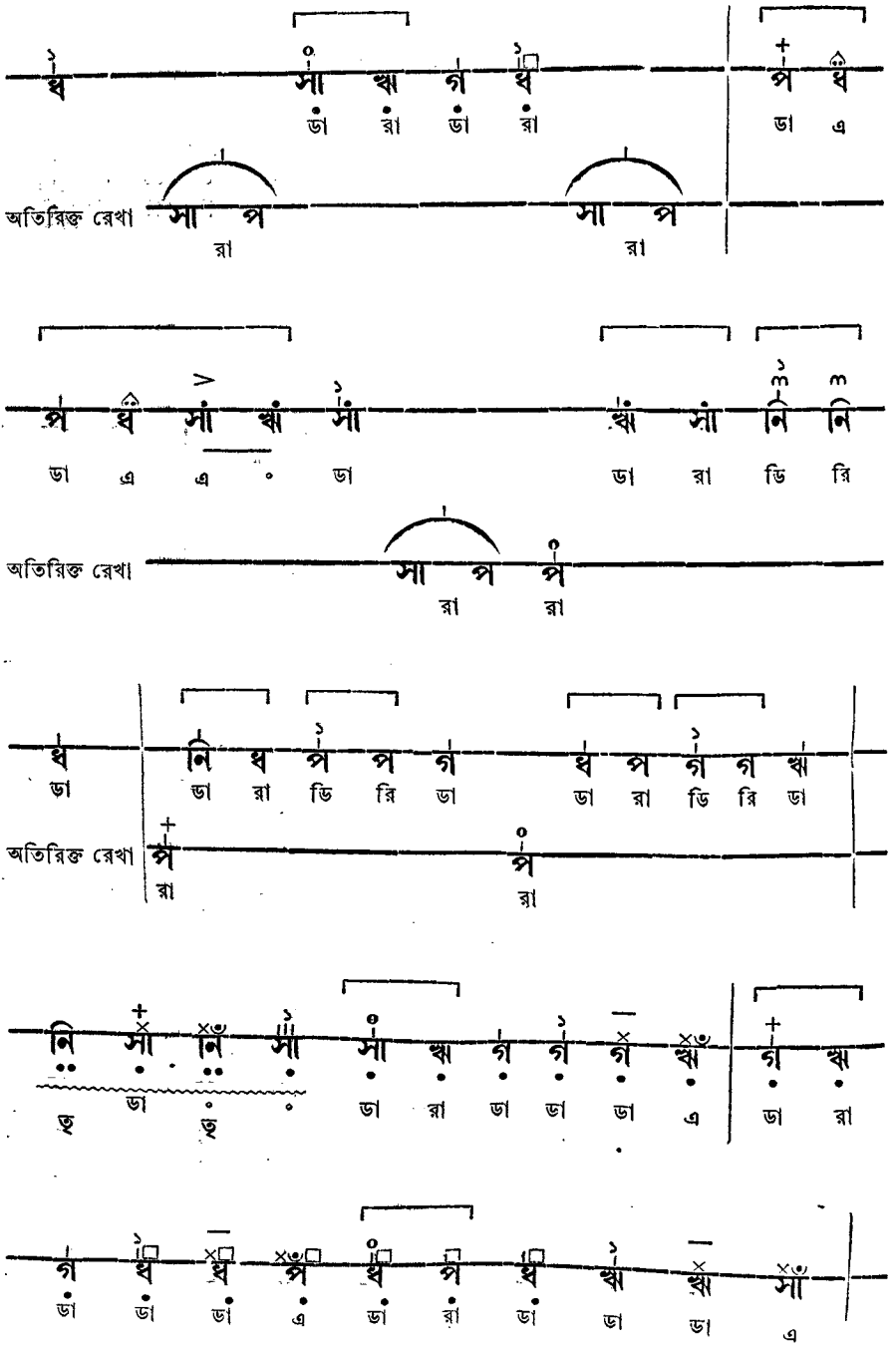
ধ সা ঋ গ ধ প ধ
ডা রা ডা রা ডা এ
অতিরিক্ত রেখা সা প সা প
রা রা
প ধ সাঁ ঋঁ সাঁ ঋঁ সাঁ নি নি
ডা এ এ ডা ডা রা ডি রি
অতিরিক্ত রেখা সা প প
রা রা
ধ নি ধ প প গ ধ প গ গ ঋ
ডা ডা রা ডি রি ডা ডা রা ডি রি ডা
অতিরিক্ত রেখা প প
রা রা
নি সাঁ নিঁ সাঁ সা ঋ গ গ গ ঋঁ গ ঋ
তু ডা তু ডা রা ডা ডা ডা এ ডা রা
গ ধ ধ ধঁ ধ প ধ ঋ ঋ সাঁ
ডা ডা ডা এ ডা রা ডা ডা ডা এ

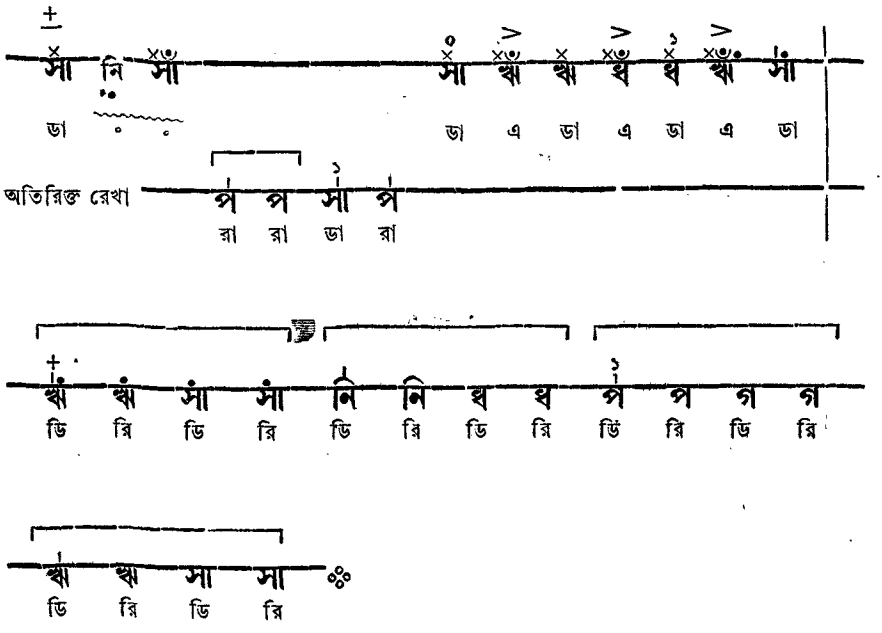

স্বরগ্রাম, স্পর্শ, কৃন্তন ও স্পর্শ-কৃন্তন প্রভৃতি সেতারবাদনোপযোগী ক্রিয়াসমূহের স্বরলিপি বুঝাইবার জন্য তদুপযোগী সাধনাসংযুক্ত কতকগুলি স্বরনিবন্ধনী লিপিবদ্ধ করা হইয়াছে, বোধ করি ঐ সকল স্বরনিবন্ধনী যাঁহারা যথারীতিতে মনোযোগপূর্ব্বক শিক্ষা করিবেন, তাঁহাদের স্বরলিপির মর্ম্ম বোধ এবং হস্তের জড়তা কিয়ৎপরিমাণে অপনোদিত হইবে। এক্ষণে স্বরনিবন্ধনীসম্বন্ধীয় অপরাপর কতকগুলি নিয়ম এস্থলে বিশেষ জানান কর্ত্তব্য। এপ্রকার অনেক স্বরনিবন্ধনী আছে, যাহা আস্থায়ী ও অন্তরা অনুসারে বিভক্ত হয় না, অর্থাৎ তাহাদিগের আস্থায়ী বা অন্তরা কিছুই নাই, প্রথম হইতে আরব্ধ হইয়া যথাস্থানে একেবারে পরিসমাপ্তি হয়, সেগুলিকে প্রস্তারিকা বা ক্রমান্বয়িকা বলে (১)। যথা :—

(১) শুদ্ধ স্বরনিবন্ধনী কেন, অনেক সংস্কৃত গীতও ঐরূপ আস্থায়ী এবং অন্তরা ব্যতিরেকে ব্যবহৃত হইতে দেখা যায়, সে সকল গীতও প্রস্তার নামে বিখ্যাত।

প্রস্তারিকা।

(৯৭)

সোহিনী—খাড়ব।

মধ্যমান।

(ঋ)

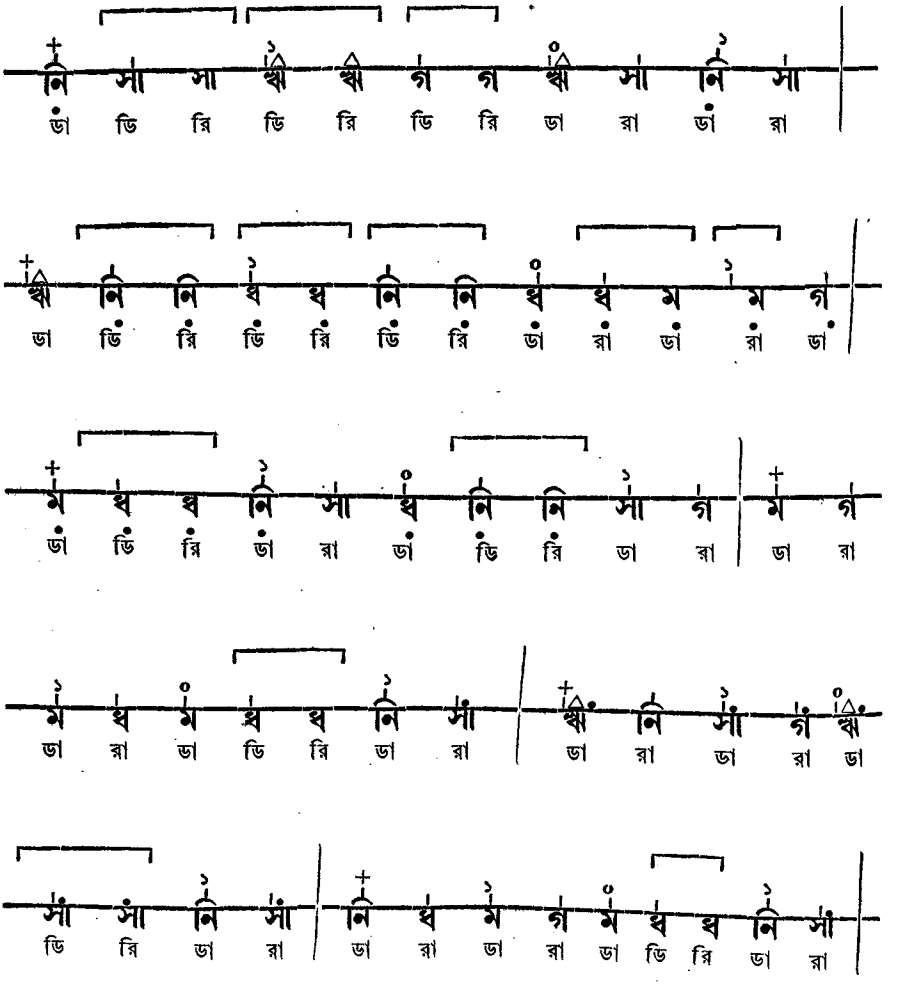
নি সা সা ঋ ঋ গ গ ঋ সা নি সা
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা রা ডা রা
ঋ নি নি ধ ধ নি নি ধ ধ ম ম গ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা রা ডা রা ডা
ম ধ ধ নি সা ধ নি নি সা গ ম গ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ম ধ ম ধ ধ নি সা ঋ নি সা গ ঋ
ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা
সা সা নি সা নি ধ ম গ ম ধ ধ নি সা
ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডা রা

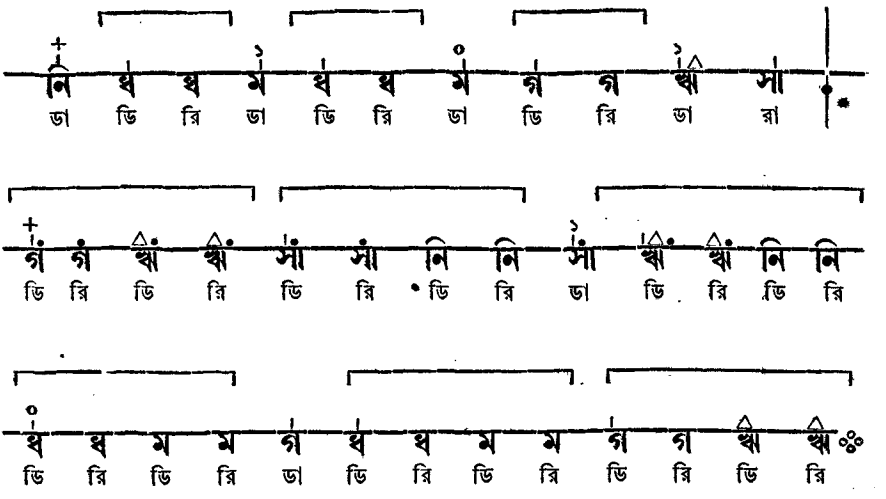

সামান্যতঃ স্বরনিবন্ধনীর তিনপ্রকার গতি হইয়া থাকে। যথা :— মন্থর-গতি, মণ্ডূক-গতি এবং গঙ্গাস্রোতো-গতি।

যে সকল স্বরনিবন্ধনী ধীরে ধীরে স্নিগ্ধ এবং সুস্পষ্ট ভাবে যথা-লয়ে বাদিত হয়, সেই রীতির স্বরনিবন্ধনী সমূহকে মন্থরগত্যনুসারিণী বলে (১)। যথা :—

মন্থর-গতি।

(৯৮)

ললিত—সম্পূর্ণ।

শ্লথত্রিতালী।

(ঋ)

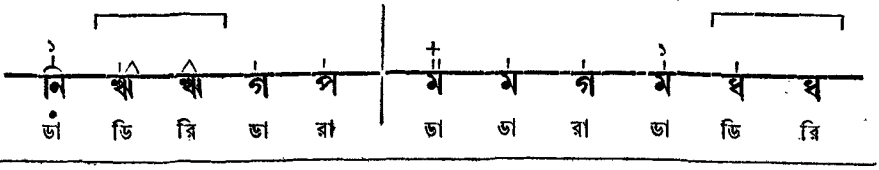

(১) এইপ্রকার স্বরনিবন্ধনীরীতিকে ইটালীয় ভাষায় এডাজুয়টীক্ ষ্টাইল্ (Adagiatic style.) বলে।

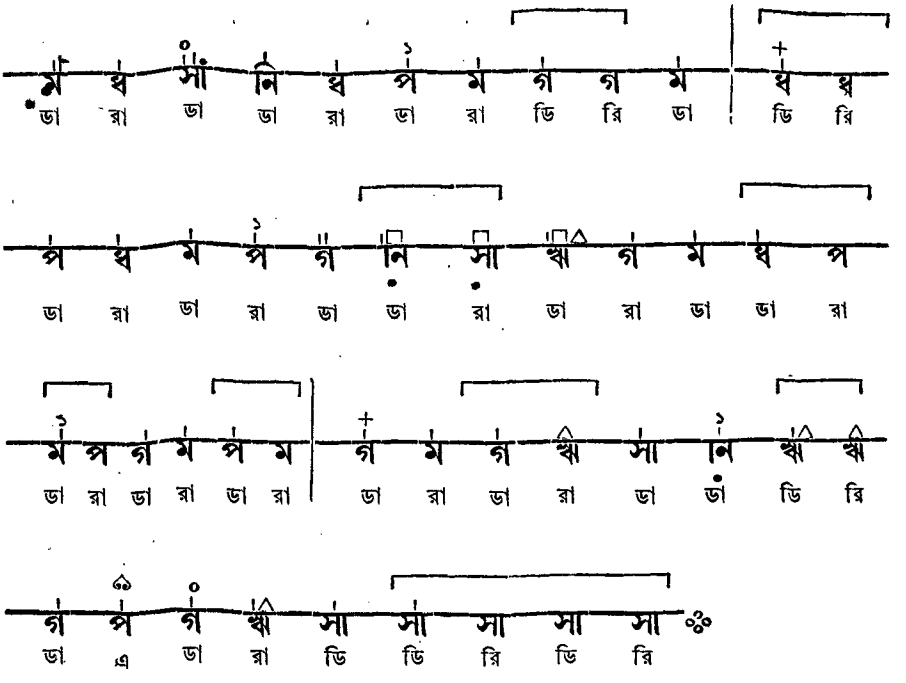

মণ্ডুক অর্থাৎ ভেক, যে প্রকার লম্ফন প্রদান পূর্ব্বক গমন করে, সেই রীত্যনুসারিণী স্বরনিবন্ধনীর গতিকে মণ্ডূকগতি বলে (১)। যথা :—

মণ্ডূক গতি।

(৯৯)

ইমন-কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

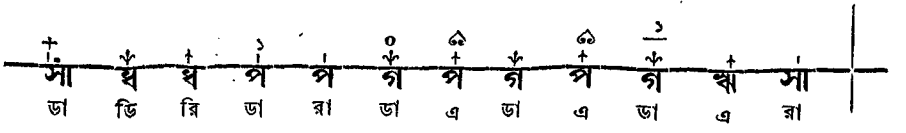

(১) ইটালীয় ভাষায় উহার নাম আর্‌পিজিওটীক্ ষ্টাইল (Arpeggiotic style)।

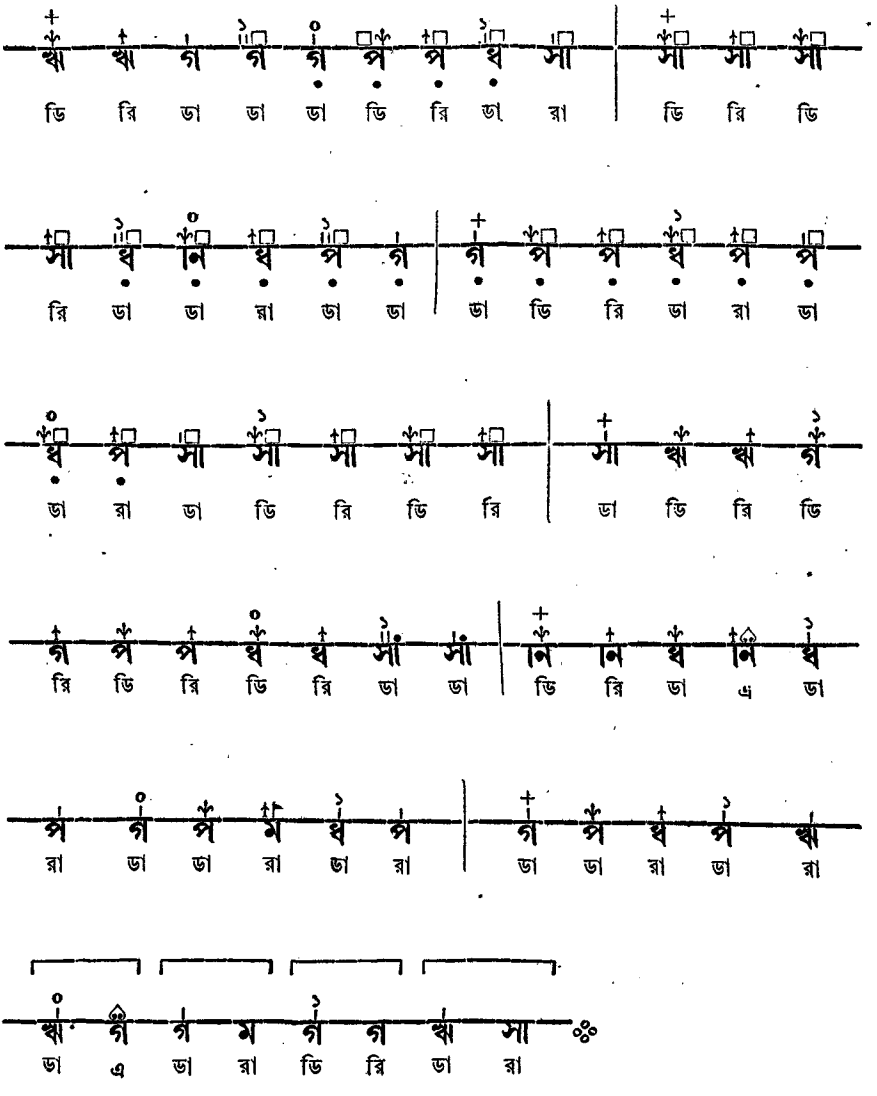

গঙ্গার স্রোতের ন্যায় দ্রুত যে স্বরনিবন্ধনীর গতি, তাহাকে গঙ্গা-স্রোতগতি কহে (১)। যথা :—

(১) ইটালীয় ভাষায় এলিগ্রোটিক্ ষ্টাইল (Allegrotic style) বলে।

গঙ্গাস্রোত গতি।

(১০০)

সিন্ধুড়া—সম্পূর্ণ।

দ্রুত ত্রিতালী।

(গ নি)

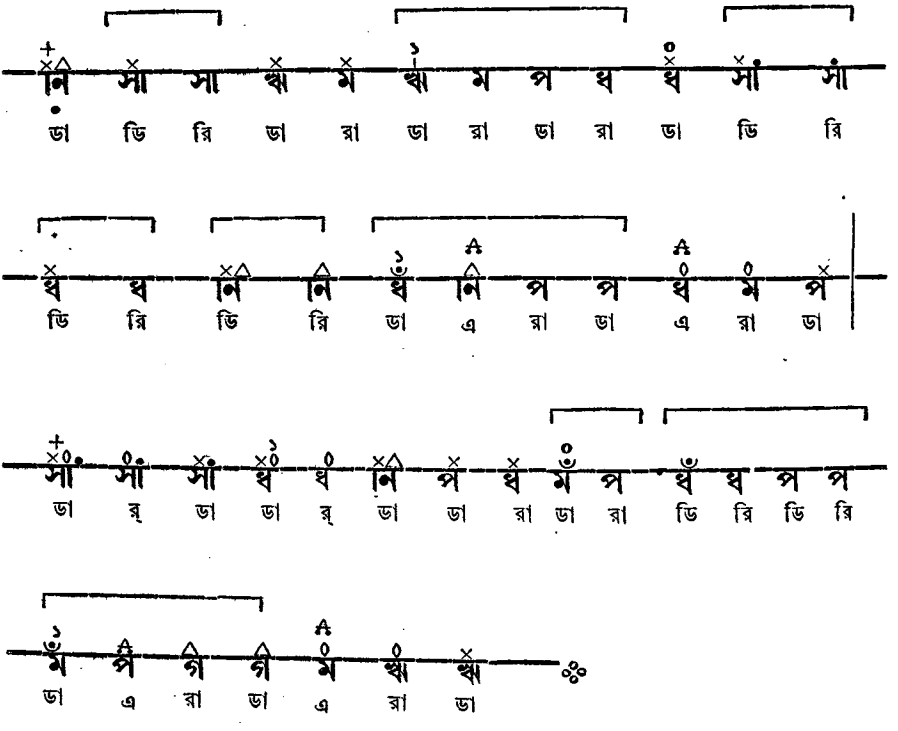

বিস্তার।

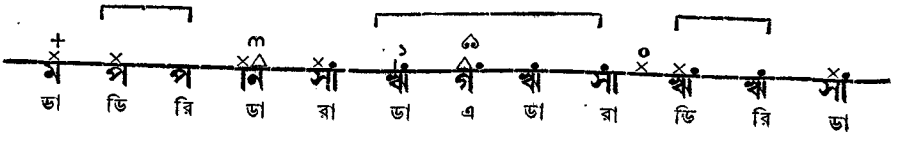

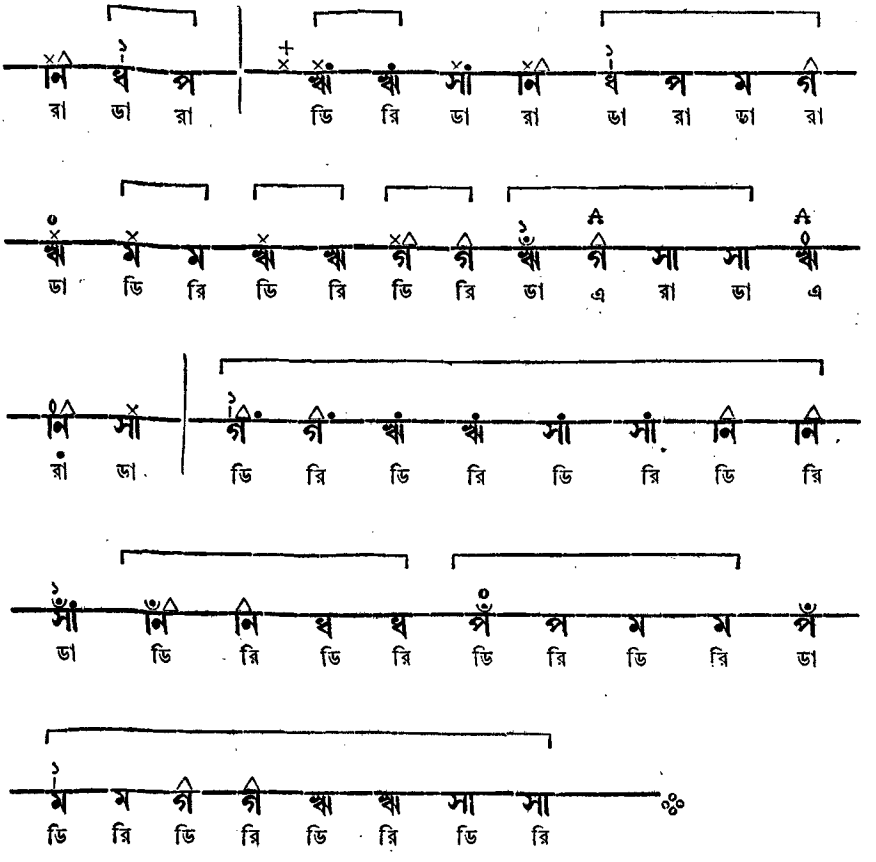
নি ধ প | ঋ ঋ সাঁ নি ধ প ম গ
রা ডা রা | ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা
ঋ ম ম ঋ ঋ গ গ ঋ গ সা সা ঋ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা এ রা ডা এ
নি সাঁ | গ গ ঋ ঋ সাঁ সাঁ নি নি
রা ডা | ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
সাঁ নি নি ধ ধ পঁ প ম ম পঁ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা
ম ম গ গ ঋ ঋ সা সা
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি

"রস্যতে আস্বাদ্যতে ইতি রসঃ"। অর্থাৎ কাব্য অথবা সঙ্গীত শ্রবণাদিকালে সহৃদয়ের অন্তঃকরণে যে অভূতপূর্ব্ব অনন্যদৃশ একপ্রকার নিবিড় আনন্দোদয় হয়, এমন কি অন্তঃকরণই যে অপূর্ব্ব আনন্দাকারে পরিণত হইয়া যায়, সেই নিবিড় আনন্দই রস। পরন্তু কাব্য-রস ও সঙ্গীত-রস উভয়বিধ রসই আস্বাদ্য হইলেও কারণকলাপের ভেদপ্রযুক্ত কিঞ্চিৎ বিভিন্ন হইয়া থাকে। নায়ক, নায়িকা, চন্দ্র, চন্দন, কোকিল-কূজিত ও ভ্রমরঝঙ্কারাদি কারণসঙ্কলনে কাব্যরসের উদয় হয়; সঙ্গীত-রস সেরূপ নহে, স্বর, মূর্চ্ছনা, তাল ও লয়াদিতে এই রস সম্ভূত হইয়া থাকে। এবং সঙ্গীতে সামান্যতঃ আটপ্রকার রস ব্যবহৃত হয় যথা :—

শৃঙ্গার, বীর, করুণ, রৌদ্র, হাস্য, ভয়ানক, বীভৎস ও অদ্ভুত। কাব্যে করুণ ভিন্ন শান্তি নামে আরও একটী রস স্বীকৃত আছে, ফলতঃ ঐ উভয়বিধ রসই একটী দ্রুমের শাখাস্বরূপ হইলেও সংস্কৃতগ্রন্থকর্ত্তারা শান্তিকে পৃথক্ বলিয়া স্বীকার করেন। তন্মধ্যে যন্ত্রগীতে করুণ ও বীর রস ভিন্ন প্রায়ই অন্যবিধ রসের সমাবেশ দেখা যায় না। যে বাদ্য শুনিলে সহসা মন অতিশয় দ্রবীভূত হইয়া করুণায় আপ্লুত হয়, সেই সকল বাদ্যই করুণরসাত্মক। এবং যে সকল বাদ্য শুনিলে মন অতিশয় প্রোৎসাহিত হইয়া যুদ্ধাদি কার্য্যে যোদ্ধৃবর্গের প্রবৃত্তি প্রসব করে, সেই সকল বাদ্য বীর রসাত্মক।

ছন্দোলঙ্কার।

বিবিধ মাত্রানুযায়িক কতকগুলি স্বরানুগত বর্ণ বা শুদ্ধস্বরকে যথানিয়মে রাগ এবং তালের অনুসারী করিয়া ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র পরিচ্ছেদে আবদ্ধ করাকে বিজ্ঞানেশ্বর, বিদ্যাধর, শিবকিঙ্কর-প্রভৃতি সঙ্গীত গ্রন্থকর্ত্তারা ছন্দোলঙ্কার বলেন (১)। এইরূপ অলঙ্কারপদ্ধতি স্বরনিবন্ধনী, শ্রেষ্ঠালঙ্কার ইত্যাদির সহিত সুচারুরূপে সর্ব্বদা ব্যবহৃত হয়। গীতাদির স্বরৈকরূপতা (২) বিনাশনিবন্ধন নানাগতিপ্রদর্শন জন্যই ছন্দোলঙ্কারের প্রয়োজন। কবিকল্পদ্রুমকর্ত্তা বোপদেব বলেন, ছদ ধাতুর অর্থ সম্বরণ, সুতরাং রসভাবাদিকে এক এক পরিচ্ছেদে সংবৃত করার নামই ছন্দঃ। সেইরূপ সঙ্গীতেও কতকগুলি ভিন্ন ভিন্ন স্বর ভিন্ন ভিন্ন রীতিতে মাত্রানুযায়িক সম্বদ্ধ হইয়া ক্ষুদ্র ক্ষুদ্র পরিচ্ছেদে বিভিন্ন

(১) বিশিষ্টমাত্রাসন্দর্ভং ছন্দোঽলঙ্কারলক্ষণং। তেষাং প্রবন্ধো গীতাদৌ প্রয়োগে সুমনোহরঃ॥ ইতি সঙ্গীতরত্নাবল্যাং। অপি চ, স্বরজাত রাগ সম যাহার আকার। যতিমাত্রাসহকারে উচ্চারণ যার॥ শ্রবণমধুর যাহা হৃদয়রঞ্জন। তাহাকে কহেন ছন্দঃ আদি কবিগণ॥ ইতি নর্ম্মালবিদ্যালয়ের প্রধান শিক্ষক শ্রীযুক্ত মধুসূদন বাচস্পতি প্রণীত বাঙ্গালা ছন্দোমালা গ্রন্থে।

(২) ইংরাজী ভাষায় যাহাকে "মনটনী" (Monotony) বলে।

ছন্দোরূপে প্রতিপন্ন হয় (১)। ছন্দোমঞ্জরীকর্ত্তা সামান্যতঃ দুই-প্রকার ছন্দের নাম বিধিবদ্ধ করিয়াছেন, যথা :—জাতি এবং বৃত্ত। কেবল অক্ষর গণনায় যে ছন্দঃ নিবদ্ধ হয়, তাহার নাম বৃত্ত, যেমন বসন্ততিলক ইত্যাদি। লঘু গুরু মাত্রানুযায়িক বর্ণনিবদ্ধ ছন্দের নাম জাতি, যেমন আর্য্যা, গীতি, উপগীতি প্রভৃতি। ছন্দঃশাস্ত্রকর্ত্তারা লঘু এবং গুরু এই দুইমাত্র মাত্রা ব্যতীত অর্দ্ধ অথবা দ্রুত এবং প্লুত ইত্যাদির নামও ছন্দঃশাস্ত্রে উল্লেখ করেন নাই, পরন্তু আমাদিগের সঙ্গীতশাস্ত্রমতে অনুদ্রুত, দ্রুত, লঘু, গুরু এবং প্লুত এই পাঁচপ্রকার মাত্রার নিয়ম বিধিবদ্ধ আছে। একমাত্রা কালের নাম লঘু, যেমন
। । । । ।
অ ই উ ঋ ঌ ইত্যাদি। একমাত্রা কালের পর হইতে ত্রিমাত্রা কালের
৩ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
পূর্ব্ব কাল পর্য্যন্ত সমুদয়ই গুরু, যেমন অচ্, আ, ঈ, ঊ, ঋ, ঌ, এ, ঐ,
॥ ॥ ৩
ও, ঔ, এচ্ ইত্যাদি। আর ত্রিমাত্রা হইতে যত অধিক মাত্রা হইবে,

---

(১) ছন্দঃ যে সঙ্গীতের পক্ষে কতদূর প্রয়োজনীয়, অথবা ছন্দঃ না হইলে সঙ্গীত যে একেবারে হয়ই না, তাহার প্রমাণ "নাথন্" প্রভৃতি ইংরাজী সঙ্গীত অধ্যাপকেরাও সুবিস্তার রূপে স্বীকার করিয়াছেন। "নাথন্" সাহেব বলেন :—"Music is designated for nobler purposes than merely to please the ear; she is intended to speak to the judgement. But unaided by good poetry, her spell is partly broken, and the bright wreath of her fame droops and withers. Pure composition unites music and poetry in indisoluble bonds; and so intimate is their connection, so equal their value, so indispensable the strictness of their union, that the rules of sense and propriety render them the echo of each other."

"From the strict regard paid by the ancients to their long and short syllables, Tartini supposes, 'they could not have prolonged any note beyond the time allowed to the syllable, and from this cause a fine voice would be unable to display its powers by passing rapidly from syllable to syllable to prevent the loss of time.'" অপিচ উইলার্ড সাহেব বলেন, "Metre

সমুদয়ই প্লুত। অর্দ্ধমাত্রার নাম দ্রুত, যেমন কৃ, তদর্দ্ধের নাম অনুদ্রুত, অর্থাৎ কবিতাদির পাদান্তে অথবা পাদমধ্যে অথবা ছন্দোনুযায়িক ইচ্ছাধীন যে জিহ্বার স্বল্প বিশ্রাম, তাহাকে সঙ্গীতশাস্ত্রমতে অনুদ্রুত বলে, অনুদ্রুত শব্দ ছন্দোগ্রন্থে যতিশব্দ বাচ্য (১)। এই সকল মাত্রাজ্ঞাপন জন্য লঘুর স্থানে "ল" গুরুরস্থানে "গ" প্লুতেরস্থানে "প" দ্রুতের স্থানে চন্দ্রবিন্দু (৩) বা অর্দ্ধচন্দ্র চিহ্ন (২) এবং যতির এইরূপ চিহ্ন (৵) স্থিরীকৃত আছে।

ছন্দোগ্রন্থেও লঘুর পরিবর্ত্তে "ল" এবং গুরুর পরিবর্ত্তে "গ" মাত্রের ব্যবহার হইয়া থাকে (৩)। ছন্দোমঞ্জরীকর্ত্তা বলেন, অনুস্বারযুক্ত "নং" ইত্যাদি, দীর্ঘ বর্ণযুক্ত "গী" ইত্যাদি, বিসর্গযুক্ত "নঃ" ইত্যাদি, আর সংযুক্ত বর্ণের পূর্ব্ব বর্ণ (যেমন কল্পের "ক"), অর্থাৎ "ল" এবং "প" এই দুইটী বর্ণ সংযুক্ত হইয়া "ল্প" হইয়াছে, এই

---

is allowed to have this effect in poetry, and whynot in music? It is very well known that a mere transposition of key without a change in the time has very little power on the spirits of the hearer."

(১) যতির্জ্জিহ্বেষ্টবিশ্রামস্থানং কবিভিরুচ্যতে। সা বিচ্ছেদবিরামাদ্যৈঃ পদৈবাচ্যা নিজেচ্ছয়া॥ কচিচ্ছন্দস্যান্তে যতিরভিহিতা পূর্ব্বকৃতিভিঃ পদান্তে সা শোভাং ব্রজতি পদমধ্যে ত্যজতি চ। পুনস্তত্রৈবাসৌ স্বরবিহিতসন্ধিঃ শ্রয়তি তাং যথা কৃষ্ণঃ পুষ্ণাত্বতুলমহিমা মাং করুণয়া॥ ইতি ছন্দোগোবিন্দনামকগ্রন্থে॥ অপি চ কূটপাটৈরেকরূপৈরচিতোঽপ্যন্তকোমলঃ। বিরামৈর্বহুভিস্তালচ্ছন্দোভির্বজনোজ্জ্বলৈঃ॥ যো বাদ্যন্তে তদা তালৈর্যতিরিত্যভিধীয়তে॥ ইতি নর্ত্তকনির্ণয়ে॥

(২) তদর্দ্ধং দ্রুতমিত্যুক্তং তদর্দ্ধঞ্চাপ্যনুদ্রুতং। অনুদ্রুতফলং কাপি বিরামানুদ্রুতে ইতি। দ্রুতাদৌ পরিভাষেয়ং দ্রুতাচ্চ নাদবিন্দুষু॥ লকারে লঘুরেকঃ স্যাৎ গকারে তু গুরুর্মতঃ। পকারে প্লুতমুন্নেয়ং গণভেদাস্তথাপরং॥ গণৈর্লঘুগুরুজ্ঞানং মকারাদিভিরষ্টভিঃ। ছন্দঃশাস্ত্রে বেদ্যমেবং তত্র নস্তঃ প্লুতদ্রুতৌ॥ মস্ত্রিগুরুস্ত্রিলঘুশ্চ নকারো ভাদিগুরুঃ পুনরাদিলঘুর্যঃ। জো গুরুমধ্যগতো রলমধ্যঃ সোঽন্তগুরুঃ কথিতোঽন্তলঘুস্তঃ। ইতি সঙ্গীতরত্নাবল্যাং॥

(৩) গুরুরেকো গকারস্তু লকারো লঘুরেককঃ। ইতি ছন্দোমঞ্জর্য্যাং।

সংযুক্ত "ল্লের" পূর্ব্ব "ক" এই বর্ণটী গুরুরূপে প্রতিপাদিত হয়। পাদের অন্তস্থিত অর্থাৎ পাদের শেষবর্ণ কখন গুরু কখন বা লঘুরূপে স্বীকৃত হইয়া থাকে (১)। সংস্কৃত ছন্দোগ্রন্থকর্ত্তারা কেবল ব্যঞ্জন বর্ণ অর্থাৎ খণ্ড অক্ষরকে অক্ষর বলিয়াই স্বীকার করেন না, অথচ ঐ ব্যঞ্জন বর্ণকে অর্দ্ধমাত্রা বলিয়াও নির্দ্দেশ করিতে ত্রুটি করেন নাই। ছন্দোবন্ধে ঐ অর্দ্ধমাত্র বর্ণ ধর্ত্তব্য মধ্যেই পরিগণিত হয় নাই, এটী আমাদের মতবিরুদ্ধ। যথা :—অ ক্। সঙ্গীতমধ্যে অক্ এই পদে সার্দ্ধমাত্রার নির্বাচন আছে। ছন্দঃকর্ত্তাদিগের মতে উহাতে একটী-মাত্র মাত্রা ধর্ত্তব্য, খণ্ডবর্ণ ক্‌টী পরিগণিত হয় না, পরন্তু শ্লোকাদির মধ্যে ঐ অক্ শব্দটী থাকিলে তাঁহারা ঐ ক্‌টীর পরস্থিত কোন ব্যঞ্জন-বর্ণের সহিত উহার সংযোগ কল্পনা করিয়া কথিত ক্‌টীর পূর্ব্ববর্ণ অটীকে গুরুবর্ণ বলেন, বলুন্, যেমন অক্‌ত, তাহা আমাদিগেরও মত বটে কিন্তু গুরু বলিয়া তাহাতে দুইটী মাত্রা স্থির করেন, এটী নিতান্তই বিরুদ্ধ। দ্বিমাত্র বলিলেই তাহাঁকে দীর্ঘ বলিয়া নির্দ্দেশ করিতে হয়, তাহাও তাঁহারা করেন। গুরু বর্ণকে দীর্ঘ বলিয়া নির্দ্দেশ করা যে, কেবল আমাদিগের সঙ্গীতশাস্ত্রেরই মতবিরুদ্ধ এমত নহে, সর্ব্বশাস্ত্রবোধের দীপতুল্য অতুল্য ব্যাকরণ শাস্ত্রেরও মতবিরুদ্ধ। কি পাণিনিকার, কি কলাপপ্রণেতা, কি সংক্ষিপ্তসারকর্ত্তা, কি মুগ্ধবোধরচয়িতা সকলেই ইহার বিপরীতবাদী। ইহাঁদের প্রত্যেকেরই মত একমাত্র বর্ণ লঘু তদতিরিক্ত সকলই গুরু। সুপ্রসিদ্ধ মেদিনীকার অলঘুরই গুরুত্ব স্থির করেন, সুতরাং প্লুতেরও গুরুসংজ্ঞার ব্যাঘাত নাই, পরন্তু দ্বিমাত্র বর্ণমাত্রেরই দীর্ঘসংজ্ঞা আছে অন্যের নাই। দীর্ঘকে গুরু বলা যায়,

---

(১) সানুস্বারশ্চ দীর্ঘশ্চ বিসর্গী চ গুরুর্ভবেৎ। বর্ণঃ সংযোগপূর্ব্বশ্চ তথা পাদান্ত-গোঽপি বা॥ ইতি ছন্দোমঞ্জর্য্যাং॥ অপি চ সংযুক্তাদ্যং দীর্ঘং সানুস্বারং বিসর্গসংমিশ্রং। বিজ্ঞেয়মক্ষরং গুরু পদান্তস্থং বিকল্পেন॥ ইতি মহাকবিকালিদাসপ্রণীতশ্রুতবোধে॥

কিন্তু গুরুকে দীর্ঘ বলিতে পারা যায় না। গুরু ব্যাপক, অর্থাৎ বহু-
ব্যাপী, যেমন অক্, আ আক্ ইত্যাদি। দীর্ঘ ব্যাপ্য, অর্থাৎ স্বল্পব্যাপী,
যেমন আ, ঈ, ঊ, ৠ, ৡ, এ, ঐ, ও, ঔ ইত্যাদি। ঐ ব্যাপ্যব্যাপক
ভাবাপন্ন গুরু ও দীর্ঘকে কি প্রকারে একরূপ বলা যাইতে পারে(১)।
সহৃদয় ব্যক্তি বিবেচনা করিবেন, এক স্থলে "ধত্তে" এই একটী শব্দ
আছে, সঙ্গীতশাস্ত্রমতে তাহার এইরূপ গণনা করা যায়, যথা :—"ধ"
একমাত্র, ৎ অর্দ্ধমাত্র তে (২) দ্বিমাত্র, সাকল্যে এই সার্দ্ধ তিনমাত্রা
এই স্থলে পরিগণিত হইয়া থাকে। ছন্দোগ্রন্থকর্ত্তারা ঐ "ধত্তের" স্থলে
"ধ" ইহা সংযুক্ত বর্ণের পূর্ব্ব বর্ণ হেতু দ্বিমাত্র, এবং "ত্তে" ও দ্বিমাত্র,
সাকল্যে এই চারিমাত্রা নির্ণয় করেন। এক্ষণে জিজ্ঞাস্য, "ধত্তে" এই
পদের পরিবর্ত্তে যদি "ধাত্তে" এই অপভ্রংশ পদ প্রযুক্ত হয়, তাহাতে ও

---

(১) বিশেষতঃ মুগ্ধোবোধ ব্যাকরণে তদ্ধিতপ্রকরণে এরূপ লিখিত আছে, লীকো-র্ঘাৎ সঃ ষত্বি। অস্যার্থঃ যদি ত্ব পরে থাকে, তাহা হইলে লিঙ্গের ইক্ অর্থাৎ ই, উ, ঋ, ঌ এই চারি হ্রস্ব বর্ণের পর দন্ত্য স থাকিলে তাহা মূর্দ্ধন্য ষ হয়, কিন্তু দীর্ঘের পর হয় না। উদাহরণ যথা :—যজুষ্ট্বং যজুস্ শব্দের পর ত্ব প্রত্যয় করিলে উক্ত সূত্র দ্বারা দন্ত্য সকার-স্থানে মূর্দ্ধন্য ষকার হইয়া উক্ত পদটী নিষ্পন্ন হইয়াছে, যদি গুরুকেই দীর্ঘ বর্ণ বলেন, তাহা হইলে স ত্ব এই সংযোগের পূর্ব্বে যে যজুর উকার আছে, উহা গুরু বটে, কিন্তু তাহাকে দীর্ঘ বলিলে দন্ত্য সকারস্থানে মূর্দ্ধন্য ষকার হইতে পারে না। সুতরাং উক্ত পদ সিদ্ধ হয় না। অপি চ কালাপীয় ব্যাকরণেও ঐরূপ সূত্র দৃষ্ট হয়, যথা :—হ্রস্বাত্বাদৌ তদ্ধিতে নাম্নঃ হ্রস্বাৎ পরস্য সস্য ত্বাদৌ তদ্ধিতে নাম্নো বিহিতঃ সঃ যো ভবতি। বপুস্ত্বং বপুষ্ট্বং ইত্যাদি। হ্রস্বাদিতি কিং গীস্ত্বং ইত্যাদি। ইতি দুর্গসিংহকৃতকালাপীয়পরি-শিষ্টে॥

(২) বস্তুতঃ বিশেষ বিবেচনা করিয়া দেখিতে গেলে "ধত্তে" এই স্থলেতে
৩। ৩৩ ॥
(ধ্ অ ৎ ত্ এ) সার্দ্ধ চতুর্মাত্রা ধরিতে পারা যায়, পরন্তু কালাপীয় সূত্রদর্শনে সুতরাং তাহা পরিত্যাগ করিতে হইয়াছে, কালাপীয় সূত্র যথা :—ব্যঞ্জনমস্বরং পরং বর্ণং নয়েৎ। ব্যঞ্জনং পরং বর্ণং নয়েৎ ন তু স্বরং ব্যঞ্জনমন্বগ্ স্বরঃ স্বয়ং রাজতে হি। অস্য টীকা

তাঁহাদিগের মতে চারিটী মাত্রা গণনা করিতে হইবে। এস্থলে সহৃদয় ব্যক্তি কি বোধ করেন "ধত্তে" এই পদটীতে যত মাত্রা (ছন্দোগ্রন্থ-কর্ত্তৃদিগের মতানুযায়িক চারিমাত্রা), "ধাত্তে" ইহাতেও কি সেই চারি মাত্রা আছে? এ কি নিতান্ত অনুভববিরুদ্ধ হয় না? "ধাত্তের" ধয়ে আকার সংযুক্ত হেতু অপেক্ষাকৃত কি তাহার মাত্রাগত আধিক্য বোধ হইবে না?

কথিত নিয়মানুসারে যদিও ছন্দোগ্রন্থকর্ত্তৃমহাশয়দের সঙ্গে স্বল্প-ব্যাপী দীর্ঘ ইত্যাদি মাত্রার পরিমাণ-গ্রহণানুগত আমাদের মতভেদ হয় বটে, কিন্তু বহুব্যাপী লঘুগুরুসংজ্ঞাদি বিষয়ে আমাদের সহিত তাঁহাদের কোন অমিলই নাই, সে সমুদয়ই একরূপ। কথিত হইয়াছে কেবল অক্ষর গণনায় বসন্ততিলকাদি যে সকল ছন্দঃ প্রতিপন্ন হয়, তাহাদের নাম বৃত্ত বা অক্ষরাবৃত্ত। এই বৃত্তের প্রত্যেক চরণে একাক্ষর, দ্ব্যক্ষর, ত্র্যক্ষর প্রভৃতি নানারূপ অক্ষর-সংখ্যাবিন্যাসানুক্রমে বহুবিধ ছন্দঃ হইয়া থাকে। আমাদিগের সঙ্গীতমতে মধ্যমান (১) নামে একটী তাল আছে। মধ্যমানের প্রত্যেক চরণে এক একটী গুরুমাত্রা ব্যবহার্য্য। যথা:—
" " " "
আ, আ, আ, আ। ছন্দঃশাস্ত্রেও মধ্যমানের অনুরূপ একাক্ষরাবৃত্তি শ্রীছন্দঃ। শ্রীছন্দের প্রত্যেক পাদ এক একটী গুরু বর্ণ দ্বারা সম্পা-
" " " "
দিত হয়। যথা:—ও, মা, এ, সো। রত্নাবলীর দর্পণতালের সহিত ইহার সৌসাদৃশ্য আছে।

ত্রিলোচনদাসকৃতাকালাপীয়পঞ্জিকায়াং। ন তু স্বরমিত্যাদি, হি শব্দো যস্মাদর্থে যস্মাৎ স্বরঃ স্বয়ং রাজতে অসহায়োঽপ্যর্থং প্রতিপাদয়তি তস্যানুযায়ী ন ভবতি ব্যঞ্জনং পুনরন্বগ্ অনুগচ্ছতীতি অনুযায়ী ভবতি স্বাতন্ত্র্যোণার্থপ্রতিপাদনে সামর্থবিরহাৎ। তথাচোক্তং ব্যঞ্জনান্যন্বযায়ীনি স্বরা নৈবং যতো মতাঃ। অপরঞ্চ হলপরযুক্ অস্যার্থঃ হলবর্ণঃ পরেণ সহ যুক্তো ভবতীতি সংক্ষিপ্তসারব্যাকরণেঽপি এতদুক্তং।

(১) মধ্যমানের বিশেষ নিয়ম অধ্যাপক শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামী মহাশয়ের সঙ্গীতসারে দ্রষ্টব্য। অপরঞ্চ একেন গুরুণা শ্রীরঙ্গঃ স্যাদিতি নর্ত্তকনির্ণয়ে॥

একাক্ষরাবৃত্তি।

শ্রীচ্ছন্দঃ।

সা	গ	প	ঋ
ও,	মা,	এ,	সো।

দ্ব্যক্ষরাবৃত্তি।

কন্যাচ্ছন্দঃ।

যে ছন্দের প্রত্যেক চরণে দুইটী গুরু বর্ণ থাকে, তাহার নাম কন্যাচ্ছন্দঃ। যথা:—রাজা, মারে, কেবা, রাখে। এই ছন্দটীর সহিত শ্লথত্রিতালী অর্থাৎ ঢিমা-তেতালা ও রত্নাবলীলিখিত কেন্দুমালি তালের সমতা আছে (১)।

সা	সা	গ	প	প	গ	ঋ	সা
রা	জা,	মা	রে,	কে	বা,	রা	খে।

ত্র্যক্ষরাবৃত্তি।

মৃগীচ্ছন্দঃ।

উভয় পার্শ্বে গুরু ও মধ্যস্থলে লঘু বর্ণ, এইরূপ তিনটী অক্ষরে যে ছন্দের প্রত্যেক পাদ সম্পন্ন হয়, তাহাকে মৃগীচ্ছন্দঃ কহে। যথা:—জাগিয়া, যামিনী, শ্রীমতী, মানিনী। রত্নাবলীর মতানুসারী ত্রিভঙ্গি তালের সহিত ইহার তুল্যতা আছে।

---

(১) গদ্বয়ং কন্দর্পে জ্ঞেয়ং ইতি সঙ্গীতভাষ্যে॥

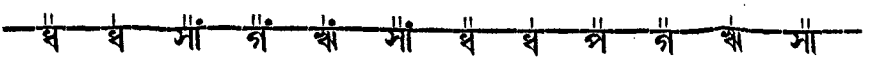

চতুরক্ষরাবৃত্তি।

সতীচ্ছন্দঃ।

প্রত্যেক চরণে তিনটী লঘু এবং একটী গুরু, এইরূপ চারিটী বর্ণে যাহা সম্পন্ন হয় তাহার নাম সতীচ্ছন্দঃ। যথা :—সখি বলে, সকরুণে, চল ধনী, ধন দিতে। রত্নাবলীর মতানুযায়ী রাজচূড়ামণি তালের সহিত ইহার ঐক্য আছে।

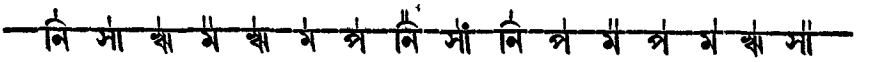

পঞ্চাক্ষরাবৃত্তি।

পংক্তিচ্ছন্দঃ।

প্রত্যেক চরণের প্রথমটী গুরু দুইটী লঘু আবার দুইটী গুরু, এই প্রকার পাঁচটী অক্ষরে পংক্তি নামে ছন্দঃ হইয়া থাকে। পংক্তিচ্ছন্দঃ অতি প্রাচীন ইহা বেদান্তর্গত একটী অন্যতর ছন্দঃ বলিয়া বিখ্যাত। যথা :—বেষ্টিত গোপী, চঞ্চলমানে, চেষ্টিত চিত্তা, কাঞ্চনদানে। সঙ্গীততরঙ্গধৃত অর্দ্ধচন্দ্র তালের সহিত ইহার সমতা আছে।

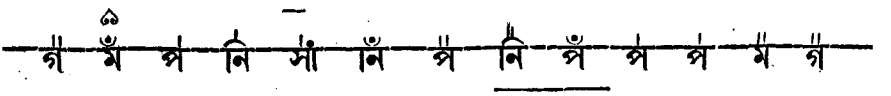

পঞ্চাক্ষরাবৃত্তির প্রকারান্তর—

প্রিয়াচ্ছন্দঃ।

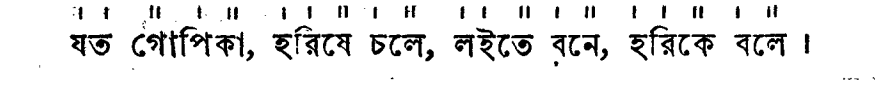

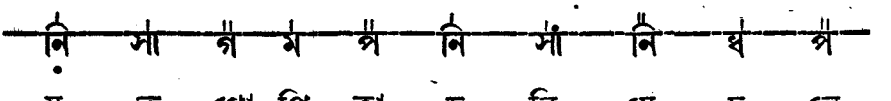

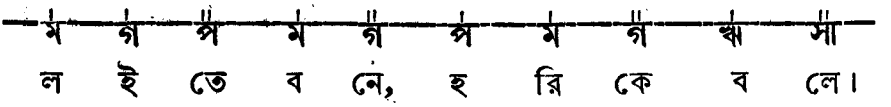

পঞ্চাক্ষরাবৃত্তির প্রকারান্তর—

ত্বরিতগতিচ্ছন্দঃ।

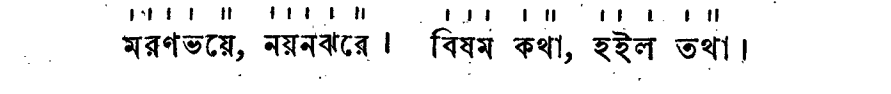

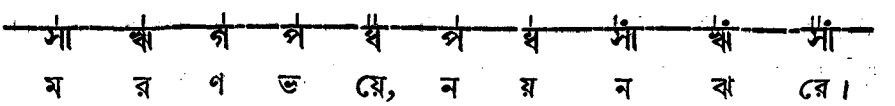

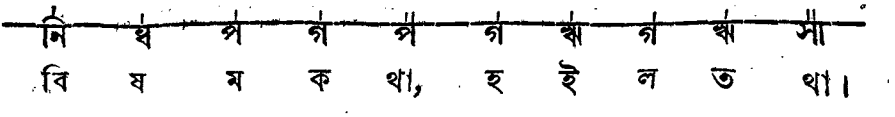

ষড়ক্ষরাবৃত্তি।

গায়ত্রী।

তনুমধ্যাচ্ছন্দঃ।

এই ছন্দঃ অতি প্রাচীন, প্রথমে দুইটী গুরু, মধ্যে দুইটী লঘু এবং শেষে দুটীই গুরু, এই প্রকার ছয়টী অক্ষর বিন্যাসদ্বারা ইহার প্রত্যেক চরণ সম্পন্ন হইয়া থাকে, ইহাও একটী সামগানের অন্যতর ছন্দঃ। যথা :—

।৩॥ । । ॥৩॥ ॥ ॥ ॥ । । ॥ ॥ ।৩॥ । । ॥ ॥ ।৩॥ । । ।৩॥

নিন্দা করি ভাগ্যে, ভাষে ছলযোগী। স্বর্গে নহি কামী, ইচ্ছা সুধু ধর্ম্মে।

রত্নাবলীলিখিত বঙ্গদীপক তালের সহিত ইহার কথঞ্চিৎ তুল্যতা রাখা যায়।

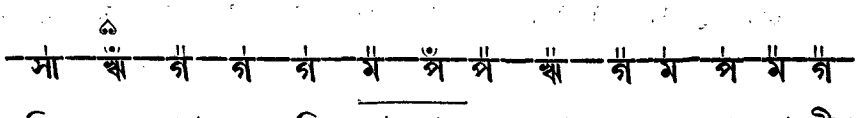

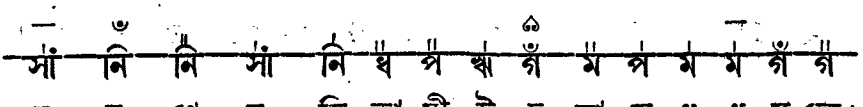

ষড়ক্ষরার প্রকারান্তর।

শশিবদনাচ্ছন্দঃ।

। । । ।৩॥ । । । । ॥ ॥ । । । । ॥ ॥ । । । । ।৩॥

যদি করপদ্মে, করমতিদানে, কহি তব কাছে, মম মন বাঞ্ছা।

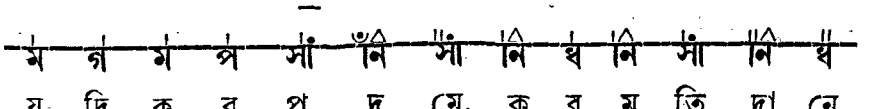

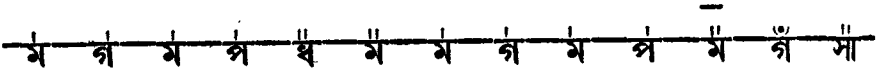

উহারই প্রকারান্তর।

সোমরাজিচ্ছন্দঃ।

। ॥ ॥। ॥ ।॥ ৩। ॥৩॥ । ॥ ॥ । ৩॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥
বলে ভূপবালা, সুধামিষ্টবাক্যে। হয়ে আছি মুগ্ধা, শুনে তোর বীণা।

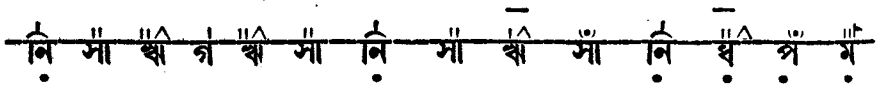

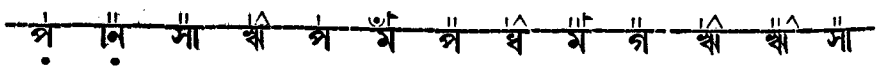

উষ্ণিক্, সপ্তাক্ষরাবৃত্তি।

মধুমতীচ্ছন্দঃ।

এই ছন্দের প্রত্যেক চরণ ছয়টী লঘু এবং একটী গুরু বর্ণদ্বারা সম্পন্ন হইয়া থাকে। যথা:—বিনয় করি ধনী, প্রিয়বচন কহে। দিব তব চরণে, যদি শকতি রহে।

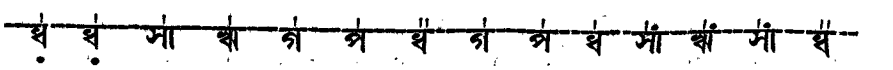

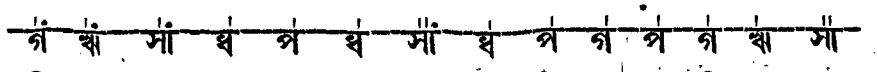

মধুমতী প্রকারান্তর।

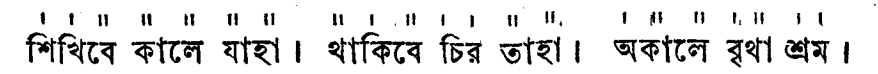

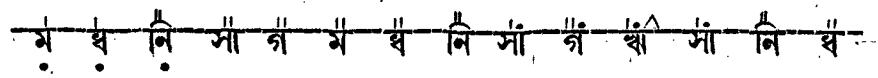

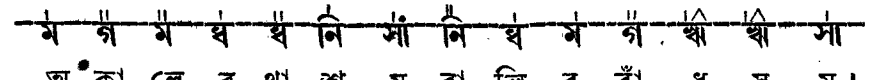

অষ্টাক্ষরাবৃত্তি।

মানবকচ্ছন্দঃ।

মানবকচ্ছন্দের প্রত্যেক চরণ প্রথম, চতুর্থ, পঞ্চম ও অষ্টম বর্ণ গুরু এবং অবশিষ্ট চারিটী লঘুবর্ণের দ্বারা সম্পাদিত হয়। বঙ্গদীপক তালের সহিত ইহার কতক সৌসাদৃশ্য আছে। যথা:—

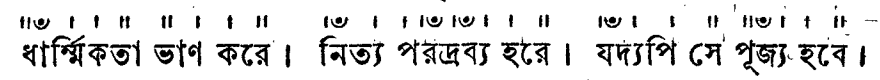

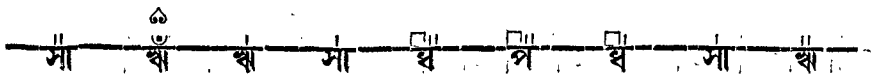

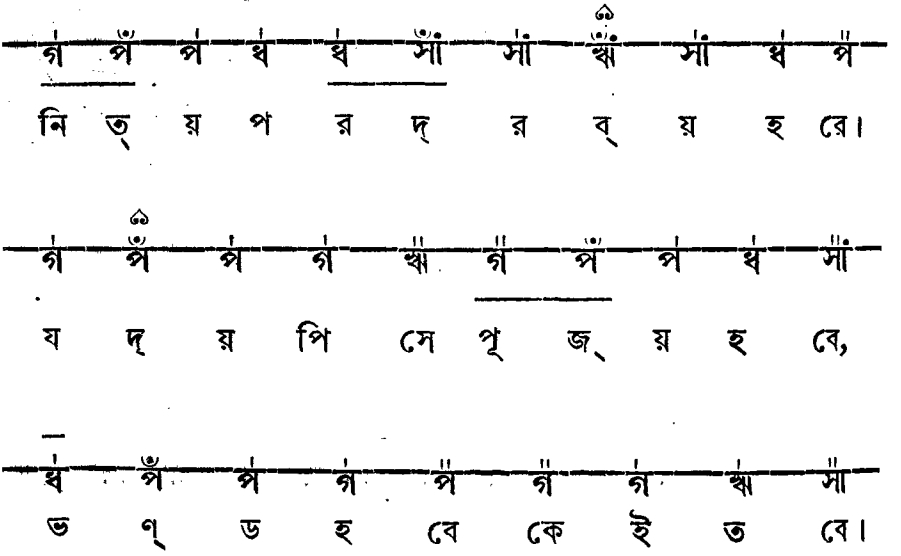

অষ্টাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

গজগতিচ্ছন্দঃ।

। । । ॥ । । । ॥ । । । ৩ । । । ॥ । । । ॥ । । । ॥ । । ।

অবতু বো গিরিসুতা শশিভৃতঃ প্রিয়তমা। বসতু মে হৃদি সদা ভগ-

। । ৩ । । । । ৩

বতঃ পদযুগং॥ রত্নাবলীধৃত রাজবিদ্যাধর তালের সহিত ইহার একতা আছে।

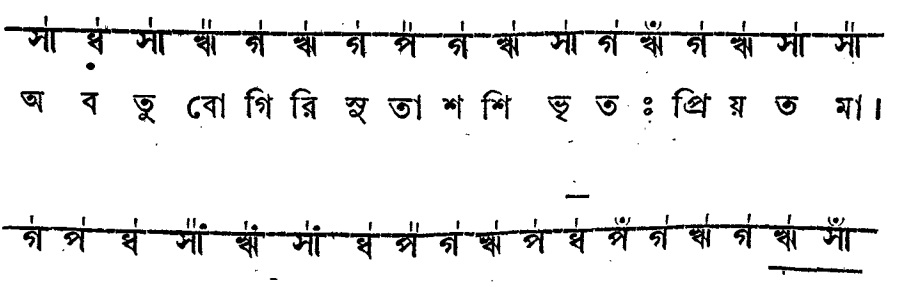

অষ্টাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

সমানিকাচ্ছন্দঃ।

প্রথম বর্ণ গুরু, দ্বিতীয় বর্ণ লঘু, তৃতীয় গুরু, চতুর্থ লঘু, পঞ্চম গুরু, ষষ্ঠ লঘু, সপ্তম গুরু, অষ্টম লঘু এই প্রকারে সমানিকাচ্ছন্দঃ প্রতিপন্ন হয়। যথা:—শ্যামবর্ণ দেখি তোর, চিত্তি সেই চিত্তচোর, ক্লেশযুক্ত আস্য দেখি, ভাবি মোর তুল্য দুঃখি। রত্নাবলীধৃত রাজনারায়ণ তালের সহিত ইহার একতা আছে।

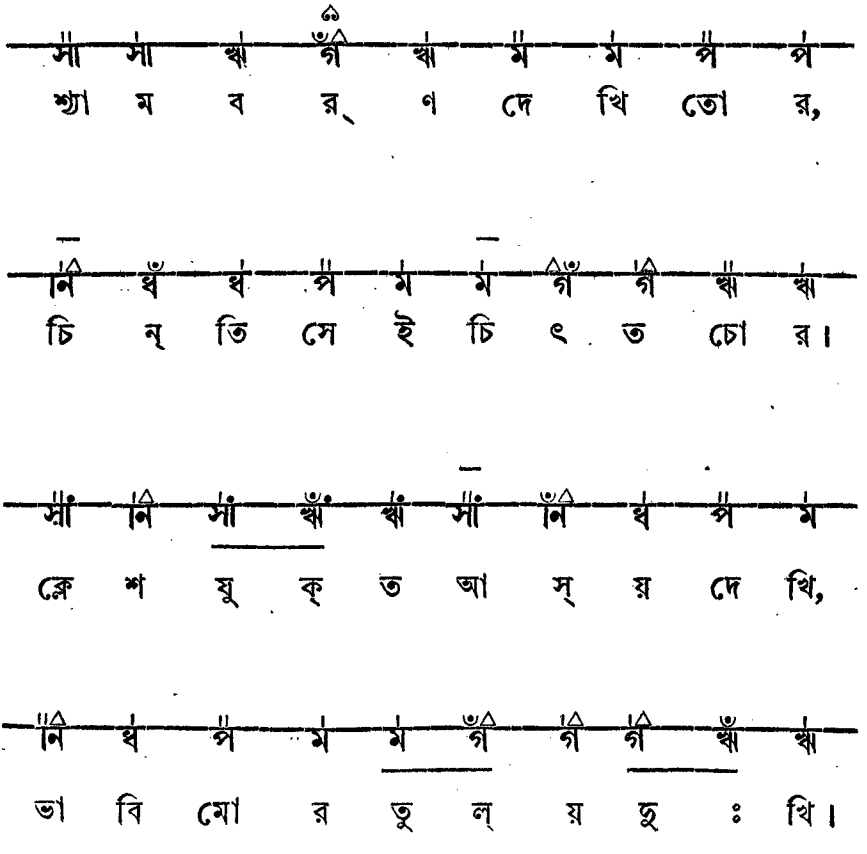

অষ্টাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

বিদ্যুন্মালাচ্ছন্দঃ।

আটটী গুরু বর্ণ দ্বারা বিদ্যুন্মালাচ্ছন্দঃ প্রতিপন্ন হয়। ইহার প্রত্যেক পাদে চারিটী করিয়া যতি থাকে। যথা :—মেঘাচ্ছন্নে চন্দ্রা-
দিত্যে, ভস্মাচ্ছন্নে বহ্নিজ্বালে। সায়ংকালে আলো ঢাকে, বিচ্ছেদে
তদ্রূপা বালা। দুইটী বিন্দুমালী তালের সহিত ইহার তুল্যতা দেখা যায়।

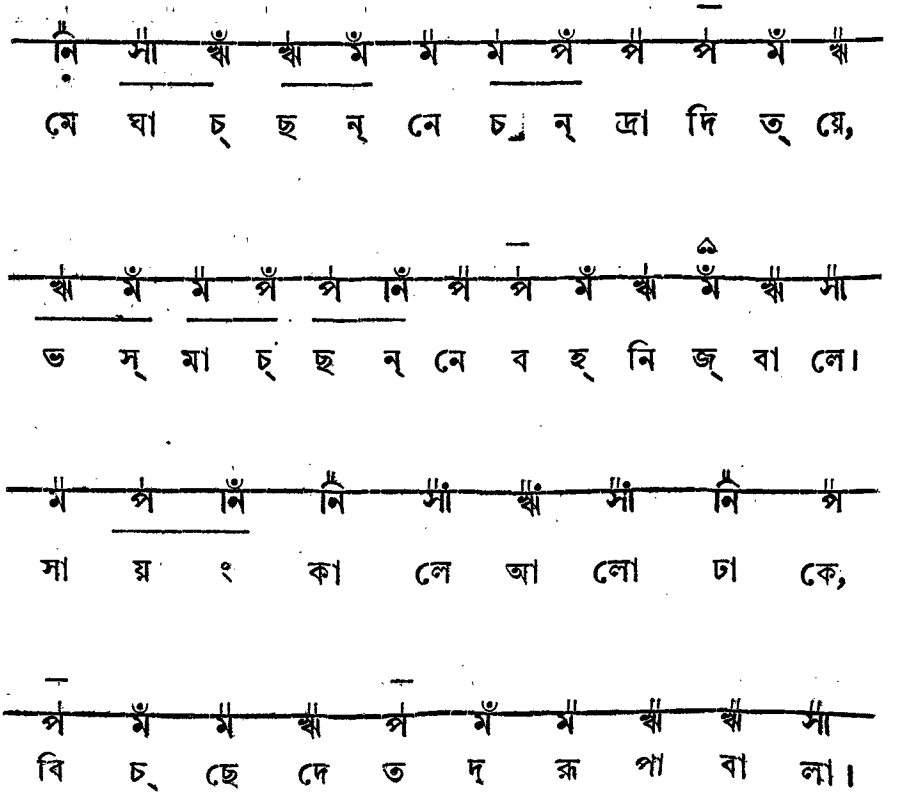

নবাক্ষরাবৃত্তি।

বৃহতীচ্ছন্দঃ।

ইহার প্রত্যেক চরণে প্রথম ছয়টী বর্ণ লঘু এবং পরে তিনটী গুরু বর্ণ বিন্যস্ত হইয়া থাকে। যথা :—নটবর তরণীবেশে, গদ গদ মন উল্লাসে। জর জর মদনাঘাতে, মৃদু মৃদু মধু সম্ভাষে।

বৃহতীচ্ছন্দঃ অতি প্রাচীন এবং সামগানের একটী প্রধান অন্যতর ছন্দঃ বিশেষ।

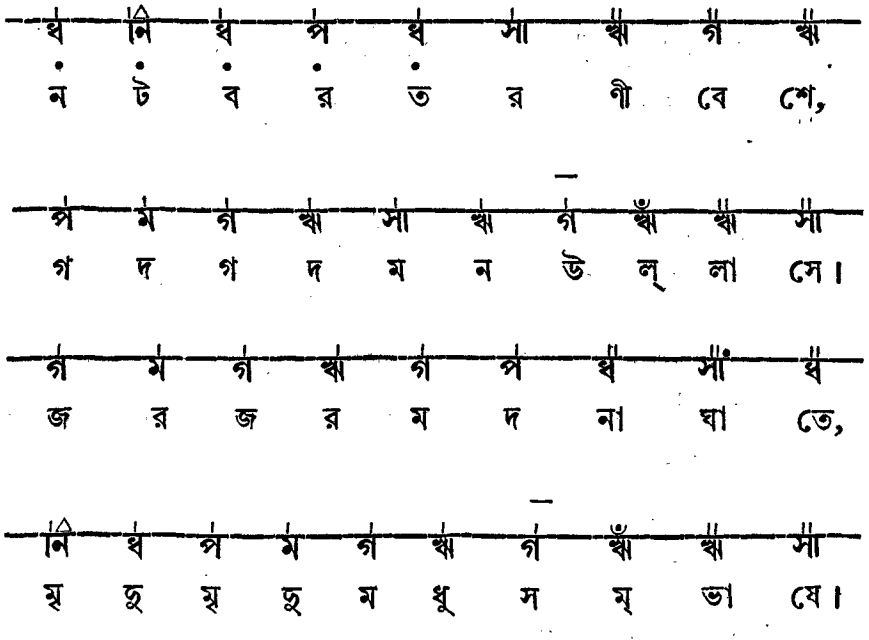

দশাক্ষরা বৃত্তি।

পঙ্‌ক্তিচ্ছন্দঃ।

যাহার প্রত্যেক চরণে প্রথম, চতুর্থ, সপ্তম এবং দশম এই কয়েকটী গুরু আর অবশিষ্ট কয়েকটী লঘু, এইরূপ দশটী অক্ষর বিন্যস্ত থাকে,

তাহাকে পঙ্‌ক্তিচ্ছন্দঃ কহে। পঙ্‌ক্তিচ্ছন্দও অতি প্রাচীন বৈদিকচ্ছন্দঃ বিশেষ। যথা :—

প্রেম যথা অধিকার করে, মান কি গৌরব তুচ্ছ তথা। মানবশে হয় গর্ব্ব মনে, গর্ব্বিত বঞ্চিত সখ্যসুখে।

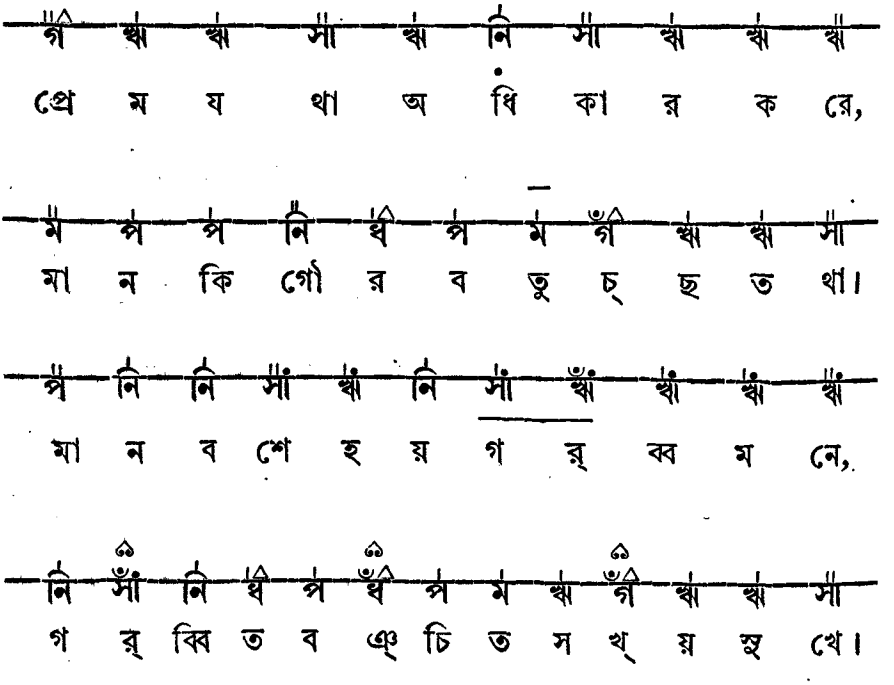

উহারই প্রকারান্তর।

ত্বরিতগতিচ্ছন্দঃ।

তুমি তরুণী নৃপদুহিতা, বলি শুন সে সকল কথা, রহ কি সুখে নিবিড় বনে, বঁধুবিহনে চকিতমনে। রত্নাবলীলিখিত লঘুতালের সহিত ইহার সৌসাদৃশ্য আছে।

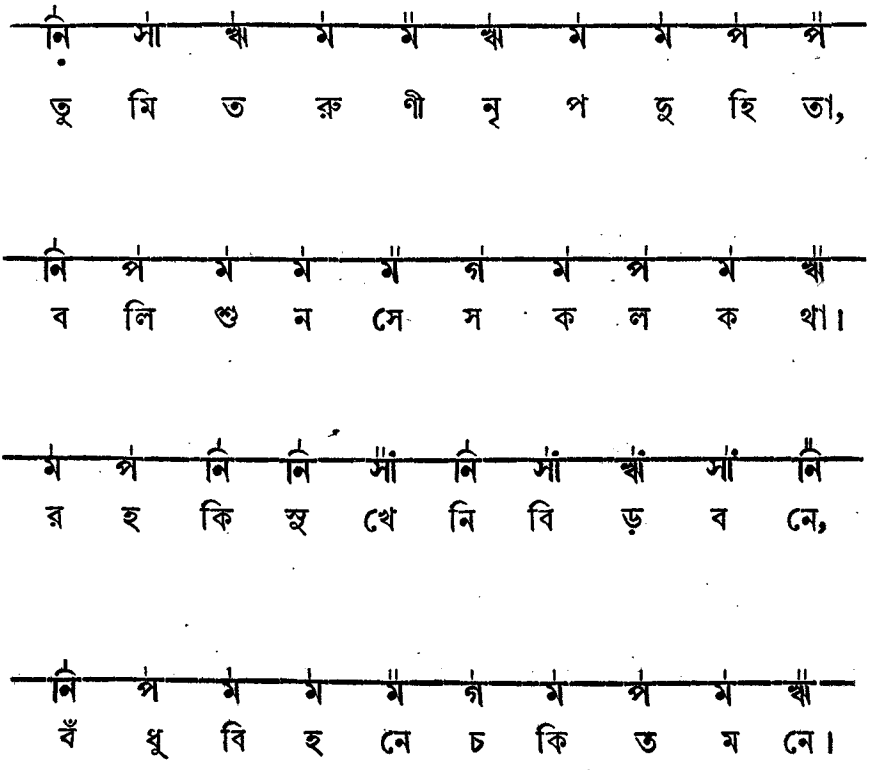

একাদশাক্ষরা বৃত্তি।

উপেন্দ্রবজ্রাচ্ছন্দঃ।

এই ছন্দের প্রত্যেক পাদে দ্বিতীয়, চতুর্থ, পঞ্চম, অষ্টম, দশম এবং একাদশ বর্ণ গুরু এবং অবশিষ্ট কয়েকটী লঘু, এইরূপ একাদশটী অক্ষর-

। ॥ । ॥ ৷৩। । ॥ । ॥ ॥ । ॥ ।
বিন্যাস হইয়া থাকে। যথা:—অয়ে প্রিয়ে সত্যকথাবিলাসী, করেছ

৷৩ ॥ । । ॥৩। ৷৩॥ । ॥ । ॥ ॥ । । ॥ । ॥ ॥ । ॥ । ॥ ॥৩। ।
সত্যে নিজবাক্য বন্দী। দয়াগুণে দান দিলে স্বমানে, রবে মহাকীর্ত্তি

। ॥৩। ৷৩ ॥
বিকীর্ণ বিশ্বে।

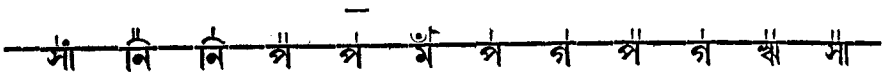

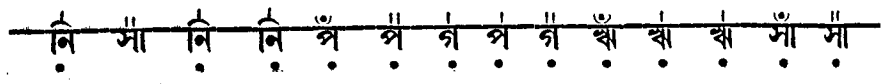

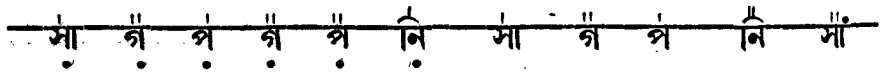

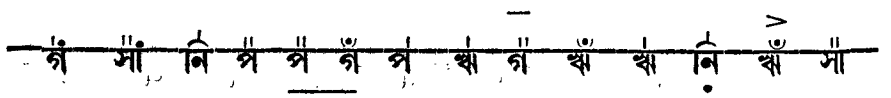

একাদশাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

ইন্দ্রবজ্রাচ্ছন্দঃ।

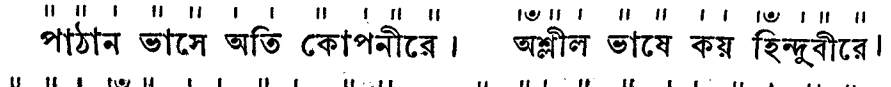

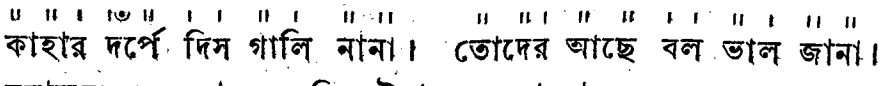

রত্নাকরধৃত সমতালের সহিত ইহার তুল্যতা আছে।

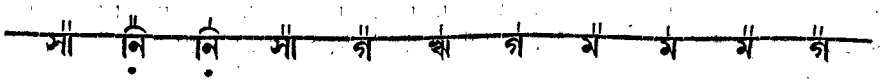

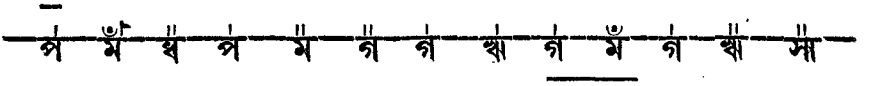

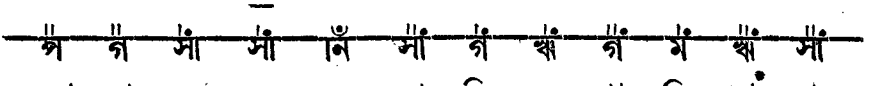

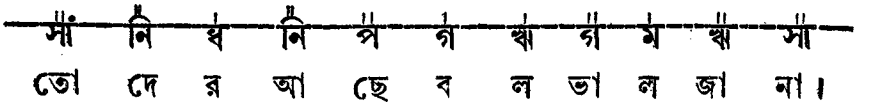

দ্বাদশাক্ষরাবৃত্তি।

তোটকচ্ছন্দঃ।

এই ছন্দের প্রত্যেক চরণে তৃতীয়, ষষ্ঠ, নবম এবং দ্বাদশ বর্ণ গুরু, আর অবশিষ্ট কয়েকটী লঘু বর্ণ ব্যবহৃত হয়। যথা:—অতিরোষ মনে রজপূত সবে। যবনের হরে বল ঘোররবে। নররক্তছটা তরবার-পরে। রবিরশ্মিভরে কত রাগ ধরে।

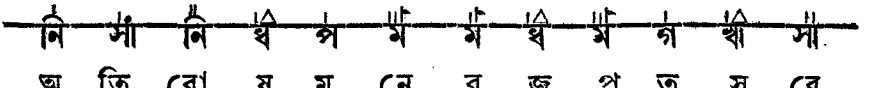

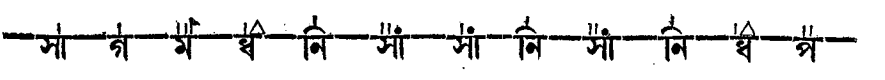

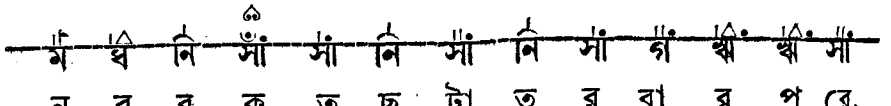

দ্বাদশাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

ভুজঙ্গপ্রয়াতচ্ছন্দঃ।

। ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ৷ । ॥ ॥ । ॥ ৷৷ । ॥ ॥ । ॥ ৷৷ । ॥ ॥
রণে ভীমবেশে মজে ঘোররাগে। বলী হিন্দুসেনা বধে শত্রুভাগে।
। ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥ ৷৷ । ॥ ॥ । ॥ ৷৷
কিবা বীর ভাবে কিবা ঘোর চাহে। কিবা অস্ত্র হানে কিবা দাক্ষ্য
॥ ॥
তাহে।

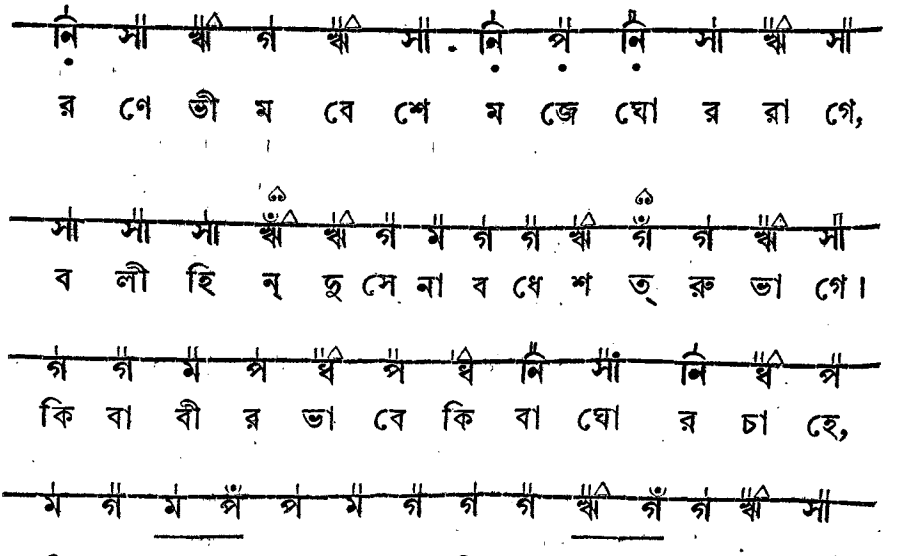
নি সাঁ ঋঁ গ ঋঁ সাঁ নি পঁ নি সাঁ ঋঁ সাঁ
র ণে ভী ম বে শে ম জে ঘো র রা গে,
সাঁ সাঁ সাঁ ঋঁ ঋঁ গ ম গ গ ঋঁ গঁ গ ঋঁ সাঁ
ব লী হি ন্ দু সে না ব ধে শ ত্ রু ভা গে।
গ গ ম প ধ প ধ নি সাঁ নি ধ প
কি বা বী র ভা বে কি বা ঘো র চা হে,
ম গ ম পঁ প ম গ গ গ ঋঁ গঁ গ ঋঁ সাঁ
কি বা অ স্ ত্র হা নে কি বা দা ক্ ষ্ য় তা হে।

দ্বাদশাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

কুসুমবিচিত্রাচ্ছন্দঃ। ৬। ৬ যতি।

। । । ।ও ॥ । । । । ॥ ॥ । । । । ।ও ॥ । । । । ॥ ॥ । ।
খরতর দংষ্ট্রী মধুকর কালো, মধুযুত পদ্মে অনুগত ভালো। হর-
। । ।ও ॥ । । । । ॥ ॥ । । । । ।॥ ॥ । । । । । ॥ ॥
ষিতচিত্তে গুণ গুণ গানে, সতত অবাধে রত মধুপানে।

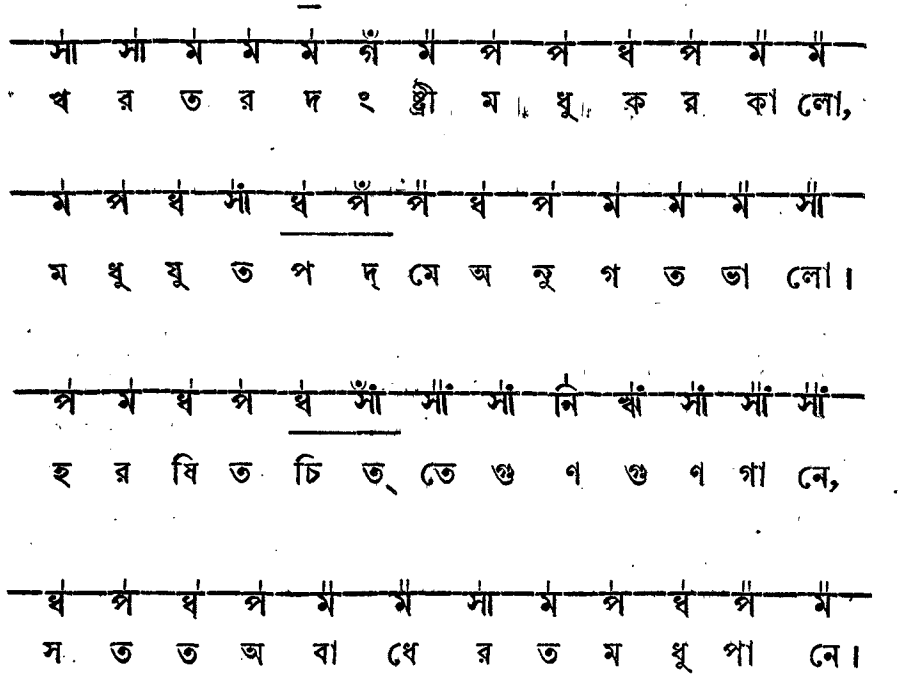
সা সা ম ম ম গঁ ম প প ধ প ম ম
খ র ত র দ ং ষ্ট্রী ম ধু ক র কা লো,
ম প ধ সাঁ ধ পঁ প ধ প ম ম ম সাঁ
ম ধু যু ত প দ্ মে অ নু গ ত ভা লো।
প ম ধ প ধ সাঁ সাঁ সাঁ নি ধ্বঁ সাঁ সাঁ সাঁ
হ র ষি ত চি ত্ তে গু ণ গু ণ গা নে,
ধ প ধ প ম ম সা ম প ধ প ম
স ত ত অ বা ধে র ত ম ধু পা নে।

ত্রয়োদশাক্ষরা বৃত্তি।

চণ্ডীচ্ছন্দঃ।

এই ছন্দের প্রত্যেক চরণে ত্রয়োদশটী বর্ণ থাকে। নবম, দ্বাদশ এবং ত্রয়োদশ বর্ণ গুরু, আর অবশিষ্ট কয়েকটী লঘুরূপে ব্যবহৃত হয়। যথা :—

অধিক কি কব অখিলে যত কালো, অনুগত কখন নহে অসবর্ণে।

অপর বরণ সকলে যদি পর্শে, কলুষিত বিকৃত করে নিজ ভাবে।

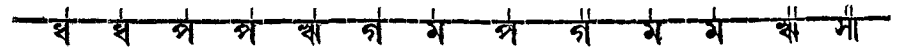

অ ধি ক কি ক ব অ খি লে য ত কা লো,

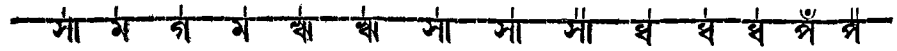

অ নু গ ত ক খ ন ন হে অ স ব র্ ণে।

অ প র ব র ণ স ক লে য দি প র্ শে,

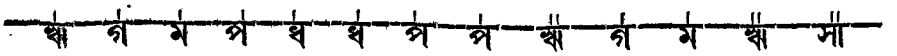

ক লু ষি ত বি কৃ ত ক রে নি জ ভা বে।

চতুর্দ্দশাক্ষরা বৃত্তি।

বসন্ততিলক। ৬। ৮ বর্ণে যতি।

ইহার প্রত্যেক চরণ প্রথম, দ্বিতীয়, চতুর্থ, অষ্টম, একাদশ, ত্রয়োদশ ও চতুর্দ্দশ বর্ণ গুরু এবং অবশিষ্ট কয়েকটী লঘু বর্ণের দ্বারা সম্পাদিত হয়। যথা :—

কুঞ্জে বিহারবিপিনে যত গোপবালা, আশান্বিতা সচকিতা ছিল
বাসসজ্জা। যত্নে নিশীথ সময়ে হরিদর্শনার্থে, জাগে সুদীর্ঘ রজনী বঁধু-
বাক্য লক্ষ্যে।

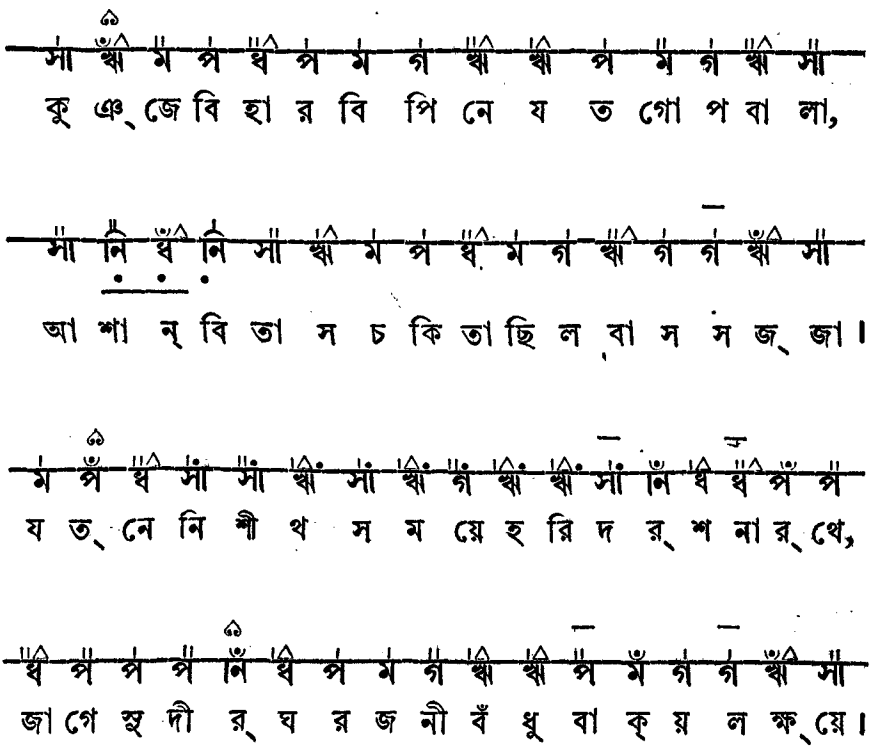

চতুর্দ্দশাক্ষরাবৃত্তির প্রকারান্তর।

প্রহরণকলিকাচ্ছন্দঃ। ৭ ম বর্ণে যতি।

মুদিত কুমুদিনী বিকশিত নলিনী, অলিকুল বিহরে পিকবর কুহরে।
মলয়জপবনে মৃদু মৃদু বহনে, সুকুসুমসুরভি প্রচরিত বিপিনে।

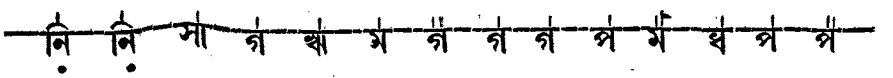

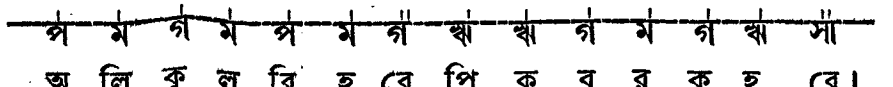

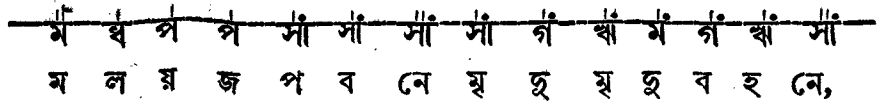

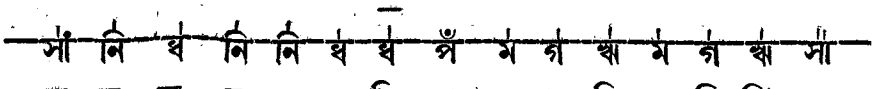

পঞ্চদশাক্ষরা বৃত্তি।

শশিকলাচ্ছন্দঃ।

ইহার প্রত্যেক চরণে প্রথমাবধি চতুর্দ্দশটী বর্ণ লঘু এবং শেষে একটীমাত্র গুরু বর্ণ ব্যবহৃত হয়। যথা :—বিপদ কহিব কত শুন শশি-বদনে, মম মনদুখ কিছু বলি তব চরণে। নয়ন মুদিত করি তমময়-বরণে, কুবরণ দরশন তবু হয় নয়নে।

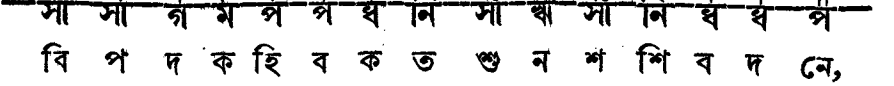

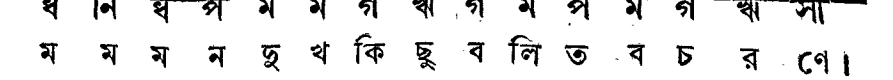

প প ধ নি সাঁ ঋঁ সাঁ সাঁ সাঁ গঁ ঋঁ মঁ গঁ ঋঁ সাঁ
ন য় ন মু দি ত ক রি ত ম ম য় ব র ণে,

প ধ নি ধ ধ প ম গ গ ম প ম গ ঋ সা
কু ব র ণ দ র শ ন ত বু হ য় ন য় নে।

পঞ্চদশাক্ষরা বৃত্তির প্রকারান্তর।

তূণকচ্ছন্দঃ।

বীরপাল, যেন কাল, মালসাট মারিছে। বার বার, মার মার,
হান হান ডাকিছে। প্রাণ আশ, বন্ধুবাস, ছাড়ি ঘোর মাতিছে।
ত্রাস নাই, মান পাই, এই ভাব ভাবিছে।

ঋঁ ঋঁ মঁ প ধ ধ ধ ধ প প মঁ ধ প প প
বী র পা ল, যে ন কা ল, মা ল সা ট মা রি ছে।

ঋঁ ঋঁ প মঁ গঁ গঁ ঋঁ গঁ মঁ প মঁ গঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ
বা র বা র, মা র মা র, হা ন হা ন ডা কি ছে।

মঁ প নি নি সাঁ নাঁ নি সাঁ সাঁ নি সাঁ ঋঁ সাঁ ধ ধ প
প্রা ণ আ শ, ব ন্ ধু বা স, ছা ড়ি ঘো র মা তি ছে।

ঋঁ ঋঁ প মঁ গঁ ঋঁ ঋঁ গঁ মঁ প মঁ গঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ
ত্রা স না ই, মা ন পা ই, এ ই ভা ব ভা বি ছে।

ষোড়শাক্ষরা বৃত্তি।

পঞ্চচামরচ্ছন্দঃ।

দ্বিতীয়, চতুর্থ, ষষ্ঠ, অষ্টম, দশম, দ্বাদশ, চতুর্দ্দশ এবং ষোড়শ বর্ণ গুরু আর অবশিষ্ট কয়েকটী লঘু বর্ণবিন্যাসে পঞ্চচামরের প্রত্যেক চরণ সম্পন্ন হয়। যথা :—

। ॥ । ॥ । ॥ । ॥ । ॥ । ॥ । ॥ । ॥ ।৩। ॥ । ॥ ।৩। ॥ ।
বিভাব ভাব মাধবে কদাচ নাহি ভাবিবা, স্বকর্ম্মদোষ ভিন্ন তার
॥ । ॥ । ৩। ॥ । ॥ । ৩। ॥ । ॥ । ৩। ॥ । ৩। ॥ । ॥ ।
দোষ নাহি সম্ভবে। অনাথবন্ধু দীননাথ কৃষ্ণরূপ চিন্তিলে, অশেষ
৩। ॥ । ॥ । ॥ । ॥ । ৩। ॥
দুঃখযাতনা ত্রিতাপ পাপ খণ্ডিবে।

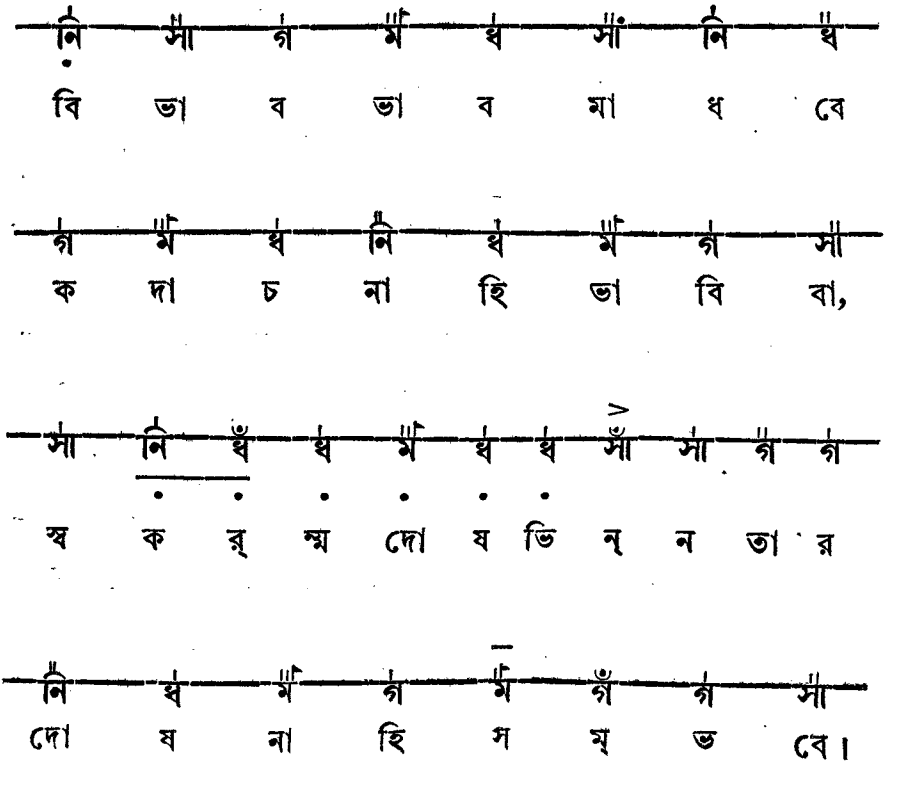

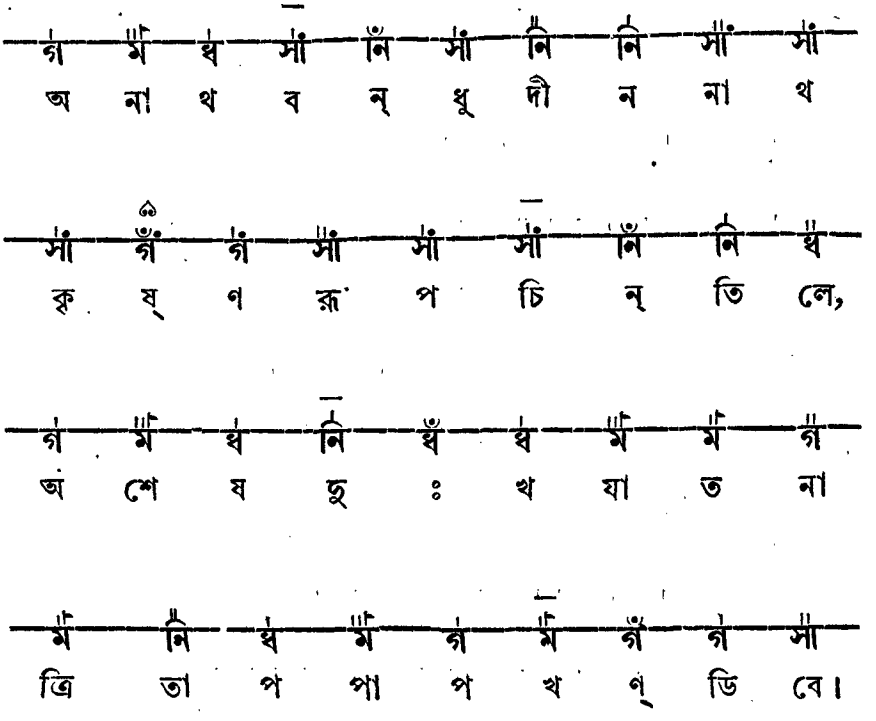

সংস্কৃত ছন্দোগ্রন্থকর্ত্তারা কথিত নিয়মে বর্ণসংখ্যা এবং লঘুগুরু-ভেদে ত্রিংশৎ অথবা তদতিরিক্ত অক্ষরবিন্যাসে ছন্দের নিয়ম বিধিবদ্ধ করিয়াছেন। গ্রন্থবাহুল্যভয়ে সে সমুদয়ের নাম এখানে উল্লেখ করা গেল না, কিন্তু তন্মধ্যে দ্বাদশাক্ষরাবৃত্তি দ্রুতবিলম্বিত, পঞ্চদশাক্ষরাবৃত্তি মালিনী (১), সপ্তদশাক্ষরাবৃত্তি শিখরিণী, পৃথ্বী, মন্দাক্রান্তা এবং হরিণী, ঊনবিংশত্যক্ষরাবৃত্তি শার্দ্দূলবিক্রীড়িত, বিংশত্যক্ষরাবৃত্তি গীতিকা, একবিংশত্যক্ষরাবৃত্তি স্রগ্ধরা এই কয়েকটীকে অতি প্রসিদ্ধ বলিয়া বিবেচনা হওয়াতে তাহাদের নাম নিম্নে লিখিত হইতেছে। যথা :—

(১) পূর্ব্বে এই দুইটী ছন্দঃ দেওয়া হয় নাই, কিন্তু ইহারা অতি প্রসিদ্ধ বিবেচনায় এই স্থানে প্রকটিত হইল।

দ্বাদশাক্ষরাবৃত্তির প্রকারান্তর।

দ্রুতবিলম্বিতচ্ছন্দঃ।

। । । ।ত। । ।ত।। ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ । । ॥।। ॥
ফলত কৃষ্ণ সুনিষ্ঠুর নাগরে, বল কি পাতক গোপবধূবধে।
। । । ॥ । । ॥ । । ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ । । ॥ । ॥
শিখিল সে বধিতে কুলকামিনী, শিশু যবে ছিল নাশিল পূতনা।

পঞ্চদশাক্ষরাবৃত্তির প্রকারান্তর।

মালিনীচ্ছন্দঃ। ৭। ৮ যতি।

। । । । । । ।ত ॥ ।ত। ।।ত।।ত । ॥ ॥
জনম মরণ কিম্বা স্বপ্ন মূর্চ্ছা প্রভাবে,
। । । । । । ।॥ ॥ ।ত। ॥ ॥ । ।।ত।।
সকল ভুবনমাঝে অন্ধকারে প্রপূর্ণা।
। । । । । । । ।।ত।। ।ত। ॥ ॥ । ॥ ॥
বিফল করিনু চেষ্টা কৃষ্ণ না দেখিবারে,
। । । । । । । ॥ ॥ ॥ । ।ত ॥ । ।ত ॥
অবিচল নিরুপায়ে হৈল মিথ্যা প্রতিজ্ঞা।

সপ্তদশাক্ষরা বৃত্তি।

শিখরিণীচ্ছন্দঃ। ৬। ১১ যতি।

। ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ । । । । । । ॥ ॥ । । । ॥
ধনে মানে জ্ঞানে বিষয় অভিমানে কত জনা,
। ॥ ।ত ॥ ।ত ॥ । । । । । ॥ ॥ । । । ॥
করে ধর্ম্মে হিংসা তদনুগত লোকে অগমতা।
। ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ । । । । । ॥ ॥ । । । ॥
দ্বিজে দেবে সেবা ভজনরত যেবা বিধিমতে,
। ॥ ॥ ॥ ।ত।ত । । । । । ॥ ।ত। । । ॥
কহে তারে ভণ্ড দ্বিমনধর সাহঙ্কৃত মনে।

উহারই প্রকারান্তর।

পৃথ্বীচ্ছন্দঃ। ৮। ৯ যতি।

। ।৩। । । ॥ । ॥ । । । ॥ ।।৩॥ । ॥
কলত্র সুত সোদরে পরিজনে অবিদ্যা বশে,
। ॥ । । । ॥ । ॥ । । । ॥ । । ॥ ॥ । ॥
করে মনুজ সাদরে ভরণ পোষণে কামনা।
। ॥ । । । ।৩। ॥ । । । ।।৩। ॥ ।৩। ॥
তথা বিষয় চিন্তনে ধন উপার্জ্জনে কল্পনা,
। ॥ । । । ।৩। ॥ । । । ।৩। ॥ ॥ । ॥
বৃথা সময় সংহরে অপর বঞ্চনা মানসে।

উহারই প্রকারান্তর।

মন্দাক্রান্তাচ্ছন্দঃ। ৪। ৬। ৭ যতি।

॥ ॥ ॥ ॥ । । । । ।।॥ ॥ । ।॥ ॥ । ॥ ॥
কামে ক্রোধে মদ কি মমতা বাসনা লোভ মোহে,
॥ ।৩॥ ॥ । । । । । ॥ ॥ । ।॥ ॥ । ।৩॥
এ সংসারে ছয়রিপুবশে যাতনা লোকসর্ব্বে।
॥ ॥ ৩॥ ॥ । । । । । ।।৩॥ । ।৩॥ । ॥ ॥
কামোৎসাহে বিষম-বিষয়ধ্যান-চিন্তা-প্রভাবে,
॥ ।।৩॥ ॥ । । । । । । ॥৩। ॥ ॥ । ॥ ॥
একাভ্যাসে অপর জনমে সঙ্গ কামাদি বৈরী।

উহারই প্রকারান্তর।

হরিণীচ্ছন্দঃ। ৪। ৬। ৭ যতি।

। । । । ।৩॥ ॥ ।৩ ॥ । ॥ । । ॥। ॥
ত্রিভুবনপরিত্রাতা কৃষ্ণে দয়া পরিপূরিতা,
। । । । । ॥ ।৩॥ ॥৩ ॥ । ॥ । । ॥ । ॥
স্বভজক জনে উদ্ধারার্থে সদা শিব বাসনা।

। । । । ।॥ ॥ ৩ ॥ ॥ । ॥ । । ॥ । ॥
নিরবধি বৃথা শোকক্লেশে নিবারণকারণে,

। । । । । ॥ । ॥ ৩ ॥ ৩ । ৩ । । ॥ । ॥
ধনজন হরে সে ভক্তে ধর্ম্মবর্দ্ধন মানসে।

ঊনবিংশত্যক্ষরা বৃত্তি।

শার্দ্দূলবিক্রীড়িতচ্ছন্দঃ। ৭। ১২ যতি।

॥৩ ৩॥ । । ॥ । ॥ । । । ॥ ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥
আশ্চর্য্যা করুণা দয়া অনুগতা ভাবে রহে মাধবে,

॥৩ ॥ ৩ । । ॥ । ॥ । । । ৩ ॥ ॥ । ॥ ॥ । ॥
আপ্তানিষ্ট সহে সদা ভজক নিস্তারে মনে বাসনা।

৩ ॥ ॥ । । ॥ । ॥৩ । । । ॥ ॥ ॥ । ॥ ৩ । ॥
সংসারে স্বকরে সবংশদলনে যারে বধে সঙ্গরে,

৩ ॥ ॥ । । ॥ । ॥৩ । । ॥ ॥ ॥ । ৩ ॥ । ॥
পশ্চাতে নিজবাসরম্যভবনে তারে করে স্থাপনা।

বিংশত্যক্ষরা বৃত্তি।

গীতিকাচ্ছন্দঃ।

। । ৩ । ৩ । । ॥ । ॥ । । ৩ । ৩ । । ॥ । ॥
যদি চিত্ত-পঙ্কজ-কেসরে মকরন্দ ভক্তি সদা রহে,

। । ৩ । ॥ । । ৩ । ॥ । । । ৩ । ॥ । । ॥ । ॥
হয় মুগ্ধ সে রসভুঞ্জিতে হরি ভৃঙ্গ-আকৃতি ধারণে।

। । ॥ । ॥ । । । ৩ । ॥ । । ৩ । ৩ । । ॥ । ॥
কভু না করে গতি বিভ্রমে হরি ভক্তি-বর্জ্জিত-মানসে,

। । ৩ । ৩ । । ॥ । ॥ । । ৩ । ॥ । । ৩ । ॥
শুভদৃশ্য চম্পক যাদৃশী অলিসঙ্গমে রসবঞ্চিতা।

একবিংশত্যক্ষরা বৃত্তি।

স্রগ্ধরাচ্ছন্দঃ। ৭। ৭। ৭ যতি।

ISI ISI ॥ I ॥ ॥ I I I I I ॥ ISI ISI ॥ I ISI ॥
ধর্ম্মদেষ্টা বিনাশে কলুষিত ভুবনে ধর্ম্মসংস্থানজন্যে,

॥ ॥ ॥ ॥ I ISI ॥ I I I I I I ॥ ॥ I ॥ ॥ I ॥ ॥
পাষাণে সেতুবন্ধে হইল বিরচনা রাবণে নাশিবারে।

ISI ISI ॥ ॥ I ॥ ॥ISI I I I I I I ॥ ISI ISI ॥ I ॥ ॥
শক্রক্রোধে অকালে প্রলয় সমঘটে বৃষ্টিবজ্রাভিঘাতে,

॥ ॥ ॥ ISI I ॥ ISI I I I I I ॥ ॥ I ॥ ॥ I ISI ॥
শৈলে গোবর্দ্ধনে রক্ষিল অতিবিপদে গোপ গোপী সমস্তে।

ছন্দোগ্রন্থকর্ত্তারা এতদ্ব্যতীত অক্ষর এবং মাত্রার বিন্যাসানুসারে অনেকানেক দীর্ঘ ছন্দঃ প্রস্তুত করিয়া থাকেন, আমাদিগের সঙ্গীতমতে সেই সকল দীর্ঘ ছন্দঃ বড় অধিক ব্যবহৃত হয় না। ছন্দোগ্রন্থে এমন অনেক ছন্দঃ দেখিতে পাওয়া যায়, যাহাদিগের প্রথম চরণের সহিত তৃতীয় চরণ এবং দ্বিতীয় চরণের সহিত চতুর্থ চরণের সর্ব্বতোভাবে মিল হইয়া থাকে, সেরূপ ছন্দোবিশেষকে অর্দ্ধ সমবৃত্ত কহে। যে সকল ছন্দের প্রত্যেক চরণে লঘু, গুরু এবং বর্ণসংখ্যা ভিন্ন ভিন্ন রূপে ব্যবহৃত হইয়া থাকে, তাহাদের নাম বিষমবৃত্ত, ইহারও ব্যবহার সঙ্গীতে অতীব বিরল। পরন্তু আর্য্যা, গীতি, উপগীতি প্রভৃতি চিরন্তনপ্রচলিত ও মহাত্মা জয়দেব দেবকল্পিত মাত্রাবৃত্তিগুলি সঙ্গীতে কথঞ্চিৎ ব্যবহৃত হইয়া থাকে।

পূর্ব্বোক্ত স্বরানুগত ছন্দঃ সকলকে কি নিয়মে স্বরনিবন্ধনীর সহিত যোজিত করিয়া বাদ্যক্রিয়া সম্পন্ন করিতে হইবে, তদুদাহরণ প্রদর্শন জন্য চারিটী ছন্দঃ নিম্নলিখিত গতে যোজনা করিয়া বাদনকৌশল দেখান যাইতেছে। যথা :—

মিশ্রবেহাগ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

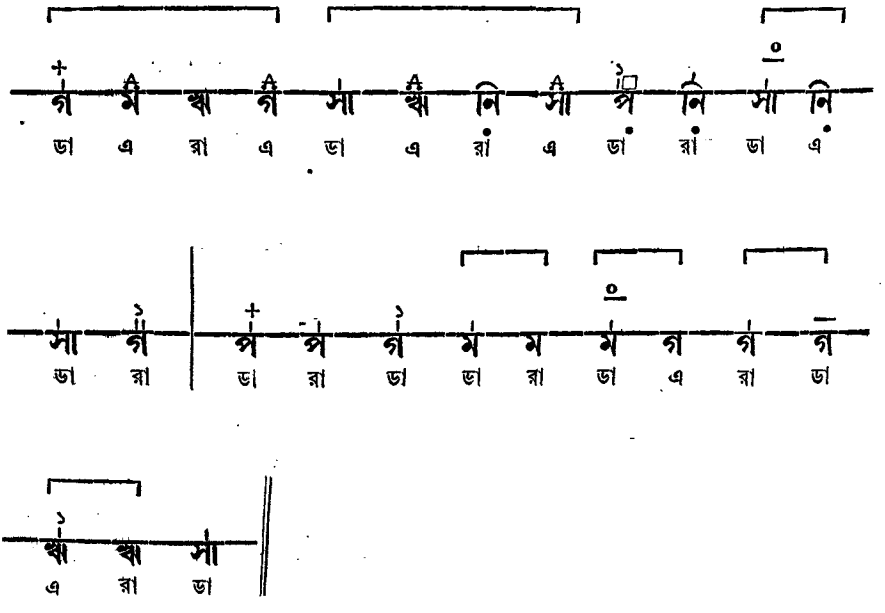

অন্তরা।
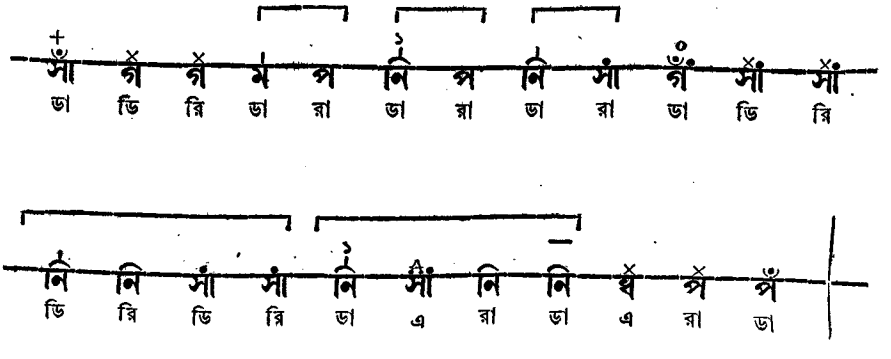
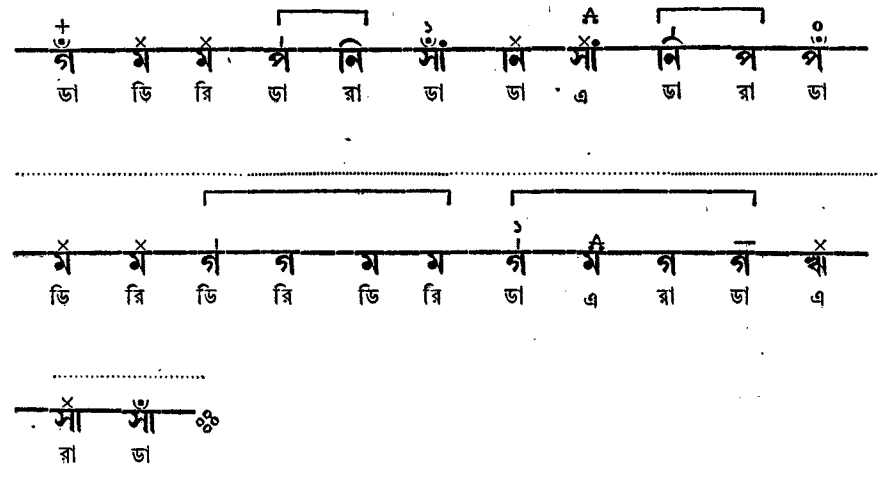

চতুরক্ষরাবৃত্তি।

সতীচ্ছন্দসা।

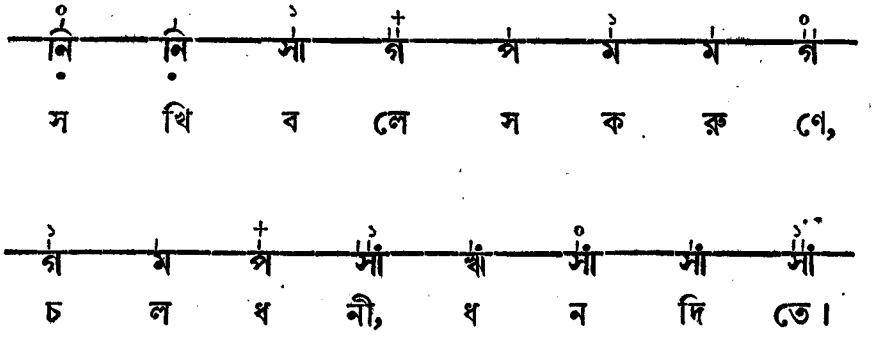

পুনরাস্থায়ী।

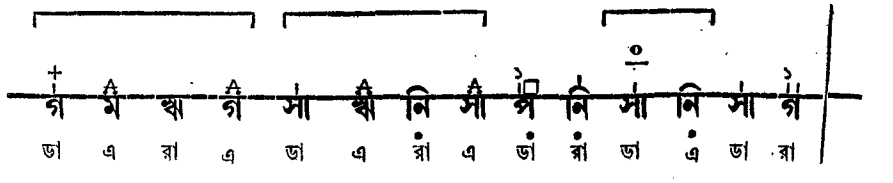

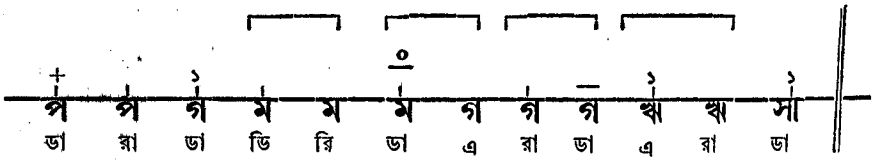

পঞ্চাক্ষরাবৃত্তি।

প্রিয়াচ্ছন্দসা।

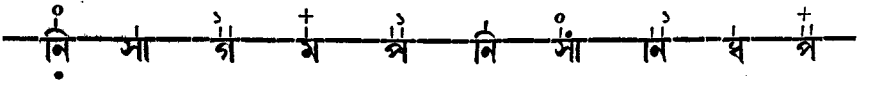

য ত গো পি কা, হ রি যে চ লে,

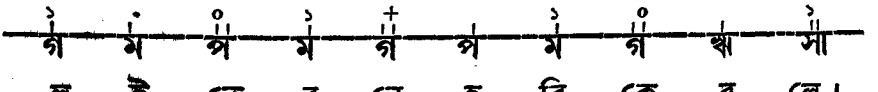

ল ই তে ব নে হ রি কে ব লে।

পুনরাস্থায়ী।

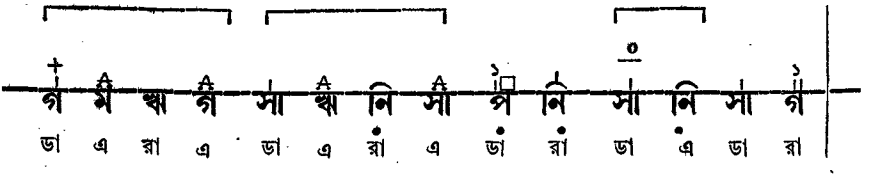

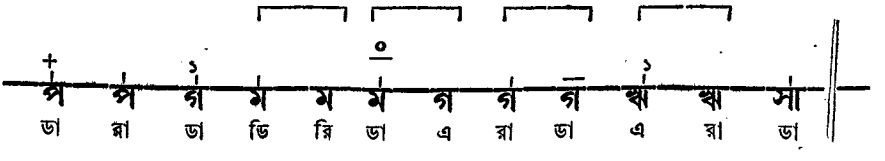

সপ্তাক্ষরাবৃত্তি।

মধুমতীচ্ছন্দসা।

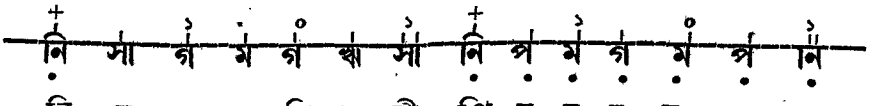

বি ন য় ক রি ধ নী, প্রি য় ব চ ন ক হে।

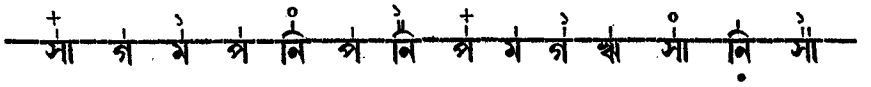

দি ব ত ব চ র ণে, য দি শ ক তি র হে।

পুনরাস্থায়ী।

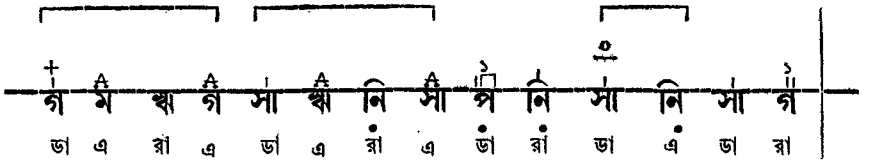

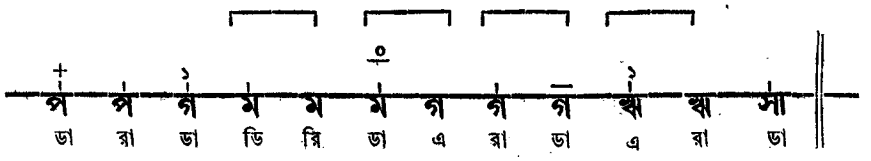

নবাক্ষরাবৃত্তি।

বৃহতীচ্ছন্দসা।

ন ট ব র ত রু ণী বে শে,

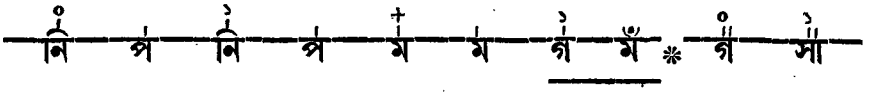

গ দ গ দ ম ন উ ল্ লা সে।

* বাদকগণ তালের অনুরোধে কখন কখন অর্দ্ধ মাত্রার স্থানে এক মাত্রা এবং এক মাত্রার স্থানে অর্দ্ধ মাত্রা কাল গ্রহণ করিতে পারেন, কিন্তু ছন্দটী ঠিক রাখা কর্ত্তব্য।

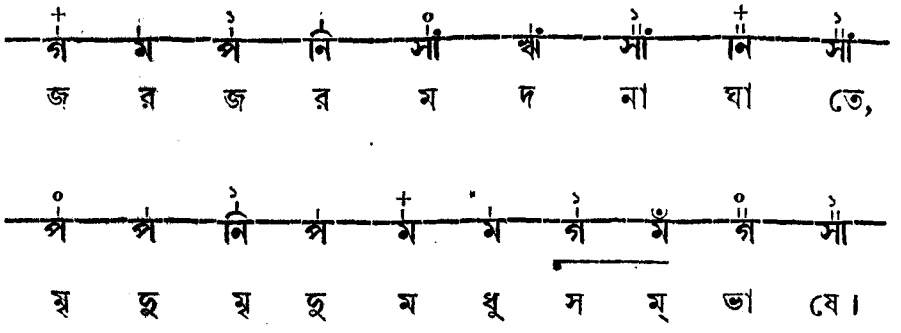

পূর্ব্বে যে সকল ছন্দঃ স্বরযোগে লিখিত হইয়াছে, সেই সকল ছন্দের প্রত্যেক চরণে নিয়মিত দ্বি, ত্রি প্রভৃতি অক্ষরসংখ্যা স্থির রাখিয়া কেবল সংখ্যানুরূপ লঘু, গুরু এবং যতির ইতরবিশেষে কৃন্তন, গমক, আশ, মূর্চ্ছনা, শ্রেষ্ঠালঙ্কার, সংযোগালঙ্কার ইত্যাদির সহিত সম্বদ্ধ রাখিয়া বহুবিধ ছন্দঃ প্রতিপন্ন করা যায়। এবং তাহাতে আলাপ, গত ও গীতাদির বৃদ্ধি হইতে পারে। ছন্দঃশাস্ত্রে একটু বোধাধিকার হইলেই সে সকল কার্য্য অতি সহজ বলিয়া বোধ হইবে। সেই জন্য তৎসমুদয় আর বাহুল্যরূপে লিখিবার প্রয়োজন বোধ করিলাম না।

পরিশিষ্ট।

নিম্নলিখিত কার্য্যগুলি গতে এবং রাগাদির আলাপে সর্ব্বদা ব্যবহৃত হয় বলিয়া এস্থলে প্রকটিত হইল।

(১)

কথিত হইয়াছে যে, কোন সারিকায় দক্ষিণ হস্তের তর্জ্জনীর যোগে আঘাত করিয়া অনুরণন থাকিতে থাকিতে বামহস্তের মধ্যম অঙ্গুলী দ্বারা

স্পর্শ করার নাম "স্পর্শ"। কিন্তু কোন কোন স্থলে পূর্ব্ব সারিকায় আঘাত না করিয়াও স্পর্শ হইয়া থাকে। যে সারিকায় এইরূপ স্পর্শ সম্পন্ন করিতে হইবে, তাহার উপর বাম হস্তের তর্জ্জনী বা মধ্যমাঙ্গুলীর স্পর্শ এমত স্পষ্ট হওয়া কর্ত্তব্য যে, তাহাতে নিষ্পন্ন ধ্বনিটী উত্তমরূপে শ্রুতিগোচর হয়। তুলক চিহ্নও স্বরজ্ঞাপক সারিকার উপরে বসিবে।

সাধন।

অনুলোম ও বিলোম।

(২)

পূর্ব্বকথিত রীত্যনুসারে তর্জ্জনীচাপিত কোন স্বরে আঘাতানন্তর মধ্যম অঙ্গুলীর দ্বারা পরের সারিকা স্পর্শ করিয়া সেই পৃষ্ট সারিকার স্বর ও মধ্যম অঙ্গুলী দ্বারা কাটিয়া লওয়াকে স্পর্শ-কৃন্তন বলে। কিন্তু এ স্থলে দক্ষিণ হস্তের আঘাত না দিয়া বাম হস্তের মধ্যম অঙ্গুলী দ্বারা স্পর্শ-কৃন্তন এমত ভাবে হওয়া কর্ত্তব্য যে, তাহাতে নিষ্পন্ন ধ্বনিটী উত্তমরূপে শ্রুতিগোচর হয়।

সাধন।

অনুলোম।

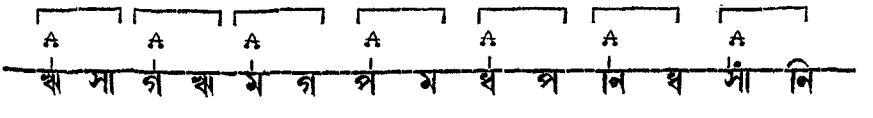

বিলোম।

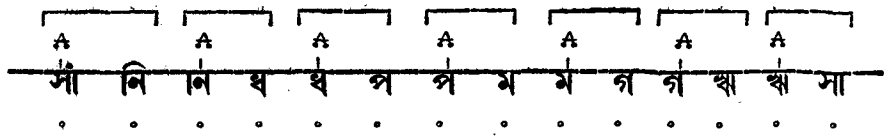

(৩)

মূর্চ্ছনার আর একপ্রকার নিয়ম আছে, তদ্দ্বারা যে স্বর হইতে ইহা আরম্ভ হইয়া যে স্বরে শেষ হয়, তন্মধ্যগত শ্রুতিগুলি প্রকাশ করা যায়। এরূপ স্থলে মূর্চ্ছনার চিহ্ন তরঙ্গিত রেখার পরিবর্ত্তে এইরূপ "....." বিন্দু রেখা চিহ্ন থাকিবে। স্বরমধ্যস্থিত শ্রুতিগুলি যে, একে একে স্পষ্ট দেখাইতে হইবে এমত নহে; বাদনের কৌশলে উহারা অবিচ্ছেদে প্রকাশ পাইবে।

সাধন।

অনুলোম ও বিলোম।

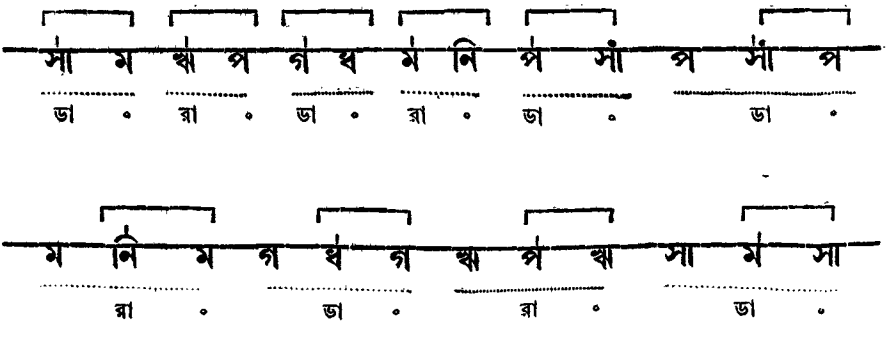

(৪)

নায়কী বা অন্য তারে স্পৃষ্ট স্বর প্রকাশের সমকালে শ্রেষ্ঠালঙ্কার ব্যবহার হইতে পারে। কৃন্তন, স্পর্শ-কৃন্তন, বিক্ষেপ, প্রক্ষেপ, আশ,

মূর্চ্ছনা ইত্যাদি সকল স্থলেই যথামাত্রানুযায়ী এইরূপ সংযোগ হইতে পারে। সমকাল-প্রকাশ্য স্বরগুলি ধনুশ্চিহ্ন দ্বারা যোজিত থাকিবে।

উদাহরণ।

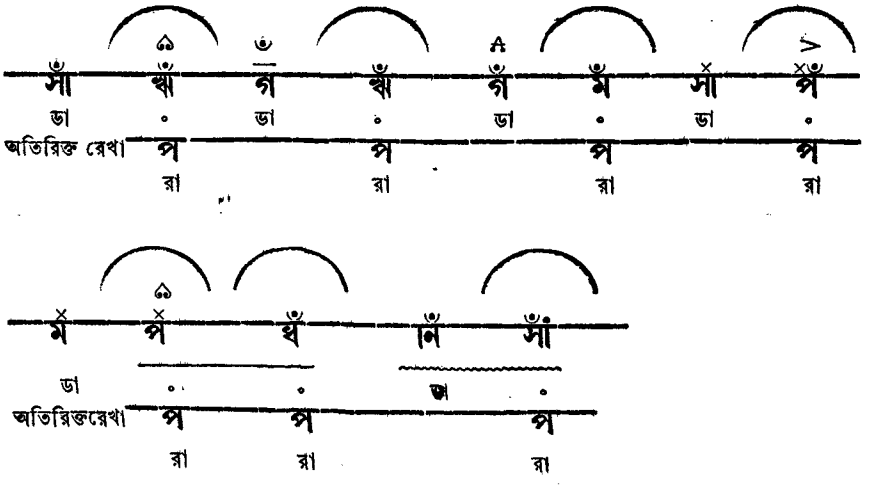

(১০১)

মালশ্রী—ওড়ব*।

মধ্যমান।

(মা)

আস্থায়ী।

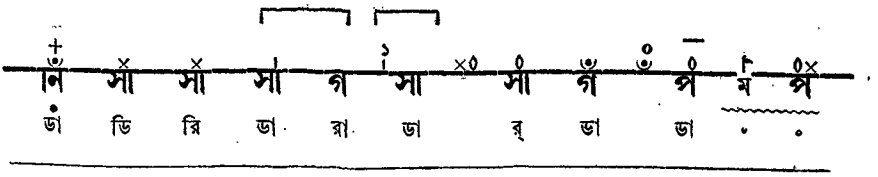

* ইহার ঋষভ ও ধৈবত বিবাদী।

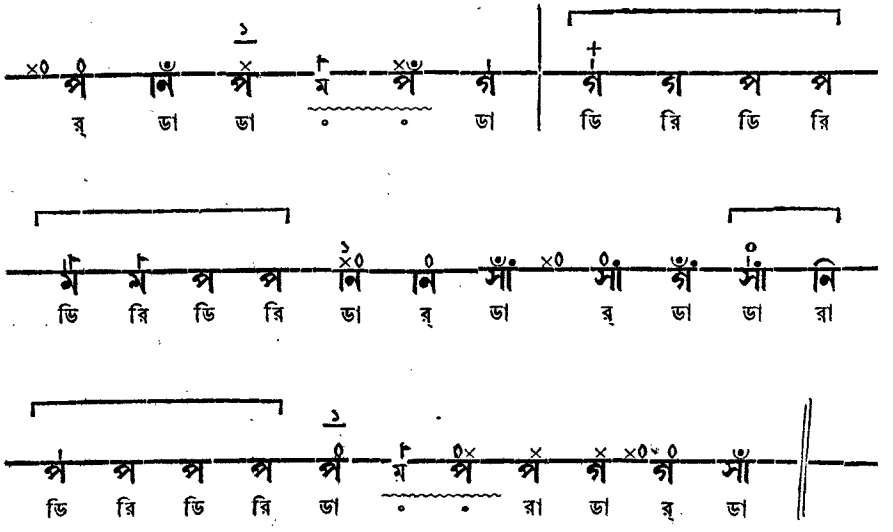
র্ ডা ডা ডা
ডি রি ডি রি
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা ডা রা
ডি রি ডি রি ডা রা ডা র্ ডা

অন্তরা।

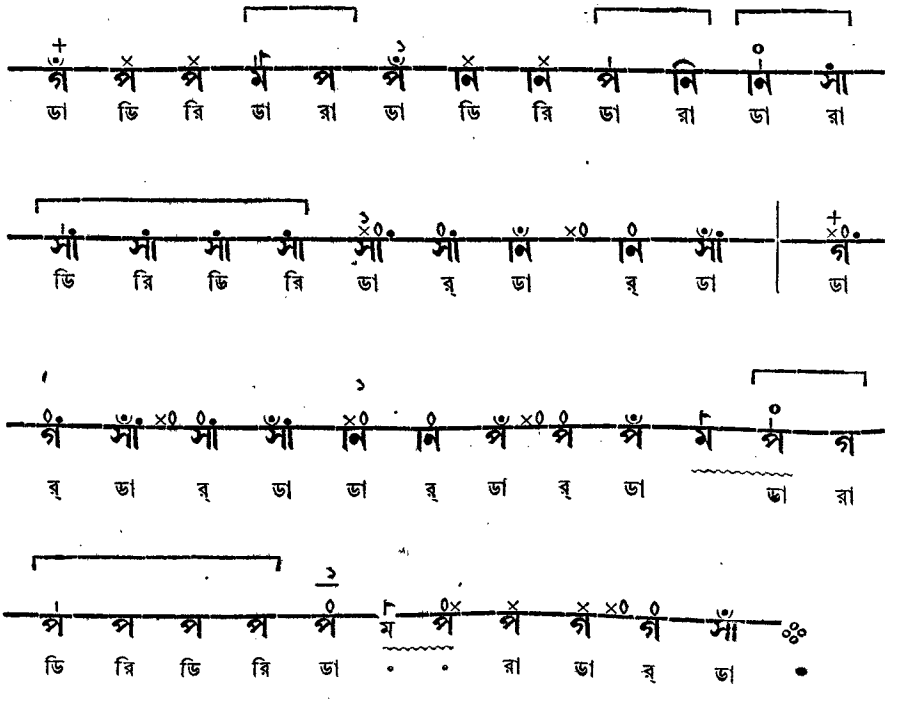
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা ডা
র্ ডা র্ ডা ডা র্ ডা র্ ডা ডা রা
ডি রি ডি রি ডা রা ডা র্ ডা

একাক্ষরাবৃত্তি।

শ্রীচ্ছন্দসা।

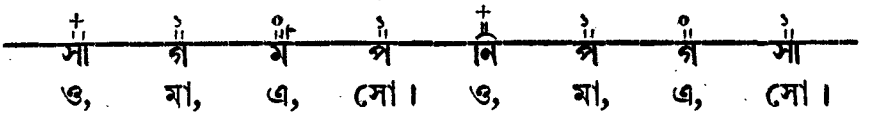

(১০২)

শ্রী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ম ধ)

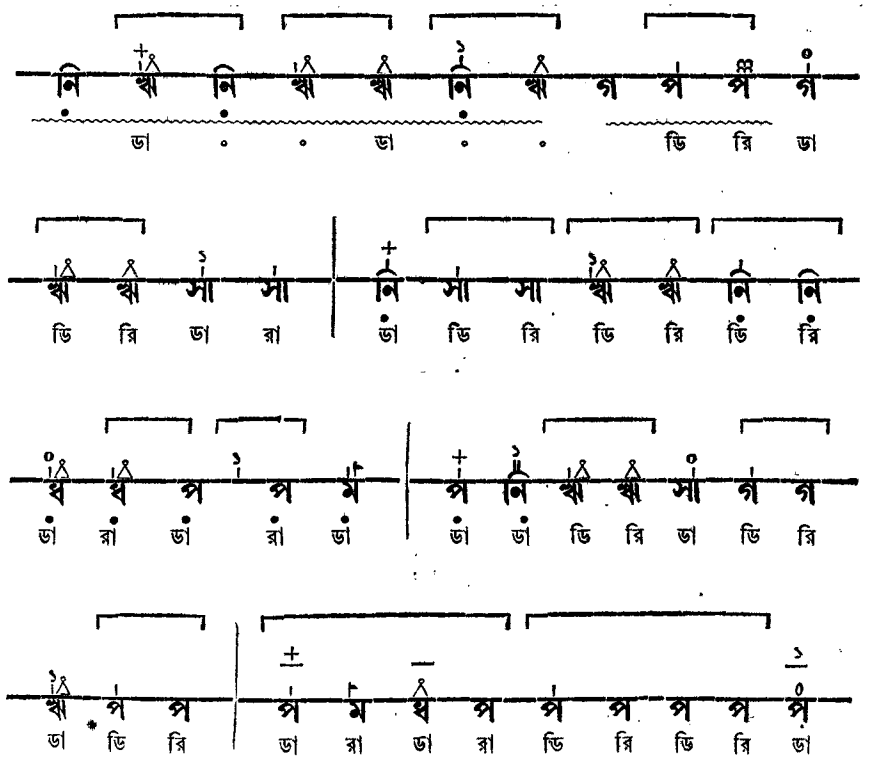

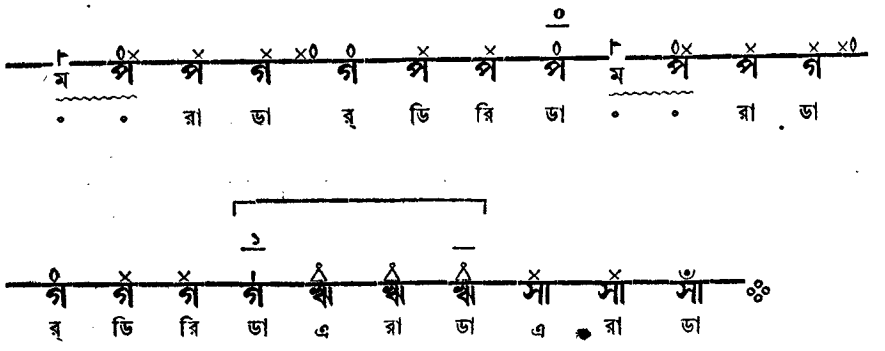

দ্ব্যক্ষরাবৃত্তি।

কন্যাচ্ছন্দসা।

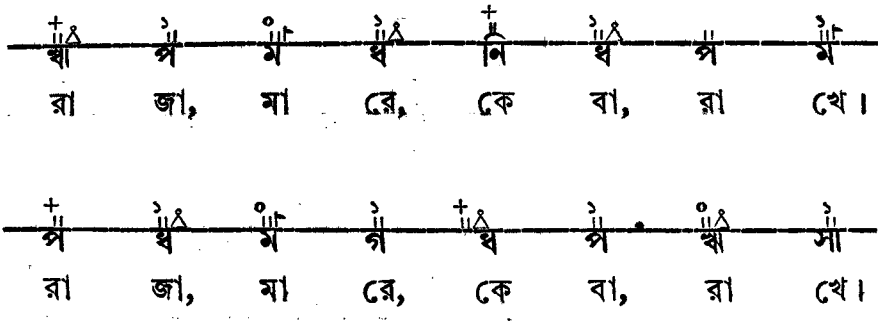

(১০৩)

সুরট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

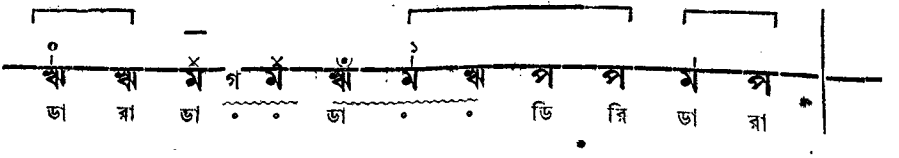

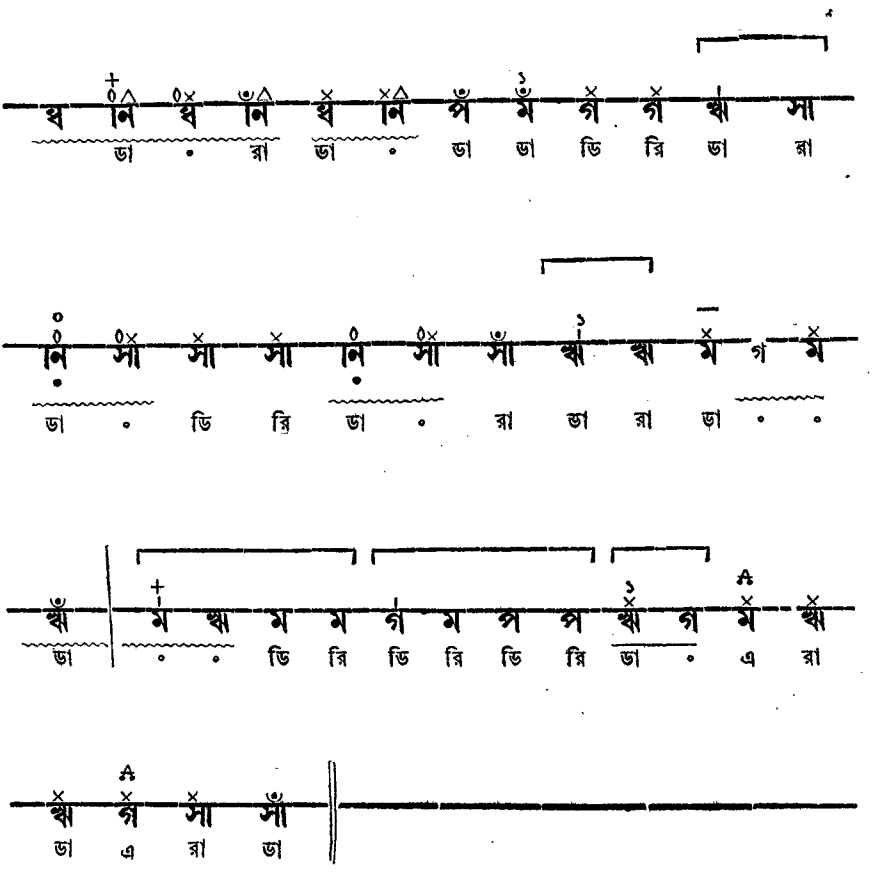
ঋ ন ঋ ন ঋ ন পঁ মঁ গ গ ঋ সা
ডা • রা ডা • ডা ডা ডি রি ডা রা
ন সা সা সা ন সা সাঁ ঋ ঋ ম গ ম
ডা • ডি রি ডা • রা ডা রা ডা • •
ঋঁ ম ঋ ম ম গ ম প প ঋ গ ম ঋ
ডা • • ডি রি ডি রি ডি রি ডা • এ রা
ঋ গ সা সাঁ
ডা এ রা ডা

অন্তরা।

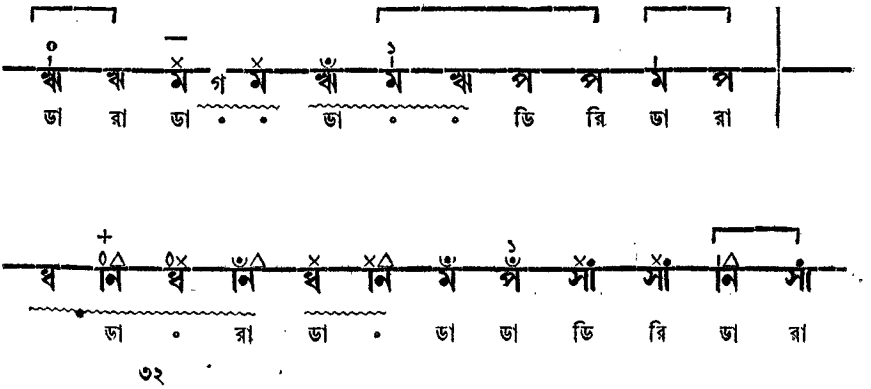
ঋ ঋ ম গ ম ঋঁ ম ঋ প প ম প
ডা রা ডা • • ডা • • ডি রি ডা রা
ঋ ন ঋ ন ঋ ন ম পঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ
ডা • রা ডা • ডা ডা ডি রি ডা রা

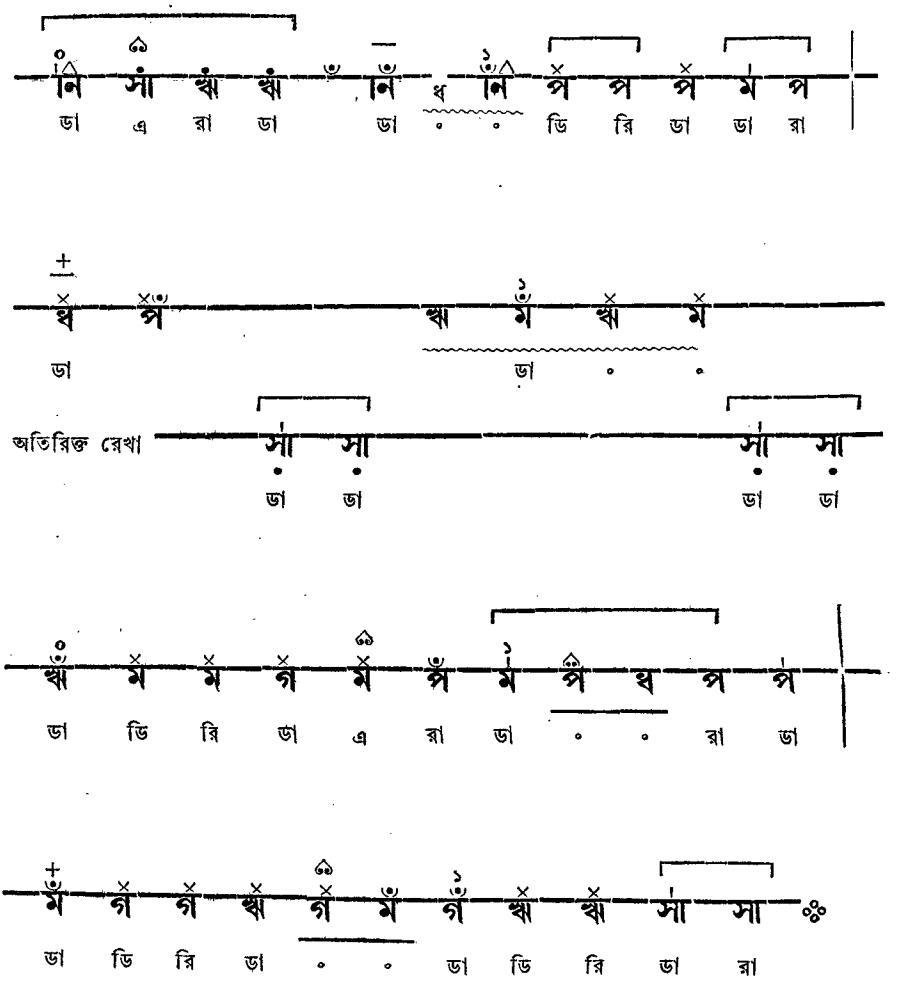

ত্র্যক্ষরা বৃত্তি।

মৃগীচ্ছন্দসা।

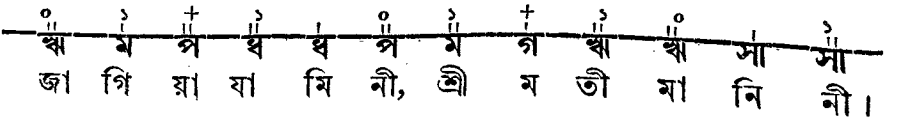

(১০৪)

জয়জয়ন্তী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

আস্থায়ী।

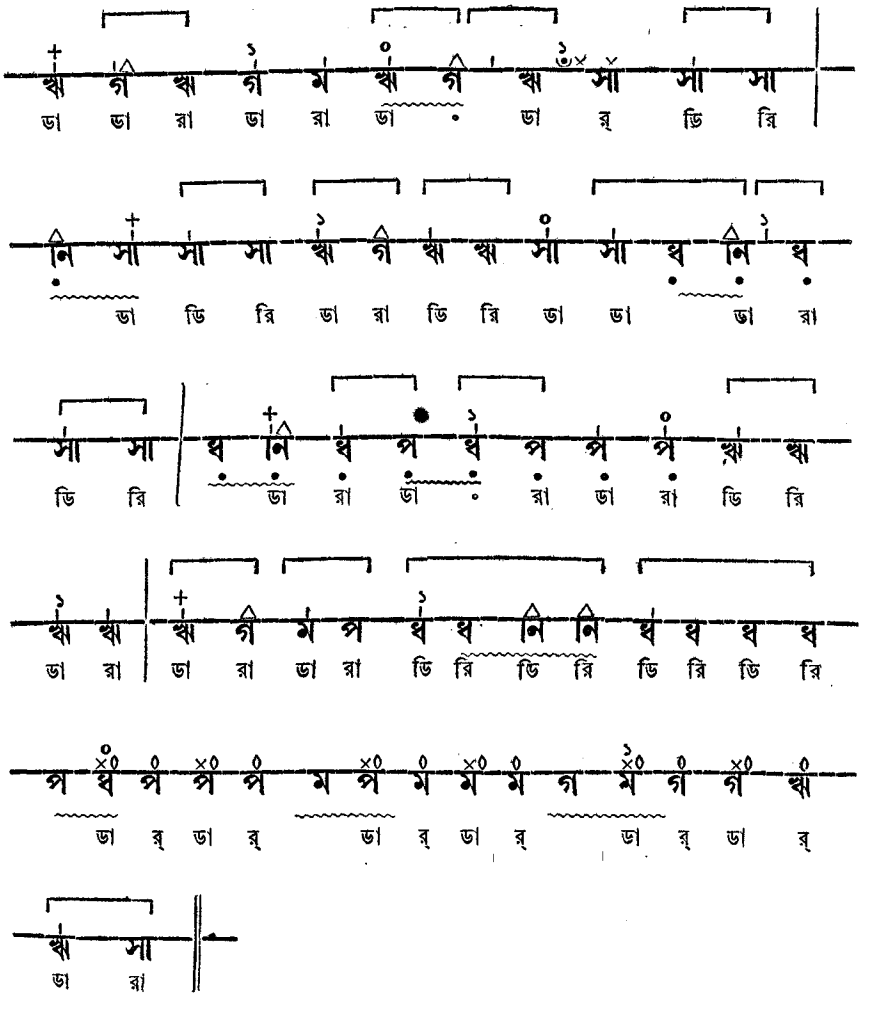
ঋ গ ঋ গ ম ঋ গ ঋ সা সা সা
ডা ডা রা ডা রা ডা ডা র্ ডি রি
নি সা সা সা ঋ গ ঋ ঋ সা সা ধ নি ধ
ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা ডা ডা রা
সা সা ধ নি ধ প ধ প প প ঋ ঋ
ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি
ঋ ঋ ঋ গ ম প ধ ধ নি নি ধ ধ ধ ধ
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
প ধ প প প ম প ম ম ম গ ম গ গ ঋ
ডা র্ ডা র্ ডা র্ ডা র্ ডা র্ ডা র্
ঋ সা
ডা রা

অন্তরা।

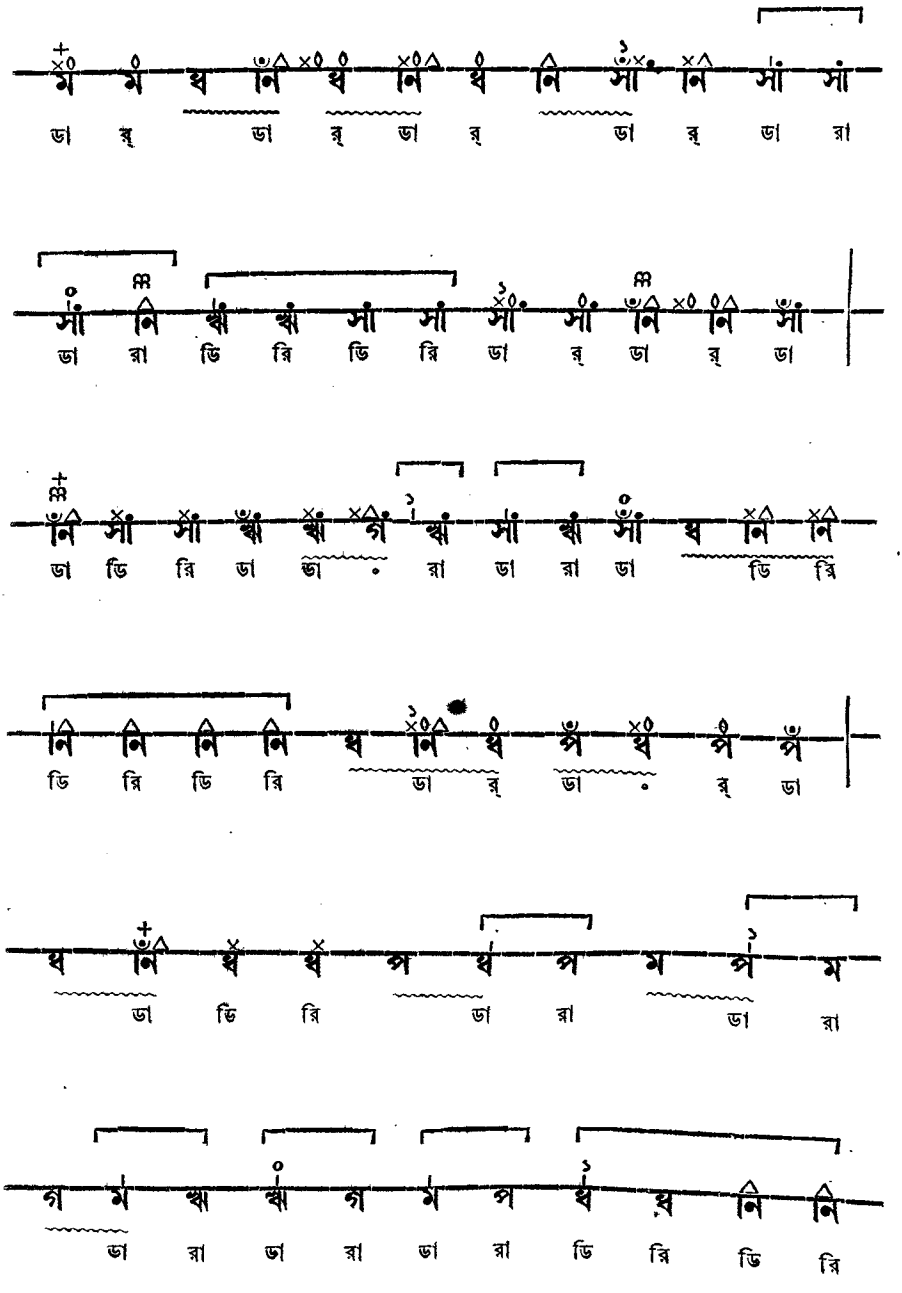
ডা র্ ডা র্ ডা র্ ডা র্ ডা রা
ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ডা ডি রি ডা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি

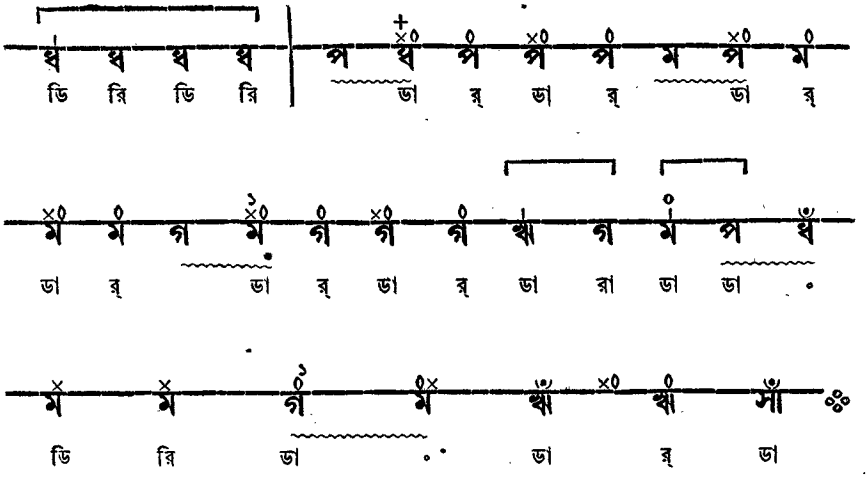

চতুরক্ষরা বৃত্তি।

সতীচ্ছন্দসা।

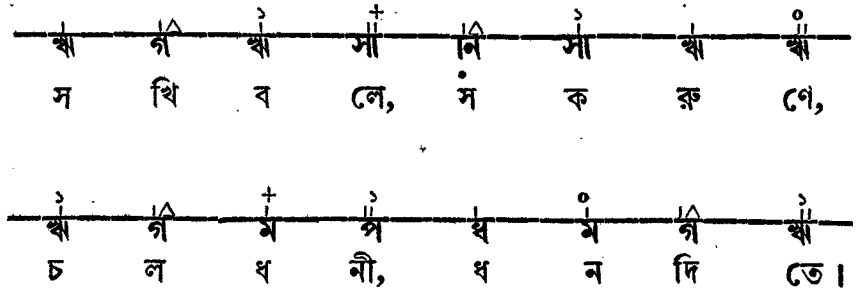

(১০৫)

কামোদ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

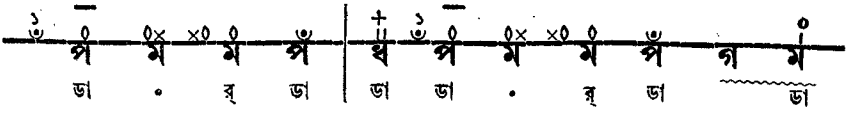

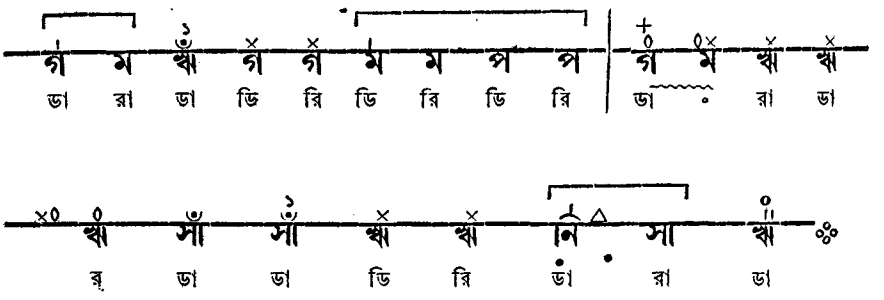

পঞ্চাক্ষরা বৃত্তি।

পঙ্‌ক্তিচ্ছন্দসা।

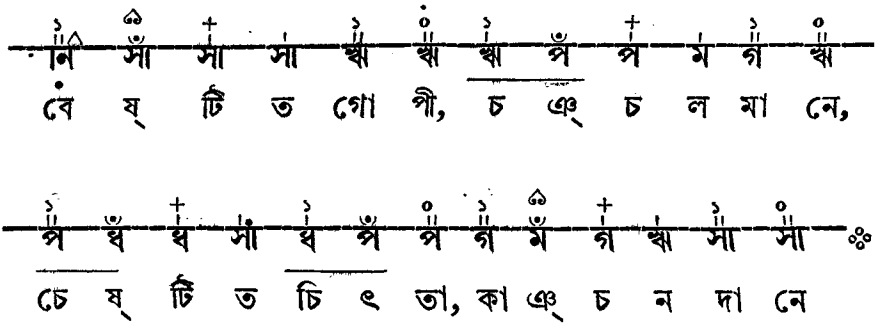

(১০৬)

মেঘ—খাড়ব।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

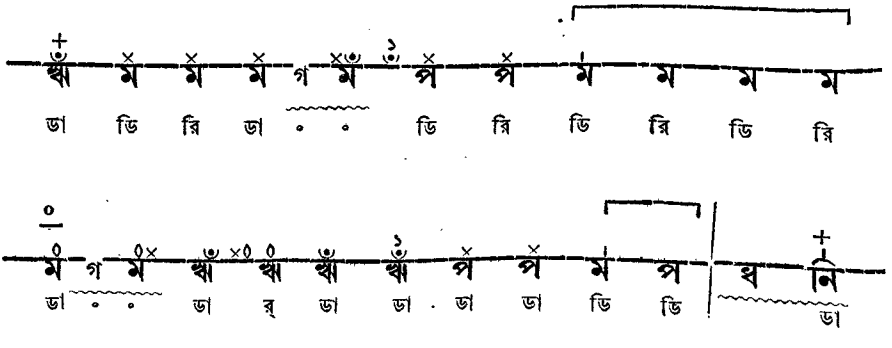

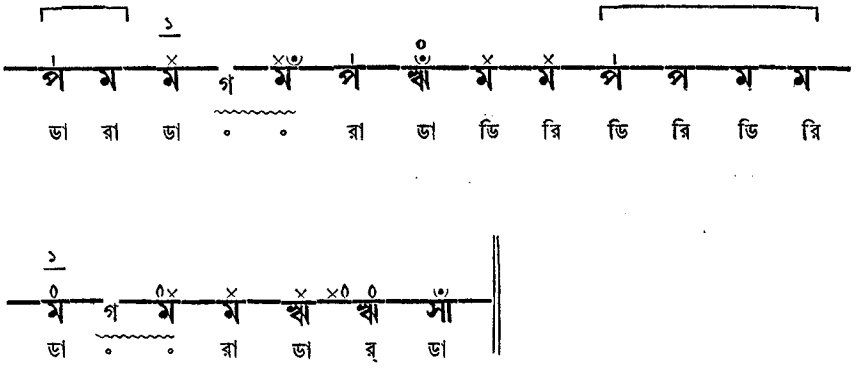
প ম ম গ ম প ঋ ম ম প প ম ম
ডা রা ডা ০ ০ রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ম গ ম ম ঋ ঋ সাঁ
ডা ০ ০ রা ডা র্ ডা

অন্তরা।

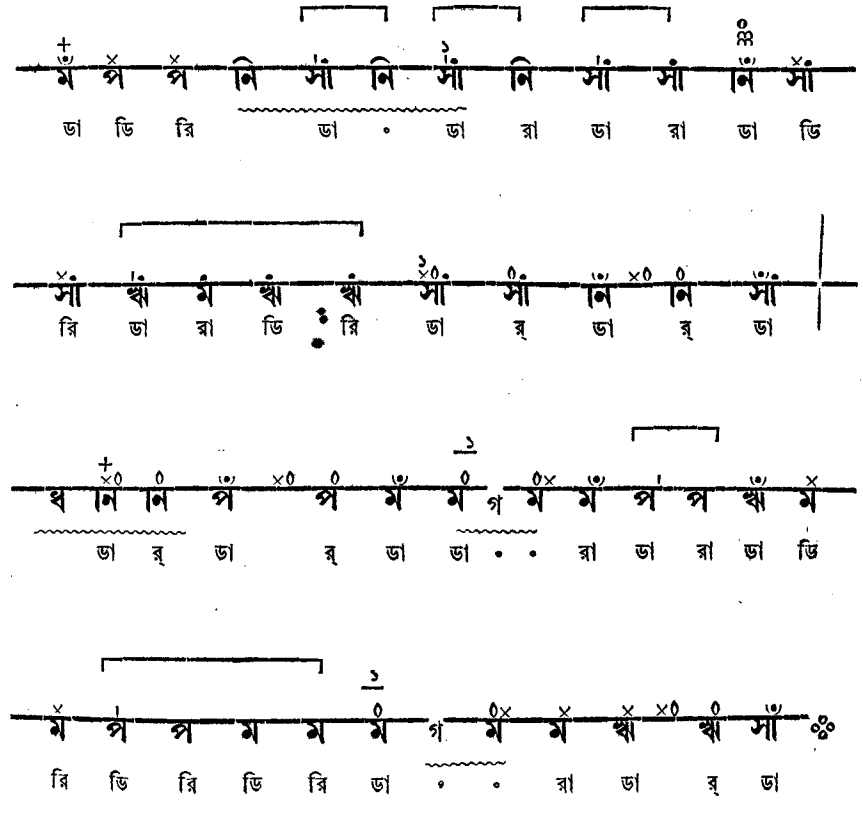
মঁ প প নি সাঁ নি সাঁ নি সাঁ সাঁ নঁ সাঁ
ডা ডি রি ডা ০ ডা রা ডা রা ডা ডি
সাঁ ঋঁ মঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ নঁ নঁ সাঁ
রি ডা রা ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ঋ নঁ নঁ পঁ পঁ মঁ মঁ গ মঁ মঁ পঁ পঁ ঋঁ মঁ
ডা র্ ডা র্ ডা ডা ০ ০ রা ডা রা ডা ডি
মঁ প প ম ম ম গ ম ম ঋ ঋ সাঁ
রি ডি রি ডি রি ডা ০ ০ রা ডা র্ ডা

পঞ্চাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

প্রিয়াচ্ছন্দসা।

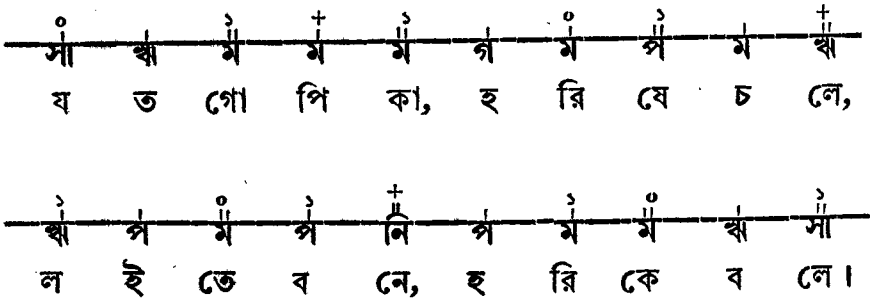

(১০৭)

বিভাস—খাড়ব।

মধ্যমান।

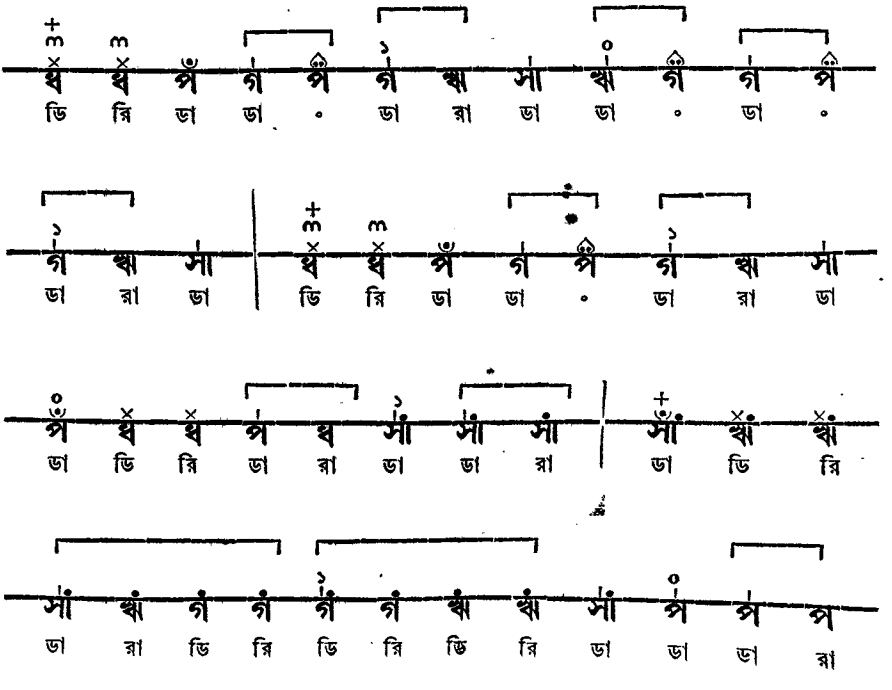

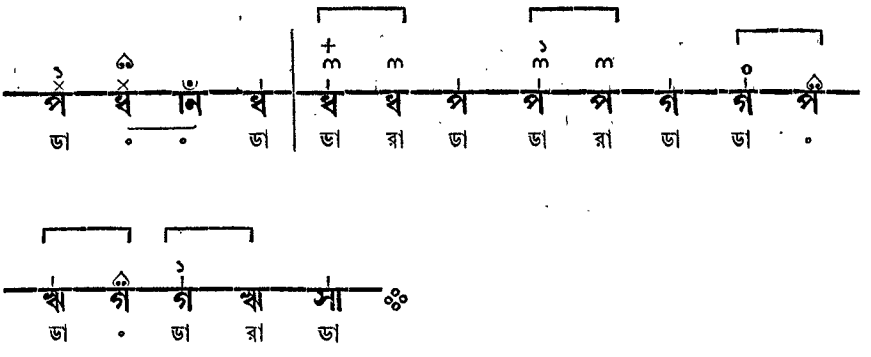

পঞ্চাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

ত্বরিতগতিচ্ছন্দসা।

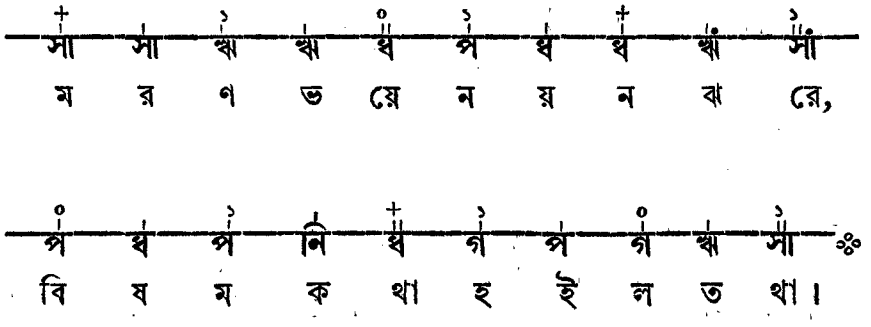

(১০৮)

নটনারায়ণ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

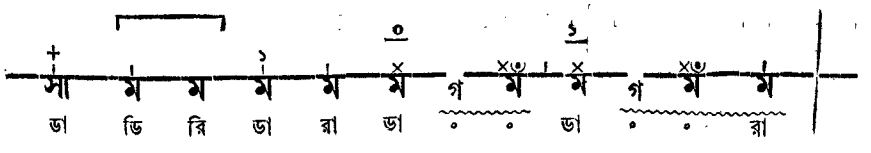

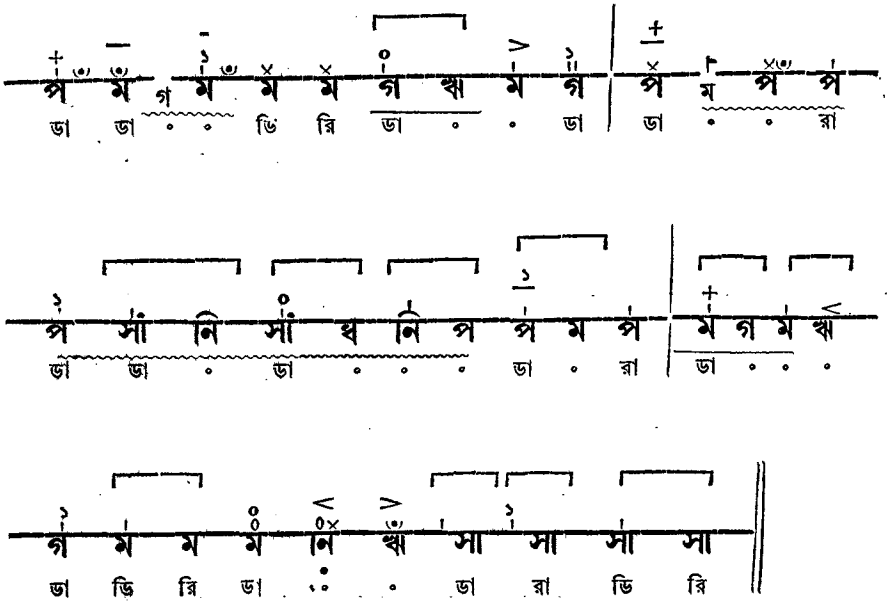

অন্তরা।

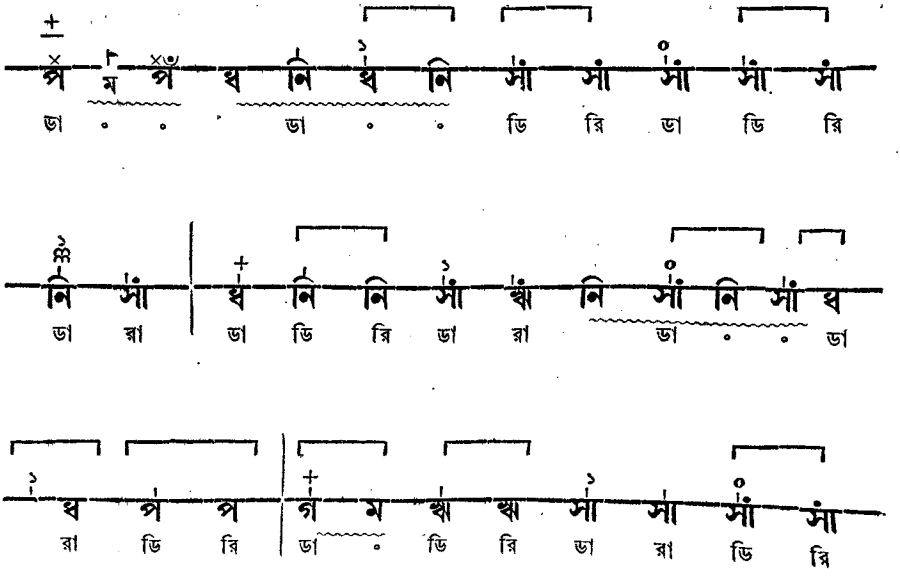

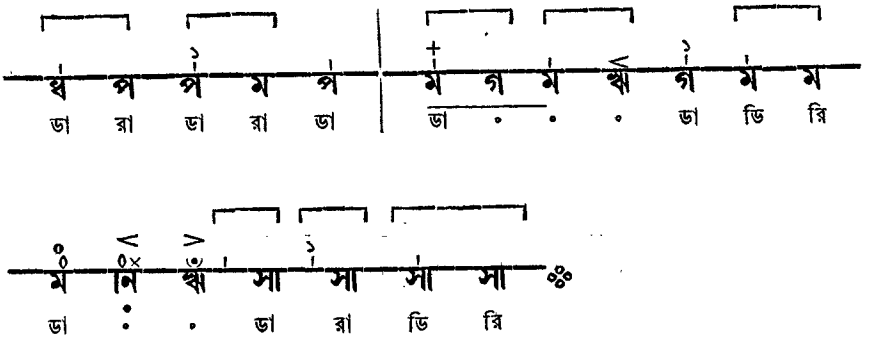

ষড়ক্ষরা বৃত্তি।

গায়ত্রী।

তনুমধ্যাচ্ছন্দসা।

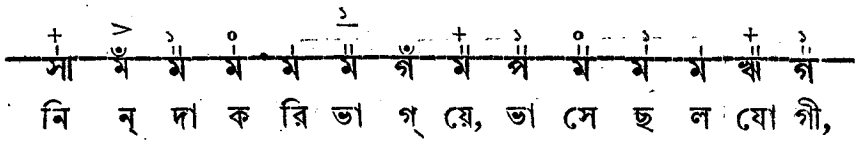

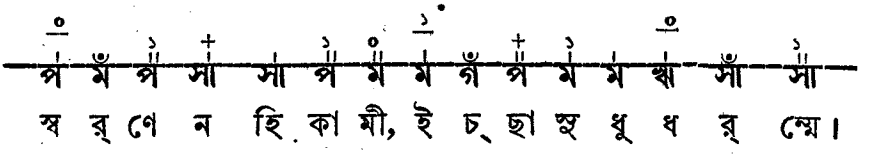

(১০৯)

সোহিনী-বাহার—সম্পূর্ণ।

দ্রুত-ত্রিতালী।

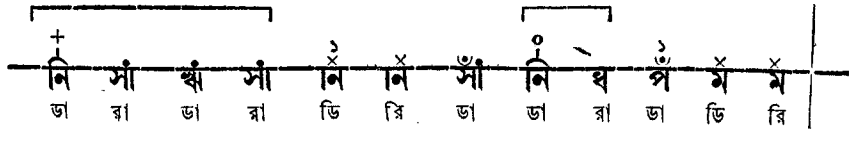

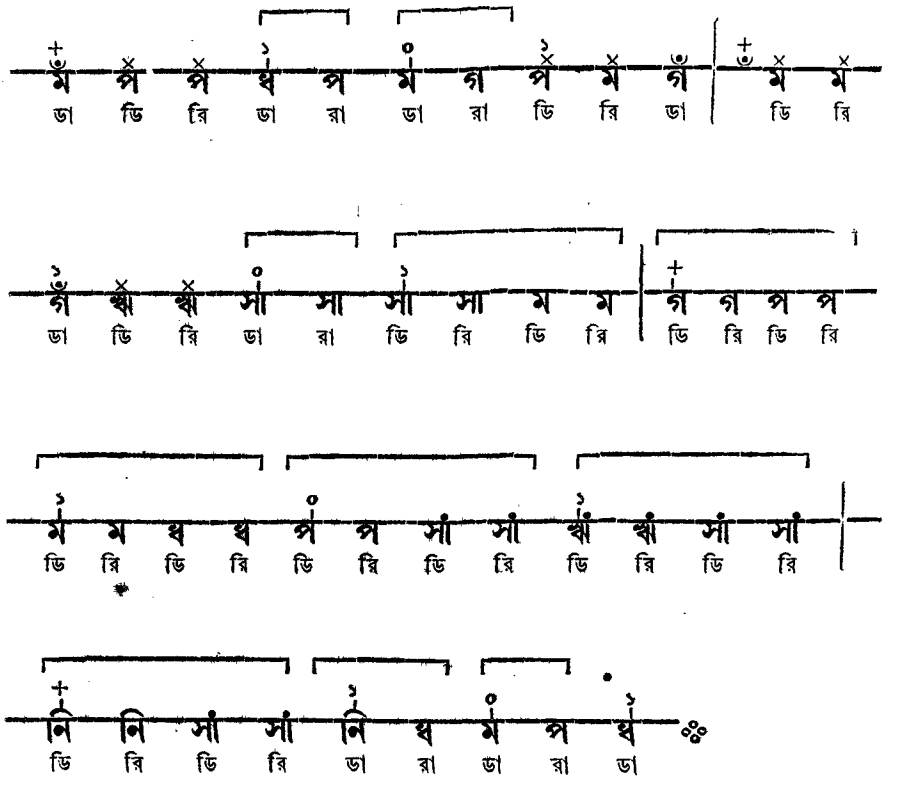

ষড়ক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

শশিবদনাচ্ছন্দসা।

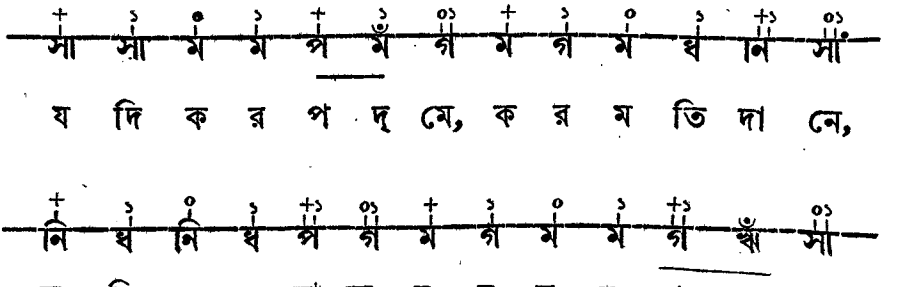

(১১০)

পঞ্চম—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(স্থা)

আস্থায়ী।

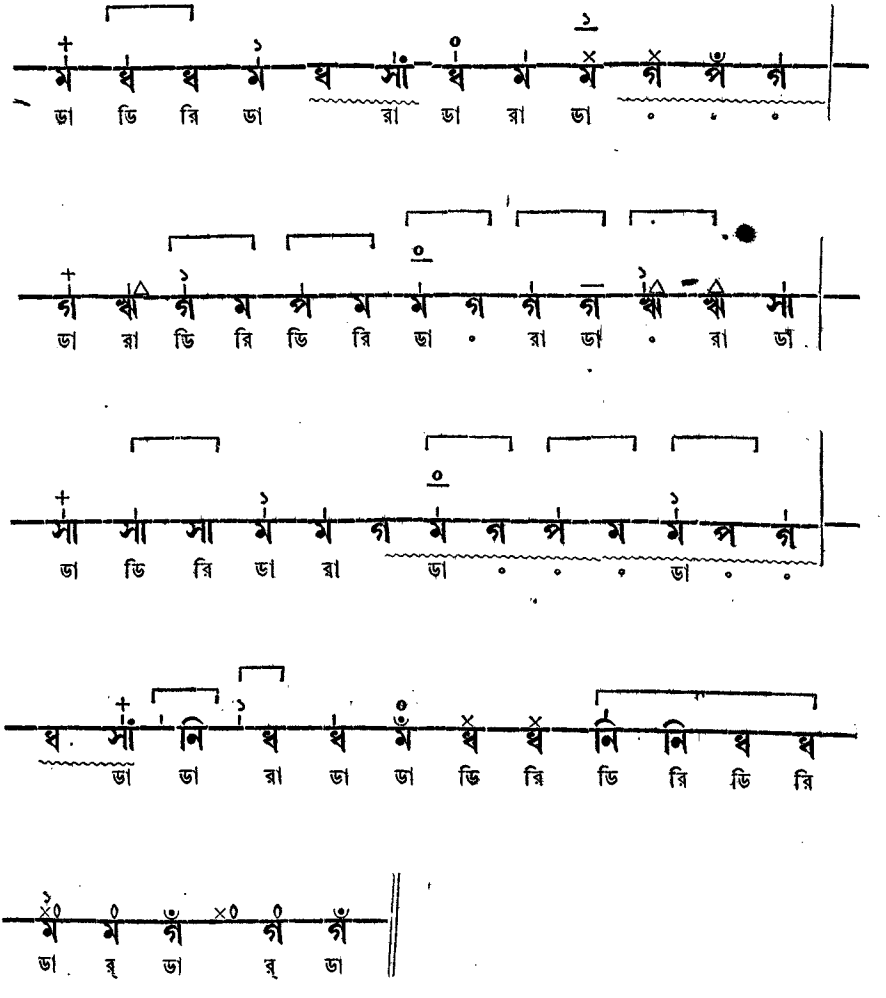

অন্তরা।

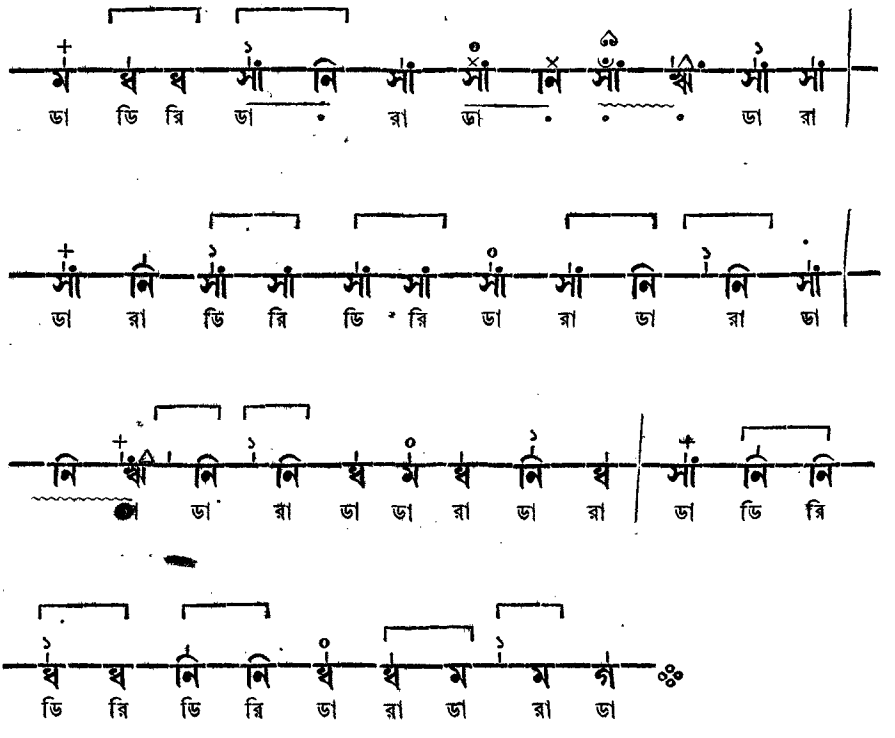

ষড়ক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

সোমরাজিচ্ছন্দসা।

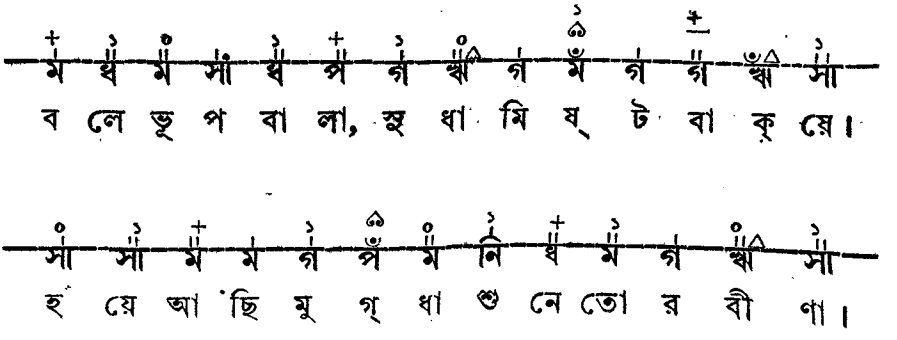

(১১১)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

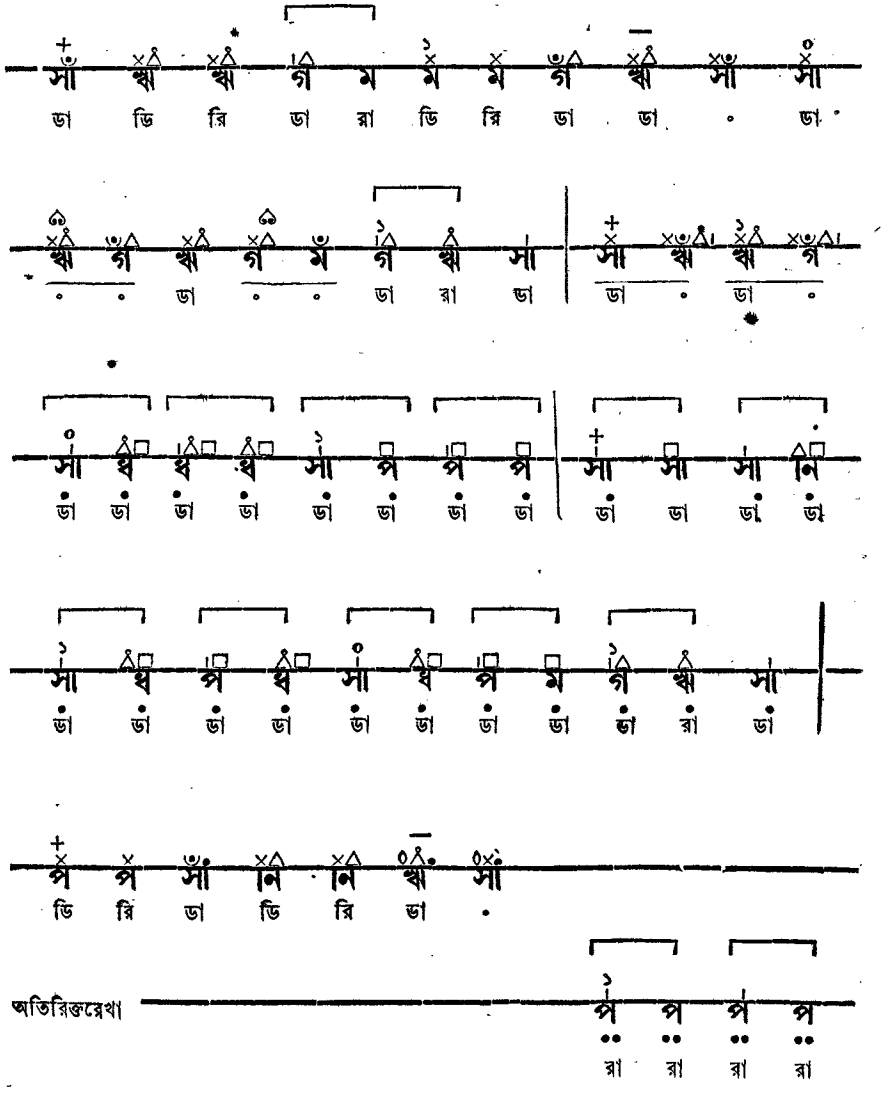
সাঁ ঋ ঋ গ ম ম ম গ ঋ সাঁ সা
ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা ডা ডা
ঋ গ ঋ গ মঁ গ ঋ সা
ডা ডা রা ডা
সা ঋ ঋ গ
ডা ডা
সা ধ ধ ধ সা প প প
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা
সা সা সা নি
ডা ডা ডা ডা
সা ধ প ধ সা ধ প ম গ ঋ সা
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা রা ডা
প প সাঁ নি নি ঋ সাঁ
ডি রি ডা ডি রি ডা
অতিরিক্তরেখা
প প প প
রা রা রা রা

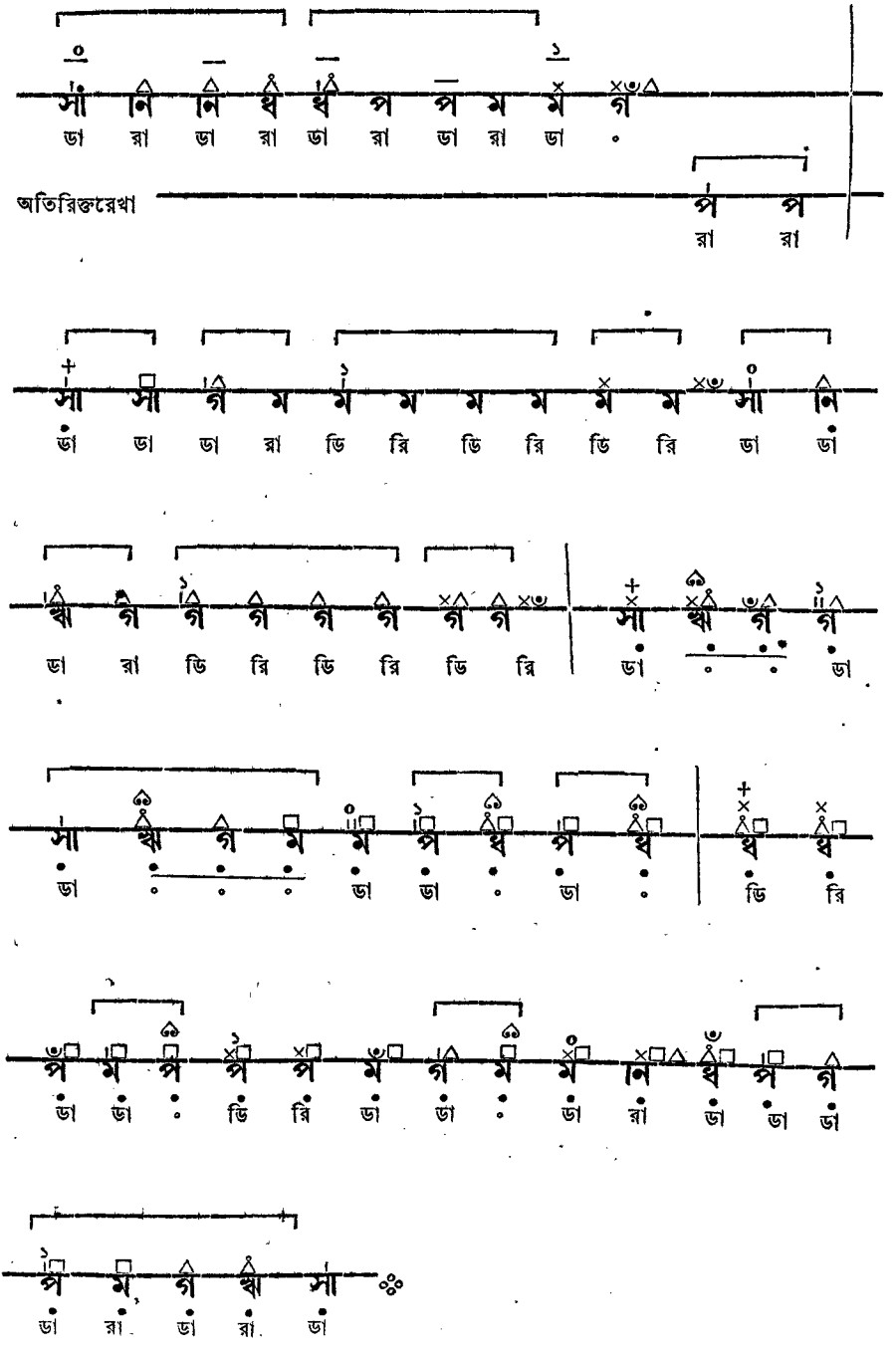
সাঁ নি নি ধ্ধ প প ম ম গ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
অতিরিক্তরেখা
প প
রা রা
সা সা গ ম ম ম ম ম ম ম সা নি
ডা ডা ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডা
ঋ গ গ গ গ গ গ গ
ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি
সা ঋ গ গ
ডা ডা
সা ঋ গ ম ম প ধ প ধ
ডা ডা ডা ডা
ধ ধ
ডি রি
প ম প প প ম গ ম ম নি ধ প গ
ডা ডা ডি রি ডা ডা ডা ডা রা ডা ডা ডা
প ম গ ঋ সা
ডা রা ডা রা ডা

সপ্তাক্ষরা বৃত্তি।

মধুমতীচ্ছন্দসা।

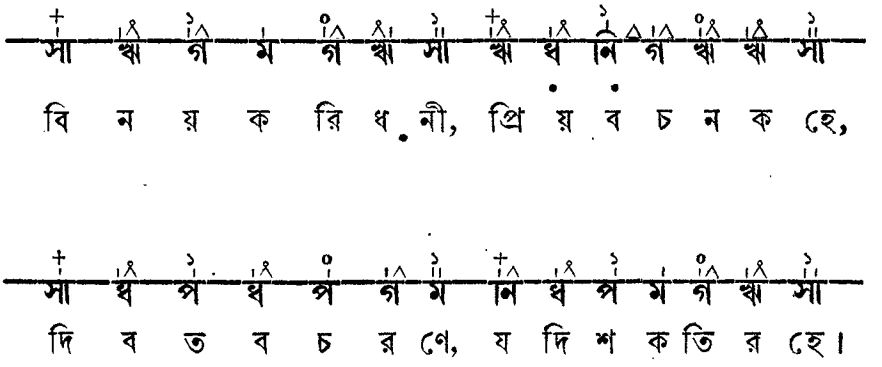

(১১২)

সিন্ধুড়া—সম্পূর্ণ।

শ্লথ-ত্রিতালী।

(গ নি)

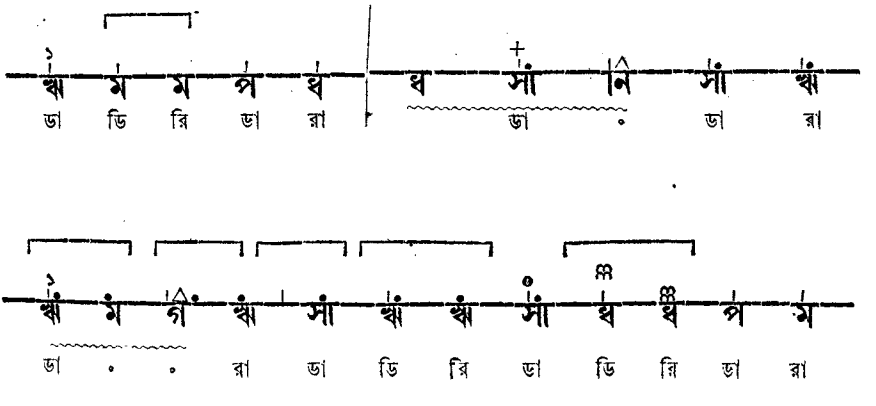

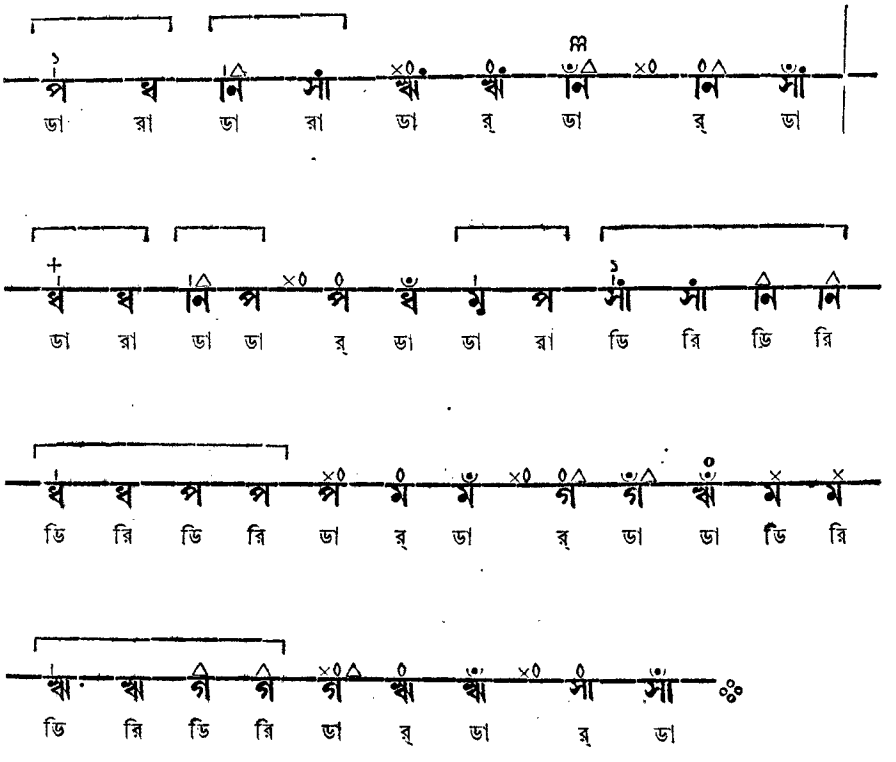

সপ্তাক্ষরা বৃত্তি।

প্রকারান্তর মধুমতীচ্ছন্দসা।

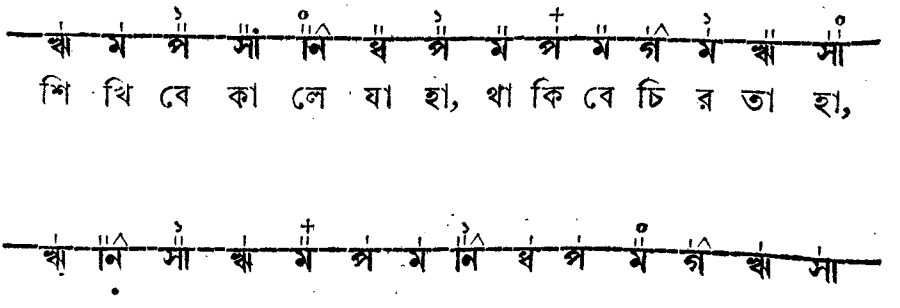

(১১৩)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(~~ঋ গ ধ নি~~)

আস্থায়ী।

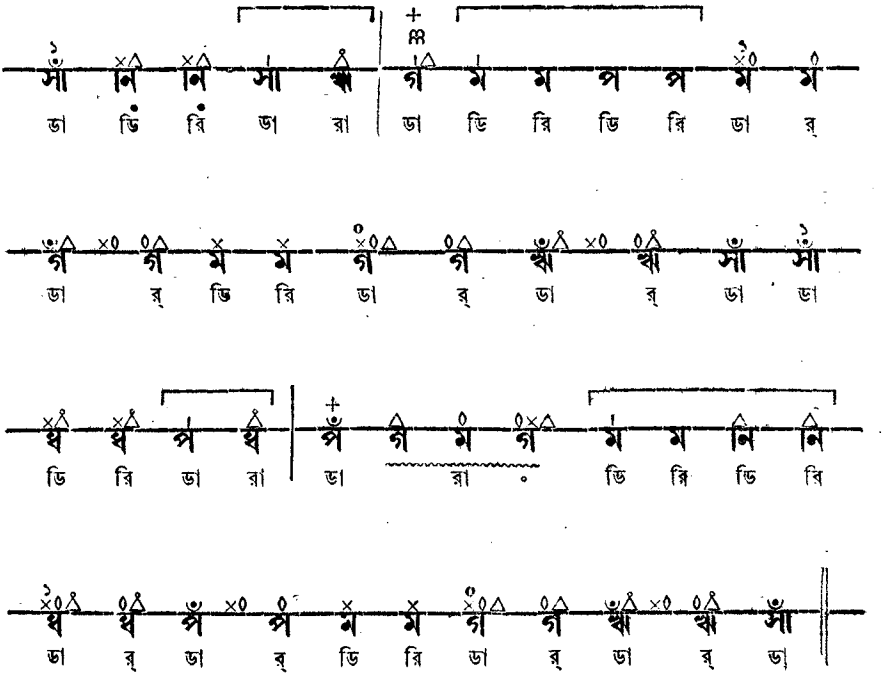

অন্তরা।

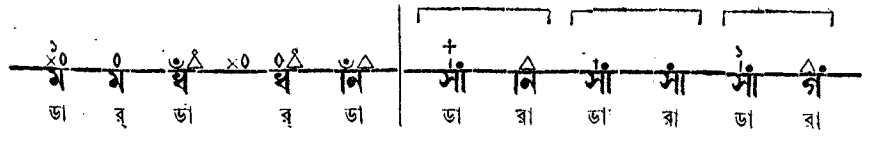

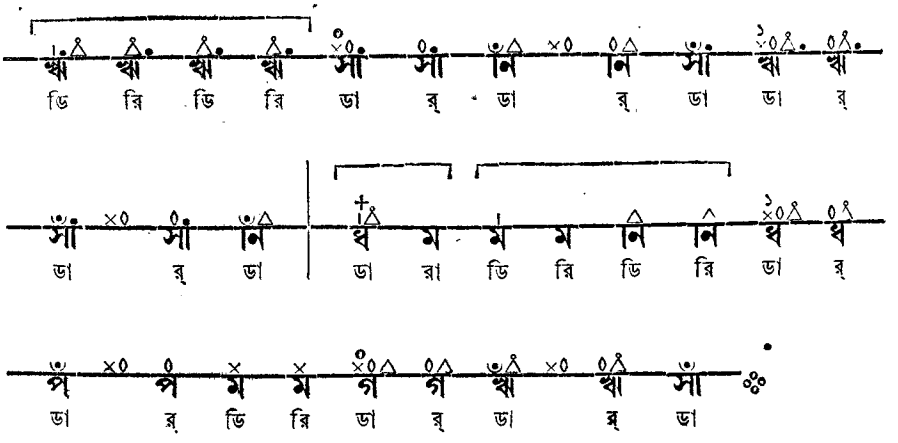

অষ্টাক্ষরা বৃত্তি।

মানবকচ্ছন্দসা।

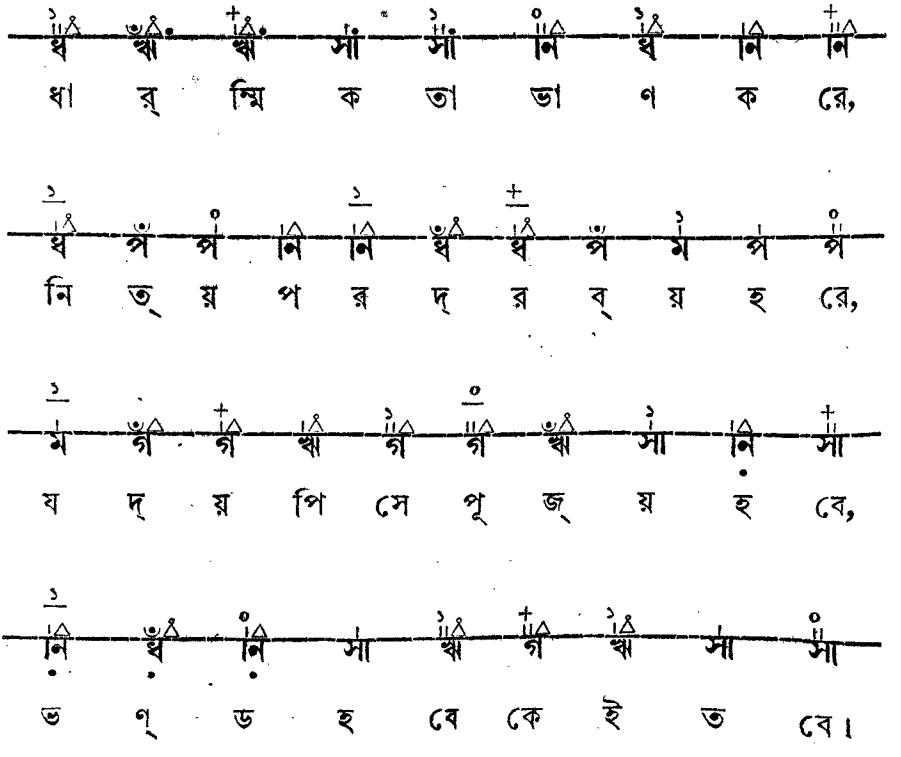

(১১৪)

হিণ্ডোল—ওড়ব*।

দ্রুত-ত্রিতালী।

(ম)

আস্থায়ী।

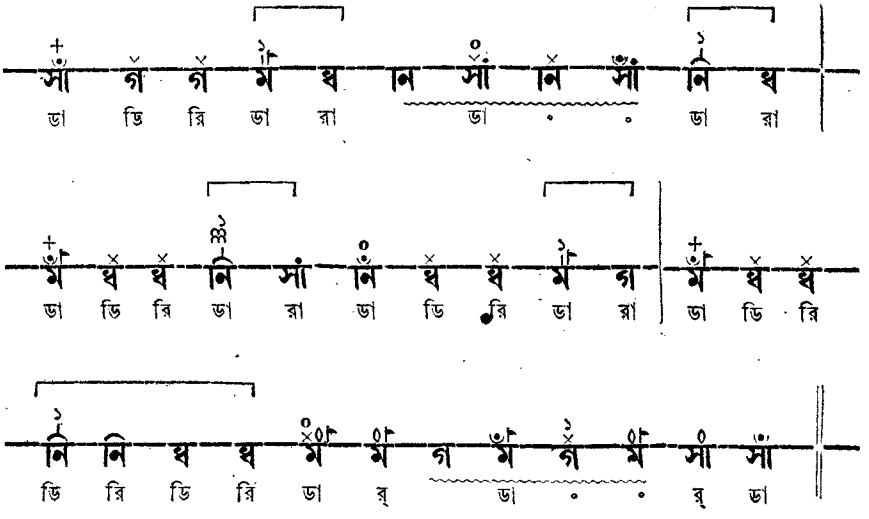

অন্তরা।

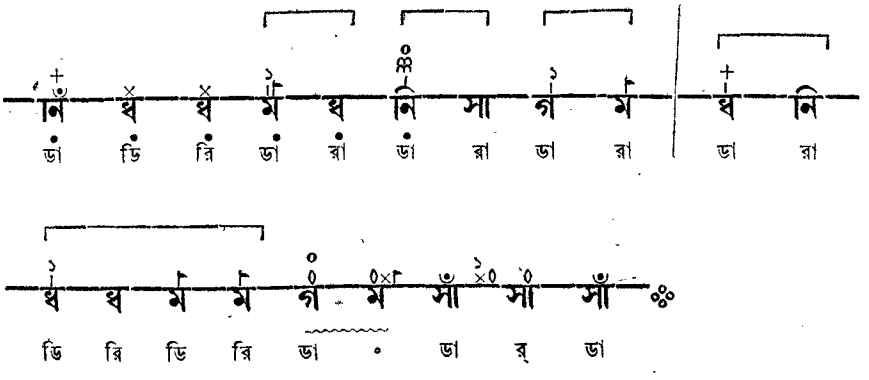

* ঋষভ ও পঞ্চম ইহার বিবাদী।

অষ্টাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

গজগতিচ্ছন্দসা।

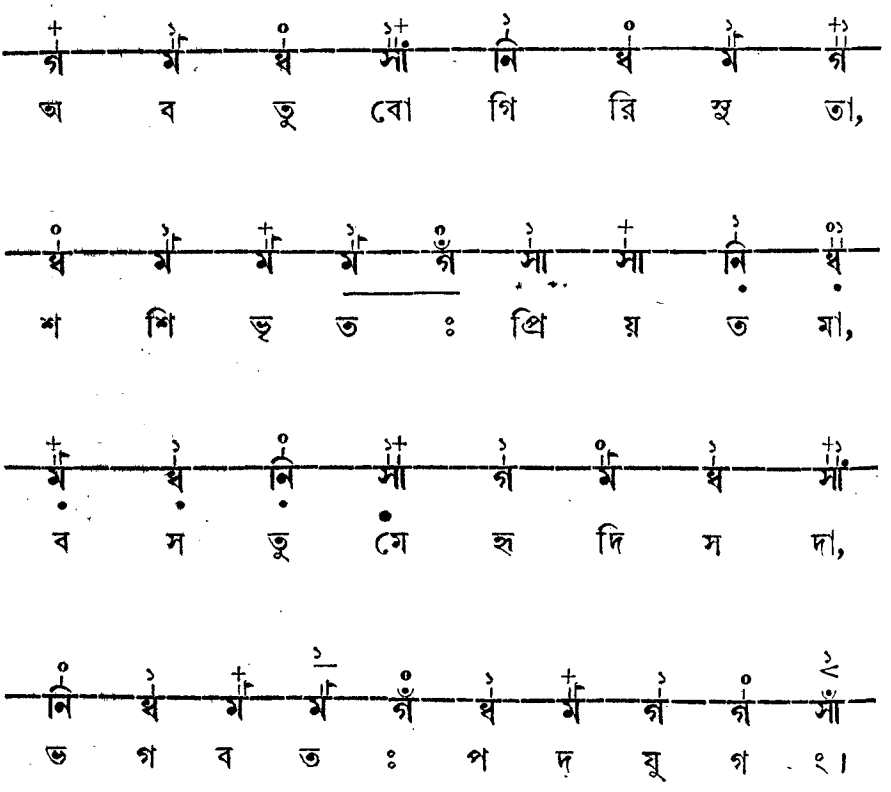

(১১৫)

বেহাগ—সম্পূর্ণ।

চৌতাল।

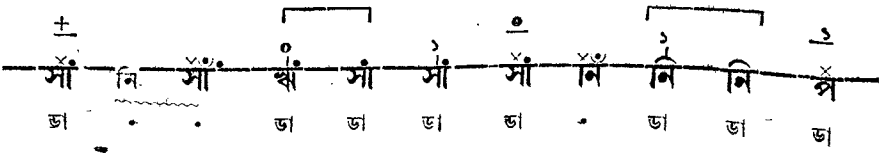

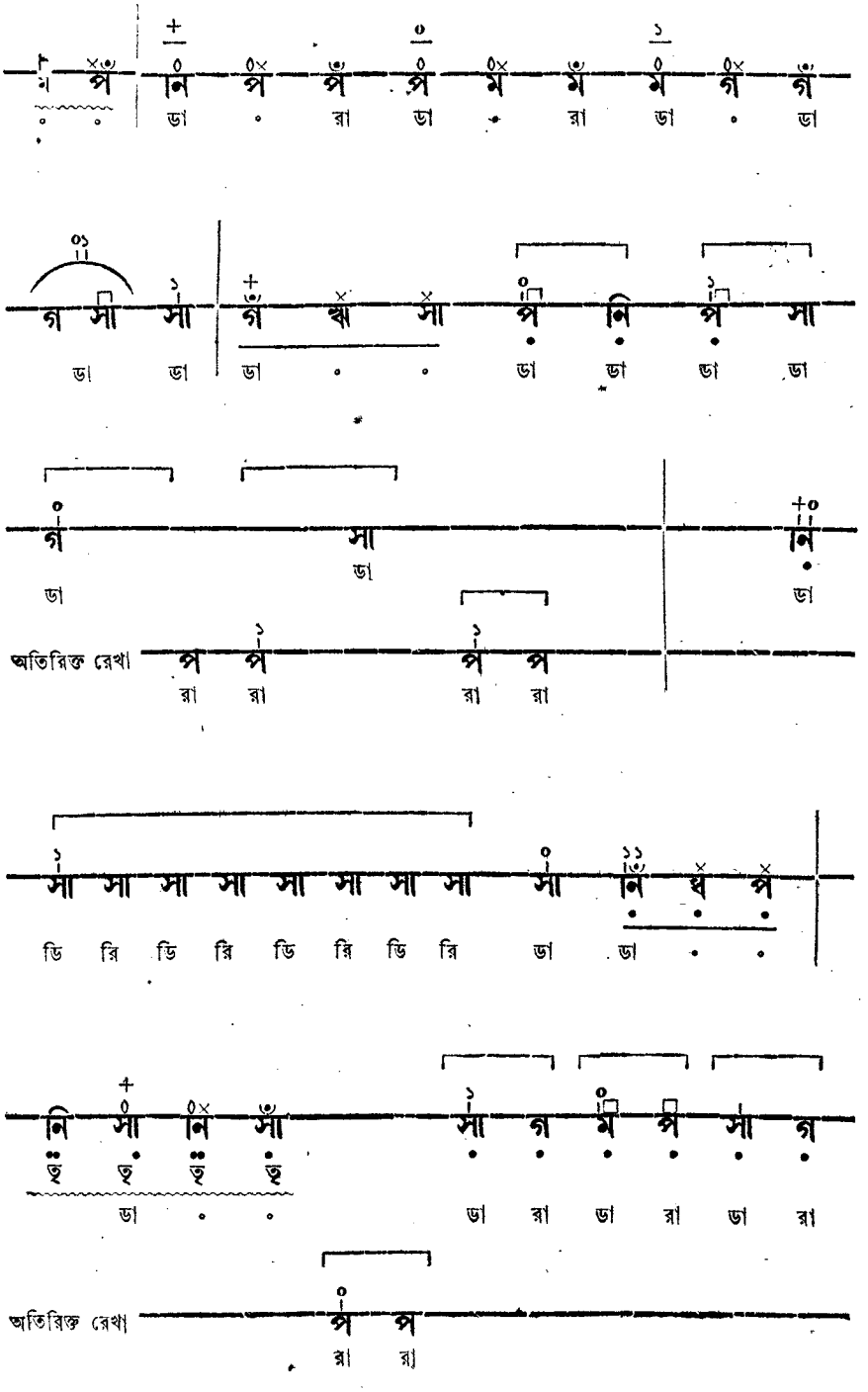
ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডা ডা ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
রা রা রা রা
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডা
তূ তূ তূ তূ
ডা ডা রা ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
রা রা

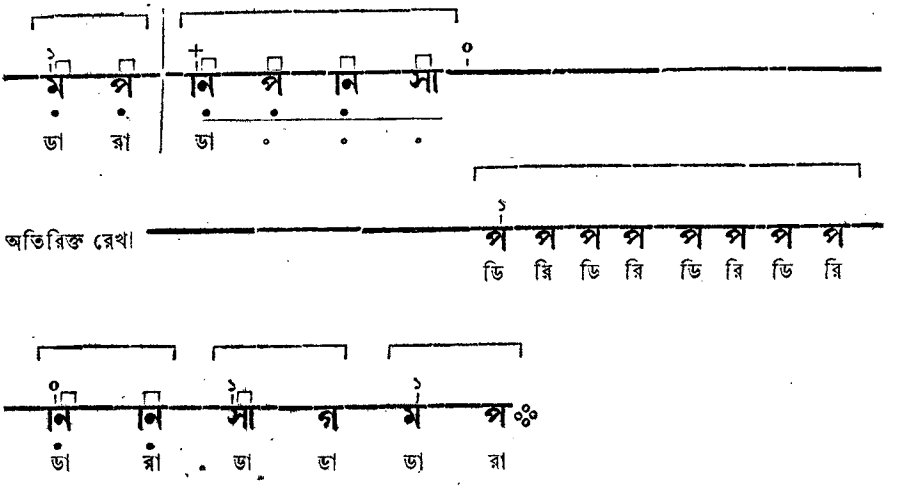

অষ্টাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর।)

সমানিকাচ্ছন্দসা।

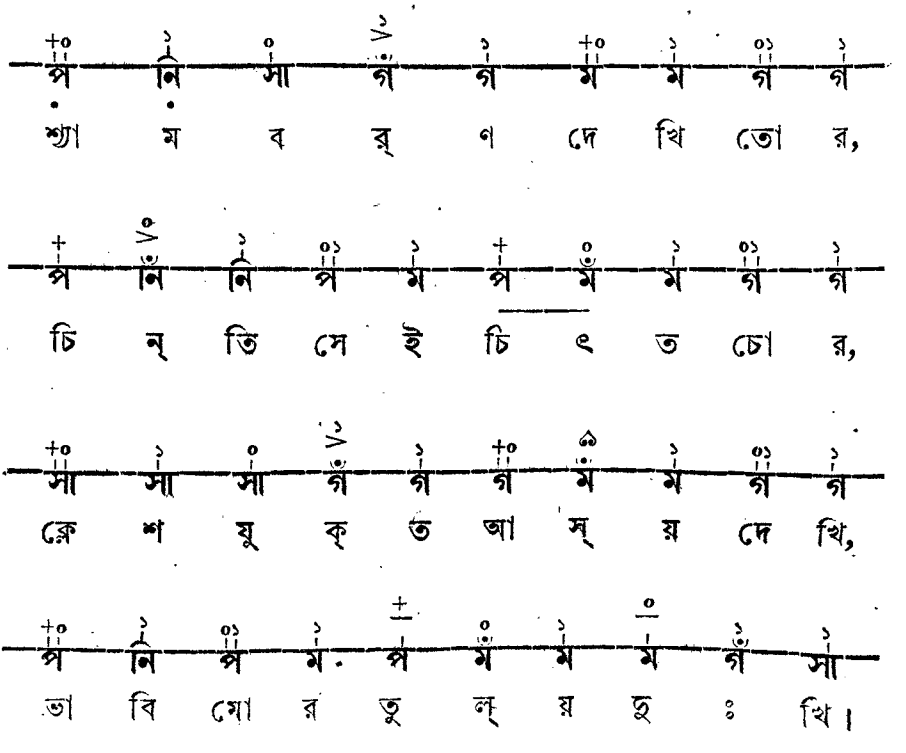

(১১৬)

মালব বা মারোয়া —খাড়ব*।

মধ্যমান।

(ঋ ম)

আস্থায়ী।

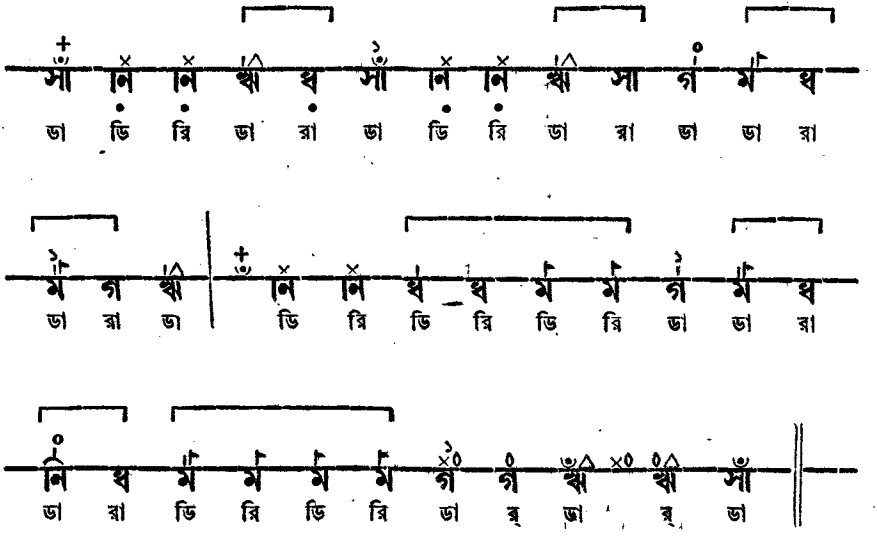

অন্তরা।

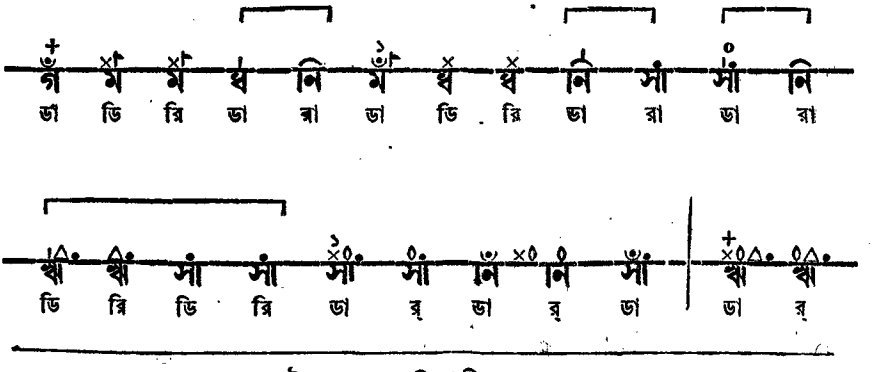

* ইহার পঞ্চম বিবাদী।

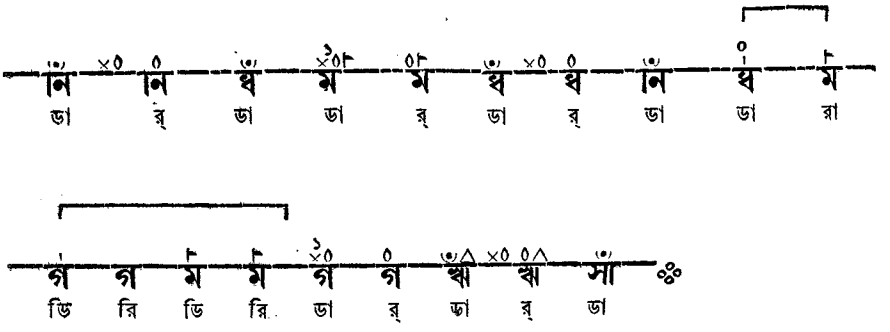

অষ্টাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

বিদ্যুন্মালাচ্ছন্দসা।

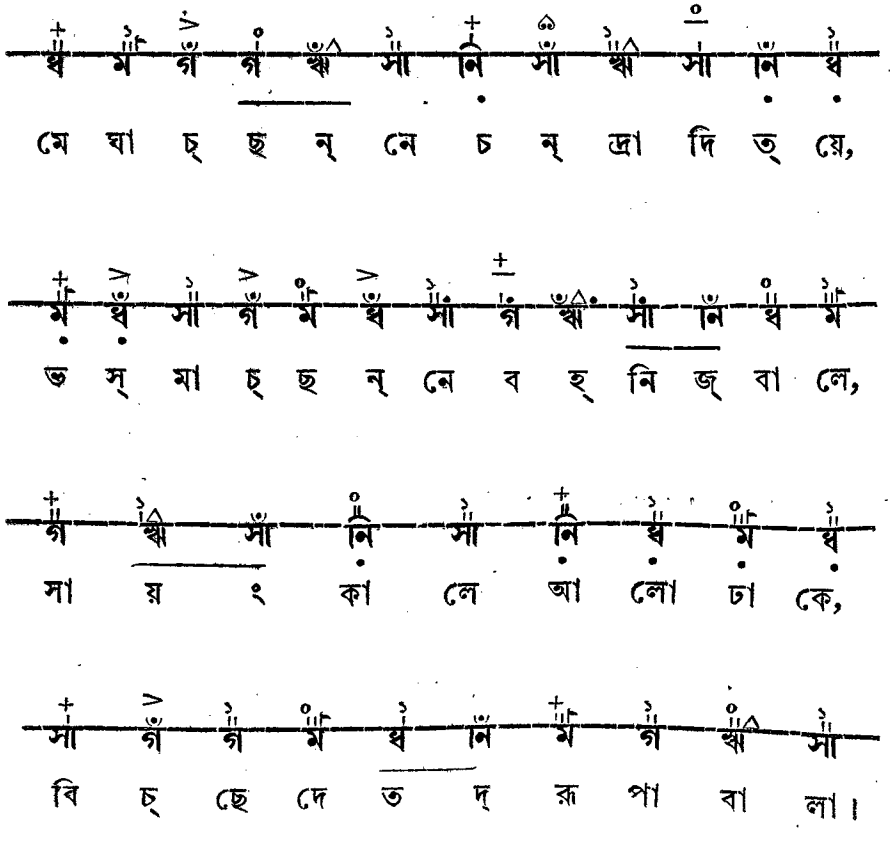

(১৯৭)

সিন্ধু-ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ধ নি)

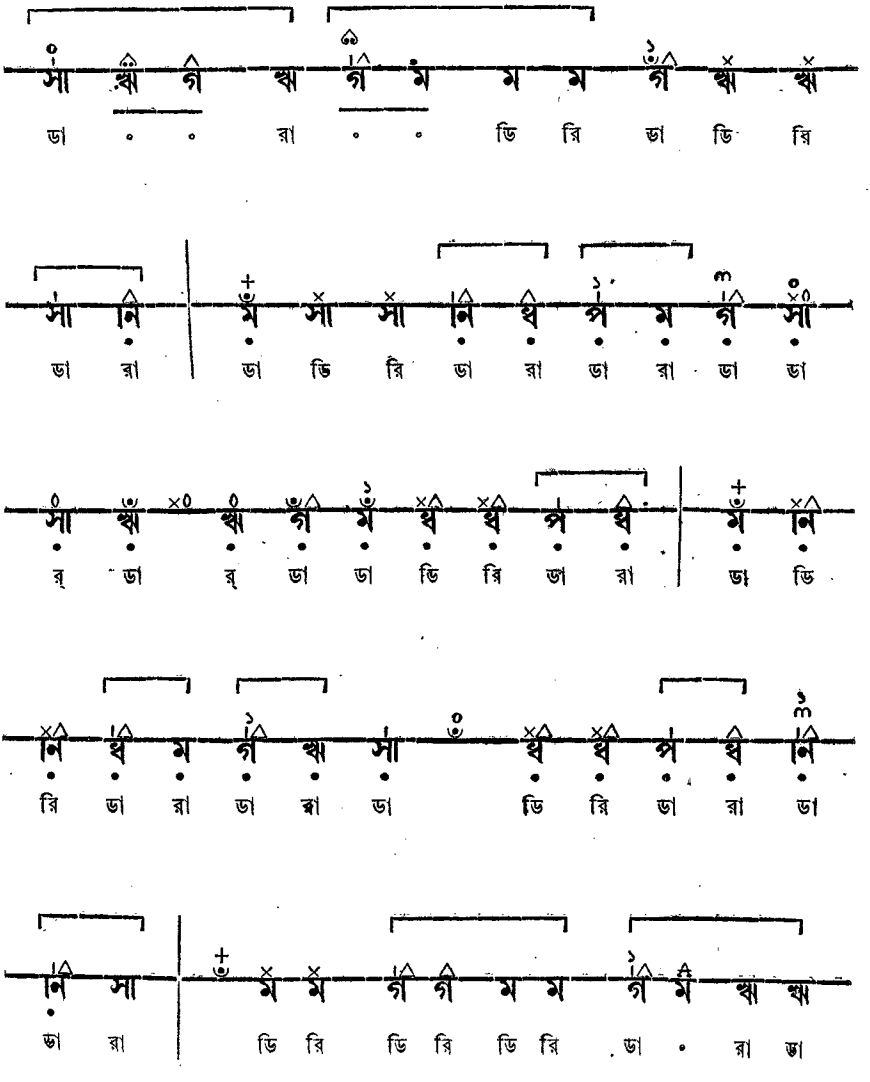
সা ঋ গ ঋ গ ম ম ম গ ঋ ঋ
ডা ০ ০ রা ০ ০ ডি রি ডা ডি রি
সা নি | ম সা সা নি ধ প ম গ সা
ডা রা | ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা ডা
সা ঋ ঋ গ ম ধ ধ প ধ | ম নি
র্ ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা রা | ডা ডি
নি ধ ম গ ঋ সা ধ ধ প ধ নি
রি ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
নি সা | ম ম গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ
ডা রা | ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা

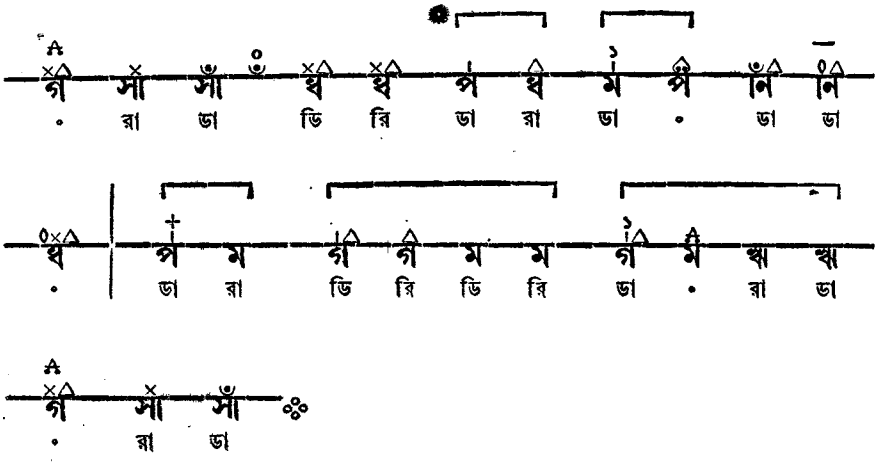

নবাক্ষরা বৃত্তি।

বৃহতীচ্ছন্দসা।

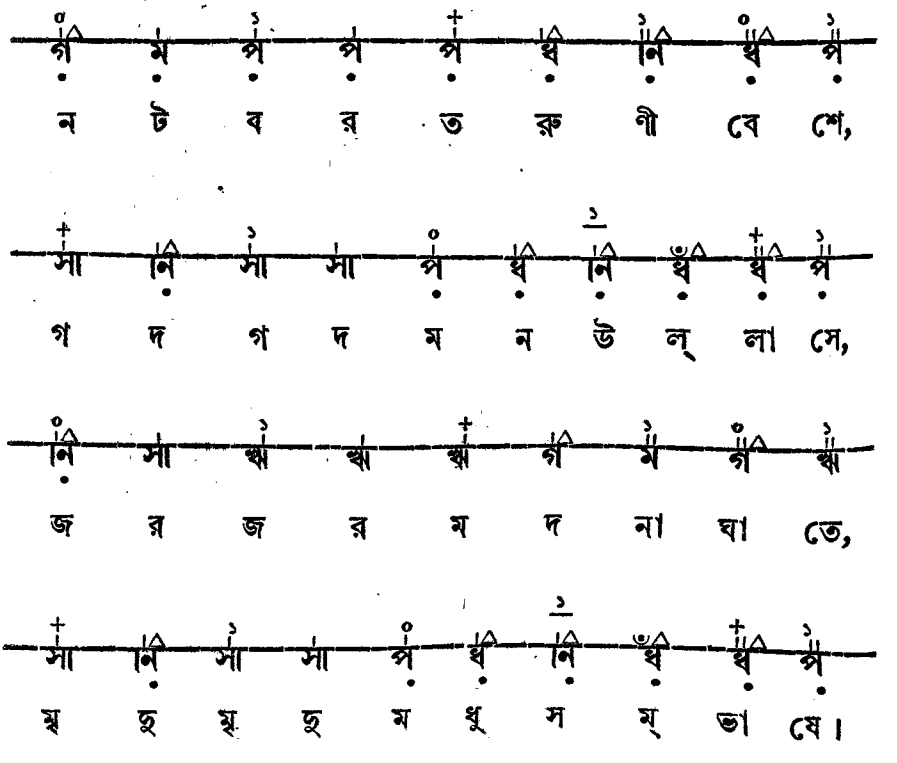

(১১৮)

বসন্ত—খাড়ব*।

মধ্যমান।

(ঋ)

আস্থায়ী।

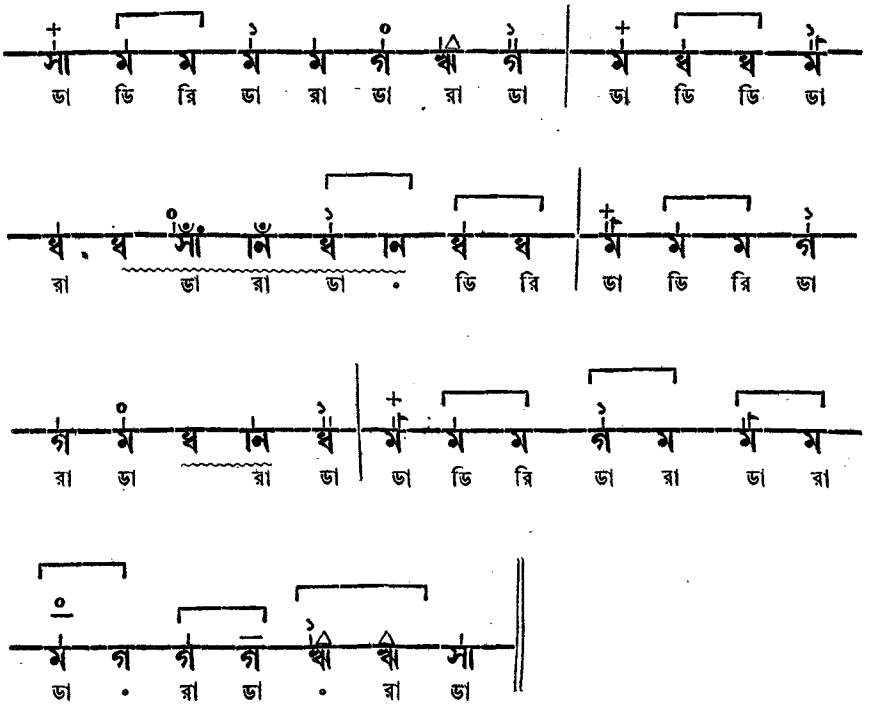

অন্তরা।

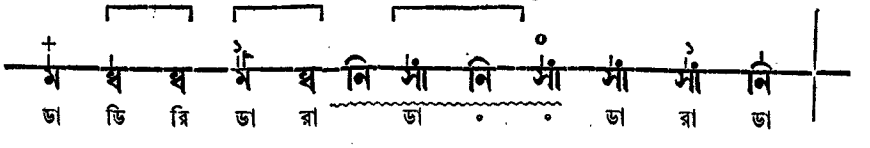

* ইহার পঞ্চম বিবাদী।

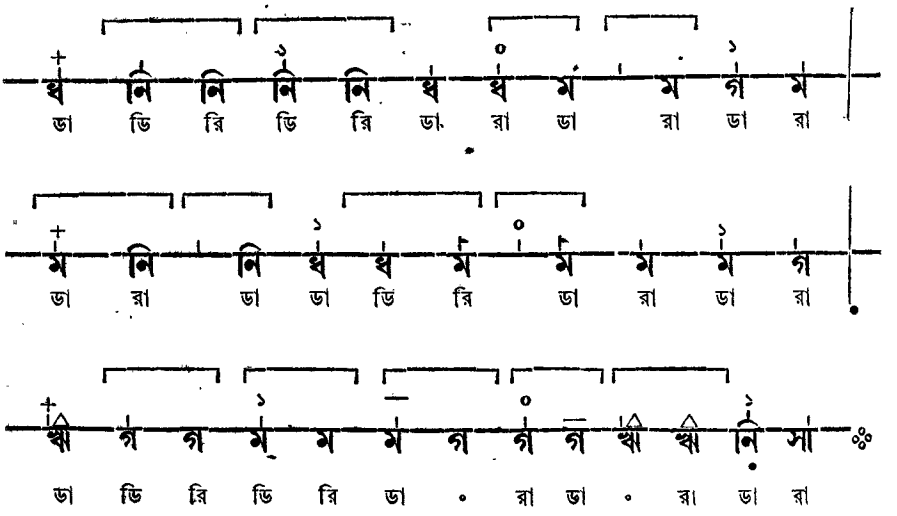

দশাক্ষরা বৃত্তি।

পঙ্‌ক্তিচ্ছন্দসা।

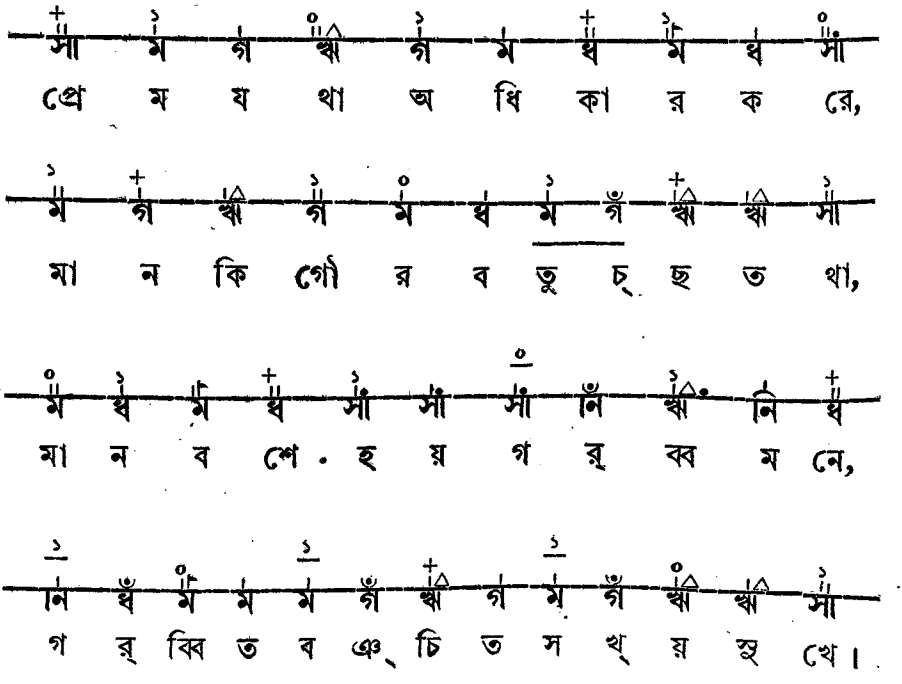

(১১৯)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

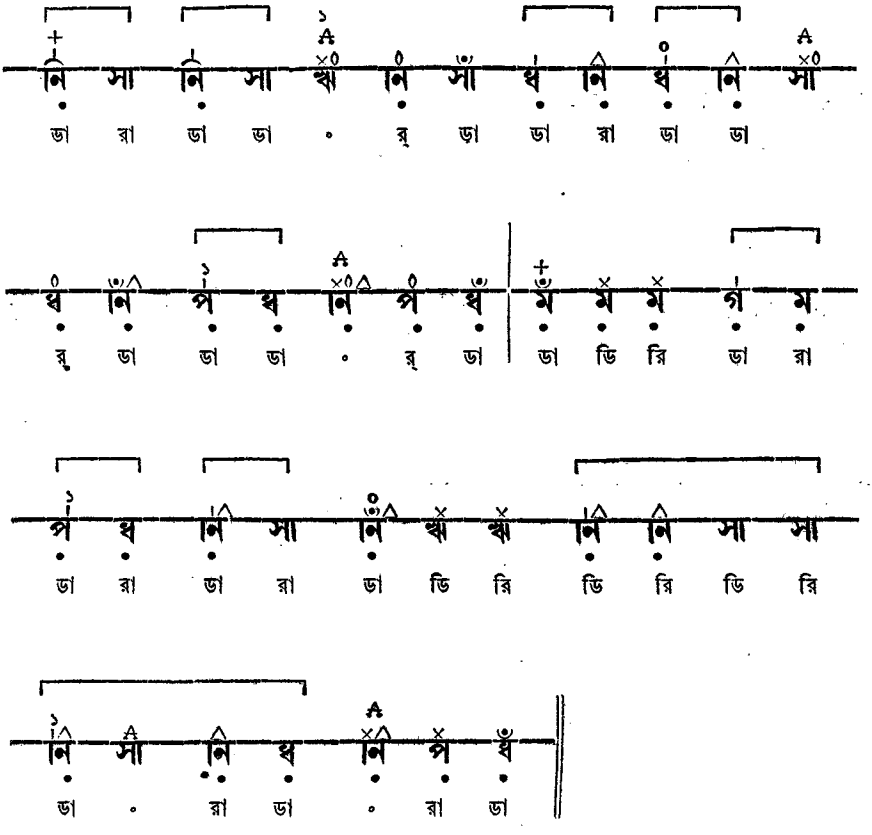

বিস্তার।

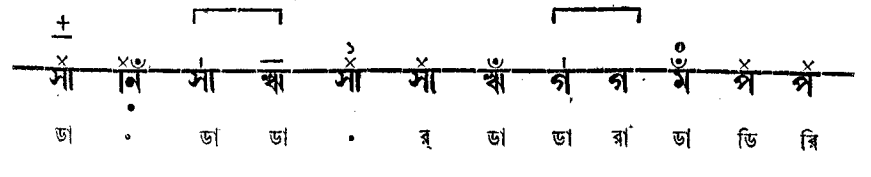

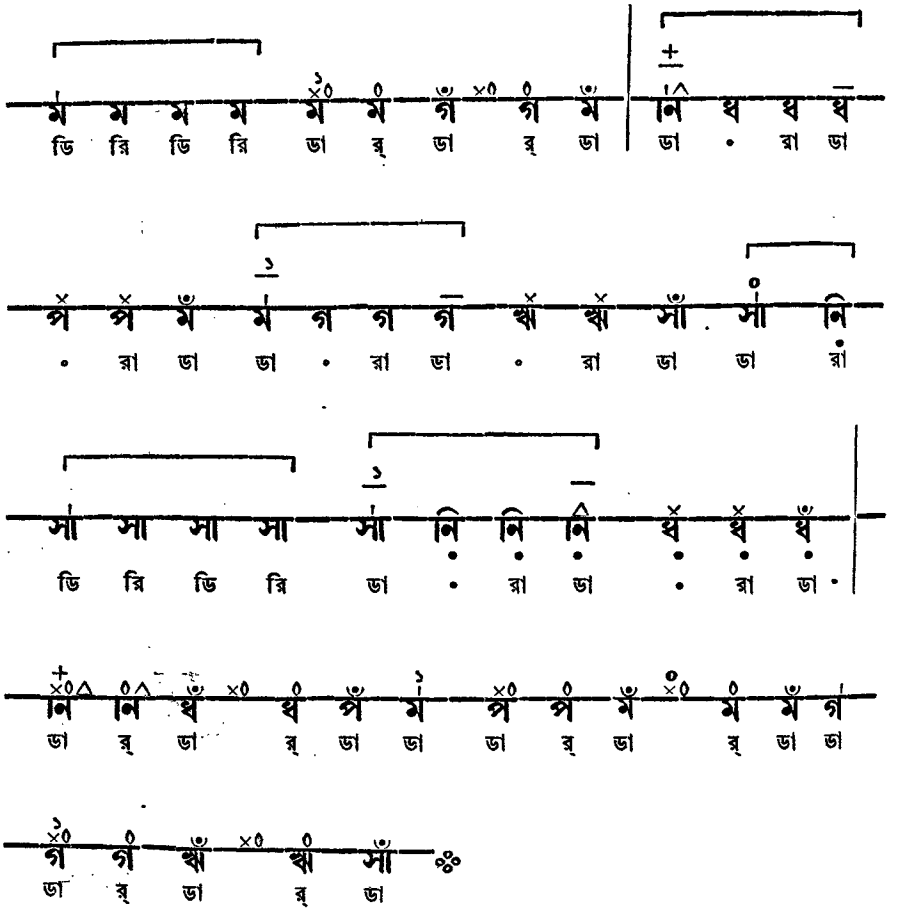
ম ম ম ম ম ম গঁ গ ম | নি ধ ধ ধ
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা | ডা • রা ডা
প প মঁ ম গ গ গ ঋ ঋ সাঁ সা নি
• রা ডা ডা • রা ডা • রা ডা ডা রা
সা সা সা সা সা নি নি নি ধ ধ ধঁ |
ডি রি ডি রি ডা • রা ডা • রা ডা •
নি নি ধ ধ পঁ ম প প মঁ ম মঁ গ
ডা র্ ডা র্ ডা ডা ডা র্ ডা র্ ডা ডা
গ গ ঋ ঋ সাঁ
ডা র্ ডা র্ ডা

দশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

ত্বরিতগতিচ্ছন্দসা।

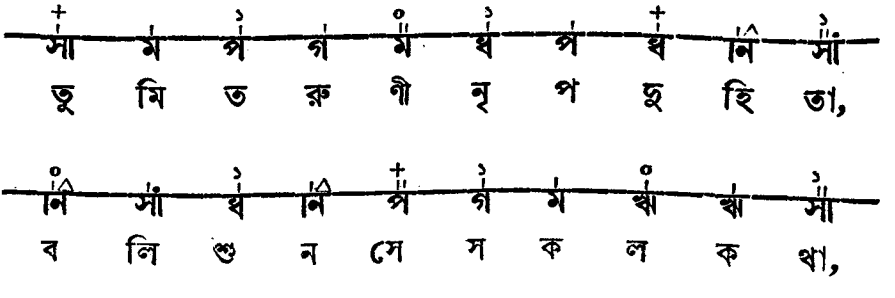

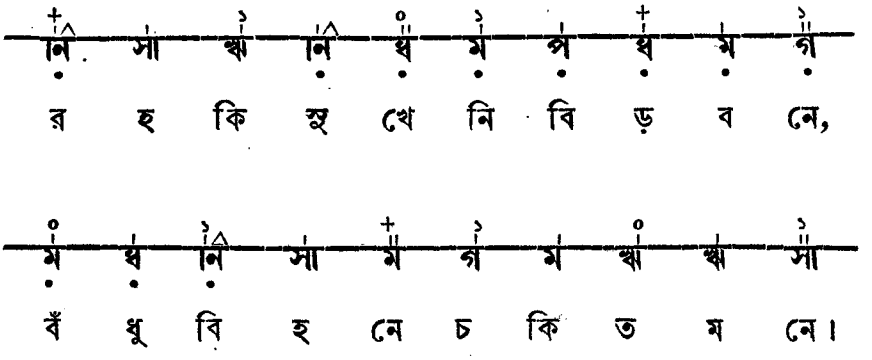

(১২০)

ভৈরব—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ নি)

আস্থায়ী।

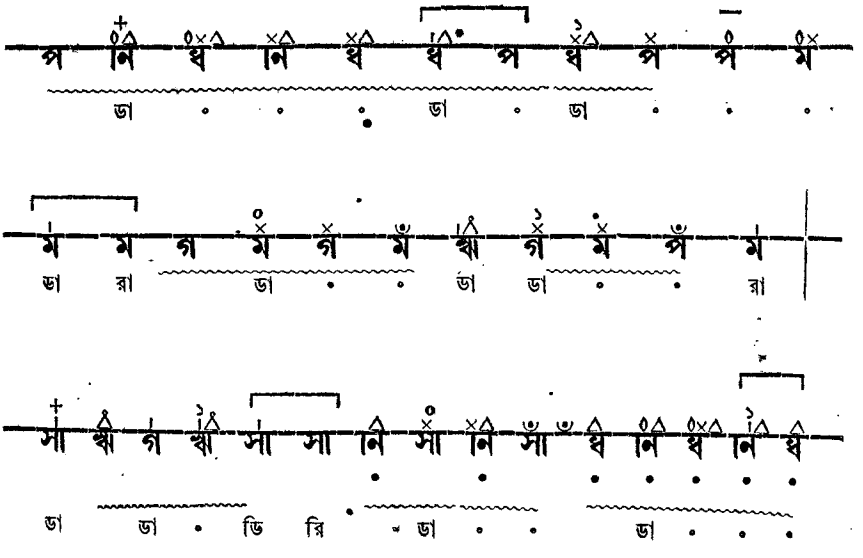

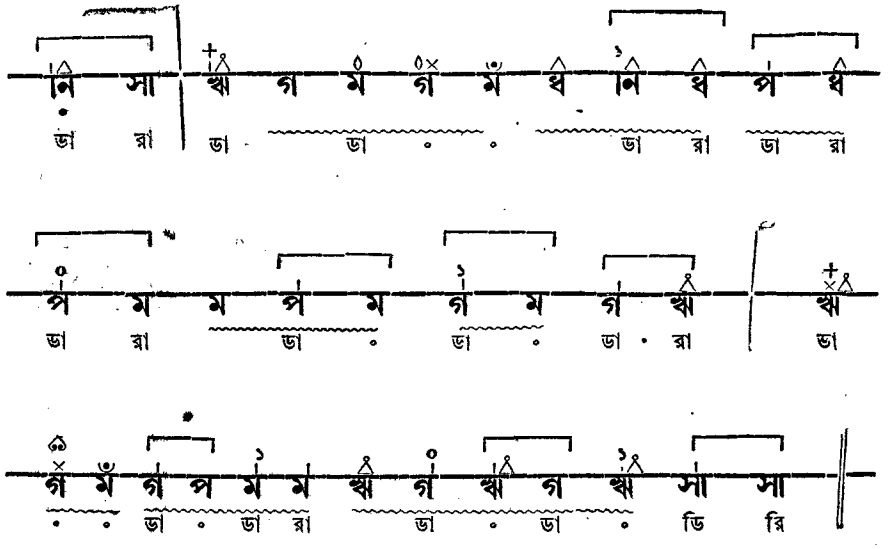
নি সা ঋ গ ম গ ম ধ নি ধ প ধ
ডা রা ডা ডা ডা রা ডা রা
প ম ম প ম গ ম গ ঋ ঋ
ডা রা ডা ডা ডা রা ডা
গ মঁ গ প ম ম ঋ গ ঋ গ ঋ সা সা
ডা ডা রা ডা ডা ডি রি

অন্তরা।

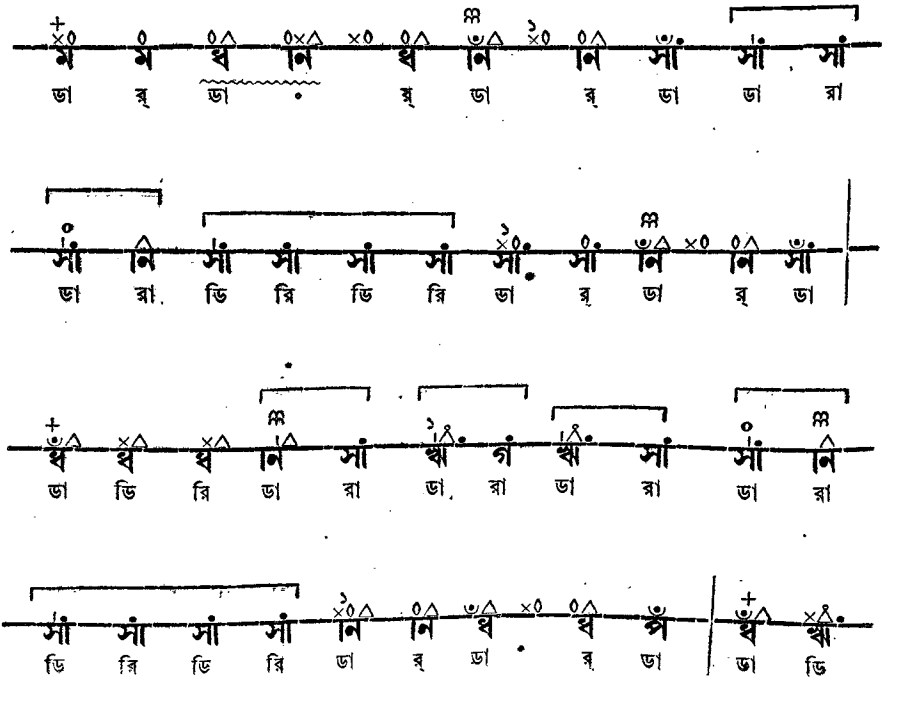
ম ম ধ নি ধ নি নি সাঁ সাঁ সাঁ
ডা র্ ডা য্ ডা র্ ডা ডা রা
সাঁ নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি নি সাঁ
ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ধ ধ ধ নি সাঁ ঋ গ ঋ সাঁ সাঁ নি
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা
সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি নি ধ ধ পঁ ধ ঋ
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা ডা ডি

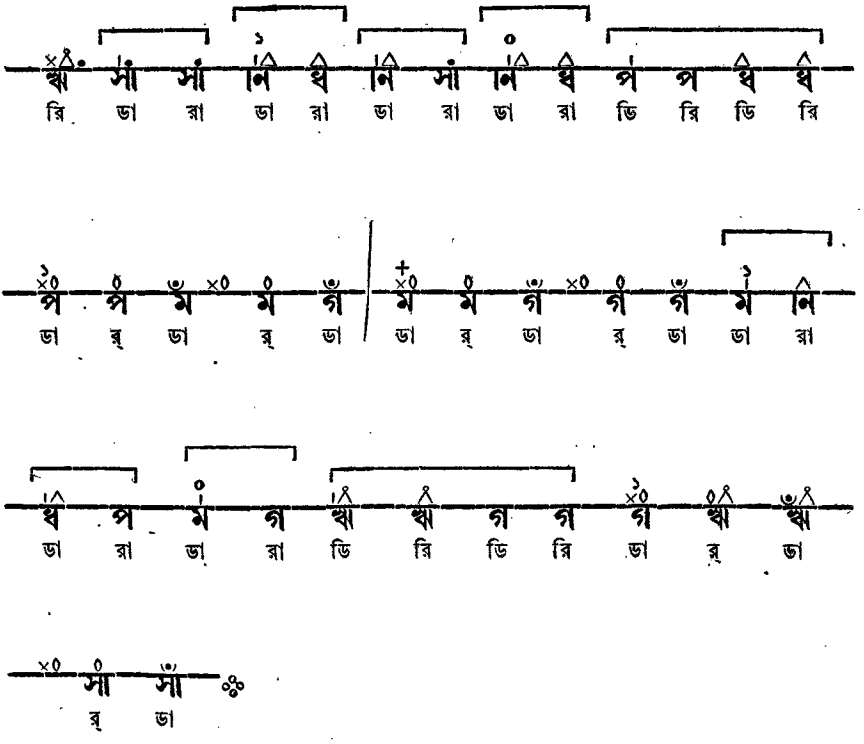

একাদশাক্ষরা বৃত্তি।

উপেন্দ্রবজ্রাচ্ছন্দসা।

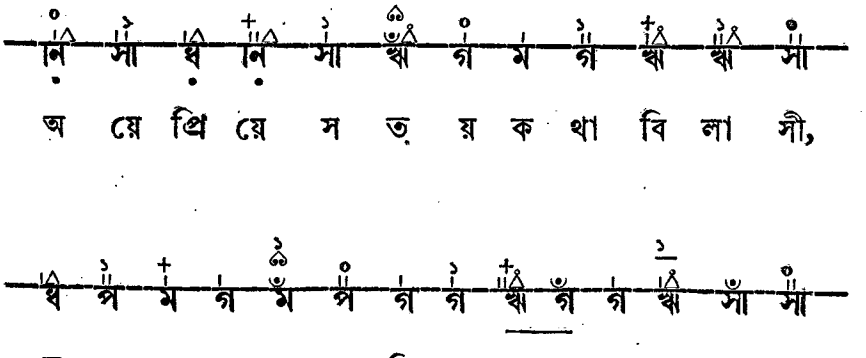

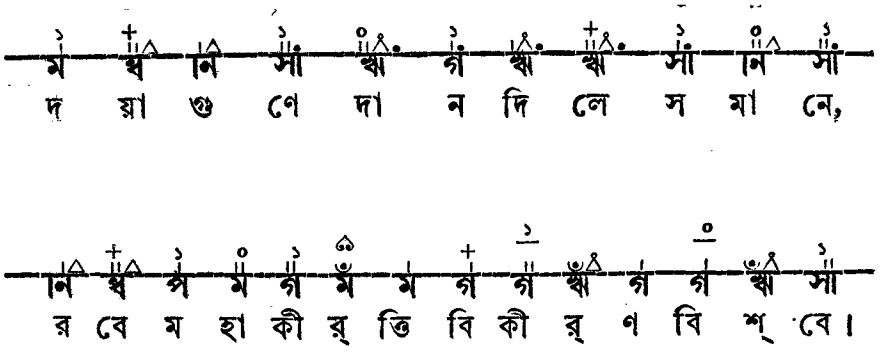

(১২১)

লুম্‌ঝিঝিট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

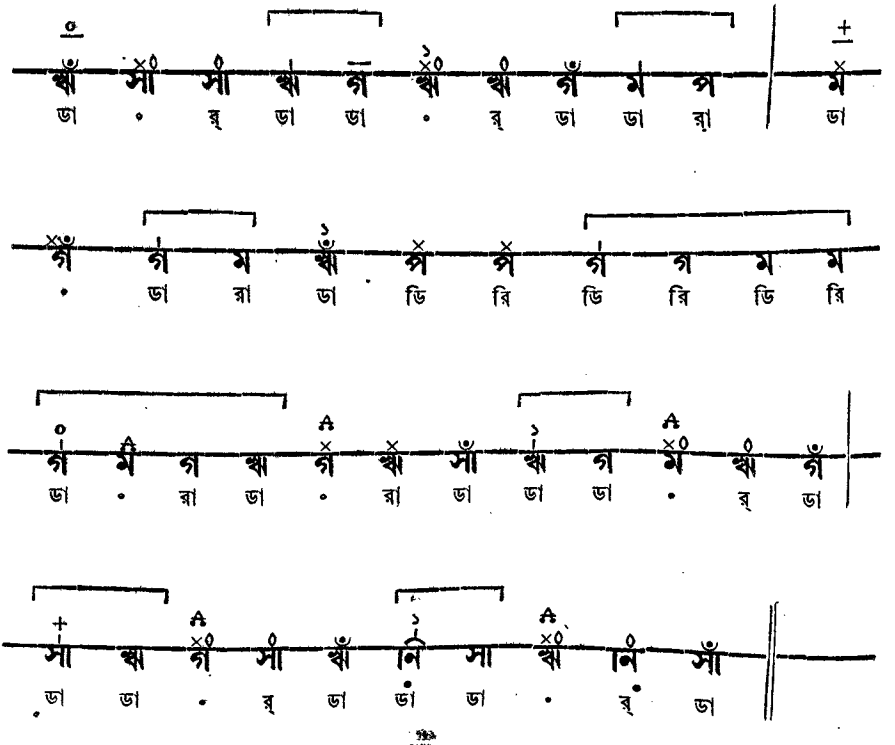

বিস্তার।

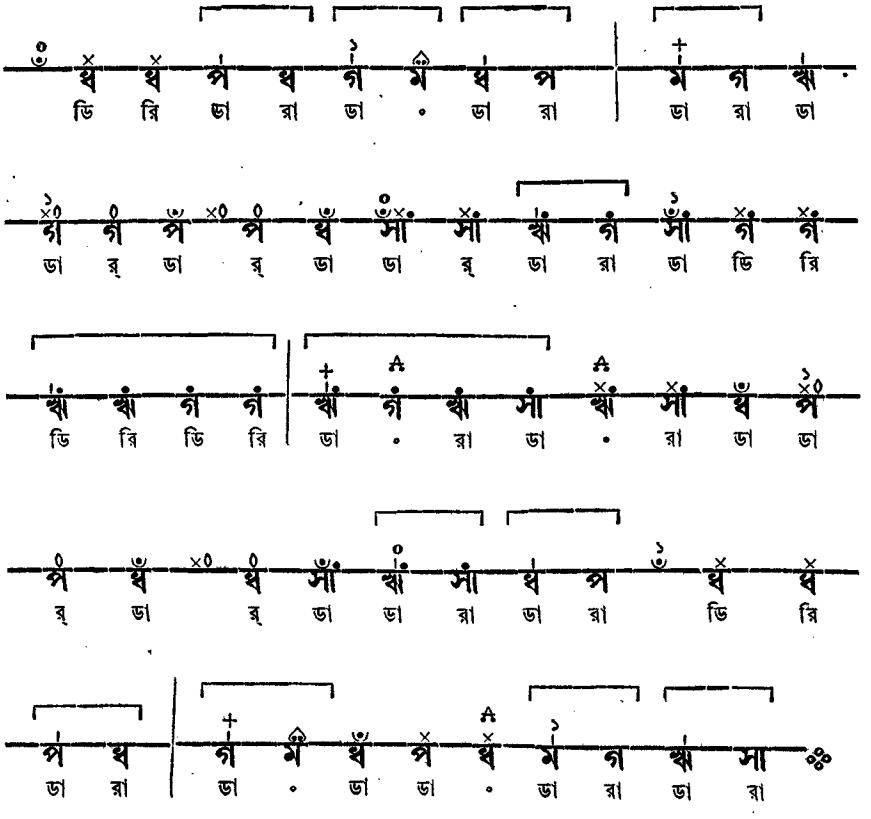

একাদশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

ইন্দ্রবজ্রাচ্ছন্দসা।

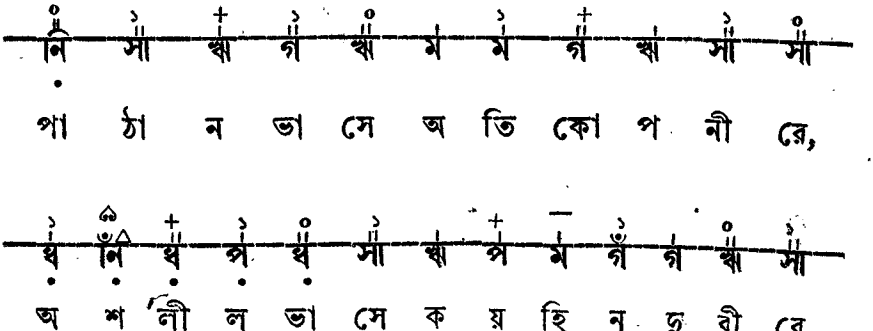

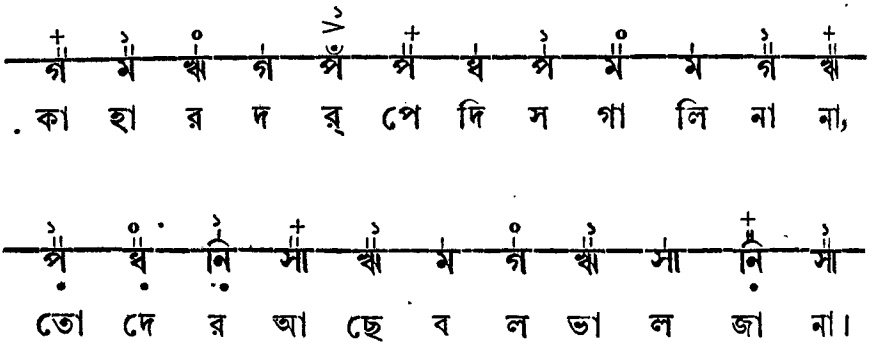

(১২২)

ছায়ানট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

প্রস্তারিকা।

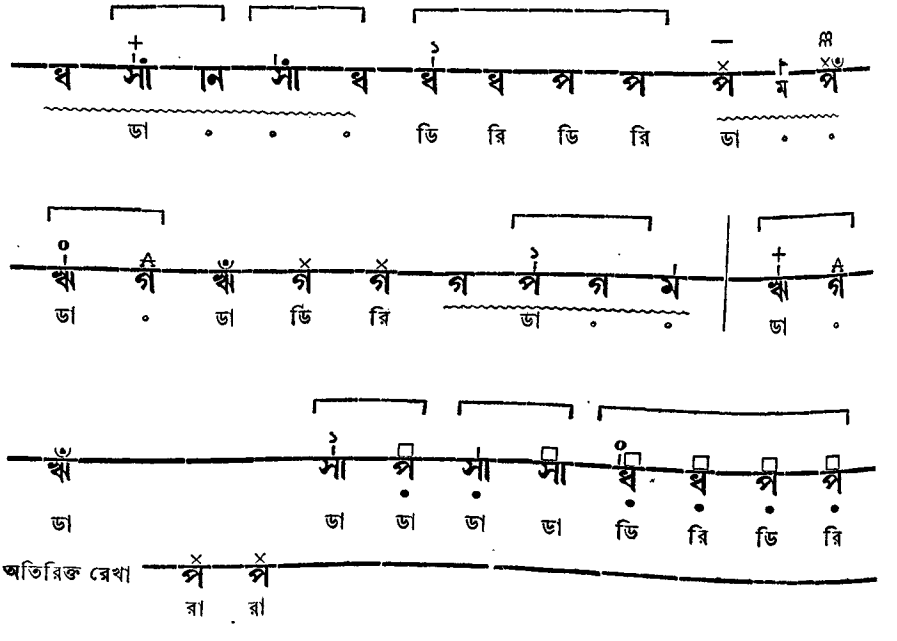

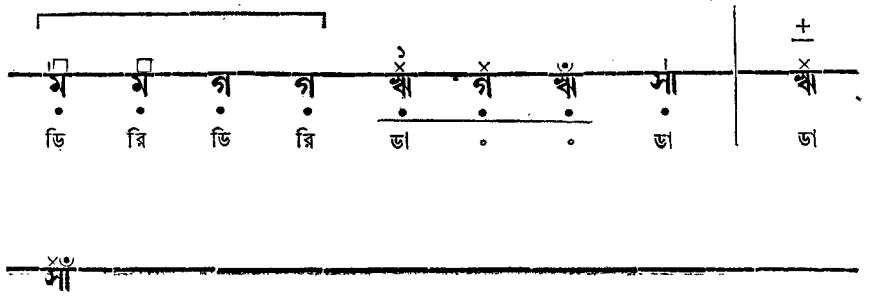
ড়ি রি ডি রি ডা ডা ডা

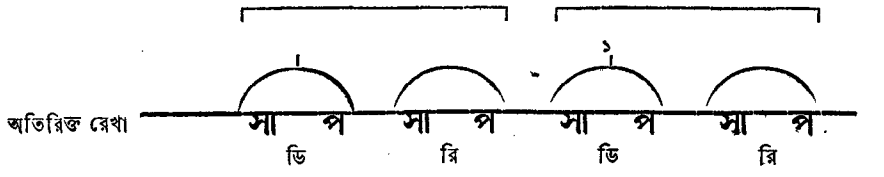
অতিরিক্ত রেখা
ডি রি ডি রি

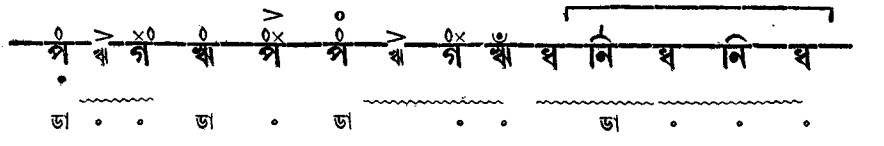
ডা ডা ডা ডা

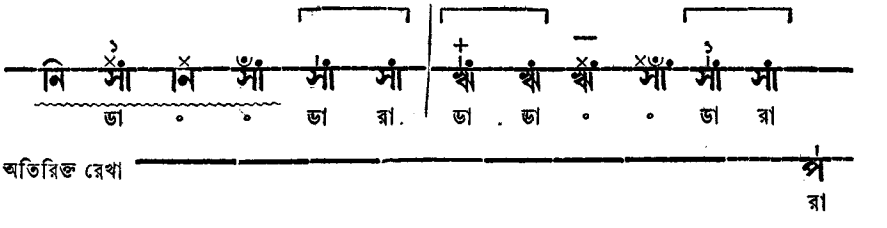
ডা ডা রা. ডা ডা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
রা

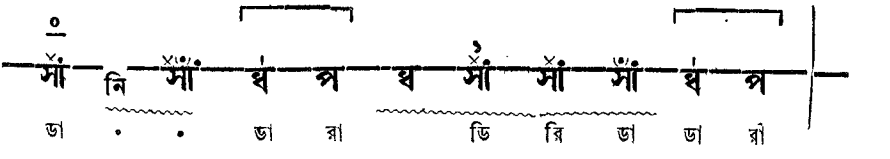
ডা ডা রা ডি রি ডা ডা রা

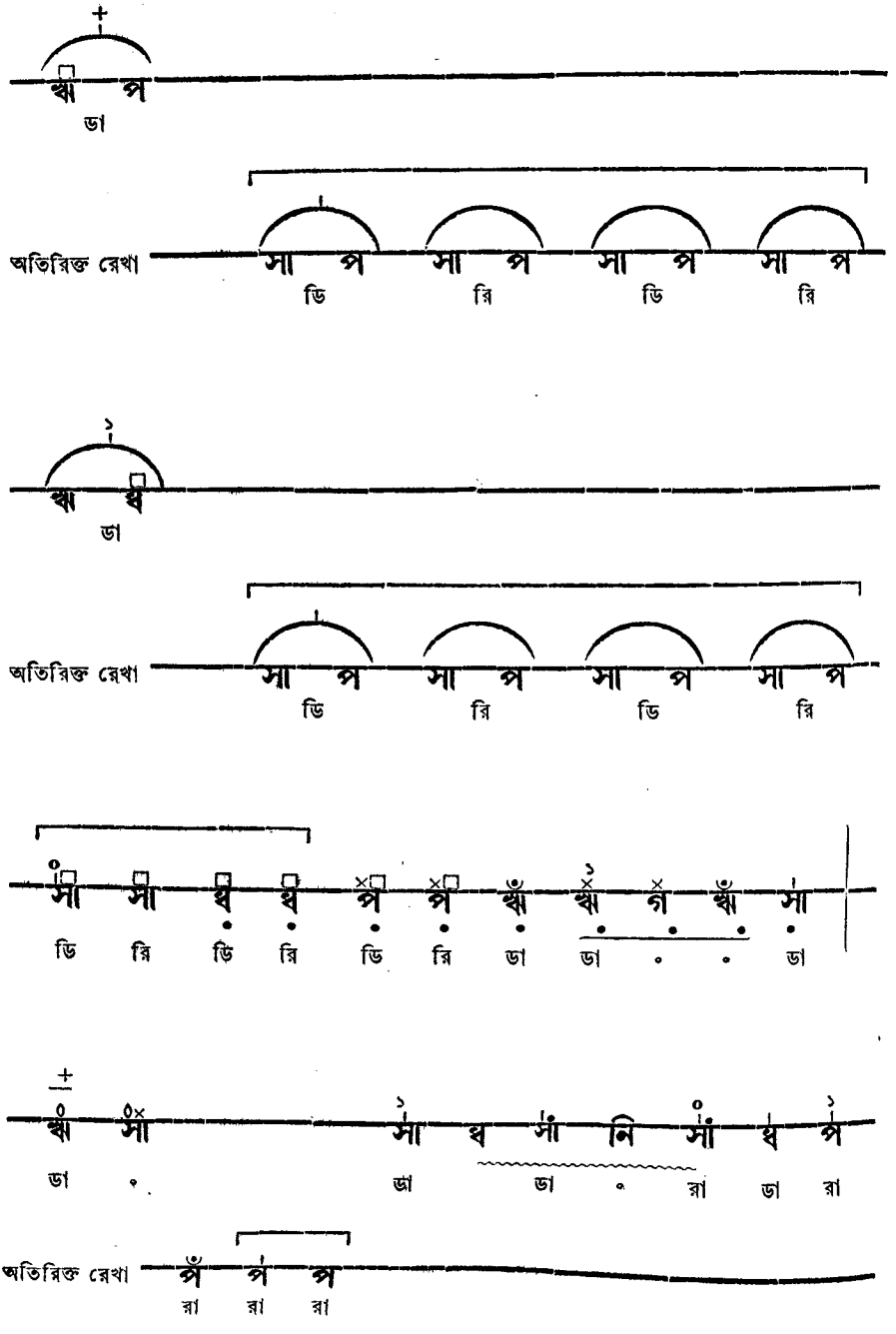
ঋা প
ডা
অতিরিক্ত রেখা
সা প সা প সা প সা প
ডি রি ডি রি
ঋা ধ
ডা
অতিরিক্ত রেখা
সা প সা প সা প সা প
ডি রি ডি রি
সা সা ধ ধ প প ঋঁ ঋ গ ঋঁ সা
ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডা ডা
ঋা সা সা ধ সাঁ নি সাঁ ধ প
ডা ডা ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
ঋঁ প প
রা রা রা

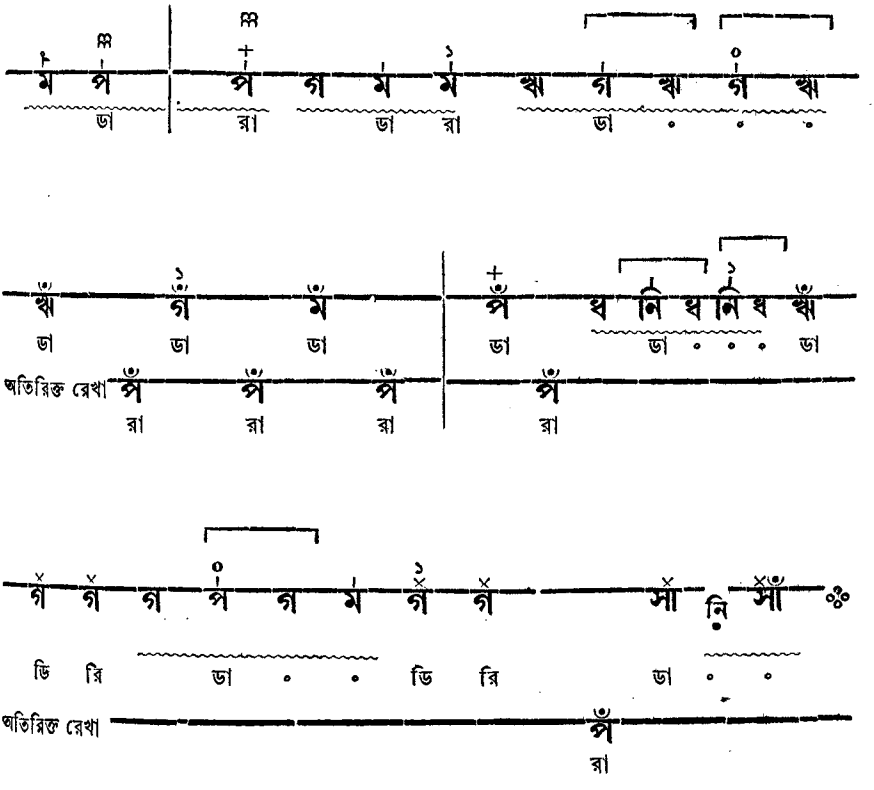

দ্বাদশাক্ষরা বৃত্তি।

তোটকচ্ছন্দসা।

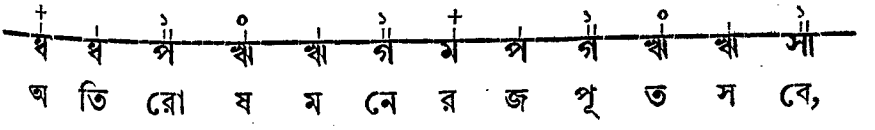

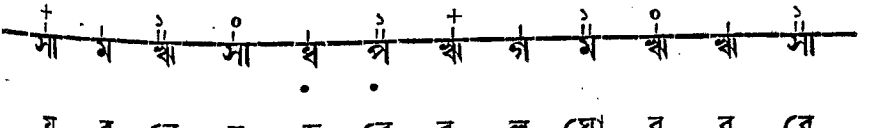

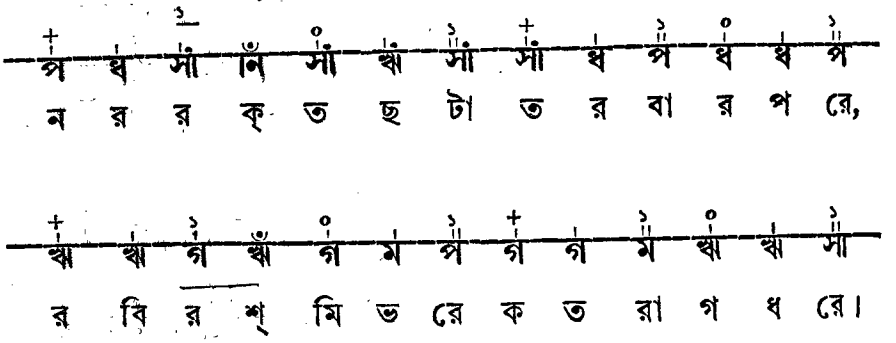

(১২৩)

ছায়ানট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

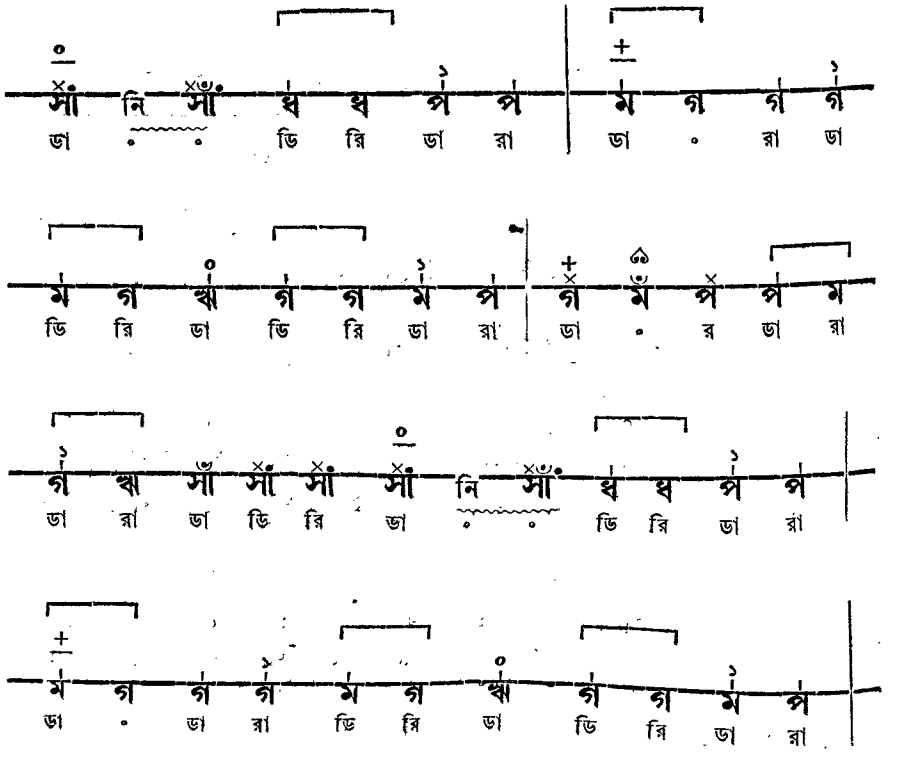

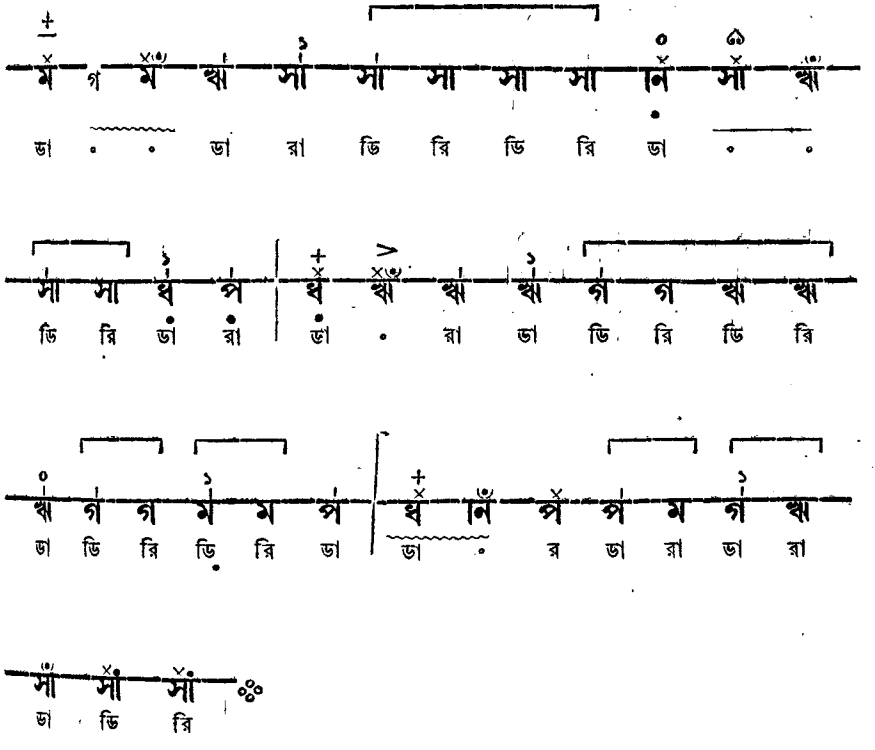

দ্বাদশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

ভুজঙ্গপ্রয়াতচ্ছন্দসা।

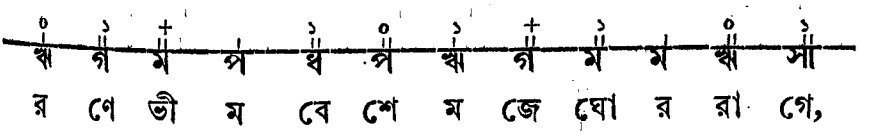

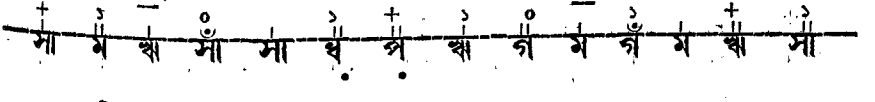

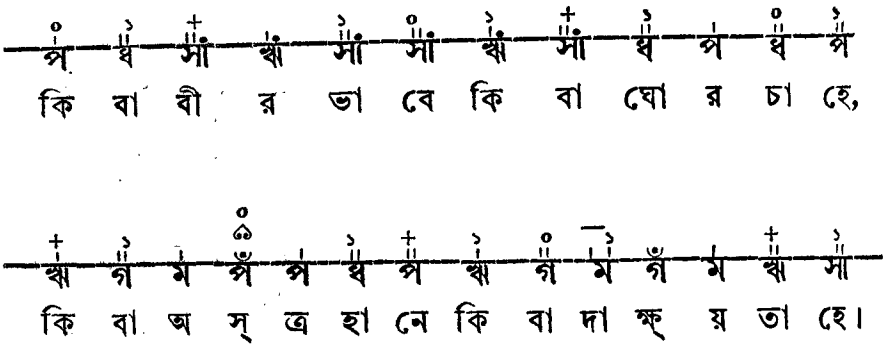

(১২৪)

বৃহন্নট অথবা নট্‌নারায়ণ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

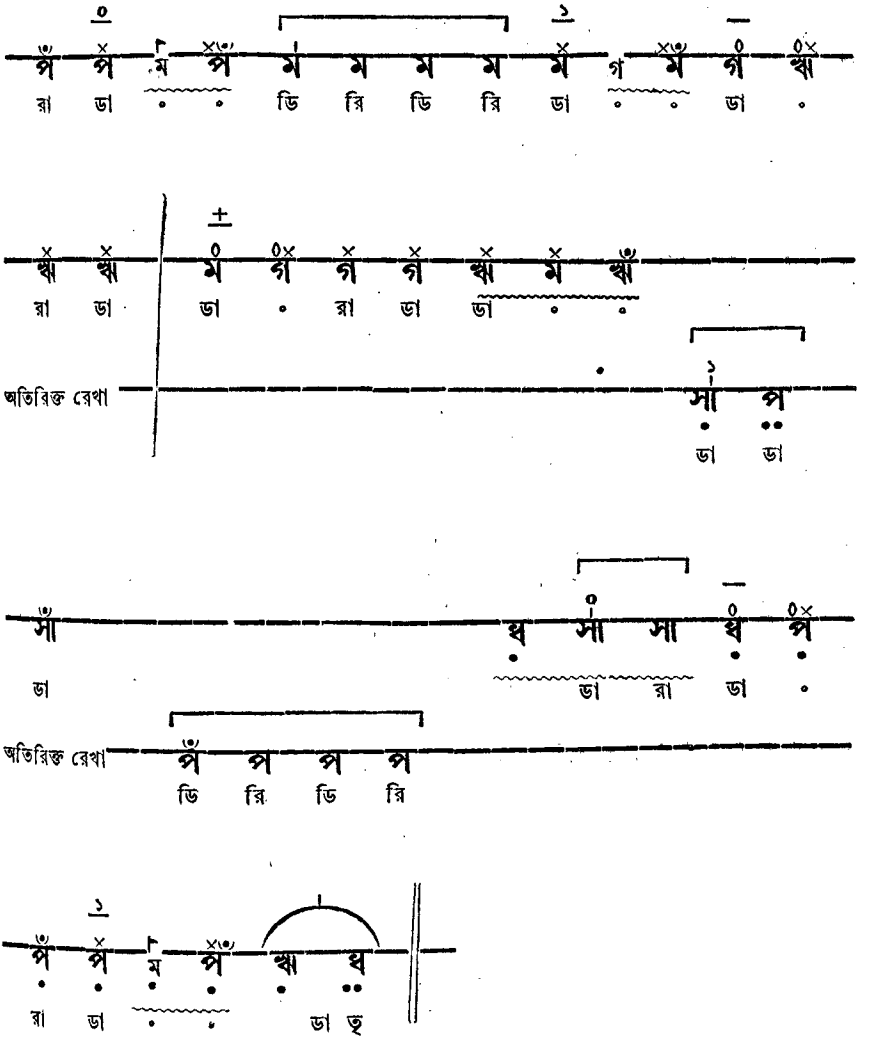
রা ডা ডি রি ডি রি ডা ডা
রা ডা ডা রা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
ডা ডা
ডা ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা
ডি রি ডি রি
রা ডা ডা তৃ

অন্তরা।

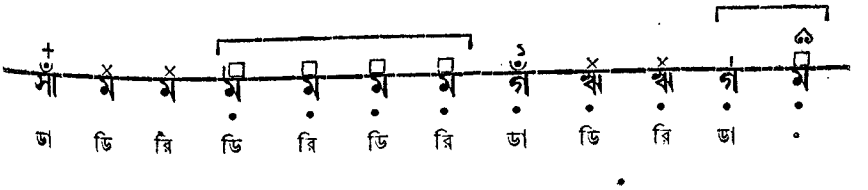
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডা

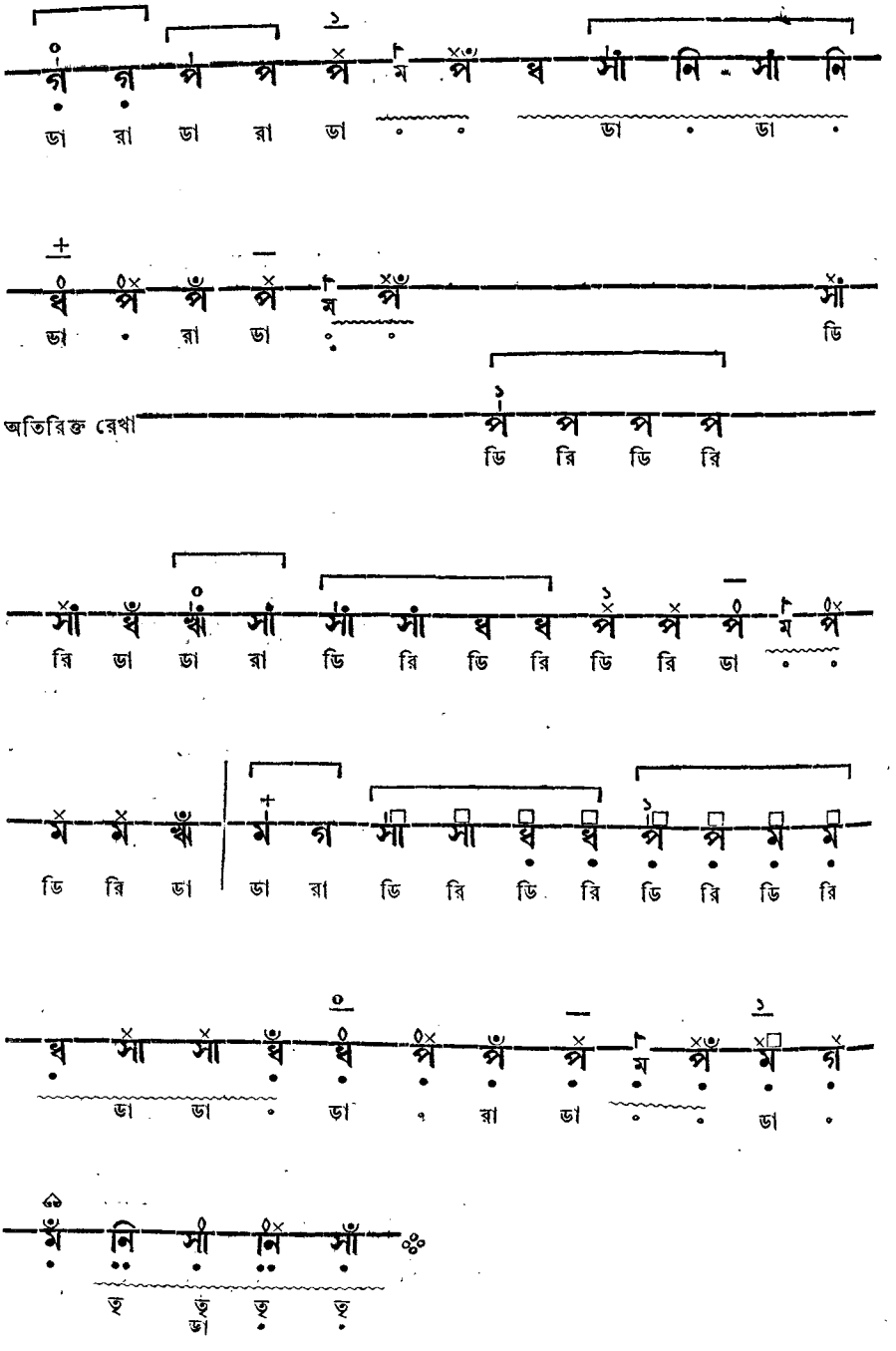
অতিরিক্ত রেখা

দ্বাদশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

কুসুমবিচিত্রাচ্ছন্দসা।

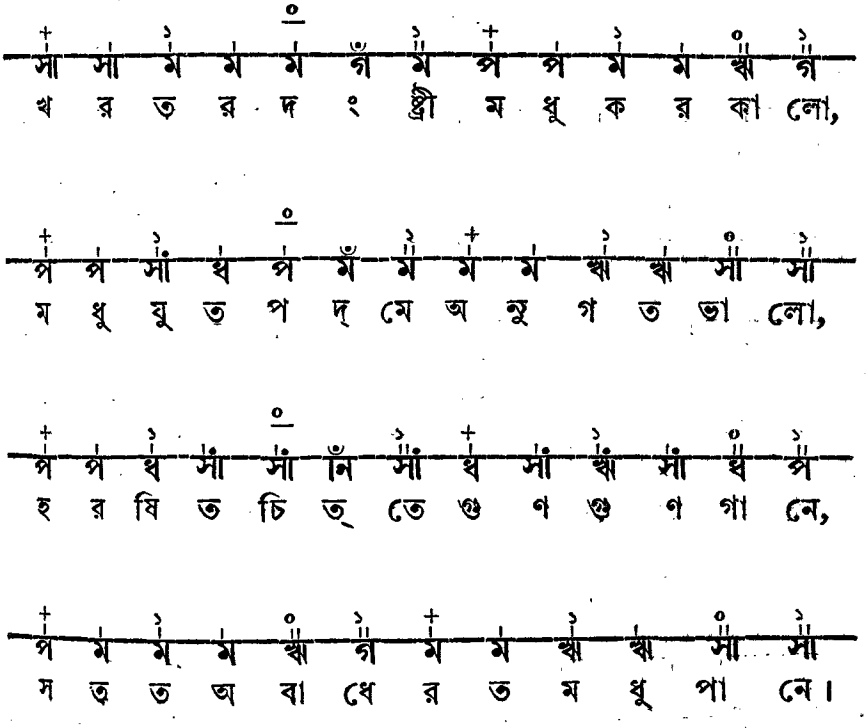
সা সা ম ম ম গঁ ম প প ম ম ঋ গ
খ র ত র দ ং ষ্ট্রী ম ধু ক র কা লো,
প প সাঁ ধ প মঁ ম ম ম ম ঋ ঋ সাঁ সাঁ
ম ধু যু ত প দ্ মে অ নু গ ত ভা লো,
প প ধ সাঁ সাঁ নঁ সাঁ ধ সাঁ ঋ সাঁ ধ প
হ র ষি ত চি ত্ তে গু ণ গু ণ গা নে,
প ম ম ম ঋ গ ম ম ঋ ঋ সাঁ সাঁ
স ত্ত ত অ বা ধে র ত ম ধু পা নে।

(১২৫)

সুরট—সম্পূর্ণ।

সুরফাক্তা।

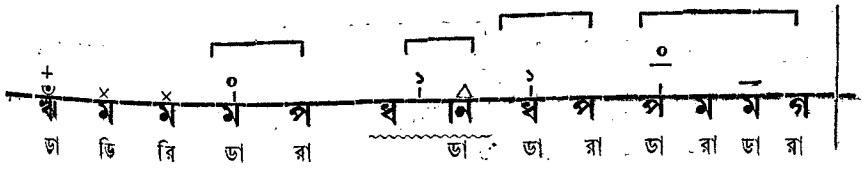

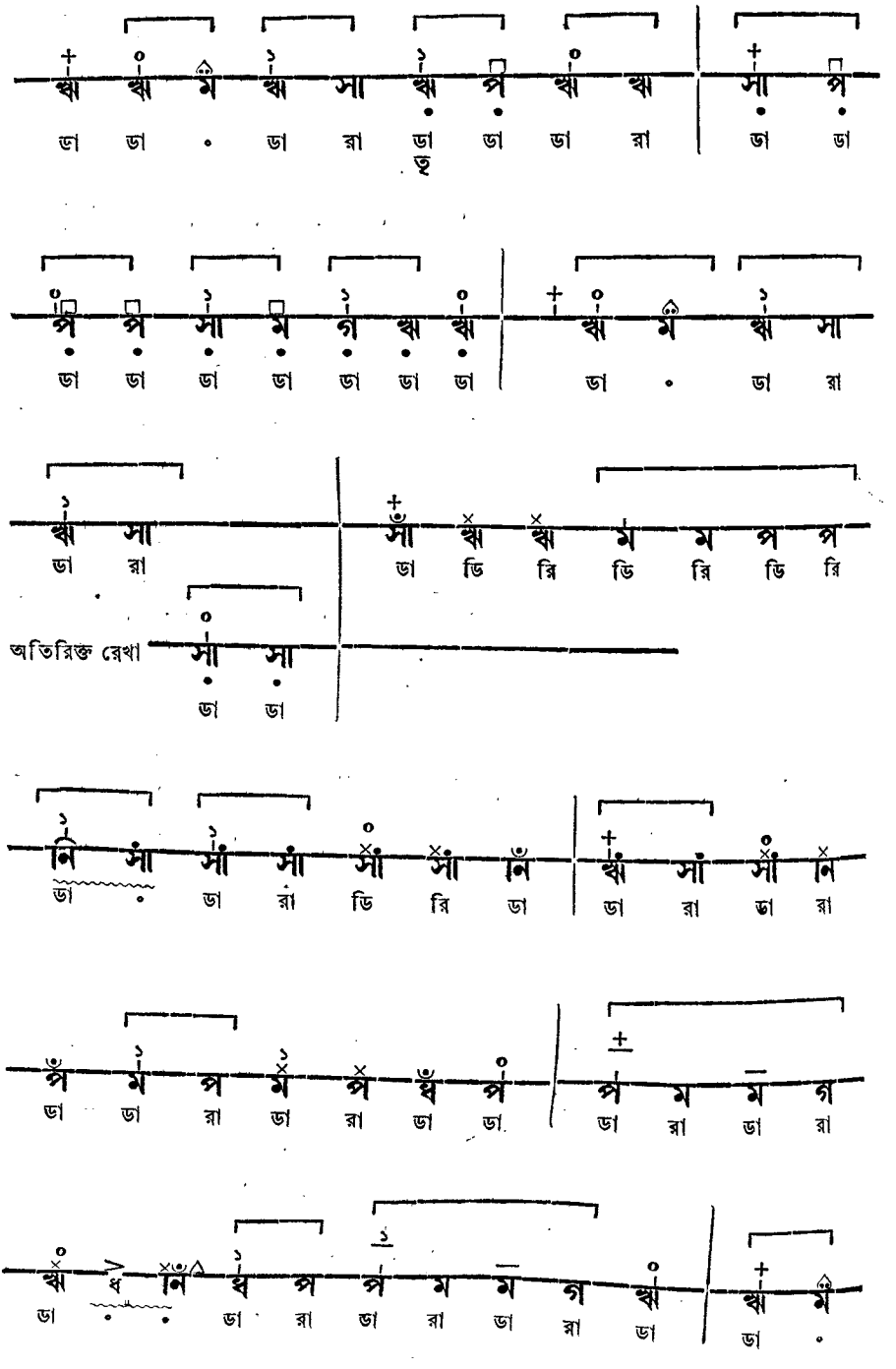
ঋ ঋ ম ঋ সা ঋ প ঋ ঋ | সা প
ডা ডা • ডা রা ডা ডা ডা রা | ডা ডা
তূ
প প সা ম গ ঋ ঋ | ঋ ম ঋ সা
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা | ডা • ডা রা
ঋ সা | সাঁ ঋঁ ঋঁ ম ম প প
ডা রা | ডা ডি রি ডি রি ডি রি
অতিরিক্ত রেখা সা সা
ডা ডা
নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নঁ | ঋঁ সাঁ সাঁ নঁ
ডা • ডা রা ডি রি ডা | ডা রা ডা রা
পঁ ম প ম পঁ ধঁ প | প ম ম গ
ডা ডা রা ডা রা ডা ডা | ডা রা ডা রা
ঋঁ ধ নঁ ধ প প ম ম গ ঋ | ঋ ম
ডা • • ডা রা ডা রা ডা রা ডা | ডা •

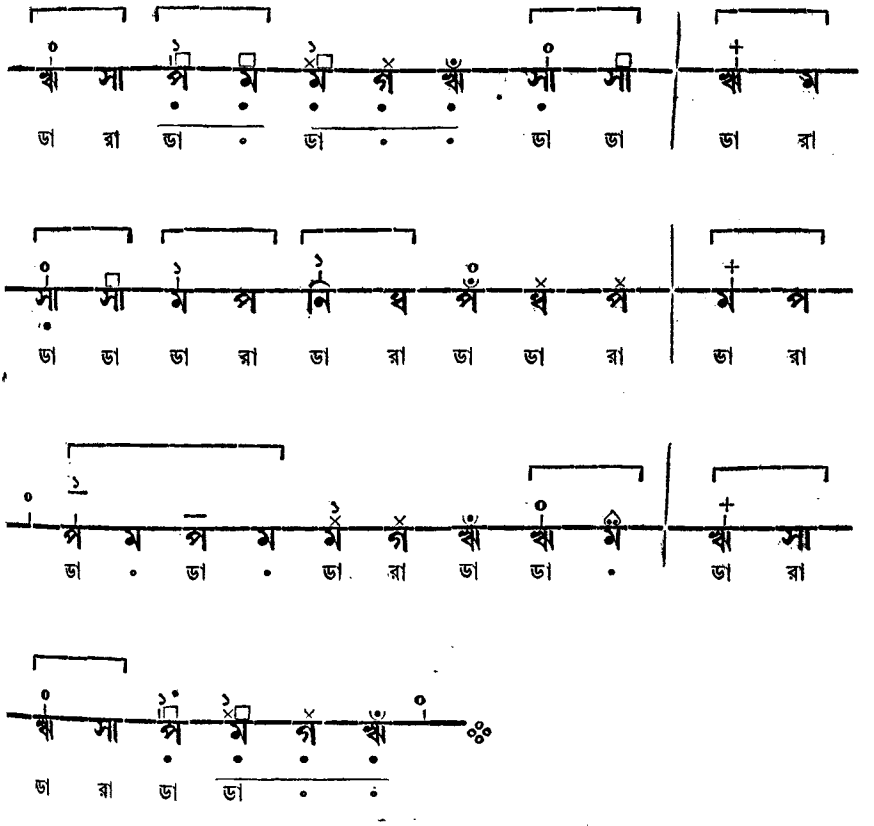

ত্রয়োদশাক্ষরা বৃত্তি।

চণ্ডীচ্ছন্দসা।

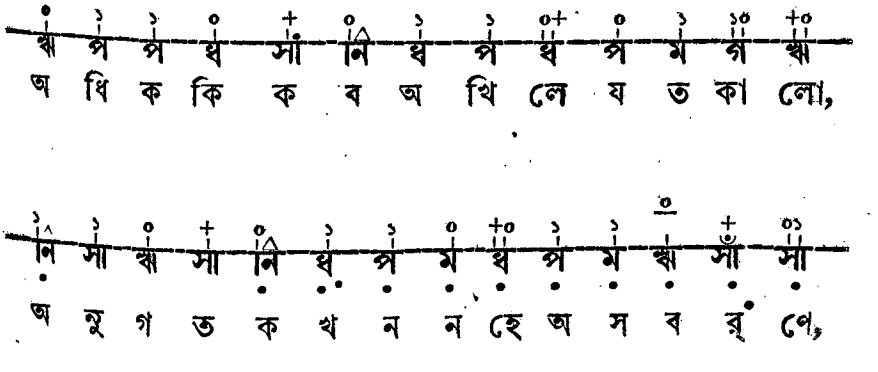

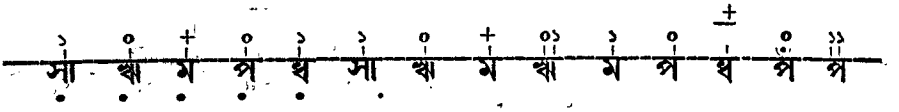

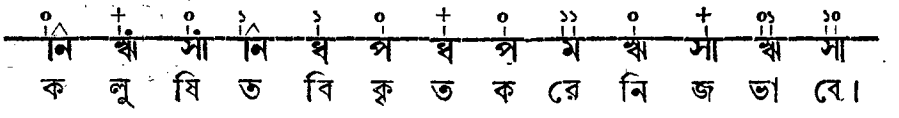

(১২৬)

মূলতানী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ম ধ)

আস্থায়ী।

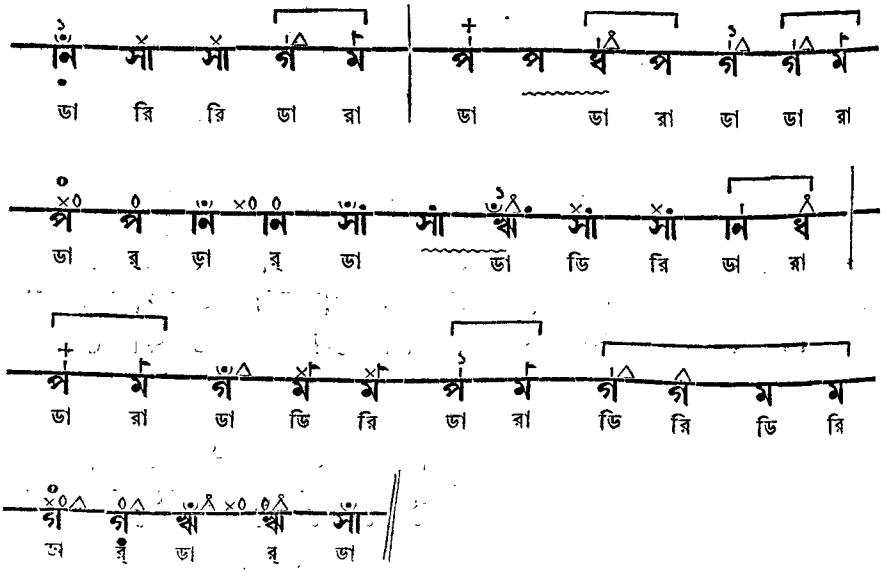

অন্তরা।

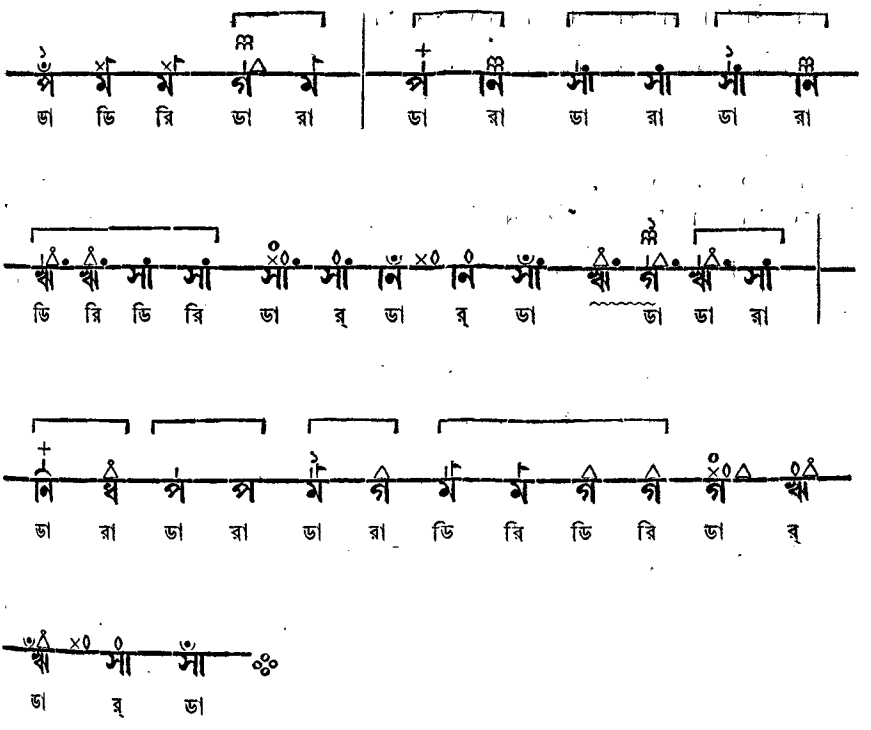

দ্বাদশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

বসন্ততিলকচ্ছন্দসা।

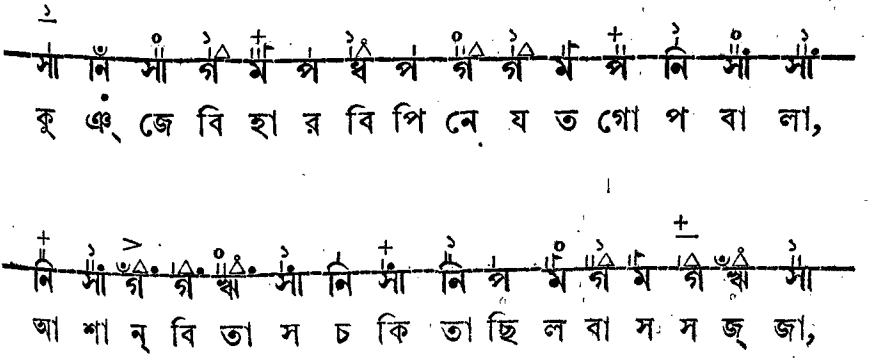

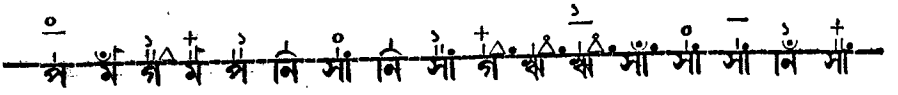

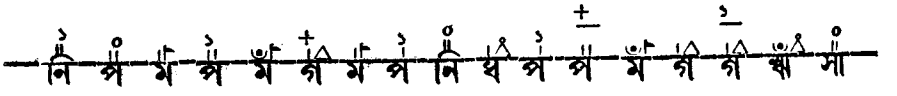

(১২৭)

ঝিঁঝিট-খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

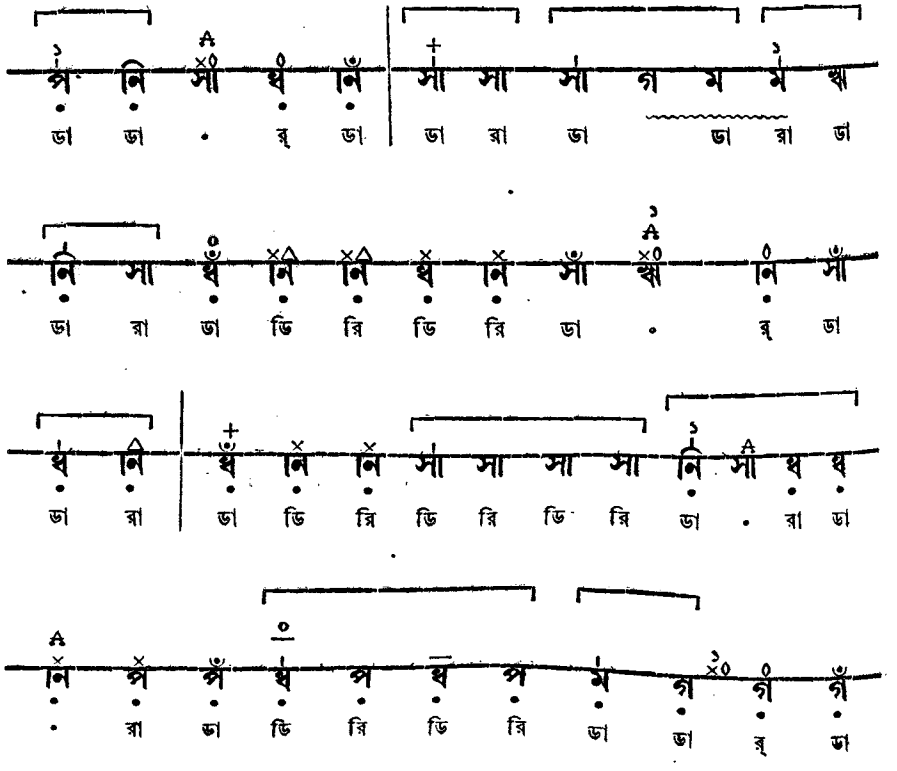

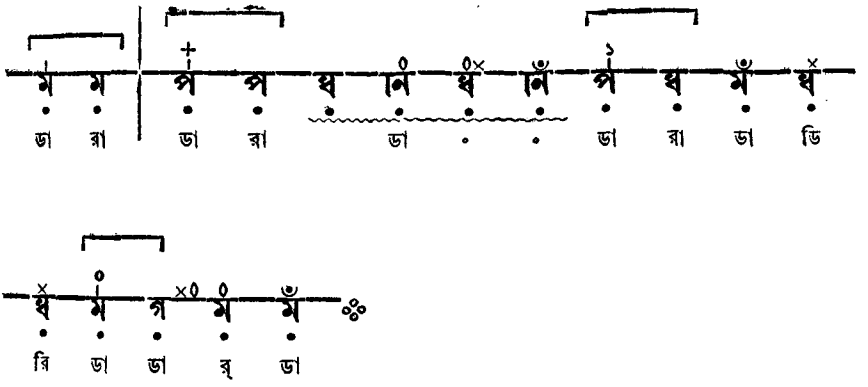

চতুর্দ্দশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

প্রহরণকলিকাচ্ছন্দসা।

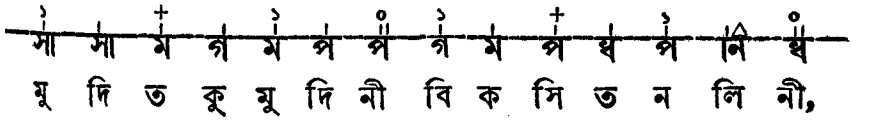

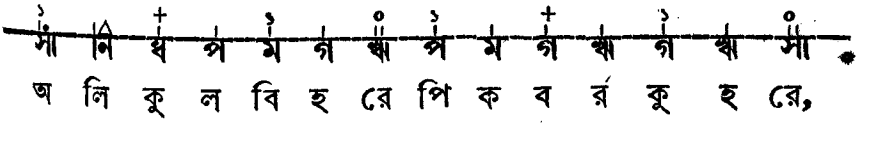

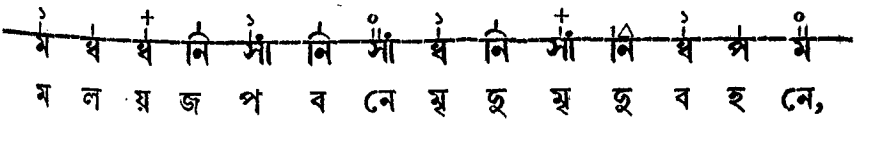

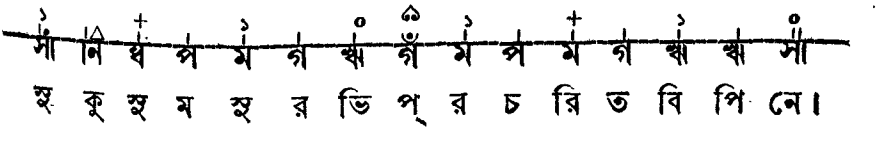

(১২৮)

ভীমপলশ্রী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ—নি)

আস্থায়ী।

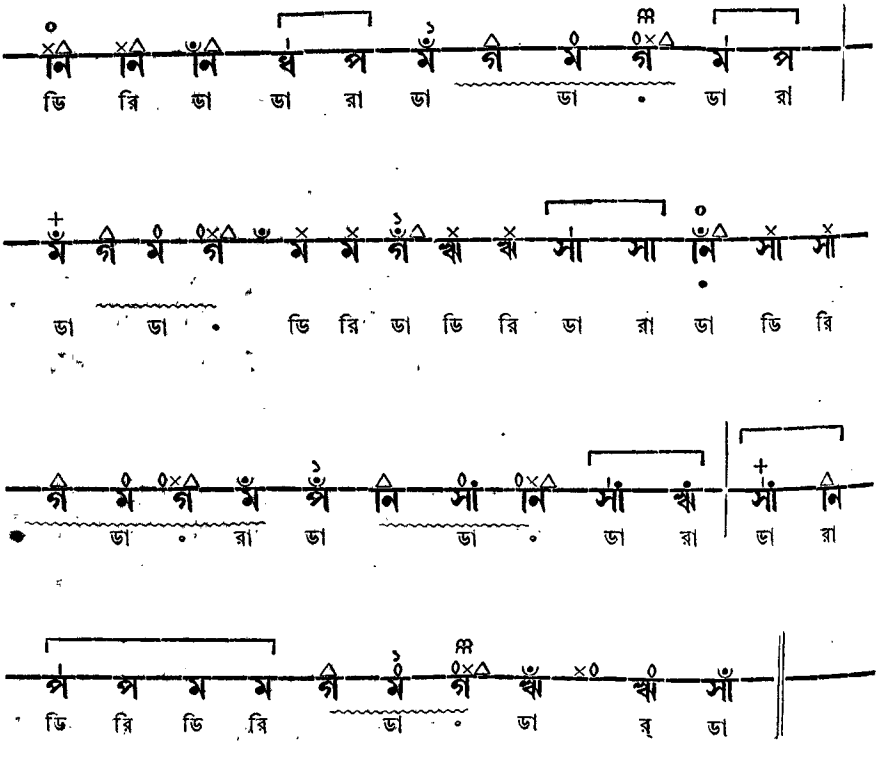

অন্তরা।

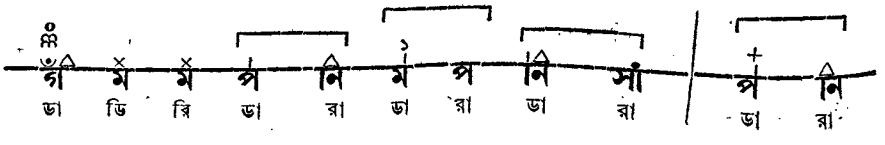

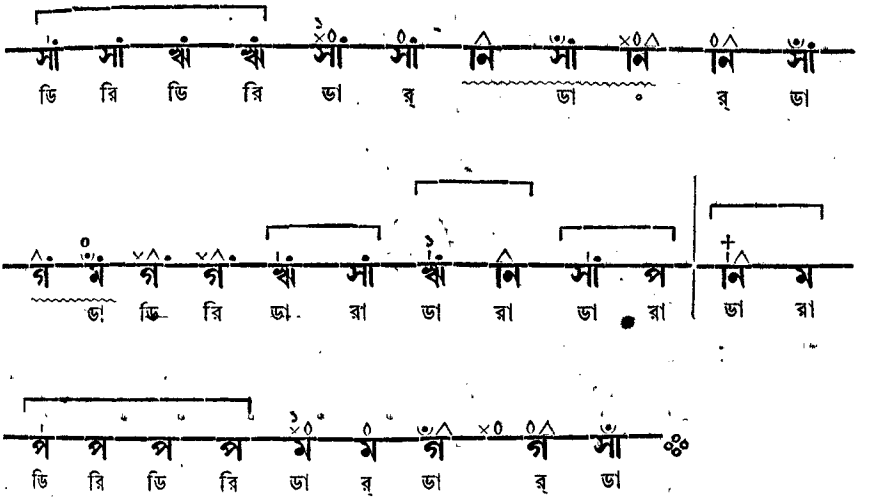

পঞ্চদশাক্ষরা বৃত্তি।

শশিকলাচ্ছন্দসা।

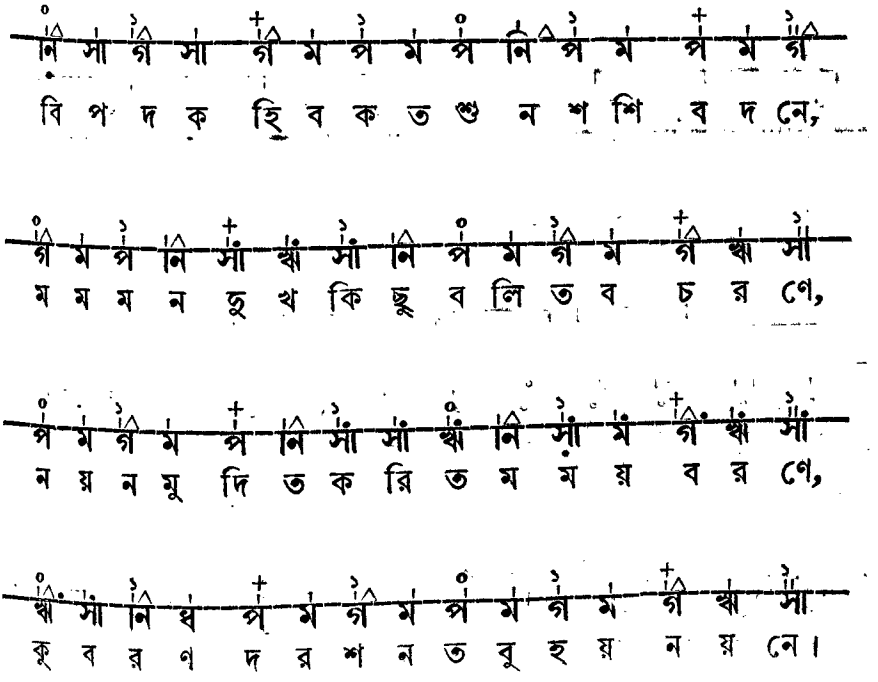
নি সা গং সা গং মং মং মং নি পং মং পং মং গং
বি প দ ক হি ব ক ত শু ন শ শি ব দ নে,
গং মং পং নি সাং ঋং সাং নি পং মং গং মং গং ঋং সাং
ম ম ম ন দু খ কি ছু ব লি ত ব চ র ণে,
পং মং গং মং পং নি সাং সাং ঋং নি সাং মং গং ঋং সাং
ন য় ন মু দি ত ক রি ত ম ম য় ব র ণে,
ঋং সাং নি ধ পং মং গং মং পং মং গং মং গং ঋং সাং
কু ব র ণ দ র শ ন ত বু হ য় ন য় নে।

(১২৯)

সুরট-খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

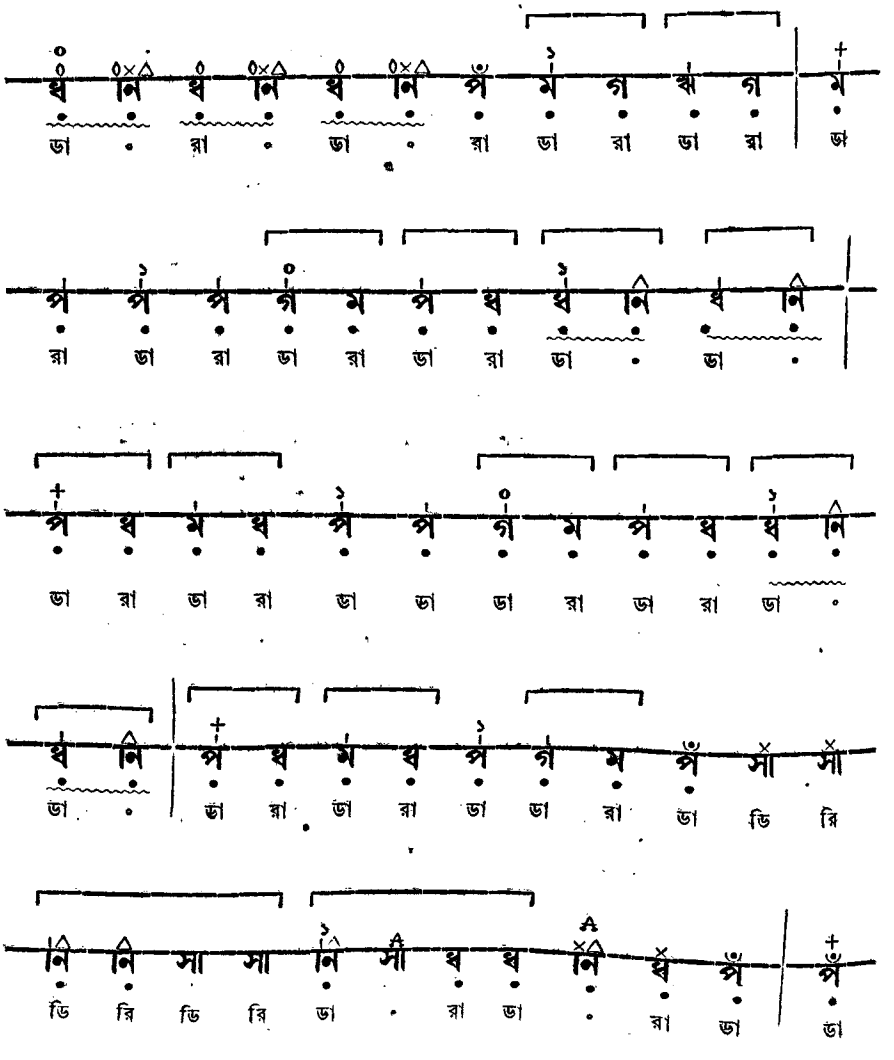
ধ নি ধ নি ধ নি পঁ ম গ ঋ গ | ম
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
প প প গ ম প ধ ধ নি ধ নি |
রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা
প ধ ম ধ প প গ ম প ধ ধ নি
ডা রা ডা রা ডা ডা ডা রা ডা রা ডা
ধ নি | প ধ ম ধ প গ ম পঁ সা সা
ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা ডি রি
নি নি সা সা নি সা ধ ধ নি ধ পঁ | পঁ
ডি রি ডি রি ডা রা ডা রা ডা

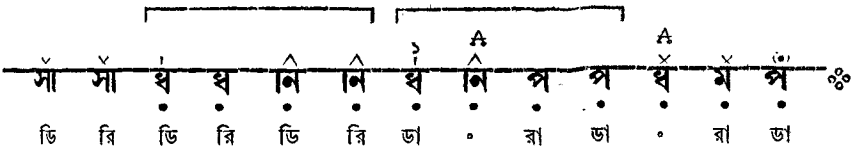

পঞ্চদশাক্ষরা বৃত্তি (প্রকারান্তর)।

তূণকচ্ছন্দসা।

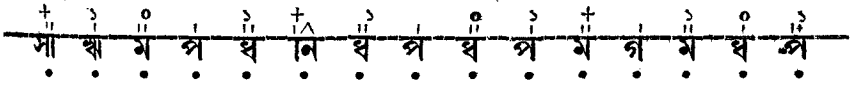

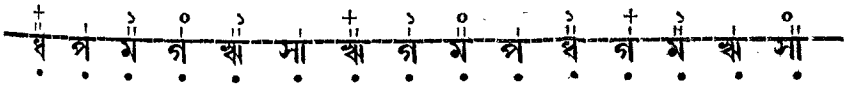

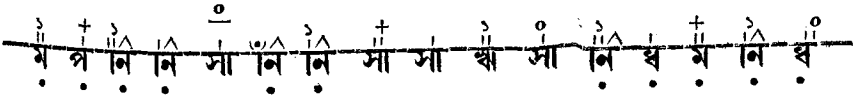

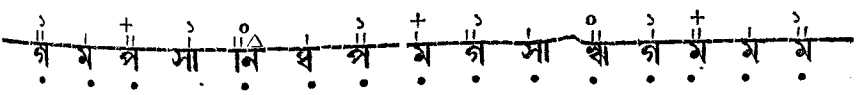

(১৩০)

বেলাবলী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

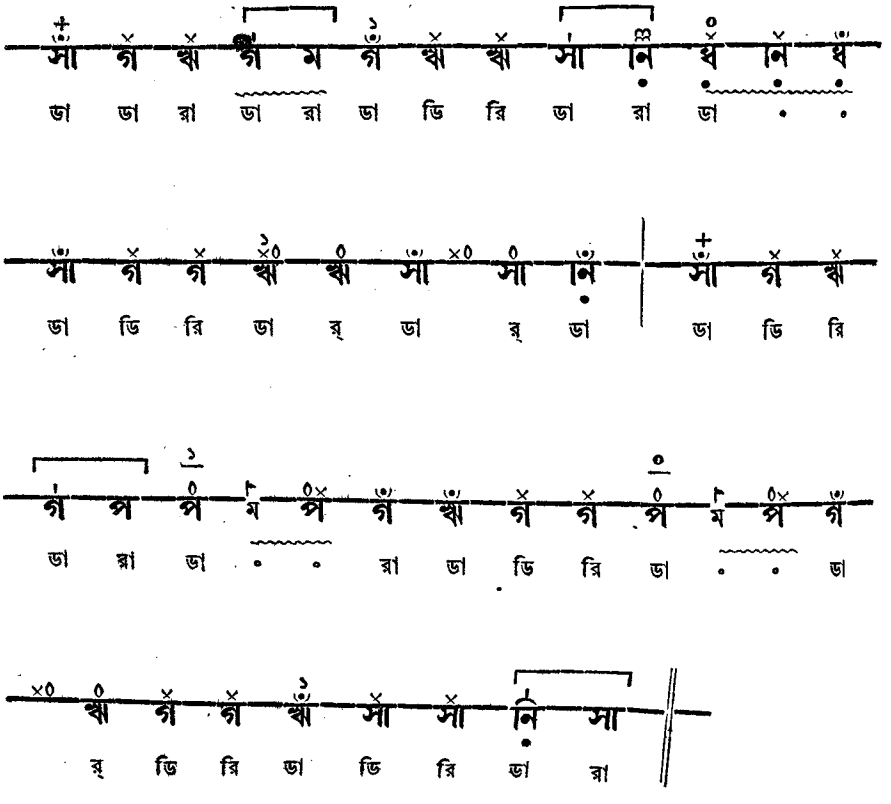

অন্তরা।

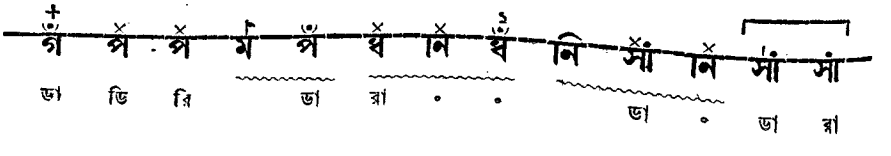

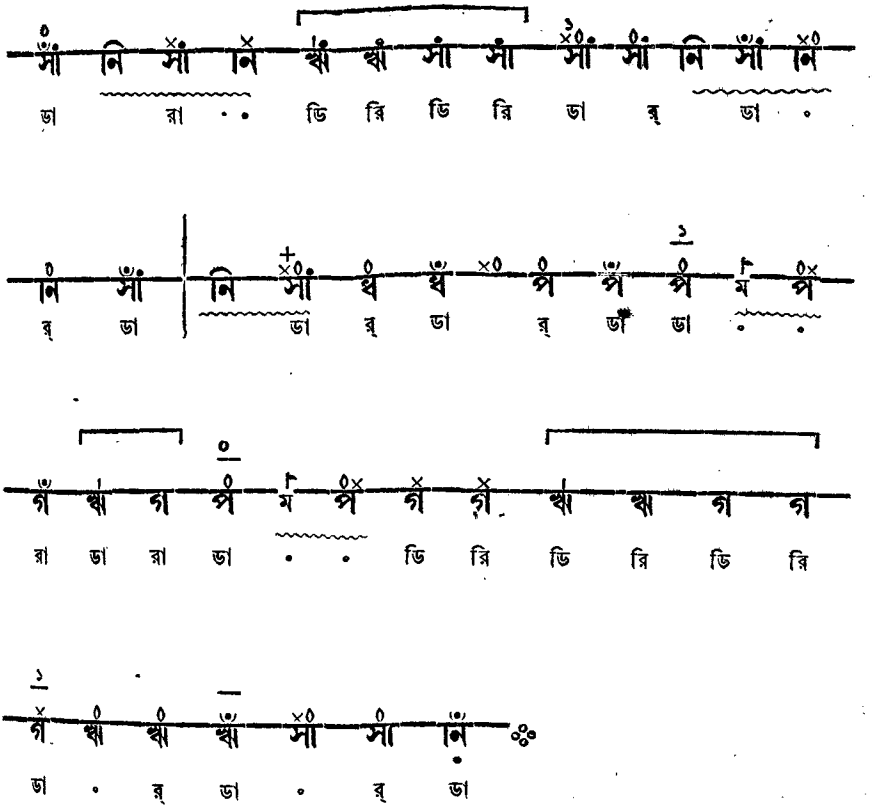

ষোড়শাক্ষরা বৃত্তি।

পঞ্চচামরচ্ছন্দসা।

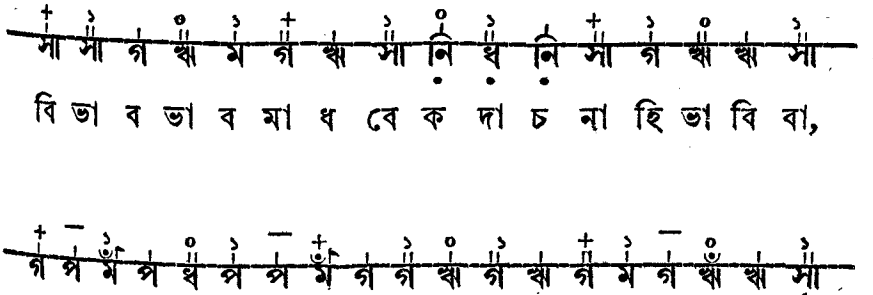

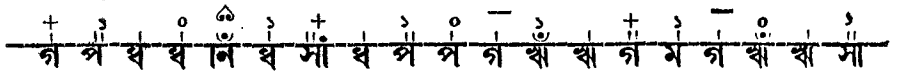

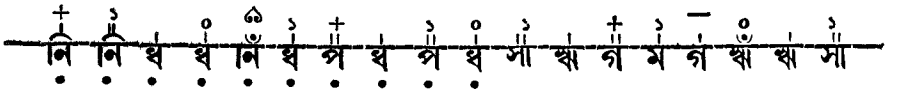

(১৩১)

পিলু—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ—ধ)

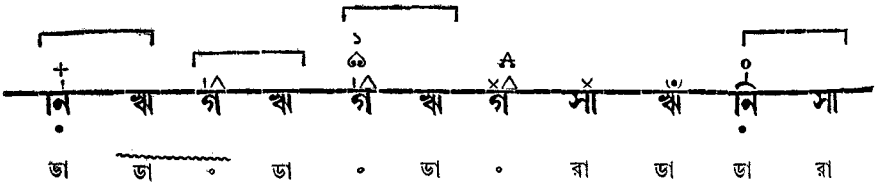

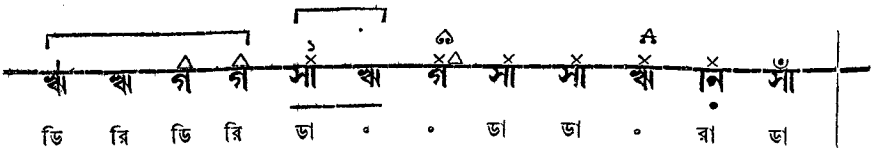

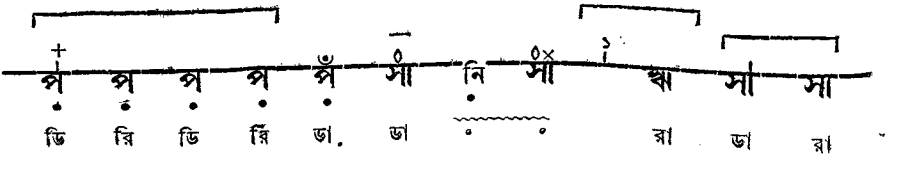

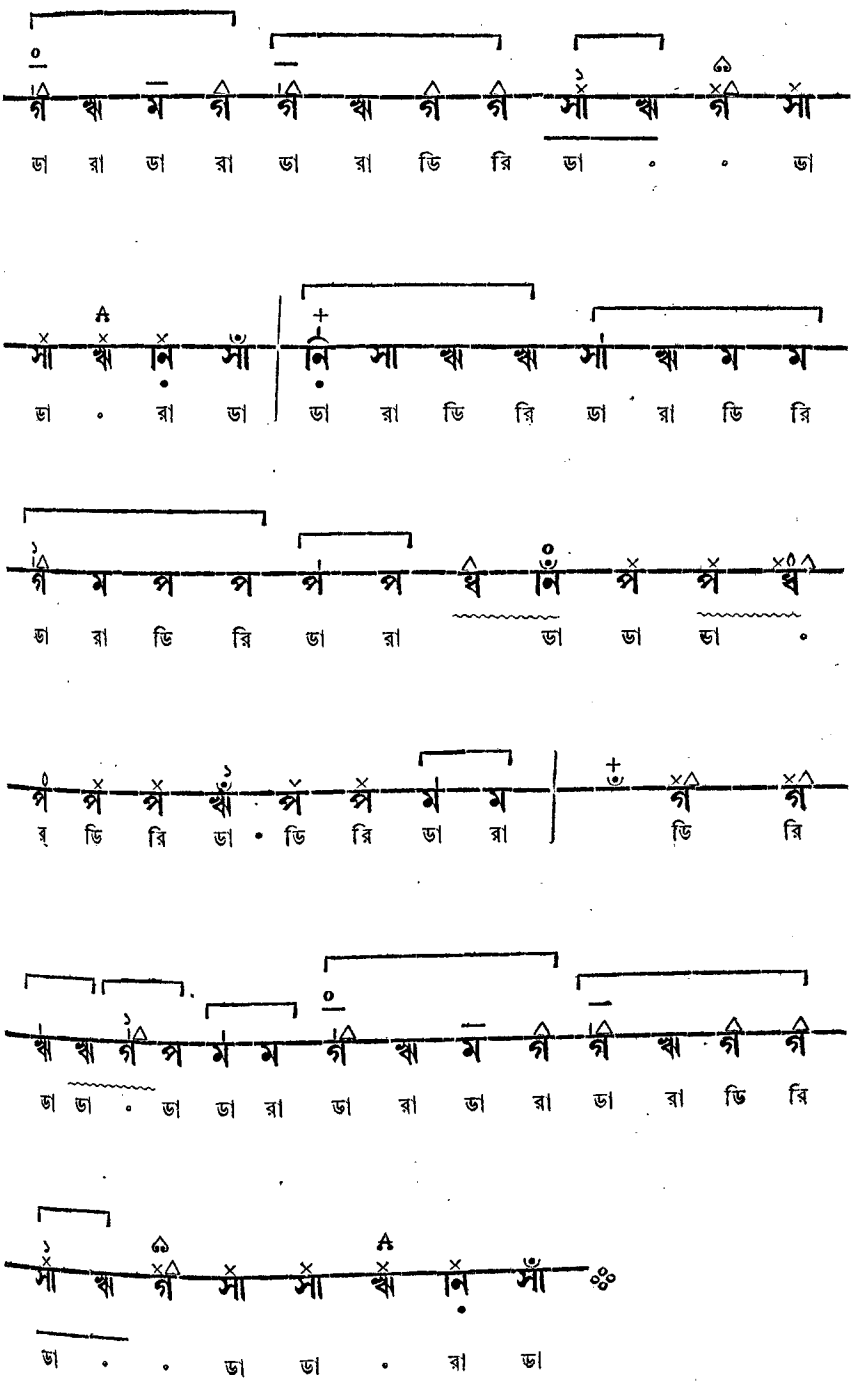
গ ঋ ম গ গ ঋ গ গ সাঁ ঋ গ সা
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডা ডা
সা ঋ নি সাঁ নি সা ঋ ঋ সাঁ ঋ ম ম
ডা রা ডা ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি
গ ম প প প প ধ নঁ প প ধ
ডা রা ডি রি ডা রা ডা ডা ডা
প প প ঋঁ প প ম ম গ গ
ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডি রি
ঋ ঋ গ প ম ম গ ঋ ম গ গ ঋ গ গ
ডা ডা ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি
সা ঋ গ সা সা ঋ নি সাঁ
ডা ডা ডা রা ডা

(১৩২)

তোড়ী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ম ধ নি)

আস্থায়ী।

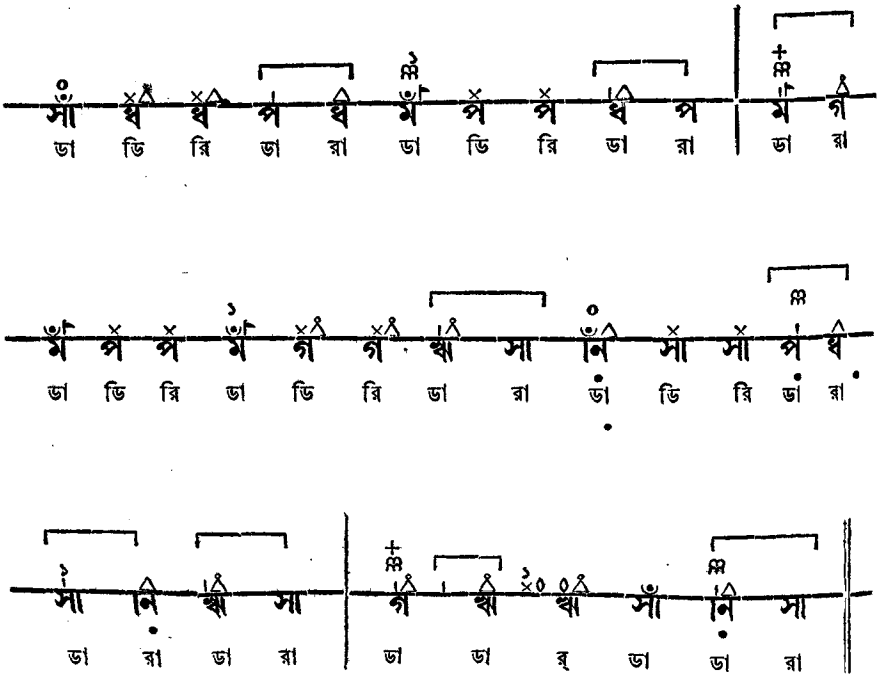

অন্তরা।

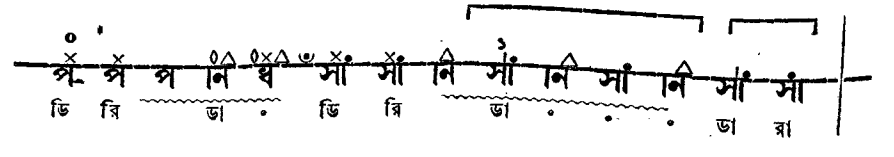

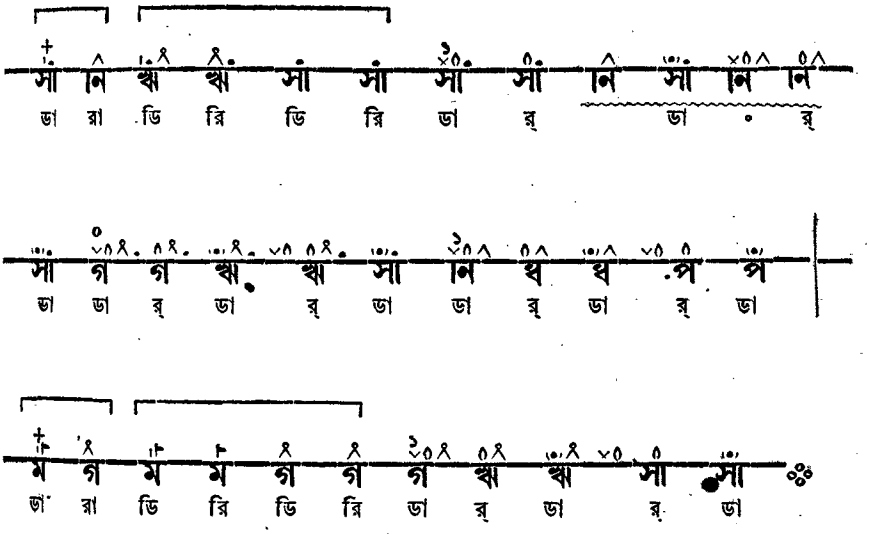

(১৩৩)

মূলতানী*—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ)

আস্থায়ী।

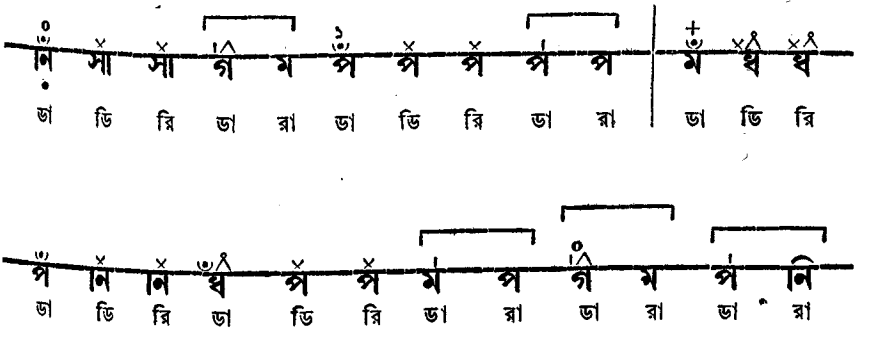

* কেহ কেহ মূলতানীতে শুদ্ধ মধ্যম ব্যবহার করিয়া থাকেন।

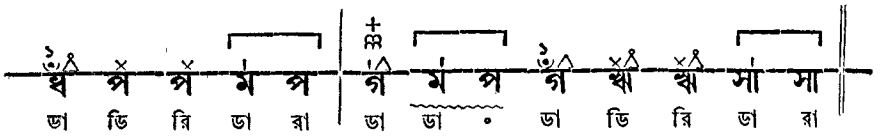

অন্তরা।

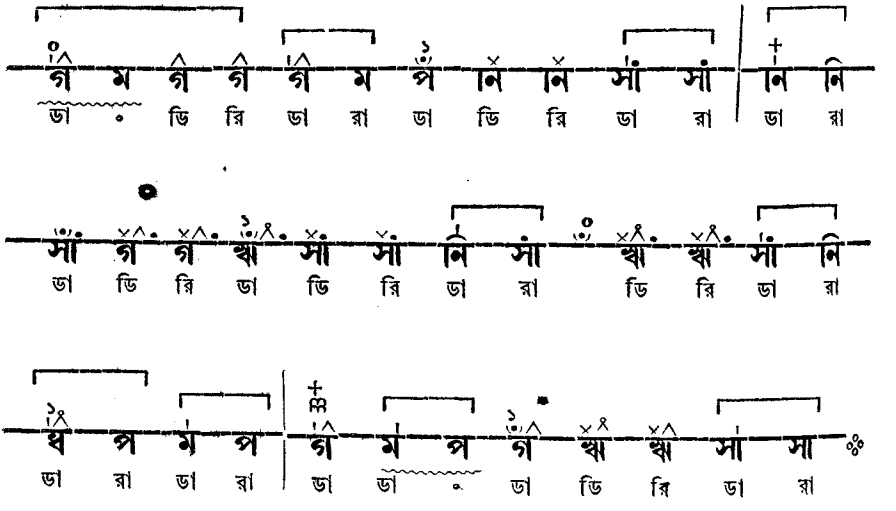

(১৩৪)

গৌরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(—ঋ ধ—)

আস্থায়ী।

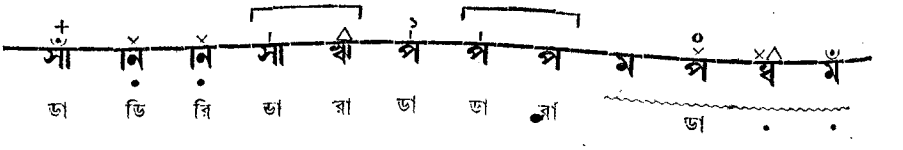

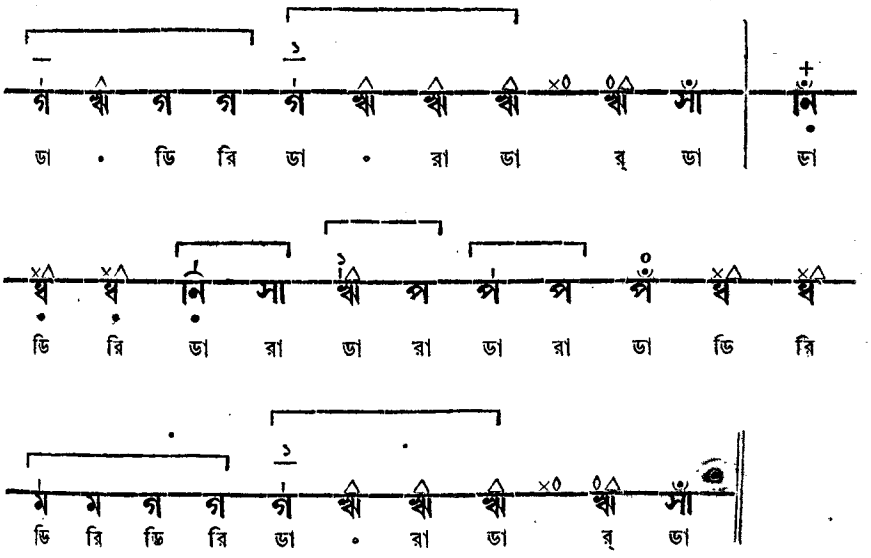
গ ঋ গ গ গ ঋ ঋ ঋ ঋ সাঁ নঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা র্ ডা ডা
ধ ধ নি সা ঋ প প প পঁ ধ ধ
ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
ম ম গ গ গ ঋ ঋ ঋ ঋ সাঁ
ডি রি ডি রি ডা রা ডা র্ ডা

অন্তরা।

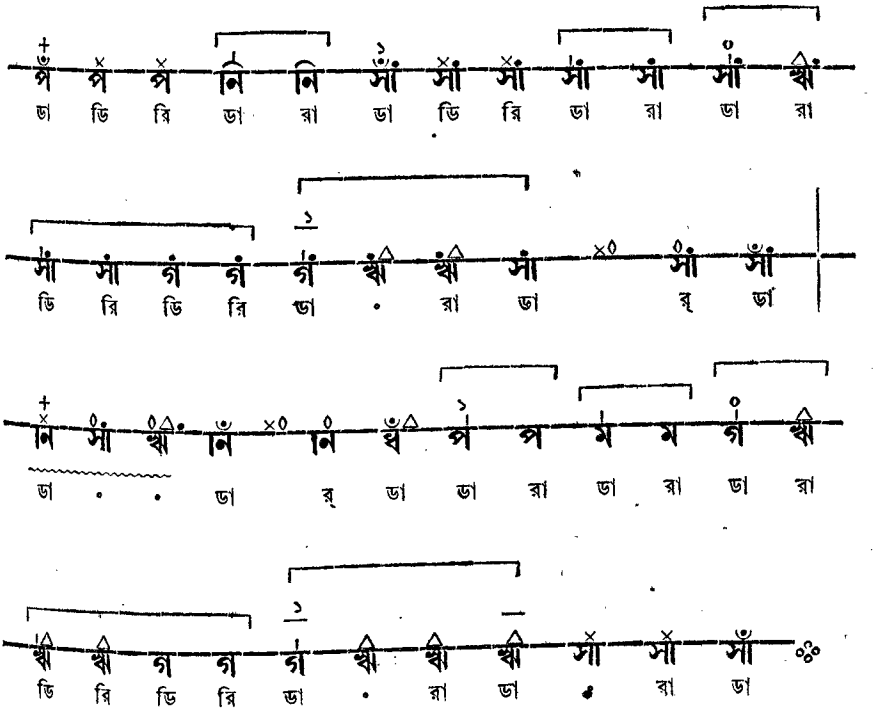
পঁ প প নি নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ ঋঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
সাঁ সাঁ গঁ গঁ গঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ সাঁ
ডি রি ডি রি ডা রা ডা র্ ডা
নঁ সাঁ ঋঁ নঁ নঁ ধঁ পঁ প ম ম গ ঋ
ডা ডা র্ ডা ডা রা ডা রা ডা রা
ঋ ঋ গ গ গ ঋ ঋ ঋ সাঁ সাঁ সাঁ
ডি রি ডি রি ডা রা ডা র্ ডা

(১৩৫)

হাম্বির—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

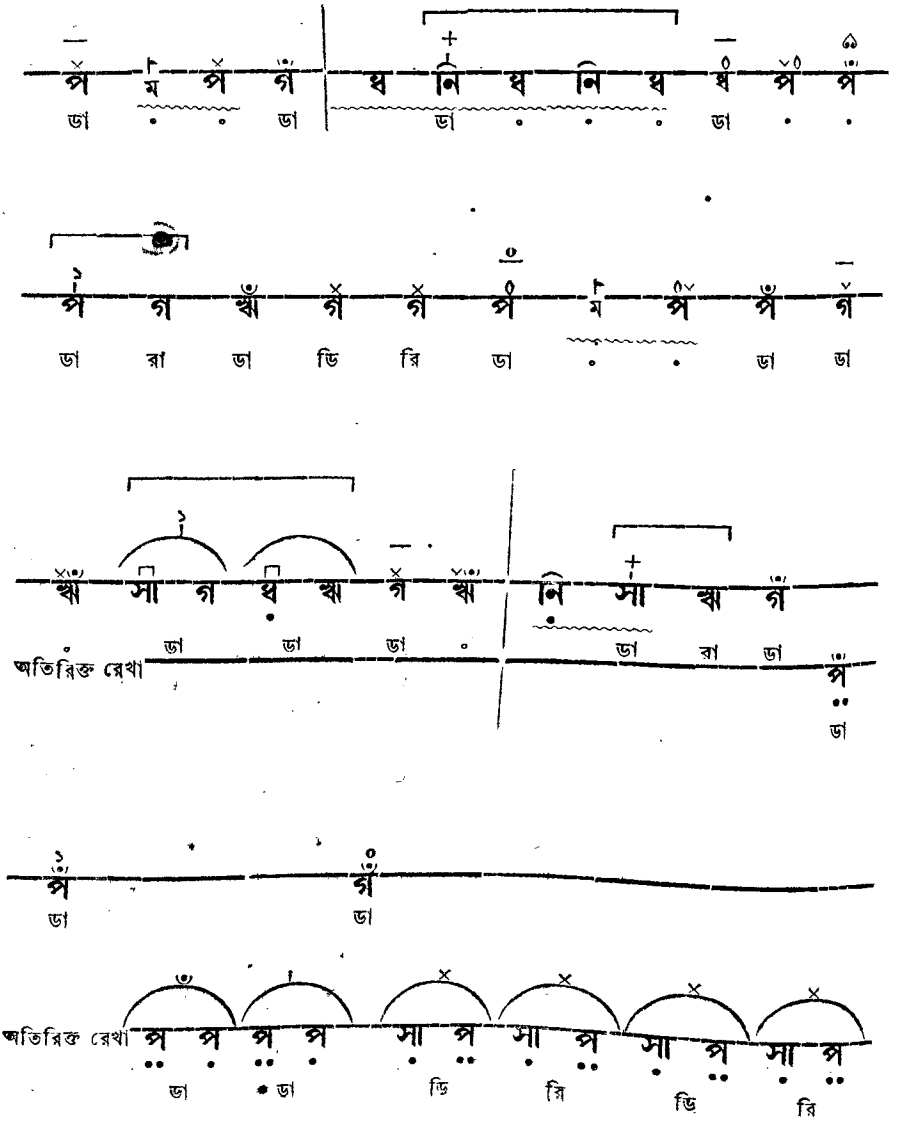

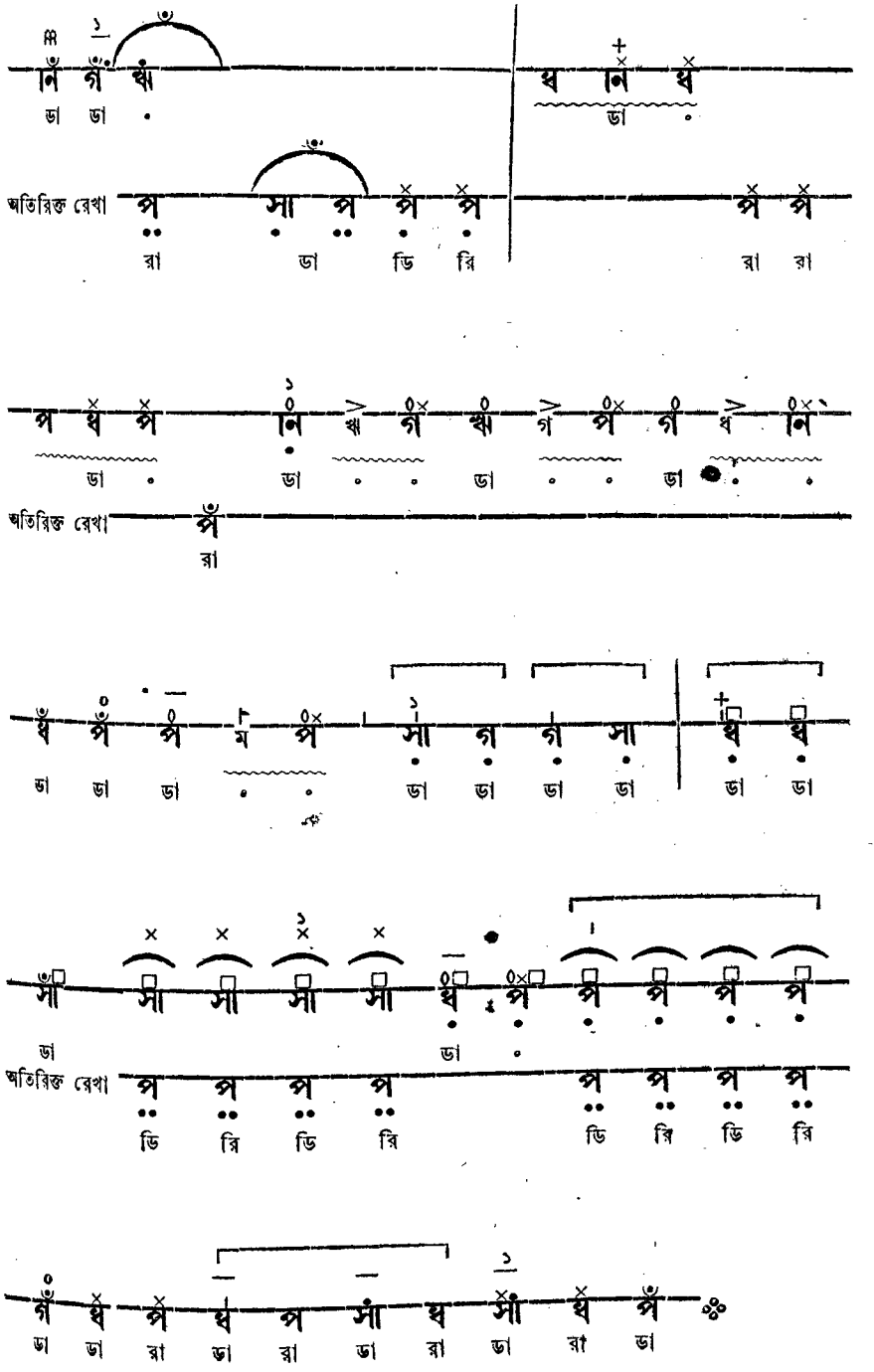
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা
অতিরিক্ত রেখা

(১৩৬)

ইমন-পূরিয়া—খাড়ব*।

মধ্যমান।

(—ম—)

আস্থায়ী।

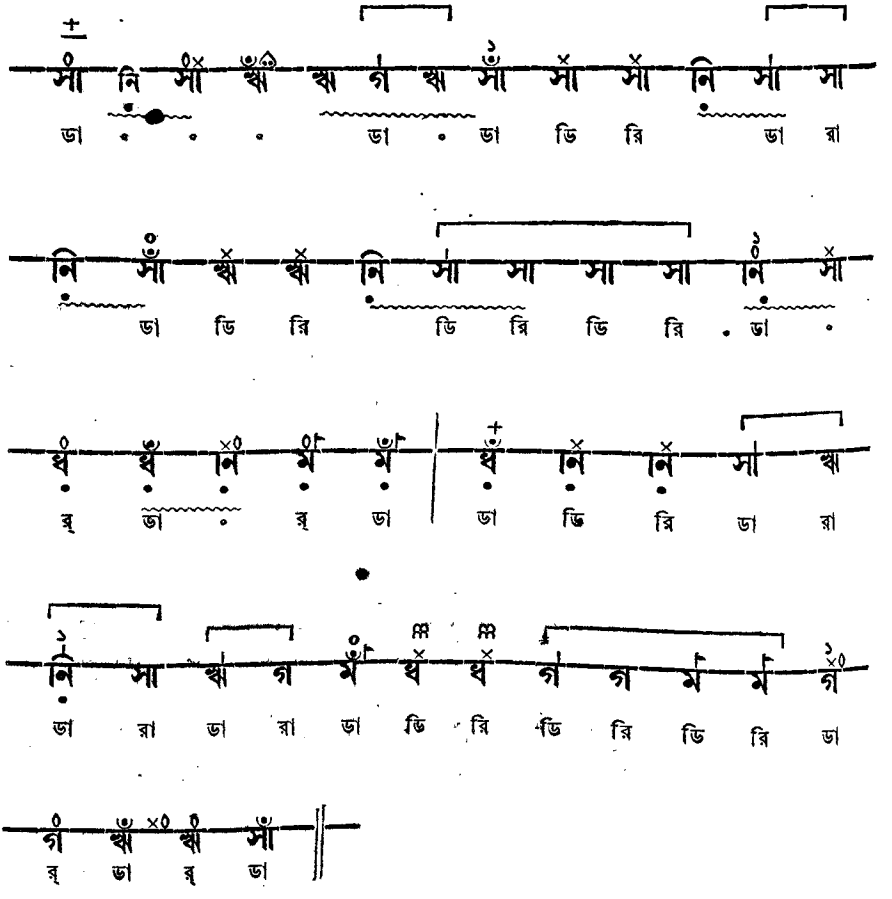

* ইহার পঞ্চম বিবাদী।

অন্তরা।

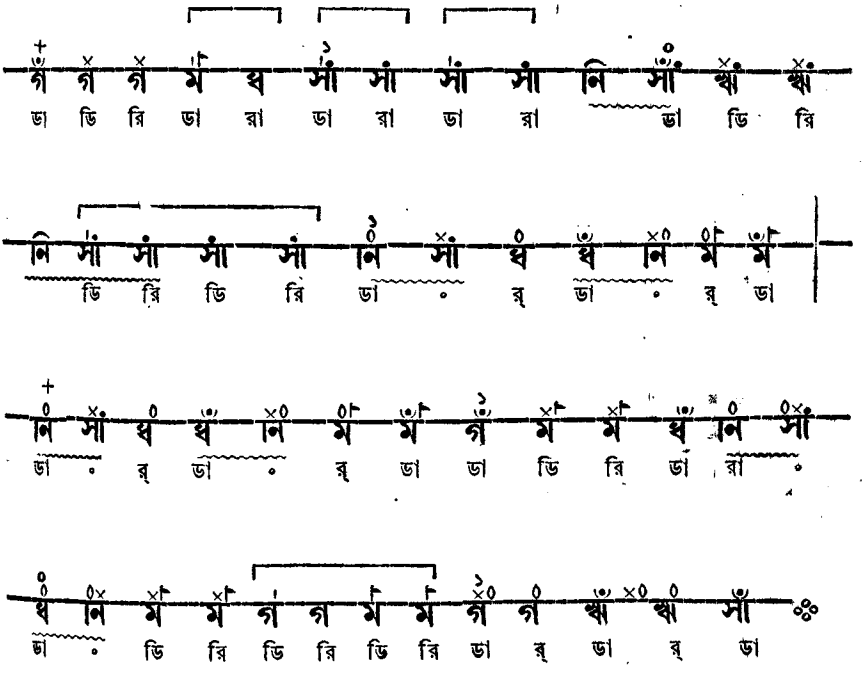

(১৩৭)

গৌড়—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

আস্থায়ী।

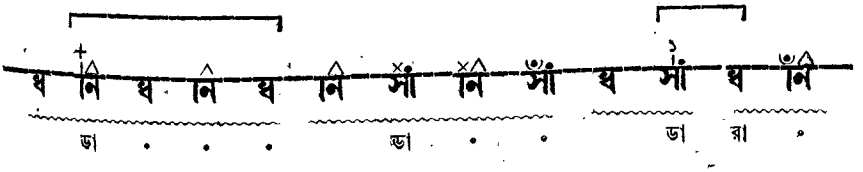

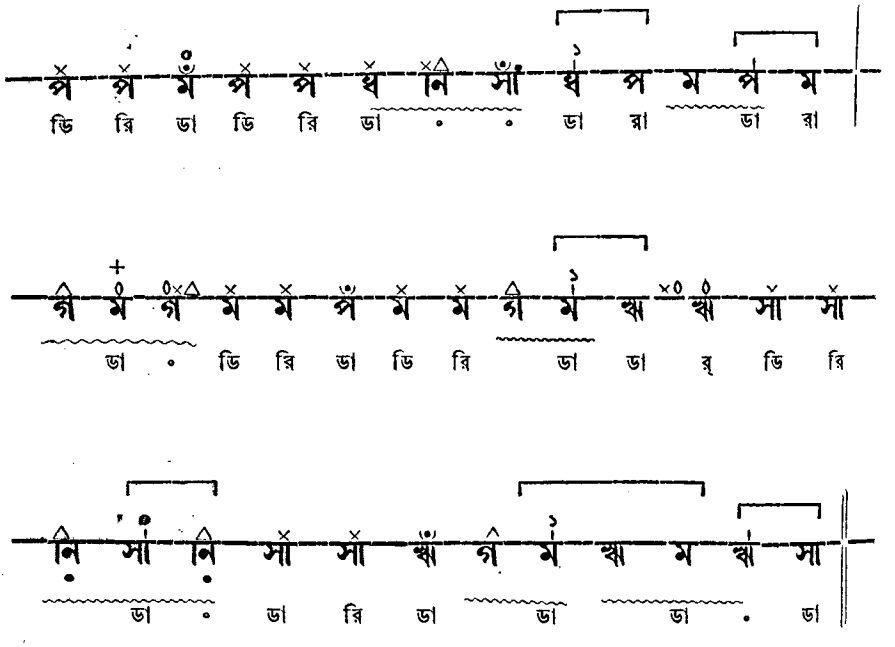

অন্তরা।

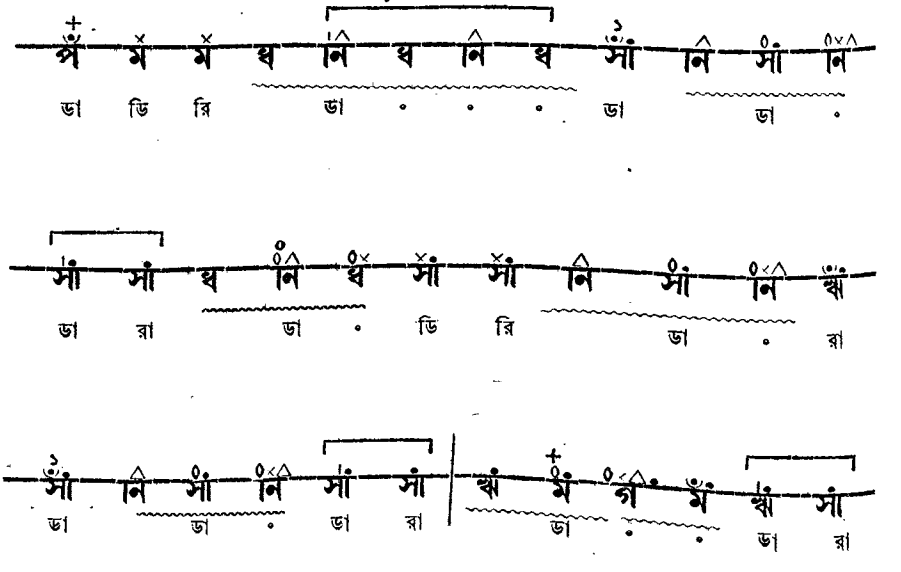

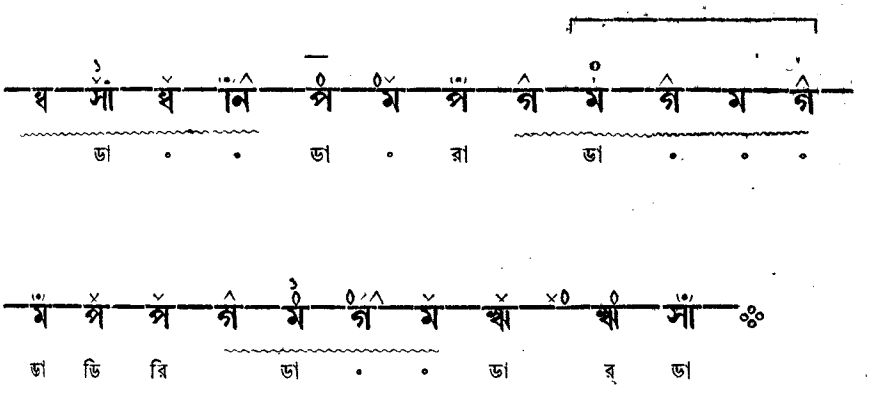

(১৩৮)

মালিগৌরা—সম্পূর্ণ।

চৌতাল।

(ঋ)

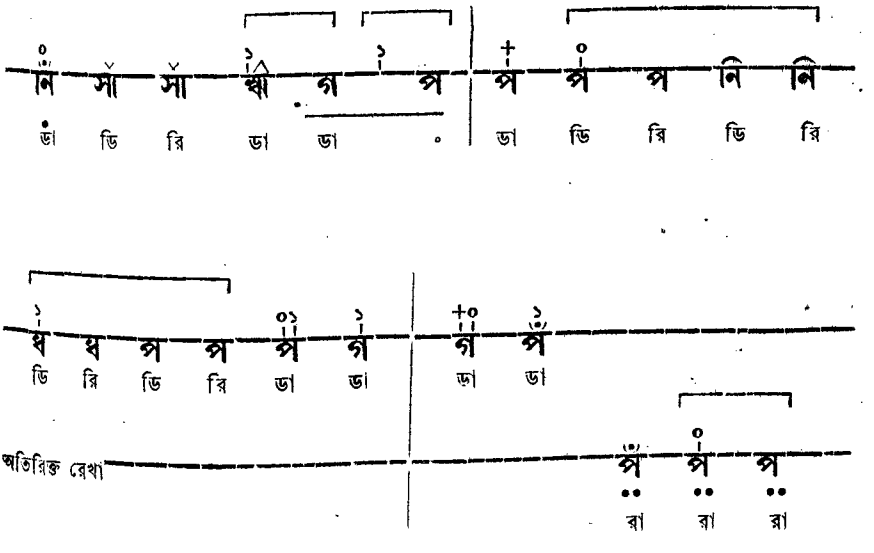

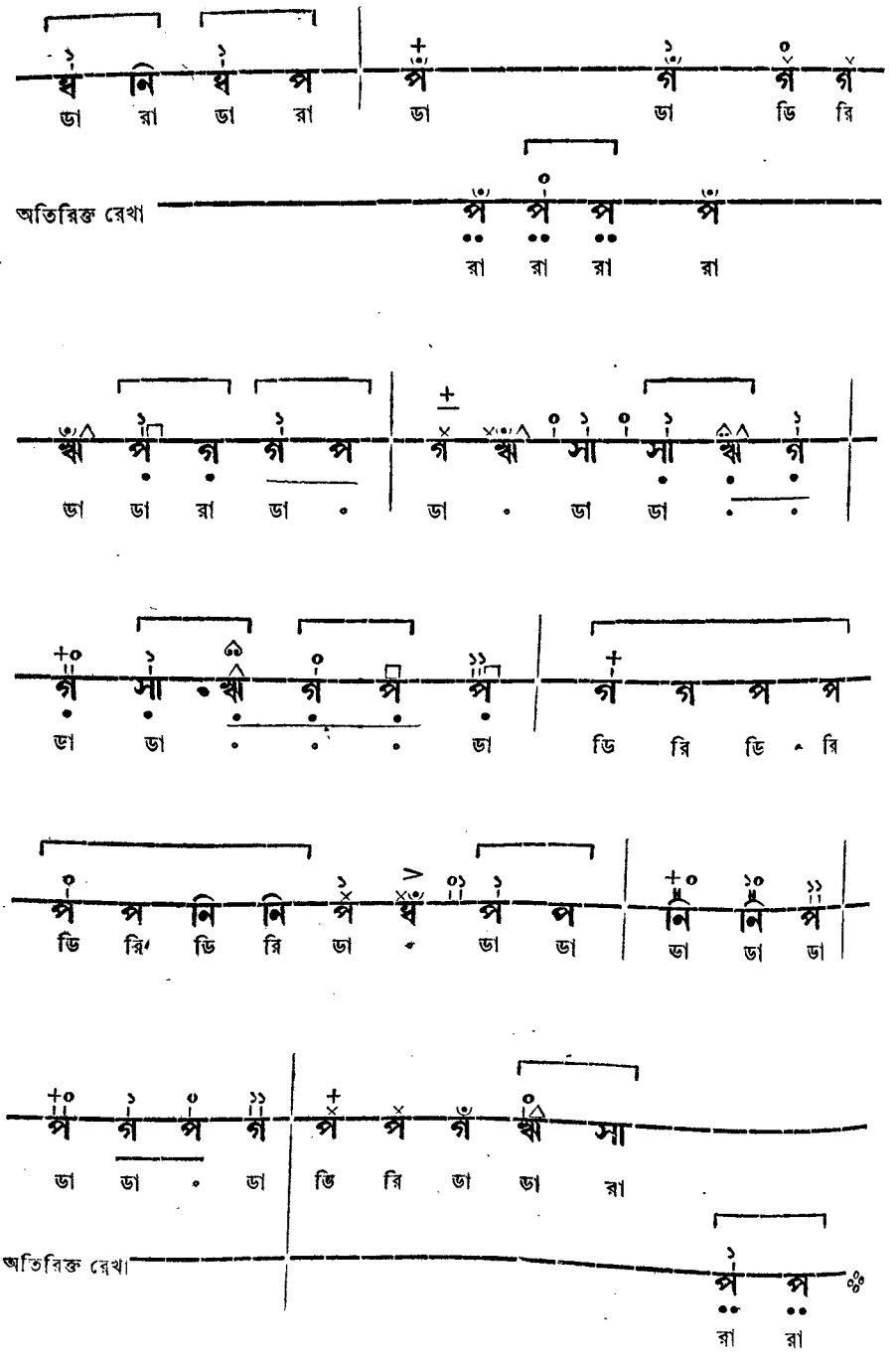
ডা রা ডা রা
ডা ডা ডি রি
অতিরিক্ত রেখা
রা রা রা রা
ডা ডা রা ডা
ডা ডা ডা
ডা ডা
ডি রি ডি রি
ডি রি ডি রি ডা ডা ডা
ডা ডা ডা
ডি রি ডা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
রা রা

(১৩৯)

রামকেলী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ)

আস্থায়ী।

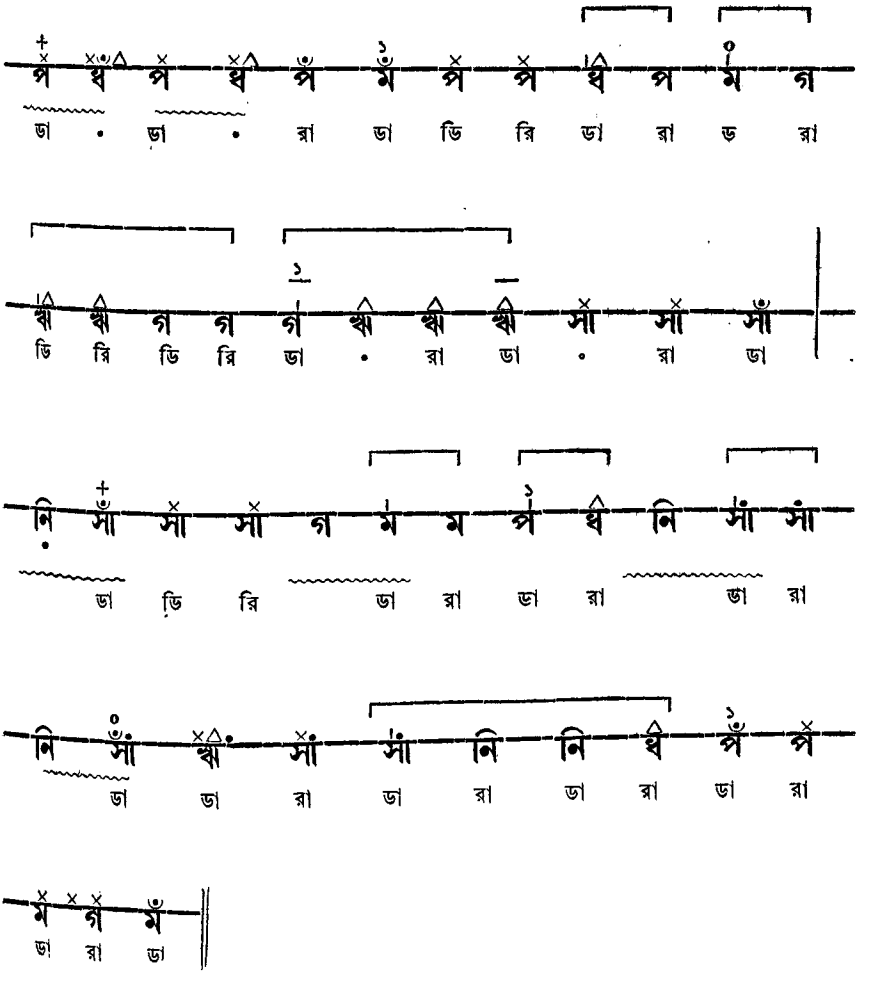

অন্তরা।

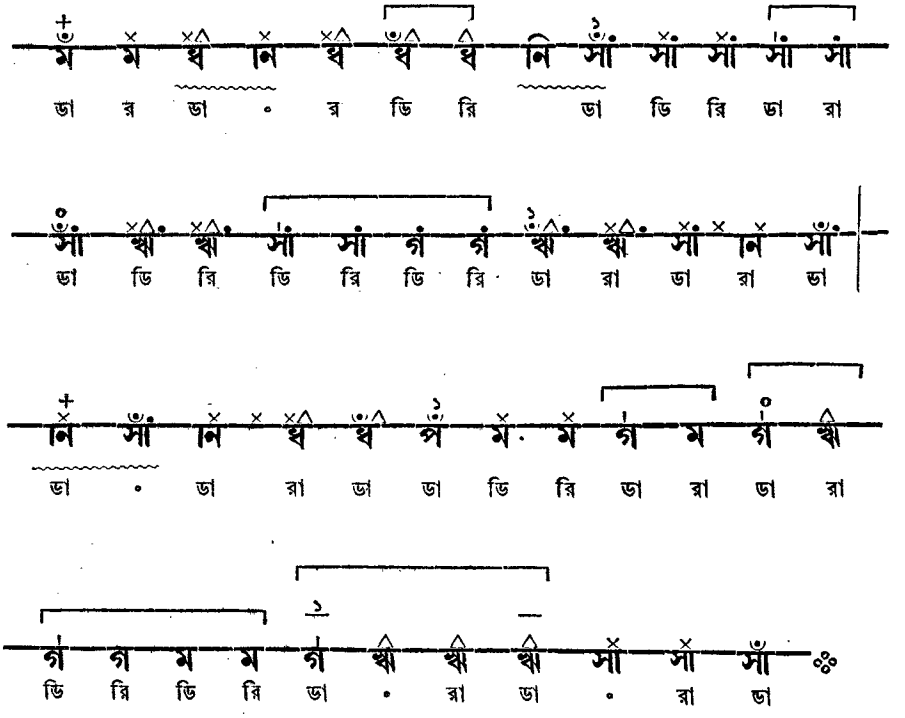

(১৪০)

বাগীশ্বরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ঋ নি)

আস্থায়ী।

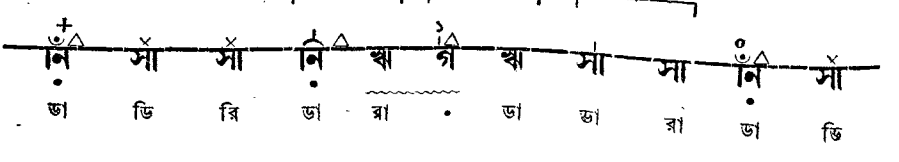

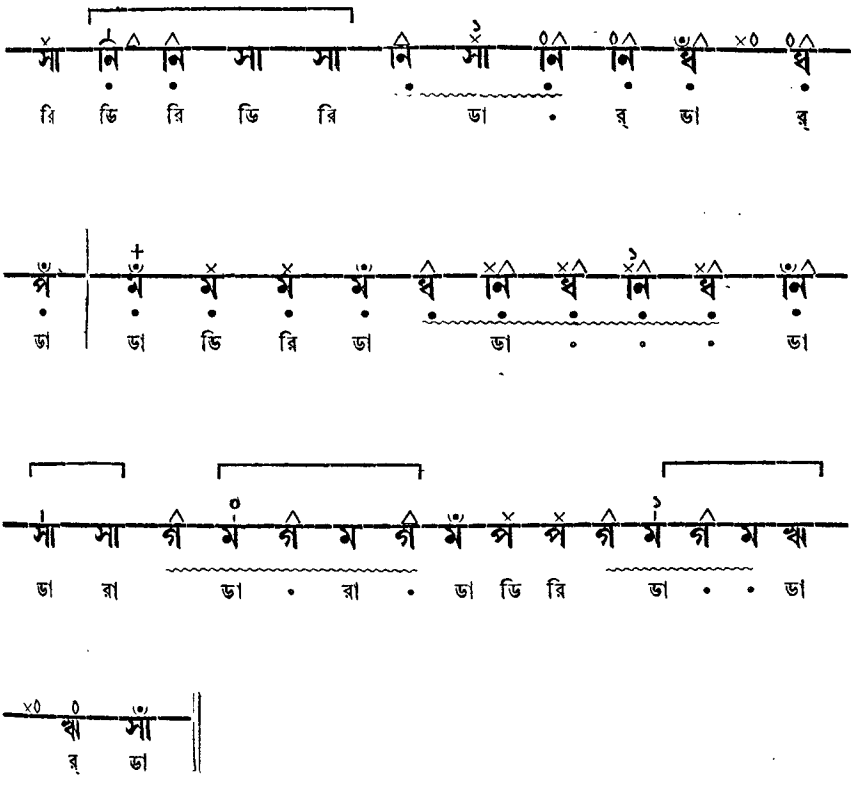
সা নি নি সা সা নি সাঁ নি নি ধ্ব ধ্ব
রি ডি রি ডি রি ডা • র্ ডা র্
প্ঁ মঁ ম ম ম ধ্ব নি ধ্ব নি ধ্ব নি
ডা ডা ডি রি ডা ডা • • • ডা
সা সা গ মঁ গ ম গ মঁ প্ঁ প্ গ মঁ গ ম ঋ
ডা রা ডা • রা • ডা ডি রি ডা • • ডা
ঋ সাঁ
র্ ডা

অন্তরা।

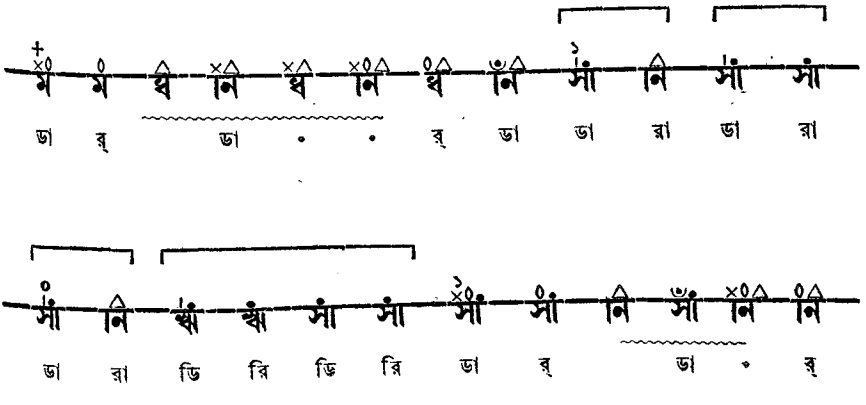
মঁ ম ধ্ব নি ধ্ব নি ধ্ব নি সাঁ নি সাঁ সাঁ
ডা র্ ডা • • র্ ডা ডা রা ডা রা
সাঁ নি ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ নি নি
ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা • র্

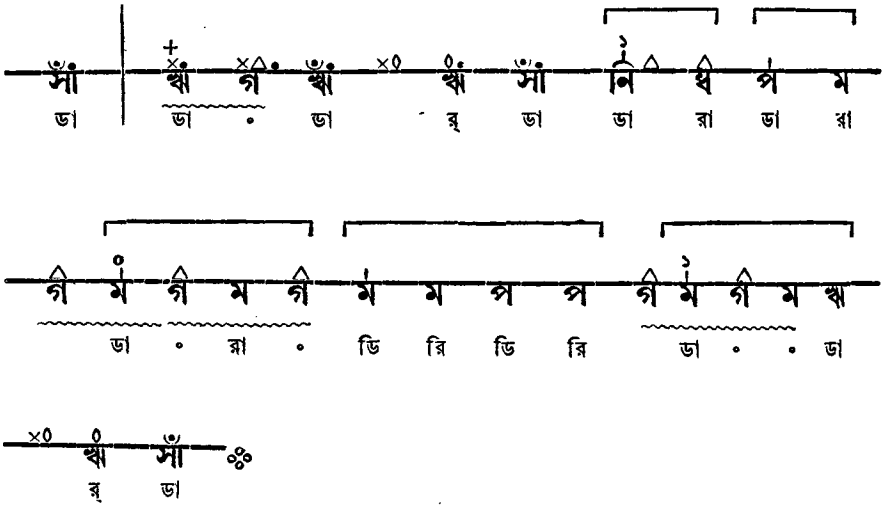

(১৪১)

তোড়ী—সম্পূর্ণ।

ধামার।

(ঋঁ গঁ মঁ ধঁ নি)

আস্থায়ী।

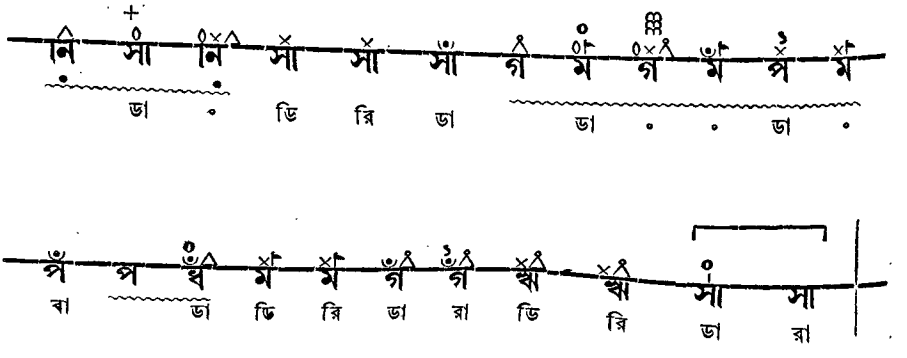

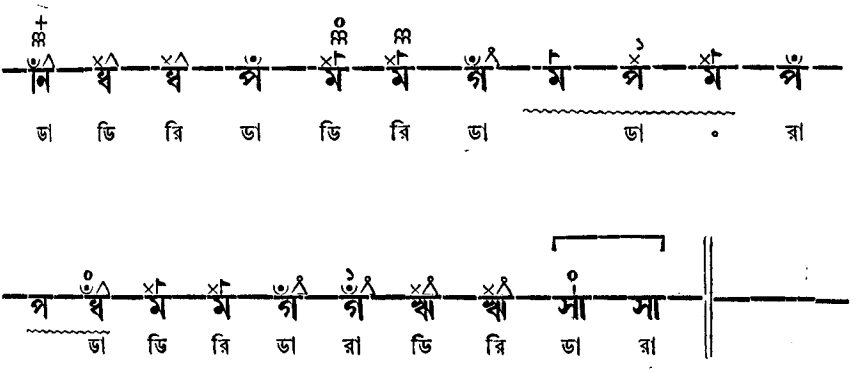
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা ডা ০ রা
ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা রা

অন্তরা।

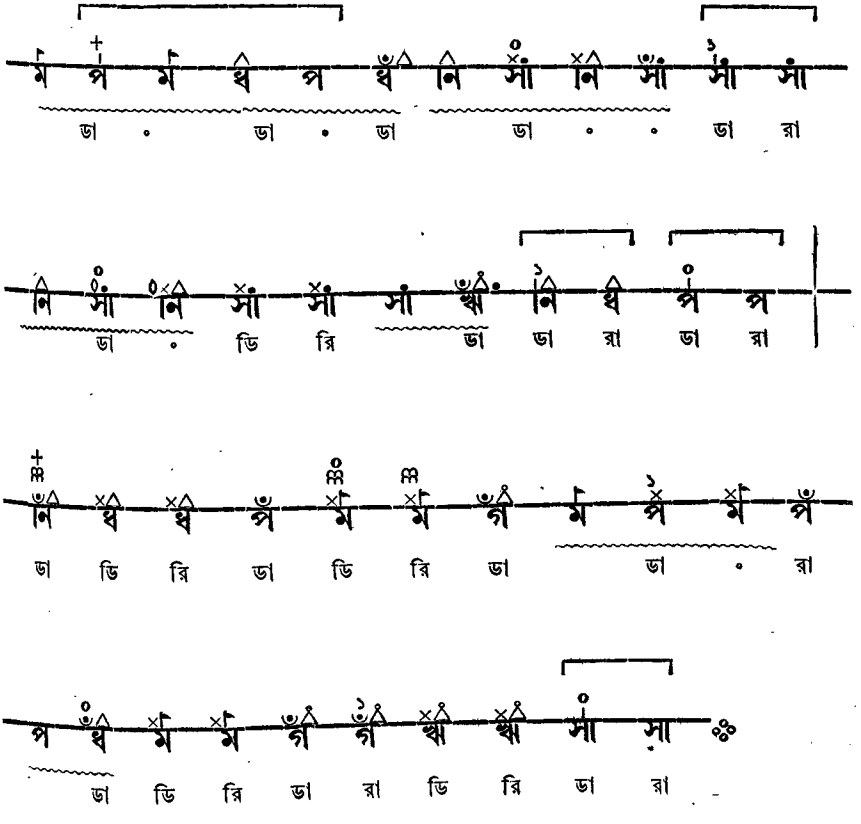
ডা ০ ডা ০ ডা ডা ০ ০ ডা রা
ডা ০ ডি রি ডা ডা রা ডা রা
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা ডা ০ রা
ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা রা

(১৪২)

সারঙ্গ—ওড়ব।

একতালা।

আস্থায়ী।

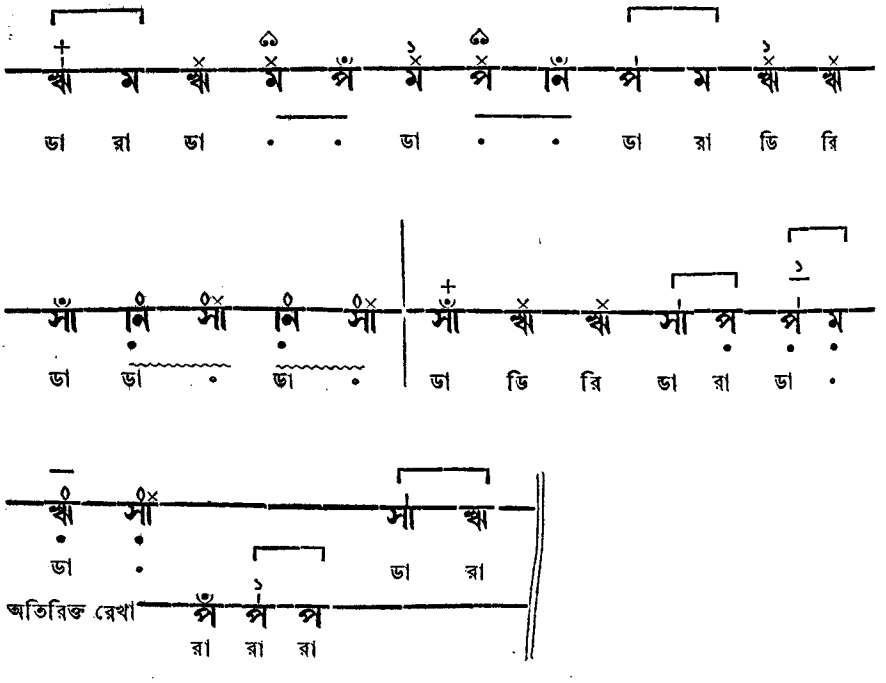

অন্তরা।

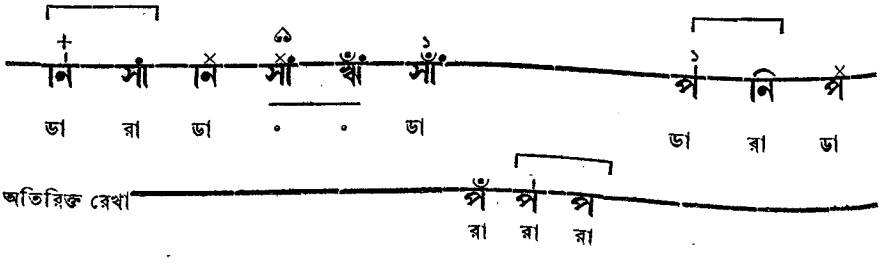

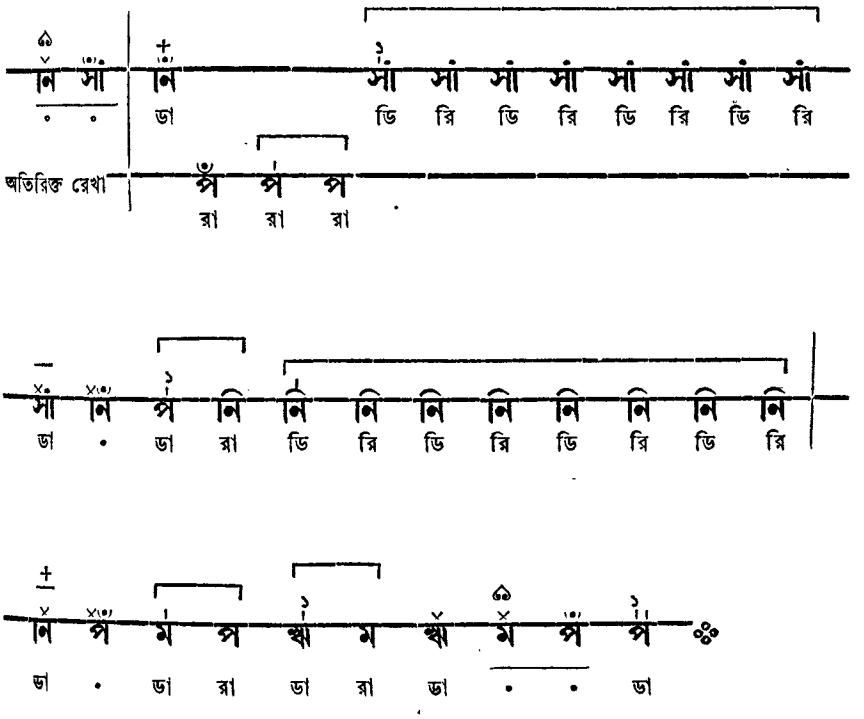

(১৪৩)

যোগিঞা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ঘ)

আস্থায়ী।

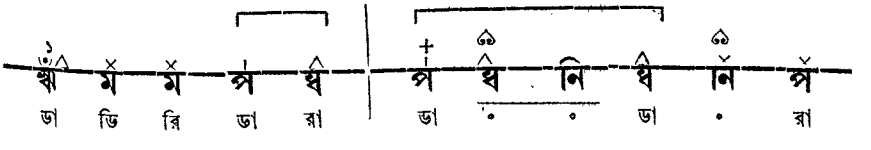

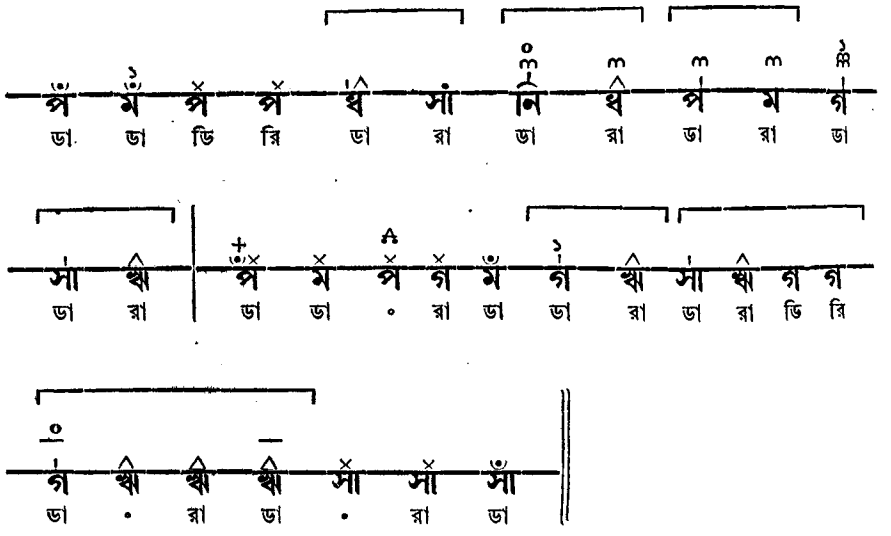
ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডা রা
ডা ডা ০ রা ডা ডা রা ডা রা ডি রি
ডা ০ রা ডা ০ রা ডা

অন্তরা।

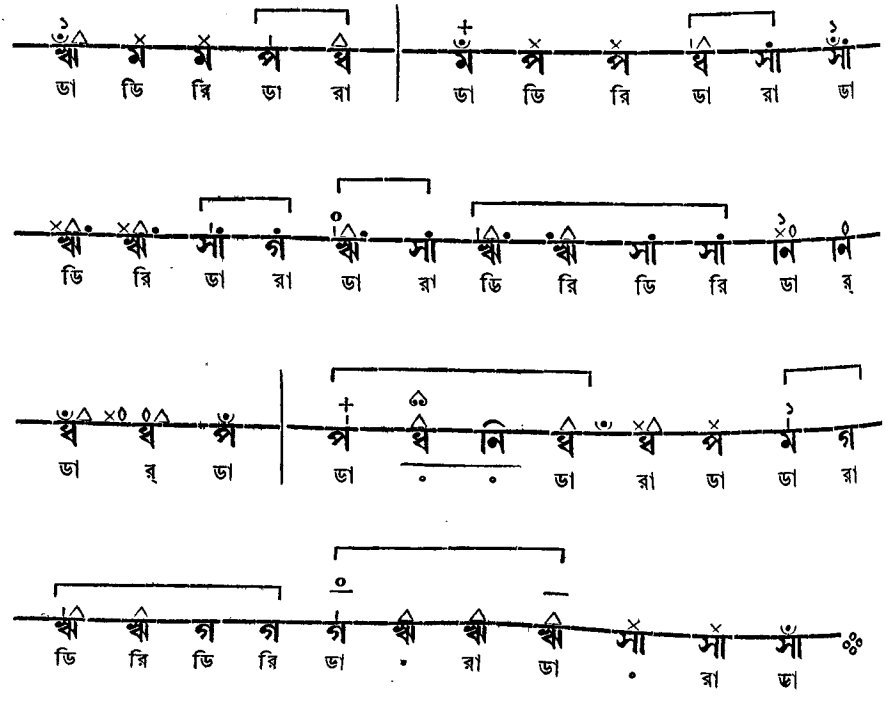
ডা ডি রি ডা রা
ডা ডি রি ডা রা ডা
ডি রি ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্
ডা র্ ডা
ডা ০ ০ ডা রা ডা ডা রা
ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা

(১৪৪)

খট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ)

আস্থায়ী।

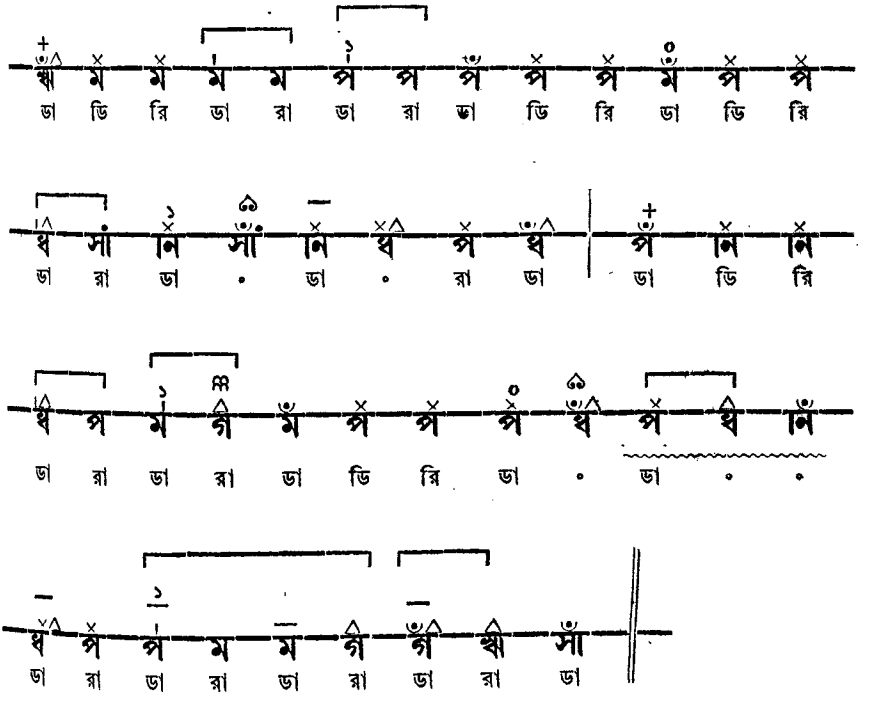

অন্তরা।

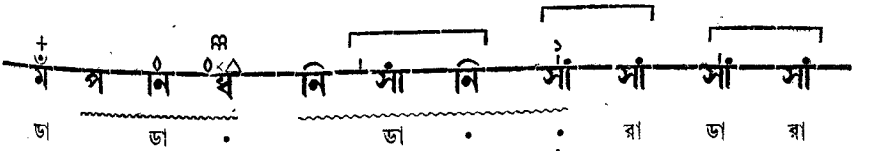

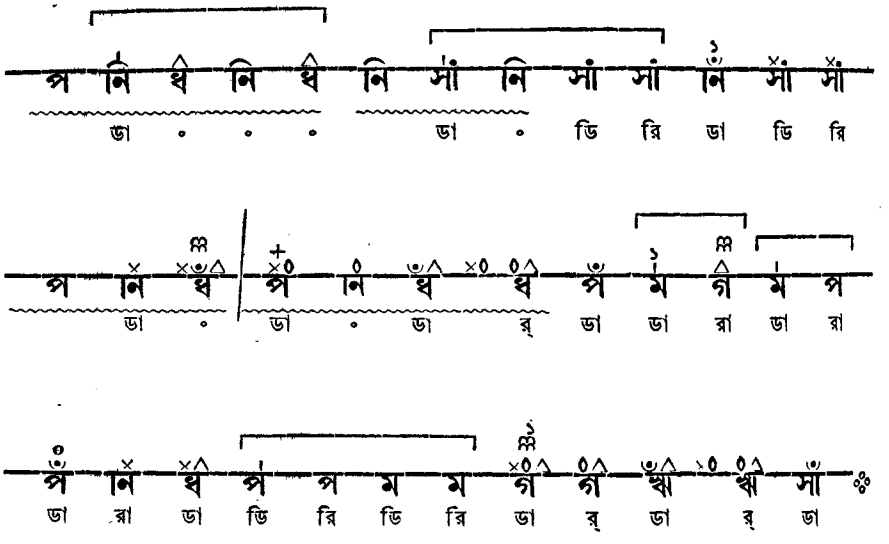

(১৪৫)

আসাবরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

আস্থায়ী।

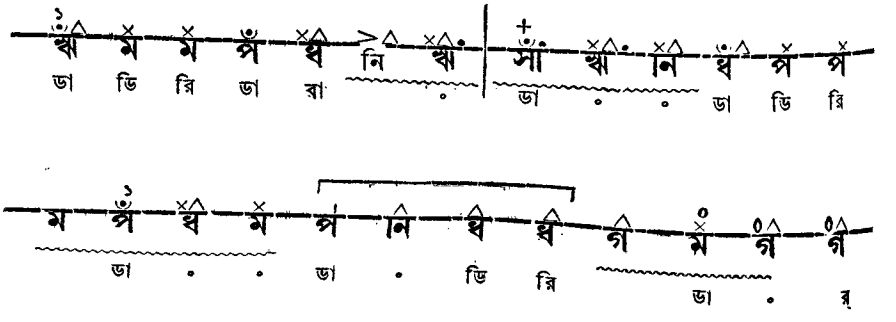

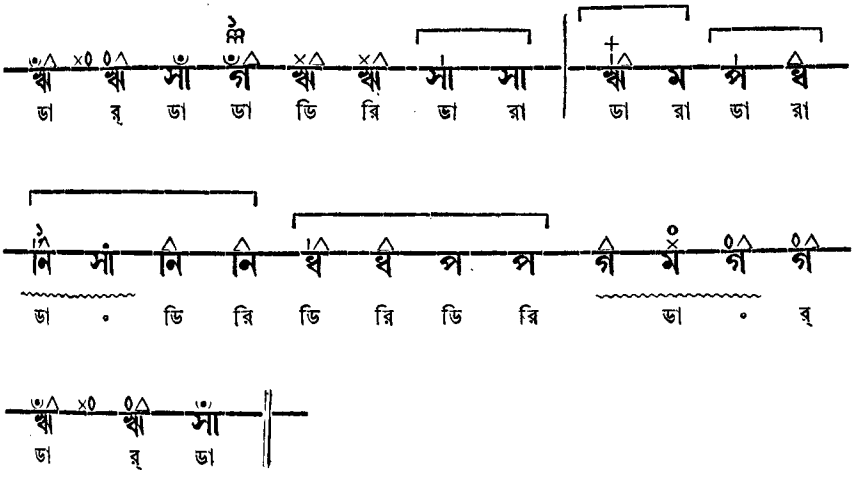
ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা রা | ডা রা ডা রা
ডা ০ ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ র্
ডা র্ ডা

অন্তরা।

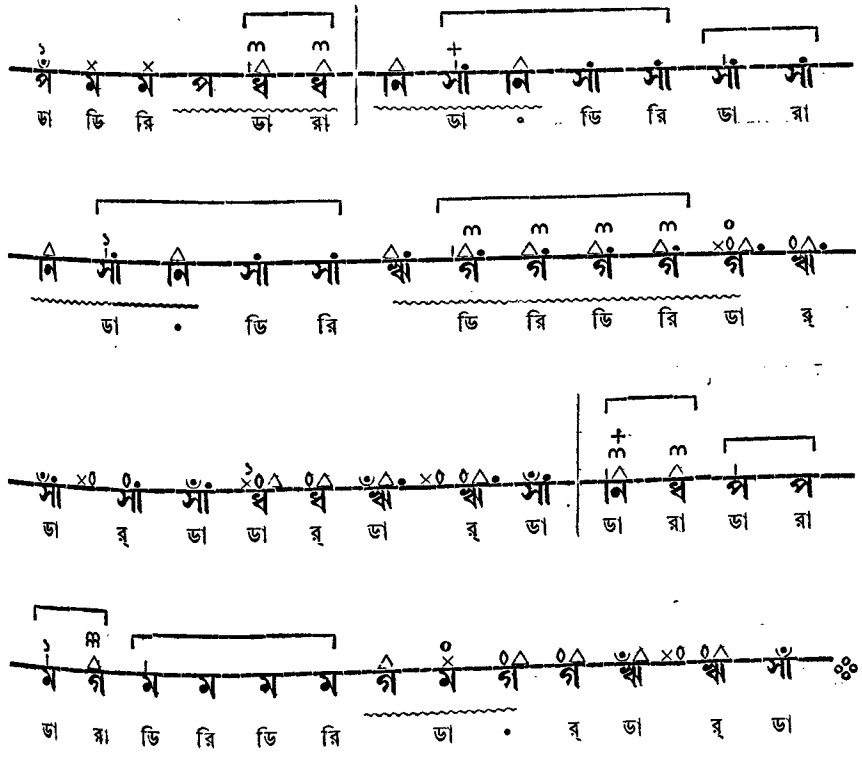
ডা ডি রি ডা রা | ডা ০ ডি রি ডা রা
ডা ০ ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্
ডা র্ ডা ডা র্ ডা র্ ডা | ডা রা ডা রা
ডা রা ডি রি ডি রি ডা ০ র্ ডা র্ ডা

(১৪৬)

যোগিঞা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ)

আস্থায়ী।

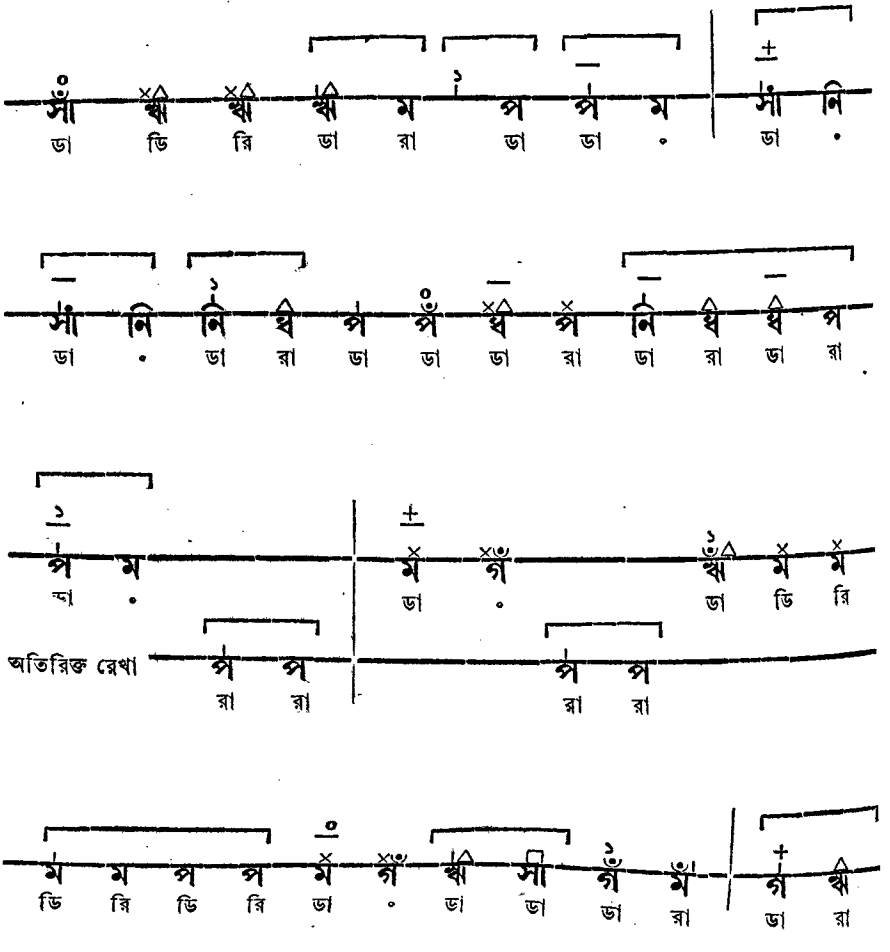

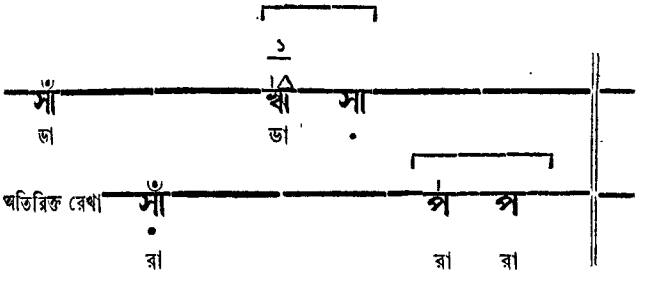
১
সাঁ ঋা সা
ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
সাঁ প প
রা রা রা

অন্তরা।

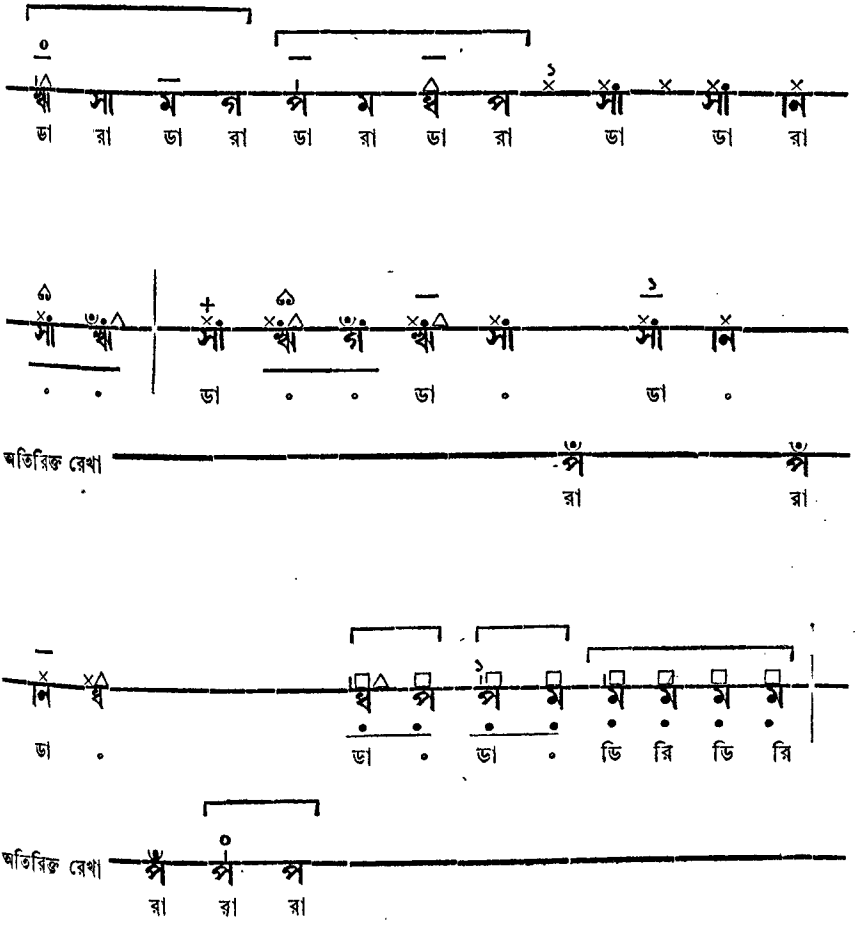
০
ঋা সা ম গ প ম ধ প সাঁ সাঁ নি
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা রা
সা ঋা সাঁ ঋা গ ঋা সাঁ সাঁ নি
ডা ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প
রা রা
নি ধ ধ প প ম ম ম ম ম
ডা ডা ডা ডি রি ডি রি
অতিরিক্ত রেখা
প প প
রা রা রা

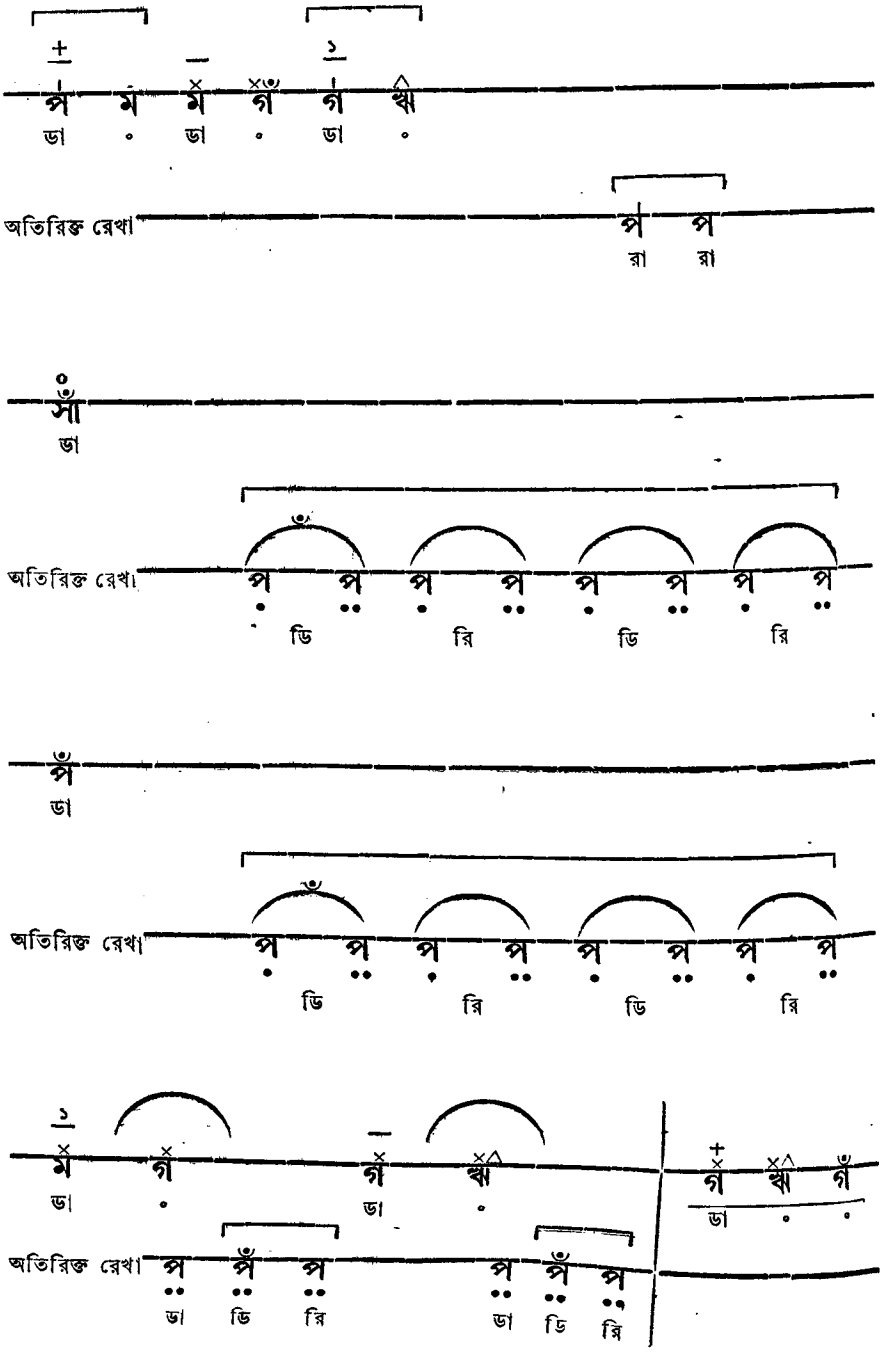
+ — ১
প ম ম গঁ গ ঋ
ডা ০ ডা ০ ডা ০
অতিরিক্ত রেখা
প প
রা রা
সাঁ
ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প প প
ডি রি ডি রি
পঁ
ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প প প প
ডি রি ডি রি
১
ম গ গ ঋ
ডা ০ ডা ০
+
গ ঋ গঁ
ডা ০ ০
অতিরিক্ত রেখা
প পঁ প প পঁ প
ডা ডি রি ডা ডি রি

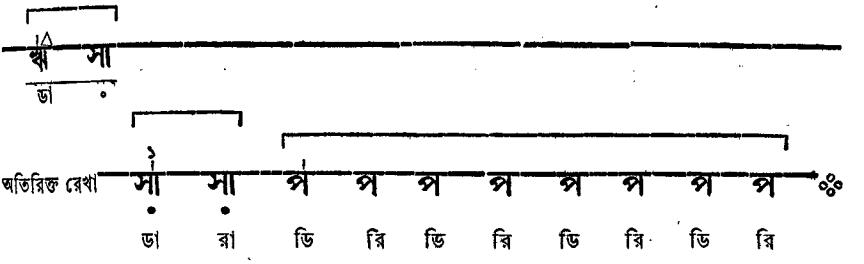

(১৪৭)

গুর্জ্জরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ম ধ)

আস্থায়ী।

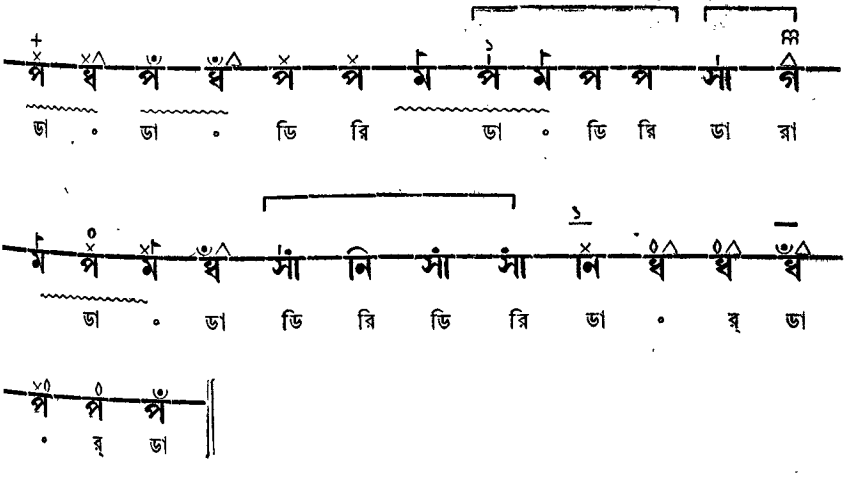

অন্তরা।

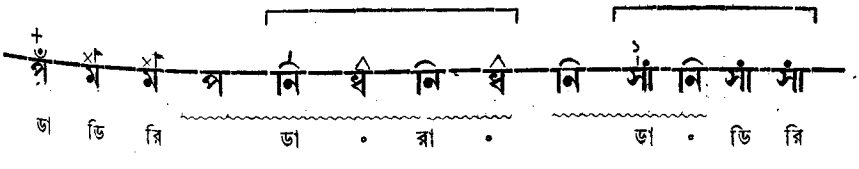

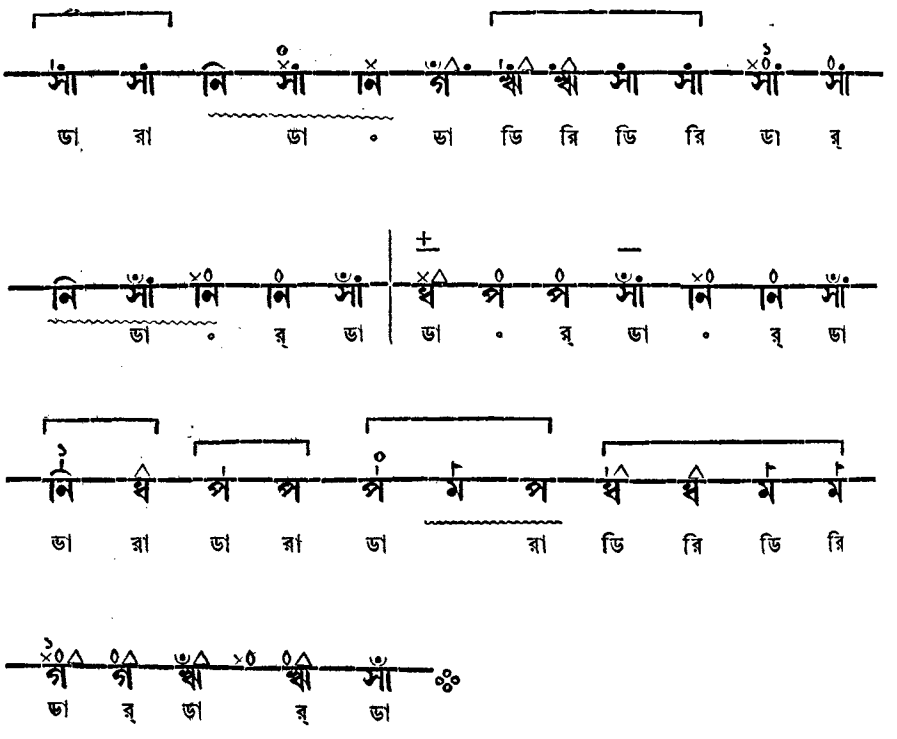

(১৪৮)

আলাহিয়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

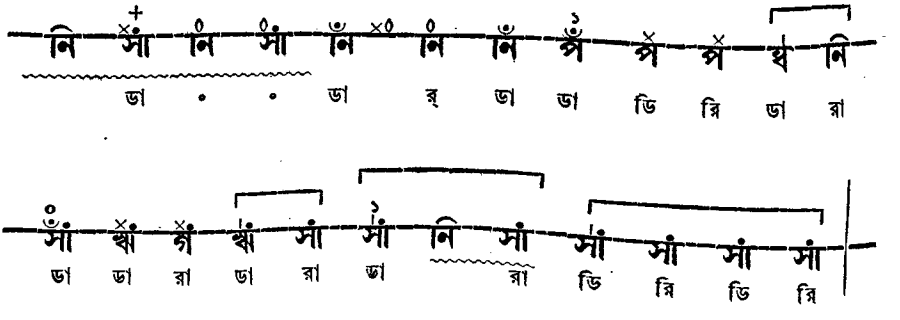

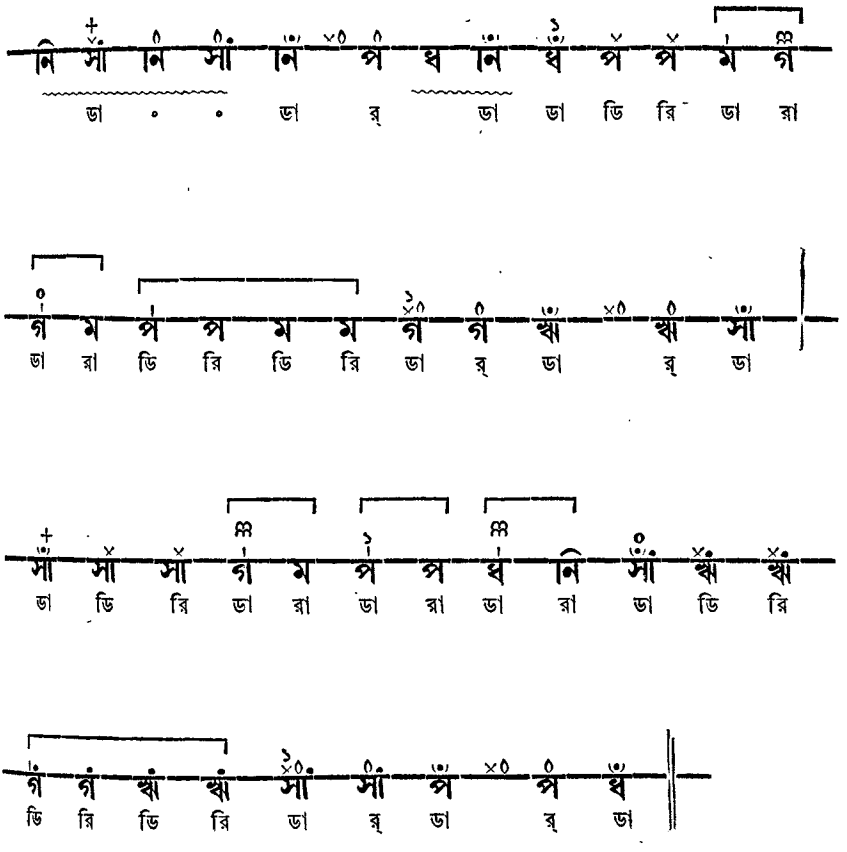
নি সাঁ নি সাঁ নি প ঘ নি ঘ প প ম গ
ডা ০ ০ ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা রা
গ ম প প ম ম গ গ ঋঁ ঋ সাঁ
ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
সাঁ সা সা গ ম প প ঘ নি সাঁ ঋঁ ঋঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
গঁ গঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ প প ঘ
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা

অন্তরা।

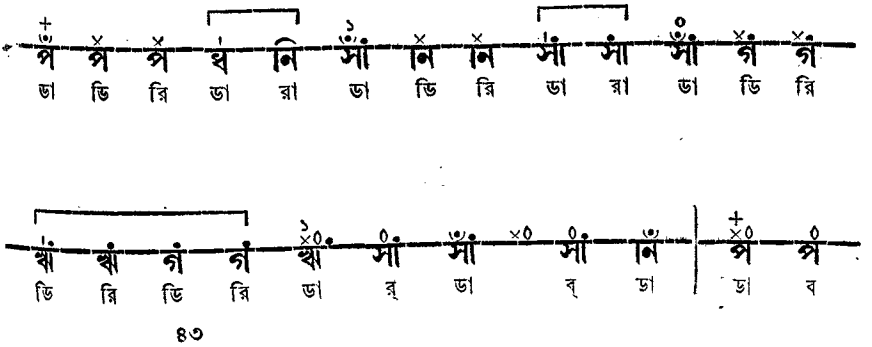
প প প ঘ নি সাঁ নি নি সাঁ সাঁ সাঁ গঁ গঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
ঋঁ ঋঁ গঁ গঁ ঋঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি প প
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা ব্ ডা ডা ব

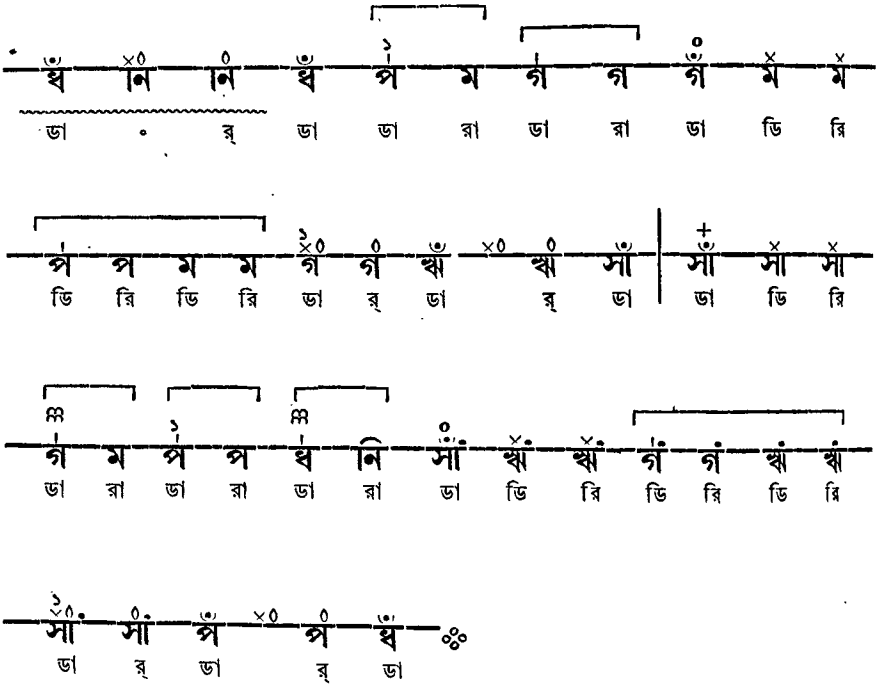

(১৪৯)

সর্‌ফর্‌দা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

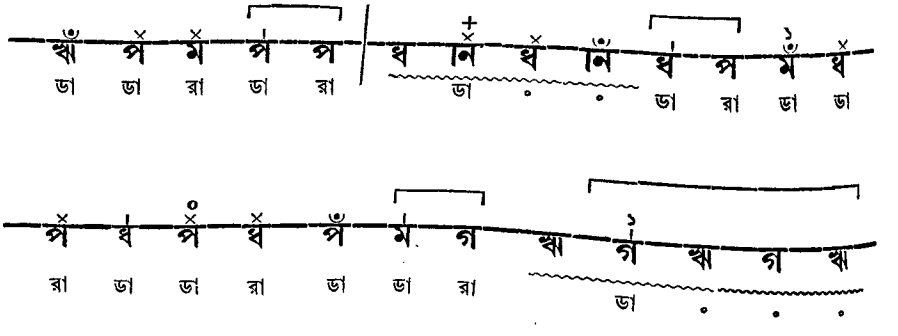

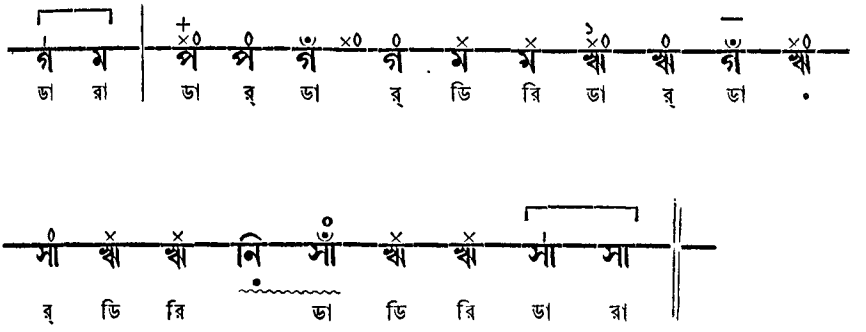
গ ম | প প গ গ ম ম ঋ ঋ গ ঋ
ডা রা | ডা র্ ডা র্ ডি রি ডা র্ ডা ·
সা ঋ ঋ নি সাঁ ঋ ঋ সা সা
র্ ডি রি ডা ডি রি ডা রা

অন্তরা।

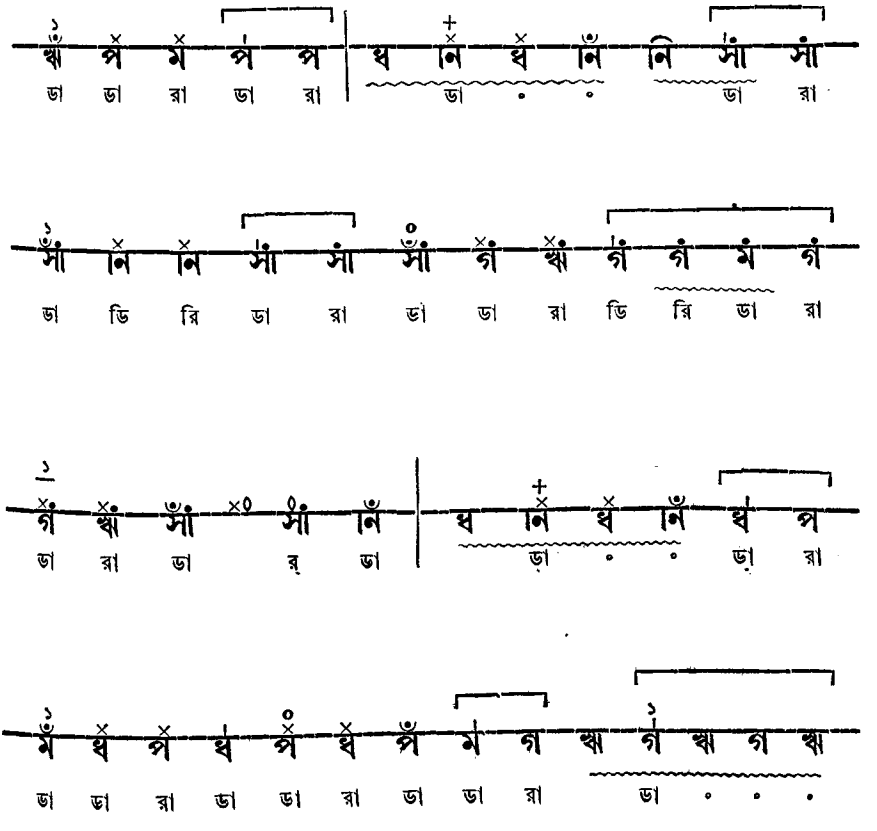
ঋঁ প ম প প | ধ নি ধ নঁ নি সাঁ সাঁ
ডা ডা রা ডা রা | ডা · · ডা রা
সাঁ নি নি সাঁ সাঁ সাঁ গঁ ঋঁ গঁ গঁ মঁ গঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডা রা ডি রি ডা রা
গঁ ঋঁ সাঁ সাঁ নঁ | ধ নি ধ নঁ ধ প
ডা রা ডা র্ ডা | ড়া · · ড়া রা
মঁ ধ প ধ প ধ পঁ ম গ ঋ গ ঋ গ ঋ
ডা ডা রা ডা ডা রা ডা ডা রা ডা · · ·

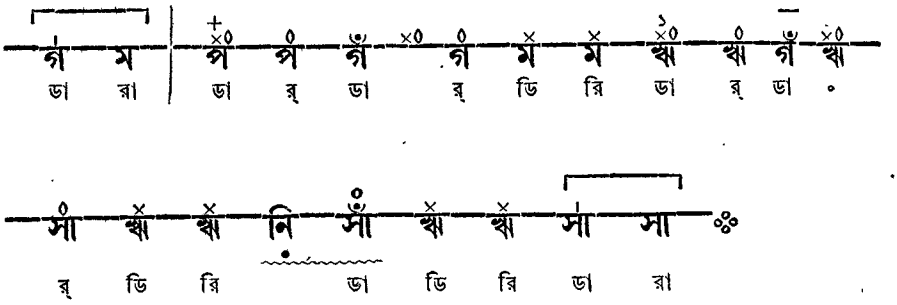

(১৫০)

কোকভ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

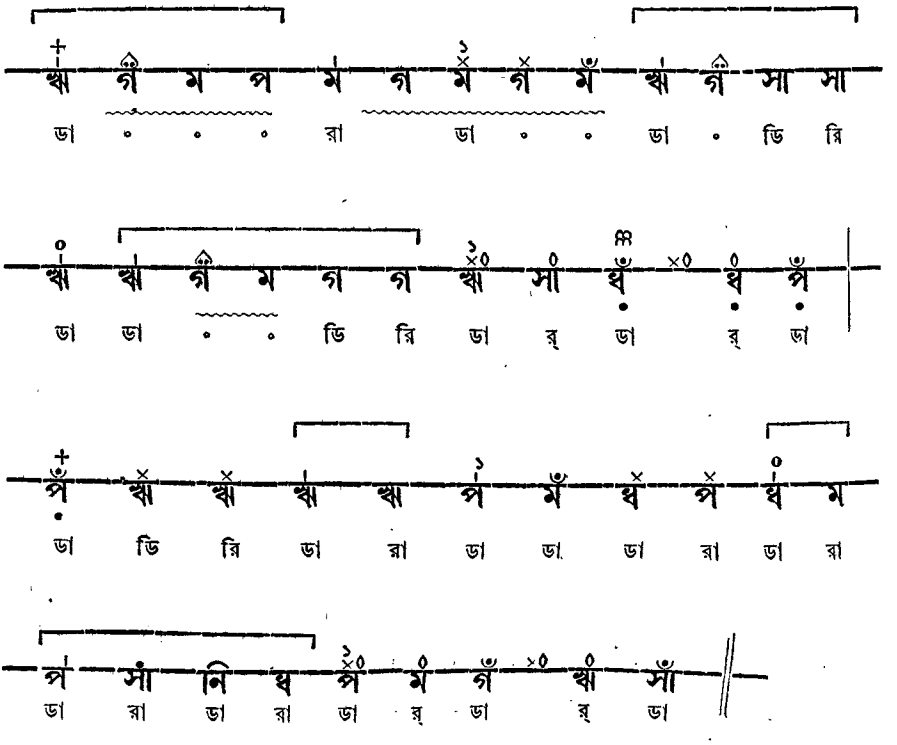

অন্তরা।

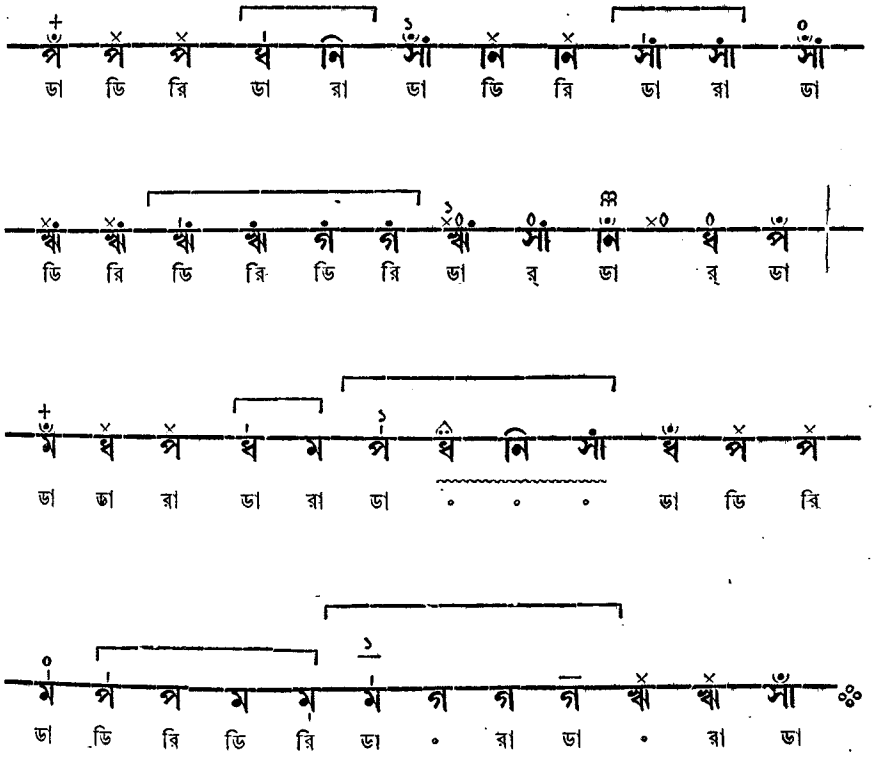

(১৫১)

দেওগিরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

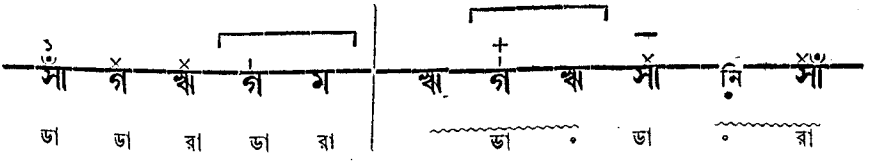

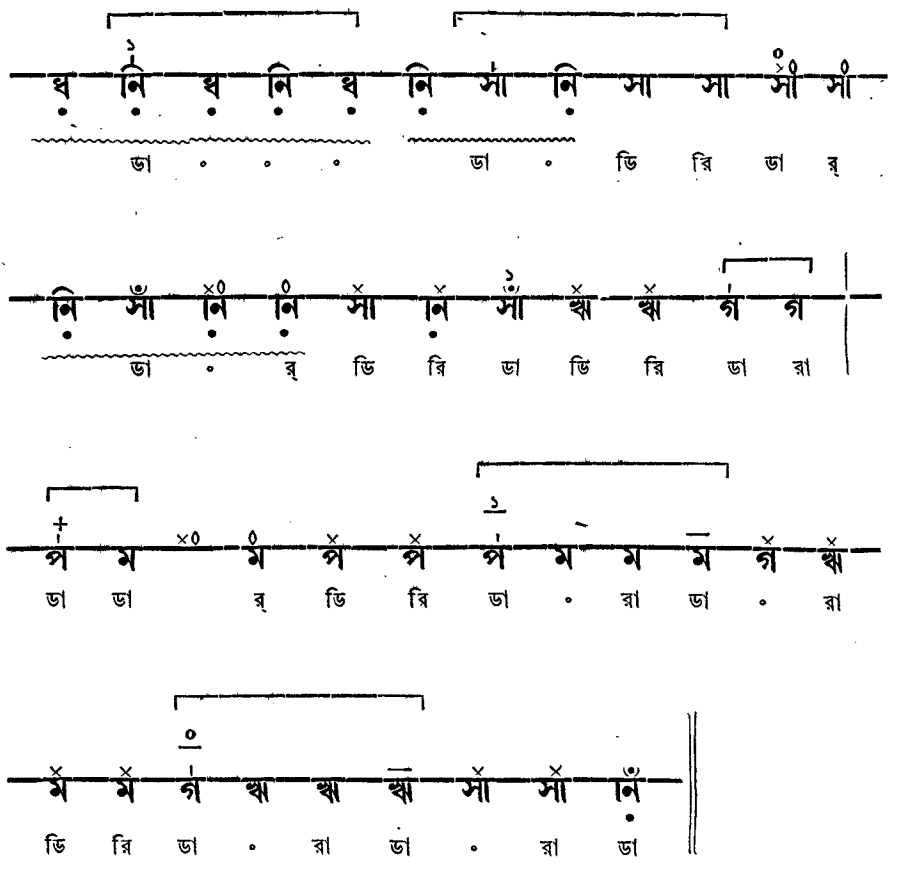
ধ নি ধ নি ধ নি সাঁ নি সা সা সাঁ সাঁ
ডা ০ ০ ০ ডা ০ ডি রি ডা র্
নি সাঁ নি নি সা নি সাঁ ঋ ঋ গ গ
ডা ০ র্ ডি রি ডা ডি রি ডা রা
প ম ম প প প ম ম ম গ ঋ
ডা ডা র্ ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা
ম ম গ ঋ ঋ ঋ সা সা নঁ
ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা

অন্তরা।

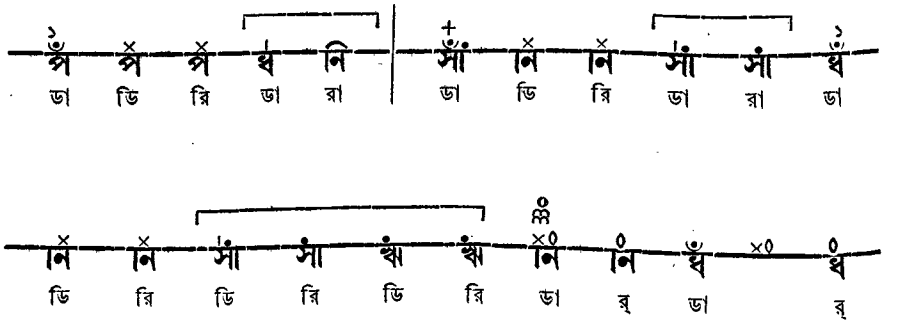
পঁ পঁ পঁ ধ নি সাঁ নি নি সাঁ সাঁ ধঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
নি নি সাঁ সাঁ ঋ ঋ নি নি ধঁ ধ
ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্

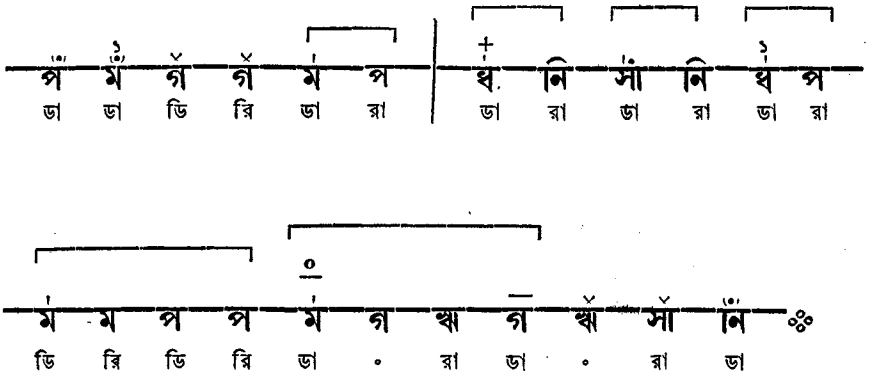

(১৫২)

বেলাবলী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

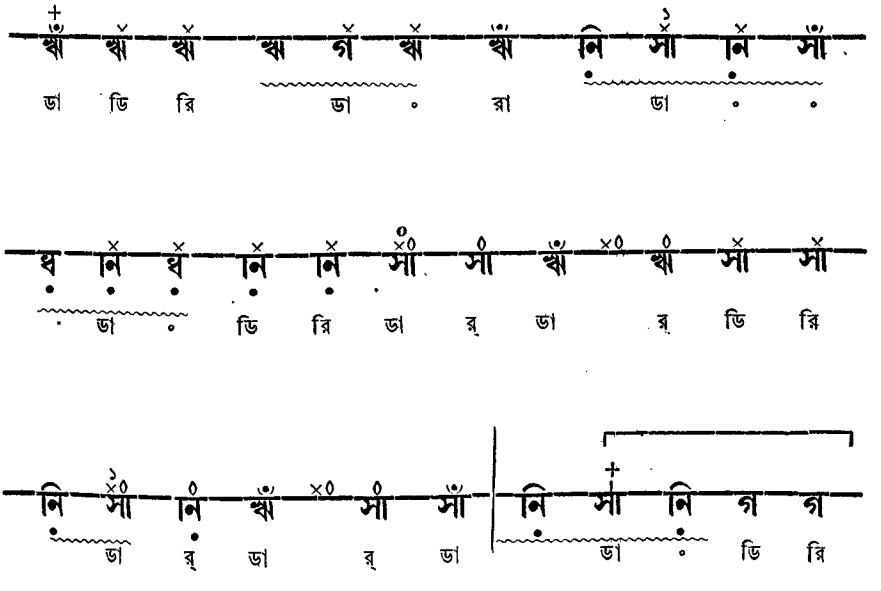

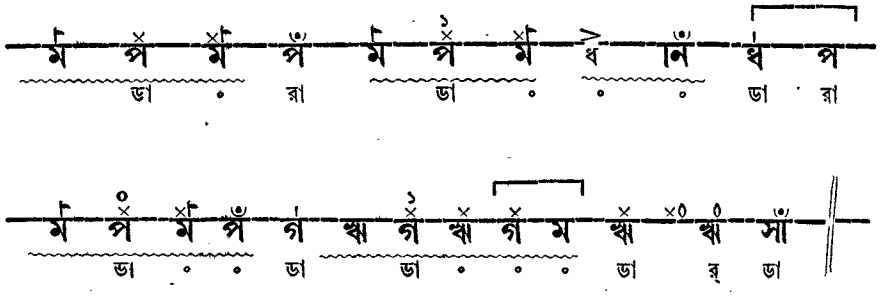
ডা ০ রা ডা ০ ০ ০ ডা রা
ডা ০ ০ ডা ডা ০ ০ ০ ডা র্ ডা

অন্তরা।

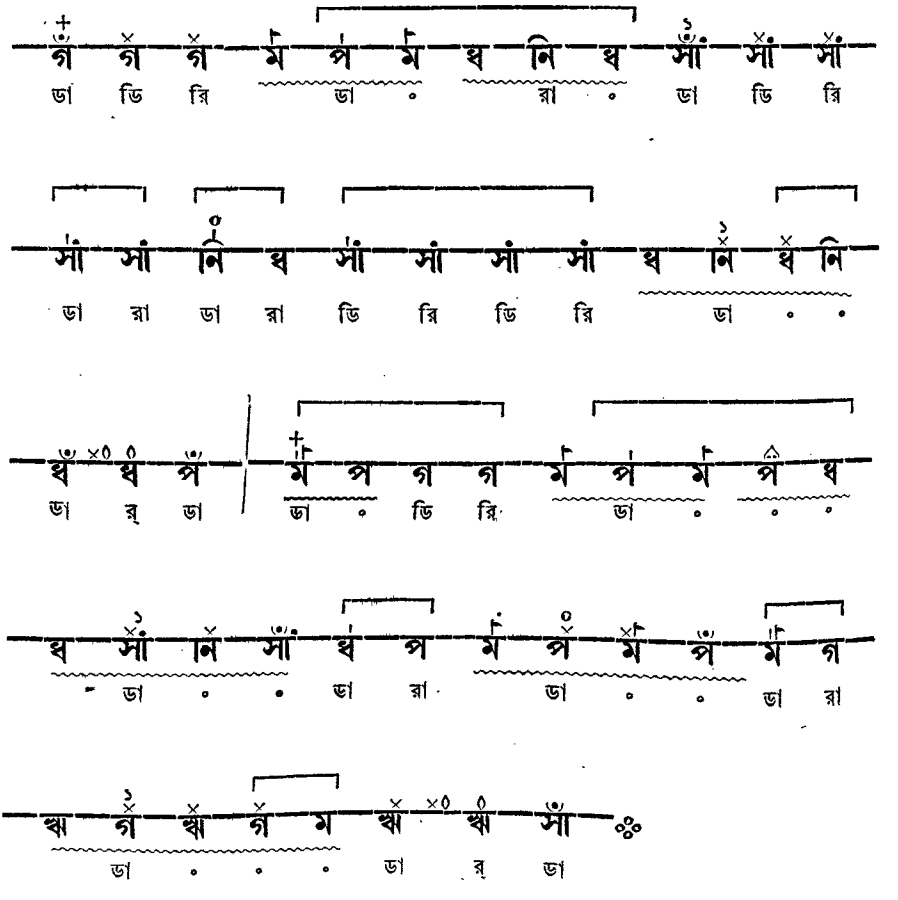
ডা ডি রি ডা ০ রা ০ ডা ডি রি
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা ০ ০
ডা র্ ডা ডা ০ ডি রি ডা ০ ০ ০
ডা ০ ০ ডা রা ডা ০ ০ ডা রা
ডা ০ ০ ০ ডা র্ ডা

(১৫৩)

বারঞা—সম্পূর্ণ।

দ্রুত-ত্রিতালী।

আস্থায়ী।

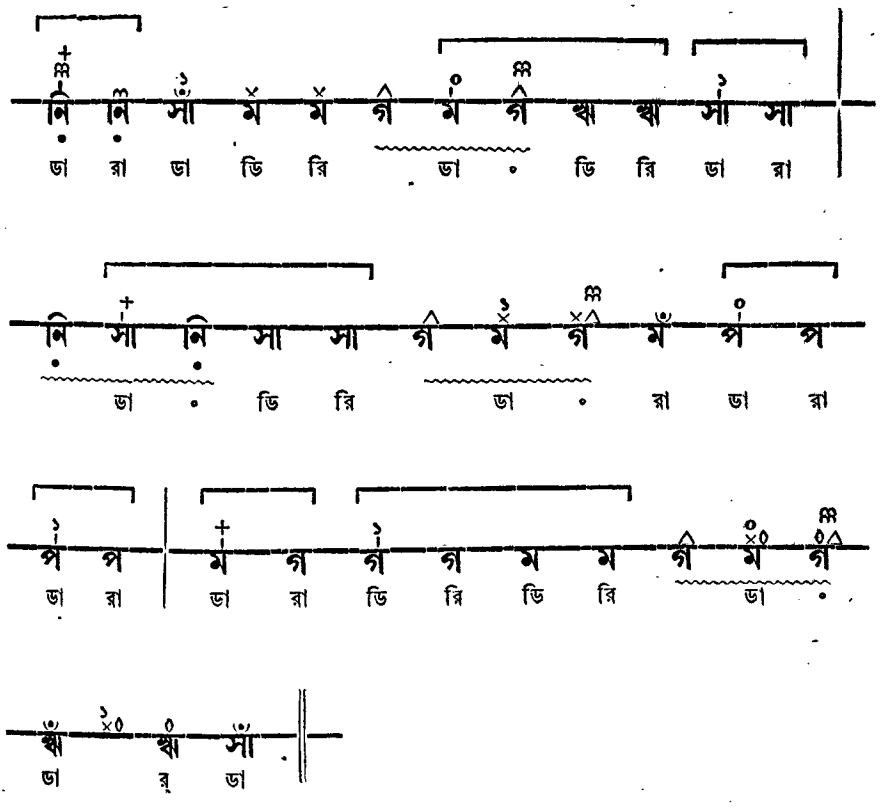

অন্তরা।

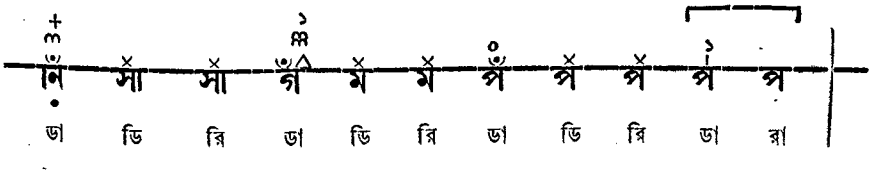

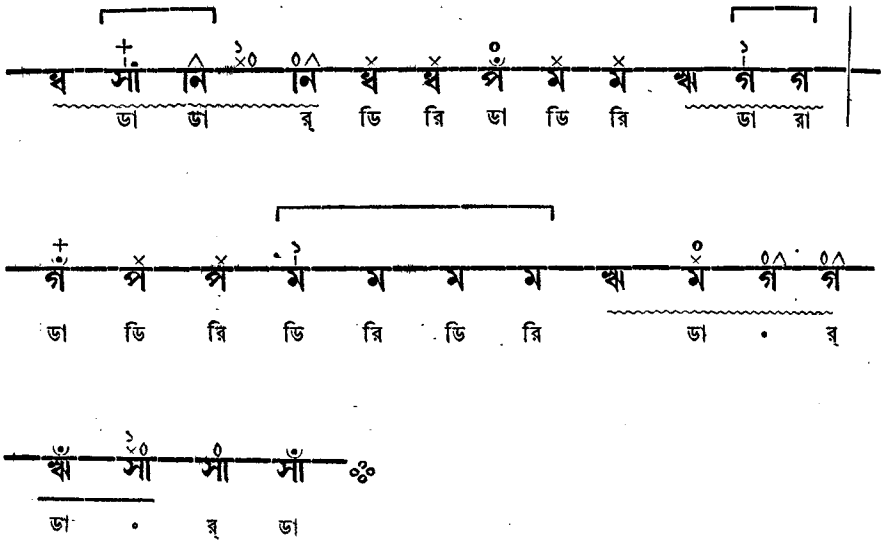

(১৫৪)

ধানশ্রী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ম ধ)

আস্থায়ী

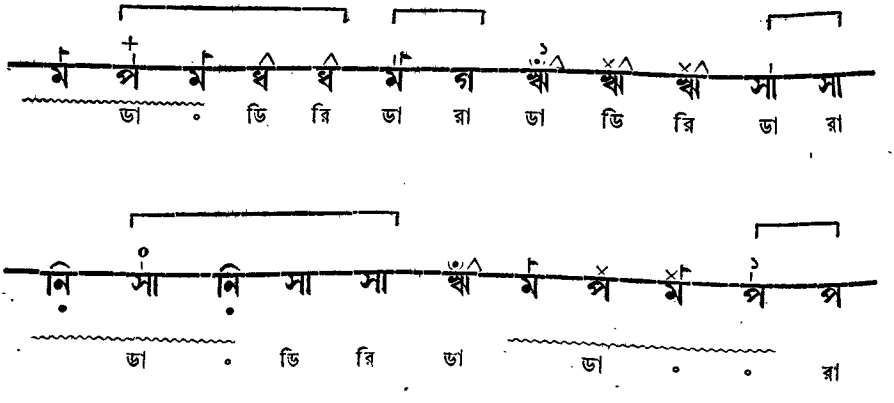

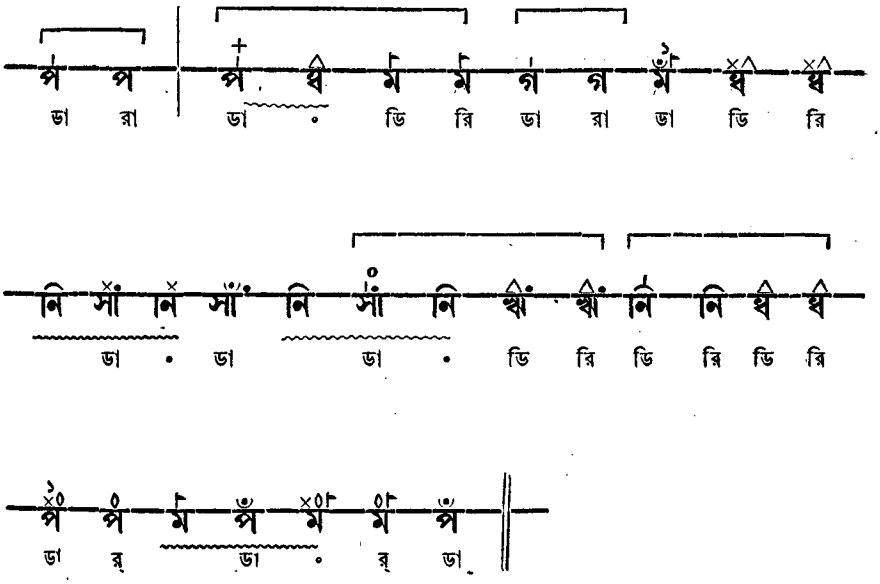
প প | প ধ় ম ম গ গ মঁ ধ় ধ়
ডা রা | ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
নি সাঁ নি সাঁ নি সাঁ নি ঋঁ ঋঁ নি নি ধ় ধ়
ডা ডা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
প প ম পঁ ম ম পঁ
ডা র্ ডা র্ ডা

অন্তরা।

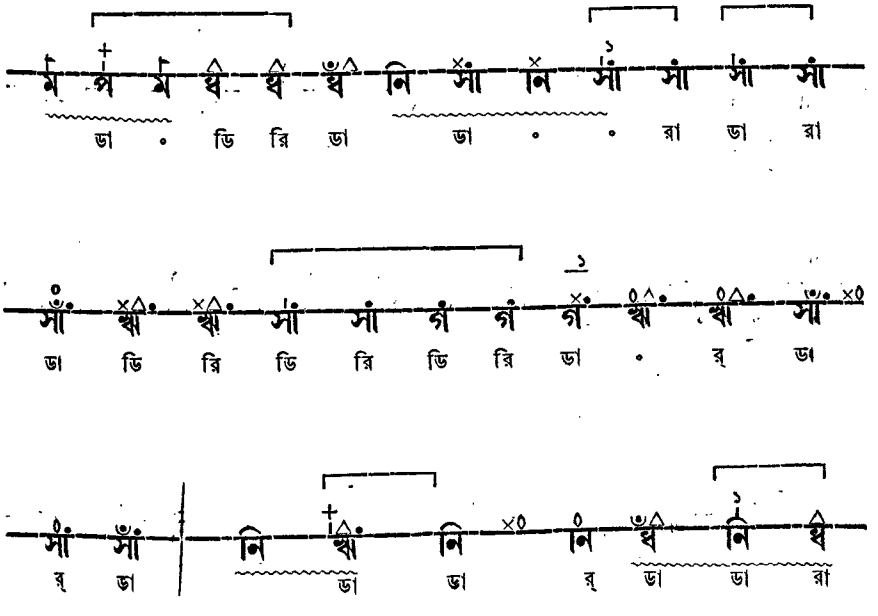
ম প ম ধ় ধ় ধ় নি সাঁ নি সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ
ডা ডি রি ডা ডা রা ডা রা
সাঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ গঁ গঁ গঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্ ডা
সাঁ সাঁ | নি ঋঁ নি নি ধ় নি ধ়
র্ ডা | ডা ডা র্ ডা ডা রা

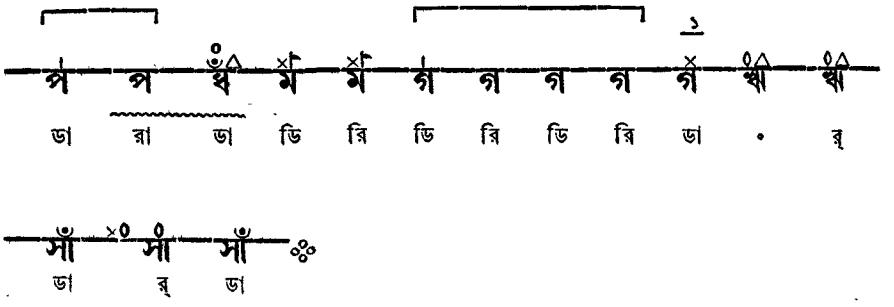

(১৫৫)

পুরিয়া-ধানশ্রী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ম ধ)

আস্থায়ী।

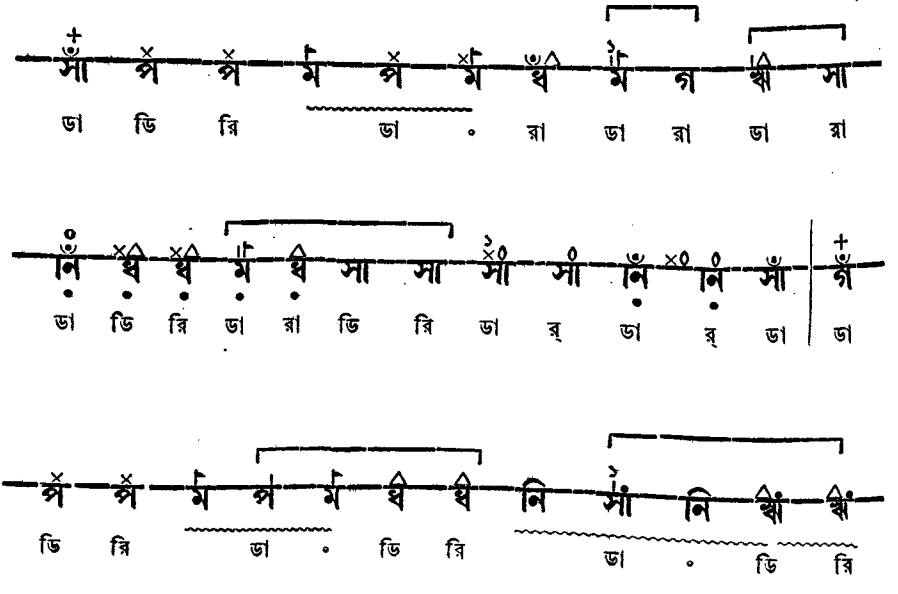

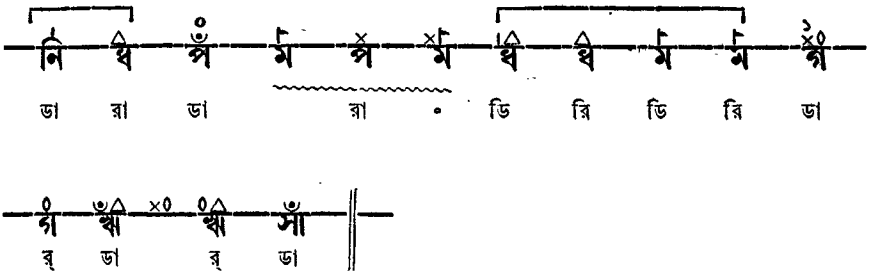
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা
র্ ডা র্ ডা

অন্তরা।

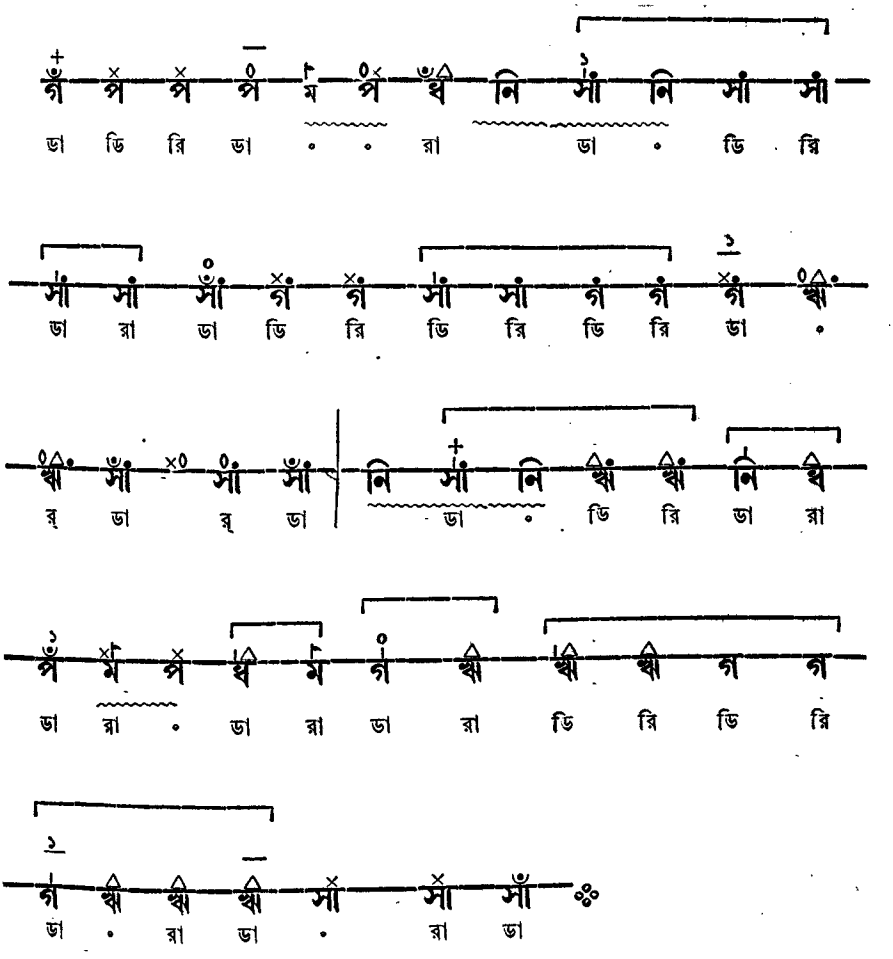
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা
র্ ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা রা
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি
ডা রা ডা রা

(১৫৬)

বরাড়ী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ম ধ)

আস্থায়ী।

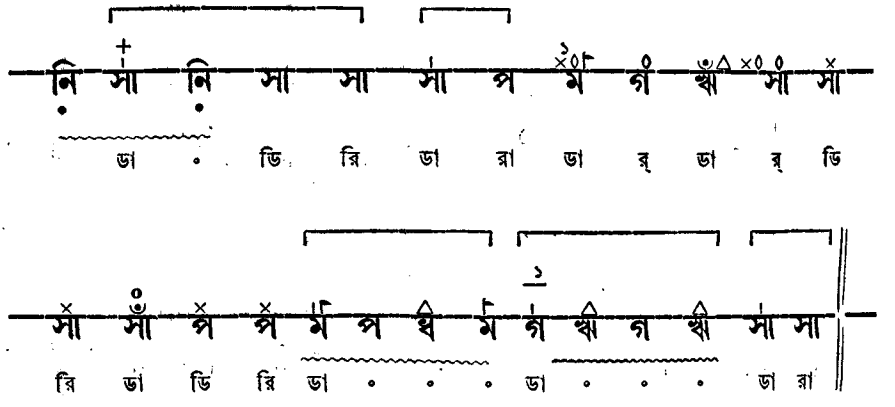

অন্তরা।

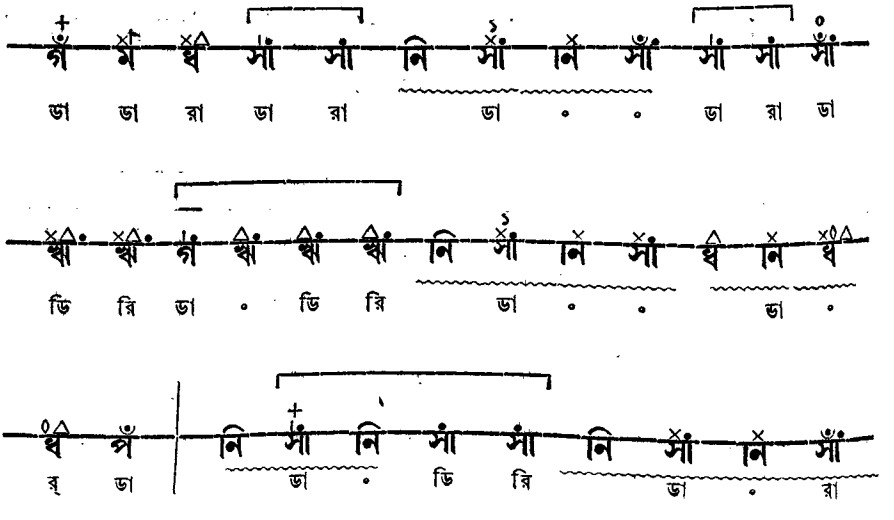

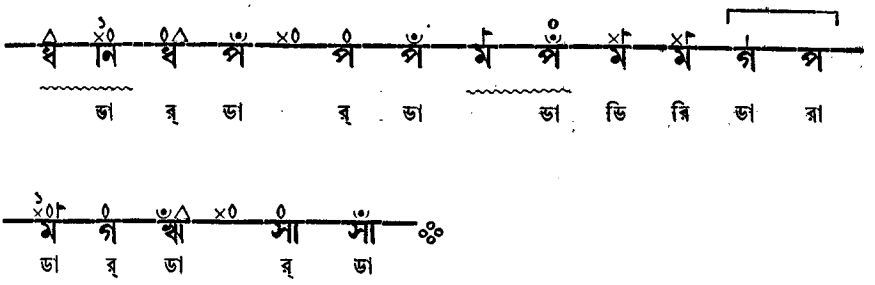

(১৫৭)

চিত্রাগৌরী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ)

আস্থায়ী।

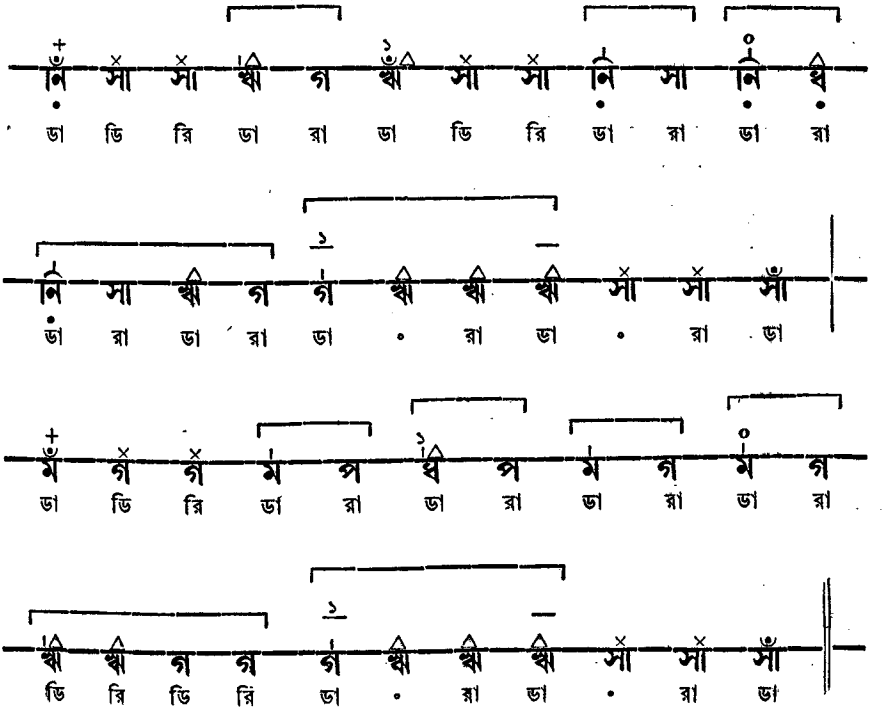

অন্তরা।

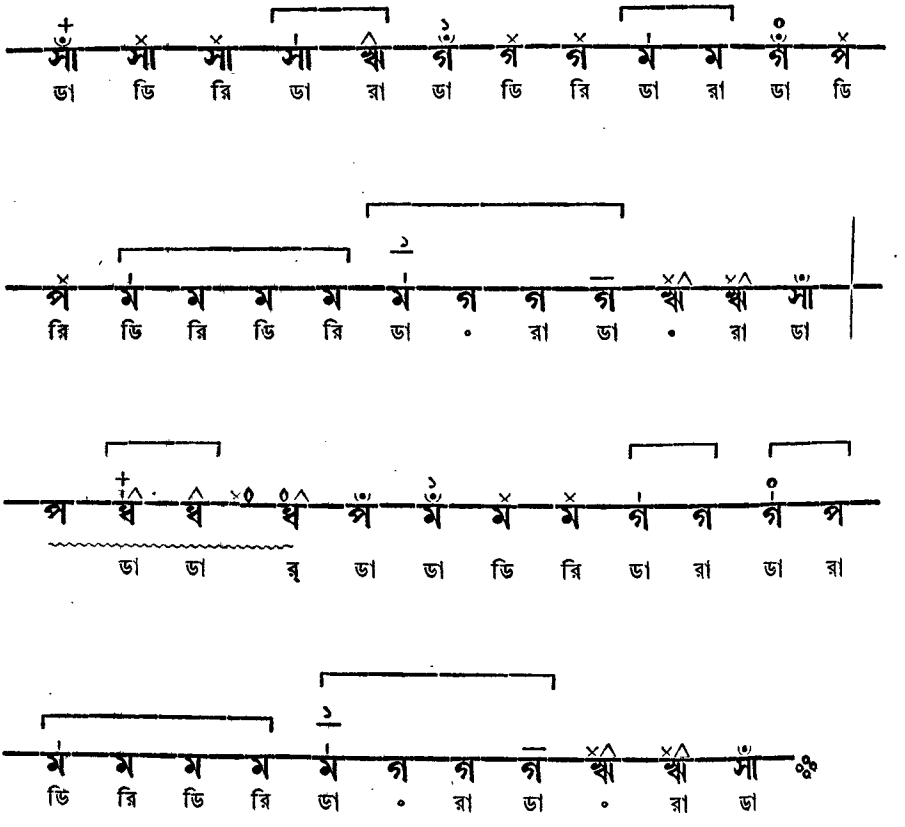

(১৫৮)

দেশ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

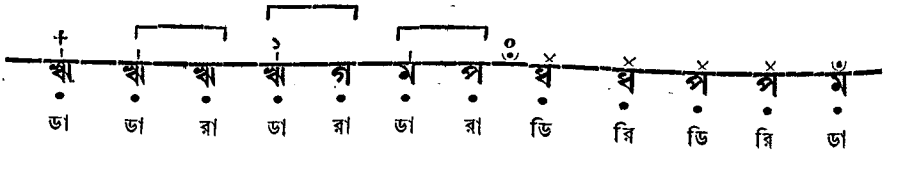

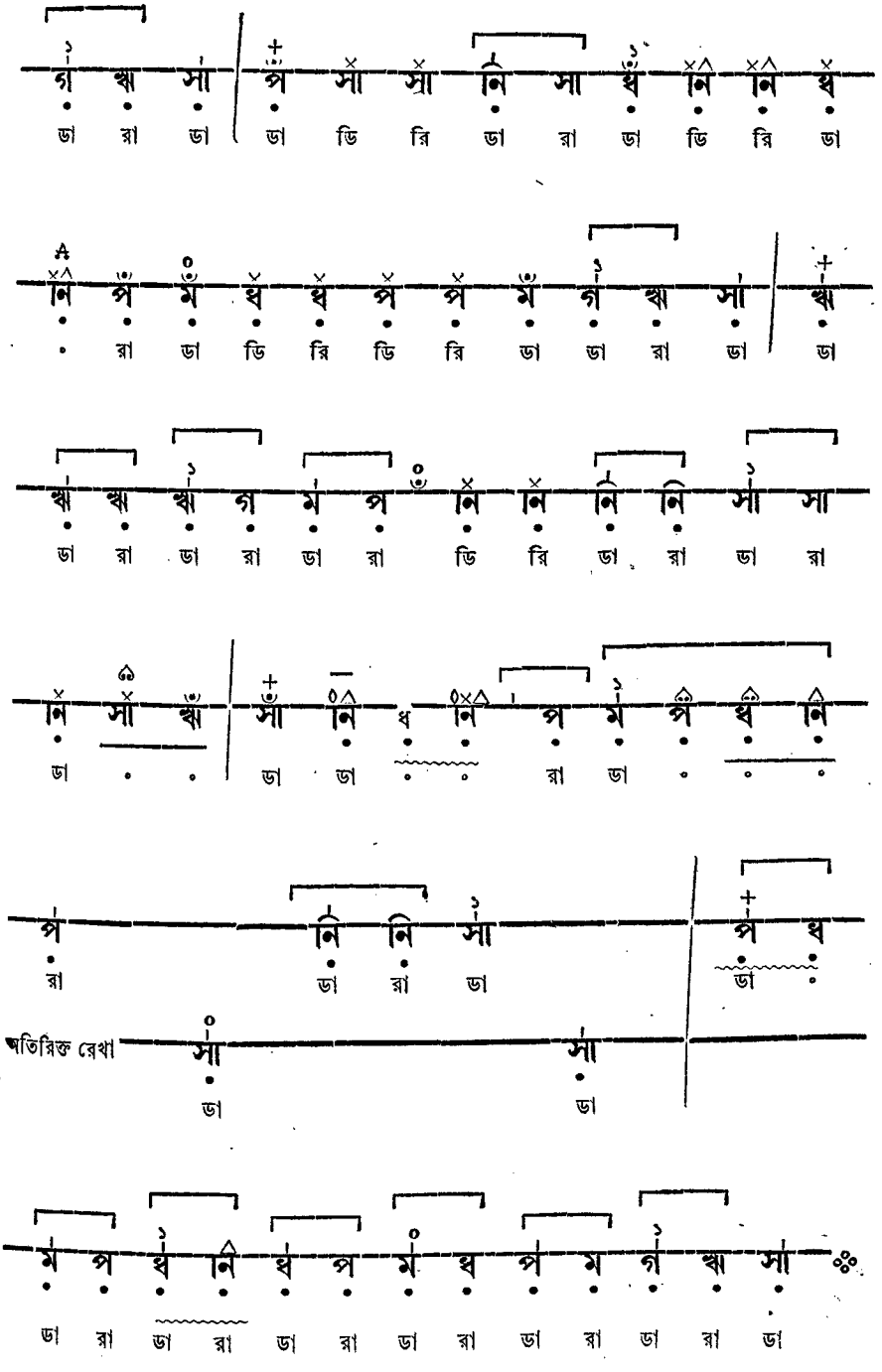
অতিরিক্ত রেখা

(১৫৯)

শ্যাম—সম্পূর্ণ।

একতালা।

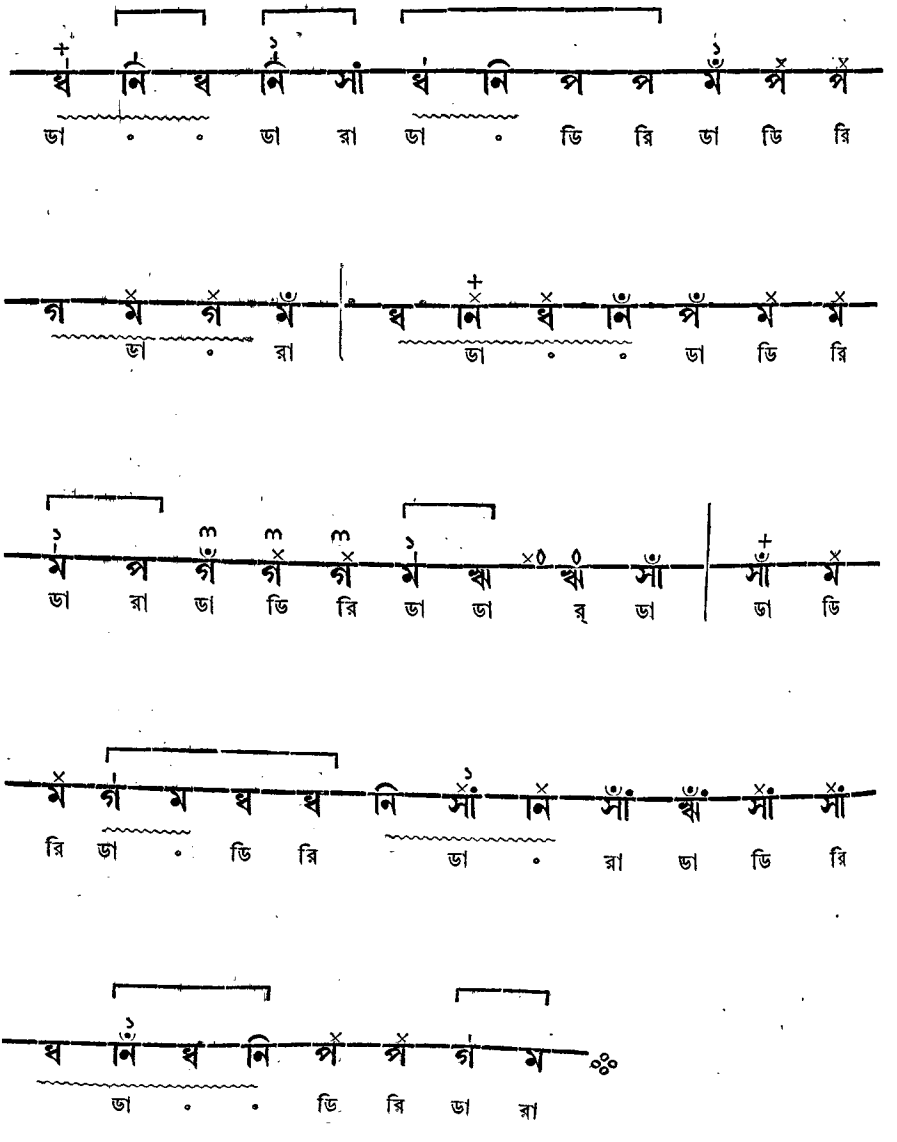
ধ নি ধ নি সাঁ ধ নি প প মঁ পঁ গঁ
ডা ০ ০ ডা রা ডা ০ ডি রি ডা ডি রি
গ মঁ গ মঁ | ধ নি ধ নিঁ পঁ মঁ মঁ
ডা ০ রা | ডা ০ ০ ডা ডি রি
মঁ পঁ গঁ গঁ গঁ মঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ | সাঁ মঁ
ডা রা ডা ডি রি ডা ডা র্ ডা | ডা ডি
মঁ গ মঁ ধ ধ নি সাঁ নঁ সাঁ ঋঁ সাঁ সাঁ
রি ডা ০ ডি রি ডা ০ রা ডা ডি রি
ধ নিঁ ধ নি পঁ পঁ গ মঁ
ডা ০ ০ ডি রি ডা রা

(১৬০)

কামোদ—সম্পূর্ণ।

একতালা।

আস্থায়ী।

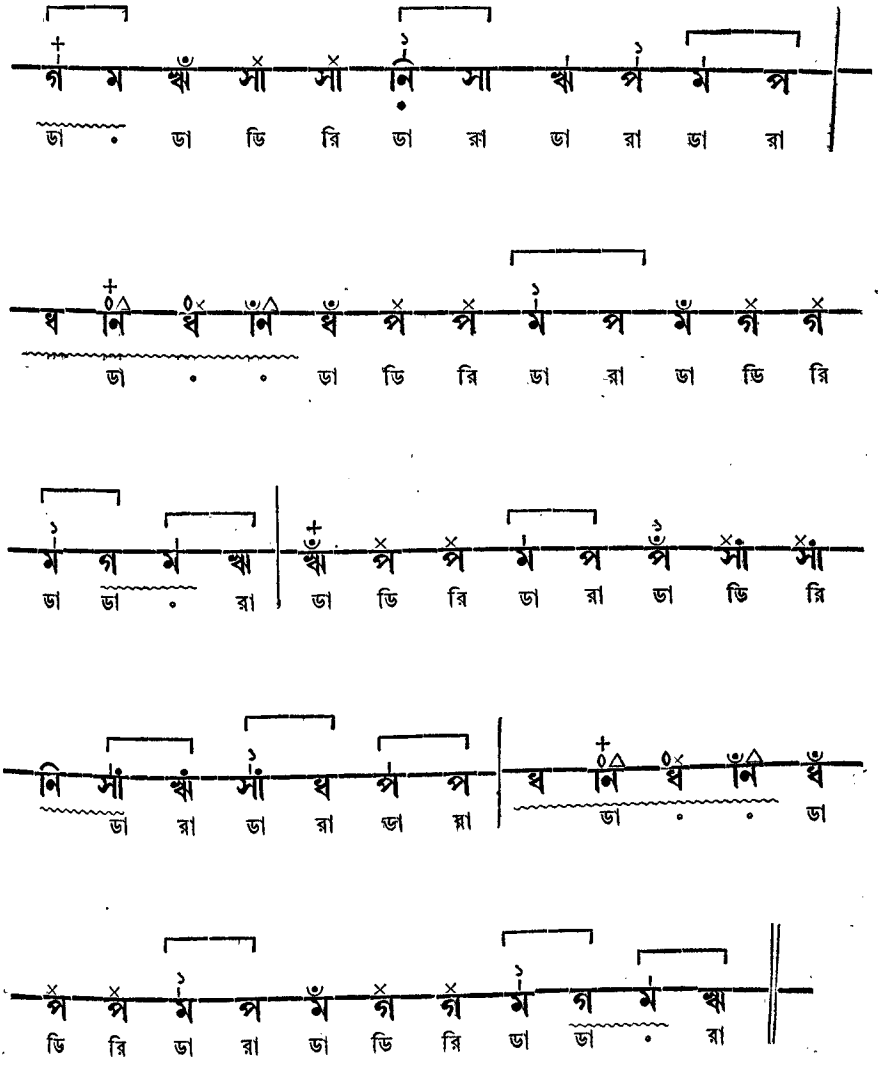
গ ম ঋঁ সাঁ সাঁ নি সা ঋ প ম প
ডা · ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা
ধ নি ধ নি ধঁ প প ম প মঁ গ গ
ডা · · ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
ম গ ম ঋ ঋঁ প প ম প পঁ সাঁ সাঁ
ডা ডা · রা ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
নি সাঁ ঋঁ সাঁ ধ প প ধ নি ধ নি ধঁ
ডা রা ডা রা ডা রা ডা · · ডা
প প ম প মঁ গ গ ম গ ম ঋ
ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডা · রা

অন্তরা।

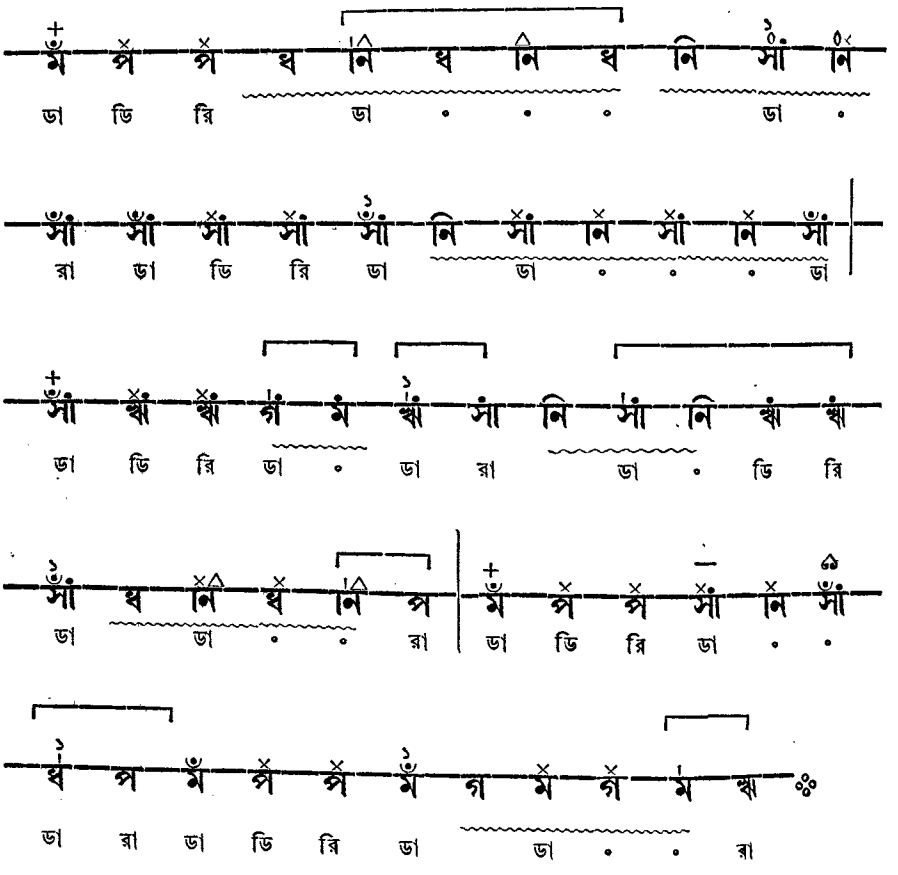

(১৬১)

কল্যাণ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ম)

আস্থায়ী।

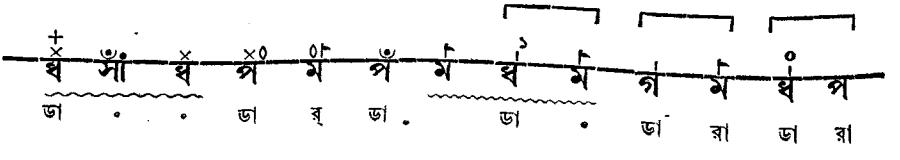

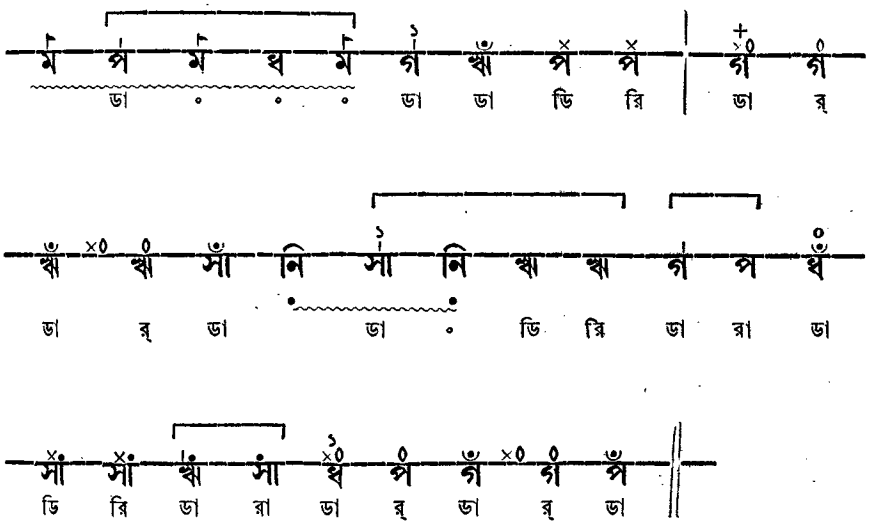
ডা ডা ডি রি ডা র্
ডা ডি রি ডা রা ডা
ডি রি ডা রা ডা র্ ডা র্ ডা

অন্তরা।

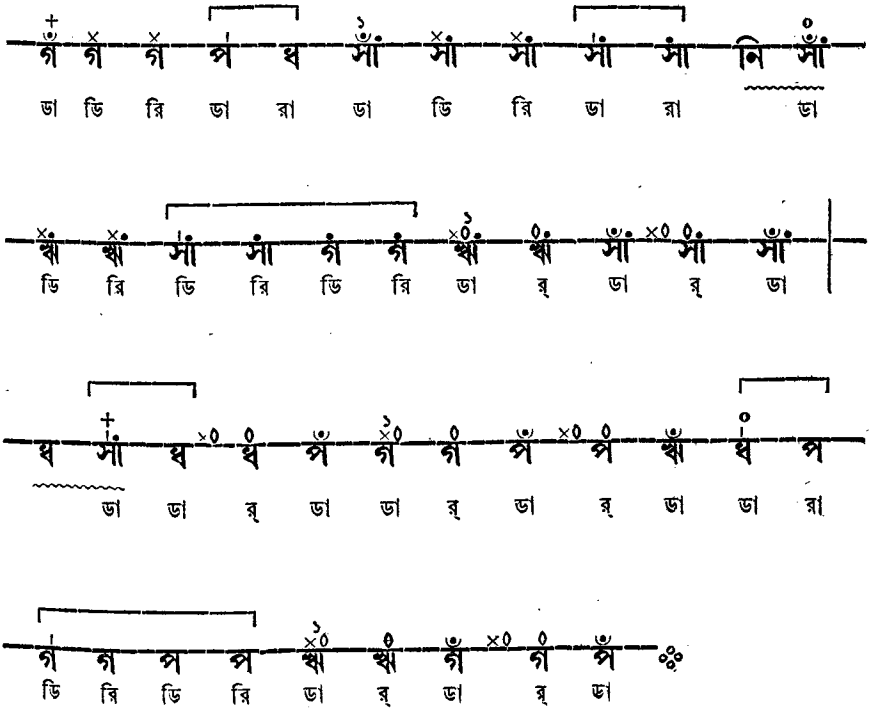
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ডা ডা র্ ডা ডা র্ ডা র্ ডা ডা রা
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা

(১৬২)

পুরিয়া—খাড়ব*।

মধ্যমান।

(ঋ ম)

আস্থায়ী।

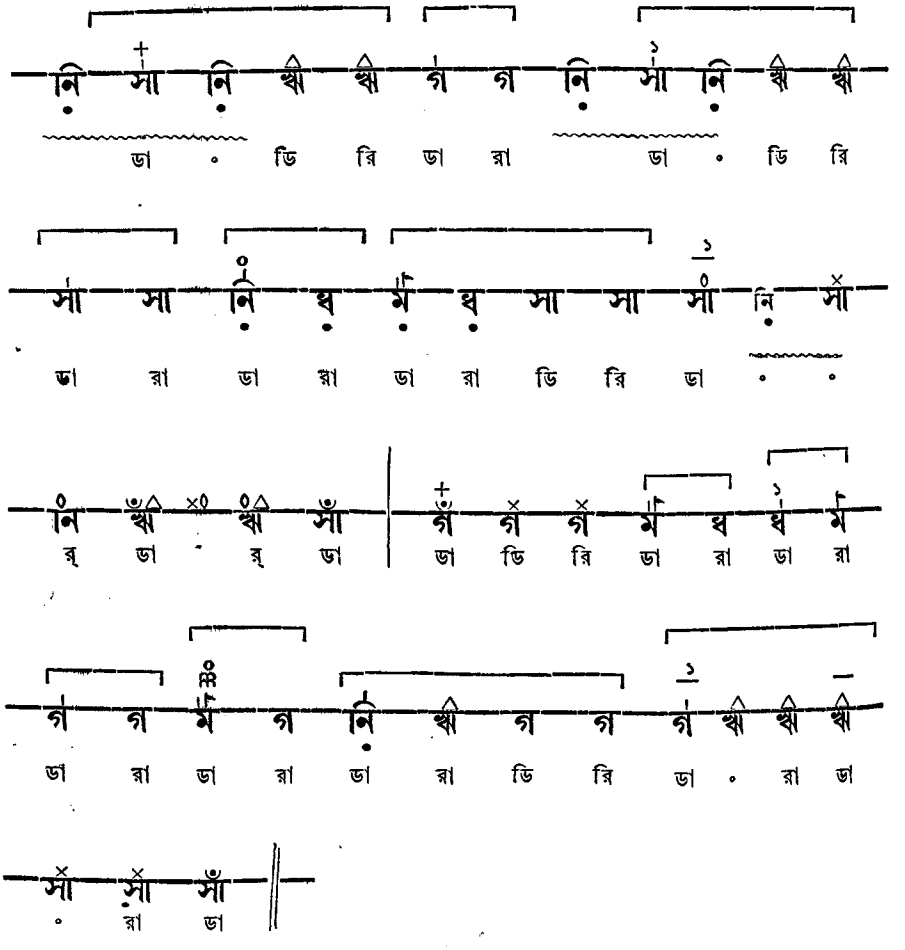

* ইহার পঞ্চম বিবাদী।

অন্তরা।

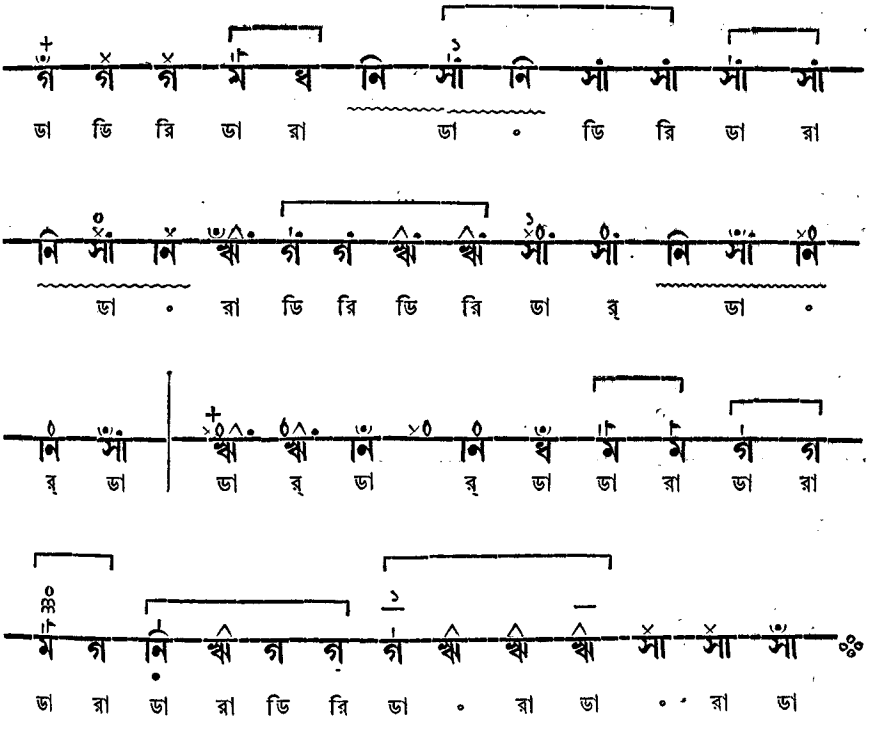

(১৬৩)

জঁয়েৎ—খাড়ব*।

মধ্যমান।

(ঋঁম)

আস্থায়ী।

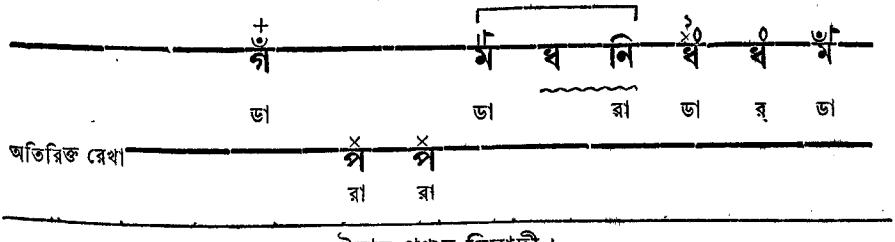

* ইহার পঞ্চম বিবাদী।

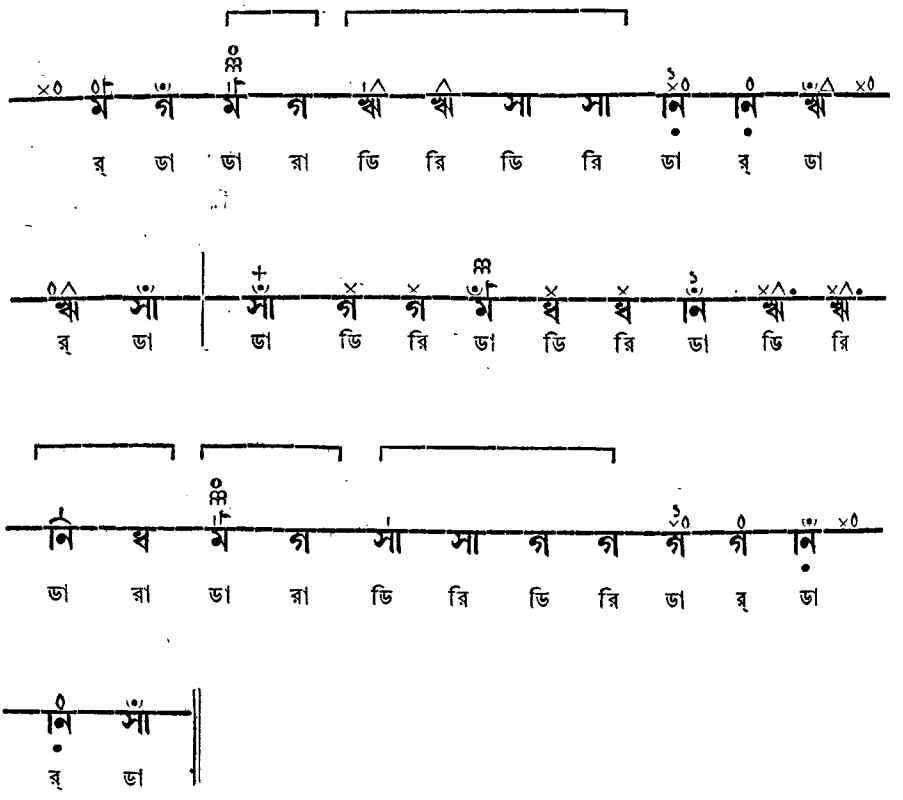
র্ ডা ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা
র্ ডা ডা ডি রি ডা ডি রি ডা ডি রি
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা
র্ ডা

অন্তরা।

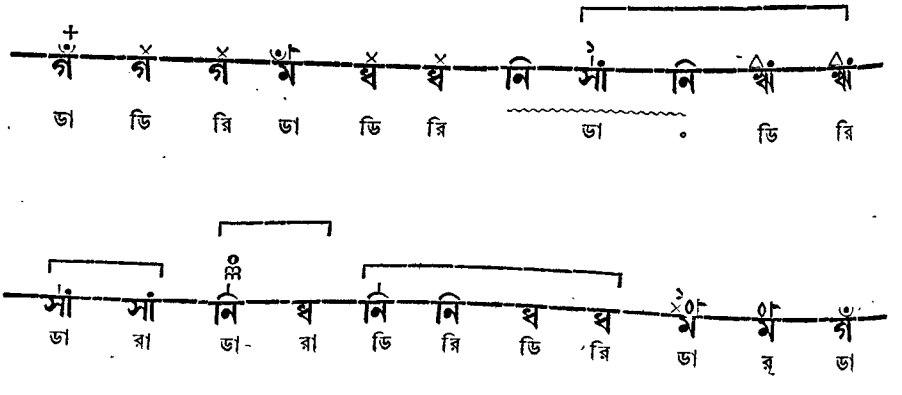
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা ডি রি
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা

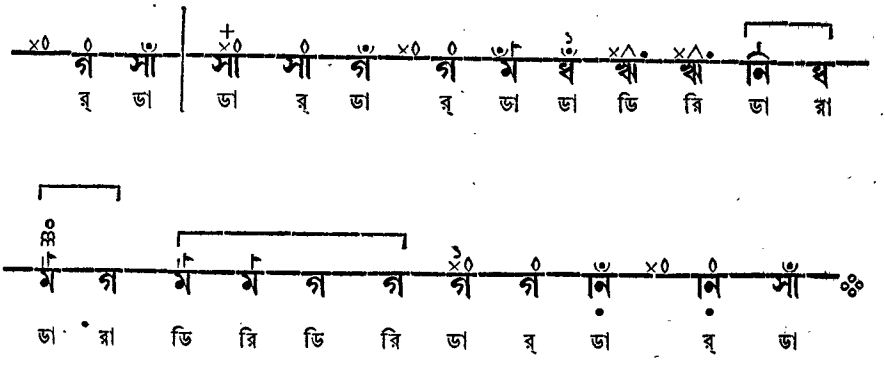

(১৬৪)

ইমন্-ভূপালী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

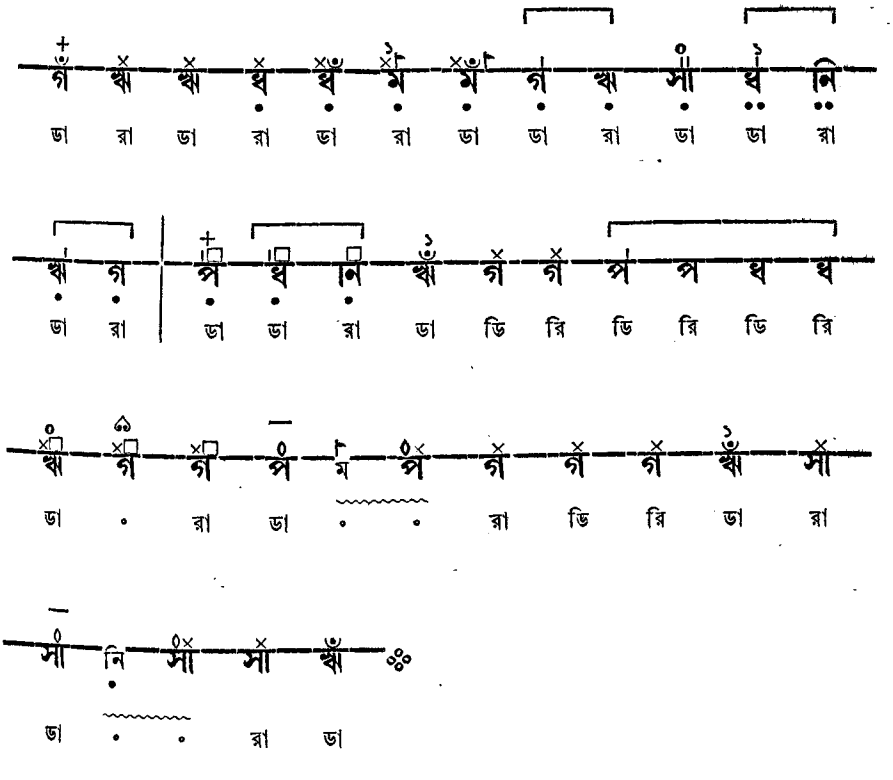

(১৬৫)

দেশ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

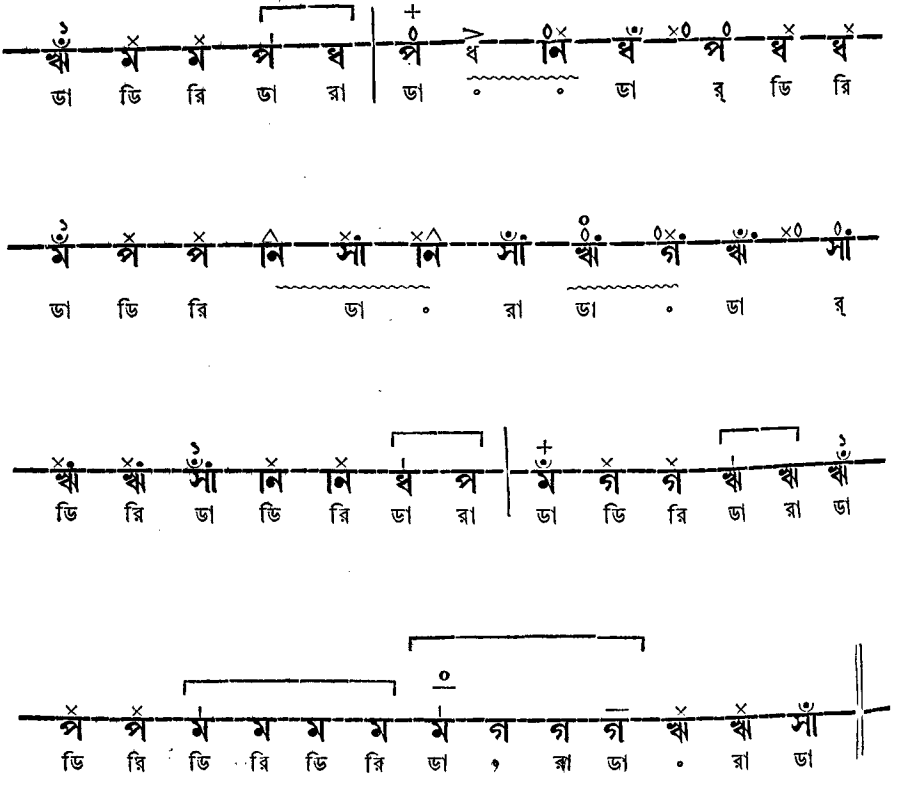

অন্তরা।

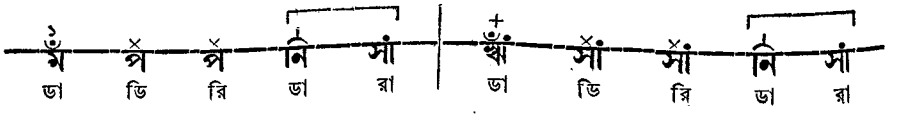

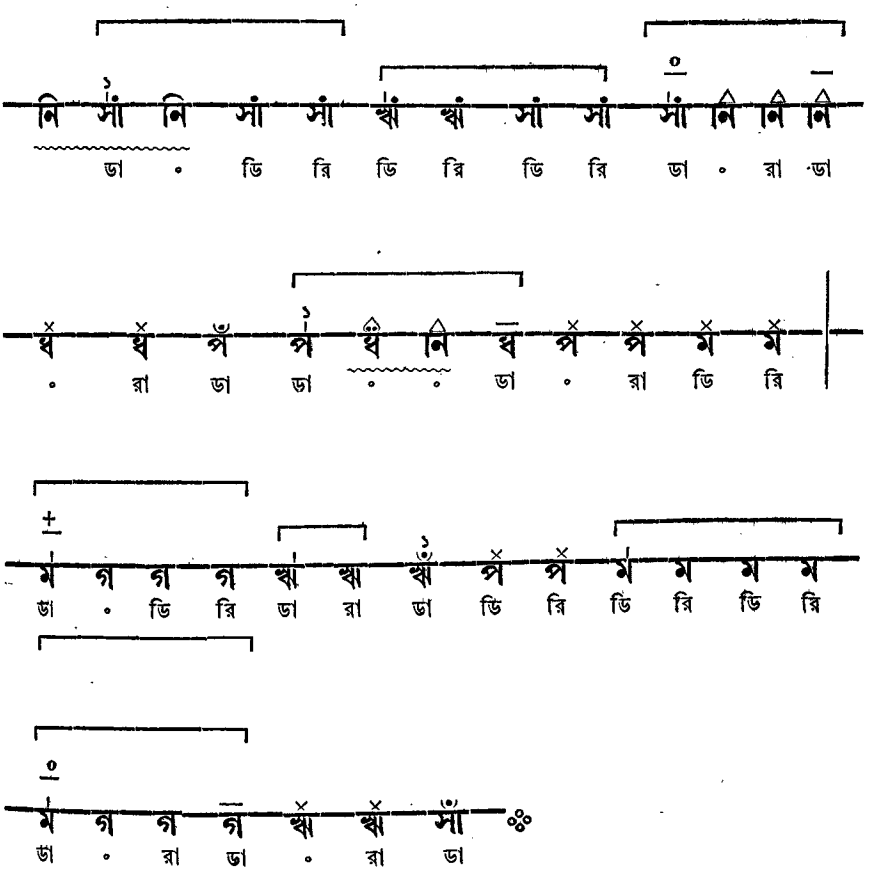

(১৬৬)

বিভাস—খাড়ব।

মধ্যমান।

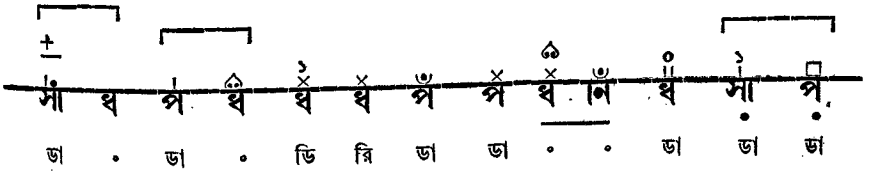

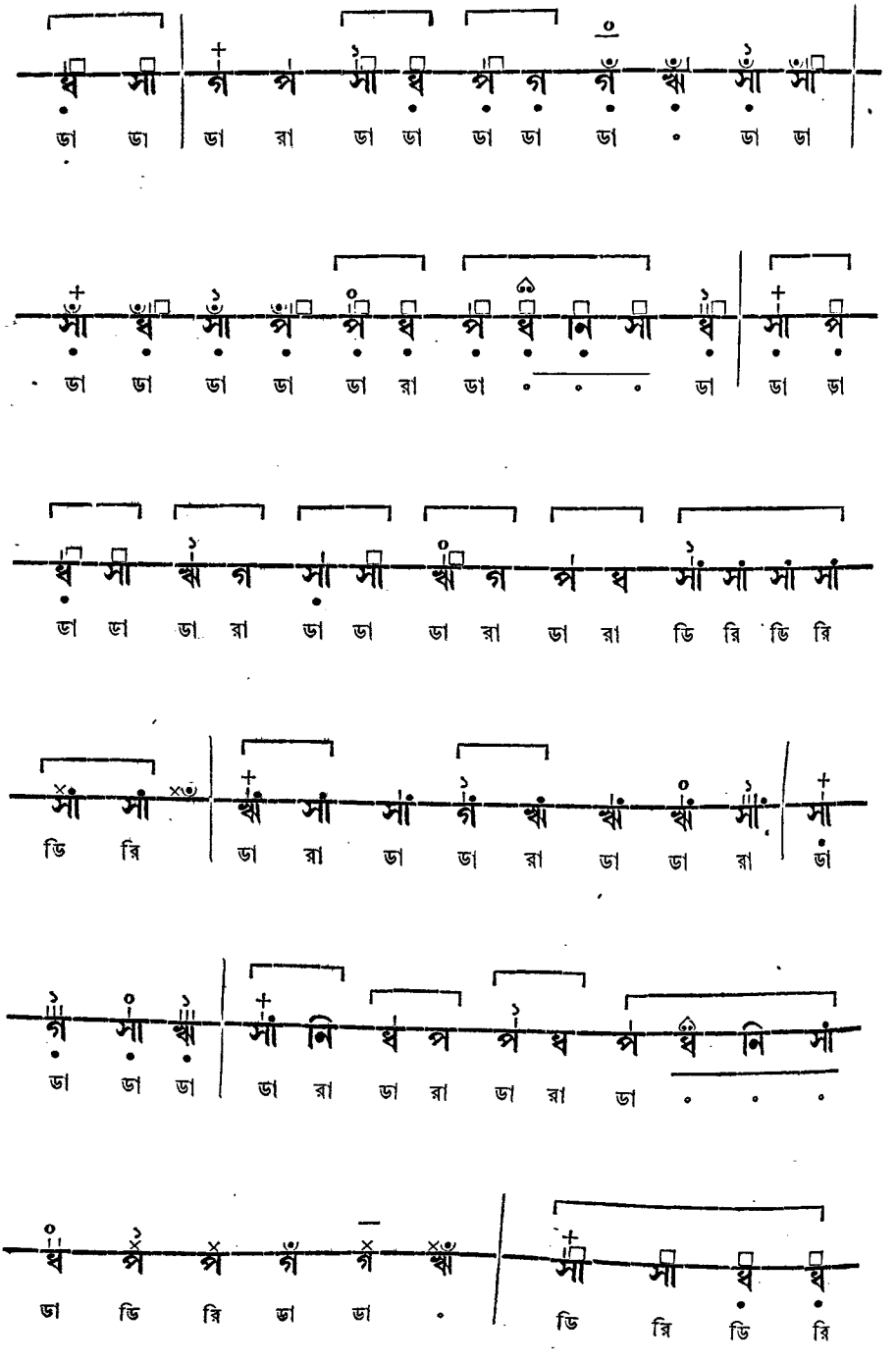
ডা ডা ডা রা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা
ডা ডা ডা ডা ডা রা ডা ডা ডা ডা ডা
ডা ডা ডা রা ডা ডা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি
ডি রি ডা রা ডা ডা রা ডা ডা রা ডা
ডা ডা ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
ডা ডি রি ডা ডা ডি রি ডি রি

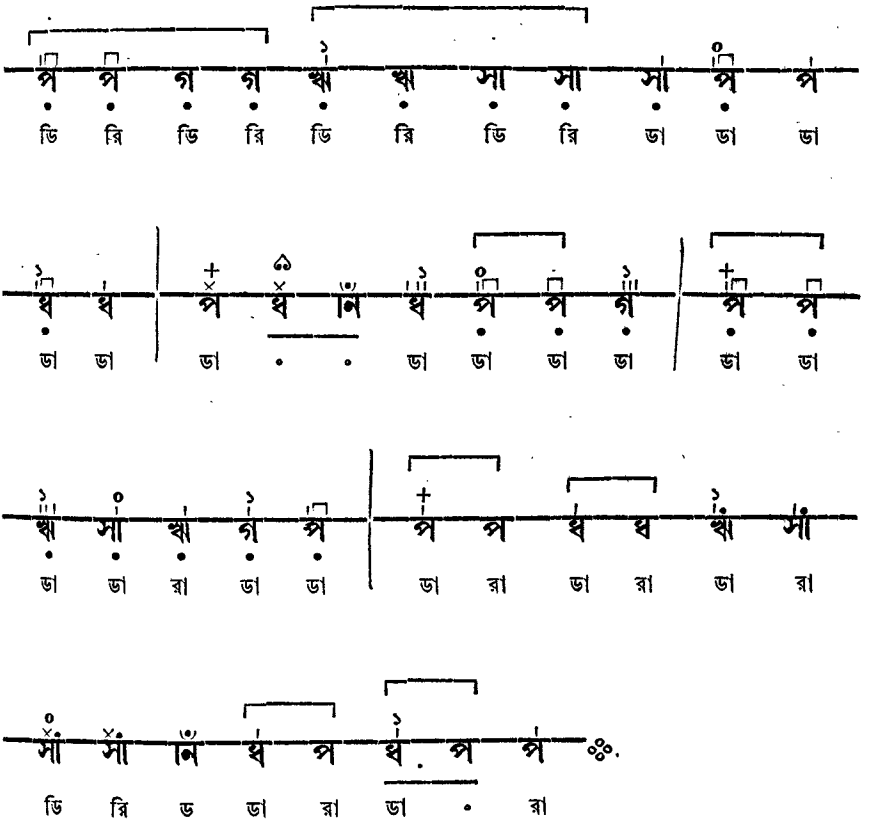

(১৬৭)

আলাহিয়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

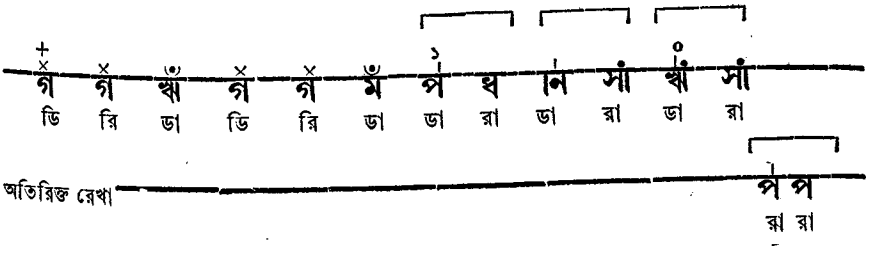

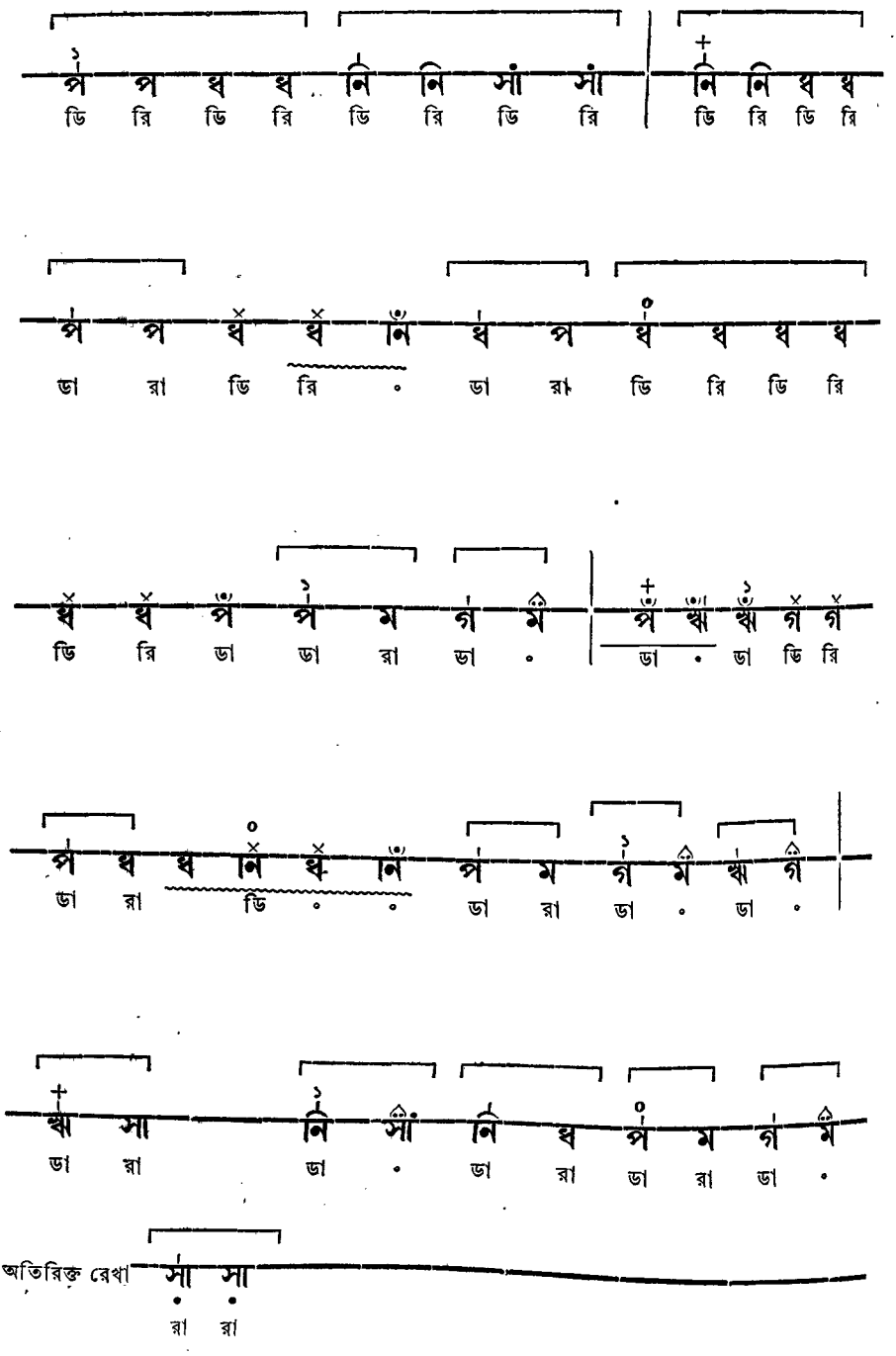
প প ধ ধ নি নি সাঁ সাঁ | নি নি ধ ধ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি | ডি রি ডি রি
প প ধ ধ নঁ ধ প ধ ধ ধ ধ
ডা রা ডি রি ডা রা ডি রি ডি রি
ধ ধ পঁ প ম গ মঁ | পঁ ঋঁ ঋঁ গ গ
ডি রি ডা ডা রা ডা | ডা ডা ডি রি
প ধ ধ নঁ ধ নঁ প ম গ মঁ ঋঁ গ
ডা রা ডি ডা রা ডা ডা ডা
ঋ সা নি সাঁ নি ধ প ম গ মঁ
ডা রা ডা ডা রা ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা সা সা
রা রা

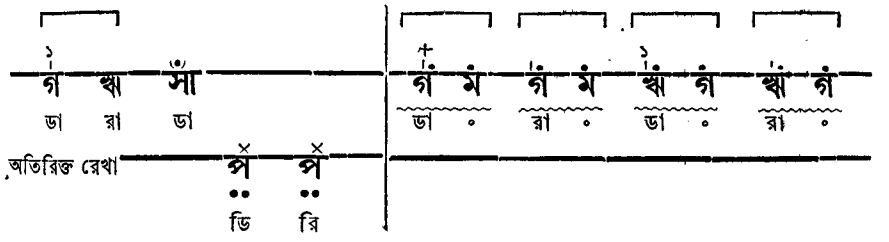
গ ঋ সাঁ
ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা প প
ডি রি
গং মং গং মং ঋং গং ঋং গং
ডা ০ রা ০ ডা ০ রা ০

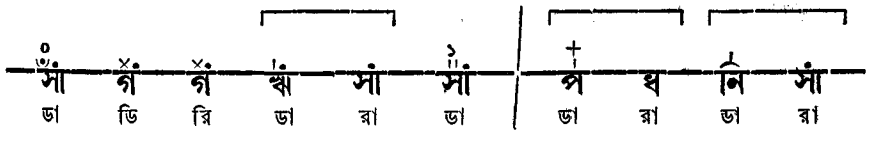
সাঁ গং গং ঋং সাং সাং
ডা ডি রি ডা রা ডা
প ধ নি সাং
ডা রা ডা রা

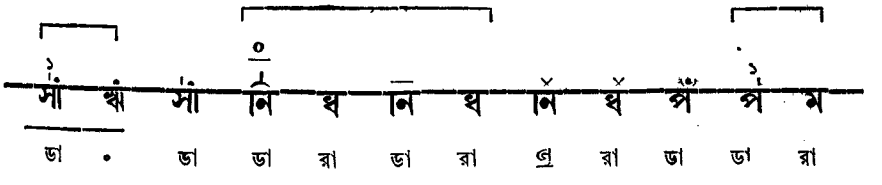
সাং ঋং সাং নি ধ ন ধ ন ধ প প ম
ডা ডা ডা রা ডা রা গ রা ডা ডা রা

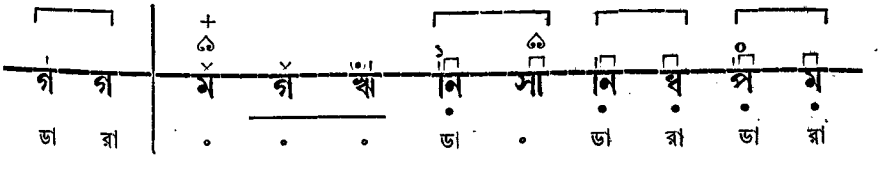
গ গ
ডা রা
ম গ ঋ নি সা নি ধ প ম
ডা ০ ডা রা ডা রা
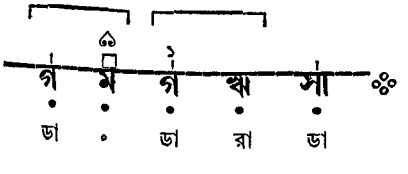
গ ম গ ঋ সা
ডা ০ ডা রা ডা

(১৬৮)

পাহাড়ী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

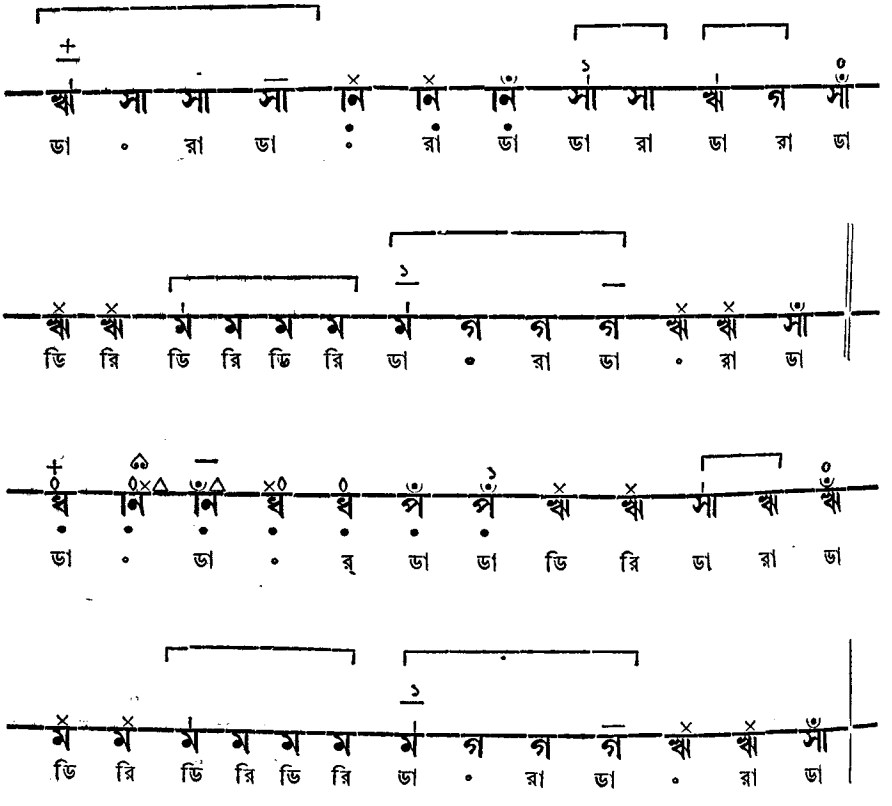
ঋা সা সা সা নি নি নি সা সা ঋা গ সাঁ
ডা ০ রা ডা ০ রা ডা ডা রা ডা রা ডা
ঋা ঋা ম ম ম ম ম গ গ গ ঋা ঋা সাঁ
ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা
ঋ নি নি ঋ ঋ পঁ পঁ ঋা ঋা সা ঋা ঋাঁ
ডা ০ ডা ০ র্ ডা ডা ডি রি ডা রা ডা
ম ম ম ম ম ম ম গ গ গ ঋা ঋা সাঁ
ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা

অন্তরা।

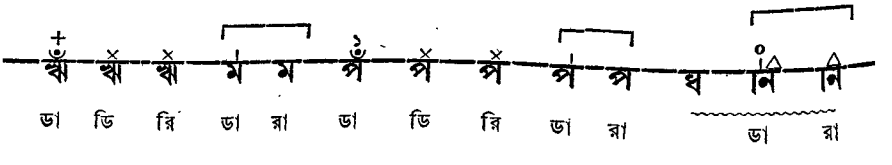

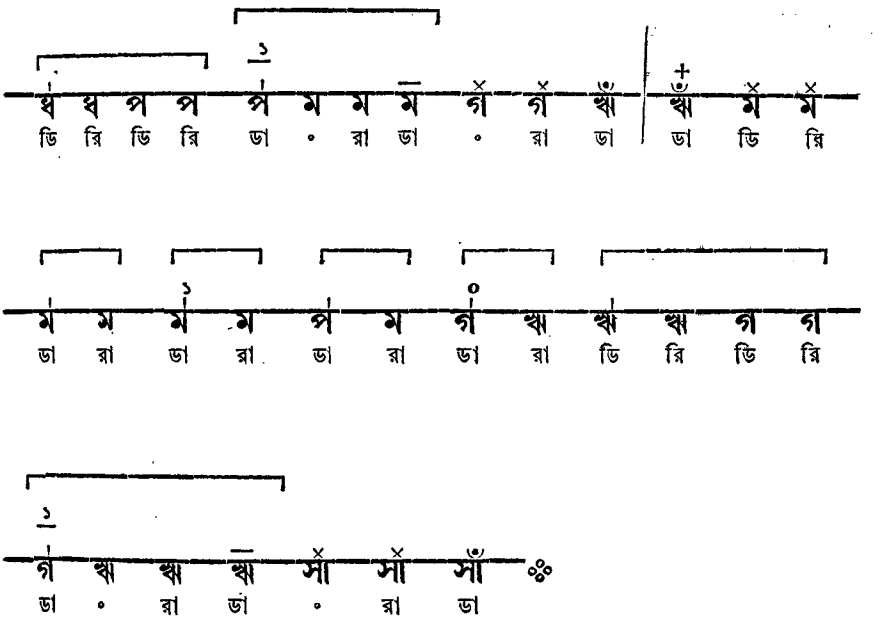

(১৬৯)

লুম—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

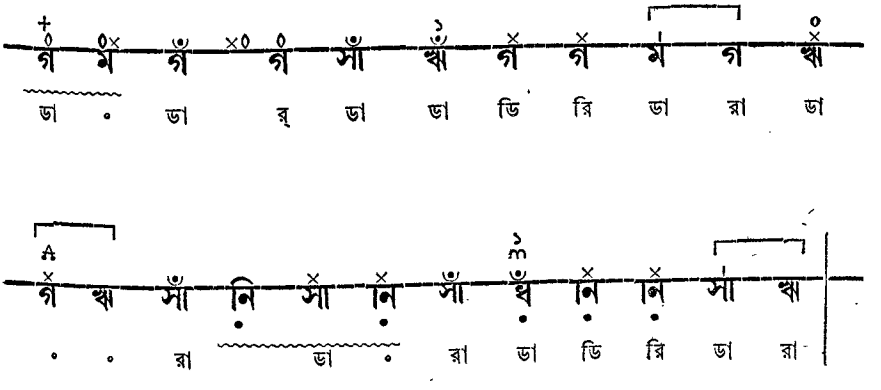

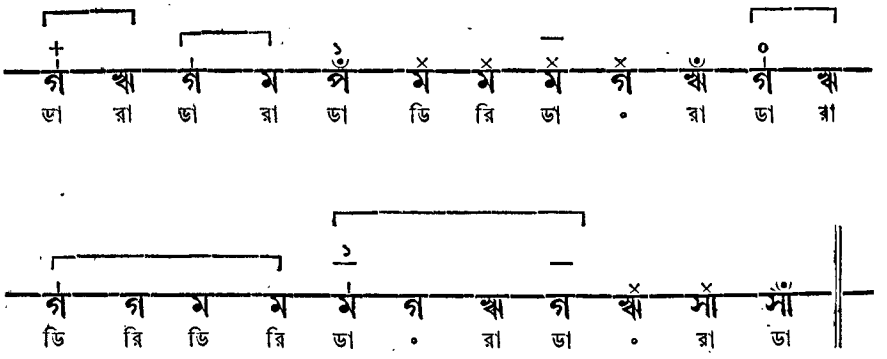

অন্তরা।

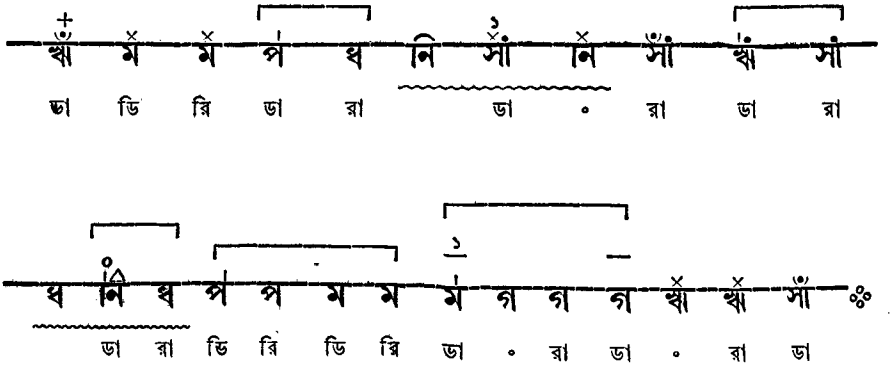

(১৭০)

গারা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

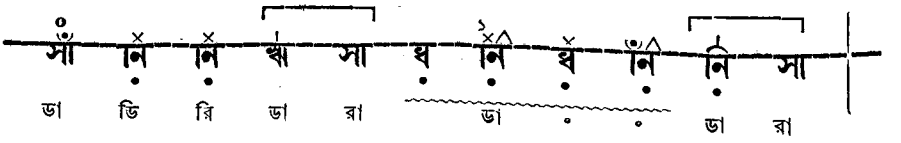

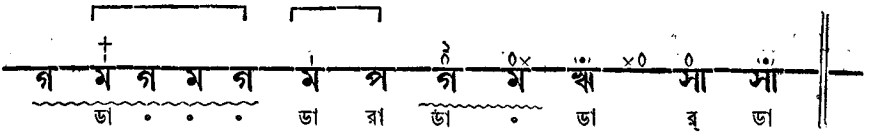

অন্তরা।

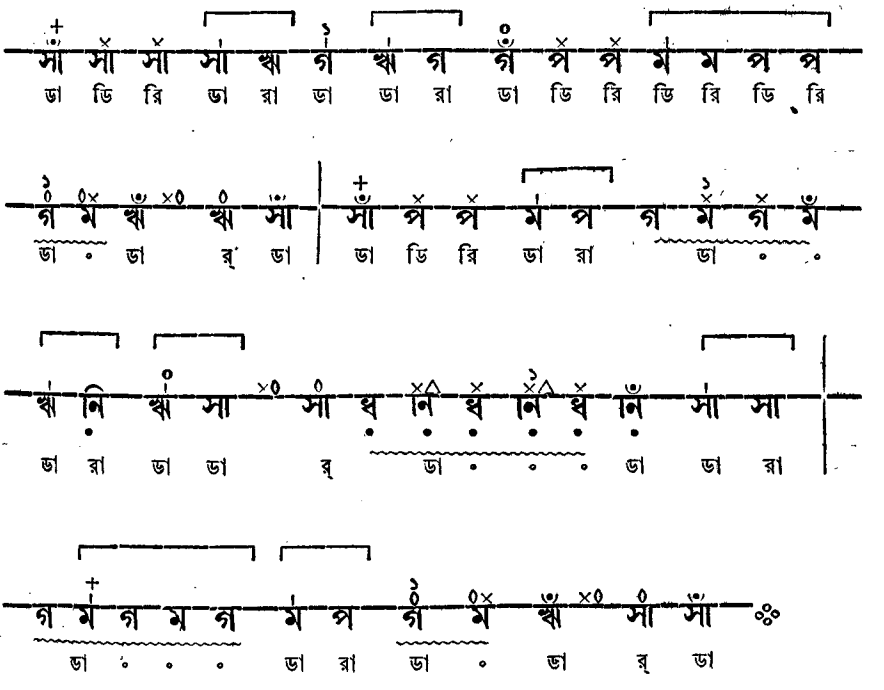

(১৭১)

শঙ্করা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

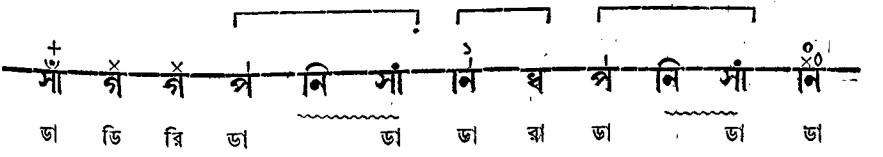

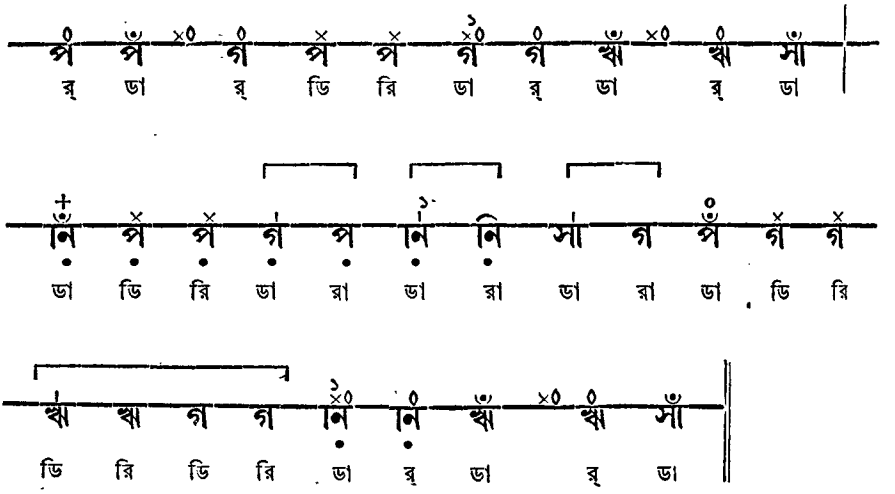
প প গ প প গ গ ঋ ঋ সা
র্ ডা র্ ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
নি প প গ প নি নি সা গ প গ গ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
ঋ ঋ গ গ নি নি ঋ ঋ সা
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা

অন্তরা।

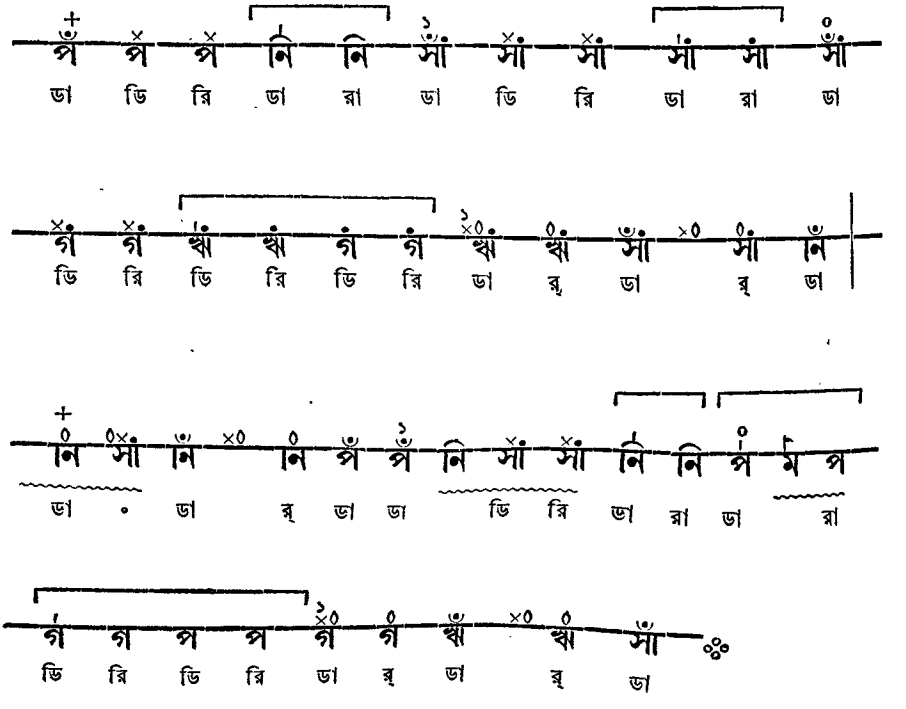
প প প নি নি সাং সাং সাং সাং সাং সাং
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
গং গং ঋং ঋং গং গং ঋং ঋং সাং সাং নি
ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
নি সাং নি নি প প নি সাং সাং নি নি প ম প
ডা ডা র্ ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
গ গ প প গ গ ঋ ঋ সা
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা

(১৭২)

শঙ্করাভরণ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

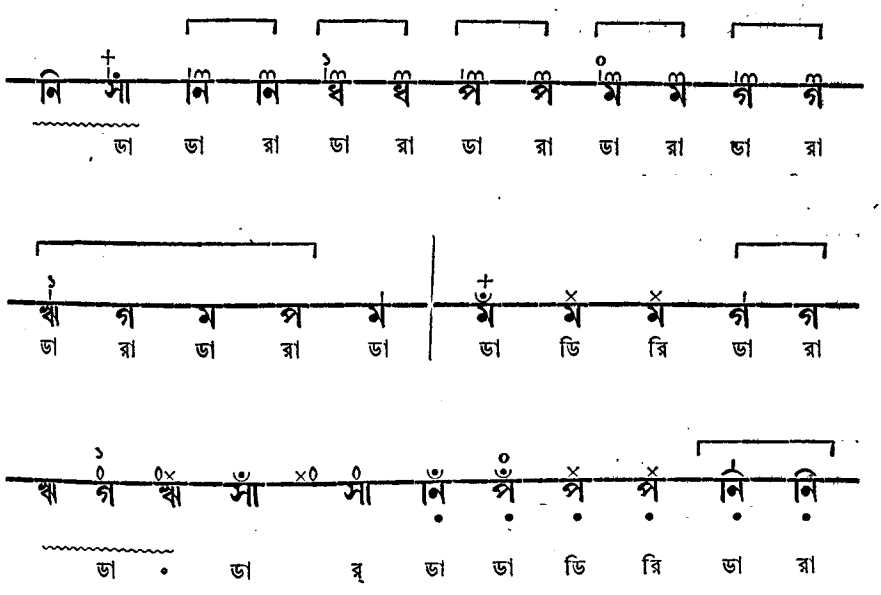

অন্তরা।

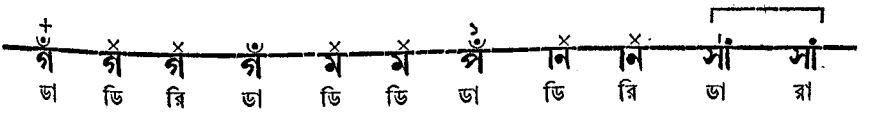

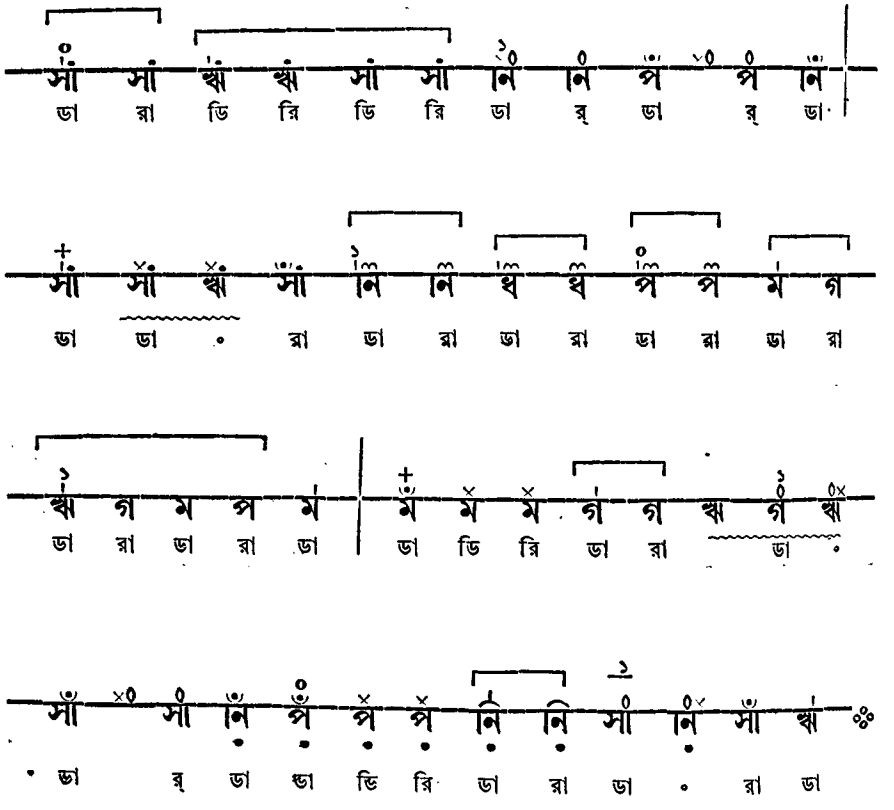

(১৭৩)

বাহার—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ধ নি)

আস্থায়ী।

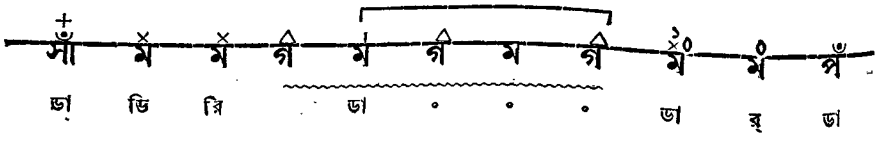

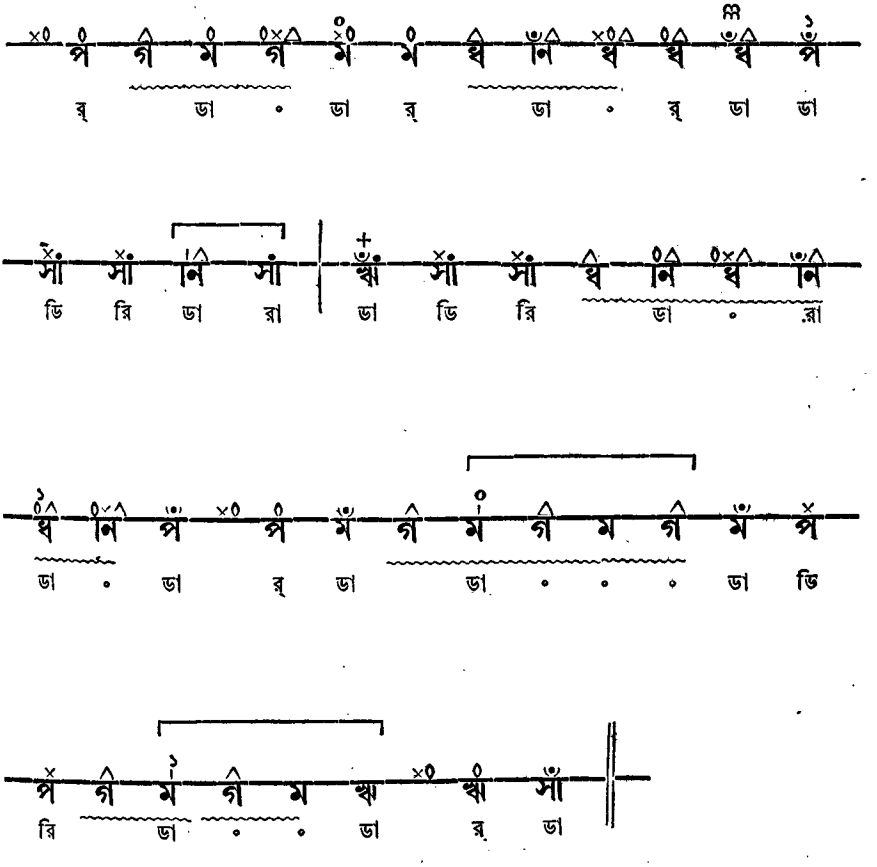
প গ ম গ ম ম ধ নি ধ ধ ধ প
র্ ডা ০ ডা র্ ডা ০ র্ ডা ডা
সাঁ সাঁ নি সাঁ ঋঁ সাঁ সাঁ ধ নি ধ নি
ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ০ রা
ধ নি প প ম গ ম গ ম গ ম প
ডা ০ ডা র্ ডা ডা ০ ০ ০ ডা ডি
প গ ম গ ম ঋ ঋ সাঁ
রি ডা ০ ০ ডা র্ ডা

অন্তরা।

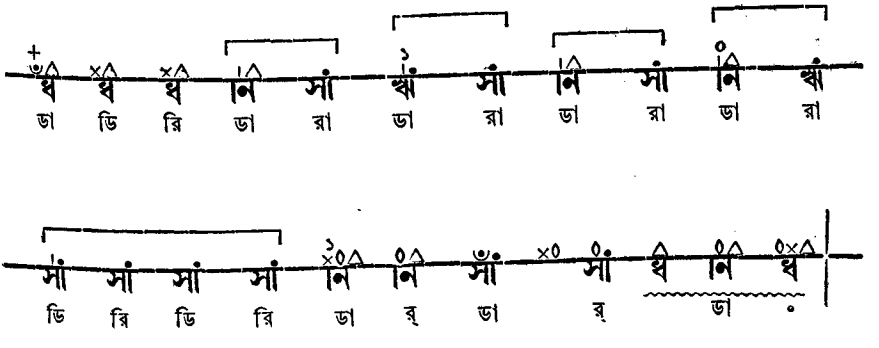
ধ ধ ধ নি সাঁ ঋঁ সাঁ নি সাঁ নি ঋঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা
সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি নি সাঁ সাঁ ধ নি ধ
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা ০

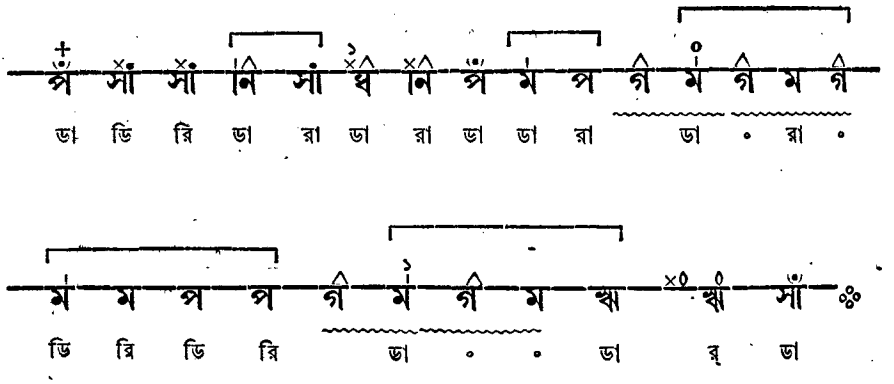

(১৭৪)

ভৈরব—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ)

আস্থায়ী।

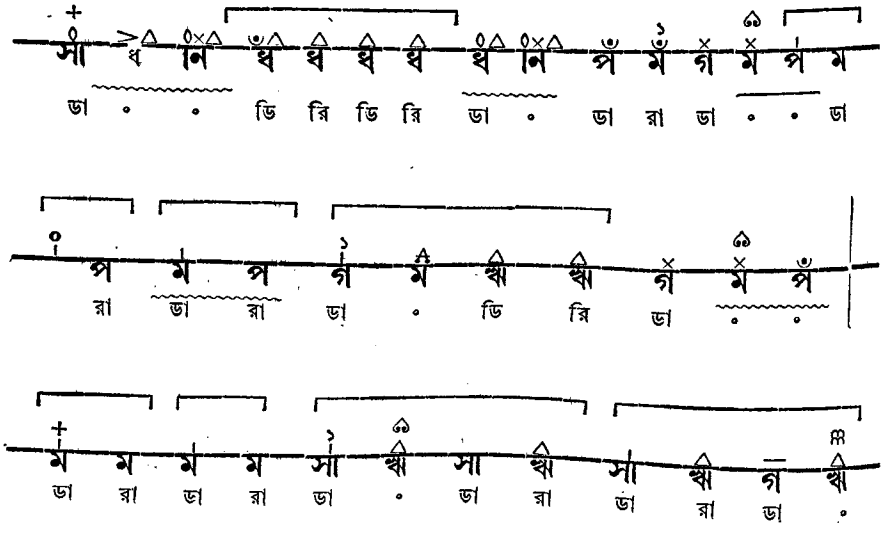

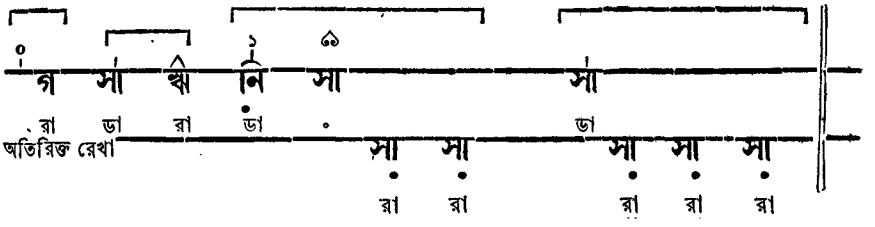
গ সা ঋ নি সা সা
রা ডা রা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা সা সা সা সা সা
রা রা রা রা রা

অন্তরা।

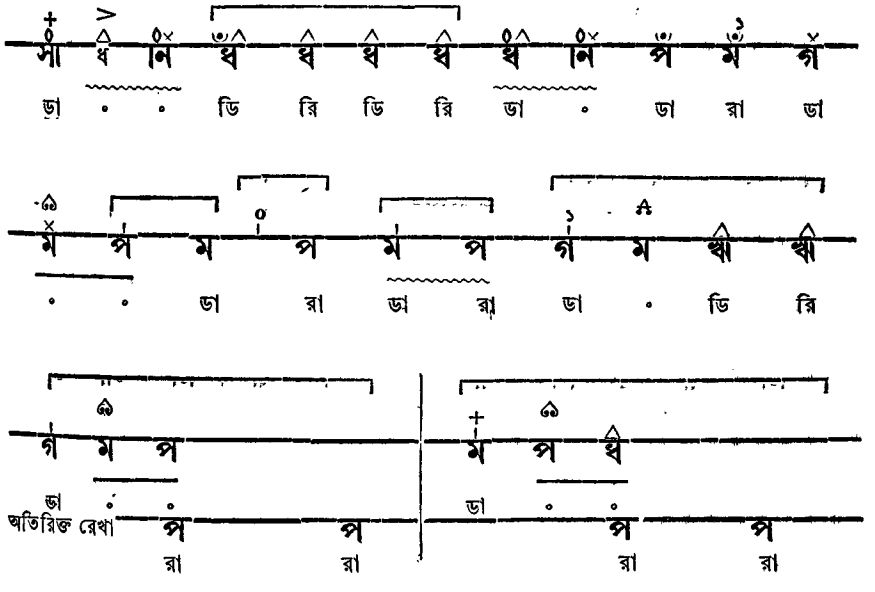
সা ধ নি ধ ধ ধ ধ ধ নি প ম গ
ডা ডি রি ডি রি ডা ডা রা ডা
ম প ম প ম প গ ম ঋ ঋ
ডা রা ডা রা ডা ডি রি
গ ম প ম প
ডা
অতিরিক্ত রেখা প প
রা রা
প ধ নি ধ নি সাঁ ধ নি ধ প
ডা ডা ডা ডা রা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা প প
রা রা

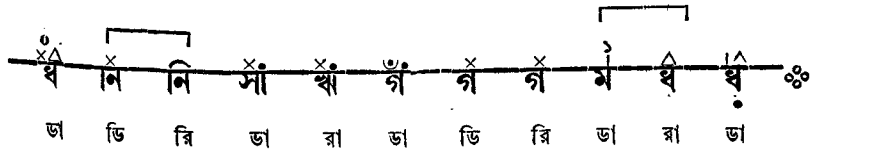
ধ নি নি সাঁ ঋঁ গঁ গ গ ম ধ ধ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা

(১৭৫)

দেশ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

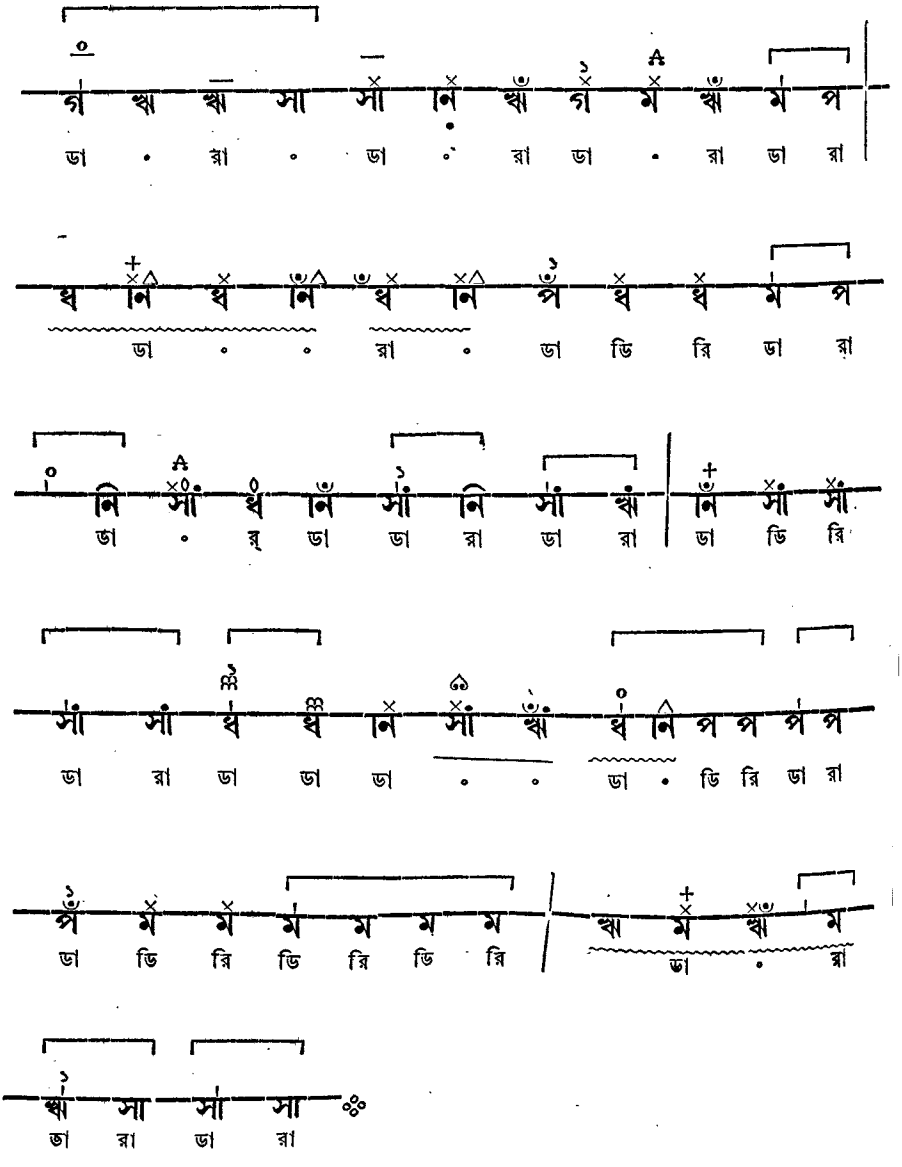
গ ঋ ঋ সা সাঁ নি ঋঁ গ ম ঋঁ ম প
ডা • রা • ডা • রা ডা • রা ডা রা
ধ নি ধ নি ধ নি পঁ ধ ধ ম প
ডা • • রা • ডা ডি রি ডা রা
নি সাঁ ধ নি সাঁ নি সাঁ ঋঁ নি সাঁ সাঁ
ডা • র্ ডা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
সাঁ সাঁ ধ ধ নি সাঁ ঋঁ ধ নি প প প প
ডা রা ডা ডা ডা • • ডা • ডি রি ডা রা
পঁ ম ম ম ম ম ম ঋ ম ঋঁ ম
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা • রা
ঋ সা সা সা
ডা রা ডা রা

(১৭৬)

কানড়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ধ নি)

আস্থায়ী।

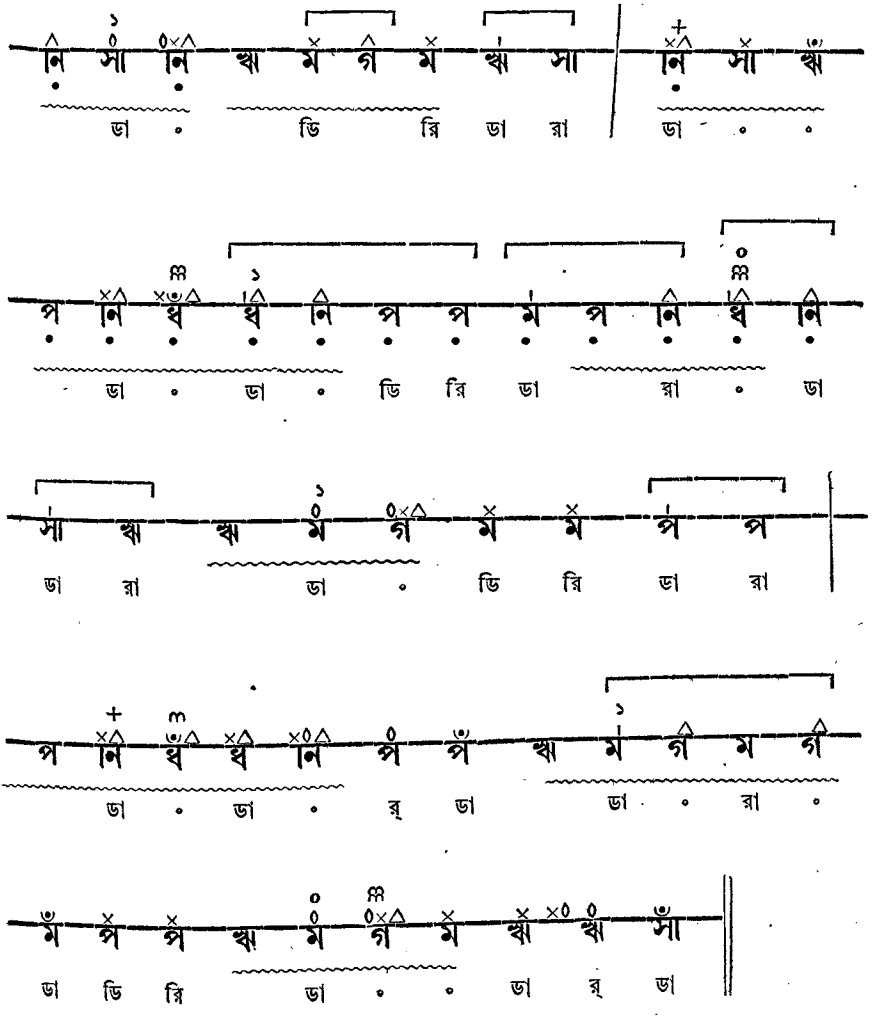
নি সা নি ঋ ম গ ম ঋ সা | নি সা ঋ
ডা ০ ডি রি ডা রা ডা ০ ০
প নি ধ ধ নি প প ম প নি ধ নি
ডা ০ ডা ০ ডি রি ডা রা ০ ডা
সা ঋ ঋ ম গ ম ম প প |
ডা রা ডা ০ ডি রি ডা রা
প নি ধ ধ নি প পঁ ঋ ম গ ম গ
ডা ০ ডা ০ র্ ডা ডা ০ রা ০
মঁ প প ঋ ম গ ম ঋ ঋ সাঁ
ডা ডি রি ডা ০ ০ ডা র্ ডা

অন্তরা।

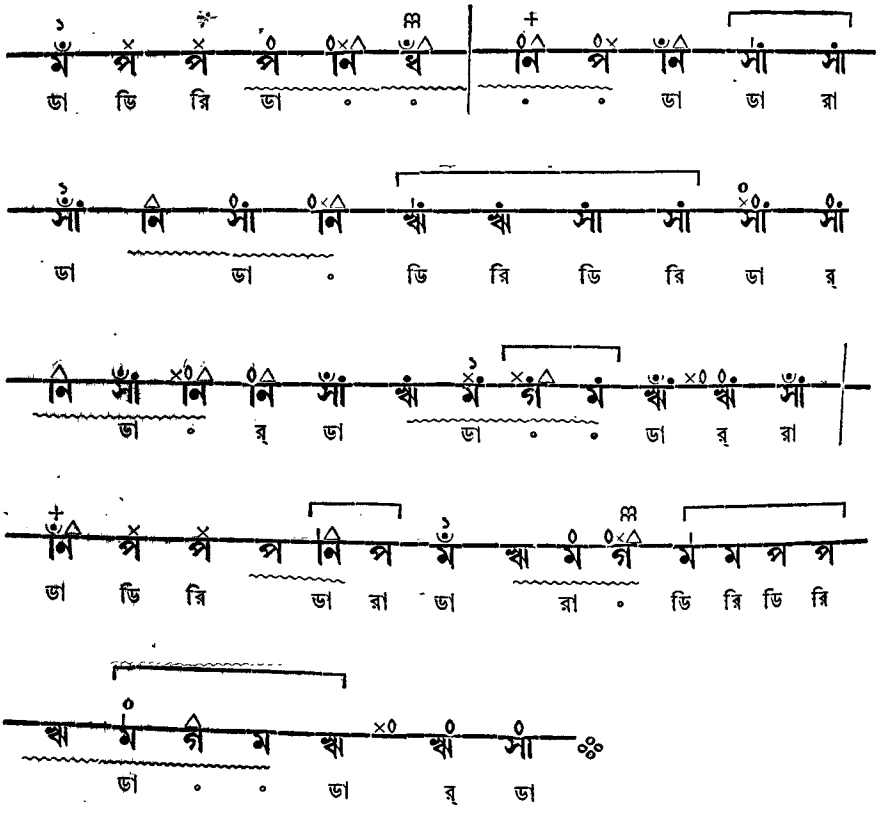

(১৭৭)

সাহানা—সম্পূর্ণ।

কাওয়ালী।

(গ নি)

আস্থায়ী।

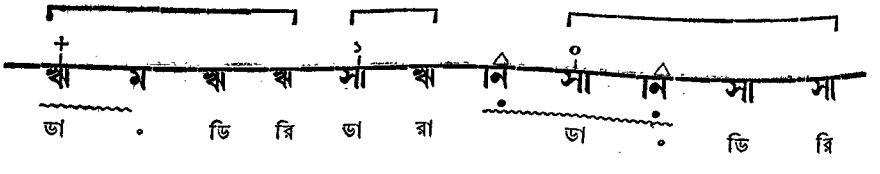

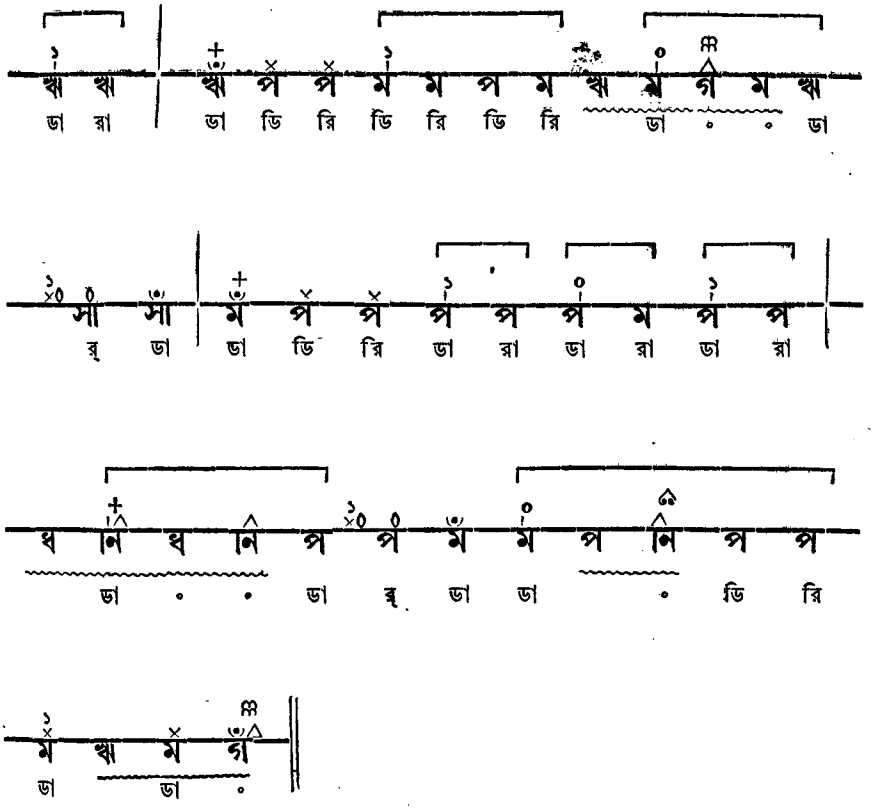
ঋ ঋ ঋ প প ম ম প ম ঋ ম গ ম ঋ
ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডা
সা সা ম প প প প প ম প প
র্ ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা
ধ নি ধ নি প প ম ম প নি প প
ডা ডা র্ ডা ডা ডি রি
ম ঋ ম গ
ডা ডা

অন্তরা।

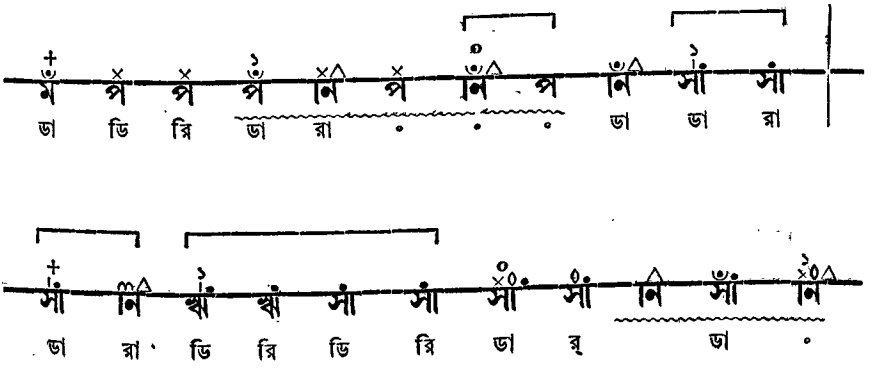
ম প প প নি প নি প নি সাঁ সাঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডা রা
সাঁ নি ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ নি
ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা

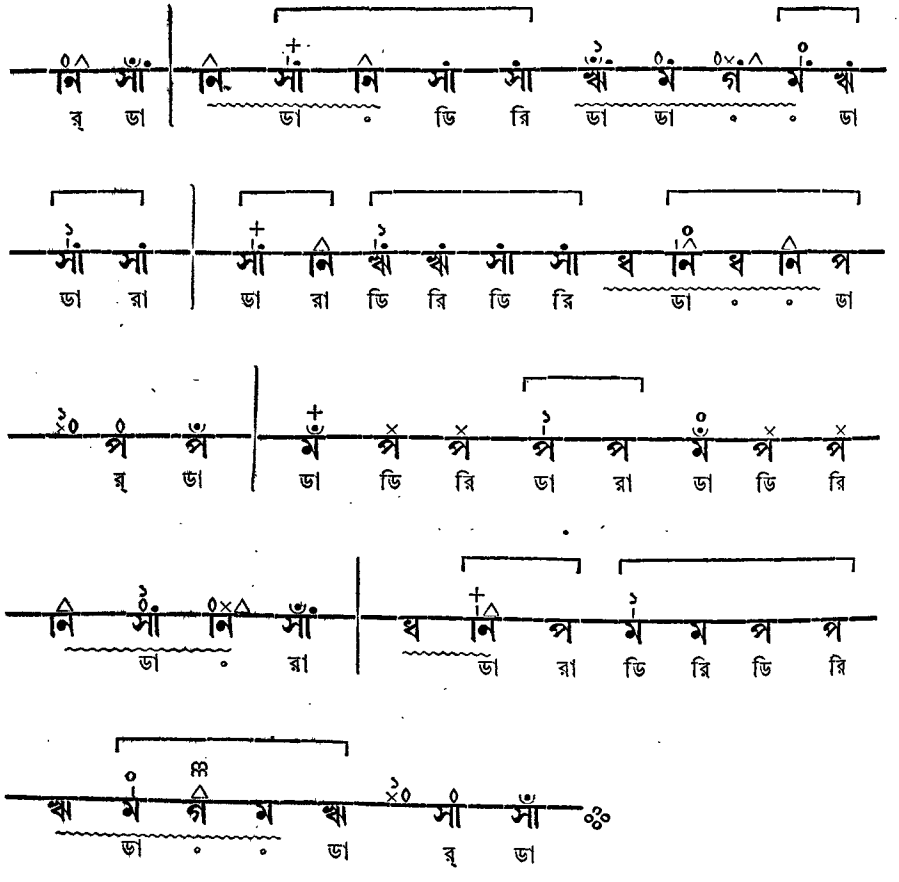
নি সাঁ | নি সাঁ নি সাঁ সাঁ ঋঁ মঁ গ মঁ ঋঁ
র্ ডা | ডা ০ ডি রি ডা ডা ০ ০ ডা
সাঁ সাঁ | সাঁ নি ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ ধ নি ধ নি প
ডা রা | ডা রা ডি রি ডি রি ডা ০ ০ ডা
পঁ পঁ | মঁ প প প প মঁ প প
র্ ডা | ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
নি সাঁ নি সাঁ | ধ নি প ম ম প প
ডা ০ রা | ডা রা ডি রি ডি রি
ঋ মঁ গ ম ঋ সাঁ সাঁ
ডা ০ ০ ডা র্ ডা

(১৭৮)

আড়ানা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

আস্থায়ী।

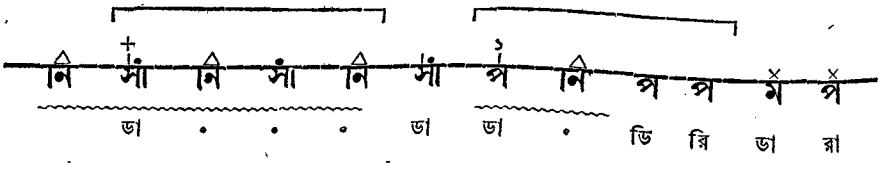

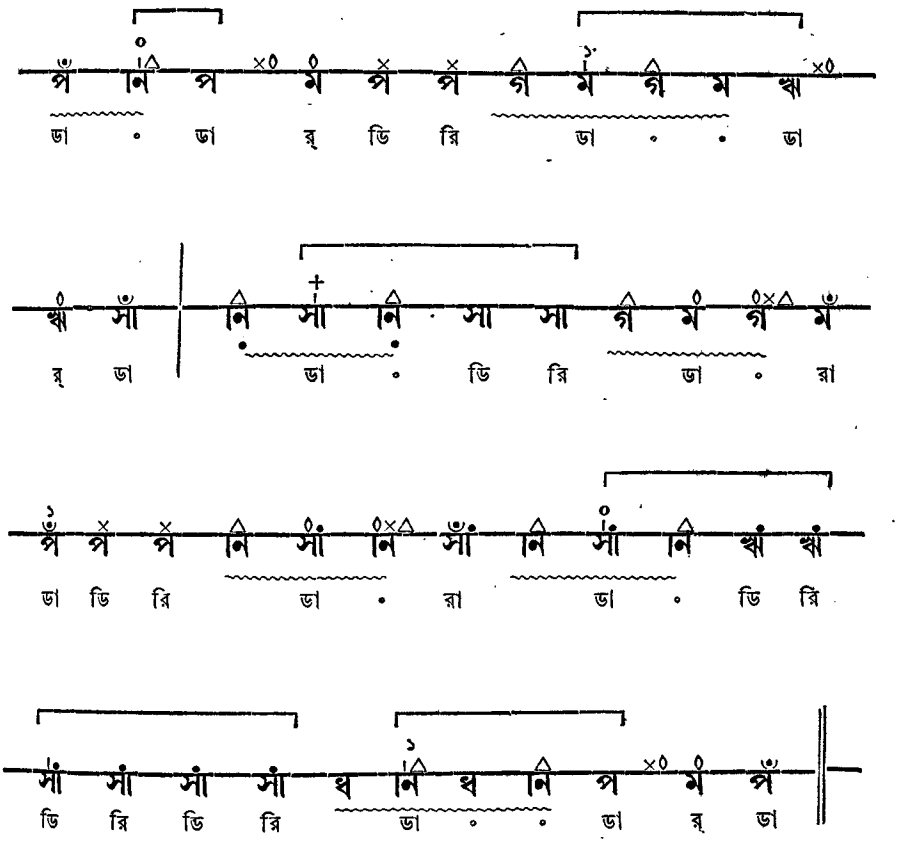
ডা ডা র্ ডি রি ডা
র্ ডা ডা ডি রি ডা রা
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
ডি রি ডি রি ডা ডা র্ ডা

অন্তরা।

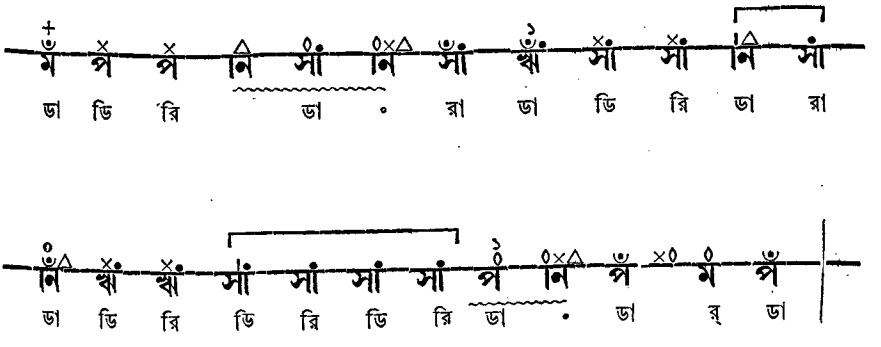
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা ডা র্ ডা

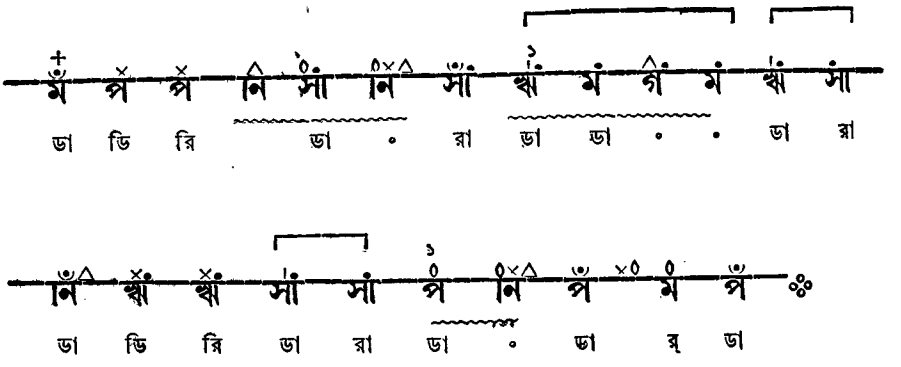

(১৭৯)

বাহার—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(-গ ধ নি-)

আস্থায়ী।

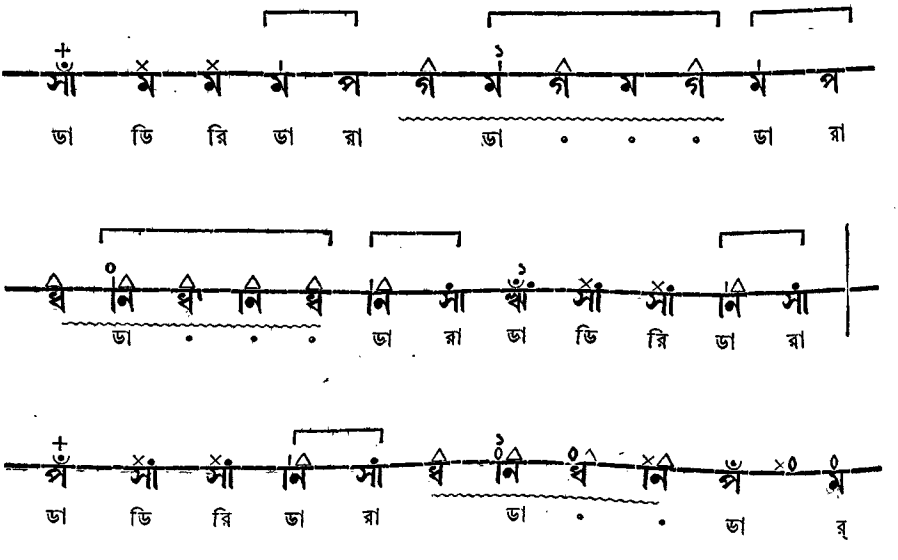

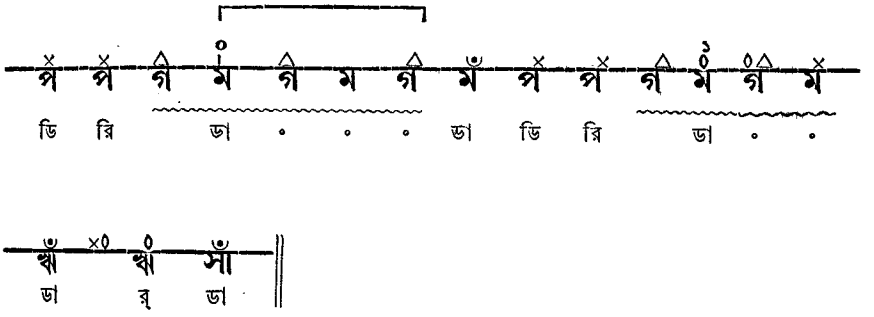
প প গ ম গ ম গ ম প প গ ম গ ম
ডি রি ডা ০ ০ ০ ডা ডি রি ডা ০ ০
ঋঁ ঋ সাঁ
ডা র্ ডা

অন্তরা।

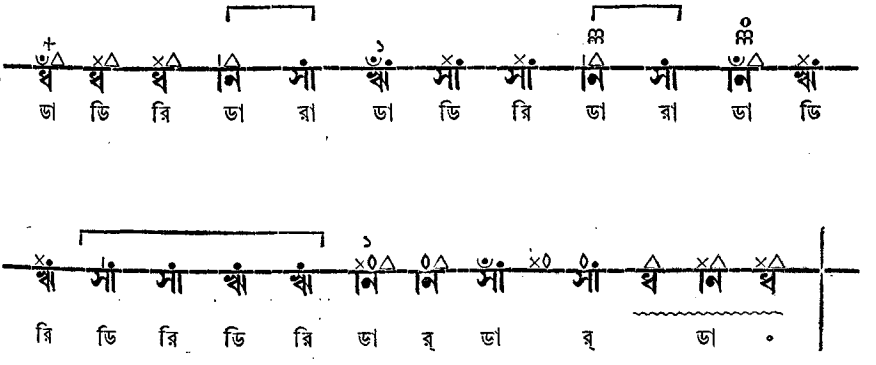
ধ ধ ধ নি সাঁ ঋঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ নি ঋঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা ডি
ঋঁ সাঁ সাঁ ঋঁ ঋঁ নি নি সাঁ সাঁ ধ নি ধ
রি ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা ০

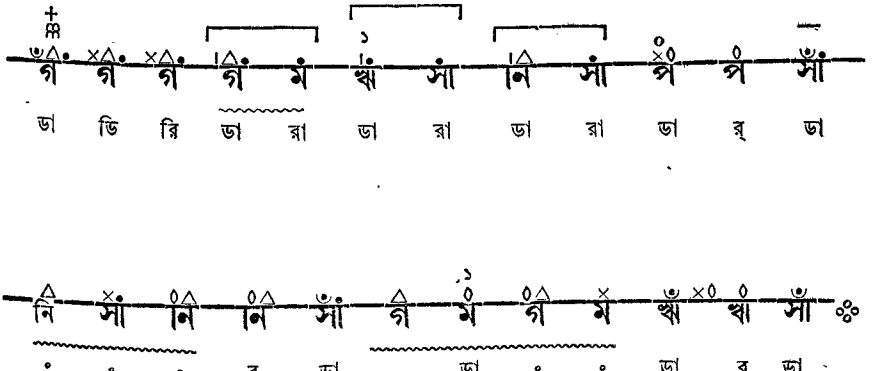
গ গ গ গঁ ম ঋঁ সাঁ নি সাঁ প প সাঁ
ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা র্ ডা
নি সাঁ নি নি সাঁ গ ম গ ম ঋঁ ঋ সাঁ
০ ০ ০ র্ ডা ডা ০ ০ ডা র্ ডা

(১৮০)

কানড়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ ধ নি)

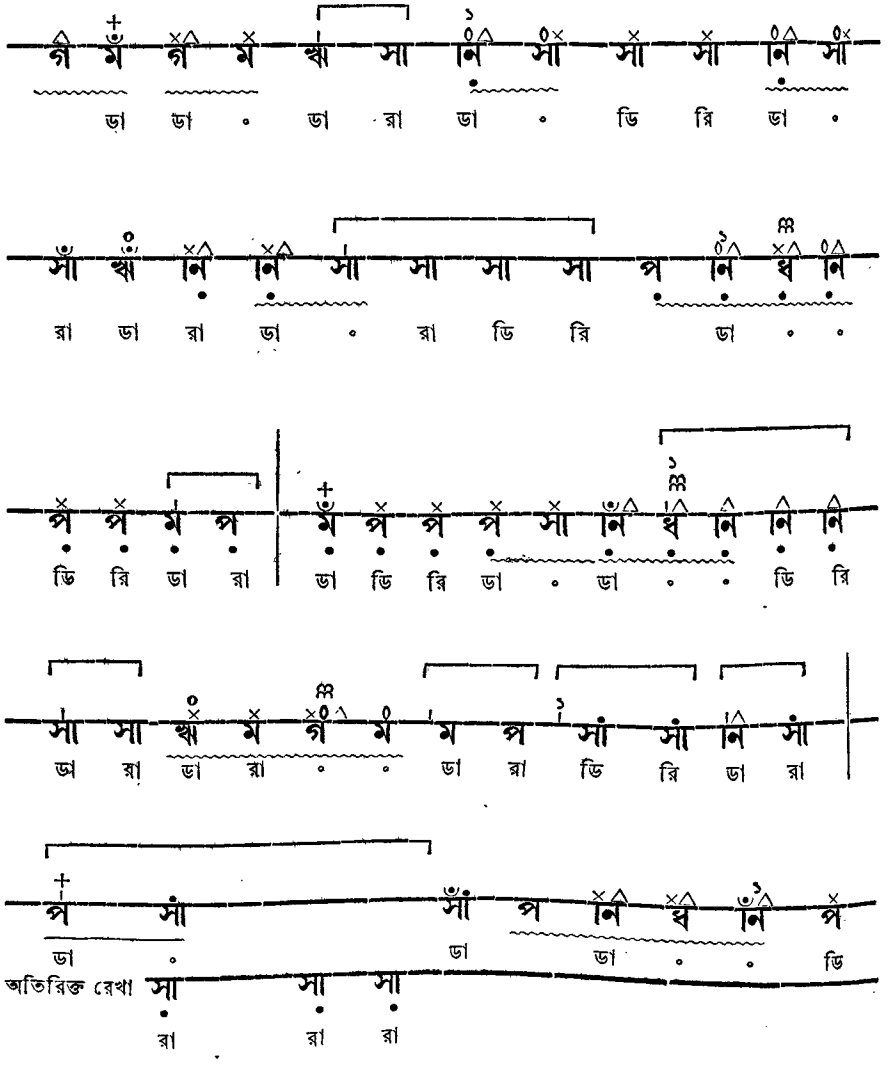
গ ম গ ম ঋ সা নি সা সা সা নি সা
ডা ডা ডা রা ডা ডি রি ডা
সাঁ ঋ নি নি সা সা সা সা প নি ধ নি
রা ডা রা ডা রা ডি রি ডা
প প ম প ম প প প সা নি ধ নি নি নি
ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডা ডি রি
সা সা ঋ ম গ ম ম প সাং সাং নি সাং
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডা রা
প সাং সাঁ প নি ধ নি প
ডা ডা ডা ডি
অতিরিক্ত রেখা সা সা সা
রা রা রা

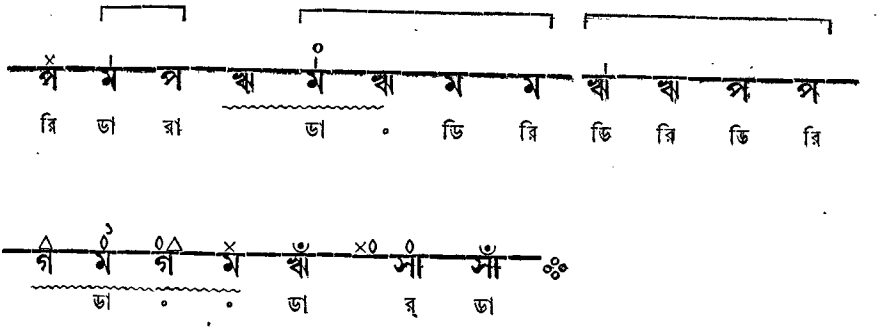

(১৮১)

লুম—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

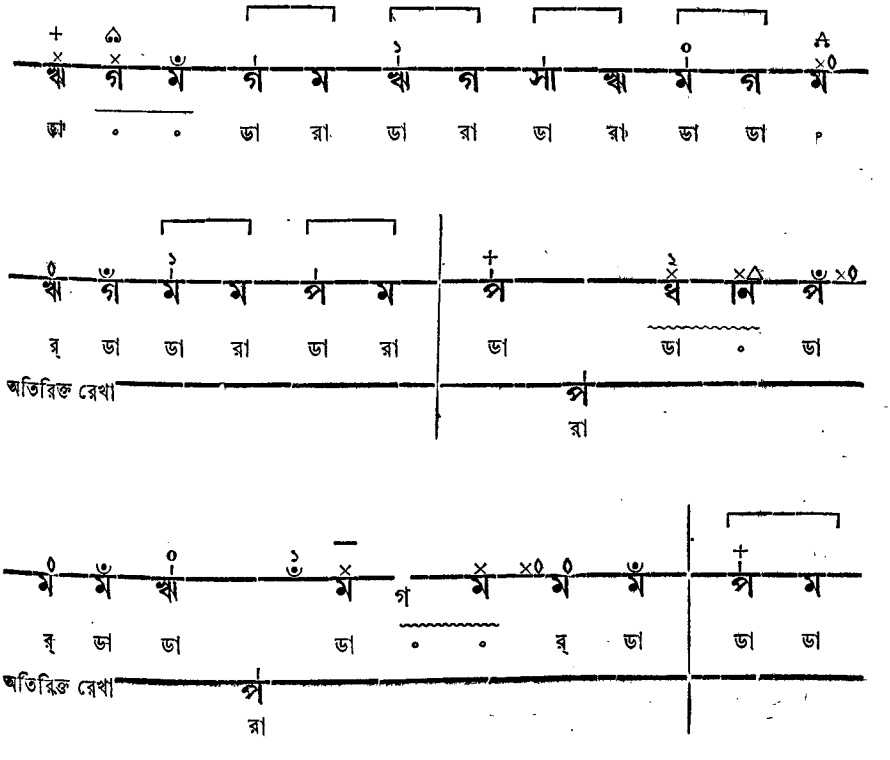

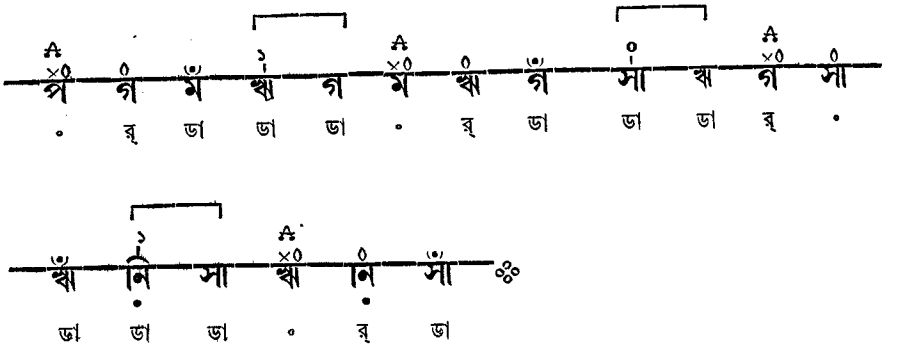

(১৮২)

ঝিঁঝিট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

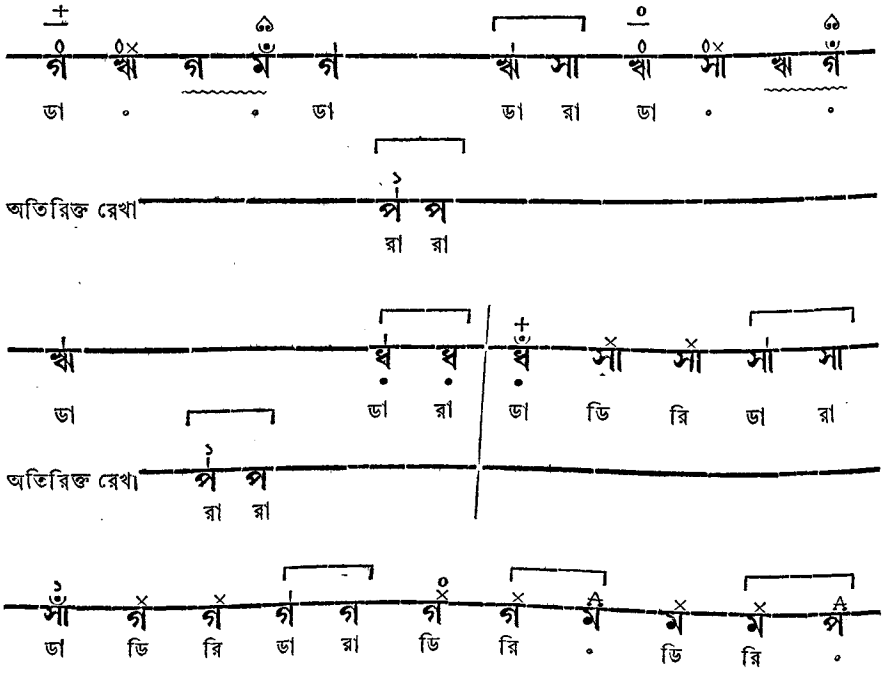

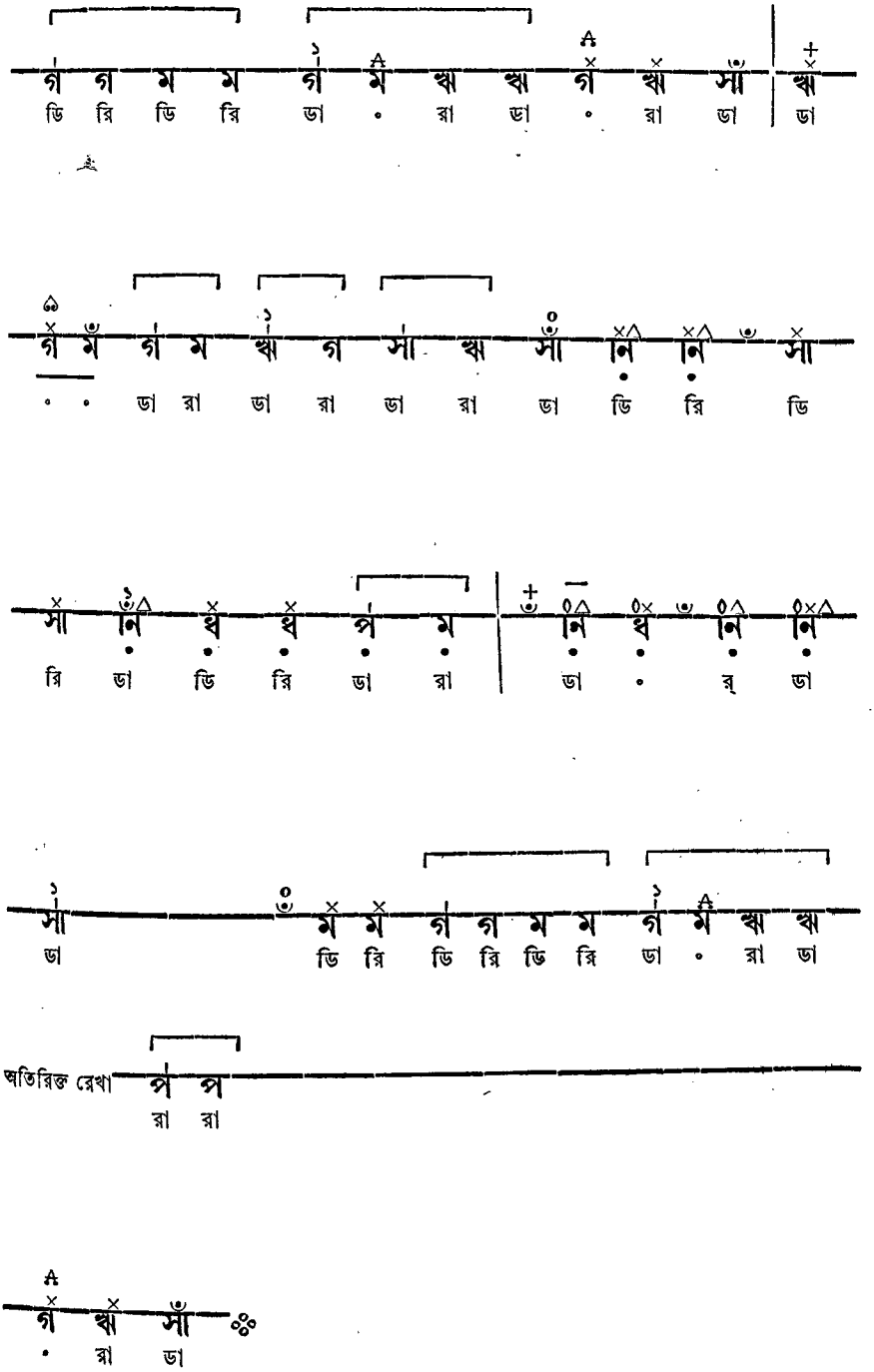
গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ গ ঋ সাঁ | ঋ
ডি রি ডি রি ডা • রা ডা • রা ডা | ডা
গ মঁ গ ম ঋ গ সা ঋ সাঁ নি নি সা
• • ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডি
সা নি ধ ধ প ম | নি ধ নি নি
রি ডা ডি রি ডা রা | ডা • র্ ডা
সা ম ম গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা • রা ডা
অতিরিক্ত রেখা প প
রা রা
গ ঋ সাঁ ※
• রা ডা

(১৮৩)

বেহাগ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

আস্থায়ী।

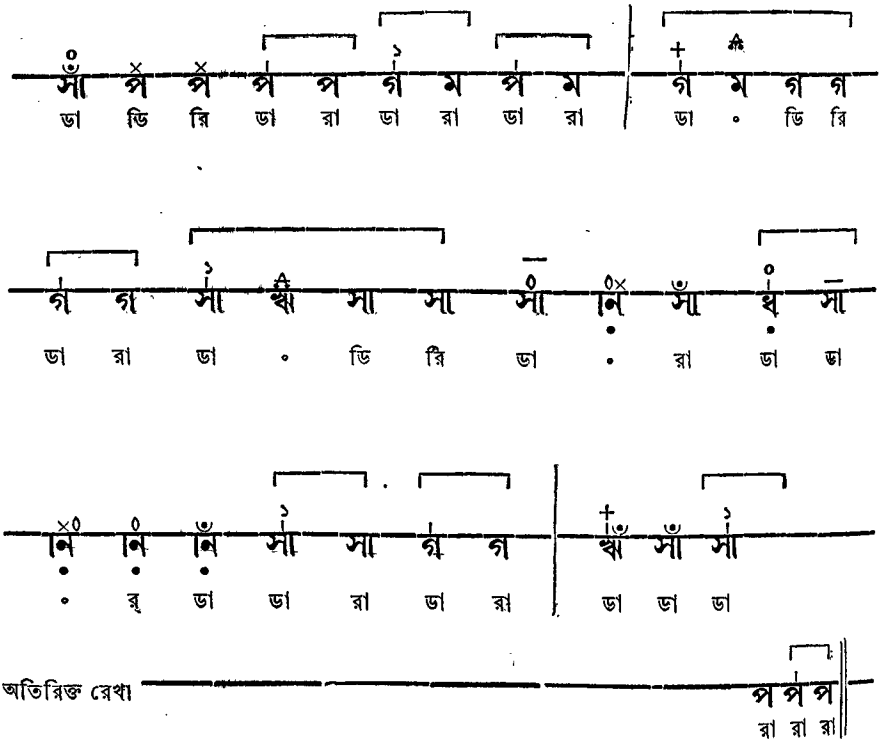

অন্তরা।

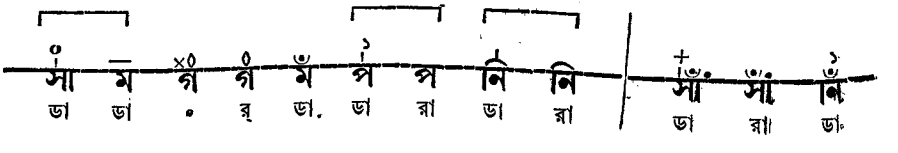

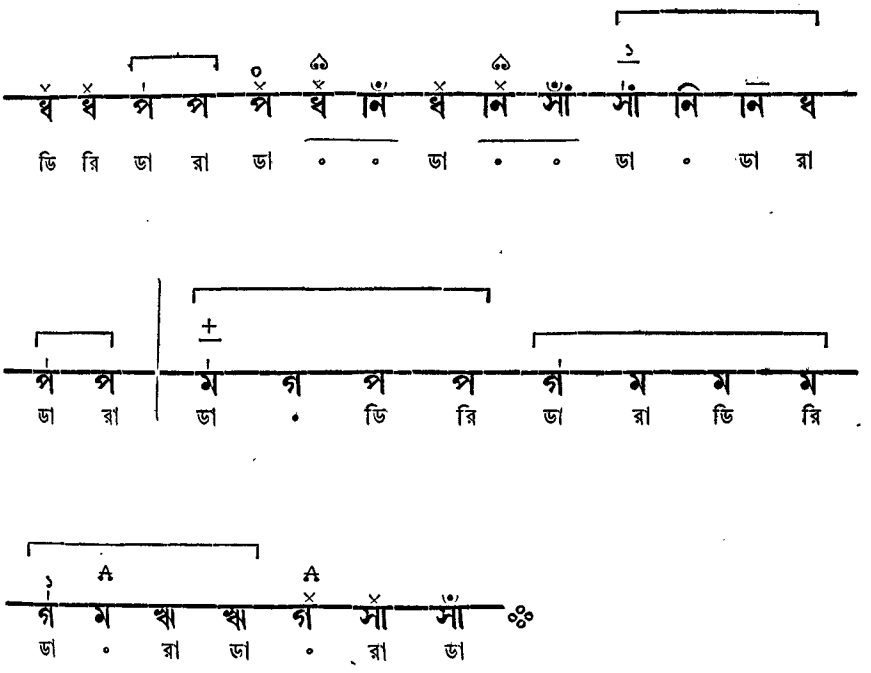

(১৮৪)

সুরট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

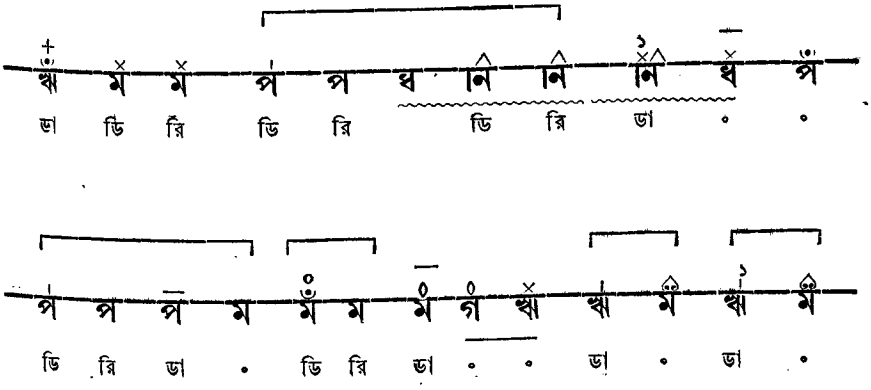

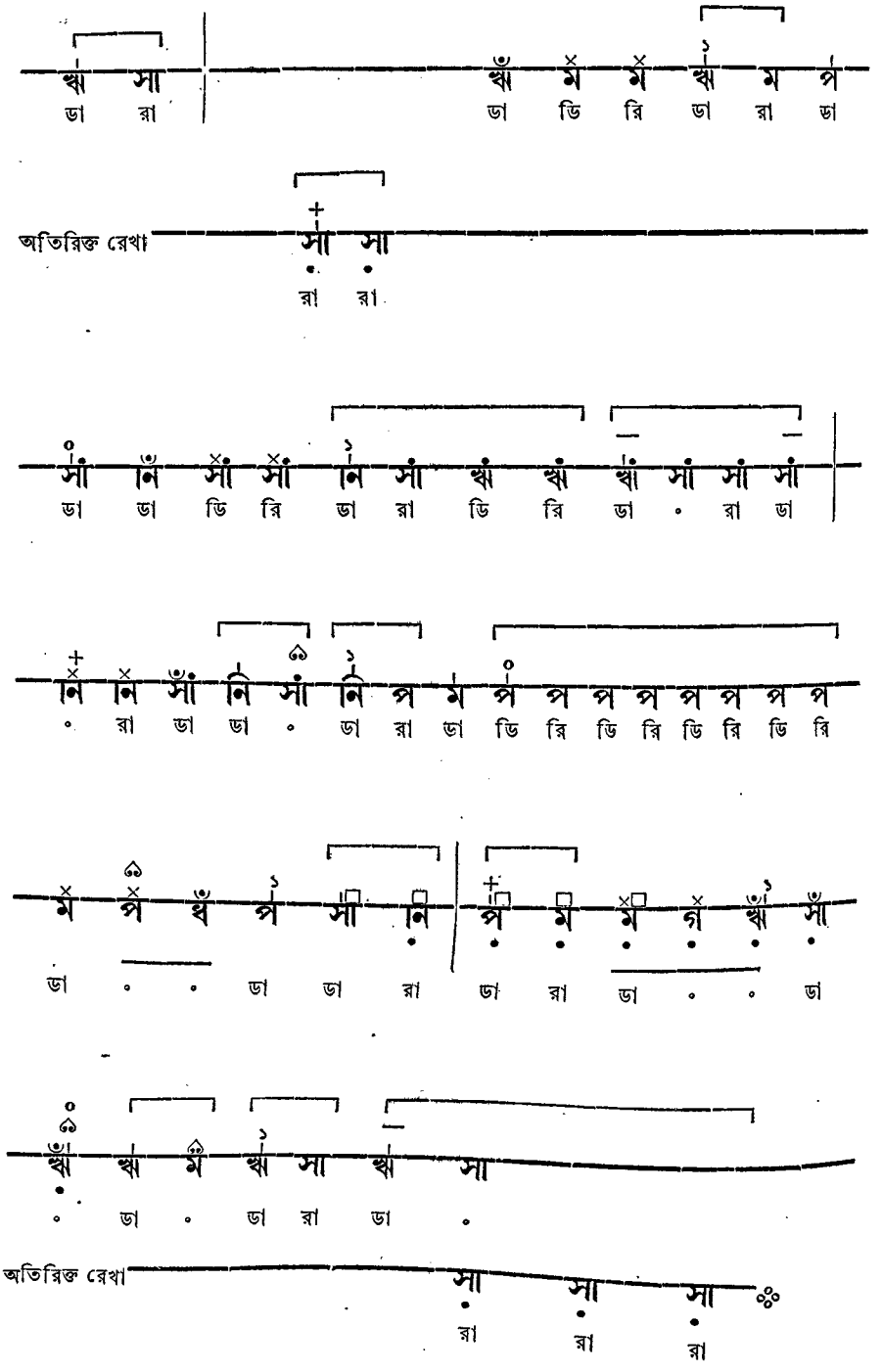
ঋা সা ঋাঁ ম ম ঋা ম প
ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা সাঁ সাঁ
রা রা
সাঁ নিঁ সাঁ সাঁ নি সাঁ ঋাঁ ঋাঁ ঋাঁ সাঁ সাঁ সাঁ
ডা ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা ০ রা ডা
নি নি সাঁ নি সাঁ নি প ম প প প প প প প প
০ রা ডা ডা ০ ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
ম প ঋঁ প সা নি প ম ম গ ঋা সাঁ
ডা ০ ০ ডা ডা রা ডা রা ডা ০ ০ ডা
ঋাঁ ঋা ম ঋা সা ঋা সা
০ ডা ০ ডা রা ডা ০
অতিরিক্ত রেখা সা সা সা
রা রা রা

(১৮৫)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

আস্থায়ী।

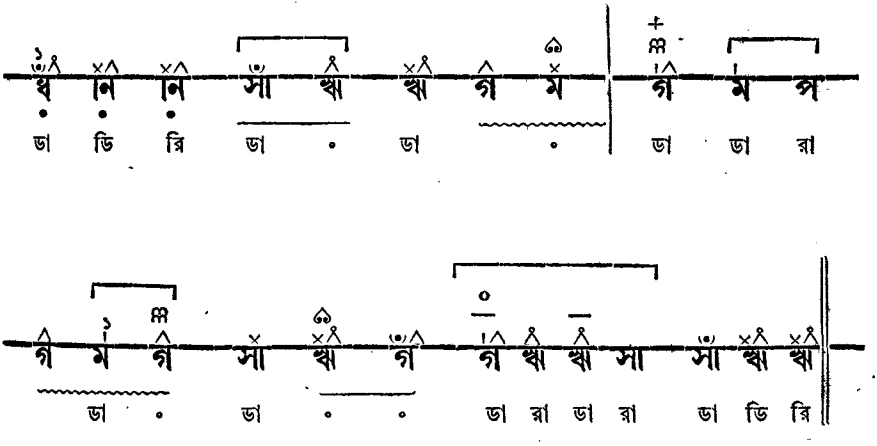

অন্তরা।

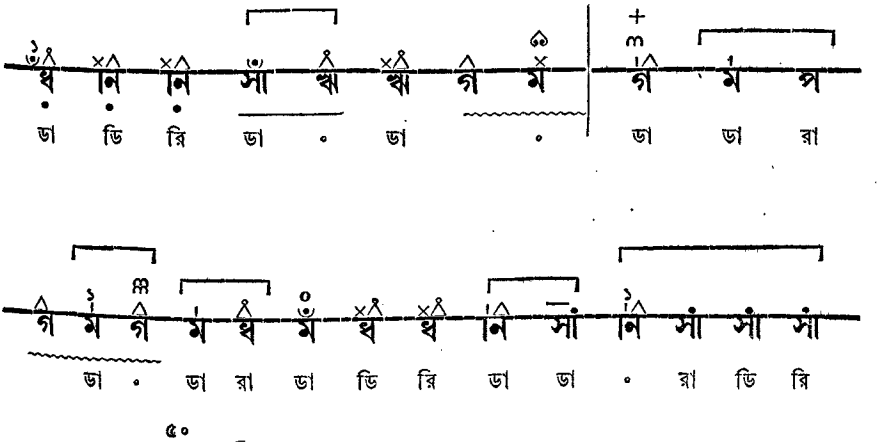

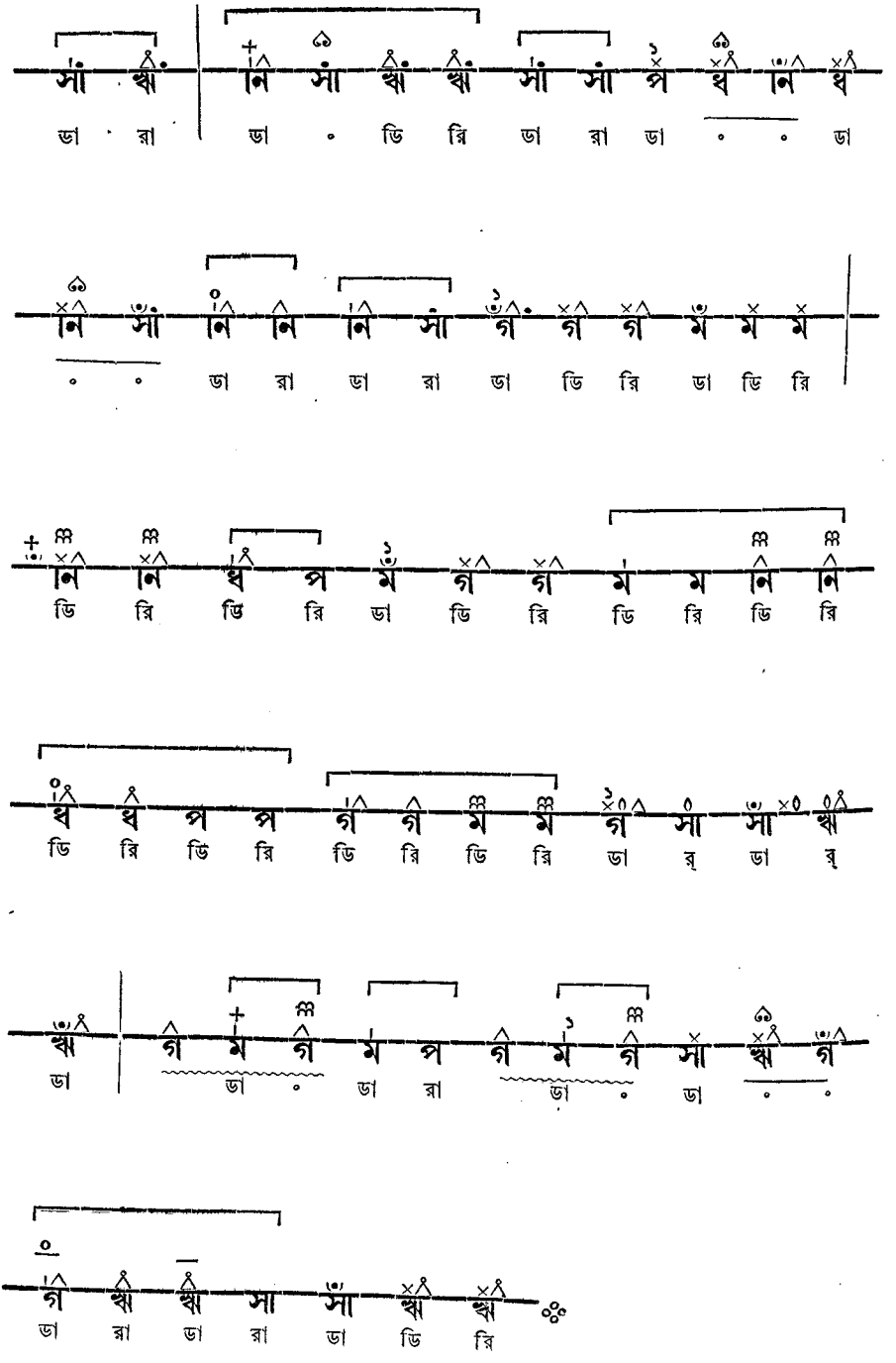
সাঁ ঋঁ | নি সাঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ সাঁ প ধ নি ধ
ডা রা | ডা ০ ডি রি ডা রা ডা ০ ০ ডা
নি সাঁ নি নি নি সাঁ গ গ গ ম ম ম |
০ ০ ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডা ডি রি
নি নি ধ প ম গ গ ম ম নি নি
ডি রি ডি রি ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ধ ধ প প গ গ ম ম গ সা সা ঋ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্
ঋ | গ ম গ ম প গ ম গ সা ঋ গ
ডা | ডা ০ ডা রা ডা ০ ডা ০ ০
গ ঋ ঋ সা সা ঋ ঋ
ডা রা ডা রা ডা ডি রি

(১৮৬)

গারা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

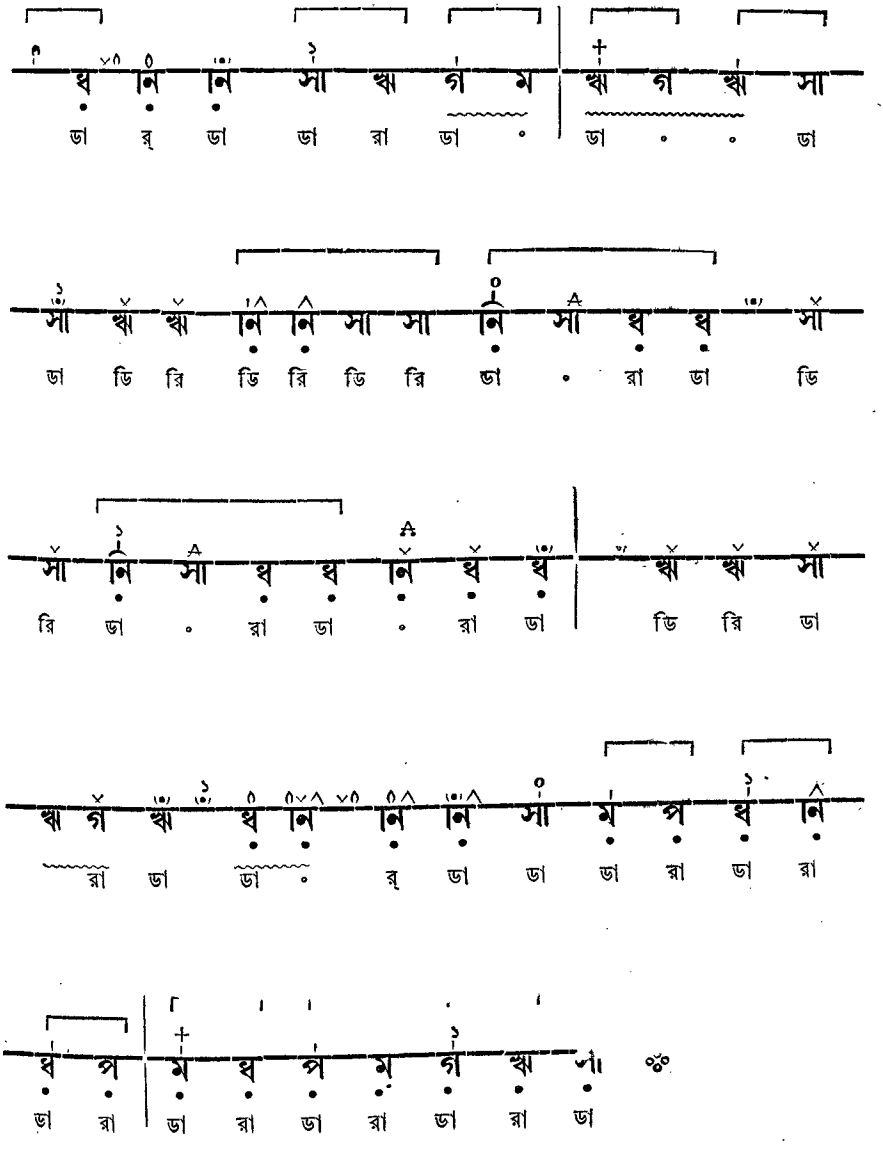
ধ নি নি সা ঋ গ ম | ঋ গ ঋ সা
ডা র্ ডা ডা রা ডা ০ | ডা ০ ০ ডা
সা ঋ ঋ নি নি সা সা নি সা ধ ধ সা
ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা ডি
সা নি সা ধ ধ নি ধ ধ | ঋ ঋ সা
রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা | ডি রি ডা
ঋ গ ঋ ধ নি নি নি সা ম প ধ নি
রা ডা ডা ০ র্ ডা ডা ডা রা ডা রা
ধ প | ম ধ প ম গ ঋ সা ৩
ডা রা | ডা রা ডা রা ডা রা ডা

(১৮৭)

সিন্ধুড়া—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(গ নি)

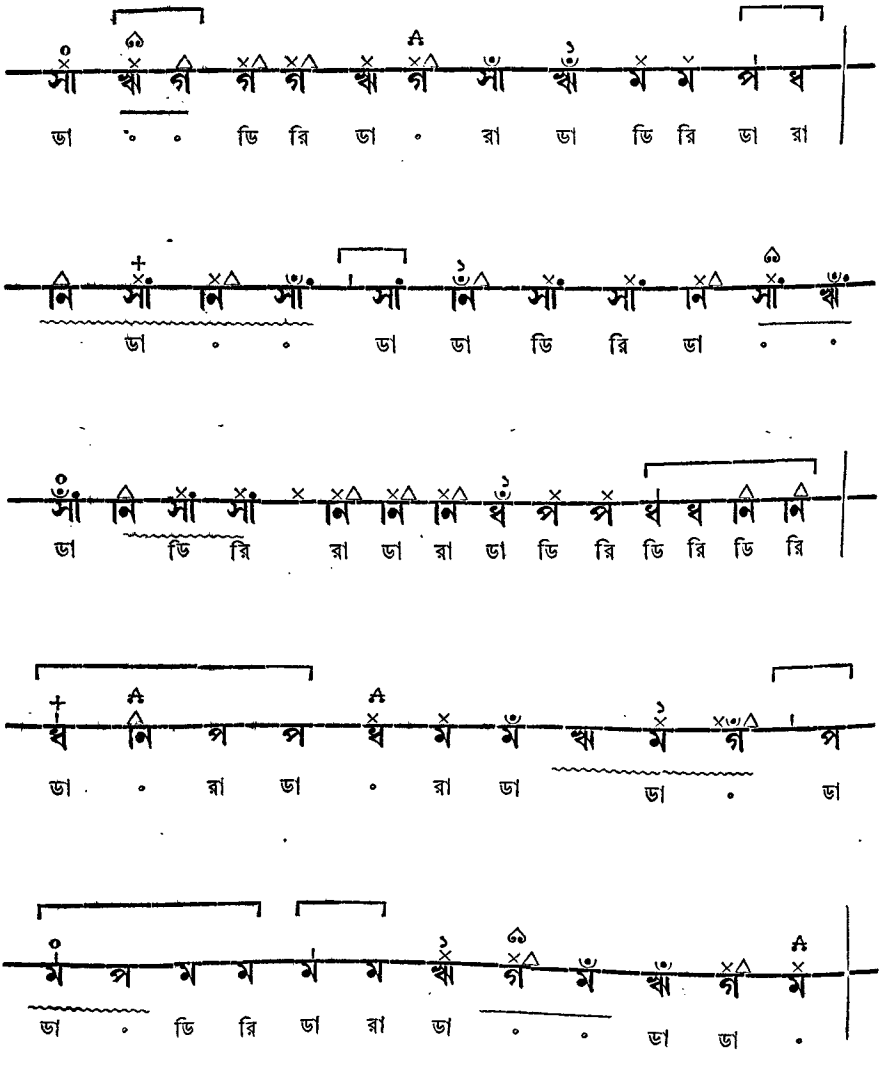
সাঁ ঋঁ গ গ গ ঋ গ সাঁ ঋঁ ম ম প ধ
ডা ০ ০ ডি রি ডা ০ রা ডা ডি রি ডা রা
নি সাঁ নি সাঁ সাঁ নি সাঁ সাঁ নি সাঁ ঋঁ
ডা ০ ০ ডা ডা ডি রি ডা ০ ০
সাঁ নি সাঁ সাঁ নি নি নি ধঁ প প ধ ধ নি নি
ডা ডি রি রা ডা রা ডা ডি রি ডি রি ডি রি
ধ নি প প ধ ম মঁ ঋ ম গ প
ডা ০ রা ডা ০ রা ডা ডা ০ ডা
ম প ম ম ম ম ঋ গ মঁ ঋঁ গ ম
ডা ০ ডি রি ডা রা ডা ০ ০ ডা ডা ০

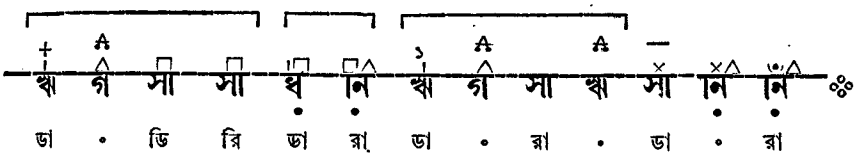

(১৮৮)

মালকোশ—ওড়ব।

মধ্যমান।

(গ ধ নি)

আস্থায়ী।

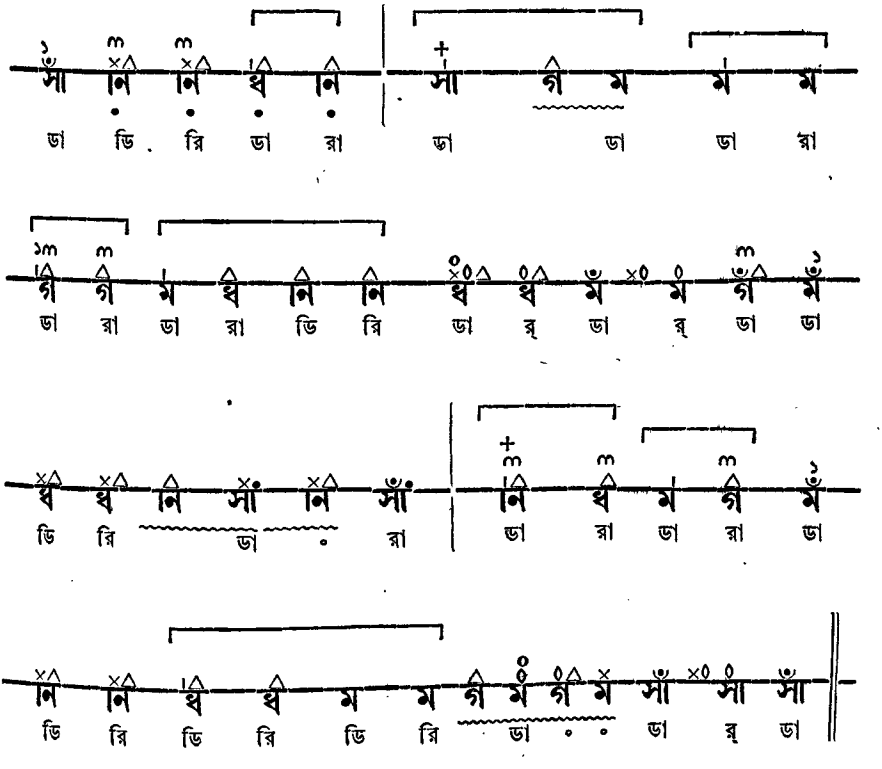

অন্তরা।

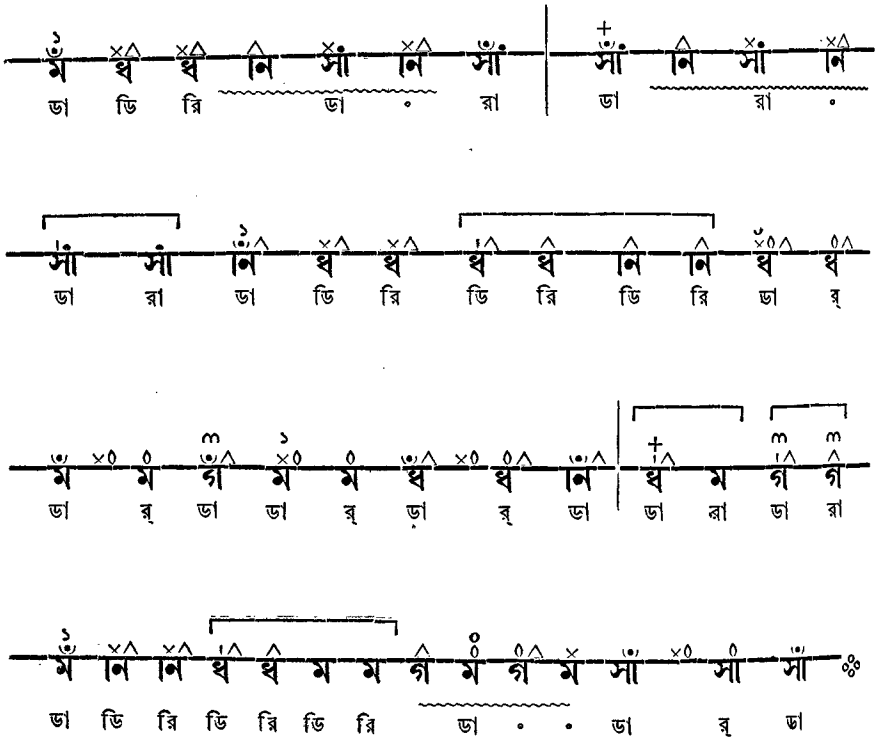

(১৮৯)

খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

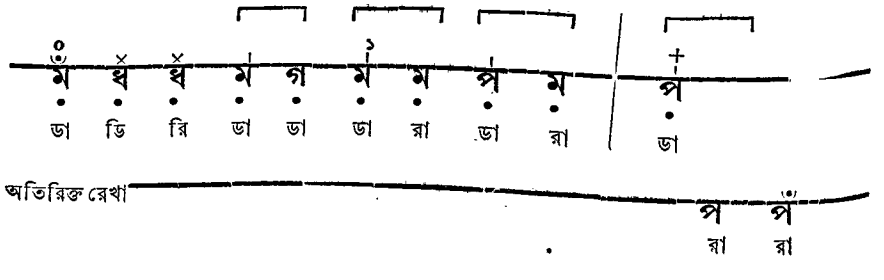

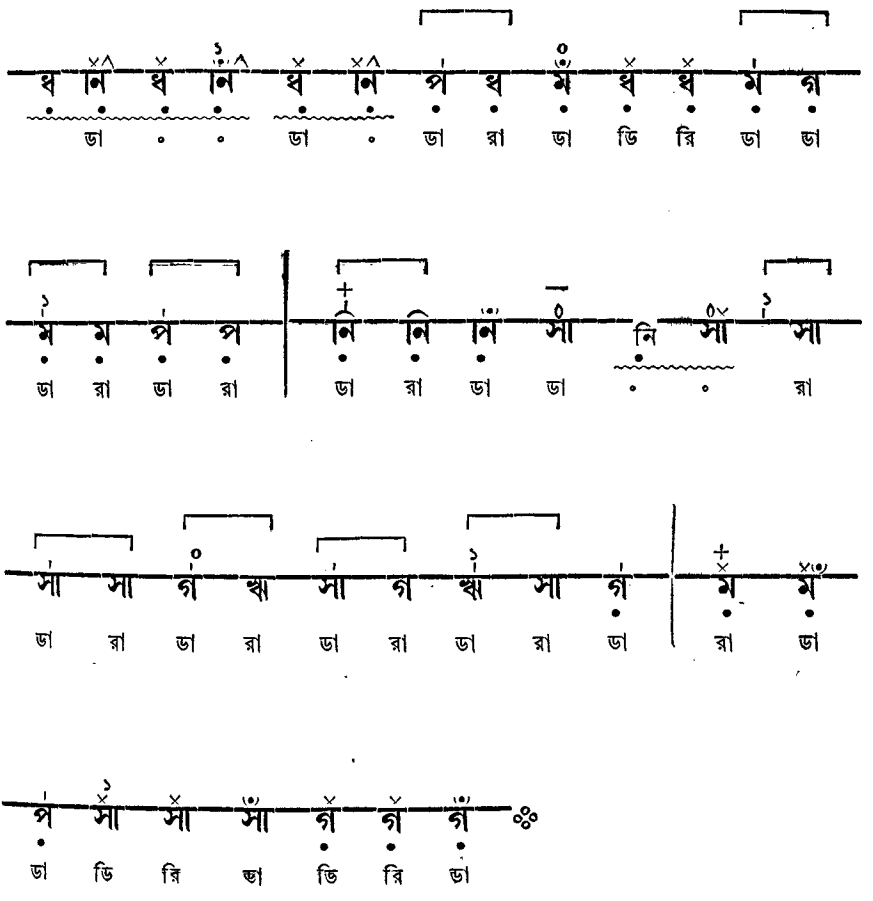

(১৯০)

ভূপালী—খাড়ব।

মধ্যমান।

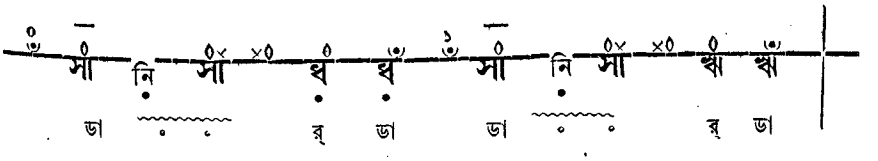

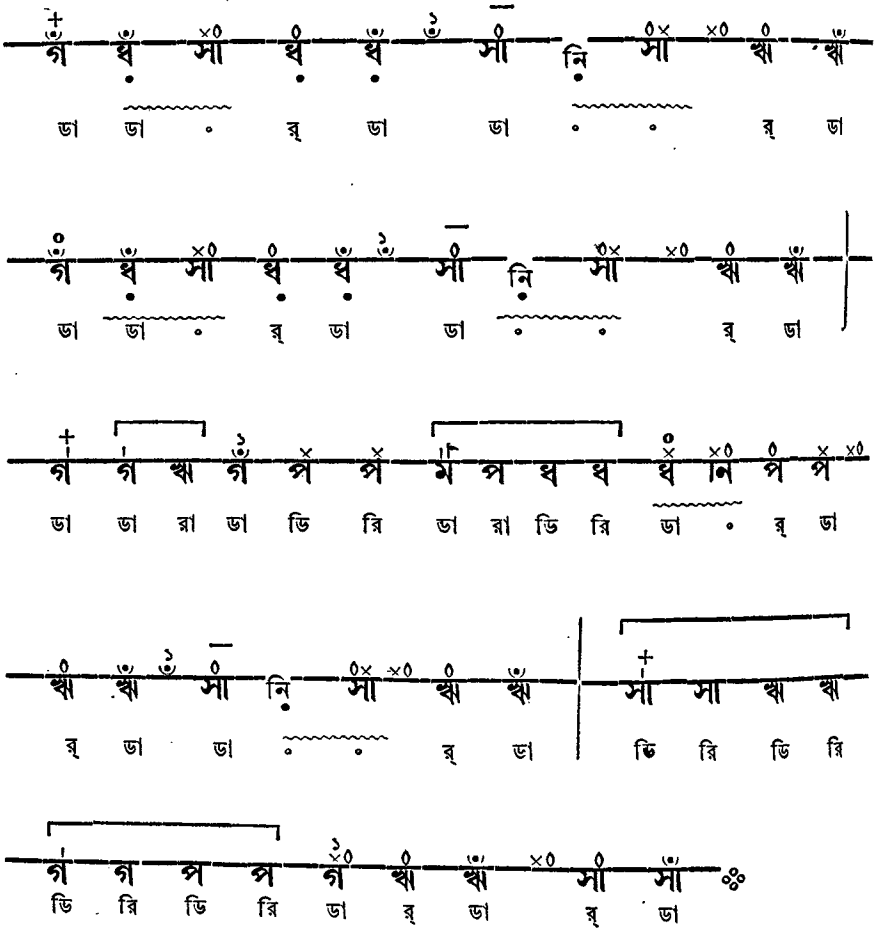
গ ধ সা ধ ধ সা নি সা ঋ ঋ
ডা ডা ০ র্ ডা ডা ০ ০ র্ ডা
গ ধ সা ধ ধ সা নি সা ঋ ঋ
ডা ডা ০ র্ ডা ডা ০ ০ র্ ডা
গ গ ঋ গ প প ম প ধ ধ ধ নি প প
ডা ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা ০ র্ ডা
ঋ ঋ সা নি সা ঋ ঋ সা সা ঋ ঋ
র্ ডা ডা ০ ০ র্ ডা ডি রি ডি রি
গ গ প প গ ঋ ঋ সা সা
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা

(১৯১)

কর্ণাট—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

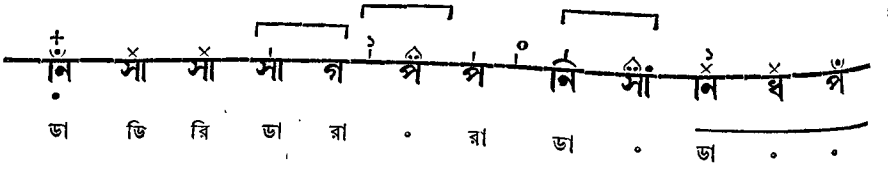

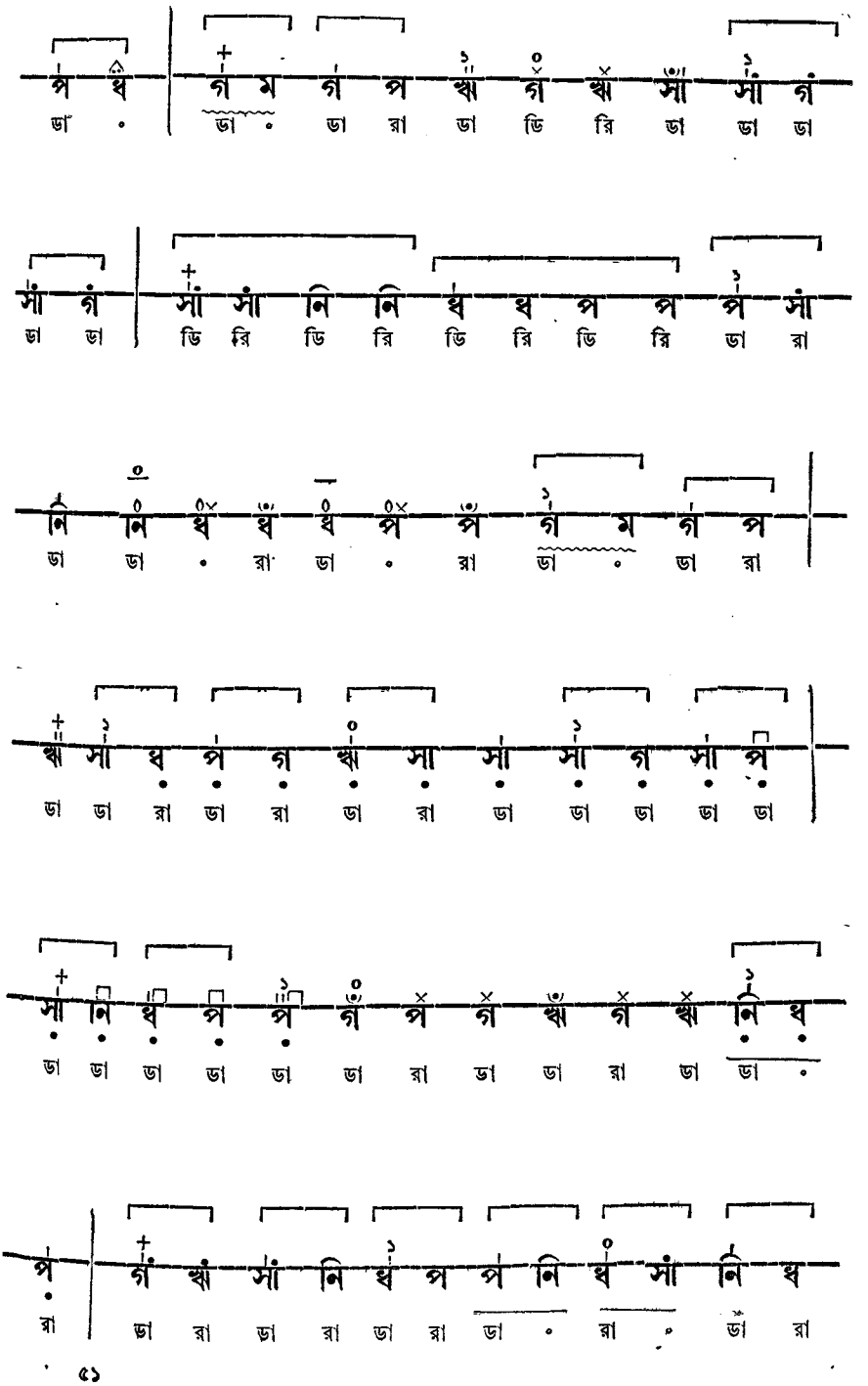
প ধ | গ ম গ প ঋ গ ঋ সাঁ সাঁ গং
ডা ডা ডা রা ডা ডি রি ডা ডা ডা
সাঁ গং | সাঁ সাঁ নি নি ধ ধ প প প সাঁ
ডা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা রা
নি নি ধ ধ ধ প প গ ম গ প |
ডা ডা রা ডা রা ডা ডা রা
ঋ সা ধ প গ ঋ সা সা সা গ সা প |
ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডা ডা ডা ডা
সা নি ধ প প গ প গ ঋ গ ঋ নি ধ
ডা ডা ডা ডা ডা ডা রা ডা ডা রা ডা ডা
প | গং ঋং সাং নি ধ প প নি ধ সাং নি ধ
রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডাঁ রা

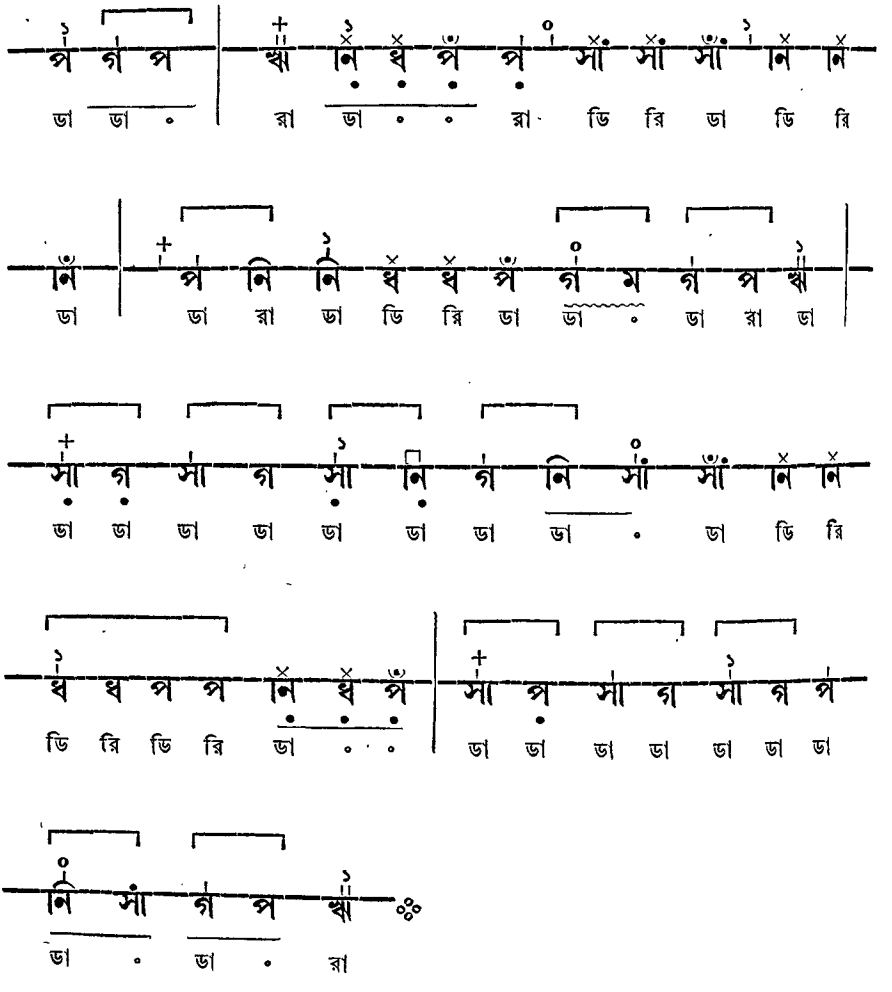
প গ প | ঋ নি ধ প প সাঁ সাঁ সাঁ নি নি
ডা ডা ০ রা ডা ০ ০ রা ডি রি ডা ডি রি
নিঁ | প নি নি ধ ধ পঁ গ ম গ প ঋ
ডা ডা রা ডা ডি রি ডা ডা ০ ডা রা ডা
সা গ সা গ সা নি গ নি সাঁ সাঁ নি নি
ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা ০ ডা ডি রি
ধ ধ প প নি ধ পঁ | সা প সা গ সা গ প
ডি রি ডি রি ডা ০ ০ | ডা ডা ডা ডা ডা ডা ডা
নি সাঁ গ প ঋ
ডা ০ ডা ০ রা

(১৯২)

কেদারা—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

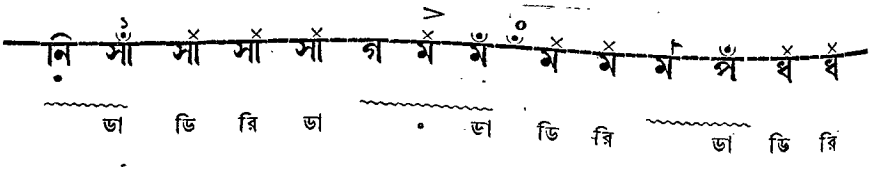

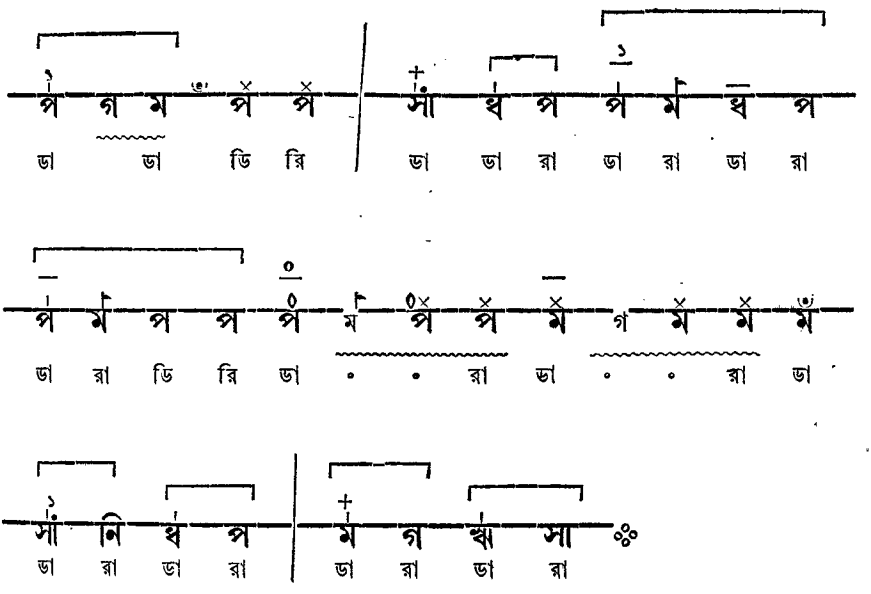

(১৯৩)

পুরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(—ঋ—)

আস্থায়ী।

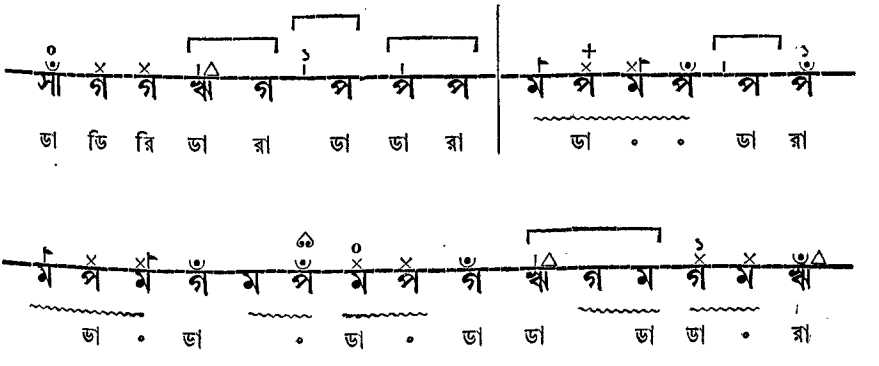

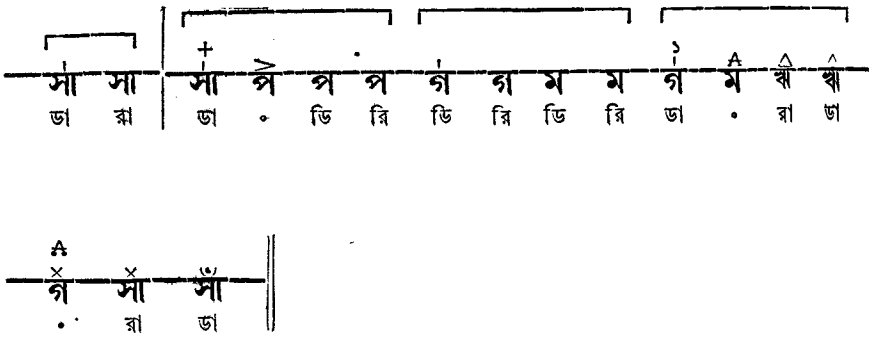
সা সা | সা প প প গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ
ডা রা | ডা • ডি রি ডি রি ডি রি ডা • রা ডা
গ সা সাঁ
• রা ডা

অন্তরা।

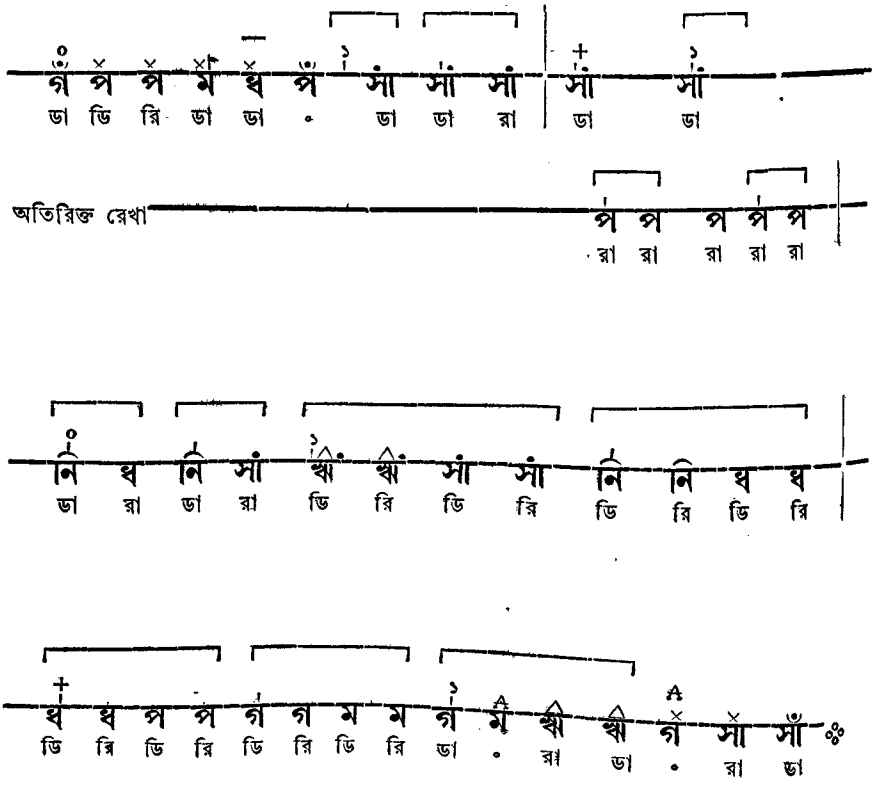
গঁ প প ম ধ পঁ সাং সাং সাং | সাং সাং
ডা ডি রি ডা ডা • ডা ডা রা | ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প প প প প
রা রা রা রা রা
নি ধ নি সাং ঋং ঋং সাং সাং নি নি ধ ধ
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
ধ ধ প প গ গ ম ম গ ম ঋ ঋ গ সা সাঁ
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা • রা ডা • রা ডা

(১৯৪)

ঝিঝিট-খাম্বাজ—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(নি)

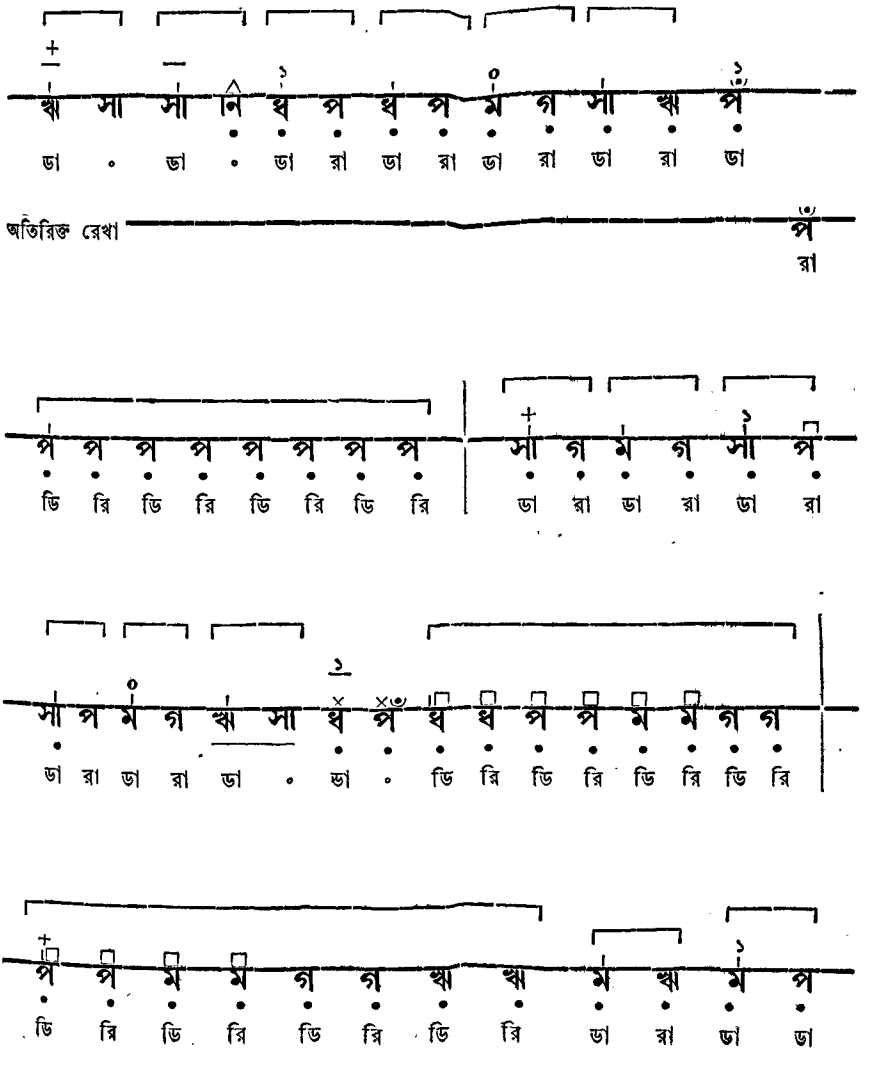
ঋ সা সা নি ধ প ধ প ম গ সা ঋ প
ডা ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প
রা
প প প প প প প প
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
সা গ ম গ সা প
ডা রা ডা রা ডা রা
সা প ম গ ঋ সা ধ প ধ ধ প প ম ম গ গ
ডা রা ডা রা ডা ডা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
প প ম ম গ গ ঋ ঋ ম ঋ ম প
ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা রা ডা ডা

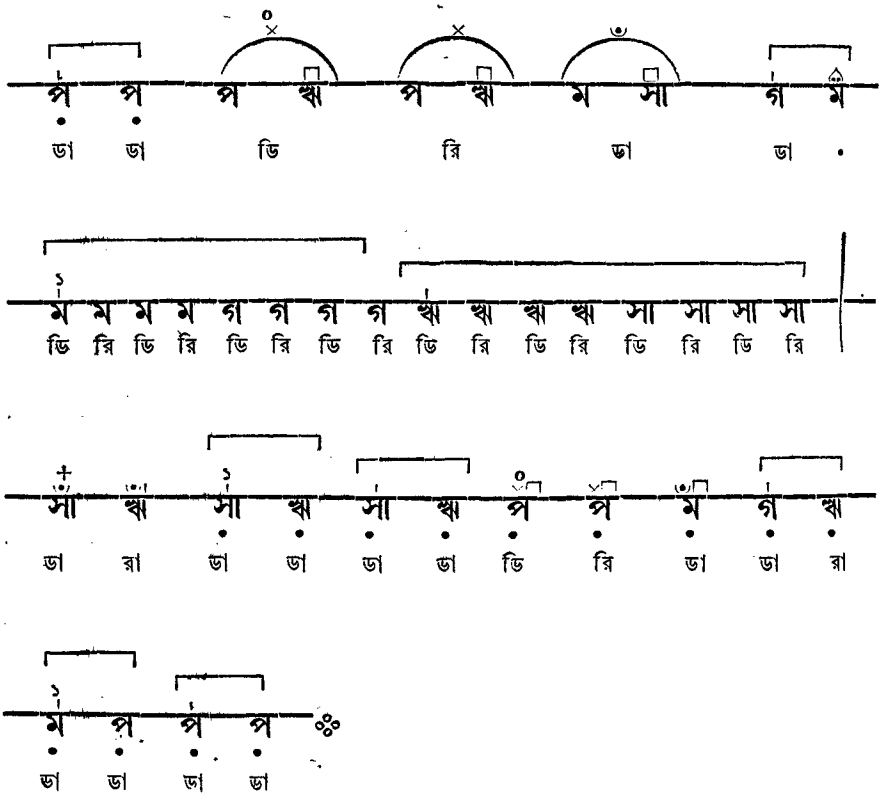

(১৯৫)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ গ ধ নি)

আস্থায়ী।

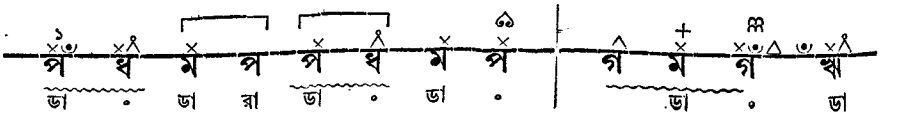

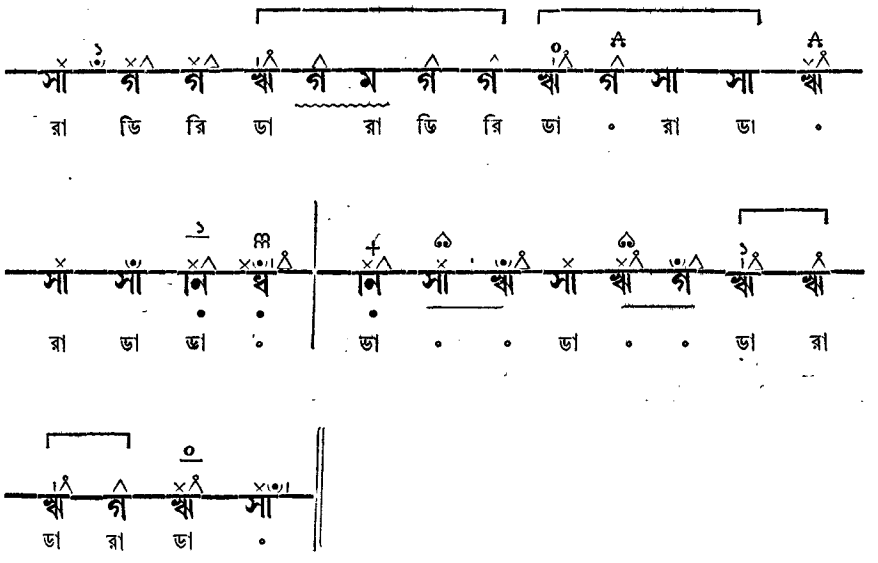
সা গ গ ঋ গ ম গ গ ঋ গ সা সা ঋ
রা ডি রি ডা রা ডি রি ডা ০ রা ডা ০
সা সা ন ধ ন সা ঋ সা ঋ গ ঋ ঋ
রা ডা ডা ০ ডা ০ ০ ডা ০ ০ ডা রা
ঋ গ ঋ সা
ডা রা ডা ০

অন্তরা।

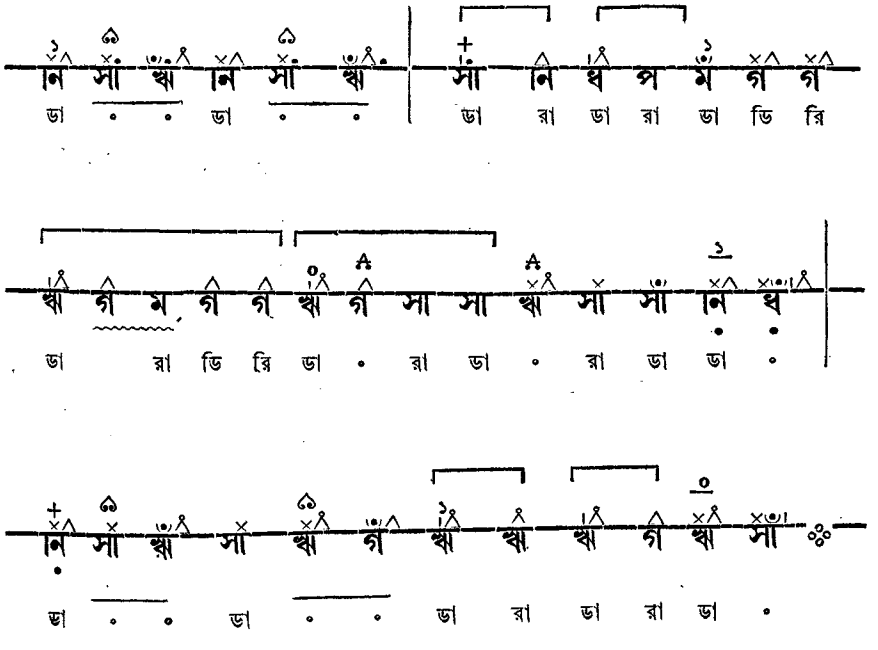
ন সা ঋ ন সা ঋ সা ন ধ প ম গ গ
ডা ০ ০ ডা ০ ০ ডা রা ডা রা ডা ডি রি
ঋ গ ম গ গ ঋ গ সা সা ঋ সা সা ন ধ
ডা রা ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা ডা ০
ন সা ঋ সা ঋ গ ঋ ঋ ঋ গ ঋ সা
ডা ০ ০ ডা ০ ০ ডা রা ডা রা ডা ০

(১৯৬)

ভৈরব—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋ ধ)

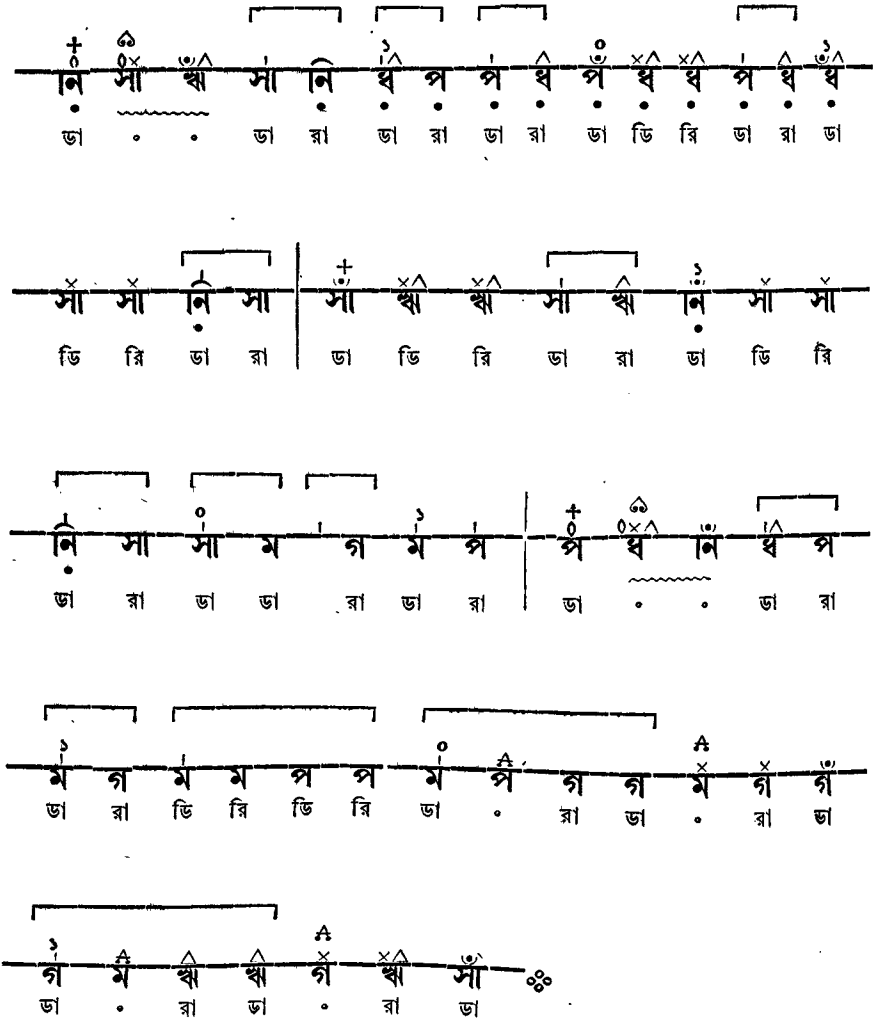
নি সা ঋ সা নি ধ প প ধ প ধ ধ প ধ ধ
ডা ০ ০ ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা
সা সা নি সা | সা ঋ ঋ সা ঋ নি সা সা
ডি রি ডা রা | ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি
নি সা সা ম গ ম প | প ধ নি ধ প
ডা রা ডা ডা রা ডা রা | ডা ০ ০ ডা রা
ম গ ম ম প প ম প গ গ ম গ গ
ডা রা ডি রি ডি রি ডা ০ রা ডা ০ রা ডা
গ ম ঋ ঋ গ ঋ সা
ডা ০ রা ডা ০ রা ডা

(১৯৭)

ভৈরবী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋা গ ধ নি)

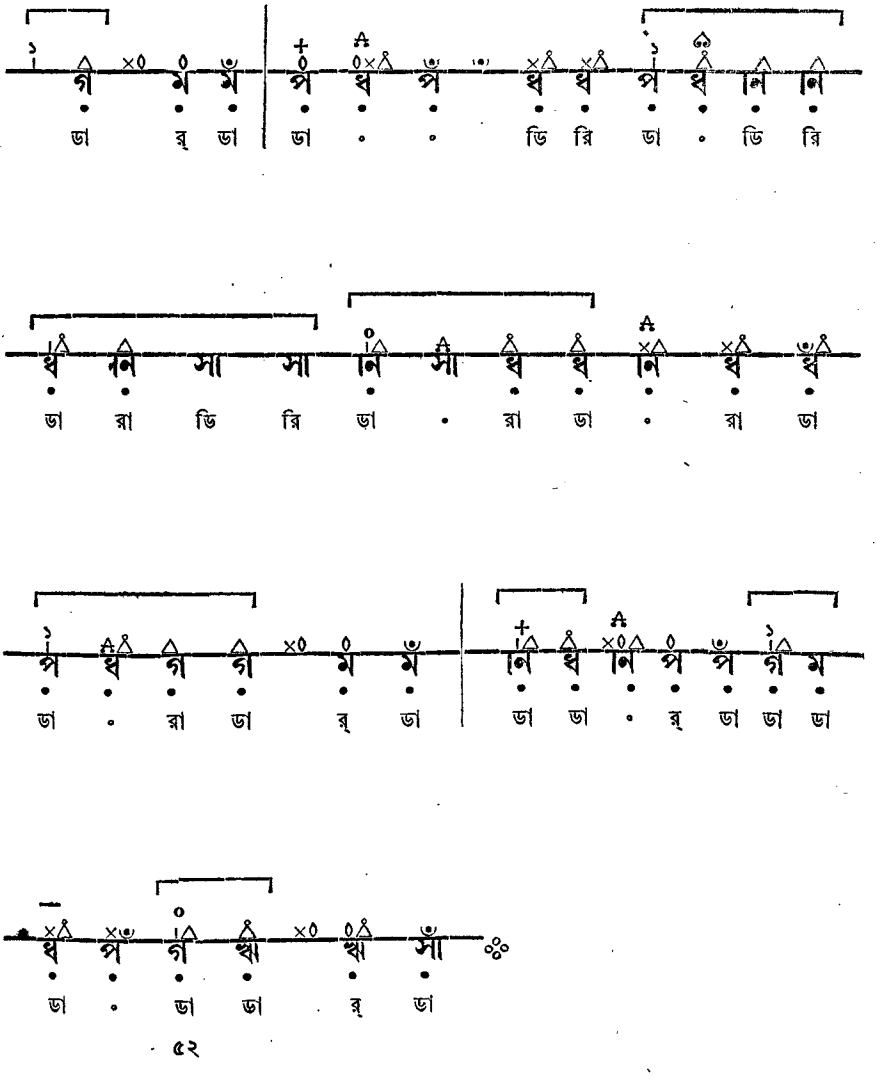

(১৯৮)

বাগেশ্বরী—সম্পূর্ণ।

পঞ্চম-সওয়ারী।

(গ ধ নি)

আস্থায়ী।

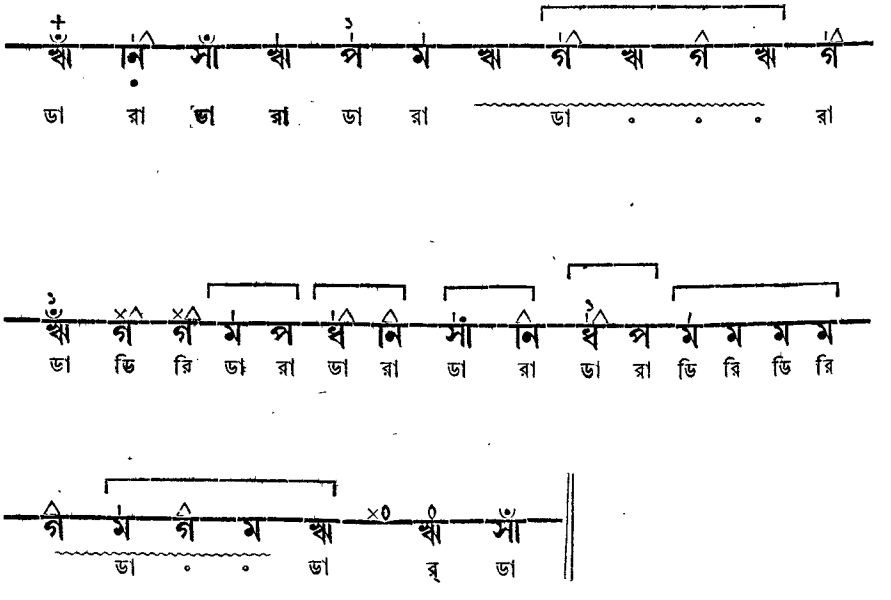

অন্তরা।

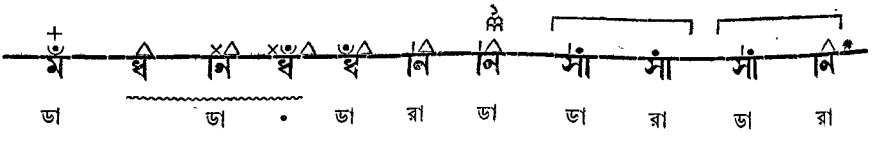

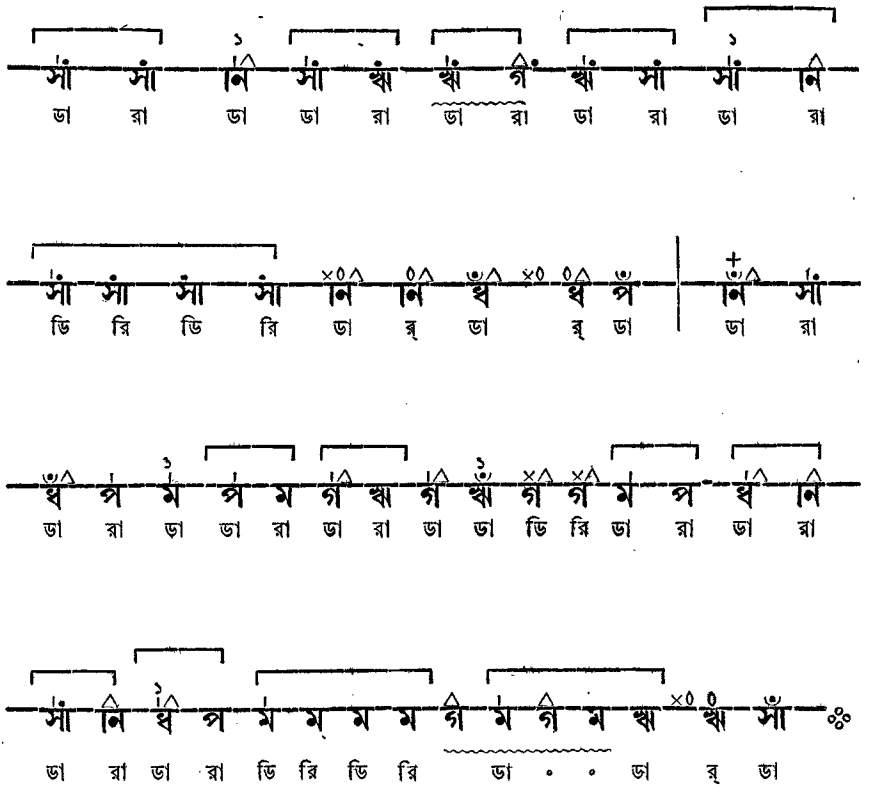
সাঁ সাঁ নিঁ সাঁ ঋঁ ঋঁ গঁ ঋঁ সাঁ সাঁ নিঁ
ডা রা ডা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা
সাঁ সাঁ সাঁ সাঁ নিঁ নিঁ ধঁ ধঁ পঁ নিঁ সাঁ
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা ডা রা
ধঁ পঁ মঁ পঁ মঁ গঁ ঋঁ গঁ ঋঁ গঁ গঁ মঁ পঁ ধঁ নিঁ
ডা রা ডা ডা রা ডা রা ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
সাঁ নিঁ ধঁ পঁ মঁ মঁ মঁ মঁ গঁ মঁ গঁ মঁ ঋঁ ঋঁ সাঁ
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা ডা র্ ডা

(১৯৯)

ত্রিবণী—সম্পূর্ণ।

মধ্যমান।

(ঋঁ মঁ ধঁ)

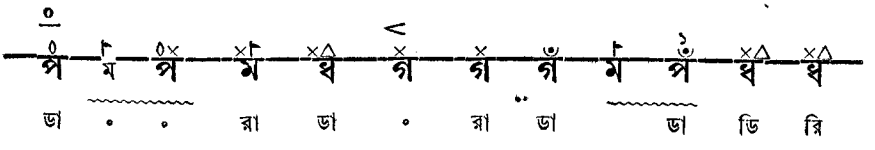

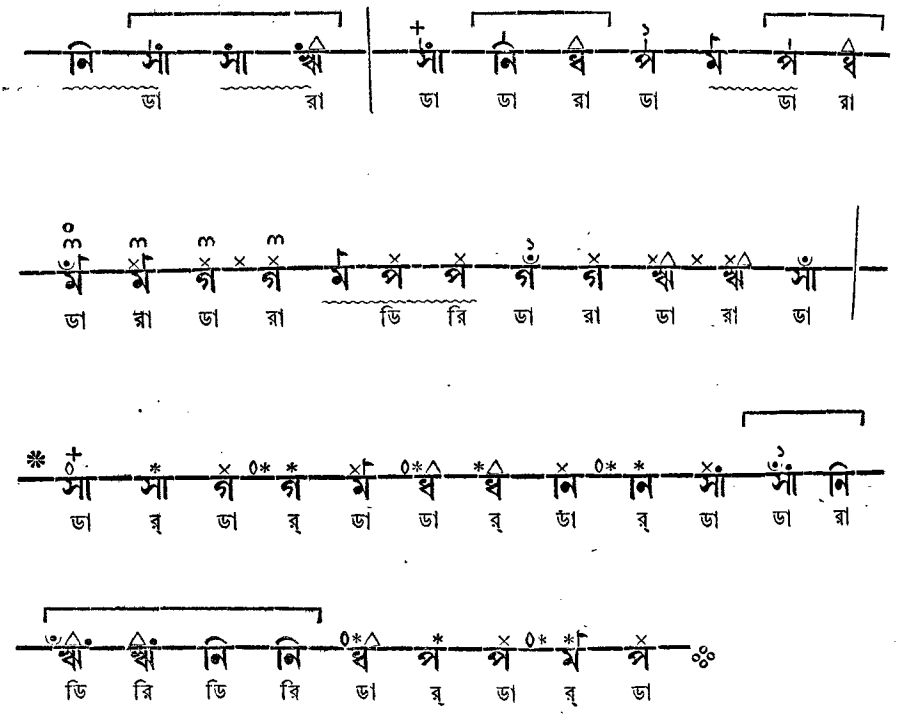

(২০০)

রামকেলী—সম্পূর্ণ।

চৌতাল।

(ঋ ধ নি)

আস্থায়ী।

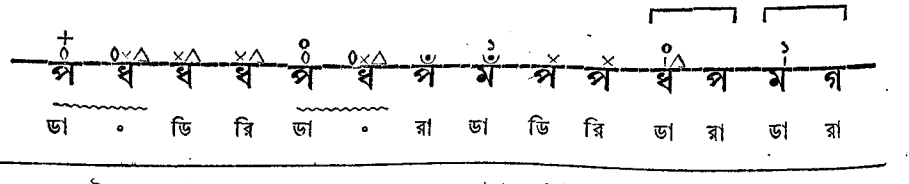

* এই স্থলে ১/৬ মাত্রা প্রয়োজন্ন জন্য, তদজ্ঞাপক (*) এইরূপ তারকা চিহ্ন ব্যবহার করা গেল।

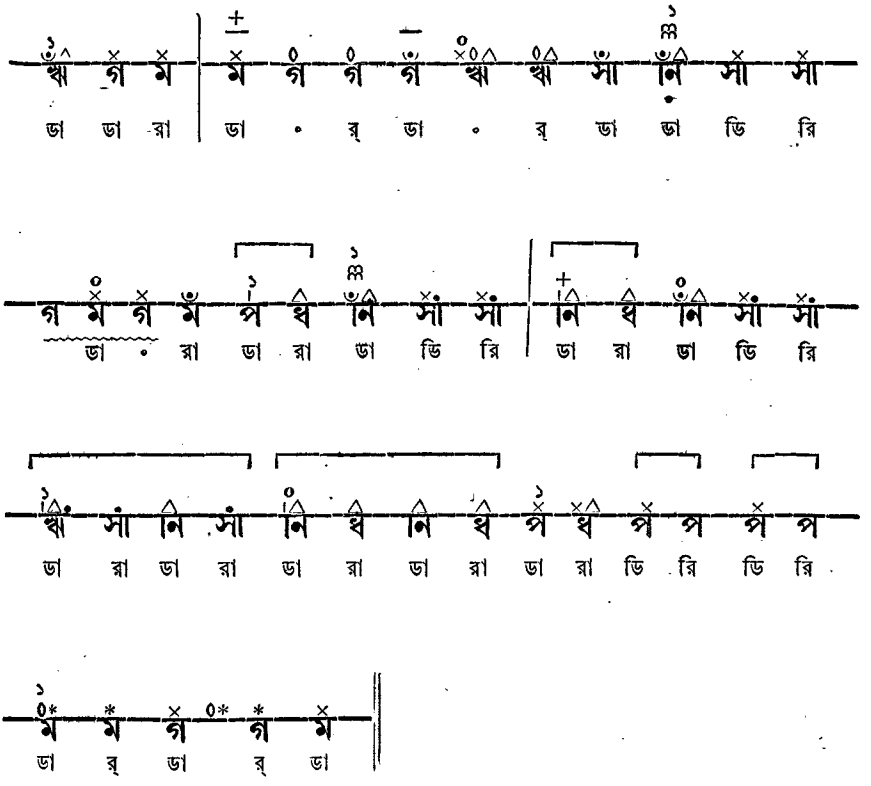
ডা ডা রা | ডা ০ র্ ডা ০ র্ ডা ডা ডি রি
ডা ০ রা ডা রা ডা ডি রি | ডা রা ডা ডি রি
ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি
ডা র্ ডা র্ ডা

অন্তরা।

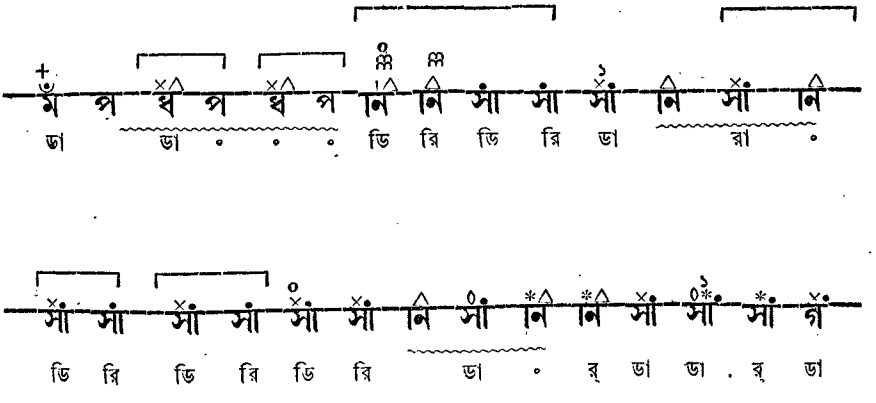
ডা ডা ০ ০ ০ ডি রি ডি রি ডা রা ০
ডি রি ডি রি ডি রি ডা ০ র্ ডা ডা . র্ ডা

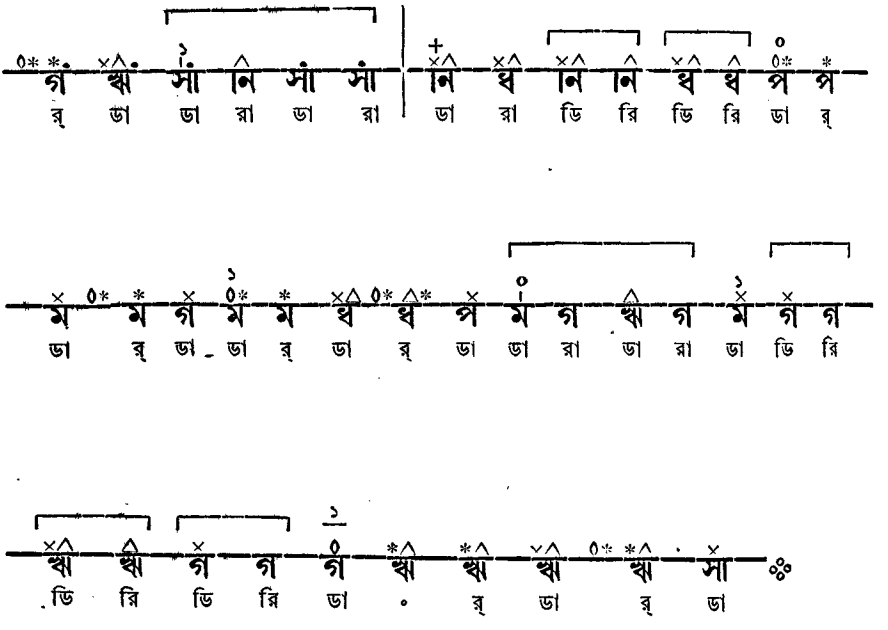

(২০১)

প্রস্তারিকা।

কানড়া—সম্পূর্ণ।

(গ ধ নি)

চৌতাল।

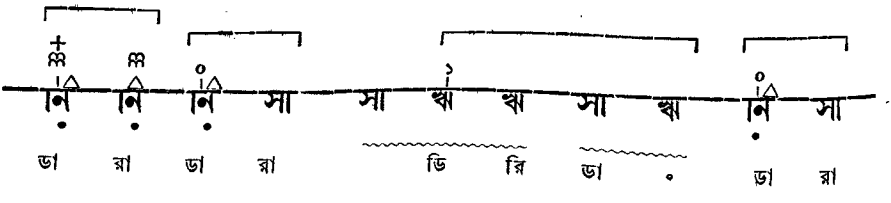

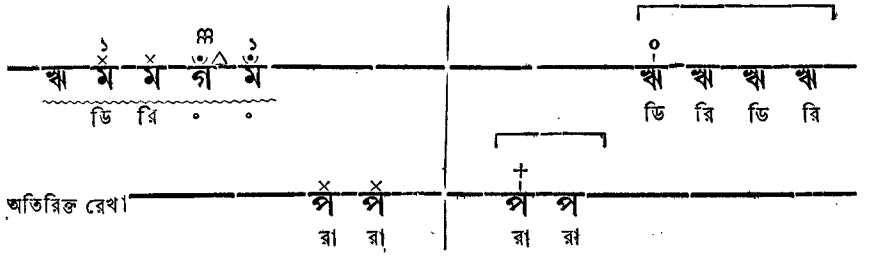
ঋ ম ম গ ম
ডি রি
ঋ ঋ ঋ ঋ
ডি রি ডি রি
অতিরিক্ত রেখা
প প প প
রা রা রা রা

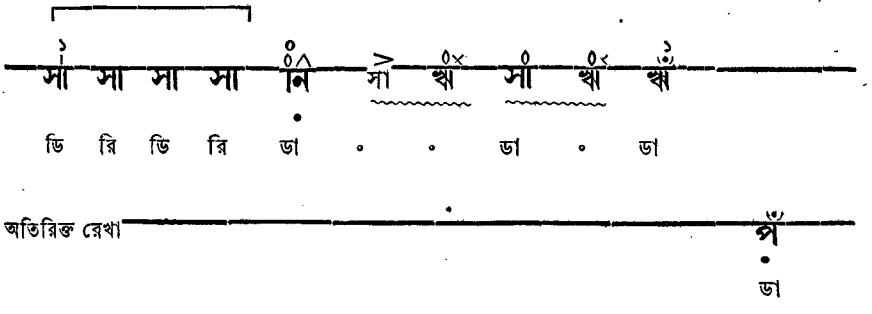
সা সা সা সা নি সা ঋ সা ঋ ঋ
ডি রি ডি রি ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
প
ডা

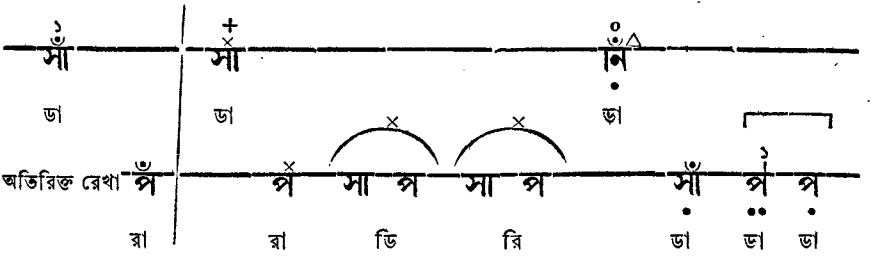
সা সা নি
ডা ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা প প সা প সা প সা প প
রা রা ডি রি ডা ডা ডা

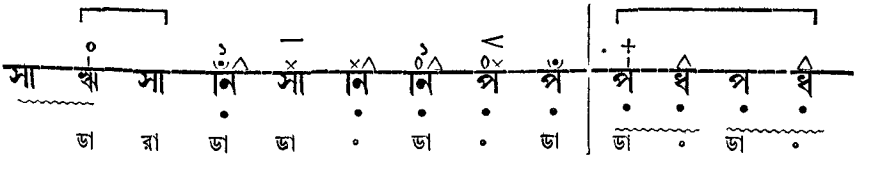
সা ঋ সা নি সা নি নি প প প ধ প ধ
ডা রা ডা ডা ডা ডা ডা ডা

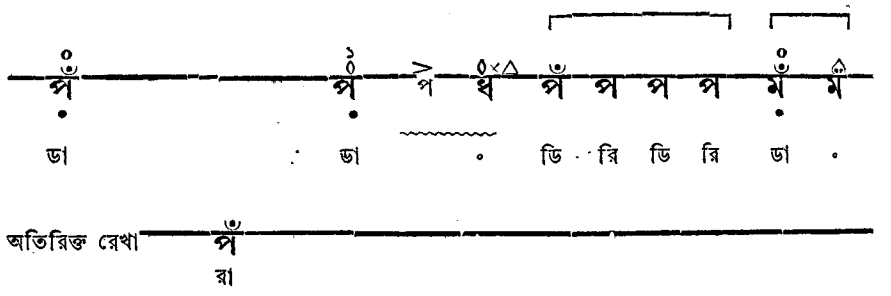
ডা ডা ডি রি ডি রি ডা
অতিরিক্ত রেখা
রা

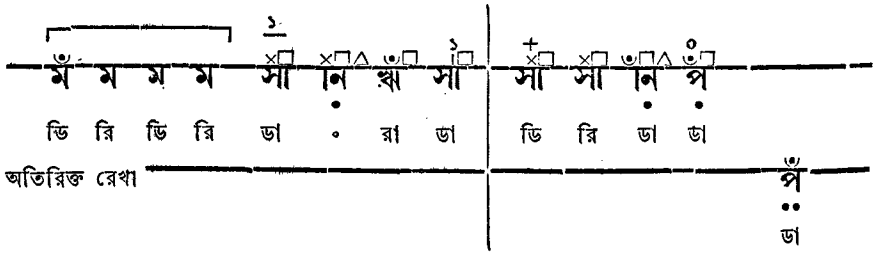
ডি রি ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডা
অতিরিক্ত রেখা
ডা

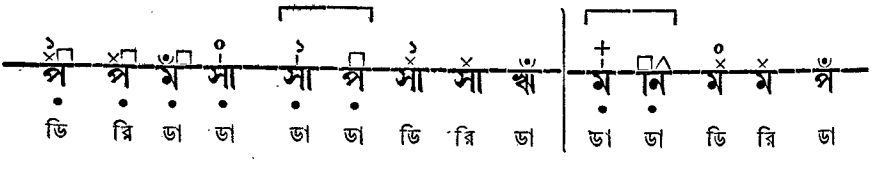
ডি রি ডা ডা ডা ডা ডি রি ডা
ডা ডা ডি রি ডা

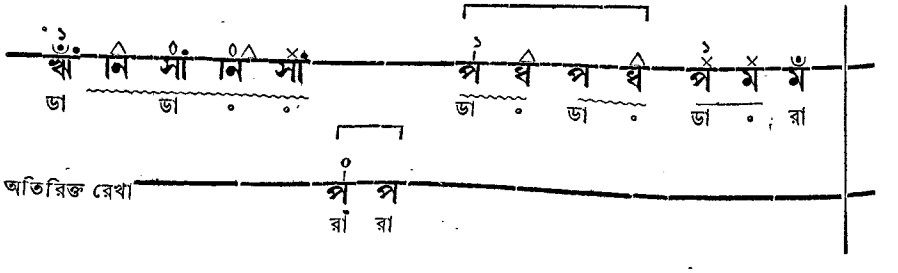
ডা ডা ডা ডা ডা রা
অতিরিক্ত রেখা
রা রা

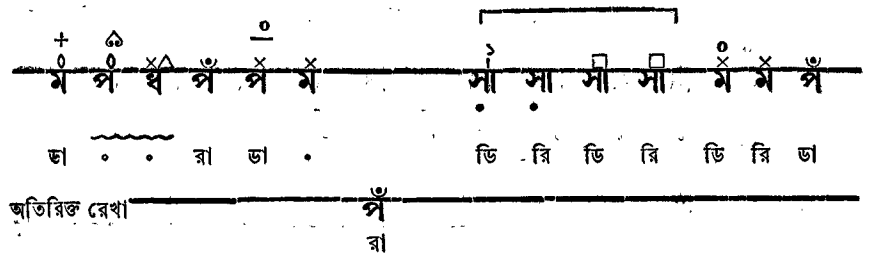
ডা রা ডা
ডি রি ডি রি ডি রি ডা
অতিরিক্ত রেখা
রা

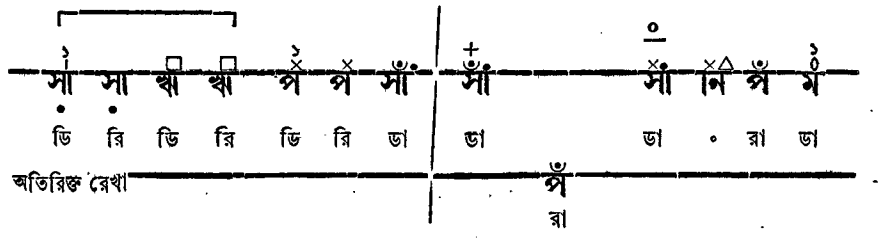
ডি রি ডি রি ডি রি ডা
ডা
ডা রা ডা
অতিরিক্ত রেখা
রা

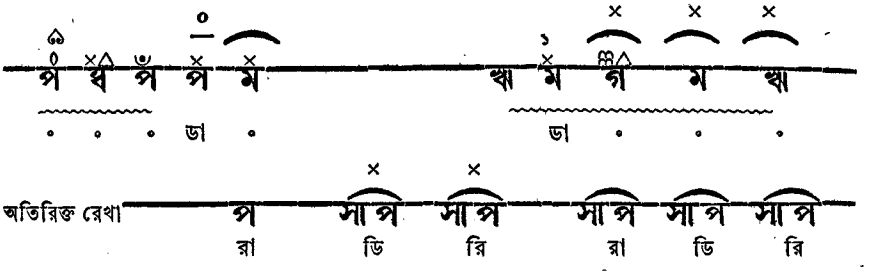
ডা
ডা
অতিরিক্ত রেখা
রা ডি রি রা ডি রি

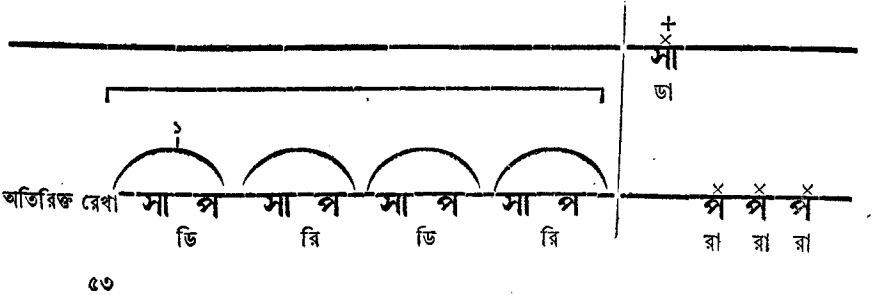
ডা
ডি রি ডি রি
রা রা রা
অতিরিক্ত রেখা

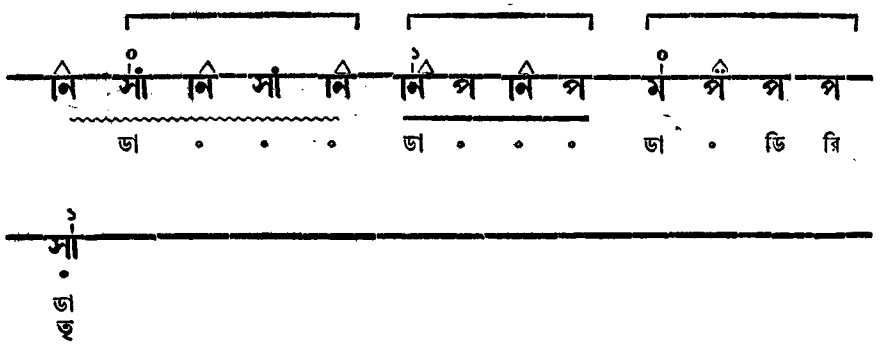

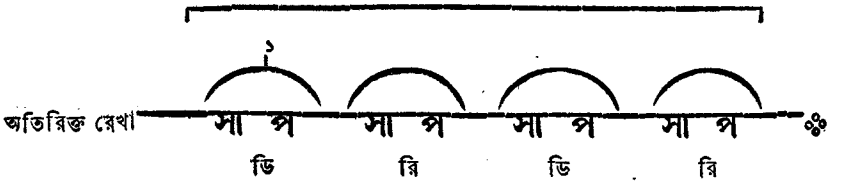

(২০২)

প্রস্তারিকা।

বিভাস—খাড়ব।

মধ্যমান।

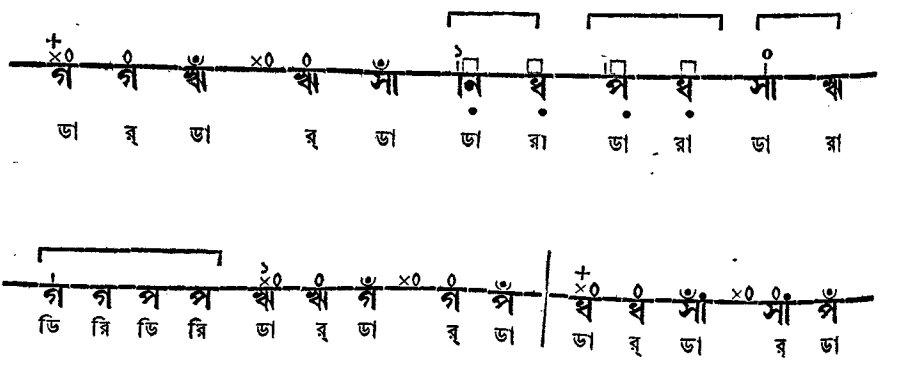

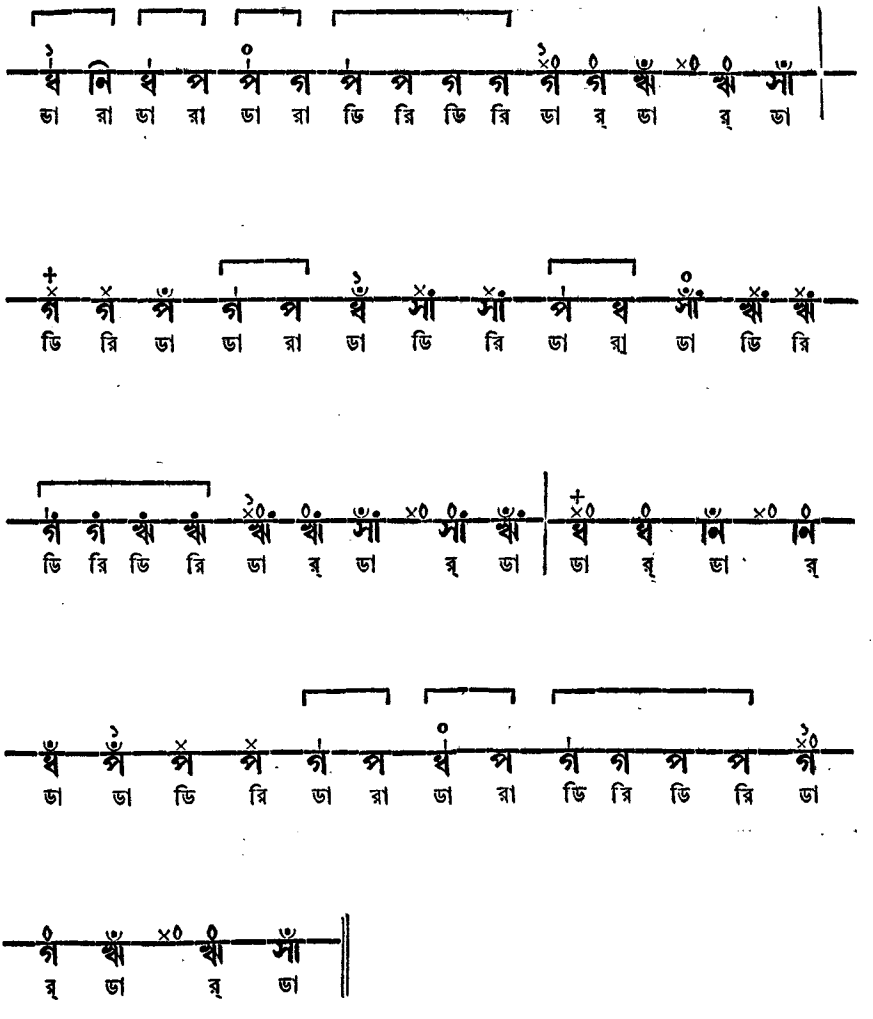
ডা রা ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ডি রি ডা ডা রা ডা ডি রি ডা র্ ডা ডি রি
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা
ডা র্ ডা র্
ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা
র্ ডা র্ ডা

একতালা।

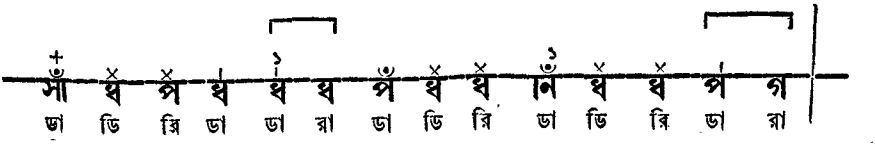
ডা ডি রি ডা ডা রা ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা

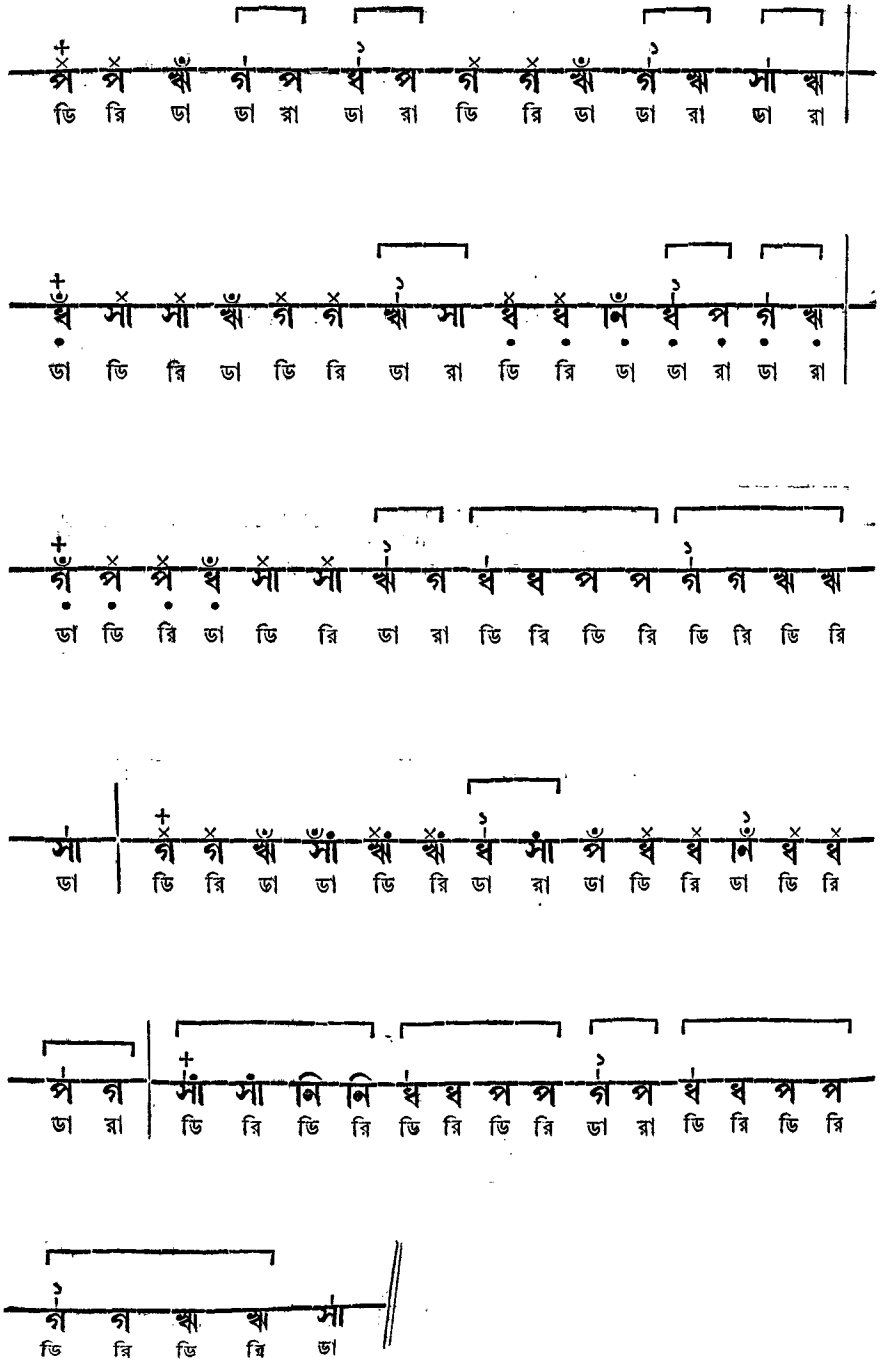
ডি রি ডা ডা রা ডা রা ডি রি ডা ডা রা ডা রা
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা ডা রা ডা রা
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি
ডা ডি রি ডা ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডি রি
ডা রা ডি রি ডি রি ডি রি ডি রি ডা রা ডি রি ডি রি
ডি রি ডি রি ডা

আড়া-চৌতাল।

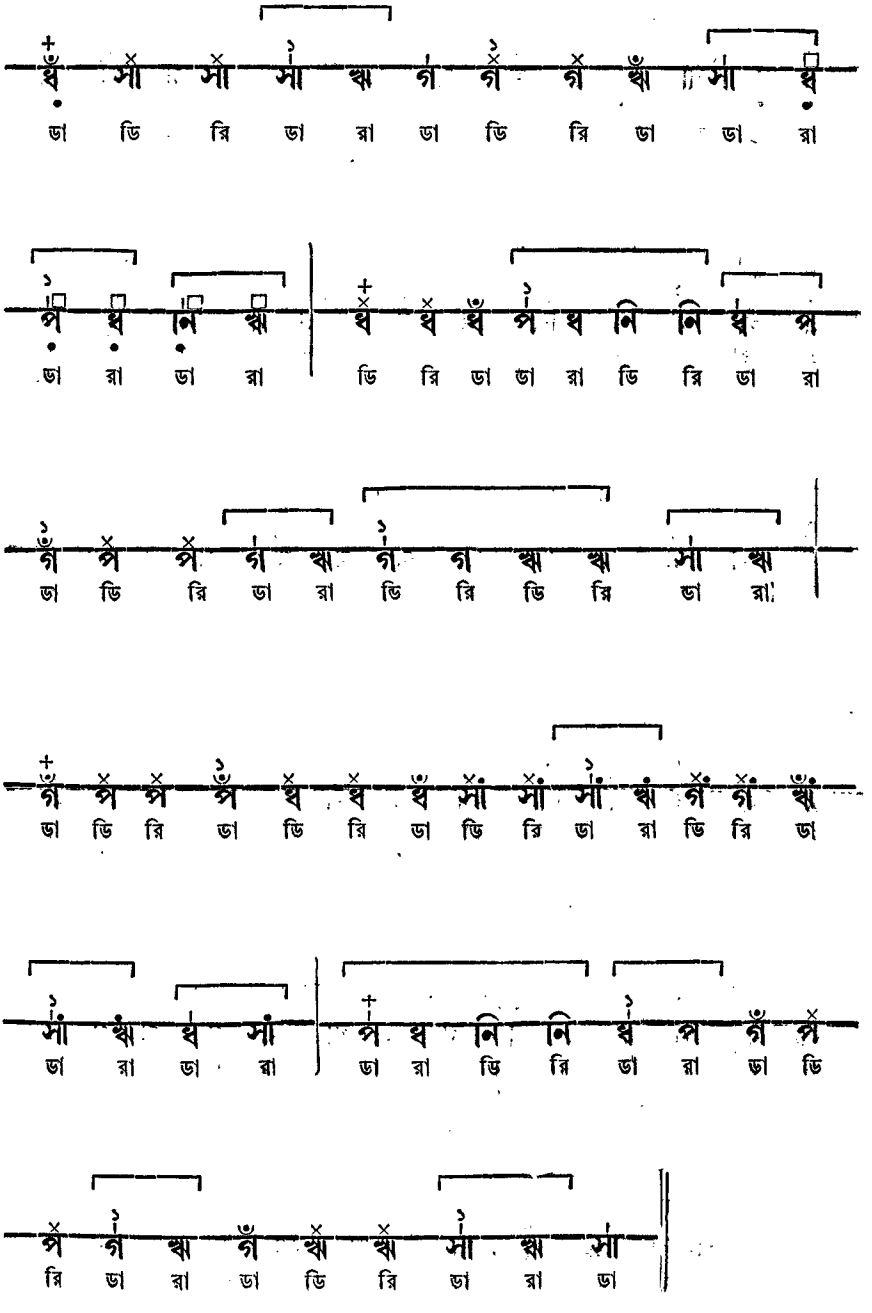
ডা ডি রি ডা রা ডা ডি রি ডা ডা রা
ডা রা ডা রা
ডি রি ডা ডা রা ডি রি ডা রা
ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডি রি ডা রা
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা ডি রি ডা রা ডি রি ডা
ডা রা ডা রা
ডা রা ডি রি ডা রা ডা ডি
রি ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা

পঞ্চম-সওয়ারী।

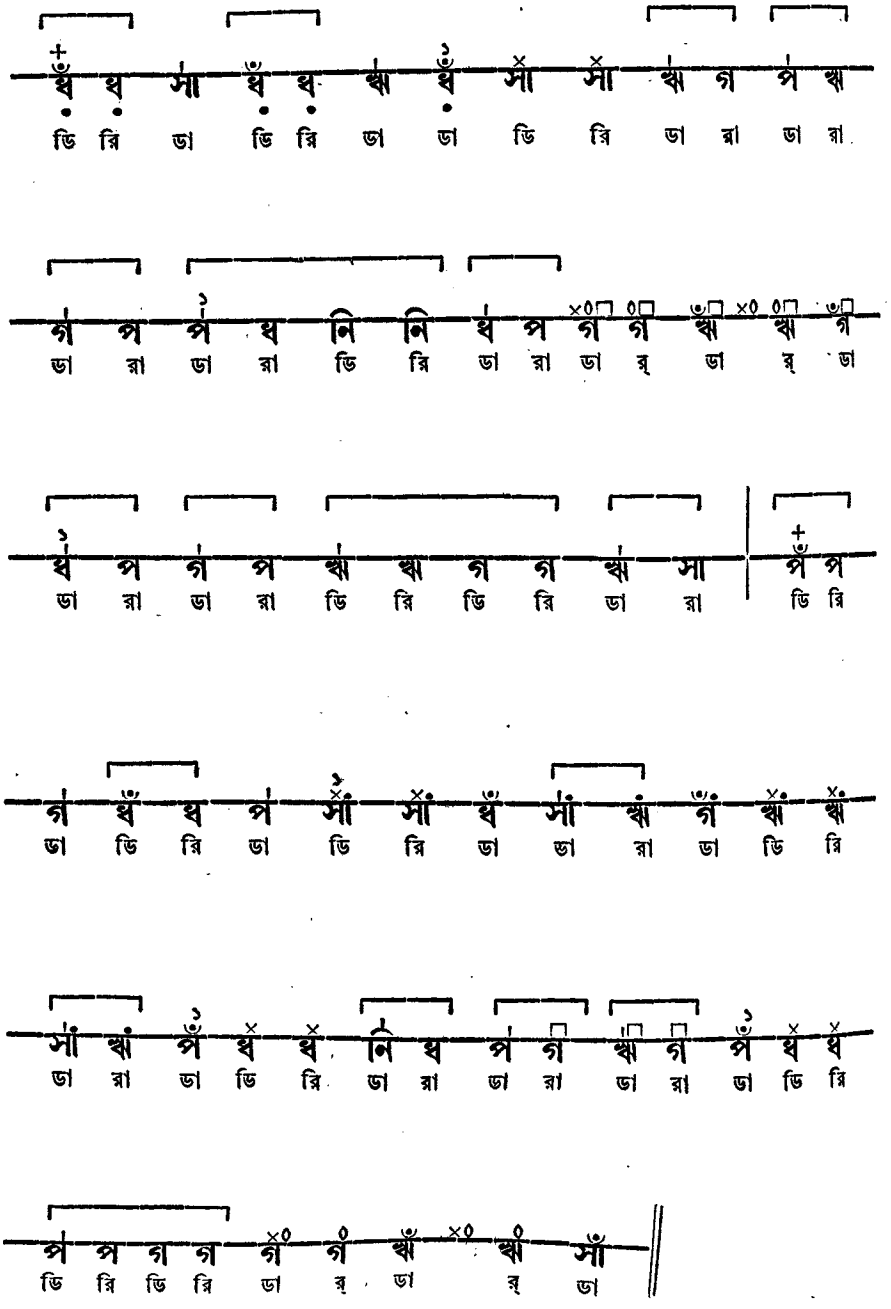
ডি রি ডা ডি রি ডা ডা ডি রি ডা রা ডা রা
ডা রা ডা রা ডি রি ডা রা ডা র্ ডা র্ ডা
ডা রা ডা রা ডি রি ডি রি ডা রা
ডি রি
ডা ডি রি ডা ডি রি ডা ডা রা ডা ডি রি
ডা রা ডা ডি রি ডা রা ডা রা ডা রা ডা ডি রি
ডি রি ডি রি ডা র্ ডা র্ ডা

সুরফাক্তা।

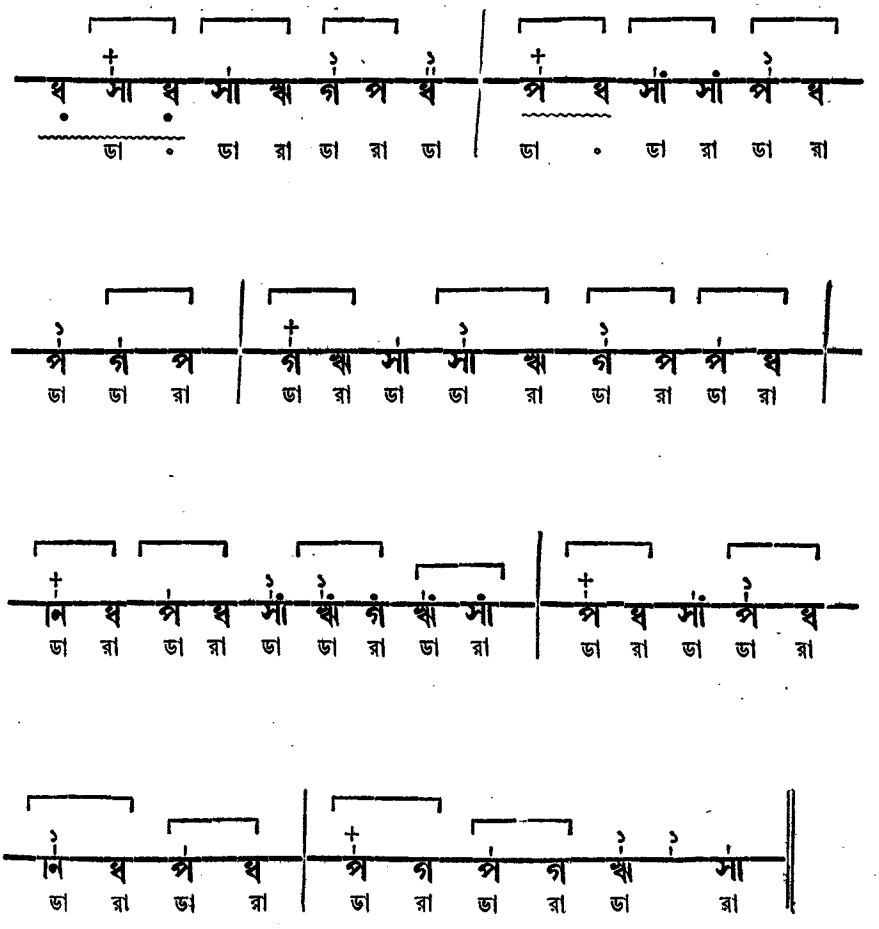
ধ সা ধ সা ঋ গ প ধ | প ধ সাং সাং প ধ
ডা ০ ডা রা ডা রা ডা | ডা ০ ডা রা ডা রা
প গ প | গ ঋ সা সা ঋ গ প প ধ
ডা ডা রা | ডা রা ডা ডা রা ডা রা ডা রা
নি ধ প ধ সাং ঋং গং ঋং সাং | প ধ সাং প ধ
ডা রা ডা রা ডা ডা রা ডা রা | ডা রা ডা ডা রা
নি ধ প ধ | প গ প গ ঋ সা
ডা রা ডা রা | ডা রা ডা রা ডা রা

ঝাঁপতাল।

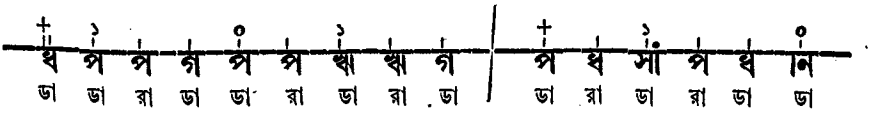
ধ প প গ প প ঋ ঋ গ | প ধ সাং প ধ নি
ডা ডা রা ডা ডা রা ডা রা ডা | ডা রা ডা রা ডা ডা

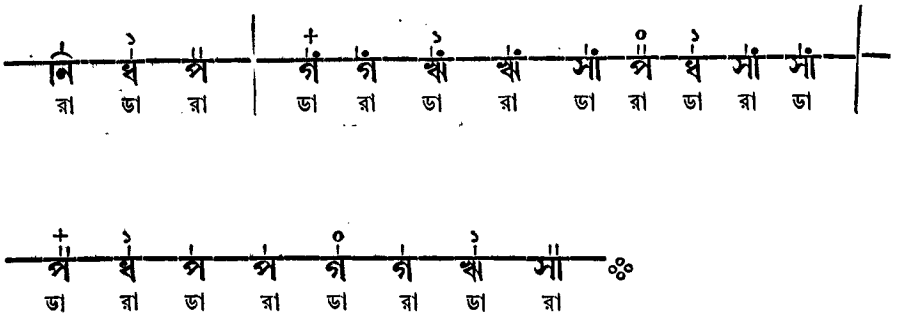

সমাপ্তোঽয়ং গ্রন্থঃ।

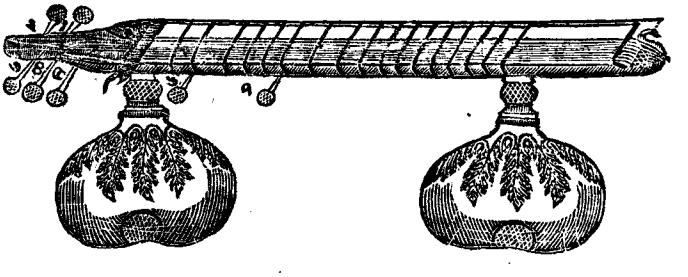

Printed at the New Bengal Press, 38, Shampooker street—Calcutta.

উপসংহার।

এই যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা প্রস্তুত হইল। ইহার আলোক অবলম্বন করিয়া শিক্ষার্থিবর্গ এতৎ ক্ষেত্রের আলি স্বরূপ স্বরলিপি গুলিতে বিচরণ করুন, আমি এমত প্রত্যাশা করি, এবং তদুদ্দেশেই ইহা প্রণয়ন করিয়াছি; আমি যাঁহার কৃপা-আশ্রয়ে এই দুরূহ কার্য্যে কৃতকার্য্য হইয়াছি, অর্য্যমাস্বরূপ আমার সেই সঙ্গীতাচার্য্য শ্রীযুক্ত ক্ষেত্রমোহন গোস্বামীর সম্মুখে এই "যন্ত্রক্ষেত্রদীপিকা" নীরাজন-দীপিকা-স্বরূপ কল্পনা করিলাম। পরন্তু অধ্যাপক শ্রীযুক্ত রামনারায়ণ তর্করত্ন মহাশয় এই যন্ত্রক্ষেত্র-বিচরণকালে ভ্রমসংশোধনাদি দ্বারা মধ্যে মধ্যে পাদস্খলন হইতে আমাকে সর্ব্বতোভাবে সতর্ক করিয়াছেন, তজ্জন্য তাঁহাকে এই সময় ধন্যবাদ দিয়া গ্রন্থের উপসংহার করিলাম ইতি।

কলিকাতা।
২৫এ আশ্বিন (মহাষ্টমী) ১২৭৯ সাল।

শ্রীশৌরীন্দ্রমোহন ঠাকুর।
পাথুরিয়াঘাটা।

অশুদ্ধ শোধন।

পৃষ্ঠা	পঙ্‌ক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ।
৪০	১৬		
৫২	৬		
ঐ	১৬	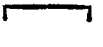	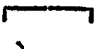
৫৩	৫		
ঐ	৭	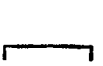	
ঐ	৯	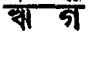	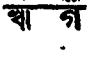
৫৫	১৩	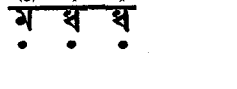	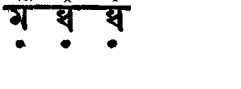
৫৭	৪		

পৃষ্ঠা	পঙ্‌ক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ।
৬৫	১৭	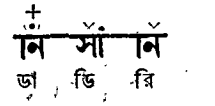	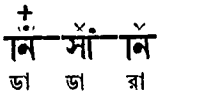
৬৯	৭		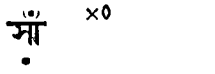
৭৬	১৩		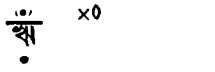
৮১	১১		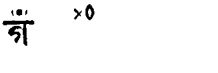
৮২	৮	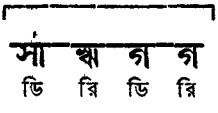	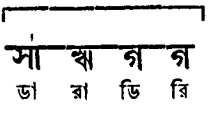
৯৫		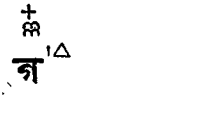	
৯৭	১১	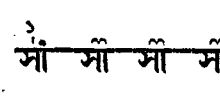	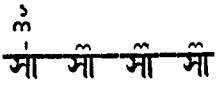
১০০	১২	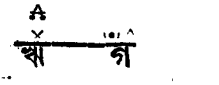	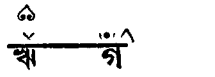
১১৪	৮	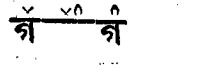	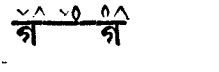
১২৩	১৪	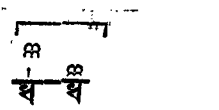	
১৩৪	১৮	নিধু	শিবু

পৃষ্ঠা	পঙ্‌ক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ।
১৪৯	১৬	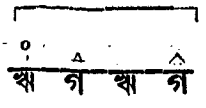	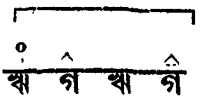
১৫৭	৩	"শ্লথ ত্রিতালীর" নিম্নে "আস্থায়ী" বসিবে।	
১৮৬	৪	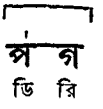	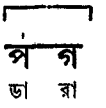
ঐ	৬	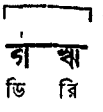	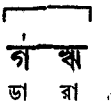
১৯০	৭		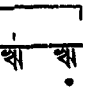
১৯৪	২	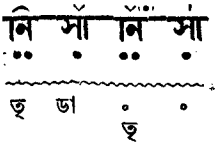	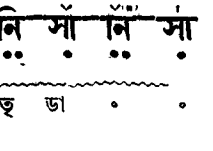
২০১	১১	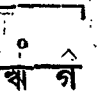	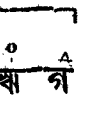
২০৫	১৯	Indisoluble.	Indissoluble.
২০৬	৫	প্লতের	প্লুতের
ঐ	৬	চন্দ্রবিন্দূ	চন্দ্রবিন্দু
২১৪	১০	উষ্টিক	উষ্ণিক
২৩৮	১	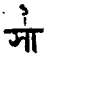	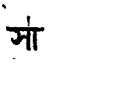

পৃষ্ঠা	পঙ্‌ক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ।
২৪৭	৬	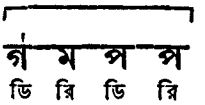	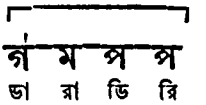
২৫১	৯		
২৫৩	১০		
২৫৭	১০		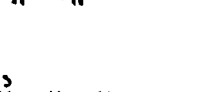
২৫৮	২		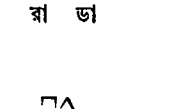
২৬২	৫	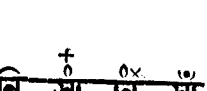	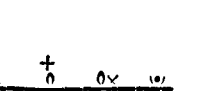
২৬৯	১২	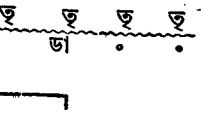	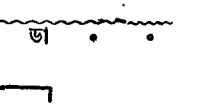
২৮৮	১১	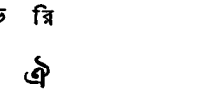	
ঐ	১৫	ঐ	ঐ
২৯২	১৩		

পৃষ্ঠা	পঙ্‌ক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ।
২৯২	১৪	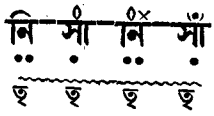	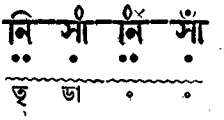
৩০২	১১		
৩০৪	৮	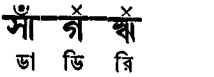	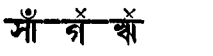
৩১২	৪	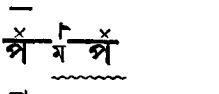	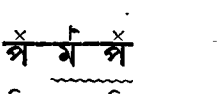
ঐ	১০		
৩২৮	১	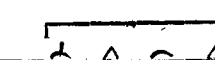	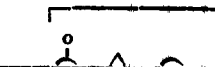
৩৩৬	১৩		
৩৩৮	১৫	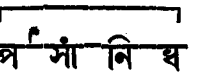	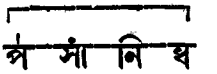
৩৪০	৪	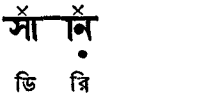	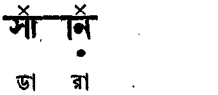
৩৬২	১		

পৃষ্ঠা	পঙ্‌ক্তি	অশুদ্ধ	শুদ্ধ।
৩৬৩	৮		
৩৬৪	৩		
ঐ	৫		

৩৬৬ দ্বিতীয় স্তবকে ডবল "বার" না, হইয়া চতুর্থ স্তবকে হইবে।

৩৯৯	৯		
৪০০	৯		
৪১০	৫		
৪১১	১২		

২২ পৃষ্ঠায় "ডা র্ ডা র্ ডা" বোল সাধনের মাত্রা যেরূপ দেওয়া আছে, সেরূপ না হইয়া " " এইরূপ সর্ব্বত্র হইবে।

A FEW LYRICS

OF

OWEN MEREDITH

SET TO HINDU MUSIC

BY

SOURINDRO MOHUN TAGORE, MUS. DOC.,

FOUNDER AND PRESIDENT OF THE BENGAL MUSIC SCHOOL;
OFFICIER D' ACADE'MIE, PARIS;
MEMBER OF THE ROYAL ASIATIC SOCIETY,

AND

FELLOW OF THE ROYAL SOCIETY OF LITERATURE, GREAT BRITAIN AND IRELAND;
ASSOCIATE MEMBER OF THE ROYAL ACADEMY OF SCIENCE,
LETTERS AND FINE ARTS OF BELGIUM;
MEMBER OF THE ROYAL ACADEMY OF MUSIC, STOCKHOLM, SWEDEN;

HONORARY FELLOW OF
THE ROYAL ACADEMY OF ST. CECILIA, ROME;
SOCIO ONORARIO SOCIETA DIDASCALICA ITALIANA;

CORRESPONDING MEMBER OF THE ROYAL MUSICAL INSTITUTE OF FLORENCE;
CORRESPONDING MEMBER OF
THE ROYAL ACADEMY OF RAFFAELLO, URBINO, ITALY;
MEMBER OF THE UNIVERSITY OF SASSARI, SARDINIA;
&c., &c., &c.

CALCUTTA:

PRINTED BY I. C. BOSE & CO., STANHOPE PRESS, 249, BOW-BAZAR STREET,
AND PUBLISHED BY PUNCHANAN MUKERJEE AT PATHURIAGHATA.

1877.

[*All rights reserved.*]

TO

His Excellency the Right Honble

EDWARD ROBERT LYTTON BULWER-LYTTON,

BARON LYTTON OF KNEBWORTH, G.M.S.I.,

Viceroy and Governor-General of India,

&c., &c., &c., &c.

My Lord,

THE present year, 1877, will soon pass away. This year, in consequence of the assumption by HER MOST GRACIOUS MAJESTY QUEEN VICTORIA of the to us most endearing Title of "EMPRESS OF INDIA," is a year of jubilee to the people of this country, and will ever be marked in white in their calendar. Poets have celebrated the auspicious occasion in befitting lays, bards have sung of it, priests in the countless shrines of India have invoked the blessing of the Almighty on our kind Sovereign, and rich, and rare, and varied have been the offerings which have been brought to the foot of the Imperial Throne. I too, an humble lover of music, joined my feeble voice to the mighty shout of joy, and to the swelling song of gratitude and loyalty, which resounded from one end of India to the other on the day the GRACIOUS MESSAGE of our EMPRESS-MOTHER was proclaimed to her Indian subjects. My heart still glows with feelings of loyalty and gratitude, and I would fain give vent to those feelings through my favorite art before this auspicious year passes away. I have therefore ventured to set some of your Lordship's poems to Hindu Music, and beg most respectfully, with your Lordship's kind permission, to dedicate the volume to your Lordship, as another humble memorial of our "year of jubilee."

I have the honor to remain,

MY LORD,

Your Lordship's most obedient

and humble servant,

SOURINDRO MOHUN TAGORE.

CALCUTTA:
Pathuriaghatta,
December, 1877.

A FEW LYRICS

OF

OWEN MEREDITH

SET TO HINDU MUSIC.

ONE NIGHT.

I.

A FALLING star that shot across
  The intricate and twinkling dark
Vanish'd, yet left no sense of loss
  Throughout the wide ethereal arc.

(1.)

RÁGINÍ CHHÁYÁNAT.
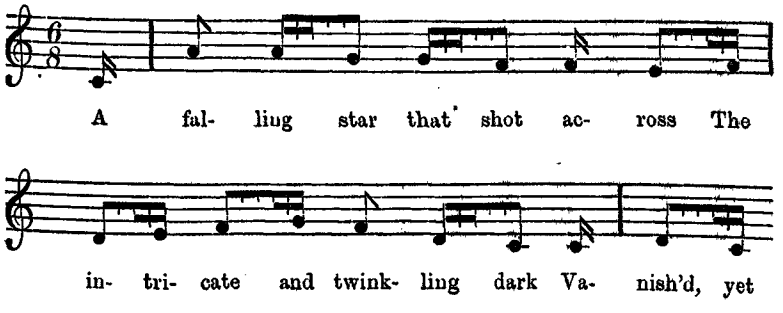
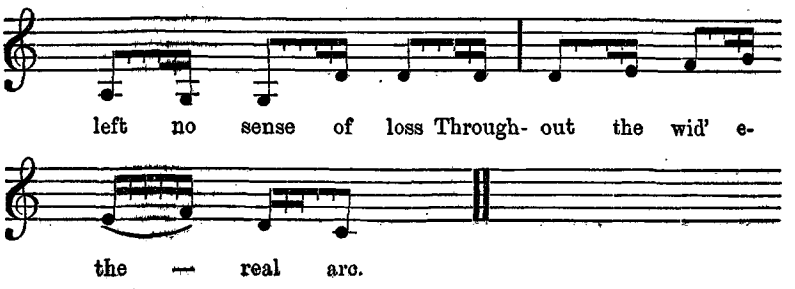

II.

Of those serene and solemn skies
That round the dusky prospect rose,
And ever seem'd to rise, and rise,
Through regions of unreach'd repose.

III.

Far, on the windless mountain-range,
One crimson sparklet died: the blue
Flush'd with a brilliance, faint and strange,
The ghost of daylight, dying too.

IV.

But half—reveal'd, each terrace urn
Glimmer'd, where now, in filmy flight,
We watch'd return, and still return,
The blind bats searching air for sight.

V.

With sullen fits of fleeting sound,
Borne half asleep on slumbrous air,
The drowsy beetle humm'd around,
And pass'd, and oft repass'd us, there;

VI.

Where, hand in hand, our looks alight
With thoughts our faint lips left untold,
We sat, in that delicious night,
On that dim terrace, green and old.

VII.

Deep down, far off, the city lay,
When forth from all its spires was swept
A music o'er our souls; and they
To music's midmost meanings leapt;

VIII.

And, crushing some delirious cry
Against each other's lips, we clung
Together silent, while the sky
Throbbing with sound around us hung:

IX.

For, borne from bells on music soft,
That solemn hour went forth through heaven,
To stir the starry airs aloft,
And thrill the purple pulse of even.

X.

O happy hush of heart to heart!
O moment molten through with bliss!
O love, delaying long to part
That first, fast, individual kiss!

XI.

Was it some drowsy rose that moved?
Some dreaming dove's pathetic moan?
Or was it my name from lips beloved?
And was it thy sweet breath, my Own,

XII.

That made me feel the tides of sense
O'er life's low levels rise with might
And pour my being down the immense
Shore of some sudden Infinite?

XIII.

"Oh, have I found thee, my soul's soul?
My chosen forth from time and space!
And did we then break earth's control?
And have I seen thee face to face?

XIV.

"Close, closer to this bursting breast,
Closer thy long'd-for arms enfold!
I need such warmth, for else the rest
Of life will freeze me dead with cold.

XV.

"Long was the search, the effort long,
Ere I compell'd thee from thy sphere,
I know not by what mystic song,
I know not with what nightly tear:

XVI.

"But thou art here, beneath whose eyes
My passion falters, even as some
Pale wizard's taper sinks, and dies,
When to his spell a spirit is come.

XVII.

"What hath life been? What will to be?
How have I lived without thee? How
Is life both lost and found in thee?
Feel'st thou Forever in this Now?

XVIII.

"All in a moment! a whole world,
With all its wonders strange and far,
In one fierce point of glory furl'd;
—A universe within a star!

XIX.

"Born for one bliss that could not fail,
How should faith flinch, or patience tire?
I knew that Time could not prevail
Against my soul's intense desire,

XX.

"Nor shut these famisht eyes in night,
Of thee unsolaced. In which faith
Doubtless it must have been most light
To bear with life, and laugh to death:

XXI.

"But now, life hath so much to lose!
And death so much to take! the heats
Of love's least costly moments use
And burn life's essence out in sweets!

XXII.

"Mere antechamber was the past
To the crown'd presence of this hour:
But, having seen his Queen at last,
In all her beauty, all her power,

XXIII.

"What merest Page would turn again
Content to hum the careless rhyme,
Or trifle with the courtier train,
That whiled, perchance, a previous time?

XXIV.

"So the old life is lost, I know!
The new? 'tis thine, not mine. My Own,
If thou should'st leave me lonely now,
I must be hopelessly alone.

XXV.

"As one idea, half *divined*,
Labours and frets *within the brain*
Of some sad artist, and the mind
Is vassal to imperious pain,

XXVI.

"For toil by day, for tears by night,
Till, in the sphere of vision brought,
Rises the beautiful, the bright
Predestined, and relentless Thought,

XXVII.

"So, clothed in the desire of years,
This love doth to its destined seat
Rise sovran, through the light of tears,
Achieved, accomplisht, and complete!

XXVIII.

"Ah, dearest! yet the artist's thought
Once freed, in form, from forth his soul,
By chance and time is seized, and caught
Beyond the artist's own control,

XXIX.

"To fare, he knows not how, for ill
Or well,—be shatter'd, or stand fast.
And this freed love, that doth fulfil
In thy bright presence my pale past,

XXX.

"How shall it fare, for weal or woe?
Already is it pass'd away
How far beyond the yes or no
That once was in my power to say!

XXXI.

"'Tis mine no longer. It's am I.
And it, and I, Sweet-heart, are thine.
But thou thyself ? . . . dear Destiny,
Swear, swear again, that thou art mine!

XXXII.

"Swear twice and thrice, no future hour
Shall ever blight what this hath blest!
— Nay! I possess thee by the power
Whereby I am myself possest.

XXXIII.

"And come what may, and pass what must,
Why we were born, at last, we know.
Spirit to spirit! . . . . Let the dust
Do with the dust what dust can do.

XXXIV.

"Why heed it? Our two souls 'tis sure,
Now understand the one thing best.
This is not earth's: this must endure:
Be earth's spite wreak'd upon the rest!

XXXV.

"These eyes may lose thy looks,—their light:
These lips from thine harsh fate may sever:
Oh, looks and lips may disunite,
But ever love is love for ever!"

THE SUBJECTS' APPEAL.

I.

DEAR despot of thy little state,
This busy many-thoughted Me,
Which thy sole will doth regulate,
Since, 'twixt thy loyal folk and thee,

(2.)

RÁGINÍ MÁLAŚRÍ.
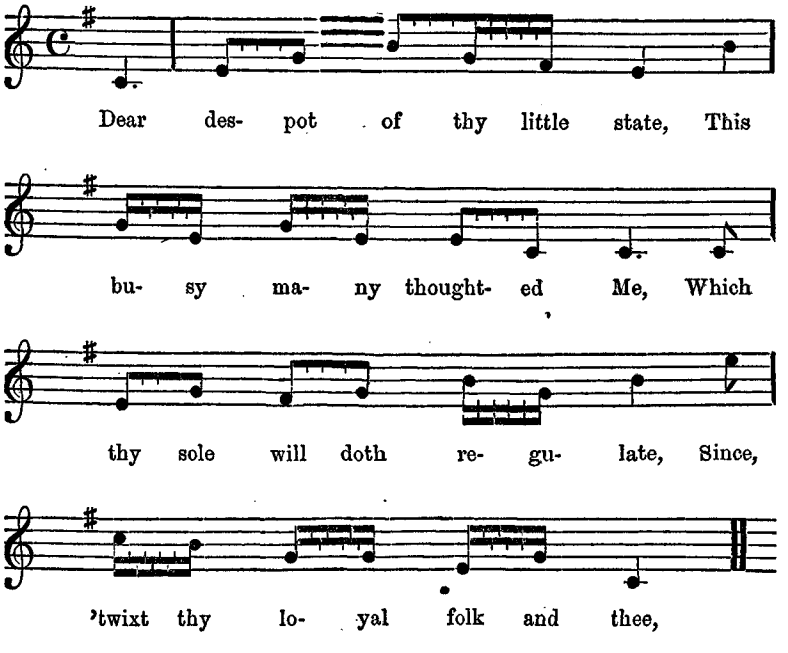
Dear des- pot of thy little state, This
bu- sy ma- ny thought- ed Me, Which
thy sole will doth re- gu- late, Since,
'twixt thy lo- yal folk and thee,

II.

(Thy loyal folk,—each feeling, thought,
And fancy,—all the daily train
Which throngs this heart and brain) there's nought
That may thy sovran power restrain,

III.

Be in the uses of thy power
Gentle, as noble monarchs are;
Nor vary with the varying hour,
But, bright and constant as a star,

IV.

Sit in the system of my soul,
And there, unmoved, the motions all
Of what thou mak'st my heaven control.
Dear, though I be indeed thy thrall,

V.

And such a grace have kings, though bad,
That even rebels, boldest grown
By wrongs that make man's patience mad,
Do fear to strike against the Crown,

VI.

Yet happy folk makes happy king:
And worthiest is that monarch's might
Whom freely freemen love, that cling
In loyal trust to legal right.

THE STORM.

I.

BOTH hollow and hill were as dumb as death,
While the skies were silently changing form;
And the dread forecast of the thunder-storm
Made the crouch'd land hold in its breath.

(3.)

RÁGA MEGHÁ.

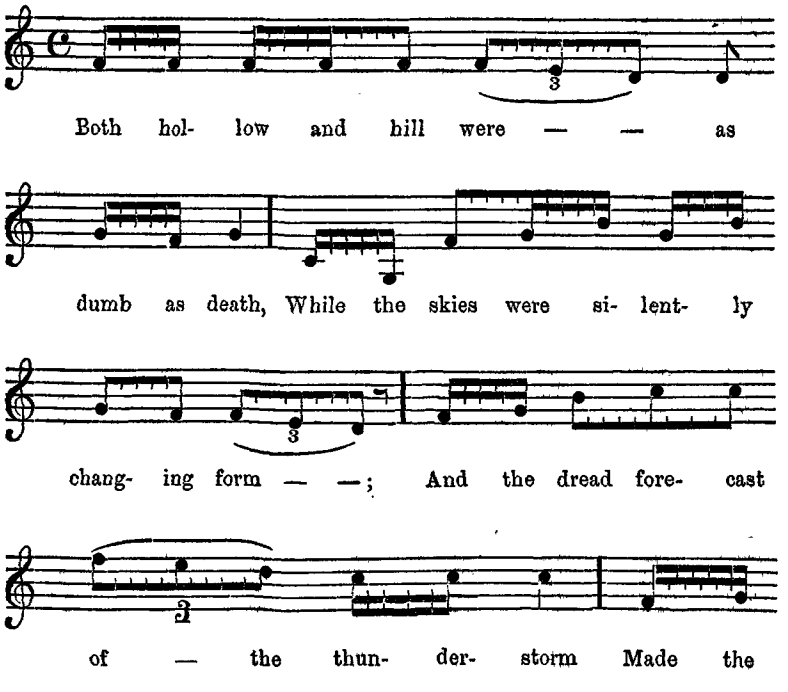
Both hol- low and hill were — — as
dumb as death, While the skies were si- lent- ly
chang- ing form — —; And the dread fore- cast
of — the thun- der- storm Made the

II.

But the monstrous vapour as yet was unriven
That was breeding the thunder and lightning and rain;
And the wind that was waiting to ruin the plain
Was yet fast in some far hold of heaven.

III.

At the wide flung casement she stood full height,
With her long rolling hair tumbled all down her back;
And, against the back sky's supernatural black,
Her white neck gleam'd scornfully white.

IV.

I could catch not a gleam of her anger'd eyes,
(She was sullenly watching the storm-cloud brood)
But I felt they were drawing down into her mood
The thunder that darken'd the skies.

V.

And how could I feign, in that heartless gloom,
To be carelessly reading that stupid page?
What harm, if I flung it in anguish and rage,
Her book, to the end of the room?

VI.

"And so, do we part thus for ever?" . . . I said;
"O speak only one word, and I pardon the rest!"
She drew her white scarf tighter over her breast,
But she never once turn'd round her head.

VII.

"Ah, must sweet love sourly play with pain?
Or"—I groan'd—"are those dark eyes such deserts of blindness. [kindness
That, O Woman! your heart must hoard all its un-
For the man on whose breast it hath lain?

VIII.

"Speak! the horrible silence is stifling my soul."
She turn'd on me at once all the storm in her eyes;
And I heard the low thunder aloof in the skies,
Beginning to mutter and roll.

IX.

She turn'd—by the lightning reveal'd in its glare,
And the tempest had clothed her with terror: it clung
To the folds of her vaporous garments, and hung
In the heaps of her heavy wild hair.

X.

But one word broke the silence; but one; and it fell
With the weight of a mountain upon me. Next moment [comment.
The fierce levin flash'd in my eyes. From my
She was gone when I turn'd. Who can tell

XI.

How I got to my home on the mountain? I know
That the thunder was rolling, the lightning still flashing,
The great bells were tolling, my very brain crashing
In my head, but a short while ago:

XII.

Then all hush'd. In the distance the blue rain receded;
And the fragments of storm were spread out on the hills;
Hard by, from my lattice, I heard the far rills
Leaping down their rock-channels, wild-weeded.

XIII.

The round, red moon was yet low in the air . . .
Oh, I knew it, foresaw it, and felt it, before
I heard her light hand on the latch of the door!
When it open'd at last,—she was there.

XIV.

Child-like, and wistful, and sorrowful-eyed,
With the rain in her hair, and the rain on her cheek;
She knelt down, with her fair forehead fallen and meek
In the light of the moon at my side.

XV.

And she call'd me by every caressing old name
She of old had invented and chosen for me:
She crouch'd at my feet, with her cheek on my knee,
Like a wild thing grown suddenly tame.

XVI.

In the world there are women enough, maids or mothers:
Yet, in multiplied millions, I never should find
The symbol of aught in her face, or her mind.
She has nothing in common with others.

XVII.

And she loves me! This morning the earth, press'd beneath
Her light foot, keeps the print. 'Twas no vision last night,
For the lily she dropp'd as she went, is yet white
With the dew on its delicate sheath!

FORBEARANCE.

I.

Call me not, Love, unthankful, nor unkind,
That I have left my heart with thee, and fled:
I were not worth that wealth which I resign'd,
Had I not chosen poverty instead.

(4.)

RÁGINÍ LUMA.
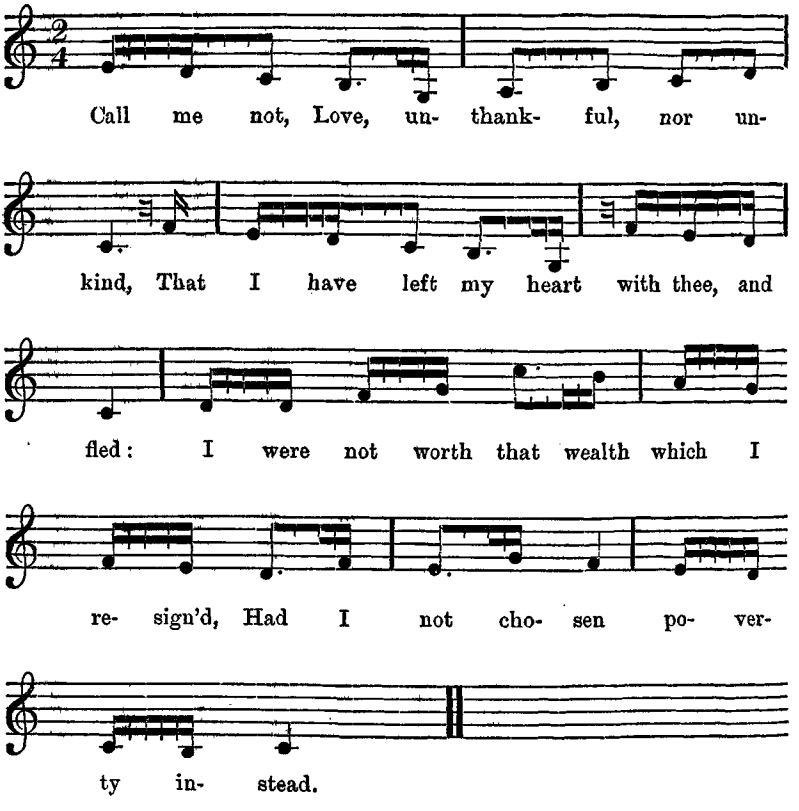
Call me not, Love, un- thank- ful, nor un-
kind, That I have left my heart with thee, and
fled: I were not worth that wealth which I
re- sign'd, Had I not cho- sen po- ver-
ty in- stead.

II.

Grant me but solitude! I dare not swerve
From my soul's rights—a slave, though serving thee.
I but forbear more grandly to deserve:
The free gift only cometh of the free.

A LOVE LETTER.

I.

My love,—my chosen,—but not mine ! I send
  My whole heart to thee in these words I write ;
So let the blotted lines, my soul's sole friend,
  Lie upon thine, and there be blest at night.

(5.)

RÁGINÍ DEOGIRI.

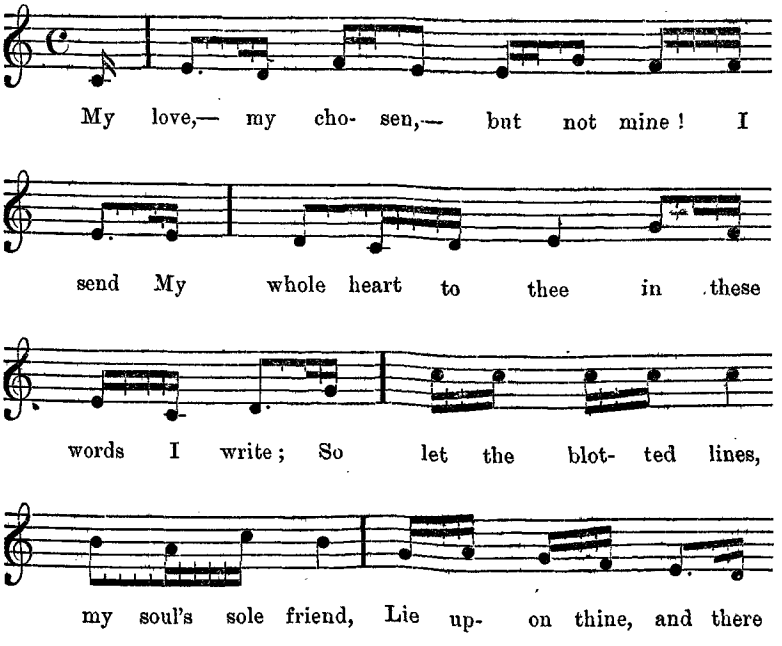
My love,— my cho- sen,— but not mine ! I
send My whole heart to thee in these
words I write ; So let the blot- ted lines,
my soul's sole friend, Lie up- on thine, and there

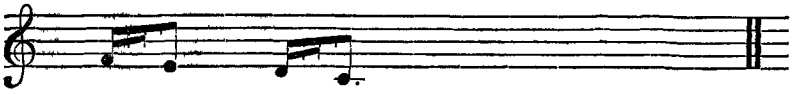

II.

This flower, whose bruised purple blood will stain
The page now wet with the hot tears that fall—
(Indeed, indeed, I struggle to restrain
This weekness, but the tears come, spite of all!)

III.

I pluck'd it from the branch you used to praise,
The branch that hides the wall. I tend your flowers.
I keep the paths we paced in happier days.
How long ago they seem, those pleasant hours!

IV.

The white laburnum's out. Your judas-tree
Begins to shed those crimson buds of his.
The nightingales sing—ah, too joyously!
Who says those birds are sad? I think there is

V.

That in the books we read, which deeper wrings
My heart, so they lie dusty on the shelf.
Ah me, I meant to speak of other things
Less sad. In vain! they bring me to myself.

VI.

I know your patience. And I would not cast
New shade on days so dark as yours are grown
By weak and wild repining for the past,
Since it is past for ever, O my Own!

VII.

For hard enough the daily cross you bear,
Without that deeper pain reflection brings;
And all too sore the fretful household care,
Free of the contrast of remember'd things.

VIII.

But ah! it little profits, that we thrust
From all that's said what both must feel, unnamed.
Better to face it boldly, as we must,
Than feel it in the silence, and be shamed.

IX.

Irene, I have loved you, as men love
Light, music, odour, beauty, love itself;—
Whatever is apart from, and above
Those daily needs which deal with dust and pelf.

X.

And I had been content, without one thought
Our guardian angels could have blusht to know,
So to have lived and died, demanding nought
Save, living, dying, to have loved you so.

XI.

My youth was orphan'd, and my age will be
  Childless. I have no sister. None, to steal
One stray thought from the lifelong thoughts of thee,
  Which are the fountains of whate'er I feel.

XII.

My wildest wish was vassal to thy will:
  My haughtiest hope, a pensioner on thy smile,
Which did with light my barren being fill,
  As moonlight glorifies some desert isle.

XIII.

I never thought, to know what I have known,—
  The rapture, Dear, of being loved by you:
I never thought, within my heart, to own
  One wish so blest, that you should share it to:

XIV.

Nor ever did I deem, contemplating
  The many sorrows in this place of pain,
So strange a sorrow to my life could cling,
  As, being thus loved, to be beloved in vain.

XV.

But now we know the best, the worst. We have
  Interr'd, and prematurely, and unknown,
Our youth, our hearts, our hopes, in one small grave,
  Whence we must wander, widow'd, to our own.

XVI.

And if we comfort not each other, what
Shall comfort us in the dark days to come?
Not the light laughter of the world, and not
The faces and the firelight of fond home.

XVII.

And so I write to you; and write, and write,
For the mere sake of writing to you, Dear.
What can I tell you that you know not? Night
Is deepening through the rosy atmosphere

XVIII.

About the lonely casement of this room,
Which you have left familiar with the grace
That grows where you have been. And on the gloom
I almost fancy I can see your face:

XIX.

Not pale with pain, and tears restrain'd for me,
As when I last beheld it; but as first,
A dream of rapture and of poesy,
Upon my youth, like dawn on dark, it burst.

XX.

Perchance I shall not ever see again
That face. I know that I shall never see
Its radiant beauty as I saw it then,
Save by this lonely lamp of memory.

XXI.

With childhood's starry graces lingering yet
I' the rosy orient of young womanhood;
And eyes like woodland violets newly wet;
And lips that left their meaning in my blood!

XXII.

I will not say to you what I might say
To one less worthily loved, less worthy love.
I will not say . . . 'Forget the past. Be gay.
And let the all-ill-judging world approve

XXIII.

Light in your eyes, and laughter on your lip'.
I will not say . . . 'Dissolve in thought for ever
Our sorrowful, but sacred fellowship'.
For that would be to bid you, Dear, dissever

XXIV.

Your nature from its nobler heritage
In consolations, register'd in Heaven,
For grief this world is powerless to assuage,
And hopes to which, on earth, no home is given.

XXV.

I will not cant that commonplace of friends,
Which never yet hath dried one mourner's tears,
Nor say that grief's slow wisdom makes amends
For broken hearts and desolated years.

XXVI.

For who would barter all he hopes from life,
To be a little wiser than his kind?
Who arm his nature for continued strife,
When all he seeks for hath been left behind?

XXVII.

Wherefore it happens, in this riddling world,
That where sin came not, sorrow yet should be;
Why Heaven's most hurtful thunders should be hurl'd
At what seems noblest in Humanity;

XXVIII.

And we are punish'd for our purest deeds,
And chasten'd for our holiest thoughts; . . . alas!
There is no reason found in all the creeds,
Why these things are, nor whence they come to pass.

XXIX.

But in the heart of man, a secret voice
There is, which speaks and will not be restrain'd,
Which cries to Grief . . . 'Weep on, while I rejoice,
Knowing that, somewhere, all will be explain'd.'

XXX.

And I would say, 'O pure and perfect pearl,
O love which life hath dived so deep to find,
Lock'd in life's heart thou liest. The wave may curl,
The wind may wail above thee. Wave and wind,

XXXI.

Nor break, nor shake, thee.' Dear, on me and you
Life's storms have broken, but our love lives calm.
This life of ours, what is it? A very few
Soon-ended years, and then,—the ceaseless psalm,

XXXII.

And the eternal sabbath of the soul!
Hush! . . . while I write, from the dim Carmine
The midnight angelus begins to roll,
And float athwart the darkness up to me.

XXXIII.

My messenger (a man by danger tried)
Waits in the courts below; and ere our star
Upon the forehead of the dawn hath died,
Heart of my heart, this letter will be far

XXXIV.

Athwart the mountain, and the mist, to you.
I know each robber hamlet. I know all
This mountain people, I have friends, both true
And trusted, sworn to aid whate'er befall.

XXXV.

I have a bark upon the gulf. And I,
If to my heart I yielded in this hour,
Might say . . . 'Sweet fellow-sufferer, let us fly!
I know a little isle which doth embower

XXXVI.

'A home where exiled angels might forbear
Awhile to mourn for Paradise.' . . . But no!
Never, whate'er fate now may bring us, Dear,
Shalt thou reproach me for that only woe

XXXVII.

Which even love is powerless to console;
Which dwells where duty dies: and haunts the void
Of life's abandon'd purpose in the soul;
The accusing ghost of what itself destroy'd.

XXXVIII.

Man cannot make, but may ennoble, fate,
By nobly bearing it. So let us trust
Death's justice, if not Life's, and calmly wait
Love's orient, out of darkness and of dust.

XXXIX.

Farewell, and yet again farewell, and yet
Never farewell,—if farewell mean to fare
Alone and disunited. Love hath set
Our days, in music, to the self-same air;

XL.

And I shall feel, wherever we may be,
Even though in absence and an alien clime,
The shadow of the sunniness of thee,
Hovering, in patience, through a clouded time.

XLI.

Farewell! The dawn is rising, and the light
Is making, in the east, a faint endeavour
To illuminate the mountain peaks. Good night,
Thine own, and only thine, my love, for ever.

THE PRESENCE OF THE PAST.

NEVER, dear, distant angel of my sorrow,
Never more thy sweet solacings, to cheer me,
Eve shall vouchsafe, no morrow
Come with the comfort of thy beauty near me!

(6.)

RÁGINÍ SANKARÁ.
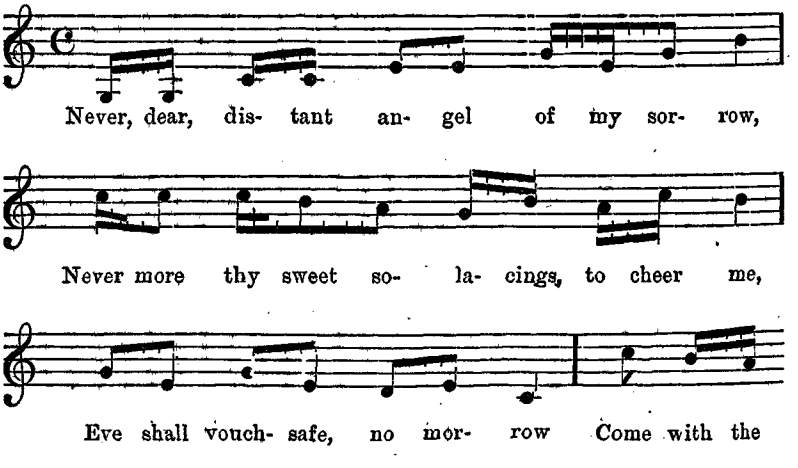
Never, dear, dis- tant an- gel of my sor- row,
Never more thy sweet so- la- cings, to cheer me,
Eve shall vouch- safe, no mor- row Come with the
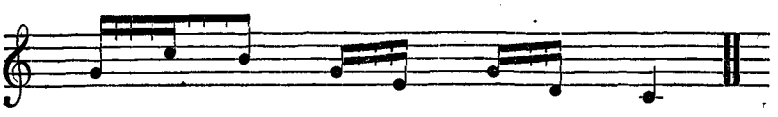
Long since disparted travellers, we may not
Flatter life's lone ways even with a semblance
Of hand in hand. Yet say not
Vain is the restless rapture of remembrance.

Memories, Dearest, are the sole possessions
Man may bear with him over the Dark River.
Brief are our pains, our passions,
We in their memories do live for ever.

Thou, by the lilied lawn, the arbute bowers,
Dwellest, and where, 'mid old Italian fountains,
Pause the blue breathless hours
Ere they move westward o'er the happy mountains.

Thee, life eluding in thy green recesses,
Change cannot reach abruptly. Time shall sprinkle
Snow on thy golden tresses
Slowly, and slowly bring the brow's first wrinkle.

I, still pursuing with a fretful fever
Far off the wandering planet of the distance,
Footsore, do fare for ever
O'er the dry deserts of a scorch'd existence.

What may renew the old, the happy hours?
Memories of thee, ever youthful-hearted,
'Mid unforgotten flowers
Beckon back time into the days departed.

Whether, by Danube darkening to the ocean,
I through the gateways of the Orient wander,
Or where, with gentle motion,
Thames' fluent lengths among the lawns meander,

Still, like a gliding ghost, from my own presence
Nightly I steal forth to the ancient places,
And, with the rose's essence,
Follow thee through the Garden of the Graces.

Place me where, 'neath the red Arabian heaven,
All in a camel-colour'd land, unbroken
By man's abodes, not even
Nature leaves one sick palm-tree for a token,

Place me where round bleak Baltic headlands, piling
Pale foam, the chafed sea spends his last endeavour,
Still shall I see thee smiling
Sweetly, still hear thee sweetly talking ever.

NIGHT.

I.

COME to me, not as once thou camest, Night!
With light and splendour up the gorgeous West;
Easing the heart's rich sense of thee with sighs
Sobb'd out of all emotion on Love's breast;
While the dark world waned wavering into rest,
Half seen athwart the dim delicious light
Of languid eyes:

(7.)

RÁGINÍ BHÚPÁLÍ.
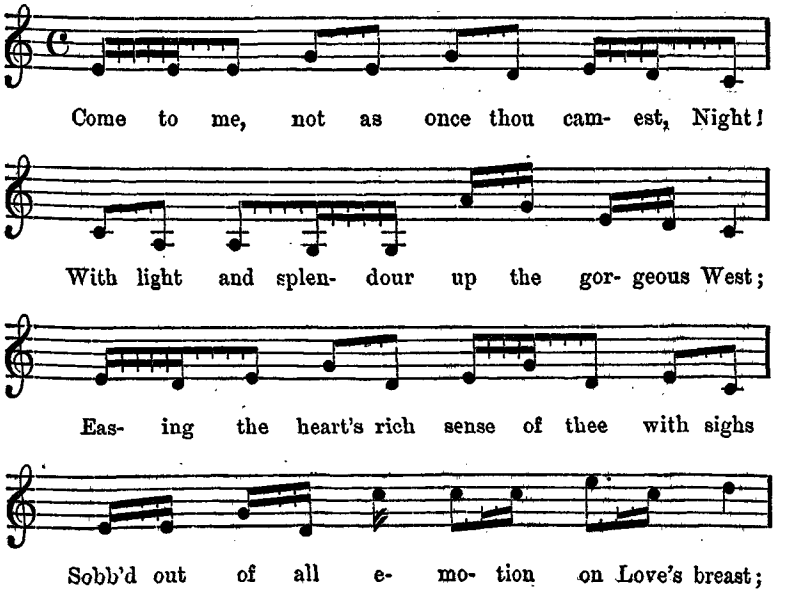
Come to me, not as once thou cam- est, Night!
With light and splen- dour up the gor- geous West;
Eas- ing the heart's rich sense of thee with sighs
Sobb'd out of all e- mo- tion on Love's breast;
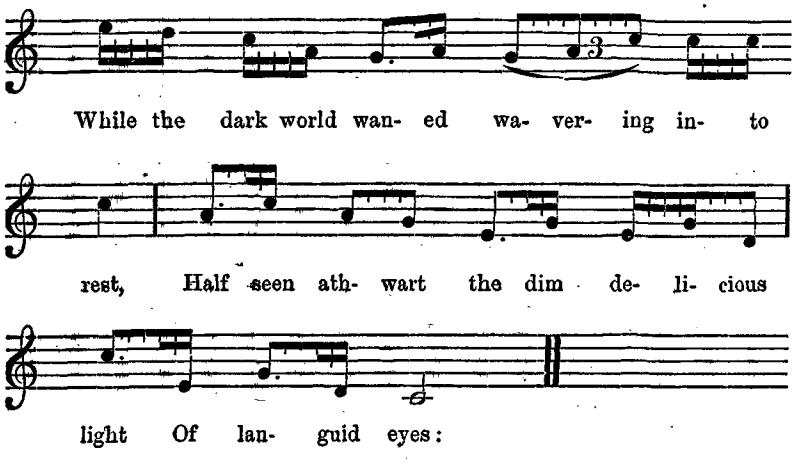
II.

But softly, soberly; and dark—more dark!
Till my life's shadow lose itself in thine.
Athwart the light of slowly-gathering tears,
That come between me and the starlight, shine
From distant melancholy deeps divine,
While day slips downward through a rosy arc
To other spheres.

THE HEART AND NATURE.

I.

The lake is calm; and, calm, the skies
In yonder cloudless sunset glow,
Where, o'er the woodland, homeward flies
The solitary crow;

(8.)

RÁGINÍ HINDOLA.
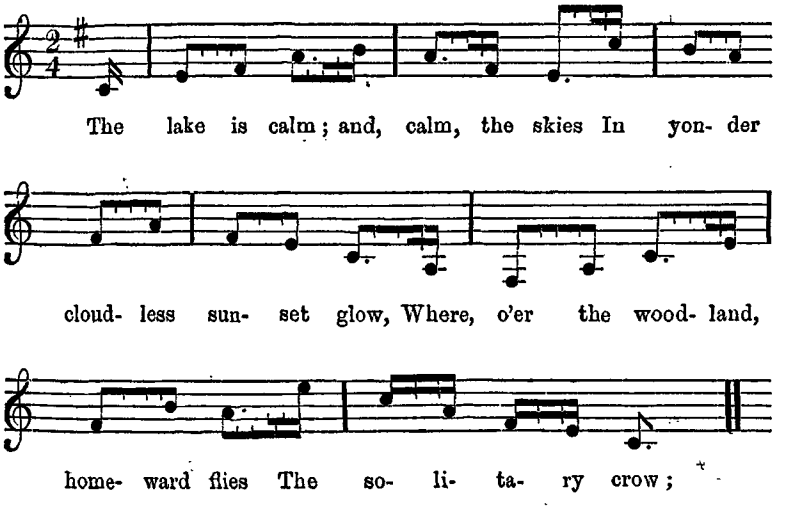
The lake is calm; and, calm, the skies In yon- der
cloud- less sun- set glow, Where, o'er the wood- land,
home- ward flies The so- li- ta- ry crow;

II.

No moan the cushat makes to heave
A leaflet round her windless nest;
The air is silent in the eve;
The world's at rest.

III.

All bright below; all pure above;
No sense of pain, no sign of wrong;
Save in thy heart of hopeless love,
Poor Child of Song!

IV.

Why must the soul through Nature rove,
At variance with her general plan?
A stranger to the Power, whose love
Soothes all save Man?

V.

Why lack the strength of meaner creatures?
The wandering sheep, the grazing kine,
Are surer of their simple natures
Than I of mine.

VI.

For all their wants the poorest land
Affords supply; they browse and breed;
I scarce divine, and ne'er have found,
What most I need.

VII.

O God, that in this human heart
Hath made Belief so hard to grow,
And set the doubt, the pang, the smart
In all we know—

VIII.

Why hast thou, too, in solemn jest
At this tormented Thinking-power,
Inscribed, in flame on yonder West,
In hues on every flower,

IX.

Through all the vast unthinking sphere
Of mere material Force without,
Rebuke so vehement and severe
To the least doubt?

X.

And robed the world, and hung the night,
With silent, stern, and solemn forms;
And strown with sounds of awe, and might,
The seas and storms;—

XI.

All lacking power to impart
To man the secret he assails,
But arm'd to crush him, if his heart
Once doubts or fails!

XII.

To make him feel the same forlorn
Despair, the Fiend hath felt ere now,
In gazing at the stern sweet scorn
On Michael's brow?

AUTUMN.

I.

So now, then, Summer's over—by degrees.
Hark! 'tis the wind in yon red region grieves.
Who says the world grows better, growing old?
See! what poor trumpery on those pauper trees,
That cannot keep, for all their fine gold leaves,
Their last bird from the cold.

(9.)

RÁGINÍ KEDÁRÁ.

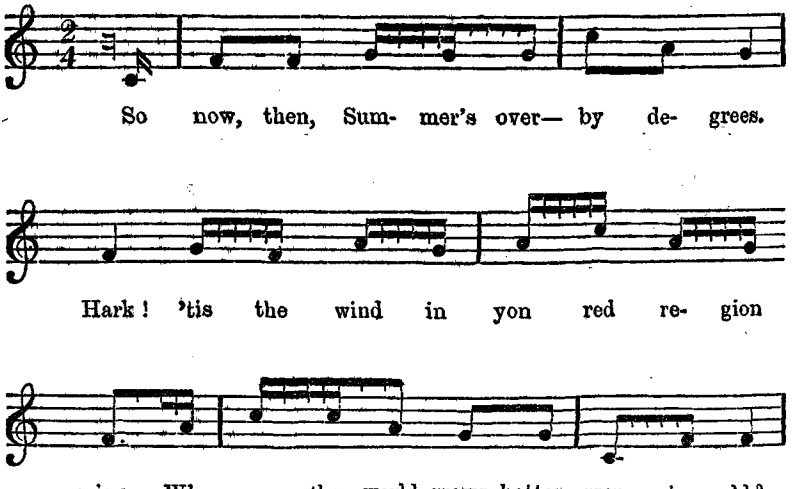
So now, then, Sum- mer's over— by de- grees.
Hark! 'tis the wind in yon red re- gion
grieves. Who says the world grows better, grow- ing old?
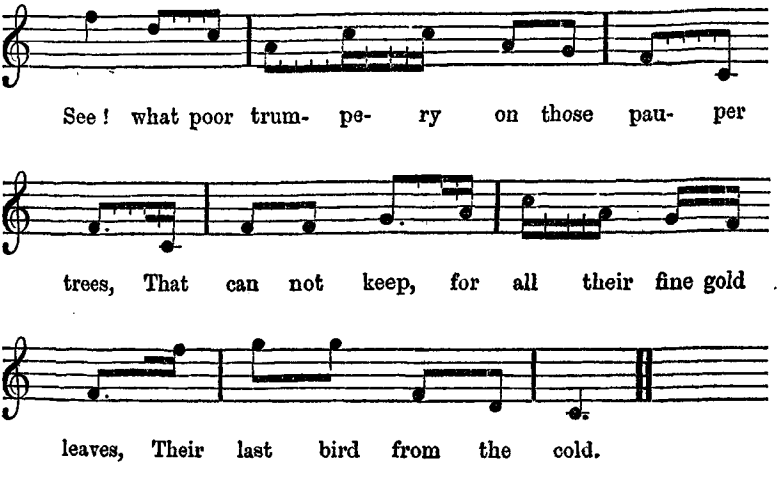
See! what poor trum- pe- ry on those pau- per
trees, That can not keep, for all their fine gold
leaves, Their last bird from the cold.

II.

This is Dame Nature, pucker'd, pinch'd, and sour,
Of all the charms, her poets praised, bereft,
Scowling, and scolding (only hear her, there!)
Like that old spiteful Queen, in her last hour,
Whom Spenser, Shakespeare sung to . . . nothing left
But wrinkles, and red hair!

THE SWALLOW.

O SWALLOW chirping in the spangled eaves,
Why hast thou left far south thy fairy homes,
To build between these drenchéd April-leaves,
And sing me songs of Spring before it comes?

Too soon thou singest! Yon black stubborn thorn
Bursts not a bud: the sneaping wind drifts on.
She that once flung thee crumbs, and in the morn
Sang from the lattice where thou sing'st, is gone.
Here is no Spring. Thy flight yet further follow.
Fly off, vain swallow!

(10.)

RÁGINÍ SOHINÍ.

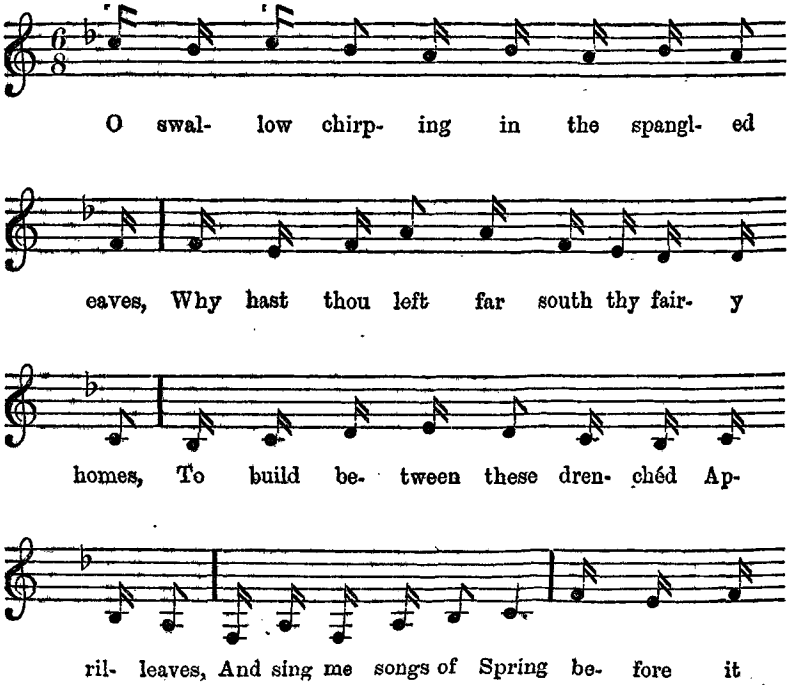
O swal- low chirp- ing in the spangl- ed
eaves, Why hast thou left far south thy fair- y
homes, To build be- tween these dren- ché̂d Ap-
ril- leaves, And sing me songs of Spring be- fore it

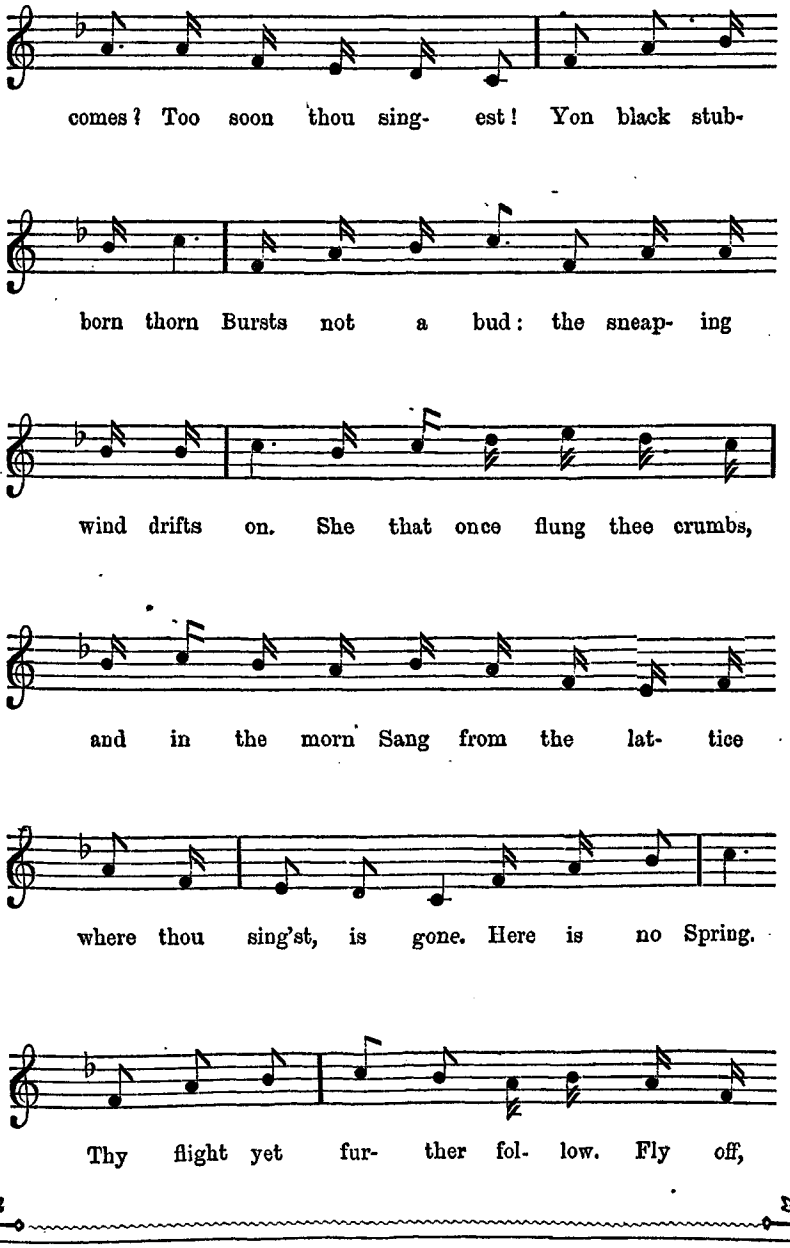
comes? Too soon thou sing- est! Yon black stub-
born thorn Bursts not a bud: the sneap- ing
wind drifts on. She that once flung thee crumbs,
and in the morn Sang from the lat- tice
where thou sing'st, is gone. Here is no Spring.
Thy flight yet fur- ther fol- low. Fly off,

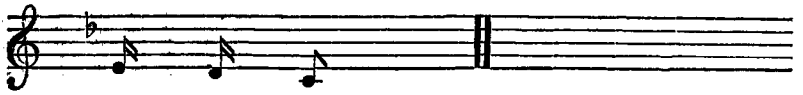

Thou com'st to mock me with remember'd things.
I love thee not, O bird for me too gay.
That which I want thou hast—the gift of wings :
Grief—which I have—thou hast not. Fly away !
What hath my roof for thee ? my cold dark roof,
Beneath whose weeping thatch thine eggs will freeze !
Summer will halt not here, so keep aloof.
Others are gone ; go thou. In those wet trees
I see no Spring though thou still singest of it.
Fare hence, false prophet !

MEETING AGAIN.

I.

Yes ; I remember the white rose. And since then
the young ivy has grown ;
From your window we could not reach it, and now it
is over the stone.
We did not part as we meet, Dear. Well, Time hath
his own stern cures !
And Alice's eyes are deeper, and her hair has grown
like yours.

(11.)

RÁGINÍ ÁLÁHIÁ.

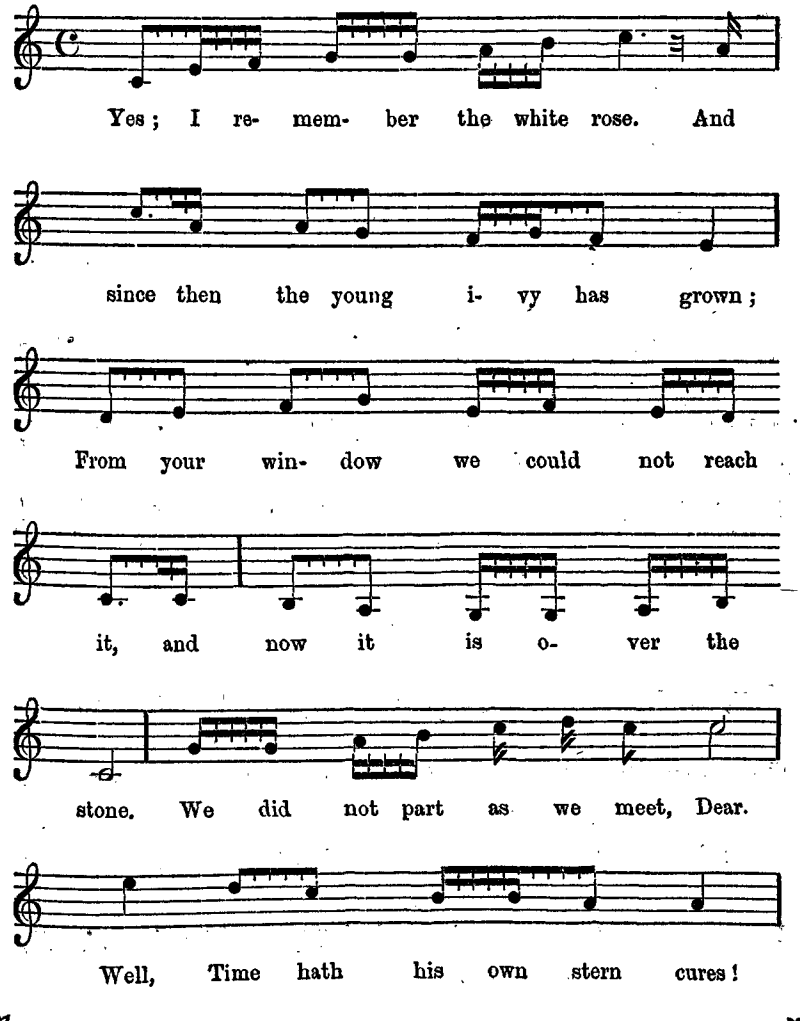
Yes; I re- mem- ber the white rose. And
since then the young i- vy has grown;
From your win- dow we could not reach
it, and now it is o- ver the
stone. We did not part as we meet, Dear.
Well, Time hath his own stern cures!
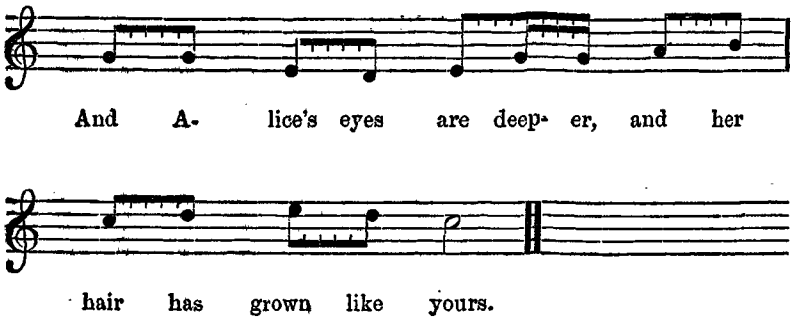
II.

Is our greeting all so strange then? But there's
something here amiss,
When it is not well to speak kindly. And the olives
are ripe by this.
I had not thought you so alter'd. But all is changed,
God knows!
Good-night. It is night so soon now. Look there!
You have dropt your rose.

III.

Nay, I have one that is wither'd and dearer to me.
I came
To say good-night, little Alice. She does not remem-
ber my name.
It is but the damp that is making my head and my
heart ache so.
I never was strong in the *old time*, as the others were,
you know.

IV.

And you 'll sleep well, will you not, Darling? The old words sound so dear!
'Tis the last time I shall use them; you need show neither anger nor fear.
It is well that you look so cheerful. And is time so smooth with you?
How foolish I am! Good-night, Dear. And bid Alice good-night too.

OLD AND NEW.

I.

All in its place as of old!
Nothing changed to the eye.
The moss'd rust tinted mass
Of the Manse in the meadow grass;
The half-moon afloat in a sky
Gray, neither warm nor cold.
All in its place as of old,
Nothing changed to the eye!
High over the mildewy pane
Of the long, low granary room,
In the mothy, moist ground-story,
The grass ripples russet, and hoary
With the cuckoo-flowers in bloom,
That mix their sick perfume

With the earthy smell of the rain,
Clinging under each violet stain
Of the streak'd and showery gloom.
The red beech weepeth ;
The cuckoo calleth ;
In the fields afar
Night waits.
The silence sleepeth ;
The twilight falleth,
And the dim yellow star
Dilates.
All in the dew
Hath the self-same hue.
Nothing looks new.

(12.)

RÁGINÍ KHÁMBÁJA.

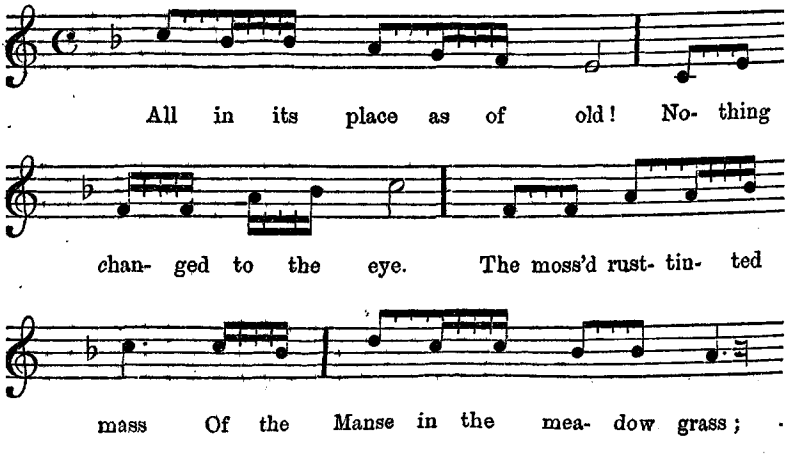

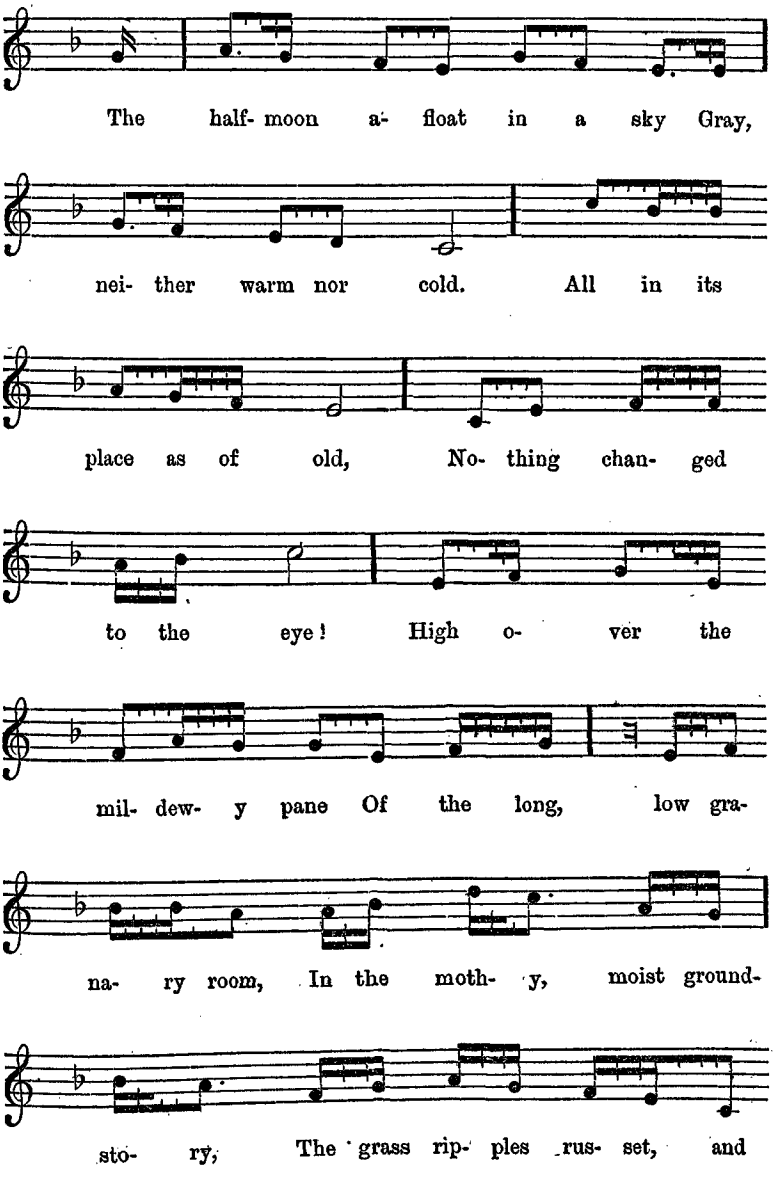
The half- moon a- float in a sky Gray,
nei- ther warm nor cold. All in its
place as of old, No- thing chan- ged
to the eye! High o- ver the
mil- dew- y pane Of the long, low gra-
na- ry room, In the moth- y, moist ground-
sto- ry, The grass rip- ples rus- set, and

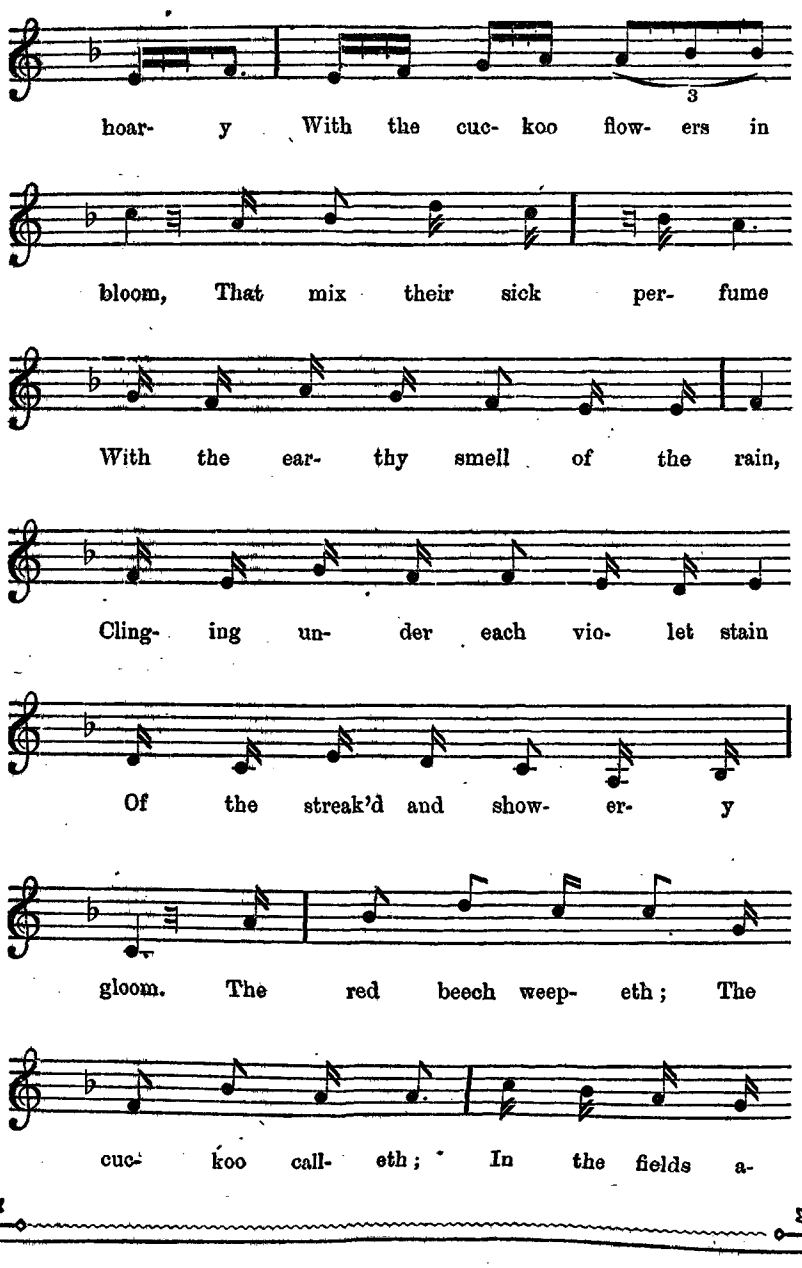
hoar- y With the cuc- koo flow- ers in
bloom, That mix their sick per- fume
With the ear- thy smell of the rain,
Cling- ing un- der each vio- let stain
Of the streak'd and show- er- y
gloom. The red beech weep- eth; The
cuc- koo call- eth; In the fields a-
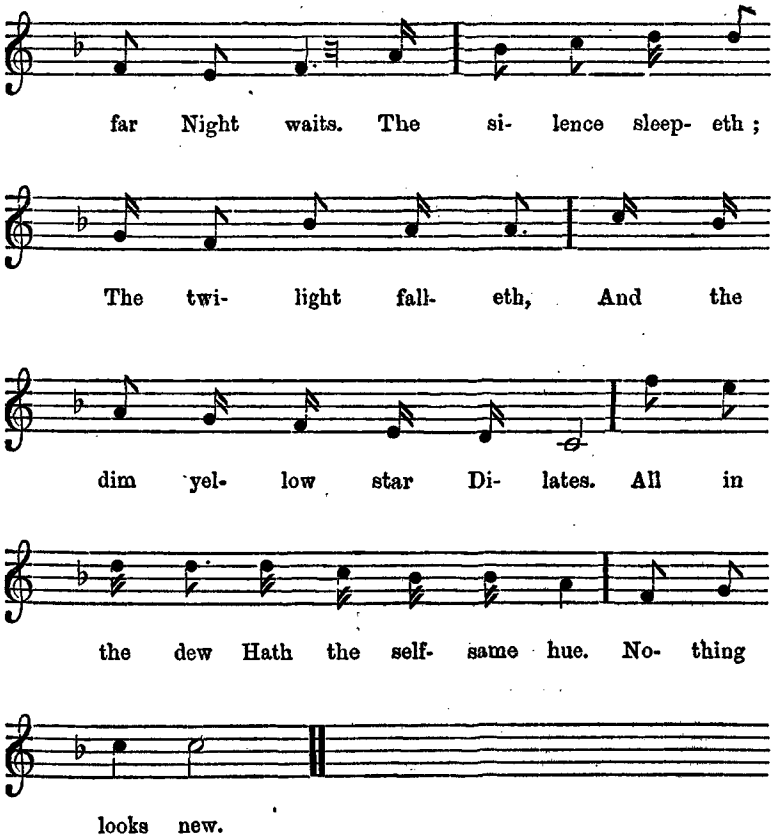
far Night waits. The si- lence sleep- eth ;
The twi- light fall- eth, And the
dim yel- low star Di- lates. All in
the dew Hath the self- same hue. No- thing
looks new.

II.

Nothing changed to the eye;
Yet something is not as of old.
Where, and what, is the change?
All is the same, yet strange.
My very heart grows cold;
My lightest breath is a sigh.

Between the earth and sky,
Something is not as of old.
The buttercup's glimmering gold!
And the vetch with the purple dye!
And the wall-flower fading fast!
And the reeds in the creek where, aghast,
The stream like a ghost flits by,
With a moan to the watery sky,
Grazing the bulrush cold!
All in its place as of old,
Nothing changed to the eye!
The thin wave fleeteth;
The white sail glideth;
The blue reeds sigh
To the shore.
The light retreateth;
The place abideth
Under my eye,
As of yore.
But the very dew
Doth chill me through.
All things feel new.

III.

Ah, memory is of the brain!
The heart remembers not;
The heart can never recall;
It feels, it hath felt, that is all;
And a feeling unforgot
Is a feeling felt again.

This is a joy which the brain
Renews, but the heart cannot.
I recall what I felt of old,
But I feel, not what I recall.
This,—this is the change!
This is why all feels strange!
Happy for man, after all,
That is Eden, after his fall,
God suffer'd him not to behold!
What I never may feel as of old
I would I might never recall.
But the river glideth;
The red beech weepeth;
The reeds to the shore
Still sigh.
The place abideth;
The dead Past keepeth
The form it first wore
To the eye.
Ah few, how few,
In the heart can renew
What the eye may review!

A FAREWELL.

I.

Be happy, child. The last wild words are spoken.
To-morrow, mine no more, the world will claim thee.
I blame thee not, but all my life is broken;
Of what hath been I save not even a token.
Never in years to come my lips shall name thee,
Never, child, never.

(13.)

RÁGINÍ PILU.
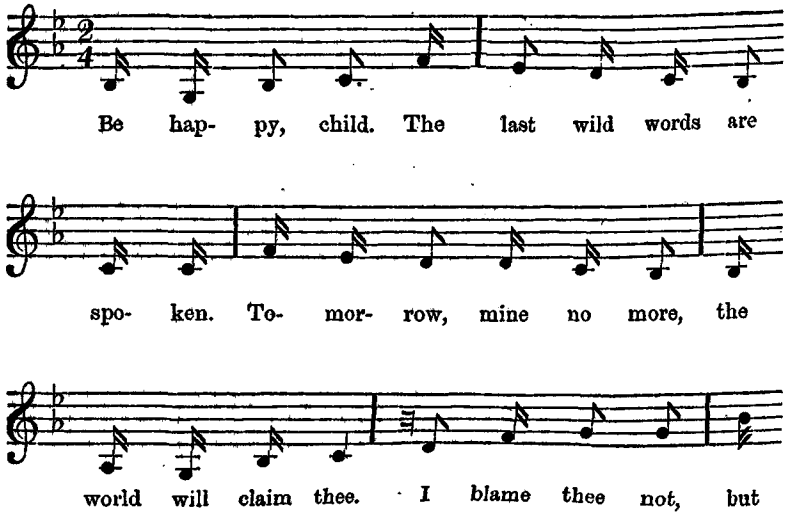
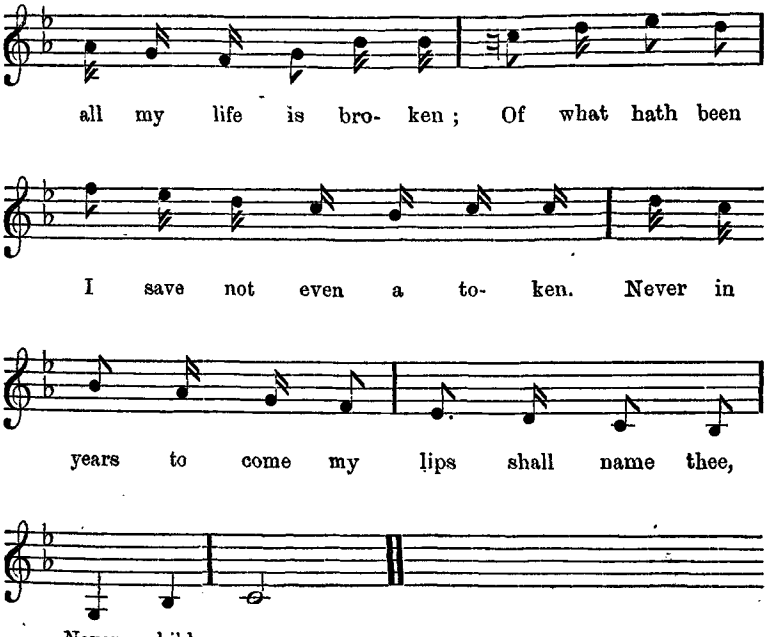
all my life is bro- ken ; Of what hath been
I save not even a to- ken. Never in
years to come my lips shall name thee,
Never, child, never.

II.

I will not say 'Forget me,' nor those hours
Which were so sweet. Some scent dead leaves retain.
Keep all the flowers I gave thee—all the flowers,
Dead! dead! Though years on years of life were ours,
As we have met we shall not meet again,
For ever, child! for ever!

FUTILITY.

I.

LET us not be dissatisfied
With Nature. She is in her right.
I neither blame thee, Sweet, nor chide.
As, on a clear spring night,

(14.)

RÁGINÍ HÁMBIRÁ.

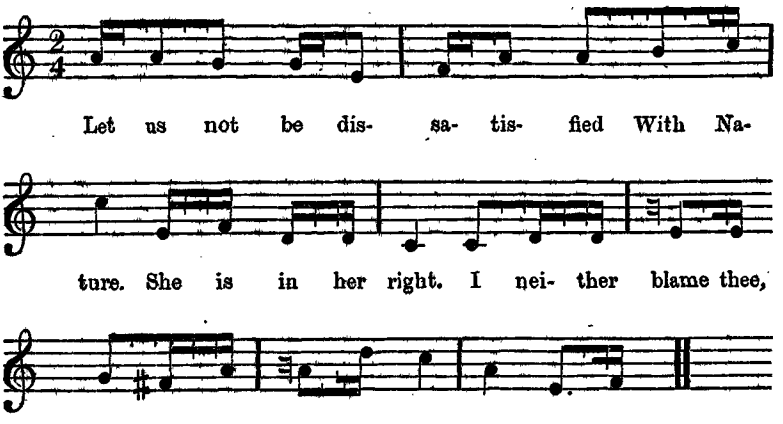

II.

The cold encumbrance of the snow
Drops from the bosom of the hills,
So all my life from thine lets go,
And all its weight of ills

III.

Drops from thee. Set thy smooth smile free,
Assert thy youth, bloom forth unblamed
Beyond me! Whatsoe'er we be,
Why should we be ashamed?

IV.

That which we are, we are. 'Twere vain
To plant with toil what may not blow.
The cloud will break and bring the rain,
Whether we reap, or sow.

V.

All finds its place. We shall not miss
God's meaning, whatsoe'er He mean.
If this were that, or that were this,
What hath been had not been.

VI.

Let all be as it is, dear Love.
There is no better thing than sleep.
They only fall, that strive to move,
Or lose, that care to keep.

VII.

Let go what will not stay. What then?
Seed—time, and harvest,—soon, the snow!
Above the graves of buried men
The grass hath leave to grow.

LITTLE ELLA.

I.

I KNOW now, little Ella, what the flowers
Said to you then, to make your cheek so pale;
And why the blackbird in our laurel bowers
Spake to you, only; and the poor, pink snail
Fear'd less your steps than those of the May—shower.
It was not strange these creatures loved you so,
And told you all. 'Twas not so long ago
You were, yourself, a bird, or else a flower.

(15.)

RÁGINÍ IMAN-KALYÁNA.

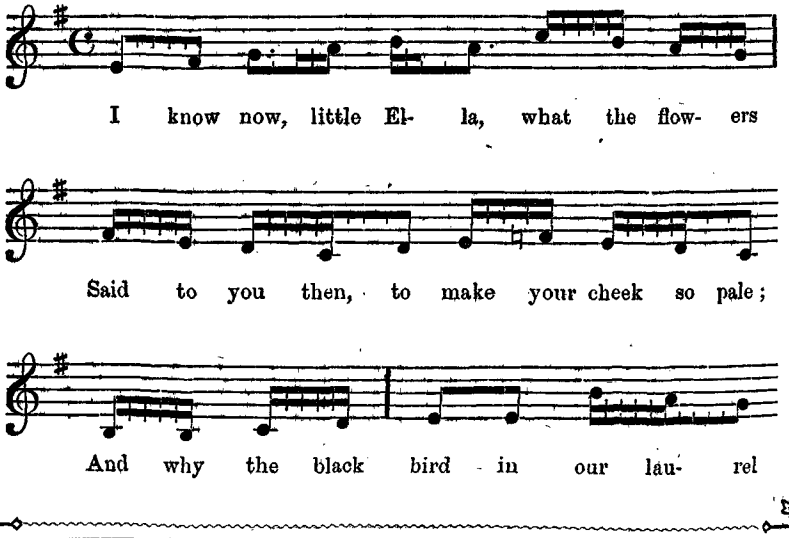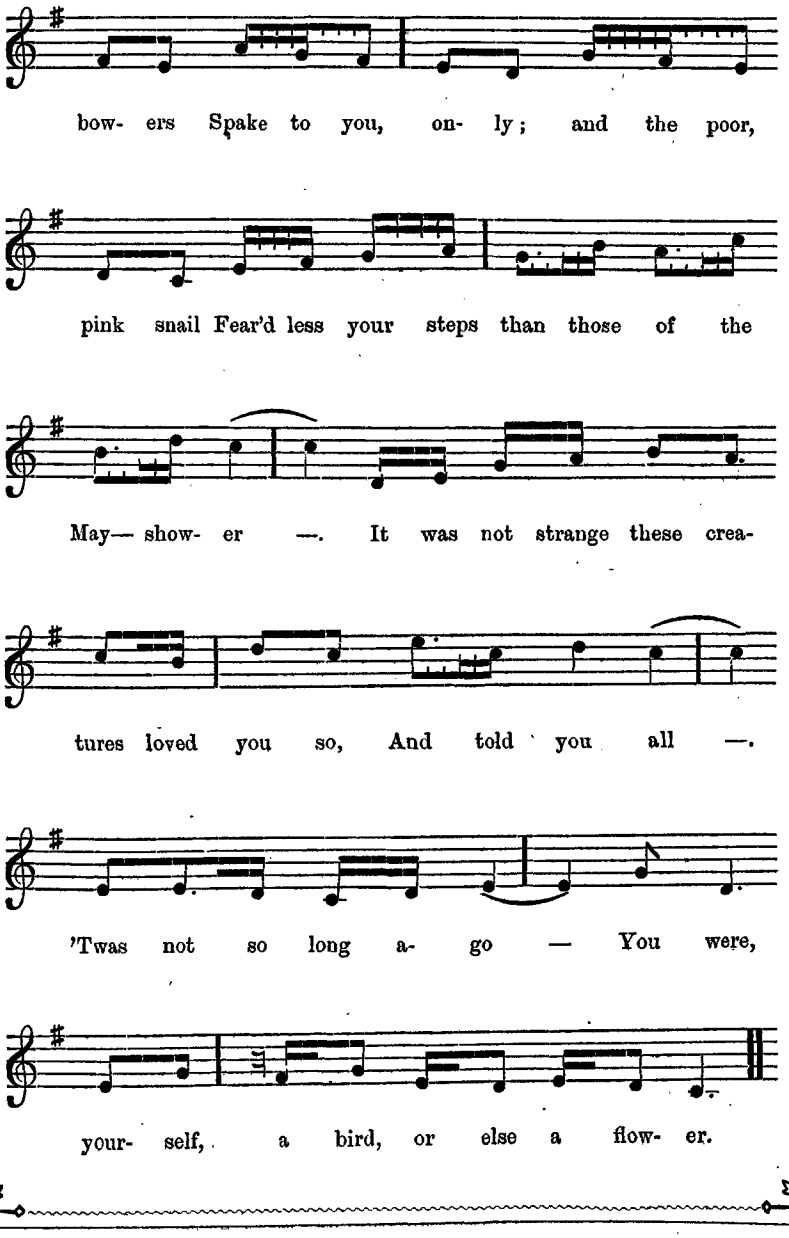

bow- ers Spake to you, on- ly; and the poor,
pink snail Fear'd less your steps than those of the
May— show- er —. It was not strange these crea-
tures loved you so, And told you all —.
'Twas not so long a- go — You were,
your- self, a bird, or else a flow- er.

II.

And, little Ella, you were pale, because
So soon you were to die. I know that now.
And why there ever seem'd a sort of gauze
Over your deep blue eyes, and sad young brow.
You were too good to grow up, Ella, you,
And be a woman such as I have known!
And so upon your heart they put a stone,
And left you, Dear, amongst the flowers and dew.

III.

O thou, the morning star of my dim soul!
My little elfin friend from Fairy-Land!
Whose memory is yet innocent of the whole
Of that which makes me doubly need thy hand,
Thy guiding hand from mine so soon withdrawn!
Here where I find so little like to thee.
For thou wert as the breath of dawn to me,
Starry, and pure, and brief as is the dawn.

IV.

Thy knight was I, and thou my Fairy Queen.
('Twas in the days of love and chivalry!)
And thou didst hide thee in a bower of green.
But thou so well hast hidden thee, that I
Have never found thee since. And thou didst set
Many a task, and quest, and high emprize,
Ere I should win my guerdon from thine eyes,
So many, and so many, that not yet

V.

My tasks are ended, nor my wanderings o'er.
But some day there will come across the main
A magic barque, and I shall quit this shore
Of care, and find thee, in thy bower, again;
And thou wilt say, "My brother, hast thou found
Our home at last?"... Whilst I, in answer, Sweet,
Shall heap my life's last booty at thy feet,
And bare my breast with many a bleeding wound.

VI.

The spoils of time! the trophies of a world!
The keys of conquer'd towns, and captived kings,
And many a broken sword, and banner furl'd,
The heads of giants, and swart soldan's rings,
And many a maiden's scarf, and many a wand
Of baffled wizard, many an amulet,
And many a shield with mine own heart's blood wet,
And jewels rare from many a distant land!

VII.

How sweet, with thee, my sister, to renew,
In lands of light, the search for those bright birds
Of plumage so ethereal in its hue,
And music sweeter than all mortal words,
Which some good angel to our childhood sent
With messages from Paradisal flowers,
So lately left, the scent of Eden bowers
Yet linger'd in our hair, where'er we went!

VIII.

Now, they are all fled by this many a year,
Adown the viewless valleys of the wind,
And never more will cross this hemisphere,
Those birds of passage! Never shall I find,
Dropt from the flight, you follow'd, Dear, so far,
That you will never come again, I know,
One plumelet on the paths whereby I go
Missing thy light there, O my morning star!

IX.

She pass'd out of my youth, at the still time
O' the early light, when all was green and husht.
She pass'd, and pass'd away. Some broken rhyme
Scrawl'd on the panel or the pane: the crusht
And faded rose she dropp'd: the page she turn'd,
And finish'd not: the ribbon or the knot
That flutter'd from her ... Stranger, harm them not!
I keep these sacred relics undiscern'd.

THE MERMAIDEN.

I.

He was a Prince with golden hair,
(In a palace beside the sea,)
And I but a little white Mermaiden,
And how should he care for me?

(16.)

RÁGINÍ GAURA-SÁRANGA.

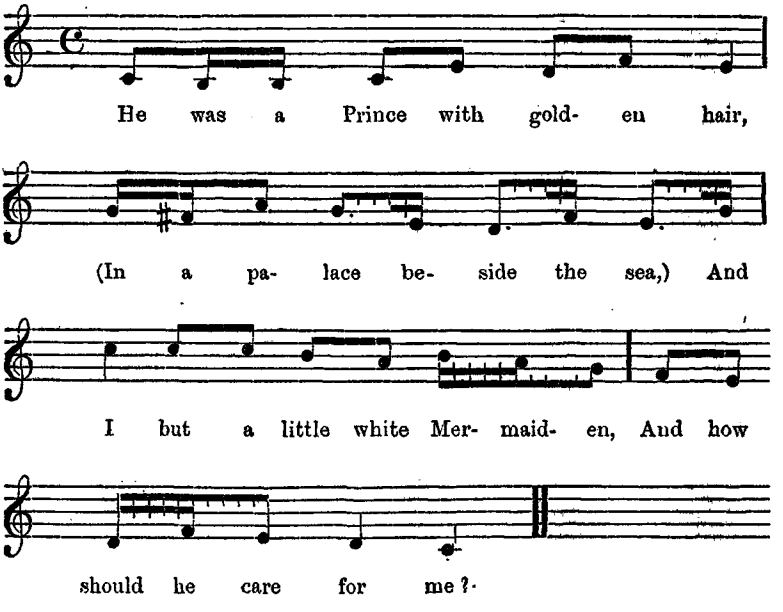

II.

Last summer I came, in the calm blue nights,
To roam through the cool sea-caves:
Last summer he came, when the stars were shining,
To walk by the lone sea-waves.

III.

There is no light in the gray sea-groves
Like the light on his golden hair:
There be no sweetnesses known to the sea-folk
So sweet as his kisses were.

IV.

I love him, love him, ah, so well
That my love hath grown pain in me,
And to-morrow he weds the Princess, yonder
In that palace beside the sea.

A NIGHT IN THE FISHERMAN'S HUT.

I.

If the wind had been blowing the Devil this way
The midnight could scarcely have grown more unholy,
Or the sea have found secrets more wicked to say
To the toothless old crags it is hiding there wholly.

(17.)

RÁGINÍ KALYÁNA-JANGLÁ.

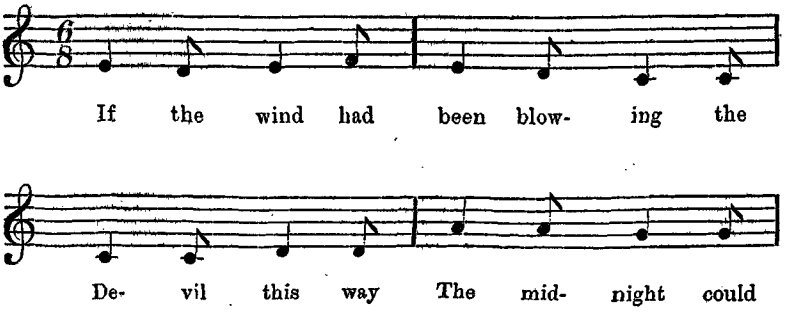

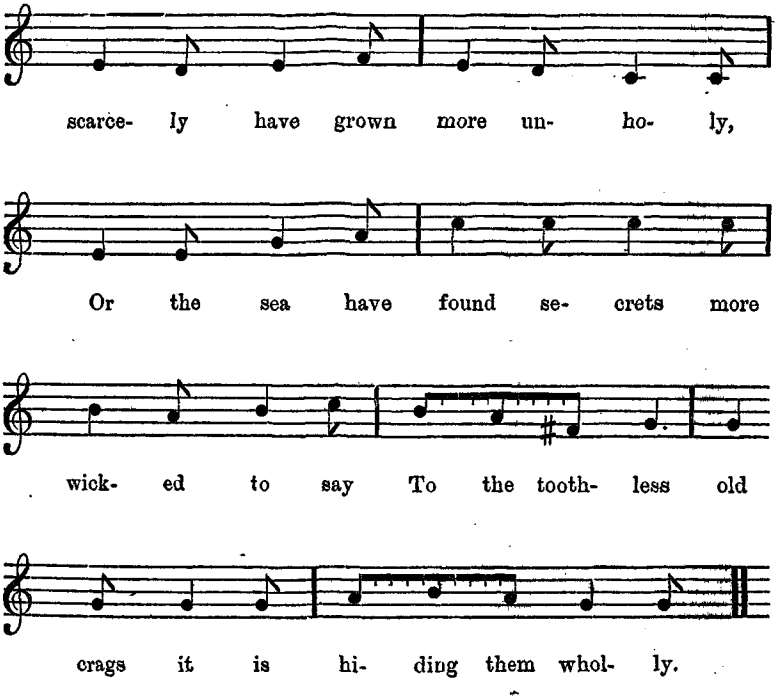
scarce- ly have grown more un- ho- ly,
Or the sea have found se- crets more
wick- ed to say To the tooth- less old
crags it is hi- ding them whol- ly.

II.

I love well the darkness. I love well the sound
  Of the thunder-drift, howling this way over ocean:
For 'tis though as in nature my spirit had found
  A trouble akin to its own fierce emotion.

III.

The hoarse night may howl herself silent for me! [in
  When the silence comes, then comes the howling with-
I am drench'd to my knees in the surf of the sea,
  And wet with the salt bitter rain to the skin.

IV.

Let it thunder and lighten! this world's ruin'd angel
Is but fool'd by desire like the frailest of men;
Both seek in hysterics life's awful evangel,
Then both settle down to life's silence again.

V.

Well I know the wild spirits of water and air,
When the lean morrow turns up his cynical grey,
Will, baffled, revert with familiar despair
To their old listless work, in their old helpless way.

VI.

Yonder's the light in the Fisherman's hut:
But the old wolf himself is, I know, off at sea;
And I see through the chinks, though the shutters be shut,
By the firelight that some one is watching for me.

VII.

Hark! the horses of ocean that crouch at my feet,
They are moaning in impotent pain on the beach!
Lo! the storm-light, that swathes in its blue winding-sheet
That lone desert of sky, where the stars are dead, each!

VIII.

Holloa, there! open, you little wild girl!
Hush, . . . 'tis her soft feet over the floor.
Stay not to tie up a single dark curl,
But quick with the candle, and open the door.

IX.

One kiss ? . . . there's twenty ! . . . but first, take my
coat there,
Salt as a sea-sponge, and dripping all through.
The old wolf, your father, is out in the boat there.
Hark to the thunder ! . . . we're safe,—I and you.

X.

Put on the kettle. And now for the cask
Of that famous old rum of your father's, the king
Would have claw'd on our frontier. There, fill me the
flask.
Ah, what a quick, little, neat-handed thing !

XI.

There's my pipe. Stuff it with black negro-head.
Soon I shall be in the cloud-land of glory.
Faith, 'tis better with you, Dear, than'fore the mast-
head,
With such lights at the windows of nights upper
story !

XII.

Next, over the round open hole in the shutter.
You may pin up your shawl, . . . lest a mermaid
should peep.
Come, now, the kettle's beginning to splutter,
And the cat recomposes herself into sleep.

XIII.

Poor little naked feet, . . . put them up there
On the black bearskin; and now nestle here
Your head on my shoulder; while all the dark hair
Falls round us like seaweed, the tender warm ear.

XIV.

Pink as a sea-shell, between it out-peeping.
What shall we do with this long windy night?
It is all of it ours, choose we waking or sleeping;
To talk, or be still,—in the dark or the light.

XV.

Will you sing to me songs? shall I tell to you stories?
Shall the stories, the songs, be of mirth or of woe?
Of Fairyland fair, with its far—away glories?
Or the loves of young lovers who died long ago?

XVI.

We have time for each choice. Take the cards from the cupboard,
Thumb'd over by every old thief in our crew,
And I'll tell you your fortune, you little Dame-Hubbard;
My own has been squander'd on witches like you.

XVII.

Knave, King, and Queen, all the villanous pack of 'em,
I know what they're worth in the game, and have found
Upon all the trump-cards the small mark at the back of 'em,
The Devil's nail mark, who still cheats us all round.

CONTRABAND.

I.

A HEAP of low, dark, rocky coast,
  Where the blue-black sea sleeps smooth and even:
And the sun, just over the reefs at most,
  In the amber part of a pale blue heaven:

(18.)

RÁGINÍ KÁFI-SINDHU.

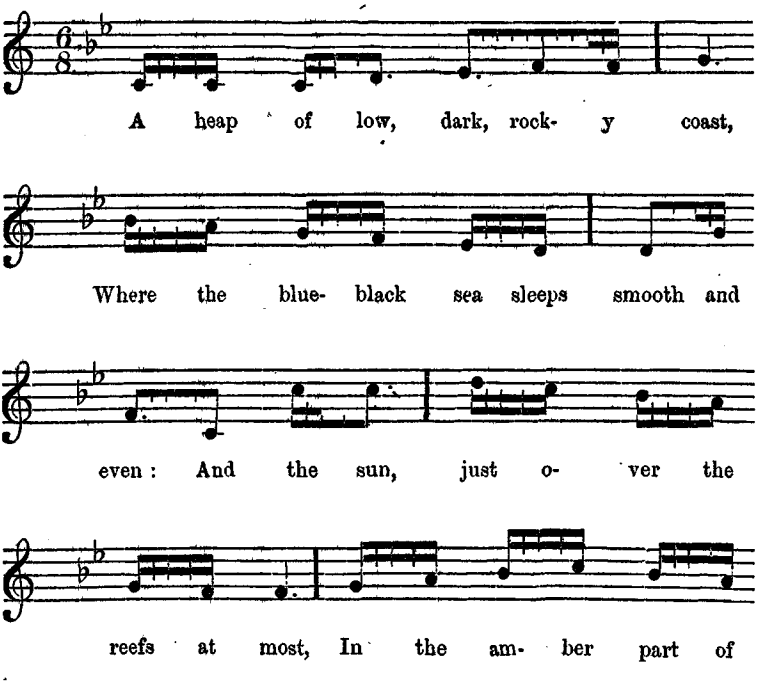
A heap of low, dark, rock- y coast,
Where the blue- black sea sleeps smooth and
even: And the sun, just o- ver the
reefs at most, In the am- ber part of

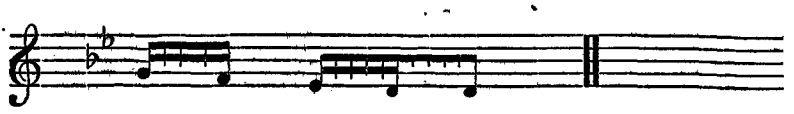

pale blue hea- ven :

II.

A village asleep below the pines,
Hid up the gray shore from the low slow sun :
And a maiden that lingers among the vines,
With her feet in the dews, and her locks undone :

III.

The half-moon melting out of the sky ;
And, just to be seen still, a star here, a star there,
Faint, high up in the heart of the heaven ; so high
And so faint, you can scarcely be sure that they
are there :

IV.

And one of that small, black, raking craft ;
Two swivel guns on a round deck handy ;
And a great sloop sail with the wind abaft ;
And four brown thieves round a cask of brandy.

V.

That's my life, as I left it last.
And what it may be henceforth I know not.
But all that I keep of the merry Past,
Are trifles like these, which I care to show not :—

VI.

A leathern flask, and a necklace of pearl;
These rusty pistols, this tatter'd chart, Friend:
And the soft dark half of a raven curl;
And, at evening, the thought of a true, true heart,
Friend.

HOW THE SONG WAS MADE.

I.

I SAT low down, at midnight, in a vale
Mysterious with the silence of blue pines:
White-cloven by a snaky river-tail,
Uncoil'd from tangled wefts of silver twines.

(19.)

RÁGINÍ YOGIÁN.

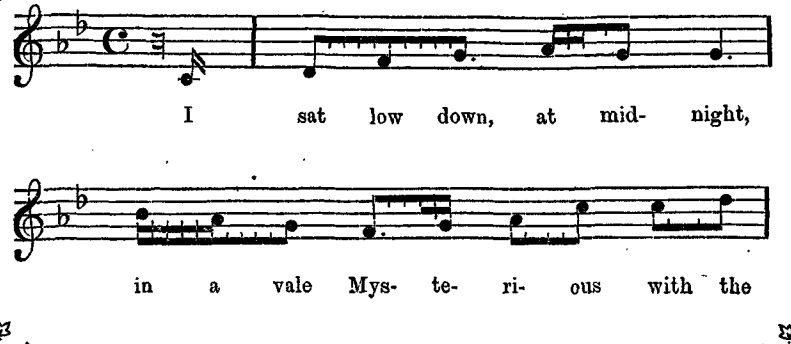

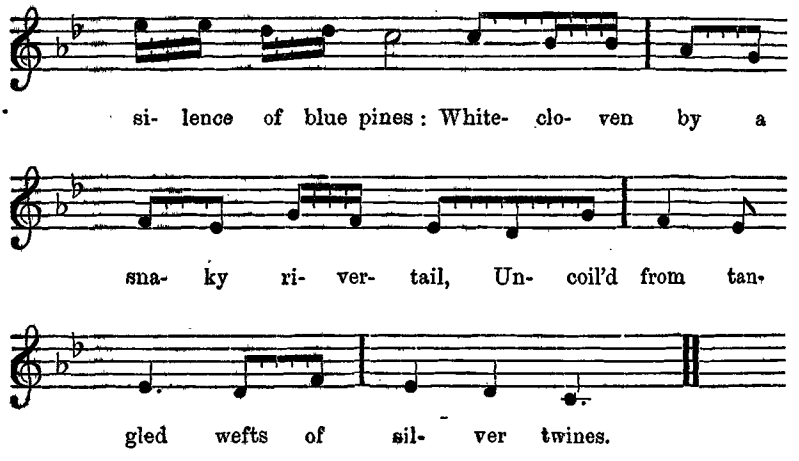

II.

Out of a crumbling castle, on a spike
  Of splinter'd rock, a mile of changeless shade
Gorged half the landscape, Down a dismal dyke
  Of black hills the sluiced moonbeams streamed,
    and staid.

III.

I pluck'd blue mugwort, livid mandrakes, balls
  Of blossom'd nightshade, heads of hemlock, long
White grasses, grown in oozy intervals
  Of marsh, to make ingredients for a song:

IV.

A song of mourning to embalm the Past——
  The corpse-cold Past—*that* it should not decay;
But in dark vaults of Memory, *to* the last,
  Endure unchanged: *for* in some future day

V.

I will bring my new love to look at it
(Laying aside her gay robes for a moment)
That, seeing what love came to, she may sit
Silent awhile, and muse, but make no comment.

A L'ENTRESOL.

I.

His graven circle of golden hours
The creeping hand of the Time-piece, there
In yon bower of milk-white china flowers,
Hath rounded unaware:

(20.)

RÁGINÍ PÁHÁRÍÁ JHIJHITÁ.

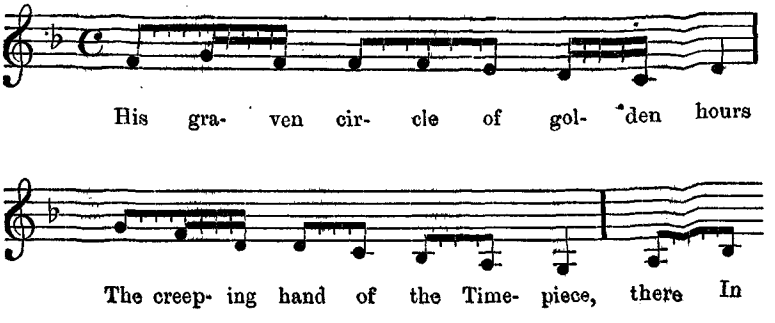

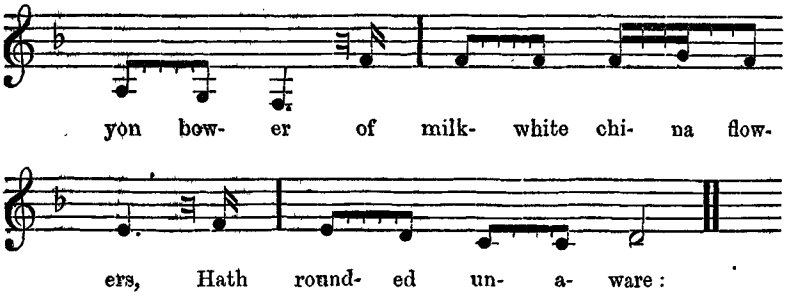

II.

While the firelight, flung from the pictured wall
On the large and limpid mirror behind,
Hath redden'd and darken'd down o'er all,
As the fire itself declined.

III.

Something of pleasure, and something of pain
There lived in that sinking light. What is it?
Faces I never shall look at again,
In places you never will visit,

IV.

Grew out of the glow of each ardent ember,
While, under a palely-wavering flame,
Half of the years life aches to remember
Reappeared, and died as they came.

V.

To its dark Forever an hour hath gone
Since either you or I have spoken :
Each of us might have been sitting alone
In a silence so unbroken.

VI.

I never shall know what made me look up
(In this cushion'd chair so soft and deep,
By the table where, over the empty cup,
I was leaning, half asleep)

VII.

To catch a gleam on the picture up there
Of the saint in the wilderness under the oak;
And a light on the brow of the bronze Voltaire,
Like the ghost of a cynical joke:

VIII.

To mark, in each violet, velvet fold
Of the curtains that fall 'twixt room and room,
The dip and dance of the manifold
Shadows of rosy gloom.

IX.

O'er the Rembrandt there—the Caracci here—
Flutter warmly the ruddy and wavering hues;
And St. Anthony over his book has a leer
At the little French beauty by Greuze:

X.

There—the Leda, weigh'd over her white swan's back,
By the weight of her passionate kiss, ere it falls—
On the ebony cabinet, glittering black
Through its ivory cups and balls:

XI.

Your scissors and thimble, and work laid away,
With its silks, in the scented rosé-wood box:
The journals that tell truth every day;
And that novel of Paul de Kock's:

XII.

The flowers in the vase, with their bells shut close
In a dream of the far green fields where they grew:
The cards of the visiting people and shows
In that bowl with the sea-green hue:

XIII.

Your shawl, with a queenly droop of its own,
Hanging over the arm of the crimson chair:
And, last—yourself, as silent as stone,
In a flush of the firelight there!

XIV.

I thought you were reading all this time.
And was it some wonderful page of your book
Telling of love, with its glory and crime,
That has left you that sorrowful look?

XV.

For a tear from those dark, deep, humid orbs
'Neath their lashes, so long, and soft, and sleek,
All the light in your lustrous eyes absorbs,
As it trembles over your cheek.

XVI.

Were you thinking how we, sitting side by side,
Might be dreaming miles and miles apart?
Or if lips could meet over a gulf so wide
As separates heart from heart?

XVII.

Ah, well! when time is flown, how it fled
It is better neither to ask nor tell.
Leave the dead moments to bury their dead.
Let us kiss and break the spell!

XVIII.

Come, arm in arm, to the window here;
Draw by the thick curtain, and see how, to-night,
In the clear and frosty atmosphere,
The lamps are burning bright.

XIX.

It is scarcely so cold, but I and you,
With never a friend to find us out,
May stare at the shops for a moment or two,
And wander a while about.

XX.

For when in the crowd we have taken our place,
(—Just two more lives to the mighty street there!)
Knowing no single form or face
Of the men and women we meet there,—

XXI.

Knowing, and known of, none in the whole
  Of that crowd all round, but our two selves only,
We shall grow nearer, soul to soul,
  Until we feel less lonely.

XXII.

Here are your bonnet and gloves, dear. There—
  How stately you look in that long rich shawl!
Put back your beautiful golden hair,
  That never a curl may fall.

XXIII.

Stand in the firelight . . . so, . . . as you were—
  O my heart, how fearfully like her she seem'd!
Hide me up from my own despair,
  And the ghost of a dream I dream'd!

GOING BACK AGAIN.

I.

I Dream'd that I walk'd in Italy
  When the day was going down,
By a water that flow'd quite silently
  Through an old dim-lighted town:

(21.)

RÁGINÍ SURATHA.
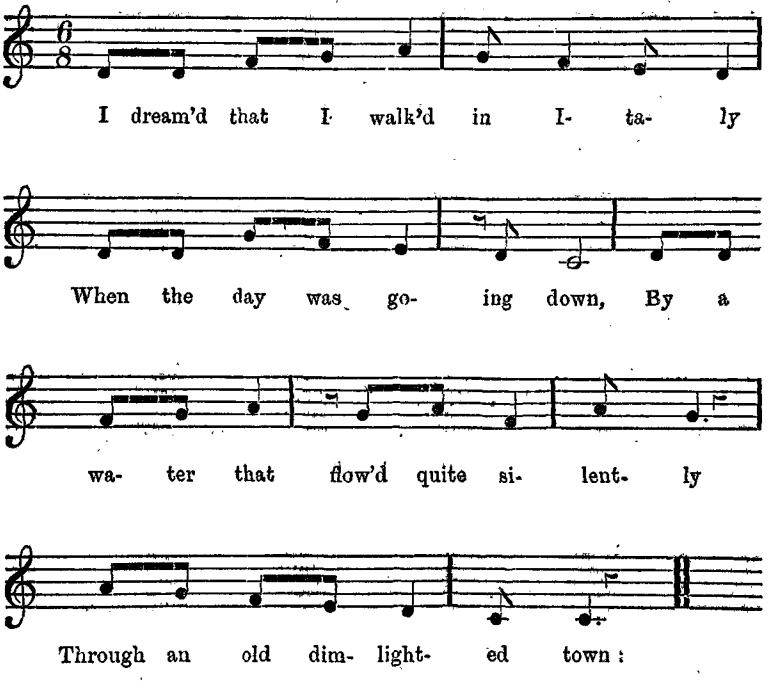
I dream'd that I walk'd in I- ta- ly
When the day was go- ing down, By a
wa- ter that flow'd quite si- lent- ly
Through an old dim- light- ed town :

II.

Till I came a Palace fair to see :
Wide open the windows were :
My love at a window sat, and she
Beckon'd me up the stair.

III.

I roam'd through many a corridor
And many a chamber of state:
I pass'd through many an open door,
While the day was growing late:

IV.

Till I came to the Bridal Chamber at last,
All dim in the darkening weather.
The flowers at the window were talking fast,
And whispering all together.

V.

The place was so still that I could hear
Every word that they said:
They were whispering, busy, and full of fear,
For somebody there was dead.

VI.

When I came to the little rose-colour'd room,
From the window there flew a bat.
The window was open'd upon the gloom:
My love at the window sat:

VII.

She sat with her guitar on her knee,
But she was not singing a note,
For some one had drawn (ah, who could it be?)
A knife across her throat.

MADAME LA MARQUISE.

I.

THE folds of her wine-dark violet dress
Glow over the sofa, fall on fall,
As she sits in the air of her loveliness
With a smile for each and for all.

(22.)

RÁGINÍ MULTÁNÍ.

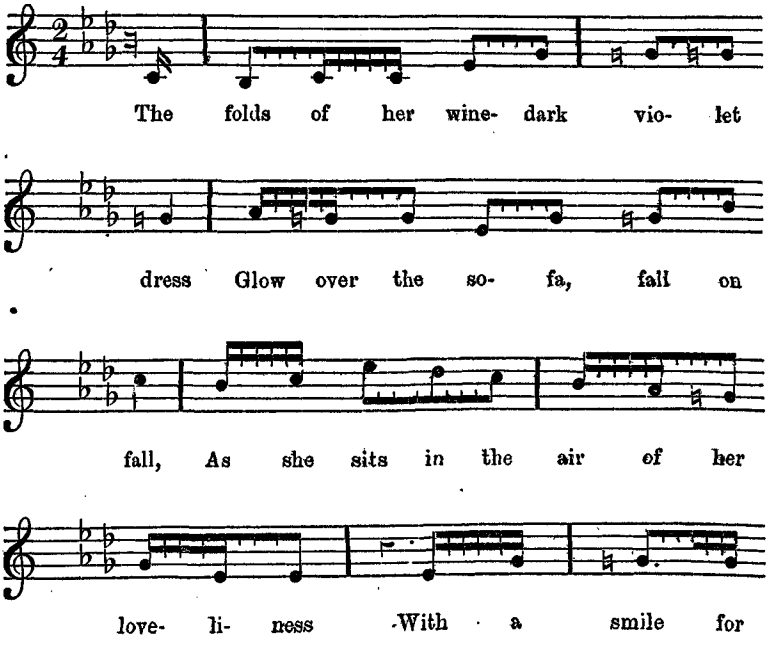
The folds of her wine- dark vio- let
dress Glow over the so- fa, fall on
fall, As she sits in the air of her
love- li- ness With a smile for
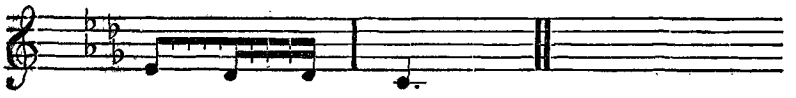
II.

Half of her exquisite face in the shade
Which o'er it the screen in her soft hand flings:
Through the gloom glows her hair in its odorous braid:
In the firelight are sparkling her rings.

III.

As she leans,—the slow smile half shut up in her eyes
Beams the sleepy, long, silk-soft lashes beneath;
Through her crimson lips, stirr'd by her faint replies,
Breaks one gleam of her pearl-white teeth;

IV.

As she leans,—where your eye, by her beauty subdued,
Droops—from under warm fringes of broidery white
The slightest of feet—silken-slipper'd, protrude,
For one moment, then slip out of sight.

V.

As I bend o'er her bosom, to tell her the news,
The faint scent of her hair, the approach of her cheek,
The vague warmth of her breath, all my senses suffuse
With HERSELF: and I tremble to speak.

VI.

So she sits in the curtain'd, luxurious light
Of that room, with its porcelain, and pictures, and flowers,
When the dark day's half done, and the snow flutters white,
Past the windows in feathery showers.

VII.

All without is so cold,— 'neath the low leaden sky!
Down the bald, empty street, like a ghost, the gendarme
Stalks surly: a distant carriage hums by:—
All within is so bright and so warm!

VIII.

But she drives afternoon:—then's the time to behold her,
With her fair face half hid, like a ripe peeping rose,
'Neath that veil,—o'er the velvets and furs which enfold her,—
Leaning back with a queenly repose,

IX.

As she glides up the sunlight! . . . you'd say she was made
To loll back in a carriage, all day, with a smile;
And at dusk, on a sofa, to lean in the shade
Of soft lamps, and be woo'd for a while,

X.

Could we find out her heart through that velvet and lace!
Can it beat without ruffling her sumptuous dress?
She will show us her shoulder, her bosom, her face;
But what the heart's like, we must guess.

XI.

With live women and men to be found in the world—
(—Live with sorrow and sin,—live with pain and with passion,—)
Who could live with a doll, though its locks should be curl'd,
And its petticoats trimm'd in the fashion?

XII.

'Tis so fair! . . . would my bite, if I bit it, draw blood?
Will it cry if I hurt it? or scold if I kiss?
Is it made, with its beauty, of wax or of wood?
. . . Is it worth while to guess at all this?

AUX ITALIENS.

I.

At Paris it was, at the Opera there;—
And she look'd like a Queen of old time that night,
With the wreathed pearls in her raven hair,
And her breast with the diamond bright.

(23.)

RÁGINÍ SINDHU-KHÁMBÁJA.

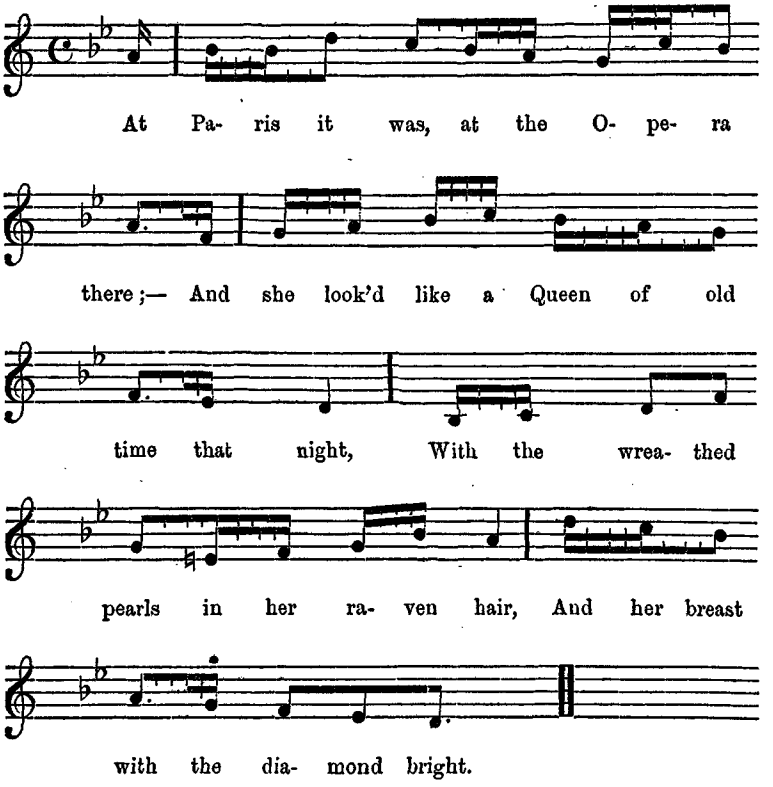
At Pa- ris it was, at the O- pe- ra
there;— And she look'd like a Queen of old
time that night, With the wrea- thed
pearls in her ra- ven hair, And her breast
with the dia- mond bright.

II.

The moon on the tower slept soft as snow :
And who was not thrill'd in the strangest way,
As the Troubadour sung while the gas burn'd low,
'*Non ti scordar di me?*

III.

Side by side in our box we sat,
Together, my bride betroth'd and I:
My gaze was fix'd on my opera-hat,
And hers on the stage hard by:

IV.

And both were silent, and both were sad.
Queenly she lean'd on her full white arm,
With that regal, indolent air she had;
So confident of her charm!

V.

I have not a doubt she was thinking then
Of her former lord, good soul that he was!
Who died the richest, and roundest of men,
The Marquis of Carabas.

VI.

That narrow gate to the kingdom of heaven,
He was not too portly, I trust, to pass.
I wish him well, for the jointure given
To my lady of Carabas.

VII.

Meanwhile, I was thinking of my first love,
As I had not been thinking of aught for years,
Till over my eyes there began to move
Something that felt like tears.

VIII.

I thought of the dress that she wore last time,
When we stood, 'neath the cypress trees, together,
In that lost land, in her own soft clime,
In the crimson evening weather,

IX.

By the broken wall, on the brown grass plot;
And her warm white neck in its golden chain:
And her full, soft hair, wound into a knot,
And falling loose again:

X.

And the jasmin-flower in her fair young breast:
(O the faint, sweet smell of that jasmin-flower!)
And the last bird singing alone to his nest:
And the first star over the tower.

XI.

I thought of our little quarrels and strife;
And the letter that brought me back my ring.
And it all seem'd then, in the waste of life,
Such a very little thing!

XII.

For I thought of her grave below the hill,
Which the sentinel cypress tree stands over.
And I thought . . . 'were she only living still,
How I could forgive her, and love her!'

XIII.

And I swear, as I thought of her thus, in that hour,
And of how, after all, old things were best,
That I smelt the smell of that jasmin-flower,
Which she used to wear in her breast.

XIV.

It smelt so faint, and it smelt so sweet,
It made me creep, and it made me cold!
Like the scent that steals from the crumbling sheet
Where a mummy is half unroll'd.

XV.

And I turn'd and look'd. She was sitting there
In a dim box, over the stage; and drest
In the dress that I knew, with her full soft hair,
And that jasmin in her breast!

XVI.

She was there: and I was here;
And the glittering horse-shoe curved between:—
And from here to there, and from tier to tier,
From my bride that was to have been,

XVII.

To my early love, with her eyes downcast,
And over her blush-rose face the shade,
(In short from the Future back to the Past)
There was but a step to be made.

XVIII.

To my early love from my future bride
One moment I look'd. Then I stole to the door,
I traversed the passage; and down at her side
I was sitting, a moment more.

XIX.

My thinking of her, or the music's strain,
Or something that never will be exprest,
Had brought her back from the grave again,
With the jasmin in her breast.

XX.

She is not dead, and she is not wed!
But she loves me now, and she loved me then!
And the very first word that her sweet lips said,
My heart grew youthful again.

XXI.

The Marchioness there, of Carabas,
She is wealthy, and young, and handsome still,
And but for her . . . well, we'll let that pass,
She may marry whomever she will.

XXII.

But I will marry my own first love,
With her blush-rose face: for old things are best;
And the flower in her bosom, I prize it above
The brooch in my lady's breast.

XXIII.

The world is fill'd with folly and sin,
And Love must cling where it can, I say:
For Beauty is easy enough to win;
But one is n't loved every day.

XXIV.

And I thing, in the lives of most women and men,
There's a moment when all would go smooth and even,
If only the dead could find out when
To come back, and be forgiven.

THE CASTLE OF KING MACBETH.

I.

THIS is the castle of King Macbeth.
And here he feasts—when the day-light wanes,
And the moon goes softly over the heath—
His Earls and Thanes.

(24.)

RÁGINÍ BHÚPA-KALYÁNA.
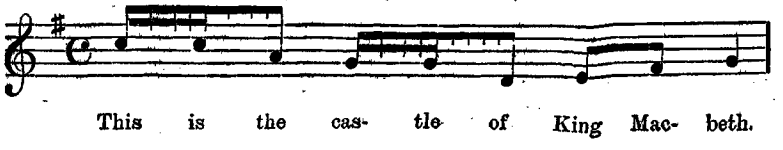
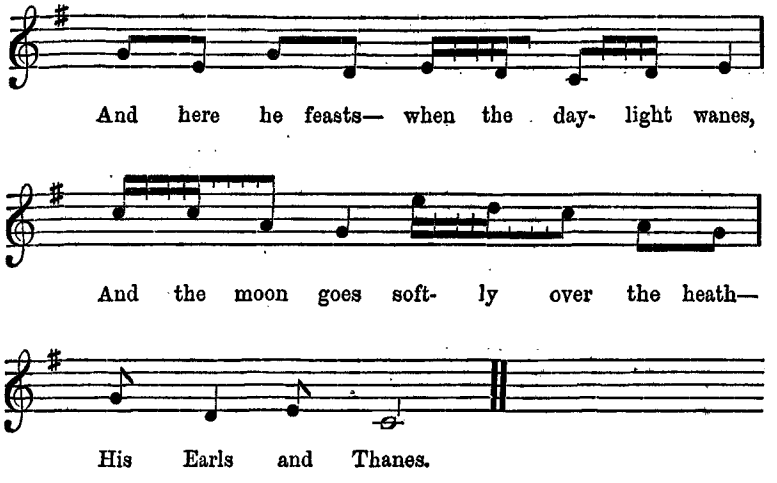

II.

A hundred harpers with harps of gold
Harp through the night high festival:
And the sound of the music they make is roll'd
From hall to hall.

III.

They drink, they sing, till the rafters rock
In the Banquet Hall; and the shout is borne
To the courts outside, where the crowing cock
Is waked ere morn.

IV.

They sing, they dance, till the raven is stirr'd
On the wicked elm-tree outside in the gloom:
And the rustle of silken robes is heard
From room to room.

V.

But there is one room in that castle old,
In a lonely turret where no one goes,
And a dead man sits there, stark and cold,
Whom no one knows.

THE PORTRAIT.

I.

Midnight past! Not a sound of aught
Through the silent house, but the wind at his prayers.
I sat by the dying fire, and thought
Of the dear dead woman upstairs.

(25.)

RÁGINÍ BEHÁGA.
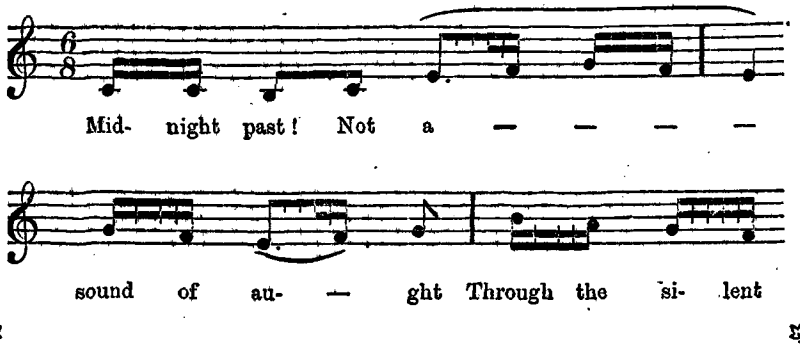
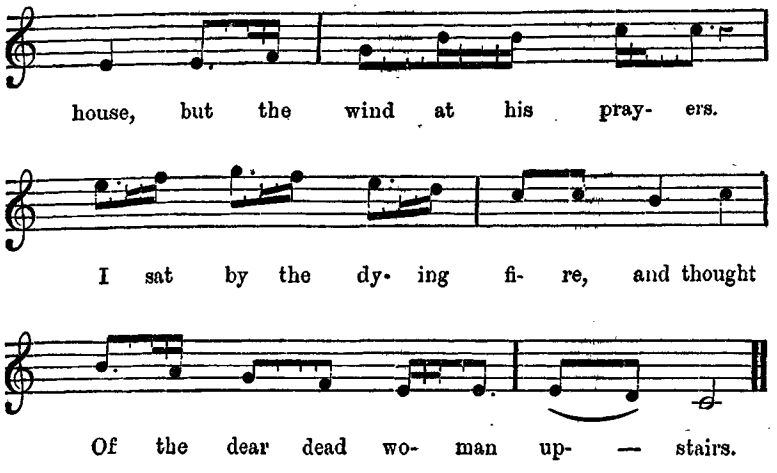

II.

A night of tears! for the gusty rain
Had ceased, but the eaves were dripping yet;
And the moon look'd forth, as though in pain,
With her face all white and wet:

III.

Nobody with me, my watch to keep,
But the friend of my bosom, the man I love:
And grief had sent him fast to sleep
In the chamber up above.

IV.

Nobody else, in the country place
All round, that knew of my loss beside,
But the good young priest with the Raphael-face,
Who confess'd her when she died.

V.

That good young Priest is of gentle nerve,
And my grief had moved him beyond control;
For his lip grew white, as I could observe,
When he speeded her parting soul.

VI.

I sat by the dreary hearth alone:
I thought of the pleasant days of yore:
I said "the staff of my life is gone:
The woman I love is no more.

VII.

"Gem-clasp'd, on her bosom my portrait lies,
Which next to her heart she used to wear—
It is steep'd in the light of her loving eyes,
And the sweets of her bosom and hair."

VIII.

And I said—"the thing is precious to me:
They will bury her soon in the churchyard clay;
It lies on her heart, and lost must be,
If I do not take it away."

IX.

I lighted my lamp at the dying flame,
And crept up the stairs that creak'd for fright,
Till into the chamber of death I came,
Where she lay all in white.

X.

The moon shone over her winding-sheet.
There, stark she lay on her carven bed:
Seven burning tapers about her feet,
And seven about her head.

XI.

As I stretch'd my hand, I held my breath;
I turn'd, as I drew the curtains apart:
I dared not look on the face of death:
I knew where to find her heart.

XII.

I thought, at first, as my touch fell there,
It had warm'd that heart to life, with love;
For the thing I touch'd was warm, I swear,
And I could feel it move.

XIII.

'Twas the hand of a man, that was moving slow
O'er the heart of the dead,—from the other side:
And at once the sweat broke over my brow,
"Who is robbing the corpse?" I cried.

XIV.

Opposite me, by the tapers' light,
The friend of my bosom, the man I loved,
Stood over the corpse, and all as white,
And neither of us moved.

XV.

"What do you here, my friend?" . . . The man
Look'd first at me, and then at the dead.
"There is a portrait here . . ." he began;
"There is. It is mine," I said.

XVI.

Said the friend of my bosom, "yours, no doubt,
The Portrait was, till a month ago,
When this suffering angel took that out,
And placed mine there, I know."

XVII.

"This woman, she loved me well," said I.
"A month ago," said my friend to me:
"And in your throat," I groan'd, "you lie!"
He answer'd . . . "let us see."

XVIII.

"Enough!" I return'd, "let the dead decide:
And whose soever the portrait prove,
His shall it be, when the cause is tried,
Where Death is arraign'd by Love."

XIX.

We found the portrait there, in its place:
We open'd it by the tapers' shine:
The gems were all unchanged: the face
Was—neither his nor mine.

XX.

"One nail drives out another, at least!
The face of the portrait there," I cried,
"Is our friend's, the Raphael-faced young Priest,
Who confess'd her when she died."

THE ALOE.

I.

A STRANGER sent from burning lands,
In realms where buzz and mutter yet
Old gods, with hundred heads and hands,
On jewell'd thrones of jet,—

(26.)

RÁGINÍ SURATHA-KHÁMBÁJA.
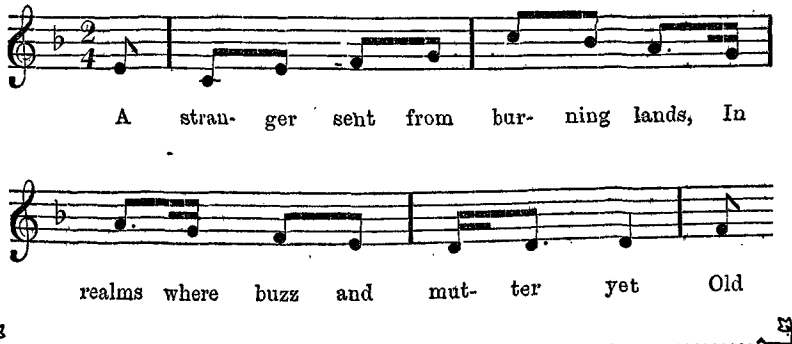
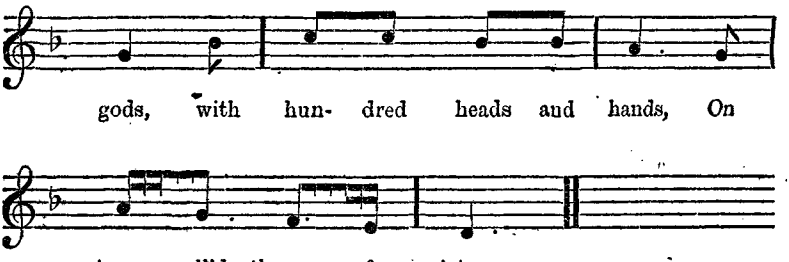

II.

(Old gods as old as Time himself,)
And, in a hot and heavy calm,
Recline o'er many a sandy shelf
Dusk forms beneath the palm,—

III.

To Lady Eve, who dwells beside
The river-meads, and oak-trees tall,
Whose dewy shades encircle wide
Her old Baronial Hall,

IV.

An Indian plant with leaves like horn,
And, all, along its stubborn spine,
Mere humps, with angry spike and thorn
Arm'd, like the porcupine.

V.

In midst of which one sullen bud
Survey'd the world, with head aslant,
High-throned, and looking like the god
Of this strange Indian plant.

VI.

A stubborn plant, from looking cross
It seem'd no kindness could retrieve!
But for his sake whose gift it was
It pleased the Lady Eve.

VII.

She set it on the terraced walk,
Within her own fair garden-ground;
And every morn and eve its stalk
was duly water'd round.

VIII.

And every eve and morn, the while
She tended this uncourteous thing,
I stood beside her,—watch'd her smile,
And often heard her sing.

IX.

The roses I at times would twist
To deck her hair, she oft forgot;
But never that dark aloe miss'd
The daily watering-pot.

X.

She seem'd so gay,—I felt so sad,—
Her laugh but made me frown the more:
For each light word of hers I had
Some sharp reply in store.

XI.

Until she laugh'd . . . "This aloe shows
A kindlier nature than your own" . . .
Ah Eve, you little dream'd what foes
The plant and I had grown!

XII.

At last, one summer night, when all
The garden-flowers were dreaming still,
And still the old Baronial Hall,
The oak-trees on the hill,

XIII.

A loud and sudden sound there stirr'd,
As when a thunder-cloud is torn;
Such thunder-claps are only heard
When little gods are born.

XIV.

The peacocks scream'd, and every rook
Upon the elms at roost did caw:
Each inmate straight the house forsook:
They search'd—and, last,—they saw

XV.

That sullen bud to flower had burst
Upon the sharp-leaved aloe there;—
A wondrous flower; whose breath disperst
Rich odours on the air:

XVI.

A flower, colossal—dazzling white,
And fair as is a Sphynx's face,
Turn'd broadly to the moon by night
From some vast temple's base.

XVII.

Yes, Eve ! your aloe paid the pains
With which its sullen growth you nurst.
But, ah ! my nature still remains
As churlish as at first.

XVIII.

And yet and yet—it might have proved
Not all unworth your hearts' approving.
Ah, had I only been beloved,—
(Beloved as I was loving !)

XIX.

I might have been . . . how much, how much,
I am not now, and shall not be !
One gentle look, one tender touch,
Had done so much for me !

XX.

I too, perchance, if kindly tended,
Had roused this napping generation
With something novel, strange, and splendid,
Deserving admiration :

XXI.

For all the while there grew, and grew
A germ,—a bud, within my bosom :
No flower, fair Eve !—for, thanks to you,
It never came to blossom.

SPRING AND WINTER.

I.

Was it well in him, if he
Felt not love, to speak of love so ?
If he still unmoved must be,
Was it nobly sought to move so ?
—Pluck the flower, but not to wear it—
Spurn it from him, yet not spare *it* ?

(27.)

RÁGA BASANTA.
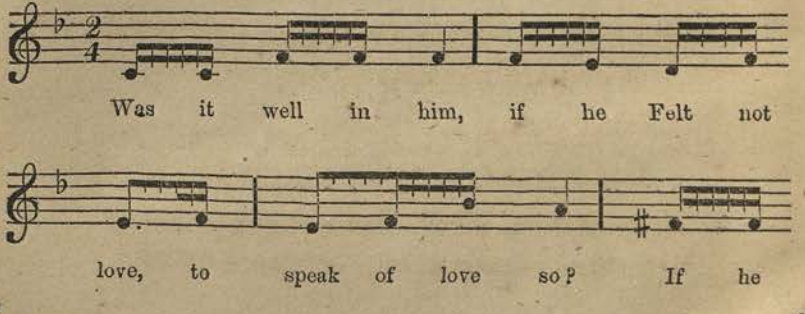
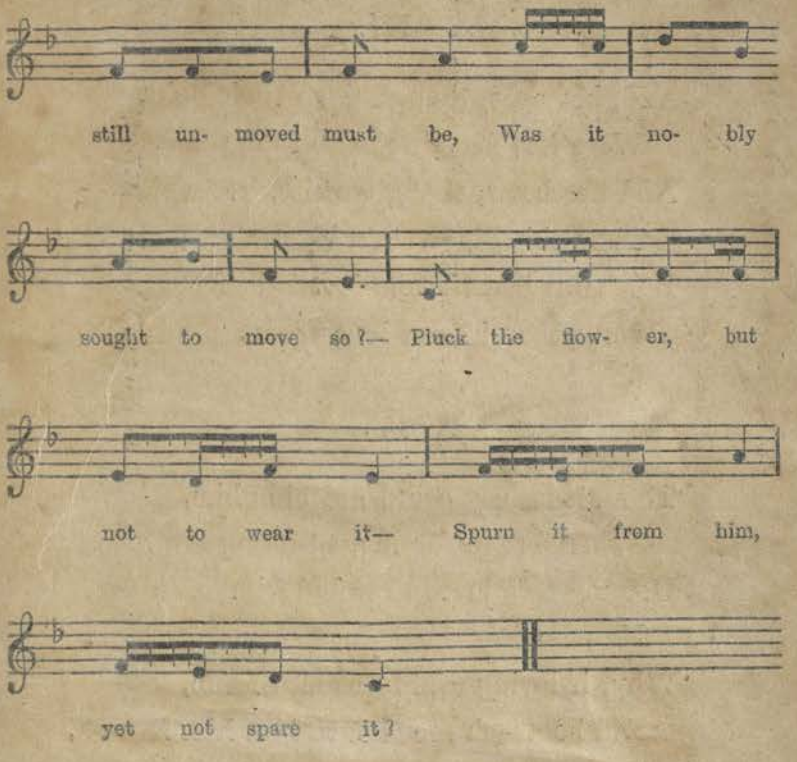

II.

Need he say that I was fair,
  With such meaning in his tone,
Adding ever that her hair
  Had the same tinge as my own?
Pluck my life up, root and bloom,
  To make garlands for her tomb?

III.

And, her eyes, though deep their light,
  Were less deep, he said, than mine,
And her brow, though white, less white
  Than this blue-vein'd crystalline;
But 'twas just that he loved then
  More than he can love again.

IV.

Then, if beauty could not bind him,
  Wherefore praise me, speaking low?
Use my face just to remind him
  How no face could please him now?
Why, if loving could not move him,
  Did he teach me still to love him?

V.

"Yes!" he said, "he had grown wise now:
  He had suffer'd much of yore:
But a fair face to his eyes now,
  Was a fair face, and no more.
Yet the anguish and the bliss,
  And the dream too, had been his."

00044262

Digitized with financial assistance from the
Government of Maharashtra
on 18 July, 2018